आवश्यक



१—इस वर्ष कतिपय ग्राहकों के नम्बर बदल गये है इस कारण सभी ग्राहकों से निवेदन है कि विशेषाँक के ऊपर रेपर पर लिखा ग्राहक नम्बर तथा पोस्ट आफिस का नम्बर इस विशेषाँक के टाइटिल पृष्ठ २ पर नोट कर ले।

२—भविष्य में पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर पत्र में अवश्य लिख दिया करे।

३—कोई भी अङ्क मिलने पर देख लिया करें कि उससे पहिले माह का अङ्क मिला है या नही। यदि न मिला हो तो कृपया पोस्ट आफिस में तलाश करें और उसके उत्तर के साथ हमको लिखें।

४—'धन्वन्तरि" के नवीन ग्राहक बनाने का अवश्य प्रयत्न करे।

५—आप "धन्वन्तरि" के नये ग्राहक बनाने को मनियाआर्डर भेजे, या लेख समाचार प्रकाशनार्थ भेजे, या श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन द्वारा निर्मित औषधियाँ पुस्तके, यन्त्र उपकरण, बिजली की मशीन आदि मगावे, या किसी अन्य कारण से हमको पत्र लिखे तो पता—

"श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भांजा रोड, अलीगढ़" इस प्रकार से लिखे। पते में कही भी 'विजयगढ' शब्द न लिखे अन्यथा आपके द्वारा प्रेषित वस्तु हमें न मिल सकेगी। 'धन्वन्तरि-कार्यालय' शब्द भी पते मे नही लिखना चाहिए।



समाचार पत्र पञ्जीयन कानून (केन्द्रीय) १९५६ के नियम नं. ८ के अन्तर्गत अपेक्षित 'धन्वन्तरि' से सम्बद्ध विवरण-फार्म ४ (रूल ८)

१. प्रकाशन का स्थान—मामू भाजा रोड, अलीगढ। २. प्रकाशन का काल—मासिक

३ मुद्रक का नाम—श्रीनाथ अग्रवाल, मीरा प्रिंटिंग प्रेस, अलीगढ़। राष्ट्रीयता—भारतीय
पता—मीरा प्रिंटिंग प्रेस, मामू भाजा रोड, अलीगढ़

४ प्रकाशक का नाम—ज्वाला प्रसाद अग्रवाल। राष्ट्रीयता—भारतीय
पता—श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भान्जा रोड, अलीगढ़

५ सम्पादक का नाम—ज्वाला प्रसाद अग्रवाल, राष्ट्रीयता—भारतीय
पता—श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भांजा रोड, अलीगढ

६ भागीदार—ज्वाला प्रसाद अग्रवाल, दाऊ दयाल गर्ग, श्रीनाथ अग्रवाल,
राम कृष्ण अग्रवाल, गिरीज किशोर अग्रवाल—मामू भाजा रोड, अलीगढ।

मैं, ज्वाला प्रसाद अग्रवाल, घोषित करता हू कि ऊपर दिया सभी विवरण जहा तक मैं जानता तथा विश्वास करता हू सत्य है।

ह० ज्वाला प्रसाद अग्रवाल
२८ फरवरी १९७५



प्रकाशकीय निवेदन

श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन अलीगढ द्वारा प्रकाशित 'धन्वन्तरि' का यह तृतीय विशेषाक "सदिग्ध बनौषधि विशेपाक" जो सन् ७५ का फरवरी + मार्च का अङ्क है आयुर्वेद समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे प्रसन्नता है। इस वर्ष का यह विशेपाक 'धन्वन्तरि' की पूर्व परम्परा से कुछ हटकर है, अभी तक 'धन्वन्तरि' द्वारा जितने विशेपाक प्रकाशित किए गए है वे सामान्य जन समुदाय के लिए महान उपयोगी सिद्ध हुए हैं लेकिन आयुर्वेद के मनीषी विद्वान सदैव यह उलाहना देते रहे हैं कि धन्वन्तरि हल्का-फुल्का साहित्य देता है। अस्तु इस वर्ष मान्य आचार्य विश्वनाथ जी द्विवेदी से 'धन्वन्तरि' के एक विशेपाक के सम्पादन हेतु निवेदन किया गया और उन्होने सुझाव दिया कि 'धन्वन्तरि' द्वारा सम्पूर्ण वनस्पतियो एवं प्राणिज खनिज द्रव्यों का विशाल साहित्य प्रस्तुत करने के बाद एक विशेपाक सदिग्ध बनौपधि के विषय पर और प्रकाशित करना चाहिए। इस विपय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे जहाँ-तहा कुछ लेख प्रकाशित होते रहे हैं लेकिन इस विपय पर सुविचारित एव विवेचनायुक्त साहित्य एक जगह नही मिलता है तथा इस ओर विज्ञजनो का ध्यान आकृष्ट करने के लिए 'धन्वन्तरि' को प्रयत्न करना उचित होगा। औषधि-निर्माता तथा चिकित्सक समुदाय औषधि-निर्माण करते समय जहाँ-जैसा द्रव्य मिल जाता है वहा वैसा ही प्रयोग कर डालते हैं जिसका परिणाम होता है कि एक ही औषधि विभिन्न निर्माताओ की अलग-अलग रूप-रग और गुण वाली बन जाती है। शास्त्र मे जो गुण वर्णित है वह उस औषधि से नहीं मिल पाते। इस अव्यवस्था को दूर करने के लिए द्रव्य निर्णय होना नितान्त आवश्यक है।

यह विषय अति गम्भीर होते हुए भी अति आवश्यक भी हे। इस विपय को सही सुलझे हुए रूप मे प्रस्तुत करना भी किसी महान् विद्वान अनुभवी तथा कर्मठ व्यक्ति का ही काम था। अस्तु आचार्य जी के सम्पादन लेखन मे इस अत्यावश्यक विषय पर इस वर्ष विशेपाक प्रकाशित करने का साहस हमने किया।

आचार्य विश्वनाथ जी द्विवेदी आयुर्वेद शास्त्राचार्य द्रव्य गुण शास्त्र के अनुभवी विद्वान हैं। प्रथक से प्रकाशित आपके परिचय से पाठक आपकी योग्यता, अनुभव एव उपलब्धियो को जान सकेंगे। इस आयु मे आपने इस विशेपांक के लेखन एव सम्पादन मे महान परिश्रम किया है। अन्य परिचित विद्वानो से भी आपने भरपूर सहयोग लिया है। अपने जीवन का इस विपय का सभी अनुभव इस विशेपाक मे भर दिया है। मुझे विश्वास है कि आयुर्वेद के विद्वान, आयुर्वेद का विद्यार्थी समाज, औपधि निर्माण करने वाले, चिकित्सक तथा फार्मसिस्ट सभी इस वर्ष के इस विशेपांक को अवश्य पसन्द करेगे। विद्वानो को सोचने समझने और इस विपय का अन्वेपण करने के लिये इसमे बहुत कुछ है। कागज की महर्घता तथा विषय की विशालता के कारण "गागर मे सागर" भरना पड़ा है।

इस विशेपाक के लिए चित्रो के सग्रह, डिजाइन बनाने बनवाने तथा ब्लॉक तैयार करने मे भी हमको सदैव से अधिक ही नही कई गुना धन व्यय करना पडा है। लगभग ३०० चित्र इस विशेपाक मे दिए गए है।

पहिले हमारा विचार था कि इस वर्ष का विशेपाक अधिकतम ४४० पृष्ठ का प्रकाशित करेंगे लेकिन विद्वानो के महान परिश्रम से लिखे गए विद्वतापूर्ण एव विवेचनायुक्त लेखो को प्रकाशित न करना भ

हमको उचित प्रतीत नहीं हुआ और विशेषाक ४६४ पृष्ठ का हो गया। फिर भी लेख शेष रहे और इतने शेष रहे कि उन सभी को इस विशेषांक मे प्रकाशित करना हमारे लिए सम्भव नही रहा तब विवश. शेष लेखों को अप्रैल के अ क मे प्रकाशित करना आवश्यक समझा गया। यह अप्रैल का अ क "सदिग्ध वनौषधि-परिशिष्टांक" के रूप मे प्रकाशित किया जा रहा है।

पाठक एव आयुर्वेद-समाज इस विशेषाक के विषय में अपने विचार लिखने की कृपा अवश्य करें जिससे कि हम यह जान सके कि आपने इसे कहा तक पसद किया ।

कागज की समस्या

इस समय कागज की महान समस्या है। सरकार ने न्यूजप्रिंट के सौदे विदेशो से बहुत मंहगे करके धडाधड माल मगा डाला है, लेकिन जो कागज १॥-२ वर्ष पहिले २१) रिम था वह आज ५५) और ५८) रिम सरकारी कोटे द्वारा मगाने पर पड रहा है। स्याही-टाइप-छपाई-मजदूरी सभी कुछ इन १॥-२ वर्षो मे दुगने-तिगुने हो गए हैं। हमने धन्वन्तरि का वार्षिक मूल्य ८/५० से १०) किया और इस वर्ष १०) से १८) कर दिया। इतने पर भी इसमे हमको जो घाटा हो रहा है तथा होगा उसे हम जानते है या हमारे जैसे पत्रकार जान सकते हैं। हम इसमे कितना परिश्रम करते है कितनी पूजी लगाते हैं और अन्त मे हमको क्या लाभ मिलता है—इस विषय पर जब विचार करते हैं तो हमारा दिल टूट जाता है। लेकिन क्या करें जिस वृक्ष को हमारे पूर्वजो तथा हमने ४९ वर्षो से पाला-पोसा है उसे सूख जाने दें, वह जाने दें यह भी हमसे सहन नही होगा अस्तु अपने कृपालु ग्राहको, लेखको तथा शुभ चिन्तको के सहयोग के भरोसे ही इसे चलाए जा रहे है और चलाते रहेंगे।

माननीय लेखको से निवेदन

'धन्वन्तरि' को अधिकाधिक सुन्दर तथा उपयोगी बनाने के लिए आयुर्वेद विद्वानो का सहयोग आवश्यक है। अस्तु सम्माननीय लेखको से निवेदन है कि वे अपने अनुभवपूर्ण लेख 'धन्वन्तरि' मे प्रकाशनार्थ समय-समय पर भेजकर हमको अपना सहयोग दे। आप सभी लेखकों का सहयोग मिलता रहेगा तो मैं 'धन्वन्तरि' को आयुर्वेद का आदर्श पत्र बनाकर अपना सकल्प पूरा कर सकूगा। अपने सुझाव भी अवश्य देते रहे।

मासिक अङ्क

हम मासिक अङ्को को पूरी सावधानी से सभी ग्राहको को अवश्य भेज देते हैं। यदि आपको किसी माह का अङ्क न मिले तो आगामी माह मे पत्र डालकर मगा लिया करें। बहुत से ग्राहक वर्ष के अन्त मे अपने अ को को सभालते हैं, जो भी अङ्क उनसे गुम हो जाते हैं या नही मिल पाते उनके लिए हमको जिम्मेदार ठहराते हैं और ४-४, ६-६ माह के अङ्क पुनः भेजने का आग्रह करते हैं। यह उचित नही है। उनकी कमी पूरी करना हमारे लिये अति कष्टप्रद है।

पत्रव्यवहार का पता

अनेक वार निवेदन करने पर भी कुछ ग्राहक पते मे अब भी 'धन्वन्तरि कार्यालय' या 'विजयगढ' शब्द लिख देते है और इस असावधानी के कारण उनका भेजा हुआ पत्र या मनियार्डर हमको नही मिल पाता। अस्तु निवेदन है कि पत्र या मनियार्डर भेजते समय पता सावधानी से केवल—**'श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भांजा रोड, अलीगढ—२२'** ही लिखा करें।

भवदीय

ज्वाला प्रसाद अग्रवाल



आचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी आयुर्वेद शास्त्राचार्य

बी. ए. आयुर्वेद बृहस्पति

का संक्षिप्त जीवन परिचय

श्री द्विवेदी जी का जन्म पवित्र ब्राह्मण कुल सरयूपारीय वश के जयमिनीय गोत्र मे बलिया मण्डलान्तर्गत बोझवलिया ग्राम के आरत दूवे का छपरा नामक स्थान पर विक्रमीय सवत् १९६३ कृष्ण पक्ष चतुर्थी भाद्रपद में हुआ था।

शिक्षा—

इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने ग्राम के पास ही रामपुरा ग्राम मे हुई। इसके पश्चात् हिन्दी व उर्दू की परीक्षा बसारीपुर ग्राम मे सम्पन्न हुई। इसके पश्चात् इगलिश के अध्ययन के लिये १९२० ई० मे ये अपने लघु भ्राता डा० हजारी प्रसाद के साथ पूर्वी बगाल के वर्हमगज फरीदपुर मे अपने पितृव्य के साथ गये, किन्तु महात्मा गाधी के 'अग्रेजी स्कूल छोडो' आन्दोलन मे स्कूल छोड दिये।

इसके पश्चात् दोनों भाई भारतीय वाङ्मय की सर्वश्रेष्ठ भाषा संस्कृत के अध्ययन के लिये हिन्दू विश्वविद्यालय के तत्वावधान में चलने वाली रणवीर संस्कृत पाठशाला में प्रख्यात विद्वान श्री अनन्तराम शास्त्री से संस्कृत शिक्षा प्राप्त कर प्रवेशिका परीक्षा अल्पत्प समय मे उत्तीर्ण कर ली। इसके पश्चात् हिन्दू विश्वविद्यालय में मध्यमा, शास्त्री व शास्त्राचार्य की परीक्षायें क्रमश १६२५, २७ व १६२६ मे उत्तीर्ण की। इसके साथ ही साथ एडमिशन इन्टर व बी० ए० की परीक्षाएं भी हिन्दू विश्व-विद्यालय से ही उत्तीर्ण की।

इनके अतिरिक्त साहित्यालन्कार, अखिल भारतीय संस्कृत एसोसियेशन से आयुर्वेद बृहस्पति, डी० एस-सी० आयुर्वेद (झांसी से) तत्कालीन स्वास्थ्य मन्त्री श्रीमती अमृत कौर के कर कमलो द्वारा तथा आयुर्वेदोपाध्याय आयुर्वेदीय एकेडेमी हैदराबाद व प्राणाचार्य वैद्य परिषद दिल्ली के द्वारा इनके सम्मान में अर्पित की गयीं।

कार्यक्षेत्र—

अध्ययन के पश्चात् श्री द्विवेदी जी पीलीभीत के राजा ललिता प्रसाद, हर प्रसाद की संस्था मे ललितहरी आयुर्वेदिक कालिज मे प्रिंसिपल के पद पर स्वर्गीय महामना प मदन मोहन मालवीय उपकुलपति हिन्दू विश्वविद्यालय के निर्देश पर उनका आशीर्वाद प्राप्त कर सन् १६३२ मे कार्य प्रारम्भ किये।

आयुर्वेदिक कालेज मे लगातार २० वर्षों तक ये आचार्य पद पर कार्य करते रहे। इस बीच में इन्होंने आयुर्वेद महाविद्यालय को एक साधारण पाठशाला से महाविद्यालय का स्वरूप प्रदान किया तथा उसके साथ ललितहरि आयुर्वेदिक फार्मेसी की स्थापना की। जो उस समय प्रांत के औषधालयों को औषधि दिया करती थी।

इसके पश्चात् चार वर्षो तक किंग जार्ज मेडिकल कालेज लखनऊ मे जब बी० एम० बी० एम० कोर्स आयुर्वेद का चल रहा था उसमे विभागाध्यक्ष आयुर्वेद की तरह कार्य करते रहे। इस अवधि में आयुर्वेद का यह विभाग स्वतन्त्र राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय के रूप में लखनऊ विश्वविद्यालय से पृथक स्थापित हुआ, जो आज भी उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा परिचालित है। सन् १६५६ से १६६८ अर्थात् १२ वर्षो तक स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र जामनगर में प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष द्रव्य गुण तथा डायरेक्टर आई० ए० एम० आर० जामनगर मे कार्य करते रहे। इस अवधि मे जामनगर की तीनो संस्थायें—

१—गुलाब कुवरवा आयुर्वेद महाविद्यालय
२—केन्द्रिय अन्वेषण संस्थान, तथा
३—स्नातकोत्तर शिक्षण संस्थान

जो पृथक्-पृथक् कार्य कर रही थी वह एक सम्मिलित संस्था बन गयीं, और उसका नाम इन्स्टीट्यूट ऑफ आयुर्वदिक स्टडीज एण्ड रिसर्च नाम की संस्था का उदय हुआ था। इसके पश्चात् इस संस्था का स्वरूप गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय के रूप में परिवर्तित हुआ जिसका संचालन केन्द्रिय व गुजरात प्रान्तीय सरकार करती है। इसके पश्चात् आचार्य जी यहाँ से रिटायर होकर वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी आयुर्वेद महाविद्यालय में आचार्य पद पर निरन्तर पांच वर्षो तक कार्य करते रहे।

वहा से अवकाश लेने के बाद अब वे अपने निवास स्थान कुसुम भवन-नगवा वाराणसी मे निवास करते हैं और अपने चरक चिकित्सालय का संचालन करते हैं।

इस प्रकार श्री द्विवेदी जी का सम्पूर्ण जीवन आयुर्वेद की शिक्षा दीक्षा तथा अनुसंधान मे व्यतीत हुआ है। और अब भी वे इन कार्यों मे ही रत हैं।

अपने इस कार्यकाल मे आप प्रान्तीय व केन्द्रीय सरकारो से सम्बन्धित अनेक आयुर्वेदीय संस्थाओं से संबद्ध रहे हैं। यथा—

१—आयुर्वेद यूनानी री-आर्गनाइजेशन कमेटी, गवर्नमेन्ट आफ यू० पी०, लखनऊ।
२—आयुर्वेद यूनानि एकेडमी लखनऊ
३—एकेडमिक कौंसिल फार्माकोपिया कमेटी, लखनऊ।

४—चेयरमैन-बोर्ड ऑफ इण्डियन मेडिसिन, लखनऊ

५—सदस्य—बोर्ड ऑफ एजूकेशन कमेटी गुजरात-विश्वविद्यालय, अहमदाबाद

६—सदस्य—बोर्ड आफ एजूकेशन कमेटी, जिवाजी यूनिवर्सिटी, ग्वालियर।

७—सदस्य—सिनेट ऑफ गुजरात यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद

८—सदस्य—फैकल्टी ऑफ आयुर्वेद, लखनऊ यूनिवर्सिटी।

९— ,, ,, ,, जबलपुर यूनि०

१०— ,, ,, ,, लखनऊ यू०

११— माईसोर विश्वविद्यालय

१२— ,, ,, ,, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

१३—डीन—ऑफ दि फैकल्टि आयुर्वेद गुजरात यू० अहमदाबाद

१४—सदस्य—मेरिठ पे कमिटि, जयपुर यूनिवर्सिटी।

१५—सदस्य—पोस्ट ग्रेजुएट इन्स्टिट्यूट ऑफ मेडिकल साइन्स, बी० एच० यू०

१६—सदस्य—मेडिसिनल प्लान्ट्स एण्ड माइनर क्रॉप्स कमेटी आई० सी० ए० आर० दिल्ली

१७—सदस्य—फार्माकोपिया कमेटि गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया दिल्ली।

१८—सदस्य—जनरल ऑफ इण्डियन मेडिकल साइन्स, वाराणसी।

१९—सदस्य—ड्रग्स् स्टेण्डर्डाईजेशन कमेटि, अहमदाबाद।

२०— ,, ,, गवर्मेन्ट आफ इण्डिया दिल्ली।

२१— ,, साइन्टिफिक एडवाइजरी बोर्ड C.C.R.I.M.H., नई दिल्ली इत्यादि।

लेखन कार्य—

द्विवेदी जी शिक्षक और आयुर्वेद के अधिकारी लेखक की तरह प्रसिद्ध रहे, इनके स्वय के लिखे हुये १२ ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं जो निम्नलिखित हैं—

१—त्रिदोषालोक—निखिल भारतीय महासम्मेलन नागपुर से स्वर्ण पदक प्राप्त।

२—वैद्य सहचर—जिसका पचम सस्करण हाथो हाथ बिक गया है।

३—जर्म्स थिउरी इन दि वेदाज—वेदो मे जीवाणु विज्ञान

४—तैल संग्रह।

५—अभिनव नेत्र रोग विज्ञान।

६—प्रत्यक्ष औषधि निर्माण।

७—क्रियात्मक द्रव्य गुण विज्ञान।

८—आयुर्वेद की औषधियो का वर्गीकरण।

९—औषधि विज्ञान शास्त्र।

१०—नाड़ी विज्ञान।

११—बृहत्रयी निघण्टु।

१२—आरोग्य शास्त्र।

द्विवेदी जी ने स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र मे ४० महानिबन्धो का निर्देशन किया है और ३६ एकौषधि सग्रह का निर्देशन किया है। वे न केवल शिक्षक एव अन्वेषक ही रहे हैं बल्कि प्रख्यात चिकित्सक भी हैं।

सदिग्ध औषधियो के अन्वेषणार्थ सम्पूर्ण भारतवर्ष के जगल व पर्वतो का भ्रमण किये हैं। अष्टवर्ग व सोम के अन्वेषणार्थ वे कई बार हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रो-काश्मीर-नैनीताल-देहरादून चकरौता-मन्सूरी की यात्रा भी कर चुके हैं। वे एक उदार तथा शान्तिप्रिय व्यक्ति हैं।

डा—श्री सीताराम त्रिपाठी आयुर्वेदाचार्य बी०ए०एम०एस०
मा० म० वि० त्रि० वाराणसी

आभार प्रदर्शन



औषधियो की संदिग्धता का विषय एक महान् कार्य है। और वनस्पति शास्त्र के ज्ञाता, विद्वान् चिकित्सक, वनस्पति शास्त्री, द्रव्य गुण के प्रोफेसर, व्याख्याता तथा रिसर्च स्कालरो के यह विशेष कार्य हैं कि एक वनस्पति के बदले मे प्रतिनिधि द्रव्य लेना, मिलावट करना तथा विशुद्ध औषधि के बदले मे निर्णय देना इन विषयो पर शान्तिभाव से विचार कर सकें, इसलिये हमने प्रत्येक विश्वविद्यालय के आयुर्वेद महाविद्यालयो के प्राचार्य, प्रोफेसर व द्रव्य गुण के व्याख्याता आदि तद्विध पुरुषो के पास पत्र लिखकर निवेदन किया कि वे हमें इस विषय मे सहयोग प्रदान करे। प्रसन्नता है कि हमारे पत्रो के पहुचने के बाद प्रत्येक ने हमें सहयोग किया।

१—स्नातकोत्तर शिक्षा चिकित्सा विज्ञान संस्थान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, द्रव्य-गुण विभाग के विभागाध्यक्ष एव प्रो० प्रियव्रत शर्मा ने तीन लेख भेजकर हमे प्रोत्साहित किया।

२—स्नातकोत्तर विभाग राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय लखनऊ के प्राचार्य ने दो लेख भेजकर अनुगृहीत किया।

३—स्नातकोत्तर शिक्षा विभाग, राजकीय आयुर्वेदिक कालेज पटियाला के प्रिंसिपल महोदय ने पाच लेख भेजवाया।

४—राजकीय आयुर्वेद स्नातकोत्तर शिक्षण विभाग जयपुर से दो लेख प्राप्त हुए हैं।

५—आयुर्वेद महाविद्यालय—वाराणसेय संस्कृत महाविद्यालय वाराणसी से तीन लेख प्राप्त हुये।

६—आयुर्वेद महाविद्यालय स्याना (बुलन्दशहर) के प्राचार्य व अध्यापकों ने भी लेख भेजे हैं।

७—मदन मोहन मालवीय राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय उदयपुर से भी हमे अच्छे लेख मिले।

८—स्नातकोत्तर प्रशिक्षण केन्द्र, जामनगर से उत्तीर्ण कई विद्वानो ने अपने लेख दिये हैं।

९—कुछ लेख केन्द्रीय चिकित्सा परिषद (सी०सी०आर०आई०एम०एच०) सर्वे यूनिट के कुछ रिसर्च आफिसरो द्वारा लिखे गये है जिनकी आज्ञा डायरेक्टर सी०सी०आर०आई०एम०एस० नई दिल्ली से प्राप्त हुई हैं। एतदर्थ इन विद्वानो के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूं। तथा समय-समय पर निकलने वाले पत्र पत्रिकाओ मे जो लेख इस प्रकार के निकलते रहे हैं उनका भी अनेक स्थलो पर सहयोग लिया गया है। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित संहिता एव निघण्टु ग्रन्थो तथा वनस्पति विवरण सम्बन्धी पुस्तको का भी यथास्थान सहयोग लिया गया है। उन सब आचार्यों के प्रति सम्मानपूर्वक आभार प्रदर्शित करना अपना कर्त्तव्य समझता हू। उनकी सूची निम्न है—

१. ऋग्वेद
२. यजुर्वेद
३. अथर्ववेद
४. मनुस्मृति
५. याज्ञवल्क स्मृति
६. शतपथ ब्राह्मण
७ ताण्ड्य ब्राह्मण
८. चरक संहिता (चक्रपाणि टीका सहित)
९ सुश्रुत संहिता (भानुमती टीका–चक्रपाणि दत्त)
१०. सुश्रुत संहिता (डल्हण टीका)
११. अष्टाङ्ग हृदय (अरुण दत्त की व्याख्या)
१२. काश्यप संहिता
१३. हारीत संहिता
१४. भेल संहिता
१५. चरक संहिता (हिन्दी-इगलिश टीका जामनगर)
१६ चरक संहिता (हिन्दी टीका चौखम्भा वाराणसी)
१७. अष्टाङ्ग संग्रह
१८. धन्वन्तरि निघण्टु
१९. राजनिघण्टु
२०. भावप्रकाश निघण्टु
२१. कैयदेव निघण्टु
२२. अमरकोश
२३. शिवकोष
२४. निघण्टु रत्नाकर
२५. बनौषधि दर्पण —
२६. अभिधान चिन्तामणि —
२७. अभिधान रत्नमाला —
२८. शार्ङ्गधर संहिता
२९. भावप्रकाश निघण्टु (हिन्दी टीका)
३०. औषधि विज्ञान शास्त्र
३१. आयुर्वेद की औषधियां और उनका वर्गीकरण।
३२. 'वनौषधि विशेषांक 'धन्वन्तरि' १–६ भाग।
३३. क्रियात्मक औषधि विज्ञान
३४ द्रव्य-गुण शास्त्र–आचार्य प्रो० प्रियव्रत शर्मा।
३५. निघण्टु आदर्श
३६. बनौषधि निर्दशिका
३७. संदिग्ध निर्णय वनौषधि शास्त्र —भगीरथ स्वामी।
३८. इण्डियन मेडिसिनल प्लान्ट (कीतिकर एण्ड वसु)
३९. इण्डिजिनस ड्रग्स ऑफ इण्डिया–डा० आर एन. चोपड़ा
४०. ग्लासरि ऑफ इण्डियन मेडिसिनल प्लान्ट्स
डा. आर.एन. चोपडा, एस एन. नागर, आई सी. चोपडा
४१. इण्डियन मेटेरिया मेडिका
४२. डिक्सनरी ऑफ इण्डिजिनस प्लान्ट —डा० वाट
४३. ग्लासरी ऑफ वेरिटेबुल ड्रग्स इन बृहत्त्रयी
—ठाकुर बलवन्तसिंह
४४. फ्लोरा ऑफ ब्रिटिश इण्डिया —डा० जे०डी० हुकर
४५. फ्लोरा इण्डिका एण्ड प्लान्ट्स ऑफ कारोमण्डल कोस्ट
—डा० डब्लू राक्स
४६. मेटेरिया इण्डिका ऑफ हिन्दुस्तान —डा० अन्सारी
४७ फार्माकोपिया इण्डिका —डा० डब्लू डाईमाक
४८. मेटेरिया मेडिका आफ इण्डिया–डा० आर.एन. खोरी
और एन०एन० कटरॉक
४९. मेटेरिया मेडिका —डा० मुद्रेस्सरीक
५०. वेल्थ ऑफ इण्डिया—सेन्ट्रल गवर्नमेंट, दिल्ली

पत्रिकायें–

१. वनौषधि विशेषांक 'धन्वन्तरि' अलीगढ १–६ भाग
२. सचित्र आयुर्वेद पटना
३. आयुर्वेद विकास कलकत्ता
४. जनरल ऑफ रिसर्च इन इण्डियन मेडिसिन
सी०सी०आर०आई०एम०एच०, नई दिल्ली।

तुरन्त असर करने वाले, आधुनिक पद्धति से निर्मित, सर्वथा हानिरहित

आधुनिक आयुर्वेदिक इंजेक्शन

एलोपैथिक डाक्टरों में भी आयुर्वेद की धूम ! वैद्यों में हर्ष की लहर !! ये आधुनिक आयुर्वेदिक-इन्जेक्शन तुरन्त लाभ करते हैं, और सर्वथा हानि रहित है। किसी प्रकार का अवगुण या प्रतिक्रिया नहीं करते, इनको गत २७ वर्षो से लाखों चिकित्सक करोड़ों इन्जेक्शन प्रयोग में ला चुके हैं; इनका निर्माण मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स बड़ौत की अति आधुनिक एयर कंडिशन्ड लेबोरेट्री में सरकारी लाइसेन्स के अन्तर्गत, एम. फार्मा और बी. फार्मा योग्यता प्राप्त कैमिस्टों की देख रेख में होता है। इन आयुर्वेदिक इन्जेक्शनो की यह विशेषता है कि इनमें आयुर्वेद की प्रसिद्ध जड़ी-बूटियों के क्रियाशील सत्वों के साथ अति आधुनिकतम एलोपैथिक दवाओ का संमिश्रण भी किया गया है जिससे ये तत्काल गुणकारी और सर्वथा हानि रहित प्रमाणित हुए है।

ये १७ इंजेक्शन तत्काल गुणकारी और आश्चर्य जनक लाभ करते हैं, इनको मंगा कर देखिये, प्रसिद्धी और प्रतिष्ठा पाइये ॥

१. शूलान्तक—उदर शूल, नाडी शूल, हृदय शूल, वृक्क शूल, गृध्रसी शूल, गुल्म, बिच्छू काटने का शूल आदि तीव्र शूलो मे तत्काल लाभप्रद है, स्तनो से दूध टपकते रहना, सोते हुए शैय्या पर मूत्र त्याग, हिचकी, स्वप्न दोष मे प्रसिद्ध चमत्कारी इन्जेक्शन है। ६ × १ ml बक्स ४ रु. ५० पैसे

२. सोमा— प्रसिद्ध श्वाँस नाशक श्वाँस और दम्मे के तीव्र दौरे को ५ मिनट मे ठीक करके श्वाॅस की गति सुधारने वाला चमत्कारी इन्जेक्शन पेनीसिलीन इन्जेक्शन से होने वाले भयकर रियेक्शन को तत्काल शमन करने मे सोमा अद्वितीय और रामबाण है, ६ × १ ml बक्स ४ रु ५० पैसे, दमा श्वाॅस की प्रसिद्ध सोमा १०० टेवलेट श्वाॅस नाशक सोमा ५.५० रु., २५ कैपसूल ८ रु. ५० पैसे, सोमा सीरप १०० मि. लि. ६.५० रु.

३. हिरण्य— प्रसिद्ध दमा और श्वाँस नाशक है, श्वाॅस के दौरे को तुरन्त ठीक करके श्वाॅस गति सुधारता है। भयकर श्वाॅस दौरे मे सोमा के साथ मिला कर दे सकते है, ६ × १ ml बक्स ४ रु. ५० पैसे।

४. रासोन-संधियो का दर्द और सूजन, गठिया, वायु विकारो में विश्वसनीय, ६ × २ ml बक्स ४ रु. ५० पैसे
५ दुग्धप्रोटिन-गर्भाशय शोथ, रक्त प्रदर, श्वेत प्रदर, फोडे-फुन्सियो में अमोघ ६,५ × २ml बक्स ४ रु. ५० पैसे
६. प्रदरारी-रक्त प्रदर और श्वेत प्रदर में गर्भाशय शोथ मे आशुगुणकारी, ६ × २ ml बक्स ४ रु ५० पैसे
७ निद्रोरिन-मानसिक उत्तेजना मे यथा मनोविभ्रम, उन्माद, प्रलाप, हिस्टीरिया, अनिद्रा में ६ × १ ml ४ ५० रु.
८. पुनर्नोल-हृदय शूल, हृदय धमनी के रुक जाने से हृदय वेदना या हार्ट फेल, हृदय विकारजन्य श्वाँस रोग, तमक श्वाँस मे जलोदर और शोथ नाशक प्रसिद्ध लाभकारी, ६ × २ ml बक्स ४.५० रु.।
९. गिरपार-भयकर तीव्र शूल, उदर शूल, गुल्म। वृक्क शूल, वृश्चिक दंश शूल, स्वप्न दोष, हिक्कानाशक राजयक्ष्मा का रात्री स्वेदवत्सनाभ विष नाशक है। ६ × १ ml बक्स ४ रु. ५० पैसे।
१०. मरुताशी-गठिया वात रोग, संधियो का दर्द और सूजन मे प्रसिद्ध लाभकारी ६ × २ बक्स ४ रु ५० पैसे
११. तापीकर-नजला, कफ नाशक, वात कफ ज्वर, निमोनियाँ प्रसिद्ध हृदयोत्तेजक, ६ × २ बक्स ४ रु. ५० पैसे
१२. लैरीजैक्स-ऐलर्जी से उत्पन्न जुकाम, खांसी में त्वचा की जलन, पित्ती निकलने पर, गुदा या योनी की खारिश और तेज खुजली मे, पेनीसिलीन, ग्लूकोज आदि इन्जेक्शनो की प्रतिक्रिया या एलर्जी होने पर तत्काल लाभकारी है। ६ × १ ml बक्स ४ ५० पैसे।
१३. क्लीबान्तकः-प्रसिद्ध नपुंसकता (नामर्दी) नाशक एवं कामोत्तेजक है, ६ × १ ml बक्स ७ रु ५० पैसे।
१४. हृदयामृत-हृदय और श्वाँस गति उत्तेजक है, गम्भीर और घातक रोगो और दुर्घटनाओं मे हृदय को शक्ति देता है, शरीर के ठंडा पड जाने मे मंद नाडी को सबल बनाता है। ६ × १ ml बक्स ६ रु.
१५. स्मृतिदा-बच्चो के आक्षेप रोग, मिर्गी, स्त्रियो का हिस्टीरिया, दौरे पड़ना, प्रलाप, उन्माद, नींद न आना मे चमत्कारी है। ६ × १ ml बक्स ६ रु.।
१६. पुनर्नवा-मूत्रल, मूत्र बन्द नाशक, जलोदर और शोथ नाशक है। ६ × २ ml बक्स ७ रु ५० पैसे।
१७. एनर्जीप्लैक्स इंजेक्शनः-यकृत और प्लीहा की क्रिया को ठीक करके ज्यादा रक्त माँस और शक्ति बनाता है, क्षुधा बढाता है, शरीर की कमजोरी, उदासी को तत्काल दूर करके शरीर को शक्तिशाली व लाल बनाता है। ५ ml वायल ७ रु. ऐनर्जीप्लैक्स १० टेबलेट की स्ट्रिप १ रु. ५० पैसे।

चमत्कारी आधुनिक पेटेन्ट दवाएः—

कोनोमाइसीन कैपसूल (क्लोरमफेनीकाल यू एस. पी. २५० mg कैपसूल) मियादी बुखार को ७२ घण्टे मे नार्मल लाने वाली विश्व प्रसिद्ध आधुनिक टायफाइड बुखार की दवा, १०० कैप. ४२ रु. १२ कै ५ ५० रु।

कोनोक्लोर कैपसूल (क्लोरमफेनीकाल + टैट्रासाइक्लीन) २५० mg कैपसूल, न्यूमोनियाँ, सन्निपात, आँत्रिक ज्वर की अमोघ आधुनिक दवा है। १० कैपसूल १० रु।

पैरामोल टेबलेटः-तेज ज्वर को ३ घण्टे मे सुरक्षित उतारने वाली हानि रहित दवा पार्श्व शूल, दर्द नाशक दवा १० टेबलेट स्ट्रिप २ रु, ५० पैसे।

डाक खर्च, पैकिंग खर्च, सेल टैक्स अलग देना होगा, अपना पूरा पता, वैद्यकीय रजिस्ट्रेशन न अवश्य लिखिये। वी पी पार्सल द्वारा माल मगाये, जो डाक्टर एजेण्ट पूरे वर्ष मे ५०० रु. की औषधियाँ खरीद लेगे, उन्हे एक जयको अलार्म घडी मुफ्त मिलेगी, १२०० रु. की खरीद पर फिलीटीना डिलैक्स ट्राँजिस्टर मुफ्त उपहार मे दिया जावेगा, १०० रु का आर्डर देकर डाक्टर एजेन्सी लीजिए, फिर सदैव थोक मूल्यो पर माल लीजिये। शरीर के अनेक रङ्गीन चित्रो सहित, रङ्गीन वृहत् सूची-पत्र तथा डाक्टर एजेन्सी नियमावली मुफ्त मगाइये।

पताः—**मार्तन्ड फार्मेस्युटिकल्स, बड़ौत (दिल्ली के पास)**

आवश्यक निवेदन

हमे बडे खेद के साथ कहना पड रहा है कि चिकित्सक बन्धुओ का सहयोग हमे नाम मात्र को ही मिल पा रहा है।

दिसम्बर अक मे विज्ञापन से जनवरी मे हमे केवल ४९ पत्र मिले, इनमे भी आधो ने सक्रिय सहयोग दिया है। अब आप स्वय सोचे। वास्तव मे हमे सहयोग देना आपका कर्तव्य है क्योकि आप जनता जनार्दन के हितैषी हैं। हमारी निष्क्रियता के कारण ही आयुर्वेद की अवनति हुई है। आयुर्वेद का उत्थान करना हमारा धर्म है। परिवार-नियोजन की समस्या को यदि आयुर्वेद हल कर देना है और आपके सहयोग से, तो क्या आपको प्रसन्नता नही होगी।

वैद्य समाज को प्रोत्साहन देने हेतु अब हमने अपनी परिवार-नियोजन की स्त्रियो के लिए मुख से खाने वाली, सर्वथा हानि रहित आयुर्वेदिक औषधि 'हस प्रभा' पर ५०% कमीशन कर दिया है। प्रति दो कोर्स के आर्डर पर ३ कोर्स भेजे जायेगे। १ कोर्स पर वी. पी. खर्चा २.५० और २ कोर्स पर ३) तथा ३ से १२ कोर्स तक ५) लगता है। १ कोर्स मंगाने पर १५)+२.५० कुल १७.५० की वी. पी. भेजी जायेगी और आपके दूसरे १ कोर्स के आर्डर पर २ कोर्स भेजे जायेगे। दो कोर्स के आर्डर पर ३ कोर्स भेजे जायेगे कुल ३०)+५)=३५) की बी. पी जायेगी। अत ज्यादा कोर्स मगाने पर फायदा है।

कृपया इस परीक्षण में अधिक से अधिक बन्धु सहयोग दें यही करबद्ध प्रार्थना है।

कृपया अपना पता साफ लिखें।

भवदीय

आचार्य हरीशकर गौड B.I.M.S आयुर्वेदाचार्य
मैनेजिग डायरेक्टर—हस आयुर्वेदिक सस्थान
२३ सेवाकुज, वृन्दावन उ०प्र०

* रुद्दन्ती कैपसूल *



जो रोगी सैकड़ों इन्जेक्शन लगवाकर भी अपने जीवन से निराश थे उनको केवल मात्र रुद्दन्ती चूर्ण से ही लाभ हुआ है। रुद्दन्ती चूर्ण राजयक्ष्मा पुरानी खांसी, उसके साथ रहने वाला ज्वर, कफ की अधिकता एव फुपफुस विकृति पर अत्युत्तम है। इसी मे स्वर्ण वसन्त मालती, प्रवाल भस्म, सितोपलादि चूर्ण का मिश्रण कर दिया जाता है तो इसके गुणो में अपूर्व वृद्धि हो जाती है। मूल्य—रुद्दन्ती कैपसूल (स्वर्ण वसन्त मालती युक्त) १०० कैपसूल ५०), ५० कैपसूल २५.५०

शूलारि कैपसूल

सर्दी, जुकाम, इन्फ्लुएन्जा, अधकपारी, मलेरिया, ज्वर की बैचेनी, पसली का दर्द, वायु का दर्द, फोडे का दर्द, जोडो का दर्द, दन्तशूल आदि सभी दर्दो को तुरन्त दूर करने वाले अनुपम विशुद्ध आयुर्वेदिक कैपसूल है -

५० कैपसूल १०.००, १०० कैपसूल १९.००

गोनारि कैपसूल

मूत्र मार्ग मे होने वाली जलन, व्रण, पूयमेह (सुजाक), मूत्र त्याग मे होने वाली पीडा, मूत्रकृच्छ्रता दूर कर मूत्र स्वच्छ एव बिना वेदना के आता है।

५० कैपसूल १४.००, १०० कैपसूल २७ ००

विबन्धहारी कैपसूल

मलावरोध, अपचन, ज्वर कालीन विवन्धता मे शीघ्र लाभ होता है। किसी भी प्रकार के कब्ज (विवन्ध) मे रात्रि को १ या २ कैपसूल पानी या दूध से लें।

५० कैपसूल ११ ५०, १०० कैपसूल २२.००

कैल्सी-लौह कैपसूल

मुक्ता भस्म, प्रवाल भस्म, शुक्ति भस्म तथा लोह भस्म आदि से निर्मित आयुर्वेदिक कैपसूल है। किसी भी जीर्ण रोग मे बलवर्धन के लिए उपयोगी है। ज्वर आदि के पश्चात् की दुर्बलता को शीघ्र दूर करते है।

५० कैपसूल ९.५०, १०० कैपसूल १८.००

वातरोगहर कैपसूल

वृ. वात चिन्तामणि आदि कीमती औषधियो के मिश्रण से निर्मित यह कैपसूल किसी भी प्रकार के वायु रोग जैसे गठिया, कमर का दर्द, गृध्रसी, पक्षाघात, अर्दित आदि मे अवश्य लाभ करते है।

५० कैपसूल २५.५०, १०० कैपसूल ५०.००

पाण्डुनौल कैपसूल

रक्ताल्पता या अवरोधज कामला, यकृत वृद्धि, कमजोरी, जीर्ण ज्वर, प्लीहावृद्धि, कब्जियत दूर होती है। शिशुओ के यकृत दोष मे अक्सीर है।

५० कैपसूल १२ ००, १०० कैपसूल २३.००

मंगाने का पता—श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भांजा रोड, अलीगढ़

'धन्वन्तरि'

वनौषधि-विशेषांक

'धन्वन्तरि' के विशाल विशेषांको में सम्पूर्ण वनौषधियो का अकारादि क्रम से विस्तृत तथा वैज्ञानिक वर्णन किया गया है। प्राय सभी वनौषधियो के चित्र भी दिए गये है। वनस्पति के फूल-फल, मूल, तना, छाल, पत्र सभी अङ्गो का पृथक-पृथक वर्णन तथा उपयोग दिया है। प्रत्येक वनौषधि का विभिन्न रोगो के लिए सफल सिद्ध प्रयोगों का भी विशाल सग्रह इन विशेषांको मे दिया है। हम दावे के साथ कह सकते है कि वनौषधियों का इतना विशाल साहित्य हिन्दी की किसी भी अन्य पुस्तक में आपको नही मिल सकेगा। प्रत्येक आयुर्वेद चिकित्सक तथा वनौषधियों के परिचय की कामना रखने वाले व्यक्ति को इन विशेषांको को अवश्य ही मगाकर पढना और रखना चाहिये। इन ६ विशेषांकों में लगभग ३१०० पृष्ठ तथा १२०० वनस्पतियो का वर्णन दिया गया है। इस मंहगाई के युग में इसका जो भी भाग समाप्त हो जायगा उसे पुनः छापना कठिन होगा तथा नवीन संस्कण का मूल्य भी पर्याप्त रखना होगा। इस समय चौथे भाग के अतिरिक्त शेष ५ भाग है। एक सैट तुरन्त मंगा ले।

मूल्य—प्रथम भाग १०.००, द्वितीय भाग १०.००, तृतीय भाग १०.००, चतुर्थ भाग (यह शीघ्र छपने वाला है), पञ्चम भाग १०.००, षष्ठ भाग १०.००। कुल ५ भागो का मूल्य ५०.०० पर २५ प्रतिशत कमीशन कम करके ३७ ५० होता है। धन्वन्तरि के ग्राहको को एक साथ पाच भाग मंगाने पर रियायती नैट मूल्य ३५.०० तथा पोस्ट व्यय ६.०० कुल ४१.०० होगा।

वनौषधि विशेषांक का सातवां भाग

"प्राणिज-खनिज द्रव्यांक"

छः भागो मे सम्पूर्ण वनस्पतियो का अकारादि क्रम से विस्तृत साहित्य प्रकाशित करने के बाद प्राणिज खनिज द्रव्यो का विस्तृत विवेचन इस सातवे भाग मे किया गया है जिससे कि द्रव्य गुण विषय पूर्ण हो सके। यह विशेषांक भी अपने विषय का हिन्दी में सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ बन गया है। ४६६ पृष्ठ का इस विशेषांक का मूल्य १०.०० है। उक्त ५ विशेषांको के साथ इसे भी मगावेगें तब कुल ४८.०० की वी० पी० से भेजेंगे।

—मंगाने का पता—

श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भांजा रोड, अलीगढ़—२२

धन्वन्तरि के उपयोगी विशेषाँक

'धन्वन्तरि' ४६ वर्षो से प्रकाशित आयुर्वेद का सर्वोत्तम मासिक पत्र है। इसी ने विशेषाँक परम्परा को चालू किया। अभी तक सेकडो ही विशेषाँक प्रकाशित किये है। अब केवल निम्न विशेषाँक हैं। ये भी शीघ्र समाप्त होने वाले हैं। चिकित्सक इन उपयोगी विशेषाँको को अवश्य मगावें। मूल्यो पर धन्वन्तरि के ग्राहको को २५ प्रतिशत कमीशन दिया जाता है। खर्चा ग्राहको को देना पडता है।

सफल सिद्ध प्रयोगांक

इस विशेषाँक में भारत के चोटी के ३०० से अधिक विद्वानो एवं अनुभवी चिकित्सको के लगभग १२५० सुपरीक्षित सफल प्रयोगो का विशाल अत्युपयोगी सग्रह किया गया है। वृद्ध वैद्यो के प्रयोगो को बडे ही आग्रह एव युक्ति से प्राप्त किया गया है। जहाँ-तहाँ पुराने विशेषाँको के चुनिन्दा प्रयोग भी दिये गये हैं। इसका एक-एक प्रयोग एक-एक रत्न से भी बढकर है। गृहस्थ अपने परिवार की समय-समय पर चिकित्सा इस विशेषाक मे प्रकाशित प्रयोगो के आधार पर स्वयं कर सकते हैं। विशेषाक हर दृष्टि से अत्युपयोगी एव अद्वितीय है तथा इसके शीघ्र ही समाप्त हो जाने की आशा है। यदि आपके पास न हो तो अवश्य ही एव शीघ्र मगालें। मूल्य १२)

यूनानी चिकित्साङ्क

इसका सम्पादन यूनानी तथा आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री दलजीत सिंह आयुर्वेद वृहस्पति ने किया है। इस विशेषाँक के पूर्वार्द्ध मे विभिन्न यूनानी चिकित्सको द्वारा प्रतिपादित शरीर के मूलभूत तत्व, महाभूत, प्रकृति, अखलात और शरीर के सगठनकारी घटक आदि का वर्णन तथा साथ-साथ आयुर्वेदिक सिद्धान्तो की तुलना है। इसके उत्तरार्ध मे यथाक्रम यूनानी मतानुसार रोगो के नाम सहित हेतु लक्षण, सम्प्राप्ति, चिकित्सा एव पथ्यापथ्य का विवेचन दिया है। यूनानी चिकित्सा पद्धति के विषय मे पूरी जानकारी आप इस विशेषाँक मे पायेंगे। अत्यन्त उपयोगी अलभ्य साहित्य है, मू०–८.५०।

चिकित्सा विशेषाङ्क (प्रथम भाग)

इसका सम्पादन आयुर्वेदिक यूनानी तिब्बिया कालेज देहली के विद्वान प्रोफेसर श्री कविराज बी एस. प्रमी एम. ए एम एस. ने किया है। इस प्रथम खण्ड मे पाचन संस्थानगत सम्पूर्ण विशेष व्याधियो का विस्तृत, सचित्र क्रमबद्ध साहित्य, अनुभवपूर्ण चिकित्सा विधि, सफल प्रयोगो का अत्युपयोगी सग्रह है। आयुर्वेदिक, यूनानी, एलोपैथिक तथा होम्यियोपैथिक चिकित्सा पद्धति से विस्तृत विवेचन एव चिकित्सा दी गई है। मू० १०.००।

चिकित्सा विशेषाङ्क (द्वितीय भाग)

इसका भी सम्पादन श्री बी. एस. प्रेमी ने किया है। इसमे स्वर यन्त्र के रोग, हृदय के रोग, कुष्ठादि चर्म रोग विकार तथा रक्तसस्थान के रोगो का वर्णन किया गया है। श्री कृष्ण प्रसाद त्रिवेदी आयु सूरि' द्वारा लिखित 'चिकित्सा रहस्य' नामक अप्रकाशित गन्थ से कुछ रोगो तथा उनकी चिकित्सा को उद्धृत किया गया है जो अति उपयोगी है। मूल्य १०.००।

धन्वन्तरि के लघु विशेषांक

"धन्वन्तरि" ने जिस प्रकार विशाल विशेषाक प्रकाशित करने की परम्परा चालू की तथा उसका आयुर्वेद जगत मे अद्यावधि कोई सानी नही है उसी प्रकार से "धन्वन्तरि" ने लघु विशेषाँको की परम्परा प्रारम्भ की है। इसमे "धन्वन्तरि" के एक साधारण अङ्क मे किसी एक ही उपयोगी विषय पर लेख दिये जाते हैं। अनेक लघु विशेषांक प्रकाशित हो चुके है जिनमे थोडे ही शेष है—

विधि विधानांक—मूल्य २.००
कास रोगाक—मूल्य १.५०
पक्षाघात अङ्क–(दो खड) मूल्य प्रत्येक खण्ड का २ रु०।
पंचकर्म कल्पनांक—मूल्य १.५०
सैक्स रोगाक—मूल्य २ रु०
वात रक्त रोगांक—मूल्य २ ००
आयुर्वेद सूची भरणाक—मू० २ ००
आसब निर्माणाक—मूल्य २ ००
यत्र तत्र मत्राक—(दो खड) प्रत्येक खड का मूल्य २ ००
आयुर्वेद शिक्षणांक—मूल्य २ ००
कैंसर रोगाक—मूल्य १ ५०।
आमदोष विज्ञानाक—मूल्य २.००
कैप्सूल अङ्क—मूल्य २.००
एलो पेटेण्ट चिकित्साक—मू० २.०

श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भांजा रोड, अलीगढ़।

शुभ-कामनाएँ एवं सन्देश

जगद्गुरु का आशीर्वाद



स्वस्ति श्री द्विवेदी जी,

पूज्यपाद जगद्गुरु जी का नारायण स्मरण।

"धन्वन्तरि" का 'सदिग्ध बनौषधि विशेषाक' निकल रहा है यह जानकर प्रसन्नता हुई। हमारे शास्त्रो मे मनुष्य शरीर का महत्व स्थान-स्थान पर प्रतिपादित हुआ है क्योकि मानव शरीर से ही स्वर्ग, अपवर्ग, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की उपलब्धि सभव है। महत्वपूर्ण लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दीर्घ जीवन आवश्यक है। दीर्घ जीवन मनुष्य के आरोग्य पर निर्भर है। मिथ्या आहार विहार और देश काल की विषमता से आरोग्यता मे बाधा पडती है। शरीर अनेको रोगो से आक्रात होकर भारभूत हो जाता है। भारतीय ऋषियो ने अपने योगबल से ऋत भाव प्रज्ञा के द्वारा शरीर के विभिन्न रोगो और उनके निवारण मे सक्षम विभिन्न औषधियो के गुणो का पता लगाकर चिकित्सा का प्रवर्तन किया जो भारत की एक महत्वपूर्ण विद्या है। इसी को आयुर्वेद के नाम से जाना जाता है। आयुर्वेद के ग्रन्थो में अनेको दिव्य औषधियो का वर्णन है जिनको भारतीय वैद्य परम्परा से जानते थे। कालक्रम से बहुत सी औषधियो का ज्ञान ही लुप्त हो गया है जो भारतीय चिकित्सा के क्षेत्र मे अमूल्य निधि थी। संतोष का विषय है कि इनकी खोज की दिशा मे व्यापक प्रयत्न किया जा रहा है। कुशल चिकित्सक एव बनौषधि के विशेषज्ञ श्री आचार्य विश्वनाथ जी द्विवेदी के सम्पादकत्व मे 'धन्वन्तरि' का "सदिग्ध बनौषधि अङ्क" प्रकाशित हो रहा है। इस प्रयास के लिए पूज्य जगदगुरु जी महाराज अपना शुभाशीर्वाद प्रेषित कर रहे है।

—पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आदेश से

भवदीय

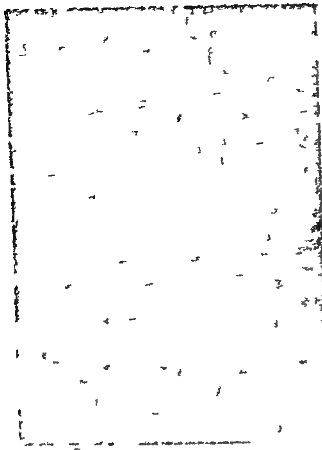
सचिव—सुबुद्धानन्द सरस्वती

अनन्त श्री विभूषित श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर

श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज, ज्योतिमठ (वद्रिकाश्रम) हिमालय

सचार यात्रा स्थान,
रांची (बिहार)
ता० ५-१२-७४

उपराष्ट्रपति महोदय की शुभ कामनायें





उप राष्ट्रपति भारत
नई दिल्ली
VICE PRESIDENT
INDIA
NEW DELHI

अक्टूबर ६,१९७४

प्रिय महोदय,

आपका पत्र दिनांक १८ सितम्बर,१९७४ का प्राप्त हुआ, धन्यवाद।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप 'धन्वन्तरि' पत्रिका का आगामी अंक 'संदिग्ध-वनौषधि विशेषांक' के रूप में प्रकाशित करने जा रहे हैं। मैं आपके इस विशेषांक की सफलता के लिये अपनी हार्दिक शुभ कामनायें भेजता हूं।

आपका,

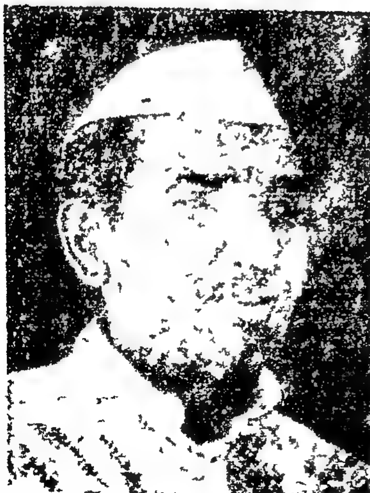
(ब० दा० जत्ती)



U/56 35/CM

विधान भवन,
लखनऊ।

3 अक्टूबर, 1974।



प्रिय श्री गर्ग,

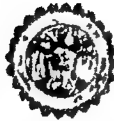
आपका 18 सितम्बर, 1974 का पत्र सधन्यवाद प्राप्त हुआ।

"संदिग्ध वनौषधि विशेषांक" के सफल सम्पादन के लिये मेरी हार्दिक शुभकामनायें हैं। मुझे आशा है कि आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति आपके सतत् प्रयत्न से उत्तरोत्तर जनप्रियता को प्राप्त कर मानव कल्याण हेतु अविरल सेवा करती रहेगी।

सद्भावनाओं सहित,

आपका,

(हेमवती नन्दन बहुगुणा)



क्रमांक मुख्य

भोपाल

मुख्य मंत्री दिनांक अक्टूबर 1974

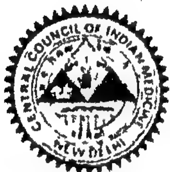
आयुर्वेद विश्व की प्राचीनतम और प्रतिष्ठित चिकित्सा पद्धति रही है जिस पर भारत को गर्व है। यह विडम्बना ही है कि यह प्रतिष्ठित चिकित्सा पद्धति विदेशी गुलामी के दिनों में अपने ही देश में उपेक्षित होती गई।

विज्ञान की प्रगति के साथ चिकित्सा विज्ञान में भी महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हुई हैं। आयुर्वेद की पुनः प्रतिष्ठा के लिए यह आवश्यक है कि उसमें शोध और अन्वेषण की परम्परा को आगे बढ़ाया जाये तथा चिकित्सा के विभिन्न क्षेत्रों में हुई उपलब्धियों को आत्मसात् किया जाये। आयुर्वेद पद्धति निश्चय ही भारतीय स्थितियों में सर्वथा अनुकूल, व्यवहारिक और कम व्ययशील है। अतः इस दृष्टि से भी इस दिशा में किये जाने वाले प्रयास सराहनीय होंगे।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि "धन्वन्तरि" का वनौषधि विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है। मैं आशा करता हूँ कि आयुर्वेद विज्ञान की अभिवृद्धि एवं उसके प्रसार में आपका यह प्रयास सहायक होगा। मैं आपके प्रयास की सफलता की कामना करता हूँ।

प्रकाशचन्द्र सेठी

(प्रकाशचन्द्र सेठी)



दूरभाष (कार्या) 364377 / 254605

भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्

(भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् अधिनियम 1970 के अन्तर्गत स्थापित)

1 ई/6, [illegible], नई दिल्ली 110055

पं० शिव शर्मा
अध्यक्ष

क्रमांक

[illegible]

दिनांक 25th Sep 1974.

I am glad to learn that the veteran Ayurvedic Magazine, Dhanwantari, is bringing out a special issue on Ayurvedic plants of doubtful identity namely 'Sandigdha Vanaushadhi Visheshanka'

I am sure this special issue will be as useful for the Ayurvedic profession as the previous special issues of this monthly. I wish the publication every success.

Shiv Sharma



भुवनेश्वरी पीठाधीश जगद्गुरु का आशीर्वाद

श्रीयुत गर्ग जी,

आप 'धन्वन्तरि' का विशेष अङ्क "सदिग्ध वनौषधि अङ्क" निकाल रहे हैं। धन्यवाद! इस प्रकार आप आयुर्वेद की बहुधा सेवा कर रहे हैं जो विविध प्रकार की होती है। पुनः धन्यवाद। श्री वेदोक्त आशीर्वाद।

शुभ चिन्तक

—अखण्ड भूमण्डलाचार्य अनन्त श्री विभूति श्री भुवनेश्वरी पीठाधीश जगद्गुरु श्री चरणतीर्थ जी महाराज, गोंडल (सौराष्ट्र)

प्रिय श्री दाऊ दयाल जी,

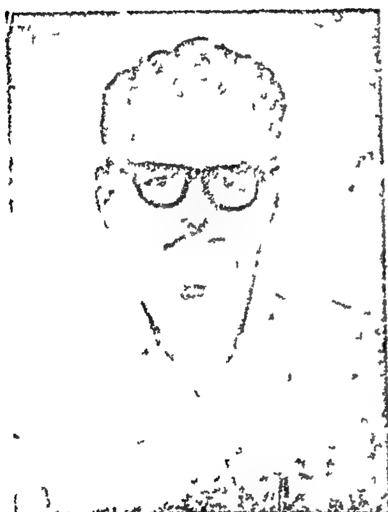
आपका पत्र १८-९-७४ को प्राप्त हुआ। धन्यवाद ! आपका 'धन्वन्तरि' 'संदिग्ध वनौषधि विशेषांक' द्रव्य गुण विज्ञान के मूर्धन्य विद्वान श्री विश्वनाथ द्विवेदी के तत्वावधान मे प्रकाशित होने जा रहा है। यह जानकर प्रसन्नता हुई। मैं आपके इस विशेषांक की सफलता की कामना करता हूं। मेरा विश्वास है कि आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी के तत्वावधान मे निकलने वाले इस विशेषांक की सफलता स्वयं अनुगामिनि बनेगी। आपका

—चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी

अध्यक्ष, भारतीय चिकित्सा परिषद्, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

× × × ×

पत्र संख्या डी० जी०/७४-७५/६३३



प्रिय गर्ग जी,

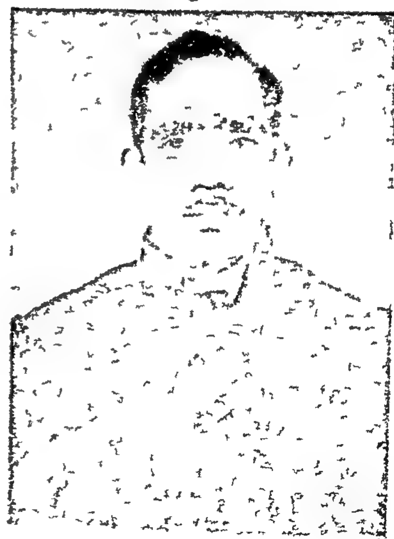
यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आगामी विशेषांक संदिग्ध वनौषधियो के सम्बन्ध मे प० विश्वनाथ द्विवेदी के सम्पादकत्व मे प्रकाशित हो रहा है। शुद्ध औषधियो की प्राप्ति न होना आयुर्वेद की प्रगति मे बहुत बड़ी बाधा है। इसके लिए विभिन्न औषधियो के सम्बन्ध मे सन्देह का निराकरण और उनमे मिलावट, शुद्धता आदि का परीक्षण आवश्यक है। आशा है यह विशेषांक इस उद्देश्य की पूर्ति मे सहायक होगा। इसकी सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामना स्वीकार करें। भवदीय

—प्रियव्रत शर्मा ए० एम० एस०, एम० ए० द्वितीय साहित्याचार्य

अध्यक्ष-द्रव्य गुण विभाग एवं निदेशक, स्नातकोत्तर आयुर्वेदीय संस्थान,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-५

× × × ×



श्रीयुत् गर्ग जी,

संदिग्ध वनौषधि विशेषांक के रूप मे धन्वन्तरि' का यह अंक अपनी मौलिक विशेषताओं के कारण आयुर्वेदीय साहित्य भण्डार का एक अमूल्य रत्न होगा। इसमे कोई सन्देह नही है।

'धन्वन्तरि' के विशेषांक के लिए आपने सदैव ऐसे विषय का चयन किया है, जो न केवल वैद्य समाज के लिए उपयोगी होता है, अपितु आयुर्वेद के छात्र, शिक्षक, विद्वान एवं चिकित्सक भी उससे लाभान्वित होते हैं। आयुर्वेद मे संदिग्ध वनौषधि द्रव्य प्रारम्भ से ही एक बड़ी समस्या रही है। ऐसे द्रव्यो के विषय मे अनेक मतभेद भी समय-समय पर प्रकट हुए हैं, जिनसे कई द्रव्यो के विषय मे कोई निर्णय नही किया जा सका। प्रस्तुत विशेषांक ऐसे द्रव्यो का प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत कर विभिन्न भ्रान्तियो का निराकरण कर सकेगा ऐसा पूर्ण विश्वास है। श्री द्विवेदी जी आयुर्वेद जगत के मूर्धन्य मनीषि एवं अपने विषय के अधिकारी विद्वान है। उनके सम्पादकत्व में विशेषांक की सफलता असंदिग्ध है।

भवदीय

—आचार्य राजकुमार जैन

एम ए (हिन्दी-संस्कृत) एच. पी. ए, दर्शनायुर्वेदाचार्य, साहित्यायुर्वेद शास्त्री, साहित्यायुर्वेदरत्न, टेक्नीकल आफीसर (आयुर्वेद) भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद, 1-ई/6 झण्डेवालां प्रसार, नई दिल्ली-110055

प्रिय महोदय,



आपका दिनाक १८-९-७४ का पत्र प्राप्त हुआ। एतदर्थ धन्यवाद। इस वर्ष 'धन्वन्तरि' के सम्पादक मण्डल ने द्रव्य गुण शास्त्र के मूर्धन्य विद्वान आचार्य श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी के निर्देश मे 'सदिग्ध वनौषधि विशेषांक' प्रकाशित करने का जो निश्चय किया है वह अत्यन्त सराहनीय प्रयास है। आज के युग मे जबकि अधिकाश वनौषधिया सदिग्ध हो गई हैं या बना दी गई हैं उस समय इस प्रकार के विशेषाक का बहुत महत्व हो जाता है। आशा है धन्वन्तरि का यह विशेषाक वनौषधियो की सदिग्धता निवारण करने की दिशा मे महत्वपूर्ण योगदान करेगा। मै अपनी हार्दिक शुभकामना के साथ इसकी सर्वाङ्गीण सफलता चाहता हू।

भवदीय

—दामोदर जोशी, प्राध्यापक, द्रव्यगुण विभाग, चि. वि. स.
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

× × × ×

आदरणीय श्री गर्ग जी,



यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई कि 'धन्वन्तरि' अपना "सदिग्ध वनौषधि विशेषांक" प्रकाशित कर रहा है। 'धन्वन्तरि" आयुर्वेद-जगत् की दीर्घकाल से सेवा करते हुए अपने ज्ञानवर्धक साहित्य से तथा विशेषत विशेषाङ्कों के द्वारा आयुर्वेद- विज्ञान का भडार समृद्ध करता रहा है। आचार्य श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी आयुर्वेद-ससार के उद्भट विद्वान हैं। उनके तत्वावधान मे यह विशेषाङ्क निश्चय ही एक स्थायी महत्व प्राप्त करेगा तथा वैद्य मात्र के लिए सग्रहणीय होगा।

मै आपके इस शुभ आयोजन की सहायता के लिए मगल कामना करता हूँ।

शुभाभिलाषी

—रामनारायण शास्त्री आयुर्वेदाचार्य
आयुर्वेद-चक्रवर्ती, आयुर्वेद-विज्ञान शिरोमणि,
रस निकेतन, ३०९ जवाहर मार्ग, इन्दौर ७

यह जानकर हर्ष हुआ कि श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन की 'धन्वन्तरि' पत्रिका का इस वर्ष "सदिग्ध वनौषधि" नामक विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है। औषधि-निर्माण मे प्रयुक्त होने वाले द्रव्य प्रमाणिक हो-इस उद्देश्य की सिद्धि हेतु आपका यह प्रकाशन आयुर्वेद चिकित्सा क्षेत्र में सफल हो यही मेरी शुभ कामना है। आयुर्वेद की मासिक पत्रिकाओ के क्षेत्र मे 'धन्वन्तरि' को प्राचीनता एव साहित्य सकलन के दृष्टिकोण से अपना जो विशिष्ट स्थान बना लिया है, उसकी वृद्धि मे यह विशेषपाक, आयुर्वेदज्ञो के लिये एक और योगदान होगा।

आपका

—वैद्य सीताराम मिश्र आयुर्वेदाचार्य

आयुर्वेद बृहस्पति, आयुर्वेद शिरोमणी (श्रीलका), अध्यक्ष, राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन, उपाध्यक्ष अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, विद्यापीठमत्री, निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ (१९५७-६८), सदस्य, केन्द्रीय आयुर्वेद शिक्षा बोर्ड, भारत सरकार, सदस्य, आयुर्वेद परामर्शदातृ मण्डल, राजस्थान सरकार, मिश्रा भवन, फतेहपुर (सीकर)।

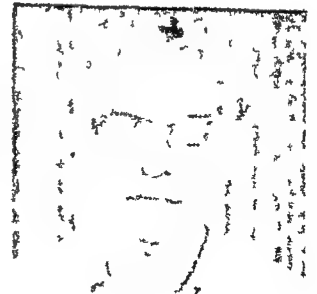
× × × ×

प्रिय भाई दाऊदयाल जी।

आपका १८-९-७४ का पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'धन्वन्तरि' का आगामी विशेपाक सदिग्ध वनौषधि अक होगा एव इसके प्रधान सम्पादक द्रव्य गुण शास्त्र के मूर्धन्य विद्वान आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी होगे।

आज के युग में जब प्रत्येक वस्तु मे मिलावट हो रही है और असदिग्ध द्रव्य भी सदिग्ध हो गये हैं। ऐसे विशेपाक का प्रकाशन समय की माग है।

मुझे आशा ही नही अपितु पूर्ण विश्वास है कि यह विशेपाक सदिग्ध वनौषधियो के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा जिससे उनके सम्बन्ध मे विद्वानो में मतैक्य सम्भव हो सकेगा एव भारत भर में वनौषधियो के सम्बन्ध मे एकरूपता लाई जा सकेगी। मै आपके विशेपाक की हृदय से सफलता चाहता हू।



आपका

—पुरुषोत्तम देव मुलतानी

डिप्टी डाइरेक्टर (आयुर्वेद), आध्र प्रदेश



मुझको यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता है कि इस वर्ष "संदिग्ध वनौषधि अंक" द्रव्य गुण शास्त्र के विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है जो आयुर्वेद जगत के लिए विशेष सहायक होगा । मैं इसकी सफलता की कामना करता हू ।

—आयुर्वेदाचार्य कृष्णदत्त जोशी
डी० आई० एम० एस०,
९, साहूकारा, पीलीभीत
प्रोफेसर-ललितहरि आयु० कालेज, पीलीभीत ।

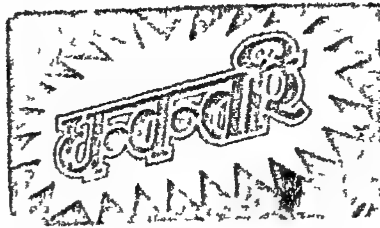
× × × ×

प्रिय महोदय,

आपका पत्र दिनाक २८-९-७४ प्राप्त हुआ । धन्यवाद । यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप धन्वन्तरि का विशेषांक "संदिग्ध वनौषधि विशेषांक" के नाम से प्रकाशित करने जा रहे है। मेरी हार्दिक शुभकामना स्वीकार करें ।

भवदीय
—कैलाशनारायण शर्मा
रजिस्ट्रार मध्यप्रदेश आयुर्वेदिक तथा यूनानी चिकित्सा पद्धति एवं प्राकृतिक चिकित्सा बोर्ड, भोपाल





के

ग्राहक बनने के नियम

- 'धन्वन्तरि' का वार्षिक मूल्य पोस्टव्यय सहित १४) अग्रिम है। अस्तु १४) मनियार्डर से भेज कर ग्राहक बन जावे।
- 'धन्वन्तरि' के ग्राहकों को हर वर्ष एक विशाल विशेषाङ्क उसी मूल्य में भेंट किया जाता है। वर्ष १९७५ का विशाल विशेषाङ्क **'संदिग्ध वनौषधि अंक'** आपके हाथ में है यह फरवरी, मार्च २ माह का अङ्क होता है। केवल इस विशेषाङ्क का मूल्य ही १५.०० है। ग्राहक से इसका मूल्य अलग से नहीं लिया जाता। १४.०० भेजकर ग्राहक बन जाने पर यह विशेषाङ्क भी वर्ष के अन्य अङ्कों के साथ मिल जाता है।
- विशाल विशेषाङ्क के अतिरिक्त २ लघु विशेषांक भी इस वर्ष ग्राहकों को भेंट किये जायेंगे। ये लघु विशेषांक अत्युपयोगी, पठनीय एवं संग्रहणीय होंगे। ये दोनों लघु विशेषांक भी इसी मूल्य में ही ग्राहक को मिल जायेंगे अतिरिक्त मूल्य नहीं देना होगा।
- वर्ष जनवरी से प्रारम्भ होकर दिसम्बर में समाप्त होता है तथा पूरे वर्ष के लिए ही ग्राहक बनाये जाते हैं।
- ग्राहक किसी भी समय बनाये जा सकते हैं लेकिन ग्राहक को वर्ष के प्रारम्भ यानी जनवरी से उस समय तक के प्रकाशित अङ्क विशेषांक भेज कर जनवरी से दिसम्बर तक के लिए ग्राहक बना लेते हैं।
- वार्षिक मूल्य मनियार्डर से भेजना सुविधाजनक होता है किन्तु यदि आप चाहें तो वी० पी० से भी अंक विशेषांक मंगा सकते हैं।

❀ आजीवन-ग्राहक ❀

एक बार में १२५) मनीयार्डर से भेज कर जमा करा दें। जब तक यह रुपया जमा रहेगा आपको "धन्वन्तरि" निःशुल्क भेजा जायेगा। जब भी आप चाहें १२५) वापस मंगा सकते हैं। रुपया वापस मंगा लेने पर धन्वन्तरि भेजना बन्द कर दिया जायेगा। रुपया सुरक्षित रहेगा और धन्वन्तरि निःशुल्क मिलेगा। हर वर्ष वी पी छुटाने का झंझट नहीं।

श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भांजा रोड, अलीगढ़-२२



सन्दिग्ध वनौषधि अङ्क

की

विषयानुक्रमणिका

शेष लेख संदिग्ध वनौषधि परिशिष्टाङ्क (अप्रैल १९७५ के अङ्क) में देखें ।



औषधी प्रतिमोहध्व पुप्पवती प्रसूवरीः ।
अश्वाइव सजित्वरी वीरुध पारयिष्णव ॥ — अथर्ववेद १०/९७-३

भाग ४९
अङ्क २-३ } ❋ संदिग्ध वनौषधि अंक ❋ { फरवरी-मार्च
१९७५

—: संदिग्ध वनौषधि अङ्क प्रशस्ति :—

शतपथ ब्राह्मण वेदो मे भी तुझसे साहित्य भंडार भरा ।
शोभान्वित पूरित दृष्टि सदा हर हरित वनस्पति दिव्यधरा ॥
रवि रश्मि रजत सम छवि सुन्दर भूमी पर आभा चमकाई ।
आरोग्य प्रदात्री औषधि तू जग जीवन सुख देती आई ॥१॥
ऋषि मुनिवर खोज अनोखी है अनुभव सच्चा दर्शाया है ।
जग जीवन जन जन देने को परहित का भार उठाया है ॥
परिपूर्ण गुणवती औषधि रस फल फूल धरणि शोभा छाई ।
आरोग्य प्रदात्री औषधि तू जग जीवन सुख देती आई ॥२॥
मातेश्वरि तेरे "धन्वन्तरि" क्रमबद्ध सुअङ्क प्रशस्त हुए ।
होम्यो ऐलो यूनानी के मौलिक विचार सब अस्त हुए ॥
प्रति रोग शमन औषधि भूतल, अतिदीनधनी को निधि पाई ।
आरोग्य प्रदात्री औषधि तू जग जीवन सुख देती आई ॥३॥
नाना प्रकार के ग्रन्थो से गत अङ्क सभी सम्पन्न हुए ।
श्री कृष्ण त्रिवेदी उदयलाल कृति पाठक सप्रसन्न हुए ॥
सदिग्ध अङ्क चित्रों समेत श्री विश्व जी भाषा समझाई ।
आरोग्य प्रदात्री औषधि तू जग जीवन सुख देती आई ॥४॥

—वैद्यरत्न कवि० प० श्री शंकरलाल गौड़
"शंभु कवि" साहित्य व्याकरण शास्त्री
तपस्थली दूरा, आगरा

✱ औषधि-प्रार्थना ✱

ओऽम् सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु ।
दुर्मित्रियास्तस्मैसन्तुयोऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ।।
—यजु० अ० ६ मंत्र २२ ।।

हे परमात्मन् ! आपकी कृपा से प्राणवर्धक जल और औषधियां आदि सब पदार्थ हम लोगों के लि सुखकारक हों तथा जो कुपथ्य करने वाले तथा पापी हमारे द्वेषी है ओर जिन दुष्टो से हम द्वेष करते है उनके लिये विरोधी हों ।

शिवास्ते सन्त्वोषधयः उत त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमधि ।
तत्र खादित्यौ रक्षतां सूर्या चन्द्रम् साविच ।।
—अथर्ववेद काण्ड ८ सूत्र २ ।।

यह औषधियाँ तुम्हारे लिये कल्याणमय हो, यह पृथिवी अन्तरिक्ष सूर्य चन्द्र–जल और वायु भी तुम्हारे रक्षक हो ताकि तुम दीर्घायु प्राप्त करो ।

या रोहन्त्याङ्गिसीः पर्वतेषु समेषु च ।
तानः पयस्वतीः शिवा ओषधीः सन्तु शं हृदे ।।
—अथर्ववेद काण्ड ८ सूत्र ७।१७

पार्वत प्रदेश और सामान्य भूमि मे उत्पन्न होने वाली यह औषधियाँ जो अङ्गो की रक्षा के लिये उत्पन्न होती है, वह रस वाली प्रत्येक औषधियाँ हमारे लिये कल्याणकारी हो ।

सर्वा समग्रा ओषधि बोधन्तु वचसो मम ।
यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ।। —अथर्ववेद ८।७।१९

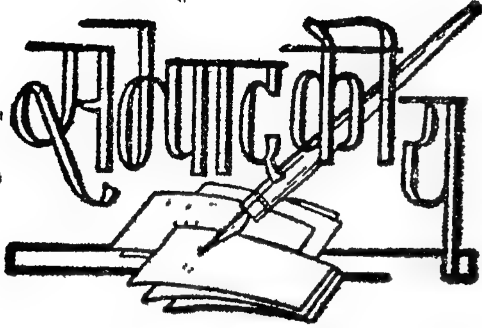
यह समस्त औषधियाँ मेरे वचन से इस रोगी पुरुष को व्याधि से दूर करें ।

ओषधिरितिमातरः तद् वो देवि ! रूप ब्रुवे ।
सनेयमश्व गां वास आत्मानं तव पुरुष ।। —ऋग्वेद १०।९७।४

ओषधियाँ हमारी माता है, यह दिव्य गुणो से युक्त है, इन औषधियो की प्राप्ति के लिये पुरुष अपने अश्व-गौ वस्त्र स्थान और आतमा तक को भी देकर प्राप्त करें ।

औषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवती प्रसूवरीः ।
अश्वा इव सजित्वरी वीरुधः पारयिष्णव ।। —ऋग्वेद १०।९७।३

औषधियाँ जो पुष्प और फल वाली है, जिनमे रोगो को दूर करने की शक्ती-अजेय है, वह औषधियां रोगियो के रोग को दूर करती हुई आनन्दप्रद हो ।



संदिग्धता का इतिहास

प्रागैतिहासिक युग—

यह वह समय है जब कि ज्ञान की आधार शिला रखी जा रही थी और अज्ञान के तमसाच्छन्न क्षेत्र से प्रकाश की तरफ मानव बढने लगा था। वेदो की उत्पत्ति से भी पूर्व औषधि-ज्ञान का विवरण प्राप्त होता है। वेदो मे इस पर विचार है। यथा—

या औषधी पूर्वाजाता देवेभ्यस्त्रियुग पुरा। मनैनु बभ्रूणामह शतधामानि सप्त च॥ —ऋ. वे. १०-६७-१

अर्थात्—वैदिक कालीन औषधि श्रेणी विभाजन से पूर्व अर्थात् दिव्यज्ञान से औषधि ज्ञान होने के तीन युग पूर्व औषधियो की उत्पत्ति हुई थी और ऐसी औषधिया थी जिनके १०७ स्थान है। इस प्रकार इनके स्थान का व उनके हजार भेदो का ज्ञान प्राप्त हो चुका था।

भगवान दिवोदास धन्वन्तरि ने भी मनुष्य की उत्पत्ति से पूर्व बनौषधियो की उत्पत्ति का विवरण दिया है। जिसका विवरण सुश्रुत सहिता मे इस प्रकार का पाते हैं कि प्रजा उत्पादन से पूर्व ही औषधियो की उत्पत्ति हो गई थी। सुश्रुत• सहिता सूत्र स्थान के प्रारम्भ मे ही यह उद्धरण है कि प्रजा के उत्पादन से पूर्व स्वय धन्वन्तरि ने सहिता का निर्माण किया जिसमे औषधियो का विवरण मिलता है।

अभिप्राय यह है कि पहले औषधियाँ उत्पन्न हुई और उसके पश्चात् प्राणी-जगत की सृष्टि हुई। आधुनिक लोग इसे पाषाण युग (Stone age) कहते है। जब मानव भी न था, एक निरीह प्राणी था। धीरे-धीरे और औषधिया बनी, फिर प्राणी चैतन्य हुआ और बुद्धिपूर्वक कार्य करने लगा।

इस काल मे प्राणी भटकता रहा और उसकी इच्छा हुई कि इसे जाने। इस निमित्त-नदी, नाले, पर्वत व भूमि मे सर्वत्र घूमा। धीरे-धीरे ज्ञान बढता गया और वह इस काल मे ज्ञान सग्रह करके पेड-पौधे पहचानने लगा। उनके गुणावगुण का अध्ययन किया- उनके गुण, रस, वीर्य, विपाक का ज्ञान प्राप्त कर इन्हे ससार के लिए दिया। और वही वैदिक साहित्य है, जिससे सब ज्ञान शृखलाबद्ध मिलते हैं।

ऐतिहासिक युग—

इस युग से उस काल का बोध होता है जब कि ज्ञान समृद्ध होकर श्रेणीबद्ध व कई शाखा-उपशाखाओ मे निबद्ध हो चुका था। कठिन शब्द ज्ञानार्थ निरुक्त बने। वैदिक साहित्य सृजन हुआ। वैदिक युग मे इस समय मे

• सु. सू. अ. १

सैकडो औषधियो का ज्ञान हो चुका था। निघटु के नाम से, लोग ने नाम से पद्य मनन हुए। उनके पर्याय श्रम बनाये गये।

वेद कालीन औषधि —

यद्यपि वेदो मे सहस्रो औषधिया का उल्लेख है परन्तु वर्तमान साहित्य मे ३०० औषधियो के मन्त्र उपलब्ध है। वैदिक काल मे सैकडो औषधियो का विवरण मिलता है यथा—

शत या भेषजानि तेसहस्र सगतानि च। श्रेष्ठ मास्राव भेषज वशिष्ठ रोग नाशनम् ॥ अथर्व–६-४४-३

आस्राव रोग (प्रदर व सोम रोग) का वर्णन करते हुए सैकडो औषधिया और सगत (मिश्रित योग) सहस्रो भैषज्यो को जो श्रेष्ठ आस्राव रोगनाशक माना है वर्णन पाते है। यही नहीं वरन औषधियो को माता की तरह माना है।

औषधिरिति मातरस्तद्वो देवीरुपब्रुवे। सनेयमश्व गा वास ॥ — ऋ० १०-९७-४

अर्थात् मातृस्वरूप औषधिया जो दिव्यगुण वाली होने से देवी की तरह है उनसे प्रार्थना करता हू कि जीवन की तरह इनसे स्वस्थ गो अश्व व स्वस्थ आवास प्राप्त हो।

इस प्रकार वर्तमान उपलब्ध साहित्य मे ३०० तक औषधि प्राप्त करते है। इस निमित्त वेदो मे 'द्रव्यगुण-शास्त्र' नामक ग्रन्थ देखिये। यह गुजरात विश्वविद्यालय से प्रकाशित है जिसके लेखक श्री दिनेशचन्द्र शर्मा है जिन्होने हमारे निर्देशन मे ग्रन्थ लिखा है।

वैदिक काल की औषधियो पर इससे पूरा प्रकाश पडता है।

प्रागैतिहासिक युग की अनस्थिरता— वैदिक युग मे समाप्त हो गई है और वनस्पतियो के विवरण इसमे स्पष्ट मिलते है और पत्र, पुष्प, फल सब का कई स्थानो पर विवरण मिलता है। सदिग्धता* यही है। औषधि वर्णन मे पत्र, पुष्प, काण्ड सबका वर्णन मिलता है।

वैदिक कालीन औषधि वर्गीकरण का विवरण आप विशिष्ट रूप मे "आयुर्वेद की औषधिया व उनका वर्गीकरण" नामक ग्रन्थ मे जो लेखक द्वारा लिखित है और मुद्रक जामनगरीय आयुर्वेद विश्वविद्यालय है विशाल रूप मे पायेगे।

इस समय तक कोई सदेह दृष्टिगोचर नही होता।

सहिता काल— सहिता काल मे अनेको सहितायें बनी। आत्रेय सहिता, ब्रह्म सहिता धन्वन्तरि सहिता और अग्निवेश सहिता, भेल सहिता, जतूकर्ण सहिता, पाराशर सहिता, अश्विनीकुमार सहिता, अत्रि सहिता, क्षारपाणि सहिता, विश्वामित्र सहिता, हारीत सहिता, औपधेनव सहिता आदि मूल सहिताओ मे कही भी इसका वर्णन प्राप्त नही होता। सब औषधियाँ सुलभ थी।

तन्त्र युग— चाक्षुष तत्र, गार्ग्यतत्र, काकायन तत्र, करालतत्र, कृष्णात्रेय तत्र, निमितत्र, शौनकतत्र, विदेहतत्र, कुचुमारतत्र, श्वेतकेतु तत्र, वात्स्यायन तत्रादि, नागार्जुन तत्र, व्याडि तत्र, वशिष्ठ तत्र, माडव्य तत्र हिरण्याक्ष तत्र, भल्लुकी तत्र आदि मे भी कही सदिग्धता दर्शन नही होता।

प्रति सस्कार काल— कुछ सहितायें व तत्र दुर्लभ होने से उनके प्रति सस्कार किये गये।

इस काल मे यथा कथचित सदिग्धता तो नही सदिग्धता का आभास मिलता है। सुश्रुत सहिता के प्रति सस्कार मे तो सदिग्धता नही दृढता मिलती है और वह दृढतापूर्वक कहते है कि औषधियो के नाम (प्रत्यक्ष

---

*मधुमती के वर्णन में—

मधुमनमूल मधुमदग्रमासा मधुमन्मध्यवीरुधा बभूव।
मधुमनपर्णा मधुमत्पुष्पमासामवो मघका अन्नमभक्षो ॥

लक्षण व फल वाले है) व गुण जो लिखे हैं निश्चित फल वाली है अत उसमे कुछ कहना अनुचित है। अम्बष्ठादि गण की औषधिया कभी भी विरेचक नही हो सकती। अत कोई परीक्षण उचित नहीं हे।

अमीमांस्यान्यचिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः
आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणै। – सु. सू अ. ४०
प्रत्यक्षलक्षणफलाः प्रसिद्धाश्च स्वभावत.
नौषधीर्हेतुभिर्विद्वान परीक्षेत कथचन।
सहस्रेणापि हेतूनो नाम्बष्ठादिर्विरिचयेत।

अर्थात् यह औषधिया प्रत्यक्ष लक्षण वाली, प्रत्यक्ष फलवाली हैं अपने गुण कर्म व स्वभाव के लिए प्रसिद्ध हैं। अत अमीमास्य है (मीमासा करने योग्य नही हे) अचिन्तनीय है, यह प्रसिद्ध है अत इनमे सदेह करना व परीक्षा करना अनुचित है। *जैसे अम्बष्ठादि गण की औषधियाँ चाहे हजारो हेतु रखिए, तर्क करिये वह विरेचक नही होगी।*

अग्निवेश सहिता के प्रति सस्कृत चरक सहिता मे एक स्थान पर यह लिखा है कि केवल औषधि नाम ज्ञात होने से उनके स्वरूप का ज्ञान नही हो सकता, न उनकी प्राप्ति ही हो सकती है। अत औषधि ज्ञान आवश्यक है और भिषक औषधि नही जानता वह चरक सहिता के लिखे योग ज्ञान से योग्य चिकित्सक नही बन सकता। अत औषधि सम्बन्धी परम ज्ञान अत्यावश्यक हे।

न नाम ज्ञान मात्रेण रूपमात्रेण वापुन। औषधीनां परां प्राप्ति कश्चिद् वेदितु मर्हति।।

अत. औषधि ज्ञान के लिए-जो इसे जानते हैं उनसे जिज्ञासा करके जानना चाहिये। औषधियो के नाम व रूप को जानते है जो नित्य जगल मे रहते हैं। उनसे सहयोग लेना चाहिये। यथा—

औषधी नाम रूपाभ्या जानते ह्यजपा वने। अवियाश्चैव गोपाश्च ये चान्ये वनचारिणः।।

अर्थात - वन मे भेड चराने वाले, बकरी चराने वाले, गौ चराने वाले या अन्य लोग जो वन मे रहते है सामान्य औषधियों को नाम व रूप से जानते ह। उनसे भी पूछकर नाम रूप जानना चाहिए।

इसमे कुछ विद्वान कहते है कि चरक के काल मे अर्थात् चरक के प्रति सस्कार काल मे (प्रथम शताब्दी इस्वीय सन्) औषधियो मे सदेह था अत चरक ने भेड-बकरी व गाय चराने वालो से औषधि के नाम रूप जानने को कहा है। और सदिग्धता चरक के काल मे थी यह विचार उपस्थित करते है। किन्तु उन्हे आगे के श्लोक का ध्यान नही है जो ऊपर दिया हे और स्पष्ट लिखा है कि नाम व रूप ज्ञान मात्र से औषधि का ज्ञान नही होता है बल्कि इसके पूर्ण ज्ञान मात्र का अध्ययन द्रव्य के स्वरूप उसके रस, गुण, वीर्य, विपाक व प्रभाव का ज्ञान आवश्यक है और वह भी सामान्य ज्ञान नही अपितु [१]"पुरुष पुरुष वीक्ष्य" प्रत्येक पुरुष की प्रकृति पर इनका क्या-क्या प्रभाव होता है जानना आवश्यक है। जो औषधियो को जानता है उनके नाम रूप व योग का प्रति पुरुष पर प्रभाव का अध्ययन किया हुआ होता है वही उत्तम चिकित्सक होता है। जो व्यक्ति औषधि के नाम रूप व गुण से परिचित नही, औषधि प्रयोग कर अनर्थ[२] कर सकता हे।

अत चरक का मत स्पष्ट है कि औषधि ज्ञान चिकित्सक के लिये आवश्यक है। विना औषधि जाने, उनके नाम व रूप का ज्ञान किये, उनके मिश्रित योगो के प्रभावज्ञान किये उनका प्रयोग अनर्थकारी हो सकता हे।

पुनश्च चरक ने स्पष्ट लिखा है कि जैसे विष, शस्त्र अग्नि व वज्र (अशनि) का प्रयोग जाने विना

---

१ योगमासां तु यो विद्यात् देश कालोप पादितम। पुरुष, पुरुषं वीक्ष्य स ज्ञेयो भिषगुत्तमः।

२ औषध ह्यनविज्ञात नामरूप गुणैं स्त्रिभि.। विज्ञातं चापि दुर्युक्तमनर्थायोपपद्यते। —च. सू. अ. १

उनको सचालन किया जाय तो वह अनर्थकारक होते हे। इसी प्रकार विना नाम, रूप व गुण ज्ञान के जाने औषधि का प्रयोग अनर्थकारी होता है। यथा—

यथा विष यथा शस्त्र यथाग्निरशनिर्यथा। तथौषधमविज्ञात विज्ञातममृत यथा।—च. सू अ. १

वह महान ज्ञान वाले चरक भेड व वकरी चराने वाले व वन चारियो से, औषधि ज्ञान का उपदेश कैसे दे सकते है, सभव नही है।

किन्तु इस विचार से नाम रूप के विषय का ज्ञान नही अपितु वनचारी यह जानते हैं कि जगल के किस भाग मे इस नाम की औषधि हे अत. अधिक न भटककर उनसे पूछकर वन के किस दिशा मे कौन से पेड हैं यह ज्ञात कर सकते हैं। क्योकि वे वन मे रहते है अत वन मे औषधि की स्थिति कहाँ हे वतला सकते हैं।

अभिप्राय यह कि चरक के प्रति सस्कार काल मे औषधि विज्ञान क्रम मे त्रुटि थी यह कुछ लोग मानते है और सदिग्धता का प्रारभ यहाँ से कहते हैं।

किन्तु मैं इससे सहमत नही हू। यह कथन उचित नही है। सहिता काल मे सव औषधियो का पूर्ण ज्ञान हुआ था। इनका वर्गीकरण, योग विज्ञान, कल्प विज्ञान व रसायनादि का विज्ञान अत्यन्त सुपरिष्कृत था। उस काल के अध्ययन वनो मे रहने वाले पवित्र ज्ञानो से युक्त ऋषियो के चरणो मे होते थे अत. औषधियाँ अधिकतर जगलो मे होती थी और उनका ज्ञान शिष्यो को होता था।

वैदिक काल मे भी सदिग्धता न थी और ज्ञान सग्रह काल मे उनका ज्ञान •पशु-पक्षियो सर्पण शील प्राणियो और अन्य प्राणियो से किया जा चुका था। यह प्रागैतिहासिक काल की वाते है जव हमने उनके ज्ञानार्थ प्रत्येक प्राणी से ज्ञान प्राप्त किया था। उनका विवरण वेदो मे मिलता है। किस-किससे क्या-क्या सीखा गया—सक्षिप्त विवरण निम्न है यथा—

पशुओ मे—गौ, वराह (सूअर), अजा, मृग आदि से, पक्षियो मे—हस-सुर्पण (गरुड) व अन्य पक्षी आदि। सर्पणशील प्राणी व अन्य मे-सर्प नकुल गन्धर्व आदि से ज्ञान प्राप्त किया गया। उनका सग्रह कर परीक्षण करके तव औषधि ज्ञान कोष पूर्ण हुआ।

वैदिक काल मे १४ निरुक्तकार हुये है। और उन्होने वैदिक साहित्य के प्रत्येक शव्द की व्याख्या कर कोष वनाया और अर्थ सुव्यवस्थित किया जिनके नाम निम्न है—

१. औपमन्यव, २ औदुम्वरायण, ३ वार्ष्यायणी, ४ गार्ग्य, ५ आग्रायण, ६ शाकपूणी, ७ और्णवाभ ८ तैरकी, ९. गालव, १०. स्थौलाष्ठीवी, ११. क्रौष्टुकी, १२. कात्यक्य, १३ यास्क, १४ कौत्स।

अत वैदिक काल मे कोई भ्रम नही दिखाई पडता। उदाहरणार्थ—अर्क शव्द ले तो निरुक्तिकार यो उसका अर्थ करते हे—अर्क शव्द से कई का वोध होता है। यथा-देवता, मत्र, अन्न, वृक्ष—इनमे किस स्थान पर किसका ग्रहण होना चाहिये। यथा—

• वराहो वेद वीरुध नकुलोवेद भेषजीम्।
सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे॥
या• सुपर्णा आगीरसीर्दिव्या या रघटोविदु।
वयास्यि-हसा या विदुयाश्च सर्वे पतत्रिण।
मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे।
यावतीनामोषधीनां गाव प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावय
तावतीस्तुभ्यमोषधी शर्म यच्छन्त्वा भृता-।
(अथर्ववेद-८-७-२० से २५)

अर्को देवो भवति यदेनमचर्यन्ति, अर्को मन्त्रो भवति यदेनार्चयन्ति ।
अर्को अन्न भवति अर्चति भूतानि, अर्को वृक्षो भवति सवृत्तः कटुकिम्ना निरुक्त ॥

अर्थात् अर्क शब्द से देवता अर्क सूर्य का ग्रहण होता है। इनकी पूजा की जाती है। अर्क शब्द से मत्र का अर्थ होता है जिससे यज्ञादि मे पूजन करते है। अर्क शब्द से अन्न का अर्थ होता है जिससे प्राणी अपनी भूख मिटाते है। अर्क शब्द से वृक्ष अर्क (आक, आकडा) का ज्ञान होता है जिसमे किटु तिक्त रस होते है। दवा मे प्रयोग होता है। इतना जहाँ पर स्पष्ट अर्थ है वहा पर सदेह का स्थल नही है। किन्तु सदेह का स्थल निम्न रूप मे होता पाते है जिसके कारण निम्न है —

(१) अनध्ययन व अज्ञान—

वेदो का पठन पाठन जब तक अक्षुण्ण रहा कोई सदिग्धता नही थी। जब पठन पाठन का क्रमढीला बना, यज्ञ मे प्रयुक्त द्रव्यो का अज्ञानतिमिर बढने लगा। यह ज्ञान परम्परागत होने लगा—एक-एक वेद के विशेषज्ञ पण्डित होने लगे। कोई ऋग्वेद का ज्ञाता था कोई यजुर्वेद का कोई सामवेद का कोई अथर्ववेद का। यज्ञो मे अथर्ववेद का प्रयोग कम होता था। वेदत्रयी के ज्ञाता यज्ञ मे अधिक होते थे अत वेदो का ज्ञान सीमित क्षेत्र मे रहने लगा। अज्ञान बढने लगा। जब तक हिन्दू शासन था अश्वमेघ यज्ञ होते थे। अश्व के प्रत्येक अङ्ग अङ्ग व उपाग का नाम ज्ञात था उसमे प्रयुक्त औषधियो का ज्ञान था जब यह कम हुआ, वेद के टीकाकार भ्रम मे पडने लगे।

उदाहरणार्थ ऋग्वेद मे सोम का पर्याप्त वर्णन है अथर्ववेद सोम को औषधियो का राजा माना है। यह औषधि परमदीप्तिमान और स्वर्ण वर्ण की थी और स्थान मुंजवान पर्वत कहा है। उस काल मे सुलभ थी। कुछ सोम के कद होते थे और उसको सोने की सुई से चीर कर क्षीर निकाल कर प्रयोग होता था—कुछ सोम के काड का प्रयोग होता था और काड स्वरस का प्रयोग होता रहा।

सहिता काल मे भी इनमे सदेह न था। नाम भेद वनस्पति वर्णन व स्थान का वर्णन सुश्रुत मे मिलता है किन्तु ब्राह्मण खण्ड निर्माण काल मे 'आहार' नामक औषधि सोम के बदले मे लेने का वर्णन मिलता है। पाण्ड्य ब्राह्मण मे सोम के अभाव मे 'पूतीक'● नाम की वनौषधि का ग्रहण हुआ। उसके भी अभाव मे अर्जुन● नामक वनस्पति का प्रतिनिधि स्वरूप मे ग्रहण होने का विवरण मिलता है।

आज सोम नामक १५ पत्ते की वनस्पति के खोज मे कई दल (वैद्य) गये, मिल नही पाये। सोम अब सदिग्ध है ऐसे ही अथर्ववेद मे ३०० औषधियो का वर्णन मिलता है। अनेको अज्ञात है।

१ मशक जम्भनी, २ शेफहर्षणी, ३ क्लीब करणी, ४ रामा, ५ तलाशा, ६ दशवृक्ष, ७ पर्णमणि, ८ विषदूषणी, ९ स्वरूप करणी, १० कृत्या दूषणी, ११ चरणावती, १२ शलवार, १३ शीपाला, १४ शिला जाला, १५ चीपद्रु आदि एक तिहाई औषधिया—सब अज्ञात है। कुछ सदिग्ध है।

यह सदिग्धता वैदिक साहित्य के ज्ञान के अभाव के कारण उत्पन्न हुई है। वेद मत्र मे आई हुई औषधियो का वर्णन ब्राह्मण व आरण्यक खण्ड मे कही-कही पर मिलता है। कुछ उपनिषदो की व्याख्या के साथ मिलती है।

वेदो के बहुत से अ श आज प्राप्त नही है अत. उनमे की वर्णित औषधियो का ज्ञान स्रोत ही शुष्क

●शतपथ ब्राम्हण ४-५-१०-१
●यदिसोम न विन्देयु पूतिकानभिषुणुयाद, यदि न पूतिकानि अर्जुनानि। —ताण्ड्य ब्राह्मण ९-५-३

हो गया है। अत तत्र स्थित औषधि ज्ञान का अभाव प्रधान कारण है जो प्राप्त है उन्हें समझने व समझाने वाले विद्वानो का अभाव विद्वान वैद्य वर्ग मे परिलक्षित होता है।

अनध्ययन—वेदो का अध्ययन आज बहुत कम व्यक्ति करते है। सायण व महीधर की वेदो की टीकाओ के बाद जो टीकाये वेदो की है वह उनकी तरह परिपुष्ट विचार की नही है। मैक्समूलर व अन्य आधुनिक इ ग्लिश भाषा की टीकाओ का अर्थ उनकी समझ का है। जो अर्थ समझा कर दिया है। अत इस व्यक्ति वेदो का अध्ययन करते है अत सम्यक अर्थ ज्ञान के अभाव मे तत्रस्थ वर्णित औषधि वर्णन भी सदिग्ध हो गया है।

द्रव्य परिचय की अज्ञानता –सहिताग्रन्थि निघटु मे वर्णित औषधियो के पर्याय व गुणो को पढने वाले अनेको पाठको को द्रव्य का परिचय या दर्शन नही होता। अत. वे वस्तु स्वरूप ज्ञान विरहित ही रहते है भले ही उन्हे निघटु का श्लोक व अर्थ कण्ठस्थ क्यो न हो। वे अमुक नाम मे अमुक द्रव्य है नही जानते।

औषधि विवरण का अभाव—चरक सहिता मे १८०० औषधियो का वर्णन मिलता है। दशेमानि के ५० गणो मे ५०० व शेष चिकित्सा खण्डो मे वर्णित है। कल्पस्थान मे १६ औषधियो के लघु विवरण मे स्पष्ट वर्णन १६ का ही प्राप्त है यथा-मदनफल, जीमूतक, कृतवेधन-कुटज-निशोथ-अमलतास-दन्ती द्रवन्ती आदि।

सुश्रुत सहिता मे–५७३ औषधि द्रव्यो का प्रयोग हुआ है यह स्वय सुश्रुत ने ही लिखा है। यथा

शत च पच द्रव्याणा त्रिसप्तत्यधिकोत्तरम्।

व्यासत कीर्तितम् तद्धि ॥—सु. उ. ६६-८

किन्तु सपर्याय १७७६ द्रव्यो की सज्ञाये व उनका प्रयोग मिलता है।

अष्टाँग हृदय—इसमे ६०२ औषधि द्रव्यो का प्रयोग मिलता है।

काश्यप सहिता- भेल सहिता- हारीत सहिता मे उपलब्ध साहित्य मे अग्निवेश सहिता का अनुकरण है। इनमे १००० सख्या तक औषधि द्रव्य मिलते है। इनमे जगम उद्भिज व पार्थिव द्रव्य सब सम्मिलित है। इस प्रकार सहिता ग्रन्थो मे पर्याय सहित १८०० तक द्रव्य सज्ञायें है। यह सब औषधि योगो मे वर्णित है।

पूर्ण द्रव्यौषधि वर्णन जैसा चरक सहिता के कल्प स्थान मे है प्रत्येक द्रव्य का वर्णन अवश्य होगा। किन्तु सहिता काल के निघटु इस समय उपलब्ध नही है। अत उनका साहित्य प्राप्त न होने से पश्चात् कालीन निघन्टुओ का ही आश्रय इस दिशा मे लेना पडता है।

निघटुओ की वर्णित द्रव्य सख्या—

१ रत्न माला—माधव कर ७ वी शताब्दी, २ निघटु सग्रह—चक्रपाणि दत्त १० वी शताब्दि, ३. धन्वन्तरि निघटु—धन्वन्तरि नामक कोई चिकित्सक – इसमे ३७३ द्रव्य वर्णित है। स्वय लिखा है—

शतत्रय च द्रव्याणाम त्रिसप्तत्यधि कोत्तरम्।

हिताय, वैद्य विदुषा द्रव्यावल्यां प्रकाशितम् ॥

४ राजनिघटु–१४ वी शताब्दि मे ७५० उद्भिज द्रव्य व खनिज द्रव्यो का वर्णन है।

५ मदन पाल निघटु–१३७० ईस्वीय सन मे लिखा गया। इसमे १३ वर्गों मे ४६४ औषधियो का वर्णन है।

६ भाव प्रकाश निघटु–१५५० ईस्वीय सन मे—६२६ उद्भिज औषधि द्रव्य है। व अन्य प्रयोज्य द्रव्य

७ कैयदेव निघटु–१७१० मे पाडुलिपि लाहौर मे लिखी थी इसमे ४२४ औषधि द्रव्य वर्णित हैं।

८ शोढल निघटु—१८ वी शताब्दि, राजवल्लभ निघटु (१७६०) आदि अनेक निघटु लिखे गये है।

निघटुओ की वर्णन शैली —

प्रत्येक **निघटु** एक द्रव्य के कई **पर्याय** देते है और इनमे पर्याय अधिकतर प्रयोज्य अङ्ग का होता है।

इन पर्यायो मे जाति, आकृति, देश, रस, गुण, वीर्य, विपाक के आधार पर पर्याय मिलते हे। पर्याय सस्कृत मे है। अत: सर्व साधारण पाठक अर्थ तब तक नही लगा सकते जब तक वह सस्कृत व्याकरण से ज्ञानयुक्त न हो।

अत निघटु मे वर्णित द्रव्यो मे निम्न कारण सदिग्धता के बन गए हैं। यद्यपि इनका सग्रह कर श्रेणी विभाजन करें तो द्रव्य का स्वरूप-जाति आकृति पत्र-पुष्प- काण्ड मूल-फल आदि का स्वरूप निखर जाता है। किन्तु बहुत से द्रव्यो के पर्याय अत्यल्प होने से उनका ज्ञान स्पष्ट नही होता।

१. **शब्दज्ञानाभाव**—औषधि के लिए प्रयुक्त पर्याय के शब्द का ज्ञानाभाव स्पष्ट अर्थ बोध मे बाधक है।

२. **पर्याय मे वैविध्य**—एक ही पर्याय कई द्रव्यो के होते है अत सदेह होता है कि योग मे लिखित कौन द्रव्य है। यथा-एकार्थक-द्विअर्थक-त्रिअर्थक चतु, पच-षष्ठ सप्त एक शब्द दस-दस के पर्याय हैं। यहा सदेह होता हे कौन सा द्रव्य है। चिकित्सक जिसे उचित समझता है ले लेता है अर्थ बना लेता है। उदाहरण—

मयूर—इस शब्द के लिए अजमोदा, अजगधा, शिखण्डी, कौकिलाक्ष, अपामार्ग पाच द्रव्यो का पर्याय है।

दीप्यक—यमानी जीरक, अजमोदा, मुस्तक, रक्त चित्रक, निम्बु के पर्याय हैं।

अम्लिका से—चागेरी-मोचिका आम व इमली का अर्थ।

पथ्या—अभया-चिर्मिट-वन्ध्याकर्कोटकी-इन्द्रवारुणी।

दुरालभा—कपिकच्छू, अपामार्ग-यवासा का अर्थ इस प्रकार एक शब्द से कई द्रव्यो का बोध होता है अत कभी-कभी सदेह उत्पन्न होता हे।

द्रव्य के आकार ज्ञान का ह्रास— वस्तु का आकार जब तक ज्ञात न हो गुण कर्म का क्या लाभ होगा-अधिकाश चिकित्सक सब औषधि द्रव्य नही पहचानते। पसारी के पास नुस्खा भेजने पर वह जो द्रव्य दे दे उसे ही वह द्रव्य मान लेते है। कुष्ठ के नाम पर एक लकडी (कुष्ठ का–पुष्करमूल का व श्योनाक का काँड पत्र) बाजार मे मिलता है जो भीतर से पोला होता है। यही पसारी देता है और चिकित्सक प्रयोग करते है। इसी प्रकार कई द्रव्य है। वैद्य को द्रव्य स्वरूप ज्ञात हो तो वह उसमे से चुन सकता है। अशोकत्वक के बदले काँचनारत्वक-वट प्ररोहत्वक के बदले वट की छाल, अशोक नाम से आशुपल्लव का छाल बाजार मे मिलता है।

सारिवा के नाम पर— काला सारिवा, श्वेत सारिवा का काण्ड, कपूरी का पचाङ्ग व दुग्धीलता का काड-बगाली सारिवा आदि अनेको वस्तु मिलती हैं।

रासना की जगह— घोटारासन, पत्ररासन, मूलरासन, वदाक और धावधा आता है। यह सब रूप ज्ञान की त्रुटि से पसारी अनेको द्रव्य देते है। एक नकली द्रव्य बीसो बार प्रयोग होने पर चिकित्सक उसे ही सही द्रव्य मानता है और दूसरे असली वस्तु को भी नकली मानने लगता है क्योकि वह उस नाम से उसे ही जानता है।

उचित शिक्षको का अभाव—जो शिक्षक द्रव्यगुण पढाते हे उनमे अधिकाश वनो मे जाकर द्रव्य नही देखते अत. द्रव्याकार का ज्ञान उन्हें नही होता। पर्याय व नाम से द्रव्याकार नही होता। स्वत देखने पर ही होता है। जो वस्तु हरी होती है सूखने पर उसका स्वरूप बदल जाता है। आमला हरा रहने पर गोल सुडौल होता है। सूखने पर फटा हुआ, सिकुडा हुआ बाजार मे मिलता हे। आमला जो बाजार मे मिलता हे काला और तीन-तीन टुकडो मे विभक्त फटा हुआ मिलता है। यह उबाल कर सुखाया हुआ होता है। इस रहस्य को कितने चिकित्सक जानते हे। हरा आमला रखकर सुखाइये सिकुडकर फट जायगा। भूरा दिखाई पडेगा और कालान्तर मे विकृत हो जायगा। अतः व्यापारी उसको ठीक रखने व बाजार स्वरूप रखने के लिये दो विधि करते हैं—

प्रथम—वडे-वडे व्यापारी इन्हे हल्की उवाल देकर मुखा देते है। यह सूखने पर भारी भी हो जाता है और कालापन लिये दिखाई पडता है।

दूसरी विधि—वडे-वडे गड्ढो मे इनको एकत्र करके वडे-वडे ढेर वनाकर मिट्टी से ढक देते है। कई दिन रखते हे, तरऊपर रखने पर इनमे गर्मी आती हे उस गर्मी से ये स्वत: उवल जाते है। इन्हें पुन फैलाकर मुखा देते हैं। यह हल्के काले रग के होते हे और गुठली पर से अलग हो जाते हे या उस पर सिकुडे हुए चिपके रहते हे। इनका रग सफेद, भूरा होता है, कालापन कम होता है।

यह वाजार मे आमले के नाम से ही मिलता हे परन्तु वस्तु स्वरूप मे भेद होता है जो सदेह पैदा करता हे या वस्तु मे न० १ व न० २ का आधार वनता है।

व्यापारिक दक्षता या चालाकी—

व्यापारियो मे वस्तु तैयार करने की कला होती है। वह जिस वस्तु को चाहे न० १ वना दे, जिसे चाहे न० २ वनादे। इस विधि मे दक्षता इस वात की होती है कि वस्तु सडने न पावे, कीडे न लगे एतदर्थ वह उसे विभिन्न वस्तु के साथ मिला कर उसका स्वरूप वनाता है। पसारी व वैद्य नही जानते। वडे-वडे फार्मेसी चलाने वाले नही जानते। दक्ष व्यापारी इन सवको धोके मे रखते हैं। भारतीय फार्मेसी सचालकों मे इस ज्ञान का नितान्त अभाव है।

आधुनिक व्यापारी किस वस्तु मे कितना सक्रिय तत्व मिलता है। इसकी जाँच कर तव सौदा करता है। भारतीय आयुर्वेदिक फार्मेसी वाले इस ज्ञान से शून्य हैं।

उदाहरण के लिए कुछ निम्न विवरण पढिये—शुठी—सोठ विश्व भेपज है। इसका प्रयोग सारे विश्व मे समान रूप से होता था। ५० वर्ष पूर्व मे इसका व्यवहार विदेशी फार्मेसी सचालको मे कम हो गया। अव इसका क्षेत्र विदेशो मे केवल आहार क्षेत्र मे मसाले की तरह ही रह गया हे गध व स्वाद परिवर्धन के लिये प्रयोग होता है। भारतवर्ष व जिंजीवार द्वीप समूह इसके प्रधान प्रेषक आधार थे। अव विदेश ही वडा आधार है। इसे अंग्रेज व्यापारियो ने भारत व सिलोन से हटाकर जिंजीवार द्वीप समूह मे पैदा करना प्रारम्भ किया। इसके आधार पर उसका नाम भी "जिंजीवर आफिसिनेल" रखा गया है। विश्व की शुठी की उपज का ¾ भाग यहा से सप्लाई होता है। भारत मे वगाल, आसाम व दक्षिण प्रदेश के अतिरिक्त लका से भी इसकी पूर्ति होती है।

सग्रह व सरक्षण—आर्द्रक का छिलका हटाकर हल्का भाप देकर उवालकर सुखाकर तैयार करने पर यह सिकुडता नही और सुन्दर वनाने व कीट से सरक्षण के लिये चूने के घोल मे इसे डुवोकर सुखा देते है। यह सफेद रग की सोठ वन जाती हे। इसे व्यापारार्थ देर तक रखा जा सकता है क्योकि इसमे कीडे नही लगते। इसे वाजार मे धुसरी सोठ कहते है। दूसरी सोठ विना चूना लगाये होती है और यह छिल्केरहित होती है। यह देर तक वोरो मे नही टिकती। यदि थोडी भी आर्द्रता लगे तो घुन जाती हे। वाजार की दूसरी सोठ छिल्केदार भूरे रग की या श्वेत भूरे रग की होती है। यह चूने से सफेद नही की जाती, छिल्का रहने से यह सुरक्षित प्रकृति की तरफ से ही होती हे। धुसरी श्वेत सोठ उत्तम व छिल्के वाली विना चूने की अधम या हीन श्रेणी की व्यापारी मानते है और पसारी व आढतिया भी इसी आधार पर इसे नम्वर एक व नम्वर दो की मानते है।

वत्सनाम या सींगिया काला—वत्सनाभ काला नही होता। जव इसे खोदकर लाते हैं ऊपर का छिल्का श्वेत वर्ण का होता है। कालान्तर मे सूखकर भूरा सा हो जाता है। इसमे कीडे जल्दी लगते है अत व्यापारी व सवाहक ठेकेदार इसे वचाने के लिए इसकी जड खोदकर एकत्र गढे मे एकत्र करते है और उसमे गोवर व कुछ गो मूत्र डाल देते हैं। वह कुछ कालापन लिये दिखाई पडता है यह कद सडता नही वडा कठिन व घन सघात का होता है। कुछ दिन तक इसके ढेर पर मिट्टी का आवरण चढा देते हैं। फिर निकालकर इसमे कोयले का चूरा या



काला रग व तेल मे भिगो देते है। यह अब काला चमकदार व भारी भी हो जाता है और इस विधि मे कीडो का शिकार होने से बचता है। और यही बाजार मे इन व्यापारियो से आता है। यह काला सीगिया या वत्सनाभ है। जालसी व्यापारी इसमे वत्सनाभ की कई जातियो के कद निर्विसी के कन्द श्वेत सीगिया यह सब मिला देते है और काला रग चढाकर उसे तेल मे भिगो देते है। जो ऐसा नही करते सफेद सीगिया के नाम से इसे बेचते है।

काली मिर्च—काली मिर्च की लता मे अगूर की तरह गुच्छो मे कालीमिर्च फलती है। यह हरी होती है। सूखने पर हल्के हरे काले रग की होती है। ताजी भी सुखाने पर हरिताभ काली होती है। पकने पर यह भूरे रग की हो जाती है। यह स्वाभाविक रूप व वर्ण है। सूखने पर ऊपर की त्वचा सिकुडकर जालीदार बन जाती है, बीच मे गहरा किनारे ऊचे रेखान्वित होते है।

व्यापारिक स्वरूप—काली मिर्च के व्यापारी कालीमिर्च के व्यापारिक रूप काले रग को कोयले व तेल मे रगकर काला कर देते है।

कालीमिर्च गोल व काली उत्तम मिर्च व बिना रग की अनुत्तम काली मिर्च होती है। तेल व काले रग से मिर्च का भार बढता है कीट जल्दी नही लगते।

व्यापारी—काले रग वाली मिर्च उत्तम मानते है। पुराना होते ही स्निग्धता उड जाती है। कुछ रूखापन लिये काला रग रह जाता है।

अतः बाजार मे दो प्रकार की कालीमिर्च मिलती है। हरित व कुछ अपरिपुष्ट कालीमिर्च अधिक कटु होती है अतः गुण की दृष्टि से हरे छोटे दाने अधिक लिये जाते है। इसमे मिश्रण कई प्रकार के बीज पपीते या विडग के मिलाकर रग देते है अत सब चलता है। व्यापार मे पूर्ण पकी हुई मिच लाल काली भूरे रग की होती है। अत यह व्यापारिक दृष्टि से हीन गुण की मानी जाती है जबकि अधिक तीक्ष्ण, चरपरी व कटु होती है।

पिप्पली—परिपक्व पीपल तोडने पर हरी व सूखने पर हरिताभ श्याम वर्ण की होती है। इसे घुनने से बचाने के लिये तेल व काला कोयला के चूर्ण का परिपक्व लगा देते है। यह देर तक बाजार मे बिकती है। और कीट जग्ध (खादित) नही होती।

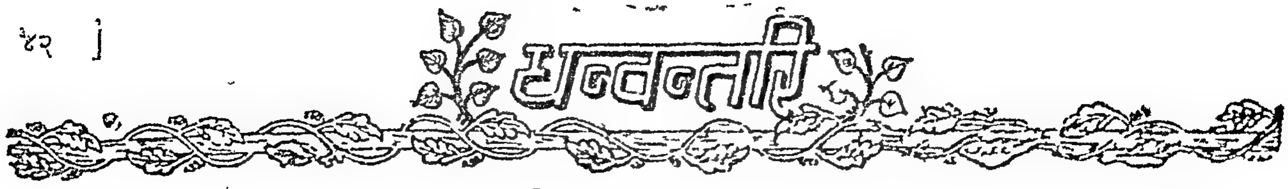
पूर्ण परिपक्व कालाधिक तक की रुकी पीपल भूरे लाल वर्ण की होती है और काली उत्तम भूरी अनुत्तम मानी जाती है।

बाजार मे यह चार प्रकार की मिलती है जिसमे दो प्रसिद्ध है। छोटी पीपल व बडी पीपल। यह दोनो कोयले व तेल का आवरण युक्त उत्तम माने जाते हे। बिना तेल के काले रग वाले या भूरे प्राकृतिक वर्ण वाले व्यापार मे अनुत्तम माने जाते है यद्यपि गुण मे अधिक होते है।

बडी पीपल की लता पृथक होती है छोटी की लता पृथक होती हे। पीपल की लता जितनी पुरानी होती है उतनी ही छोटी फली देती जाती है।

अपग्रेडिंग या श्रेणीविभाजन—व्यापारी चलनी से छानकर बडी-बडी एक तरफ छोटी-छोटी एक तरफ कर देते है। अत बडी पीपल व छोटी पीपल का स्वरूप बनता है। छोटी पीपल या लैंडी पीपल अधिक मूल्य की व बडी पीपल कम मूल्य की होती है। छोटी पीपल उत्तम क्यो मानी जाती है—

छोटी पीपल जब तक हरी व परिपक्व बीज की नही होती तब यह तोडकर सुखाने पर अधिक तीक्ष्ण होती है वर्ण हरा काला उत्तम होता है अत व्यापारी तेल व हरा रग चढा देते है। बिना रग चढाये जैसे जैसे पुरानी होती है वर्ण बदलता जाता है ताजी हरी व श्याम वर्ण की। वही पुरानी हल्के हरित श्वेत श्याम वर्ण की होती है। अन्त मे वर्ण पुराना होते जाने पर भूरा हो जाता है। अत जब तक पीपल के फल पूर्ण परिपक्व



नही होते सूखने पर अधिक कटु होते है। और उस समय तोडकर सुखाये पीपल दाने अधिक तीक्ष्ण माने जाते है। व्यापारियो व पसारियो के कारण न० १-२ यह श्रेणी बनती है।

खुरासानी अजवायन या पारसीक यमानी—विदेशो से आती है और देर तक टिके, कीडे न लगे एतदर्थ इसको गाढे चूने के घाल मे मिलाकर सुखा देते हे। इसके बीज छोटे छोटे राई की तरह होते है। और बाजार मे सफेद मिलते है। कीडे जल्दी नही लगते। अत यह क्रिया करते हे। हुलहुल का बीज ठीक इसी प्रकार का इसी आकार का बाजार मे पारसीक यमानी के नाम से मिलता है। व्यापारी सफेद यमानी बीज लेता है क्योंकि देर तक भी रखा रह जाय तो खराब नहीं होता-भार मे बढ जाता हे। अत उन्हे प्रिय है। यही बाजार मे आता है। बिना रग का भूरा श्याम वर्ण का बीज होता हे। व्यापारी से पसारी लेते हैं सफेद उत्तम, काला अनुत्तम मानते हे। इसी प्रकार कुटकी-पुष्करमूल-कूठ मे भी रूपान्तर होता है।

कूठ व पुष्कर मूल—यह दोनो भृगराज कुल के द्रव्य है जिनका मूल प्रयोग मे आता हे। दोनो उत्तम गध वाले होते हे। इनमे प्रारम्भ मे मूल खोद कर सुखाने पर व ६ मास तक कुछ गर्म स्थान मे रखने पर इनमे सुगध की वृद्धि होती है। इनको सग्रह कर ऊपर का एक मटमैला आवरण हटा कर सुखाते है। विशेषकर कूठ को। कूठ वही अच्छा गाठदार होता है। सूखकर कठिन व सींग की तरह कडा हो जाता है। कद या सूक्ष्म मूल के रोम व चिन्ह होने से सूखने पर रूक्ष होता है। अत ऊपर का छिलका हटा देते हैं और सुखाकर सुन्दर रंग दार बना लेते हैं। एसे कम से कम ६ मास तक धान्यराशि मे रखते है तो सुगन्ध की वृद्धि होती हे।

यह पहले सुगन्ध बनाने व इत्र फरोशो के यहाँ काम आता था और अच्छा मान सब विदेशी व्यापारी खरीद कर ले जाते थे। यह सुगन्धित द्रव्य बनाने के अतिरिक्त धूम्रपान से नशे का काम भी देता है अत अधिक तर व्यापारी (ब्रिटिश व्यापारी) चरस मे मेल के लिये खरीद कर चीन मे व्यापार करते थे। अफीम के साथ इसका भी व्यापार होता था।

अब सिंथेटिक गध बनने के कारण इसका व्यापार ढीला होता जा रहा है। यह सुगधित इत्र कीमती धूप मे धूम्रपान मे नशे के लिए ही कूठ का व्यापार हो रहा है। फिर भी काश्मीर से अत्यधिक विदेशी व्यापारी ले लेते हैं और कच्चे-निकृष्ट पुराने कूट का दवा के लिए प्रयोग होता हे। यह व्यापारिक क्रम है। अत योग्यतम चिकित्सक भी पसारी मे जो लेते ह उसे उत्तम मानते हैं।

कद—१ साल के दोनो के कद ठोस कडे व सुगन्धित होते ह। पुष्पित होने तक व बीज आने से पूर्व सग्रह करने पर कद ठोस व तोडने पर चिक्कण व घन सघाती ठोस होते हैं। एक साल के बाद उनके ऊपर के काड स्वत सूखकर गिर जाते ह। पुन. इस कद से दूसरा पौधा नया निकलता हे और अब इसके पुष्पकाल मे परिपक्व मूल को यदि उखाड कर सग्रहण किया जाय तो कद मोटा भी होता हे, अधिक रेशेदार व भीतर का भाग हल्का होने लगता हे और खोखला हो जाता है। खोखला का अर्थ पिथ का भाग जालीदार व ढीला बनता जाता हे। यही अधिकतर वन प्रान्त से देर मे सग्रह होने पर अधिक मिलता है और बाजार मे आता है। औषध्यर्थ मिलता है। व्यापारी इसे पसद नही करते हे। अत औषधार्थ ऐसा आता है। अच्छा ठोस व्यापारी ले लेते हे। इसमें सुपरिपक्व सुगठित मूल (Mature Root) बाहर विदेशो मे जाता हे। पुराना अधिक परिपक्व (Supermature) भारतीय व्यापार मे आता है।

यह कालापन लिए गुणहीन होता जाता हे यह ध्यान रख कर द्रव्य सग्रह करना होता हे। यह भी सदिग्धता का हेतु बनता है। इस प्रकार जीरा, सौंफ, धनिया, सोया, दालचीनी, लवग, तेजपात अनेको द्रव्यो मे व्यापारिक चालाकी चिकित्सक नही जानते।

आधुनिक वनस्पति सम्बन्धी पुस्तकों के लेखक भी संदिग्धता के वर्धक हैं—

ब्रिटिश शासकों के काल में कई वनौषधि सम्बन्धी अच्छी पुस्तकें लिखी गई हैं। और वनस्पतियों के निर्णय की दिशा में विशेष प्रगति हुई है। प्रत्येक प्रान्त के फ्लोरा प्रसिद्ध हुये।

डा० वाट्स की 'डिक्शनरी आफ इकोनामिकल प्रोडक्ट्स आफ इण्डिया" और "फार्माकोपिया आफ इण्डिया" प्रसिद्ध हैं।

अन्य—डा. डेविड प्रेन का बंगाल प्लाण्ट्स
थियोडोर कुक , बाम्बे फ्लोरा
हेन्स , फ्लोरा आफ सेन्ट्रल प्रोविन्सेस
गेम्बल ,, फ्लोरा आफ मद्रास
पार्कर बेकर ,, पंजाब प्लाण्ट्स
मि० बर्किल ,, प्लाण्ट्स आफ बिलोचिस्तान
रायबहादुर उपेन्द्रनाथ कानजीलाल का— फ्लोरा आफ आसाम
ले० मेकेमोर व गायन का—प्लाण्ट्स आफ कश्मीर
बानिन व बर्किल ,, प्लाण्ट्स आफ नेपाल
फादर ब्लेटर व्हा ,, प्लाण्ट्स आफ कच्छ
राक्सबर्ग ,, कोरोमण्डल प्लाण्ट्स
मेर बाल्फर ,, प्लाण्ट्स आफ मैसूर
डा कीर्तिकर व बसु ,, इण्डियन मेडिसिनल प्लाण्ट्स

डा नाडकर्णी का मैटेरिया मेडिका आफ इन्डिया के अतिरिक्त अनेकों लेखकों ने बड़े परिश्रम से भारत वर्ष की वनौषधियों के विषय में अनेकों पुस्तकें लिखी और भारत का बड़ा उपकार किया है।

किन्तु इनमें से अधिकांश ने भारत की भाषाओं में नाम भी दिये हैं। संस्कृत में भी नाम दिया है। संस्कृत में नाम जो दिये गये हैं अतीव भ्रामक व हानिकर सिद्ध हुये हैं। डा० कीर्तिकर व बसु की पुस्तक व डा० नाडकर्णी ने जो संस्कृत नाम दिया है उन्होंने विद्वान वैद्यों में भ्रम का अगपाल प्रगल्भ किया है। कहाँ से संस्कृत नाम इन्हें प्राप्त हुये यह ज्ञात नहीं है किन्तु एक ही नाम कई पौधों के दे दिये हैं। कुछ उदाहरण दे रहा हूं जिससे पता चलेगा—जब ये डाक्टर स्वयं संस्कृत नहीं जानते थे तो किसी से पूछकर पता लगाया होगा। तात्पर्य यह कि सबके सब बहुत सी औषधियों के संस्कृत नाम को मिथ्या नाम प्रयोग किया है।

डा० नाडकर्णी ने इन्डियन मैटेरिया मेडिका पृ. १०४ पर—

अम्लवेत नाम—चूका पालक के लिये (१) रूमेक्स क्रिस्पस (Rumex crepsus) (२) रूमेक्स वेसीक्यूरस (Rumex Vasicarcus) को लिखा है। पुन रेवद चीनी (Rhoum Emody) इन्डियन मेडिसिनल प्लाण्ट्स पृ २१४ चतुर्थ खण्ड में चूका पालक को अम्लवेध लिखा है।

डा उदयचन्द ने—चूक को अम्ल वेतस लिखा है। पुन

वृक्षाम्ल—गार्सीनिया इन्डिका गार्सीनिया पर्प्यूरिका को भी लिखा है।

डा० राक्स बर्ग ने-गार्सीनिया पेडुनुलेटा का अम्लवेतस लिखा है।

डा० नम ने—अम्ल पालक (रुमेक्स वेसिकेरियस) को अम्लवेतस लिखा है। चव्य या चालता को थैकल व कोकम को पुन अम्ल वेतस लिखा है।

इस प्रकार जितने भी सदिग्ध द्रव्य है उनमे कई एक के लिये जैसे रास्ना के लिये पृथक-पृथक द्रव्य को रास्ना लिख दिया है। यदि इनका विचार माने तो सदिग्धता की उन्होने अज्ञानावस्था मे किसी पडित या कविराज से पूछ करके यह नाम लिखकर प्रज्ञापराध किया है। अत इनके सस्कृत नामो पर ध्यान देना उचित नही है। क्यो कि ये सस्कृत के नाम जो द्रव्यो के दिये है जानते नही थे।

किन्तु भ्रम फैलाने मे वडे सहायक सिद्ध हुये हैं। हिन्दी के वाद के लेखको ने आख मूदकर वही नाम दिया है और भ्रमावद्ध सज्ञा देते गये हैं क्योकि विभिन्न भाषाओ के नाम मे इनका ही विशेषकर डा० कीर्तिकर और वसु का अनुकरण सवने किया है। डा वामन गणेश देसाई का भी अन्धानुकरण हिन्दी भाषा के निघटुकारो ने लिख कर वह भूल दोहराई है जो सदिग्धता के प्रकार के हेतु है। अत प्लाट्स के विवरण मे सस्कृत नाम जोडकर इन आधुनिक लेखको से भी सदिग्धता वढी है।

पसारियो मे द्रव्य सम्बन्धी ज्ञान की कमी—

पसारी द्रव्य गुण विज्ञान के ज्ञाता नही होते। व्यापार मे वस्तुओ को भेजने व औषधि वेचते-वेचते ज्ञान हो जाता है। जो द्रव्य आते है उन्हे वह जानता है और उतने का ज्ञान रखता है। यह दो प्रकार का द्रव्य रखता है असली व नकली, महगा व सस्ता।

असली के स्थान पर नकली का ज्ञान उसे रहता है वह वाजारो से खरीदता है। द्रव्य भेद भी जानता है। कुछ उदाहरण—हीग-हीग वह कई प्रकार का रखता है।

१. हीग हीरा, २ हीग तालाव या तालाव हीग ३ हीगडा। नकली हींग सफेद, नकली हीग काला, नकली हीग लाल इत्यादि।

(१) **हीरा हींग**—श्वेत पारभासक-तीव्र गधी होता है। इसमे उत्तम खुशवू होती है। यह उत्तम हीग, हिल्तीत तय्यव या अङ्गोजए खुशवू कहते है। यही हीग उत्तम व औषधि मे व्यवहार योग्य होता है। इसका स्वरूप हीरे की तरह सफेद-सुगन्धित व उसके कण चमकदार होते है।

(२) **निकृष्ट हींग**—काले या मटमैले लाल रग का दुर्गन्धित होता है। यह हींग की जाति के अनुत्तम श्रेणी के पेडो के निर्यास है। इसे हिल्तीत मुत्तिन या अङ्गोजये वदवू कहते हैं। यह दवा के लिए काम कम आता है। यह दोनो हीग के ही निर्यास है।

(३) इन दोनो के साथ मिलाकर अन्य गोद के साथ मिला कर चमडे की थैली मे मिला कर वम्वई के वाजार मे आने वाला माल 'हीगडा' है। यह मिलावटी है।

(४) **नकली हींग**—उड़द की वडी, मूग की वटी को हीग के पानी की भावना देकर सफेद, लाल, पीला वनाना यह नकली हीग है। यह कुछ आने ताले से कुछ रुपये तोले भाव से विकता है।

(५) **तालाव हींग**—हीग हीरा के घोल को अन्य गोद के साथ मिलाकर लाल रग का वना कर तालाव हीग वम्वई व अमृतसर के मार्केट मे आम करके विक्रय होता है। हीग तय्यव का अपभ्रश तालाव हीग है। अफगानो की एक जाति तय्यव लोगो का यह पेटेन्ट माल था। उसी नाम से विकता है जैसे गुजराती इलायची या छोटी इलायची। गुजरात मे कही इलायची पैदा नही होती पहले नाम गुजराती इलायची है क्योकि मैसूर की सव इलायची गुजराती व्यापारियो द्वारा सूरत से पहले चलती थी उसके व्यापार का सैंटर था। अव वही नाम प्रचलित है। इसी प्रकार यह तालाव हीग भी है। यह पसारी से माँगिये सव देगा–नकली असली सव भेद, कीमती व सस्ता देगा।

सज्जिकाक्षार—सज्जी यह रसोई का सस्ता सामान व घर-घर मे व्यवहार होता है। सज्जी, चोट सज्जी, गुलावी सज्जी, पापड की सज्जी, लोट सज्जी कई भेद हैं। चोट सज्जी, गुलावी सज्जी अधिक प्रयुक्त होता

है। यह रेह वाली मिट्टी से नमक निकाल कर उसे पकाकर गाढाकर काला, सफेद, गुलावी भेद से व्यापारी तैयार करते है।

अगर-तगर—पसारी के यहां दोनो दो-दो प्रकार के मिलते है। साधारण काली लकडी, सुगन्धित काली लकडी, गाँठदार तगर, लकडी काली तगर यह व्यापारी कहाँ से एकत्र करते है, कहाँ पर वेचते है, आपको पता नही चलेगा। परन्तु पसारी पर मिलते है।

सारिवा सालसा—जडे कई प्रकार की लाल रग की रगकर पतली-पतली पसारी के पास आती है। परम्परागत ज्ञान इन्हें होता है। वैद्य असली-नकली खरीदते है-कम या अधिक मूल्य मे लेते है।

अशोक-निशोथ—मजीठ आदि यह बाजारो की मडियो मे मगाकर वेचते है। एक-एक के स्थान पर दो-दो प्रकार, तीन-तीन प्रकार के द्रव्य।

चिरायता– काला चिरायता, हरा चिरायता, लाल चिरायता यही सग्रह करते है व वेचते है। मडियो मे जाकर पूछिए आपको पता नही चलेगा न आप मगा सकेंगे। परन्तु उन पर परम्परा से आता है।

नागौरी असगंध—राजस्थान के नागौर नामक ग्राम मे यह पहले आता था। आस-पास के जगल से इसका सग्रह कर आदिवासी धान, चावल गेहू के लिए वेचते थे। यही एकत्र कर बाहर भेजा जाता था। यह इस नाम से प्रसिद्ध है। आज वहा एक वारी असगव भी प्राप्त नही होती। यह परम्परागत चलन हे जो व्यापारी व पसारी प्राप्त करते थे और आज भी सग्रह करते हे।

चिरायता—काला, लाल पैदा होता है। हरा चिरायता को कालमेघ नाम दिया जाता है। इस प्रकार पसारी सदिग्धता के अधिक प्रवर्तक है।

मडियो के दलाल संदिग्धता प्रवर्धक है—

आयुर्वेद के औषधि द्रव्यो के बेचने की कुछ प्रधान मडियाँ है। बम्बई, अमृतसर, देहरादून, दिल्ली बडी मडिया है। नैपाल की तराई मे टनकपुर व ब्रह्म मडी, गोरखपुर मे नौतनवा और हरिद्वार के पास ऋषिकेश, खम्भालिया, मद्रास, मैसूर, सूरत, जयपुर आदि मडिया है।

यहा काष्ठौषधि, निर्यास, कस्तूरी शिलाजीत तथा रत्न उपरत्न की खरीद विक्री होती हे। इनमे शिलाजीत, पीपल, बडी इलायची, पीपलामूल के लिये टनकपुर ब्रह्म मडी है। मोती मूगा रत्न उपरत्न हीग कस्तूरी के लिए अमृतसर है। जटामासी, कुटकी, अष्टवर्ग, पाषाणभेद, सर्पगधा के लिए देहरादून वम्वई व कानपुर, दिल्ली अन्य पदार्थो के लिये प्रसिद्ध मण्डी है। यहा पर सब औषधि द्रव्य आ जाते है। और औषधि प्रतिनिधि नकली द्रव्य और औषधि मेल के लिए प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त काश्मीर, हाथरस, पटियाला आदि भी छोटी मोटी वस्तुओ के लिए प्रसिद्ध है। यही मिलने के प्रधान क्षेत्र है। ठेकेदार यहा के जगलो का ठेका लेकर औषधि द्रव्य खरीदते है। औषधियो के अतिरिक्त मधु का भी सग्रह करते है। यही केन्द्र औषधियो मे मिश्रण, प्रतिनिधि कल्पना के व प्रेरक है।

श्वेत निशोथ चुनार मिर्जापुर से एकत्र होकर कानपुर मडी को पहुचती है। शिलाजीत टनकपुर, हृषीकेश के मार्ग से हरिद्वार, कस्तूरी नेपाल काश्मीर से अमृतसर, हीग व एलुवा अफगानिस्तान खैवर दर्रे से अमृतसर व अरव देशो से सामुद्रिक रास्ते से वम्वई। पहाडो से अष्टवर्ग कुटकी, वत्सनाभ हिमालय के प्रदेश से देहरादून व अमृतसर, दिल्ली, कानपुर वम्वई को सव माल सर्वत्र सा आते है।

इस प्रकार मडियो का व्यापार होता हे। सरकारी एजेसी सोना, चादी, पारद, गधक, लवग, सोठ, तेजपात, दालचीनी, मद्रास, मैसूर, लका को पश्चिमी व पूर्वी द्वीप समूहो से पहुच कर आ जाते है। इनके अतिरिक्त

धनिया, जीरा, सौंफ, हरी सोफ ईसबगोल, काली मिर्च, पीपल की खेती भारतवर्ष के कई प्रान्तों मे होती है। और इन मडियो मे आती है। विन्ध्याचल की पर्वत श्रृंखला से हरड बहेडा आमला सोठ, अमलतास आदि भूरि-भूरि मात्रा मे सग्रह होती हैं और इन मडियो मे व्यापारी पहुचाते है। विदेशो मे पारद, कुटकी, एलुवा, शीतलचीनी, केशर, कस्तूरी, गधक, लवग, तेजपात, दालचीनी, कर्पूर, सोठ आदि कन्ट्रैक्टर व बडे व्यापारी पानी के जहाजो द्वारा इनका सग्रह करके भारत मे पहुचाते हैं।

यहीं से वस्तु सग्रह, मिश्रण व अन्य प्रतिनिधि द्रव्य बनते है। विदेशी व्यापारी बडी मात्रा मे बाहरी सामान लाते है। चतुर व्यापारी अम्लवेतस के बदले रेवदचीनी की लता को छीलकर चोटी की तरह गूथ कर रख कर सुखाते हैं यह खट्टा भी होता है और दस्त भी लाता है। कोई कोकम को अम्लवेतस कहता है। कोई चूक को, कोई खट्टे अनार दाने के सूखे रस को, कोई कुछ खट्टे पदार्थ अम्लवेत के बदले बेचने लगता है। रेवदचीनी का चीन से अरब देश वहा से भारत व अमृतसर मे जमा होता है या बम्बई की मडी मे। गुजरात के व्यापारी कोकम की बडी राशि एकत्र कर भारत के पश्चिमी भाग में भेजते है। चूँकि नैनीताल से सग्रहीत होता है। यह खट्टे अनार का रस सुखाकर एकत्र होता है। पर्वतीय प्रदेशो मे चूक मागने पर गीला काला चटनी जैसा गाढा वस्तु मिलता है।

जम्बीरी या जम्बीर निंबू, रानीखेत, हलद्वानी व नैनीताल के तराई क्षेत्रो मे हजारो मन बाहर सप्लाई होता है। निंबू की छोटी जाति जो आमले के बराबर पीली होती है, शखद्राव के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी शक्ल ठीक छोटे मतरे की तरह पीला व सुहावना होता है। इसका अचार बनाते हैं और इतना खट्टा होता है कि इसका २-३ फल जो सुपारी के बराबर नारगी वर्ण का होता है खाना कठिन हो जाता है। इसमे सूई गोदकर छोड देने पर ३-४ दिन मे गल जाती है और प्राय: अच्छे उद्यानो मे शोभा के लिए लगाते है। फल से लदे नारगी वर्ण के ये क्षुद्र फल अतीव शोभायमान लगते हैं।

इस प्रकार व्यापारियो के सग्रह स्थल भिन्न-भिन्न द्रव्य के लिए भिन्न-भिन्न होते है।

अक्टूबर-नवम्बर तक अष्टवर्ग के जीवक-ऋषभक्-काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि वृद्धि के सग्रह का काल होता है। हिमालय के ४-५ हजार फीट की ऊँचाई पर ये मिलते है। और सग्रह होकर देहरादून की मडी हरिद्वार व ऋषिकेश मे सग्रह होते है यहाँ से सर्वत्र जाता है। अतीस, जटामासी, छडीला, कुटकी भी बडी मात्रा मे इधर सग्रह होती है।

दशमूल-सर्पगन्धा[●]-अर्जुनछाल—यह सब देहरादून मे एकत्र होते है। बगाल का अशोक, नकली अशोक, रक्ताशोकत्वक यहाँ कई प्रकार के एकत्र होते है। यहाँ के कन्ट्रैक्टर इनको एकत्र करके सबको देते है। इस प्रकार सग्रह होकर सारे भारत मे ही नही विदेशो मे जाता है। यह मडियाँ असली नकली व मिश्रण (Adultration) के आवास है। यहाँ से द्रव्य चारो तरफ फैलते हैं। सदिग्धतावर्धक ये केन्द्र है जो औषधि सग्रह केन्द्र है।

अश्वगधा, नागौरी बाजार का असली अश्वगधा नही है (Wilhavea Somnifera) बल्कि यह एक लता की जड है जो निशोथ की तरह होती है। इसकी खेती करते है और कद बहुत पतले होते हैं, टुकडे-टुकडे काटकर सुखाते है। अश्वगधा की भी खेती होती है और जब यह छोटे ही रहते है तब इसकी मूल मासल व नर्म

● सर्पगधा (Rowalfia Serpentina) के साथ सर्पगधा कैनेसैस (R caneses) के मूल प्रचुर मात्रा में मिलाये जाते हैं। सर्पगधा खेती में देर होती है मूल कम सग्रहीत होता है और कैनेसेंस बहुत जल्द फैलता है, जड भी मोटी होती है। लकडी (कांड) भी मिला देते हैं।

होती हे, पुष्पकाल के वाद यह सुत्राधिक होती है तभी इसे सग्रह कर सुखाते है। यह खेती करके मूल सग्रह कर वाजारो मे आती हे। और नागौरी असगध के नाम से हजारो मन विकती हे। जगली असगध की जडें सौत्रिक अधिक होती हे और उनमे स्टार्च का भाग कम होता ह, सूत्र ही सूत्र रहता हे।

इस प्रकार सग्रहीत खेतीकृत व प्राकृतिक द्रव्यो के एक ही पौधे के सग्रहीत द्रव्य मे अन्तर होता हे। शास्त्रो मे मगहकाल जो लिखा ह यह अतीव उत्तम काल है किन्तु कब किसका सग्रह होता है यह विशेष विचारणीय है।

शतावरी—महाशतावरी (गजवेल)—इन का ही सग्रह लीजिये। शतावरी के कद छोटे बीच मे मोटे पार्श्व पतले स्वाद म मीठे होते हे इन्हे सुखाकर सग्रह करते ह। अतः कद मटमैले छोटे वड़े पतले होते हैं।

महाशतावरी (गजवेल)—इसकी जडे भी शतावरी कद की तरह मोटी परन्तु २ गज से ४ गज लम्बी होती है और एक मूल मे एक-एक मन की मात्रा मे कद सग्रह होते है। और इनके ऊपर का छिल्का वडी आसानी से हट जाता ह और सूखकर श्वेत कुछ पतला दा-दो इच के कटे टुकडो मे मिलता व सग्रह होता हे। सग्राहक इसे जल्द सग्रह करते हे और यह अच्छी शतावरी व मूसली दोनो के रूप मे गुजरात व महाराष्ट्र के वाजारो मे मिलती हे और गुण मे भी अच्छी होती है। सामान्य शतावरी, छोटी शतावरी के कद भी मिलते है, परतु वैद्य इस श्वेत शतावरी को अधिक प्रयोग करते है। जानकार ही दोनो के भेद जानते हे सव नहीं। उत्तर प्रदेश, विहार मे भी यह बेल होती ह परतु सग्रह छोटी शतावरी होती है। इधर के वैद्य उस शतावरी को नकली शतावरी मानते है अत प्रचलन व व्यवहार भी सदिग्धतावर्धक हैं।

प्रान्तो के वैद्यो का द्रव्य व्यवहार—भिन्न-भिन्न प्रात के वैद्य एक नाम से, भिन्न द्रव्य प्रयोग करते है। अत. अन्य स्थान के शुद्ध द्रव्य मे भी सन्देह पैदा करते हे। अपराजिता सारे भारतवर्ष मे एक ही नील व श्वेत पुष्प की मानी जाती हे। दक्षिण मे केरल के वैद्य एक पेड़ को अपराजिता मानते है। और अपराजिता श्वेत पुष्प को शखपुष्पी मानते हैं। वगाली रासना वदाराक्सवर्धाई है। उत्तर प्रदेश मे घोडा रासन, रासन, वायसुरई रासना है। पजाव मे एक वीज जो शण बीज की तरह होता है वह रासना है। गुजरात व महाराष्ट्र की रासना गधामूला रासना है। दक्षिण मे कुलिजन की जाति गैलेमा अल्बीनिया की जडे सुगन्धित व वातहर होने से प्रयुक्त होती हैं।

इनका कारण वैद्यो की अज्ञानता नही अपितु हठवादिता है। सुगधमूला एलापर्णी होने से कुलिजन ही रासना क्यो न होगा। व्यवहार मे वदाराक्सवर्ग की जडे (Airyroot) ही रासना है। भले ही उसमे गध न हो, एलापर्णी न हो यह व्यवहार परम्परागत है। शेष वर्णन वे प्रयोग मे नही रखेगे।

उत्तर प्रदेश की पत्र रासना रासन-घोडा रासन पत्र रासन हे। इसकी जड भी सुगन्धित है एलापत्र-वत छोटे पत्र भी होते हैं। वातहर भी हे किन्तु न कविराज बगाल के मानेंगे और न केरल वाले मानेगे। इसमे हठ ही प्रधान और परम्परागत व्यवहार जो शताब्दियो से हो रहा हे कारण हे। इसने अधिक सदिग्धता फैलाई हे।

काकोली-वगाल की अलग गोलदाने की चमकदार श्वेत मासल, देहरादून की अलग और होती है। परम्परा हे। अत हमारी परम्परा व हठवादिता इसमे वाधक है और सदिग्धता मूलक है।

प्रियगु—उत्तर प्रदेश की वास्तविक शास्त्रीय प्रियगु छोटे-छोटे सुगधित दाने है। गुजरात के वैद्य कोई घडला प्रूनस महासेव के मिंगी को मानते है। यह गेहू या बऊ (गुजराती भाषा) के वर्ण के सुगधित छोटे दाने है। प्रयाग करते है। श्री वापालाल भाई की जिद है वह इसे ही श्री यादव जी महाराज की भी यही सम्मति है। यह वीज अरव, ईरान, तुर्किस्तान से सप्लाई होते है। भारत की गृहरौप्य सुन्दर पौधा, दहया, दाया, मोतिया, प्रियगु को नही मानेगे। कई बार समझाने पर भी कहते है हमने आज तक देखा नही था। वास्तव मे सुगधित है किन्तु हम मानेंगे तो घडला को ही, हठ है।

संदिग्धता निवारण के प्रयत्न

सदिग्धता निवारण मे व्यक्तिगत प्रयास—

जब औषधियो के विषय मे सन्देह होने लगा-अच्छे वैद्य भी मन-माना अर्थ करके वस्तु डालने लगे। अमागी-पसारी गोपाल तापस मालाकार (माली) व वनचरो मे भी ज्ञान के लिए लिखा हुआ विचार मिलने लगा, आयुर्वेद की शिक्षा का अभाव होने लगा तब कुछ विद्वानो ने चेष्टा की कि यह भ्रम दूर हो।

(१) अखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल का प्रयास सर्वप्रथम इस दिशा मे प्रारम्भ हुआ। महामण्डल के विशेष अधिवेशनो मे इस पर विचार होने लगा।

प्रतिवर्ष कुछ न कुछ ऊहापोह होता था और कुछ विचार सग्रह होते थे। वैद्य समुदाय अपने विचार प्रकट करते है। विशेषकर (लखनऊ) के महासम्मेलन के अधिवेशन मे विचार हुआ। कुछ निर्णय भी हुआ, किन्तु सर्व वैद्य मान्य न हो सका। अष्टवर्ग, रासना, प्रियगु पर विचार इन्दौर, दिल्ली व लखनऊ अधिवेशनो मे हुआ। वह नगण्य था।

(२) श्री भगीरथ स्वामी—वैद्य श्री भगीरथ स्वामी का प्रयास उपर्युक्त प्रेरणा से हुई। दो भागो मे सदिग्ध औषधि निर्णय यह पुस्तक लिखे मिलते है। स्वामी जी का अदम्य उत्साह वनौषधि सम्बन्धी शास्त्रीय व स्थानिक विवरण पूर्ण साहित्य प्रकाशित हुआ। अद्भुत औषधि विज्ञाता के रूप मे स्वामी भगीरथ जी का प्रयास परमोत्तम व सराहनीय है। किन्तु यह आज भी अलभ्य है। हस्तलिखित ग्रन्थ पुन छपा ही नही वैद्य उसे मानने को तैयार नही।

(३) गुजरात वैद्य सभा ने—"बृहत्त्रयी की वनस्पतियो" के नाम से प्रयास किया। श्री बापालाल जी विशेष सशोधक और लेखक भी थे। इसमे सदिग्ध औषधियो के नाम थे। बहुत प्रयास व परिश्रम किया है, बापालाल जी ने—

(४) सदिग्ध बूटी दर्पण श्री रूपलाल जी वैश्य ने बडे परिश्रमपूर्वक कई भागो मे सचित्र लिखा है। प्रथम भाग छपा है और अन्य भाग प्रकाशित होने शेष है। यह आयुर्वेद के परम हितैषी थे। वनस्पति सम्बन्धी पत्रिका बूटी दर्पण निकालते रहे और यह पुस्तक लिखी। यह वाराणसी के निवासी थे। इसमे सब औषधिया सचित्र है। किन्तु उत्तर प्रदेश के इस वरद पुत्र की सारे जीवन की लिखी औषधियो मे से १ के बाद अधिक भाग प्रकाशित न हो सका और उनकी ख्याति व यश का प्रसार भी न हो पाया। पुस्तक वृहद व उपयुक्त है।

क्रियात्मक औषधि परिचय विज्ञान—

औषधियो की सदिग्धता की वृद्धि और उसके निराकरण के लिए यह ग्रन्थ सचित्र लिखा गया है जिसमे १५० औषधियो का परिचय-परीक्षण रसगुणादि की परीक्षा तथा अणुवीक्षण परीक्षण भी लिखे है। यह ग्रन्थ चौखम्बा सस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी द्वारा प्रकाशित और श्री विश्वनाथ द्विवेदी द्वारा लिखित है। इसमें मधु-कस्तूरी अम्बरादि की रासायनिक परीक्षायें भी दी गई है।

वनौषधि निदर्शिका—इसके लेखक श्री रामसुशील सिंह अध्यापक हिन्दू विश्वविद्यालय है। इसमे प्रत्येक औषधि की शुद्धाशुद्ध परीक्षा भी दी गई है। यह पुस्तक उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित है। इससे सदिग्धता निवारण मे सहायता मिलती है।

गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय के महानिबन्ध—यह एक-एक द्रव्य पर लिखे निबन्ध है। यथा—रास्ना विनिश्चय श्री कनौजिया द्वारा, कुटज विनिश्चय, अश्वगधा विनिश्चय, गुग्गुल विज्ञान, पाषाण भेद विनिश्चय, पुनर्नवा विनिश्चय इस प्रकार ५० द्रव्यो का निश्चय, शास्त्रीय व प्रायोगिक विवरण सहित विनिर्णीत है।

स्नातकोत्तर वि० हि० वि० वि०—इस संस्थान मे कई महानिबन्ध प्रकाशित है। इनमे विशिष्ट-'आयुर्वेद के कतिपय सदिग्ध द्रव्यो का अध्ययन' सर्वोत्तम है।

इसी प्रकार 'वेसिक स्टडी आफ एडाल्टेरेशन इन-प्लांट ड्रग्स एक्सेम्बलीफाइंग आइडेंटिटी आफ नागबला' (P.G T. Sections A. S R जामनगर) का निबन्ध है। इगलिश मे (१) श्री बापालाल जी शाह ने धारावाहिक रूप मे सचित्र आयुर्वेद मे ३५ सदिग्ध औषधियो पर अपना विचार दिया है। (२) अमरकोशनी औषधिया—अमरकोष की औषधियो पर विचार मे श्री बापालाल भाई ने सदिग्धता का अच्छा प्रदर्शन किया है, यह गुजराती मे है।

प हरिप्रपन्न जी—रसयोग सागर की भूमिका मे कुछ सदिग्ध द्रव्यो पर प्रकाश डाला है। पुस्तक सस्कृत मे है।

पत्र-पत्रिकायें—कई मासिक पत्रो मे समय-समय पर सदिग्ध द्रव्यो पर लेख निकलते रहे है। इनमे प्रधान निम्न हैं—(१) सचित्र आयुर्वेद, (२) आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका, (३) धन्वन्तरि, (४) जनरल आफ इण्डियन मेडिकल रिसर्च, हि वि. वि वाराणसी।

सेमिनार व संस्थायें—(१) केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्मित फार्माकोपिया कमेटी के अतर्गत सदिग्ध द्रव्य निर्णायक परिषद् १९६६। इस परिषद् मे निम्न व्यक्ति थे—(१) श्री बापा लाल ग० शाह—कनवीनर (२) श्री प्रियव्रत शर्मा हि वि. वि, सदस्य, (३) श्रीबलवत सिंह जी हि वि वि, सदस्य (४) श्री रामसुशीलसिंह हि. वि. वि, सदस्य (५) श्री विश्वनाथ द्विवेदी आई ए. एम आर जामनगर, सदस्य (६) श्री नाम जोशी बम्बई, सदस्य (७) श्री शिवकुमार मिश्र-सचिव।

इस परिषद् की बैठक भारतवर्ष के कई बडे नगरो मे हुई—जामनगर, बगलौर, त्रिवेंद्रम, कलकत्ता, भुवनेश्वर, मद्रास और वहा की औषधियो का अध्ययन कर एक निर्णय लिया गया। इसकी रिपोर्ट अभी प्रकाशित नही हुई है। निश्चय फार्माकोपिया कमेटी के कार्यालय मे है।

विश्वविद्यालय—कई विश्वविद्यालयो के पाठ्यक्रम मे कुछ सदिग्ध औषधिया है जिन्हे द्रव्यगुण के अध्यापक पढाते है परतु लिखित कोई ग्रथ नही है और न अध्यापको द्वारा निर्णीत ही कोई महानिबध है।

भारतीय चिकित्सा परिषद्—प्रत्येक प्रात मे एक-एक बोर्ड आयुर्वेद यूनानी का है वह. के पाठ्यक्रम मे भी कई सदिग्ध द्रव्य हैं। परीक्षाये हर वर्ष होती हैं किंतु कोई निर्णय अभी तक नही हुआ है और न प्रयत्न ही हुए हैं।

केन्द्रीय भारतीय चिकित्सा परिषद (सी० सी० आर० आई० एम० एच०—सेंट्रल कौसिल आफ इण्डियन मेडिकल रिसर्च एण्ड होमियोपैथी) यह केंद्रीय सरकार द्वारा सङ्गठित आयुर्वेद व यूनानी व होमियोपैथी की सस्था है। मेडिकल कौसिल की तरह इसका भी गठन है। इसके अन्तर्गत १५० यूनिट वनौषधि परिचय, प्रातीय औषधि सर्वे तथा ड्रग स्टैण्डर्डाइजेशन की नियमित कार्य करती है किंतु अभी तक इस परिषद ने एक भी पुस्तक नही प्रकाशित की जिसमे कि वनौषधि निर्णय और आमयिक अन्वेषण पर अतिम निर्णय हो।

केन्द्रीय सरकार द्वारा परिस्थापित—ड्रग्स कमेटी—आयुर्वेद, यूनानी व सिद्ध सम्प्रदाय की औषधियो का नियमित प्रचलन के लिए प्रत्येक प्रात मे ड्रग्स कमेटिया बनाकर इनका कण्ट्रोल करना अभिप्राय है ताकि आयुर्वेद, यूनानी व सिद्ध की औषधियो मे एकरूपता लाई जाय, उनका स्टैण्डर्ड निश्चित किया जाय और भारत भर मे उनका नियन्त्रण हो सके।

इस कमेटी का सदस्य लेखक भी कई वर्षो तक रहा है और अभी भी यह कमेटी जीवित है। इसके

लिए नियम व औषधि परीक्षण के क्रम निर्दिष्ट करना है। कितनी सफलता मिली यह अंतिम प्रकाशन प्राप्त नहीं है। कैसे बिना निर्णय के परीक्षा होगी विचारणीय है सतत् चेष्टा जारी है।

चाहे जो हो जब तक औषधियो का परिचय विज्ञान न तैयार हो औषधि कण्ट्रोल सम्भव नही है। अतः 'धन्वन्तरि' का यह वनौषधि अङ्क नितात समयोचित और आयुर्वेद विकास मे चार चाद लगा देने वाला विशेषाक निर्णीत हुआ है। कितनी सफलता मिली है या मिलेगी यह विद्वान सहृदय लेखको, कर्मठ अन्वेषको और वनोषधि ज्ञाता विद्वानो के सहयोग पर निर्भर है।

सदिग्ध द्रव्य कितने है यहा उनकी सूची दी जा रही है। वैदिक सदिग्ध द्रव्य सूची, सहिताकालीन चरक की सदिग्ध सूची, सुश्रुत की सदिग्ध सूची, वाग्भट्ट की सदिग्ध सूची, भेल सहिता की सूची आदि आगे प्रदर्शित है।

सन्दिग्धता के अन्य कारण

प्राचीनकाल मे द्रव्यो के अध्ययन के लिये एक वैज्ञानिक पद्धति का विकास हो चुका था। किसी भी नवीन द्रव्य का नाम रूप ज्ञान निश्चित करने के बाद उनका प्रयोगात्मक परीक्षण करके पाञ्चभौतिक सगठन रस गुण वीर्य विपाक एव प्रभाव का निर्धारण किया जाता था, इसके पश्चात् ही शास्त्र मे उसे उचित स्थान मिलता था किन्तु कालक्रम से उपर्युक्त वैज्ञानिक पद्धति की शृ खला टूट जाने के कारण औषधि द्रव्यो का वैज्ञानिक अध्ययन शिथिल होता गया, परिणामस्वरूप औषधियो के स्वरूप तथा गुण कर्म सन्दिग्ध होते गये। आदि सहिताओ और निघण्टुओ मे वर्णित अनेक द्रव्य सन्दिग्ध कोटि मे आ गये है, जिसके कारण एक ओर आयुर्वेद की द्रव्य कोटि सकीर्ण होती जा रही है, दूसरी ओर उनके प्रयोग से चिकित्सा भी वचित होती जा रही हैं। पूर्व वर्णित सन्दिग्धता के हेतुओ के अतिरिक्त निम्नलिखित कारण भी सहायक माने जाते है—

१—द्रव्य परिचय विज्ञान के समुचित अध्ययन का अभाव।
२—द्रव्यो के क्रय-विक्रय मे समुचित प्रबन्ध का अभाव।
३—प्रतिनिधि द्रव्यो के ग्रहण मे चिकित्सको का मनमानापन।
४—भिन्न-भिन्न स्थानीय परम्पराओ की विभिन्नता।
५– चिकित्सको मे उदासीनता, आलस्य एव चिकित्सा मे आयुर्वेदेतर औषधियों का प्रयोग।
६—आयुर्वेदीय शिक्षण पद्धति मे योग्य अध्यापको का अभाव। इन पर क्रमश प्रकाश डालेगे।

(१) द्रव्य परिचय विज्ञान के समुचित अध्ययन का अभाव—

आदि काल मे द्रव्यो के स्वरूप का ज्ञान सरलता से इसलिये हो जाता था, क्योकि गुरुकुल एव ऋषिकुलो का स्थान वनो मे रहता था। अध्यापक व छात्र आते-जाते हुए द्रव्यो का दर्शन करते थे और गुरु उन्हे इनका स्वरूप ज्ञान कराते थे जिससे प्रत्येक औषधि के नाम, स्वरूप, जाति और आकृति का प्राकृतिक अध्ययन होता था किंतु आयुर्वेद के परावर्ती आचार्यो ने इस पर पर्याप्त ध्यान नही दिया और उन्हे गोपाल, तापस व वनचरो पर ही आश्रित रहना पडा। परवर्ति निघण्टुओ मे द्रव्यो के पर्याय जो दिए गए उनसे स्वरूप निर्णय के लिए पर्याप्त आधार नही बन पाता। पद्यात्मक रचना के कारण वर्णन बहुत सीमित हो गया और कही २ भ्रमोत्पादक भी बन गया।

(२) द्रव्यो के क्रय-विक्रय मे समुचित प्रबन्ध का अभाव—

हिन्दू राजाओ के शासन काल मे कृषि मत्री और भडार मत्री हुआ करते थे और इनका कार्य यह था कि खाद्यान्न और चिकित्सोपयोगी द्रव्यो को खेती मे और जगलो से एकत्रित करे और उनका समुचित क्रय



विक्रय का नियम बनाते थे। वैदिक सभ्यता के समय से ही इस प्रकार के द्रव्यो का क्रय विक्रय[1] प्रारम्भ हो गया था और भारतीय व्यापारियो से विदेशी व्यापारी औषधि द्रव्य क्रय करते थे और अपने यहाँ के द्रव्य यहाँ बेचते थे, पश्चात् काल मे भी औषधियो के क्रय विक्रय मे मेल जोल करने पर या मिलावट करने पर अथवा अनियमित रूप से बिक्री करने पर दण्ड का विधान था। मनुस्मृति[2] और याज्ञवल्क्य स्मृति[3] मे इस सम्बन्ध के दण्ड निश्चित है, गुप्तकाल से पूर्व मे भी जो देश के व्यापार और वाणिज्य का 'स्वर्ण काल' कहा जाता है, विदेशो से भी व्यापारिक विनिमय होता था, तब औषधियो के क्रय-विक्रय भी सामान्यत स्वभावत उन्नत स्थिति मे था। हर्ष[4] चरित्र मे (७ वी शताब्दी) इसके प्रमाण उपलब्ध होते है, जब आयुर्वेद का अध्ययन और अध्यापन हिमवान के पार्श्व मे न होकर नगरो मे होने लगा तब औषधियो के लिए भी चिकित्सको को बाजार की औषधियो पर निर्भर होना पडा, इस प्रकार द्रव्य परिचय मे भ्रांति और व्यवसायी चातुर्य मे शास्त्रीय और वीर्यवान औषधियो के स्थान पर हीन गुण और अनुपयोगी, औषधियो का प्रचार कर शास्त्र की मर्यादा के अनुकूल प्रभावशाली वीर्यवान औषधियो के स्थान पर हीन गुण तथा अनुपयोगी द्रव्यो का प्रचार प्रारम्भ हुआ और समुचित औषधियो का मिलना दुर्लभ हो गया।

विदेशियो के शासन काल मे क्रय-विक्रय का कोई उचित नियम न रहा। व्यापारी मनमाना द्रव्य खरीदते और बेचते थे। आज स्वतत्रता के २८ वर्ष बीत जाने पर भी औषधियो के सग्रह और सरक्षण का कोई नियम न, कुछ एक द्रव्यो को छोडकर कोई नियत्रण भी नही है। औषधियो के क्रय-विक्रय का सारा भार व्यापारियो, पसारियो और उनके एजेण्टो के हाथ मे है। आयुर्वेद की औषधियो का क्रय-विक्रय करोडो रुपयो के होने पर भी उनका कोई मानदण्ड नही है। भिन्न २ फार्मेसी की एक ही औषधियाँ भिन्न २ रूप और रग की होती है, फिर भी बाजारो मे इनके क्रय-विक्रय पर और उनके मेल पर कोई नियत्रण नही है। इसी प्रकार क्रय-विक्रय के समुचित प्रबन्ध न होने से एक ही द्रव्य विभिन्न स्थान पर विभिन्न नामो के माने जाते है जिनका वर्णन पूर्व मे कर चुके है। आयुर्वेद की उन्नति के लिए बनायी गई कमेटियो की रिपोर्ट मे यह बात स्पष्ट आयी है। डाक्टर आर० एन० चोपडा ने इस सम्बन्ध मे अपनी रिपोर्ट मे स्पष्ट लिखा है। व्यापारी द्रव्यो का नकली स्वरूप बनाकर बाजार मे लाते है। यह क्रम मनुस्मृति के काल से ही था और हिंदू शासन मे उन पर पर्याप्त नियत्रण था किंतु बाद मे इस पर कोई नियत्रण न रहा और आज बाजार मे शुद्ध औषधियो का मिलना नितात कठिन हो गया है यहाँ तक कि नित्य के प्रयोग मे आने वाली औषधियाँ कालीमिर्च, हीग, जीरा आदि भी नकली और मिलावटी पाये जाते है। क्रय-विक्रय पर नियत्रण न होने के कारण सदिग्धता वृद्धि का सूत्र पात नित्य नया होता जा रहा है।

(३) प्रतिनिधि द्रव्यों के ग्रहण में चिकित्सको का मनमानापन--

औषधियो के समुचित सग्रह सरक्षण के अभाव मे चिकित्सको ने प्रतिनिधि द्रव्य लेना प्रारम्भ किया। यह प्रतिनिधि द्रव्य ग्रहण का क्रम वैदिक काल से ही चलता आ रहा है। भारतवर्ष एक विशाल देश है जिसमे छः ऋतुये होती हैं और प्रत्येक ऋतु मे अनेक प्रकार की जलवायु मे उगने वाली भिन्न-भिन्न औषधियाँ, हिमालय प्रदेश मे पायी जाने वाली औषधि सौम्य गुण वाली और विन्ध्य क्षेत्र मे होने वाली औषधियाँ आग्नेय गुण वाली होती

---

१ "भेषज स्नेह लवणगन्धधान्य गुडादिषु।
२ पठ्येषु प्रक्षिपन्हीनं पणान्दाप्यस्तु षोडश ॥" (याज्ञवल्क्यस्मृति व्यवहाराध्याय २४५ श्लोक)
(हीनक्षिपत पणा दण्डस्तु)।
३ "मृच्चर्म मणि सूत्राय काष्ठ वल्कल वाससाम्।
अजातौ जातिकरणे विक्रेयाष्टगुणोदय. ॥" (याज्ञ० व्यवहाराध्याय २४६)
४. (विक्रयेऽष्ट गुणो)।

है। इन औषधियों को विपरीत जलवायु मे उगाना भी सम्भव नही है, यातायात तथा सचार की समुचित सुविधा न होने के कारण ऐसी अवस्था आ जाती है। जब चिकित्सक को आवश्यक औषधि तत्काल नही उपलब्ध होती। किसी द्रव्य विशेष के समय पर उपलब्ध न होने पर समान गुण धर्म वाली औषधि ग्रहण करने का विधान है और उसे ही प्रतिनिधि द्रव्य की सज्ञा दी गई है जैसे सोम के अभाव मे पूतिक और अर्जुन का ग्रहण, चित्रक के अभाव मे दन्ती का, मूर्वा के अभाव मे जिंगिणी की त्वचा का प्रयोग, लक्ष्मणा के अभाव मे नीलकण्ठ शिखा का प्रयोग प्रतिनिधि स्वरूप मे माना जाने लगा। इससे दिन-पर दिन स्थिति बिगड़ती चली गई। इसमे सदिग्धता को और बढावा मिला। दुर्भाग्यवश यह प्रथा चिरकाल से चली आ रही है अत प्रतिनिधि ग्रहण की परम्परा ने भी एक द्रव्य के नाम पर कई द्रव्य ग्रहण करने का आधार उपस्थित कर दिया।

टीकाकारो द्वारा सदिग्धता पैदा की गई मात्रा अधिक है—

अमरकोष के टीकाकार भानुजी दीक्षित व क्षीरस्वामी प्रसिद्ध है। इन लोगो ने कोष्पो के आधार पर टीकाये की। इसमे की वनौषधि वर्ग की टीका मे बडी त्रुटियाँ प्रदर्शित है। ये टीकाकार वैद्य न थे और कही-कहीं अपनी तरफ से जो लिखा है भ्रमावह बन गया है।

उदुम्बर के पर्याय मे—उदुम्बर व काष्ठोदुम्बर दोनो पर्याय हैं।

गूलर पर्याय—उदुम्बर जन्तुफल यज्ञाग-हेमदुग्धक.।

कठगूलर-काकोदुम्बर—काकोदुम्बरिका-फल्गु, मलयू, जघनेफला।

भयेजी दीक्षित ने काकोदुम्बरिका को-कदुम्बरी इतिख्यास्य

डल्हण—फल्गु काकोदुम्बरिका (चि ९ अ ५९)

चक्रदत्त—काकोदुम्बरिका फल्गु-दुमट इतिलोके।

अन्य निघटुकार—उदुम्बर-काकोदुम्बर यह अमर की टीका की नकल है।

आचार्य यादव जी—काकोदुम्बर से अजीर अर्थ करते है।

महाभारत मे—अजीर शब्द है—मुजातकोस्तथाजीरान् दाडिमान-बीजपूरकान्।

कतोमट्ट अजीर मजुल गेह काकोदुम्बरिका फलम्

मदनपाल—तस्मादल्पगुण ज्ञेयमजीर लघु वा गुणै।

श्री लक्ष्मीराम स्वामी—अजीर इति-काकोदुम्बरिका फलमिति वृद्धाः। चरक ने फल्गु व उदुम्बर दोनो का गुण लिखा है।

अजीर—एशिया माइनर का द्रव्य है। वेल्थ आफ इण्डिया यह एशिया माइनर से इधर व्यापार मे आता है। अत अजीर को भिन्न मानना और फल्गु के अर्थ मे मानना चाहिये या फल्गु को काकोदुम्बरिका फलम् मानना चाहिये। यह सदिग्धता पैदा होती है।

तर्पणं बृंहण फल्गु गुरु विष्टम्भि शीतलम्। —च. सू अ. २७।१२८

विष्टम्भि मधुर स्निग्ध फल्गुज तर्पणं गुरु॥ —सु. सू. अ. ४६।१७१

इन उद्धरणो के देने का अर्थ यह है कि उदुम्बर—काष्ठोदुम्बर के पर्याय पृथक होने पर भी अमरकोष के पर्याय मे यह मिश्रित होने से यह शकायें हो गईं कि काकोदुम्बर-उदुम्बर दोनो एक हैं या पृथक।

सदिग्धता की वृद्धि करने वाले विद्वान टीकाकार, ग्रथ लेखक व वनस्पति शास्त्री—

टीकाकार—

(१) चरक सुश्रुत व वाग्भट्ट के कई टीकाकार हो चुके है, उन टीकाकारो ने बडे परिश्रम व पाडित्य के साथ सहिताओ की टीकाये की हैं जिनमे चरक सहिता के प्रसिद्ध टीकाकार चक्रपाणिदत्त, कविराज गगाधर तथा

सुश्रुत के टीकाकार डल्हण, कविराज चक्रपाणिदत्त तथा वाग्भट्ट के टीकाकार अरुणदत्त प्रसिद्ध है। भिन्न-भिन्न स्थान पर एक ही द्रव्य की टीका को देखने पर स्वय भ्रम उत्पन्न हो जाता है कि आखिर इन टीकाकारो को उचित द्रव्य का ज्ञान था या नही। एक ही द्रव्य के कई नाम भिन्न-भिन्न स्थान पर स्वयं लेते है। इनमे कोई टीकाकार वगाली हैं वे टीका मे द्रव्य का वगला नाम लिख देते है। इसे इतरदेशीय नही समझ पाते, वही उसी नाम के द्रव्य को एक पर्याय देते है उसी नाम के द्रव्य का दूसरा नाम दूसरे स्थान पर दे देते हैं। अत भ्रम हो जाता है। चरक सहिता मे इस प्रकार सदिग्ध सूची मे ५९ सख्या के द्रव्य सग्रहित है और इस विषय पर स्नातकोत्तर महानिवन्ध "चरक की अनिर्णित औषधियाँ" इस महानिबन्ध मे देख सकते हैं ज्ञानार्थ एक-दो उदाहरण दे रहे हैं। ये महानिवन्ध स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र जामनगर मे लिखा गया है। सवका विवरण देना सम्भव नही है अतः कुछ उदाहरण यहा पर देते हैं यथा—

कविराज गगाधर जल्पकल्प तरु टीका—चरक मे

गडीर १—चरक सूत्र स्थान अ० ४-११-१५ पर गडीर को शालञ्ची शाक लिखते है।

२—चरक सूत्र स्थान अ० २७-१७१ पर समष्ठिला इतिलोके।

३—चरक चिकि० स्थान २-६७ दूर्वा।

४—चरक विमान स्थान अ० ८-१५१ पर गडीर पुष्पी लिखते हे।

कविराज चक्रपाणिदत्त

१—गडीर से चरक सूत्रस्थान अ० ४-११-१५ समठशाक।

२—चरक सू० स्थान अ० २७-१७१ पर रक्त कटुत्वने हरित वर्गे शुक्ल जलज शाक वर्गे।

३—चरक चि० स्थान अ० २-६७ पर शमठभेदः।

४—चरक विमान स्थान अ० ८-१५१ पर गंडीर पुष्पी लिखा है

ज्ञातव्य – गगाधर और चक्रपाणि इन दोनो टीकाकारो को यह निर्णय नही है कि शमठशाक लेना चाहिए अथवा शालञ्ची, शमष्ठीला अथवा दूर्वा। एक ही पाठ पर दूर्वा या शमठभेद लिख करके यह दोनो टीकाकार भ्रम पैदा कर रहे हैं।

उदाहरण न० २

चोरक गगाधर न० १ चरक सू० स्थान, अ० ३ सूत्र २४ पर

चोरक चोरपुष्पी न० २ च० चि० स्था० अ० ९ सूत्र ४५ पर

स्थलज चोरपुष्पी च० चि० स्था० अ० ९ सूत्र ५७ पर विडग इति लोके।

कविराज चक्रपाणिदत्त इन्ही प्रसगो मे १—चरक सू० ३–२४ पर चोरक चोरपुष्पिका।

२—च० चि० स्था० ९–४५ चाण्डालक

३—कल्प स्थान १–२३ पर गन्ध द्रव्य स्वनामख्यात।

इसी प्रकार चण्डा के लिए गगाधर जी सूत्र स्थान अ० ३-८ पर चोरपुष्पी और कविराज चक्रपाणि इसी स्थान पर चोरपुष्पी और चरक सूत्र स्थान अ० ४–२६ पर चोरहुली लिखते है।

ऊपर के उद्धरणो से चोरपुष्पी क्या हे चोरक है अथवा चण्डा या विडग है भ्रम पैदा कर देते है, चोरक सुगध द्रव्यो की गणना मे आता है अत इन कविराजो का चोरक वही है या कुछ और यह सन्देह हो जाता हे।

चरक ने हरित वर्ग एव शाक वर्ग मे गण्डीर की गणना की है, इसके भेद को वताते हुए चक्रपाणि दत्त ने चरक सू० स्था० अ० २७–११७ पर इस प्रकार परिचय दिया है यथा "गण्डीरो द्विविधो रक्त शुक्लश्च।

तत्र तो रक्ता सहिकटुत्वेन हरित वर्गे पठ्यते यस्तु शुक्ल जलज सशाक वर्ग पठित इति नैकत्र्य वर्गद्वय पाठ" अर्थात गण्डीर के दो भेद है। रक्त और श्वेत-हरित वर्ग मे रक्त गण्डीर का विधान करना चाहिए क्योकि वह रस में कटु है शुक्ल जाति का गण्डीर जलज है जलीय प्रदेश मे उत्पन्न होने वाला है उसका शाक वर्ग मे ग्रहण किया गया है। पुनश्च चरक ने गण्डीर की गणना अम्लस्कन्ध और कटुस्कध मे किया है अर्थात गण्डीर अम्ल रस और कटु रस वाला है इससे सिद्ध होता है कि इसी कारण से हरित वर्ग वाले गण्डीर को रक्तपित्त के हेतु उपनिदान भूत कहा गया है। यह कुछ युक्ति-युक्त मालुम होता है इन्होने सुश्रुत सहिता की भानुमति व्याख्या मे शमठ शाक लिखा है। डरहण ने स्थलज गण्डीर को हरित शाक बताया है और जलज गण्डीर को जल पिप्पली लिखा है।

(सु० चि० स्थान अ० ४)

यहाँ तक दोनो टीकाकार गण्डीर को शाक वर्ग मे मानते है और दोनो सहमत हैं किन्तु सुश्रुत ने आगे चलकर सु० स्था० अ० ४५–१२३ पर स्नेह सार कहकर गणना की है इससे यह ज्ञात होता है कि गण्डीर काष्ठ जाति एक स्निग्ध वृक्ष है यहाँ पर यह सन्देह हो जाता है कि गण्डीर शाक है अथवा काष्ठ विशेष है। अब वाग्भट्ट के टीकाकारो को देखिये—

अष्टाग हृदय मे वत्सकादि गण मे गण्डीर का उल्लेख है। इसके दो टीकाकार हैं अरुणदत्त और हेमाद्री। इन दोनो ने यहाँ गण्डीर का अर्थ स्नूही लिखा है अर्थात थूहर (सेहुण्ड)। चक्रपाणिदत्त ने गण्डीर को शमठ कहा है और लिखा है "गण्डीरिका स्नूही अन्येतु मञ्जिष्ठा"। अमर कोप मे गण्डीर को शमण्ठीला लिखा है। टीकाकार भानुजी दीक्षित ने निम्न नोट दिया है-—

द्वे गाण्डरदूर्वा-इति ख्यातस्य आनूपजशाक भेदस्य गण्डीनी इति भापा अर्थात भानूजी दीक्षित गण्डीर को गण्ड दूर्वा मानते है। धन्वन्तरि निघण्टु और राजनिघण्टु दोनो ने स्नूही के पर्याय मे गण्डीर नाम दिया है। कोपकारो मे हेमचन्द्राचार्य ने शाक काण्ड मे गण्डीर और शमष्ठीला का विवरण दिया है। इस प्रकार टीकाकार, कोपकार और निघण्टुकार इनका मतैक्य नही होता।

प्रान्त भेद से विद्वानो का विचार ही भिन्न है—स्वर्गीय प० हरिप्रपन्न जी गण्डीर को गरभर मानते हैं। श्री वापालाल शाह भी इसी को दोहराते है।

स्वर्गीय श्री वामन गणेश देशाई गण्डीर को तण्डुलीयक का एक भेद मानते है।

इस प्रकार विचार करे तो उत्तर प्रदेश मे गण्डीर मे गाडर जल पिप्पली का बोध होता है जिसका शाक भी बनता है। वास्तव मे चरक ने हरित शाक वर्ग मे पाठ करके शाको के रूप मे गण्डीर का वर्णन किया है, यह वास्तव मे तण्डुलीयक चौलाई रक्त और श्वेत वर्ण के भेदो से दो प्रकार का होता है और बगाली लोग भी इसे डण्डाशाक कहकर खूब प्रयोग करते हैं फिर इनका शमठशाक क्या है यह भ्रमोत्पादक है। इस प्रकार एक दो नही कई ऐसे द्रव्य है जिनमे कि टीकाकार भिन्न मत रखते है जैसे नाकुलीकन्द, रास्ना, अम्लवेतस, चुक्र, अम्लिका इत्यादि अनेको शब्दो का अर्थ जो बहुत ही सरल अर्थवाचक हैं संदिग्ध बना दिये गए हैं। यह सम्भव है कि प्रसग-वश एक शब्द के कई पर्याय होने से भिन्न २ द्रव्य ग्रहण किए जाते है और उनका लिया जाना उचित भी है किंतु इतना भेद करना संदिग्धता को बढावा देना है। इस प्रकार इन टीकाकारो द्वारा बरबस सदेह उत्पन्न कर दिया गया है।

(४) भिन्न-भिन्न स्थानीय परम्पराओ की विभिन्नता—

भारतवर्ष जैसे विशाल देश मे जहाँ प्रत्येक प्रदेश की अपनी-अपनी परम्परा और विशेषताये हैं विभिन्नता का स्वरूप धारण किया। एक द्रव्य सर्वत्र सुलभ न होने के कारण समान गुण धर्म वाले द्रव्य उस नाम पर लिये जाने लगे और इन्होने परम्परा मे समाविष्ट होने का स्वरूप धारण किया। इस परम्परा मे टीकाकारो ने

भी विशेष वृद्धि की। पूर्व मे बतला चुके है कि सुश्रुत सहिता के प्रसिद्ध टीकाकार डल्हण, चरक सहिता के टीकाकार चक्रपाणि और कविराज गगाधर ने तथा वाग्भट्ट के टीकाकार अरुणदत्त ने इन विभिन्नताओ का उल्लेख किया है जिसका प्रभाव यह हुआ कि अनेक द्रव्य सदिग्ध कोटि मे पहुच गये और एक नाम से अनेक द्रव्य विभिन्न प्रदेशो मे प्रचलित हो गये, जिनका परिणाम आज यह हुआ है कि रास्ना, मूर्वा,एलवालुक इत्यादि शब्दो से कई प्रकार के द्रव्य प्रयुक्त होने लगे। इस प्रथा ने सदिग्धता के वर्धन मे विभिन्नता का जन्म देकर सदिग्धता के बढाने मे अत्यधिक सहयोग किया।

(५) चिकित्सको मे उदासीनता, आलस्य एव चिकित्सा मे आयुर्वेदेतर औषधियो का प्रयोग—

नगरो व शहरों म रहने के कारण चिकित्सक प्राकृतिक वनस्पतियो के सम्पर्क से दूर होते गये और उनका सम्पर्क विच्छिन्न होता गया। प्रैक्टिस करने वाले चिकित्सक नगरो से बाहर जाने मे उदासीन होने लगे। समय पाकर भी आलसी होने के कारण वे बाहर न जा सके। प्रैक्टिस मे लगे रहने के कारण अर्थ लोलुप चिकित्सक पूर्ण रूप से औषधियो के प्रकृति विज्ञान से विमुख होते गये। शिक्षा मे मिश्रित प्रणाली की शिक्षा पाकर ७५ प्रतिशत वैद्य आयुर्वेद की औषधियो के प्रयोग को छोडकर आधुनिक औषधियो का खुल्लम-खुल्ला प्रयोग करने लगे। आयुर्वेद के प्रति रहा सहा स्नेह भी समाप्त हो गया—क्वाथ, चूर्ण, अवलेह-वटी, आसव, अरिष्ट के विषय मे तो ये चिकित्सक अज्ञान तिमिर मे गोते लगाने मिले।

आयुर्वेदिक कालेजो से निकलने वाले ये स्नातक औषविज्ञान विरहित होते गये। यही नही इनके शिक्षक भी इन्ही की तरह बल्कि इनसे बढे हुये मिले। द्रव्य गुण के नाम पर कुछ द्रव्यो के नोट लिखा देते थे और लिखाते है। उत्तीर्ण करने की कला मे पारगत ये धुरन्दर आयुर्वेद के स्नातक आयुर्वेद पर अपना विश्वास खो बैठे और उनके गुरु और भी पारगत निकले।

इस प्रकार आज वनौषधियो के प्राकृतिक जीवन से अनभिज्ञ हो उससे दूर होते गये और सदिग्धता ही नही उनका विश्वास आयुर्वेद मे डिगने लगा —जडी बूटिया उनके लिए अज्ञात बन गई। सदिग्धता का बाजार गर्म हो गया।

दूसरी तरफ डाक्टरो की तरह आयुर्वेद की तैयार औषधिया आधुनिक क्रमानुसार बाजारो मे बिकती थी और बिक रही हैं। २५ प्रतिशत जो शेष थे वे भी बनी बनाई औषधि कल्प का प्रयोग करने लगे और वनौषधि ज्ञान से कोसो दूर होने लगे। आज ऐसे चिकित्सक वनौषधि के नाम पर त्रिफला-त्रिकटु के विशुद्ध द्रव्य न जान पावें तो आश्चर्य क्या है। उनका दोष नही इनके गुरु वा अभिभावको और स्नेहियो मे वनौषधि ज्ञान तिरोहित हो रहा है। यह सदिग्धता के साम्राज्य की वृद्धि मे भरपूर सहायक है।

आयुर्वेदीय शिक्षण पद्धति मे ह्रास— प्राचीन काल मे गुरुकुल व ऋषिकुलो मे शिक्षा दी जाती थी। इन कुलो के प्राकृतिक पृष्ठ भूमि मे अवस्थित होने के कारण वनौषधियो का पूर्ण परिचय एव क्रियात्मक शिक्षण प्राप्त होता था। प्रत्येक छात्र औषधियो की पहचान व उनके गुण कर्म के ज्ञान मे यह उदासीन है। ज्ञान उनसे अधिक दूर होता जा रहा है। अध्यापन की पद्धति ही निकृष्ट होती जा रही है। अशिक्षित अनुभवहीन अध्यापक छात्रो की आकाक्षाये पूरी नही कर पाते। आधुनिक विषय के शिक्षक अपने विषय के भाषणो को जितना स्पष्ट व ज्ञानप्रद बनाते है आयुर्वेद के शिक्षक अपने विषय को रुचिपूर्ण व सँतोषप्रद नही बना पाते। परिणाम होता है कि छात्र आयुर्वेद के विषयो से उदासीन होते जाते है। उनमे उनका आकर्षण नही होता। भारतवर्ष के आयुर्वेद विद्यालयो के सर्वेक्षण काल मे लेखक ने इसे स्वय देखा है। अध्यापक श्लोक वाचने व अर्थ कर देने को अध्यापन मानते है। उसमे के निहित विषय को स्पष्ट करने मे ध्यान नही देते।

अव छात्र अध्ययन ही नही करना चाहता । वह वात-वात मे हडताल और धमकी भरे शब्दो का प्रयोग करता है अध्यापक का आकर्षण समाप्त हो जाता है। अच्छे चिकित्सक व शिक्षक भी उदासीन होते जा रहे है। अत शिक्षा प्रणाली दोपवती वनती जा रही है। वनौपधियो व उनके कल्पो का ज्ञान स्नातकोत्तर शिक्षण सस्थानो मे भी नही होता।

शिक्षा पद्धति मे शुद्ध आयुर्वेद का अ श कम और अन्य पद्धतियो का अ श अधिक होता है। स्नातकोत्तर शिक्षण सस्थाओ मे भी शिक्षक समय से न तो क्लासो मे जाते हैं और न ही चिकित्सकीय आतुरालयीय शैय्या स्थानिक ज्ञान शिक्षणार्थ पहुचते है।

अत शिक्षण ही नही होता-पद्धति का विकास भी तव अवरुद्ध है। अस्तु विज्ञान की प्रवृत्ति ह्रासोन्मुख हो रही है।

पहले औपधियो के सम्वन्ध मे पूर्ण परिचयात्मक ज्ञान एव क्रियात्मक शिक्षण प्राप्त होता था। प्रत्येक छात्र से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह सव औपधियो को पहचाने और उनके गुण धर्म व प्रयोग जाने किन्तु आज यह आशा क्षीण होती जा रही है। कालक्रम से शिक्षण पद्धति ह्रासोन्मुख होती जा रही है।

जीवक का उदाहरण स्मरण होगा कि जव वह अपनी शिक्षा समाप्त कर चुका तो उसकी जिज्ञासा और वढी। गुरु ने कहा कि जाओ पाँच मील के अन्तराय मे ऐसी कोई औषधि ढूढ लावो जिसके गुण व कर्म का ज्ञान तुम्हे न हो। अथवा वह औपधि निरर्थक हो। वह आचार्य की आज्ञा से उसे ढूढता रहा। कई दिनो के परिश्रम के वाद भी निरर्थक वा गुणहीन औषधि न पा सका। गुरु की सेवा मे लौटा और वडे दु ख से कहने लगा-गुरुदेव ! कोई भी औषधि निरर्थक व गुणहीन न मिली। गुरु प्रसन्न हुए और आशीर्वाद दिया कि तुम्हे औपधि ज्ञान हो गया हे अव जा सकते हो। हमारे आयुर्वेद विद्यालयो मे यह आकर्षण कहाँ है ?

संदिग्ध ग्रन्थों के निर्णय की प्रणाली क्या हो ?

सदिग्ध द्रव्य निर्णय परिपद ने एक निम्नाकित पद्धति का अध्ययन करना उचित माना है यथा—

(१) आयुर्वेद ग्रन्थो मे वर्णित वानस्पतिक परिचय, गुणधर्म और आमयिक प्रयोगो का अध्ययन।

(२) टीकाकारो और उनके द्वारा उद्धृत मतो का अध्ययन।

(३) यदि एकार्थक पदो द्वारा उत्पन्न सदिग्धता हो तो प्रसङ्गानुसार उसका अध्ययन।

(४) स्थानीय परम्परागत नामो और प्रयोगो का अध्ययन।

(५) वनस्पति शास्त्र के अर्वाचीन ग्रन्थो तथा सम्वद्ध वाङ्मय का अध्ययन।

(६) द्रव्य परिचयात्मक व गुण कर्म परिचयात्मक परीक्षण एव आतुरीय परीक्षणो द्वारा अतिम निर्णय। (परिपद् की आठवी बैठक २०-२६ जुलाई १९६७ का कार्यविवरण पृष्ठ ६-७ पर देख सकते है।) आर्ष ग्रन्थो मे इससे वहुत विषद विवरण द्रव्यो के अनुसधान व परिचय के निर्णयार्थ निर्दिष्ट हे। चरक सहिता विमान स्थान ८/८७ पर इसका निम्न उल्लेख है[1]—

(१) द्रव्य के प्रकृति विज्ञान का अध्ययन नाम, जाति, रूप, रचना आदि की स्थिति का वाह्याभ्यतर रचना का ज्ञान (Pharmecognosy)।

(२) गुण व प्रभाव का अध्ययन (Pharmacology)

(३) द्रव्य के उत्पत्ति स्थल देश विज्ञान का अध्ययन (Ecology)

---

१ इदमेव प्रकृति, एव गुणमेव प्रभावमस्मिनदेशे जातमस्मिमृणमेव संगृहीतमेव निहितमेवमुपस्कृतमनया च मात्राया युक्तमस्मिन् व्याधावेव विधस्य पुरुपस्मे तावत दोपमपकर्पयत्युपशमयति वा। —च वि अ ८

(४) संग्रह और संरक्षण (Method of collections & storage)
(५) कल्प विज्ञान (Pharma cential Preperation)।
(६) मात्रा विज्ञान (Posology)।
(७) आमयिक प्रयोग (Theraputics)।
(८) आमयिक पुरुप विज्ञान (Cemical statestics)
(९) दोप गुण प्रभाव अध्ययन (Final effect of the drug)

अर्थात् शास्त्रीय अध्ययन प्रणाली से-द्रव्य की जाति क्या है, इसकी आकृति क्या है। पत्र, पुष्प, फल, मूल, काड त्वक आदि का क्या स्वरूप है, इसकी रचना कैसी है, इसमे रस, गुण, वीर्य, विपाक प्रभाव क्या है, किस देश मे पैदा होती है तदनुसार पाचभौतिक सङ्गठन है या नहीं, किन दोषो का शमन करती है, किनको प्रकुपित करती है, कब इसका संग्रह करना चाहिये, इसकी संरक्षण विधि क्या है, कितने प्रकार के कल्प संस्कारित करने पर होगे, उनकी मात्रा क्या है? किन-किन रोगो मे किन-किन दोषो की प्रधानता मे कितने अंश मे दोष रहने पर इसका प्रभाव तत्काल होता है और किन-किन लक्षणो का प्रशमन करती है, किन रोगो पर इसका तत्कालिक प्रभाव होता है इत्यादि।

इतने विषय का अध्ययन करके एक-एक द्रव्य के अध्ययन करने का क्रम प्राचीन काल मे था। अब जाति, आकृति, प्रकृति विज्ञान, द्रव्य का पता न होने व अध्ययन की कमी से बनौषधि का ज्ञान नहीं हो पाता। द्रव्य के अध्ययन की यही प्रणाली होनी चाहिये।

अज्ञात व संदिग्ध औषधि—अज्ञात औषधियो पर विचार करने पर निम्न स्थिति का ज्ञान होता है, जिनको संदिग्ध कहा जाता है, वह कई भागो मे विभक्त होती है। आयुर्वेद के इतिहास और विशाल साहित्य के अध्ययन करने के बाद ऐसा ज्ञात होता है कि ज्ञान के अभाव के कारण औषधियो को संदिग्धावस्था मे रख दिया गया। इनको निम्नलिखित रूप मे वर्गीकरण किया जा सकता है।

द्रव्यात्मक संदिग्धता—इसे दो हिस्सो मे बाँटा जा सकता है। (१ ज्ञात (२) अज्ञात।

(१) ज्ञात—जो द्रव्य और विषय ज्ञात है, उनमे विशाल साहित्य होने के कारण अनुशीलनाभाव से विवादास्पद स्वरूप बन गया है। इसमे कोशकारो का विशेष हाथ है। जैसे —

संहितोक्त साहित्य –आयुर्वेद मे संहिताओ की संख्या बहुत अधिक है। उनमे जो औषधि सम्बन्धी पर्याय आये है,उनका भिन्न-भिन्न अर्थ प्रकरण,व्याधि और प्रसंग के अनुसार भिन्न-भिन्न होता गया। भिन्न २ टीकाकारो ने एक ही द्रव्य के भिन्न २ अर्थ, प्रकरण और प्रसंग के अनुसार लगाया है। इस पर विचार न करके बहुत से चिकित्सक एक ही द्रव्य के अर्थ मे वैविध्य का अनुमान करने लगते है और टीकाकारो पर संदेह का प्रश्न उठाते है। अतः संदिग्धता न होते हुए भी उद्भावित हो जाती है। इस मत वैभिन्य के कारण संदिग्धता का स्वरूप बन जाता है। यह संहितोक्त भ्रम का स्वरूप है।

१. निघन्टुकारो द्वारा— निघन्टुओ के वर्णन का क्रम श्लोक बद्ध है। जो निघन्टु अब तक पाये जा रहे हैं वे दो प्रकार के है। नं० १—जो चिकित्सक भी है और निघन्टुकार है जैसे – धन्वन्तरि निघण्टु, राज निघण्टु, कैय्यदेव निघण्टु आदि है। इनमे औषधियो के नाम पर्याय और गुण-कर्म का भी उल्लेख है।

२ एक वर्ग वह है जो केवल शब्द पर्याय ही लिखता है। गुण-कर्म का विवरण उनमे नही होता। जैसे—अमरकोश, मेदनी कोष, शिवकोष- वोपदेव कोप इत्यादि। इन्होने केवल शब्द पर्याय एकत्र कर एक औषधि के कई पर्याय एक साथ लिखे है। इनके टीकाकार भी इसी प्रकार के रहे है किन्तु टीका लिखते समय अपने ज्ञानानुसार उनके स्थानीय नाम भी दिए है। इसमे यदि एक द्रव्य के दो या तीन भेद हैं तो सबके पर्याय संग्रहीत

कर दिए हैं। ये टीकाकार उच्च श्रेणी के वैयाकरण व अन्य शास्त्रो के विद्वान रहे है। यह निसंदेह है। किन्तु औषधि पर्याय के सबध मे यथा बुद्धि उन्होने लिखा है, क्योंकि वे चिकित्सक नही थे। जैसे -भानु जी दीक्षित व अन्य अमर कोप आदि के टीकाकार। आयुर्वेद के निघण्टुकारो ने भी कुछ निघण्टुकारो ने जैसे-राज निघण्टुकार ने और मदनपाल निघण्टु, शालिगग्राम निघण्टु आदि ने पूर्व के सब निघण्टुओ के पर्याय एक साथ ही लिख दिये है। कहीं-कहीं पर इन लोगो ने स्थानीय सज्ञाओ को भी पर्यायबद्ध कर किया है, जिनका व्याकरण से कोई अर्थ सिद्ध नही होता। जैसे—राज निघण्टु ने "बृहती कण्टकारी" के नाम पर 'डोरली' शब्द का प्रयोग किया है। इनका अर्थ निकालने पर पूरा अर्थ नही बनता। यह शब्द महाराष्ट्र मे व आदिवासियो मे इसी नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार बहुत से शब्द है जिनका प्रयोग पर्यायो मे दिया गया है। इसी प्रकार अज्ञात की एक श्रेणी बन जाती है।

(२) अज्ञात--वेद व सहिताओ मे बहुत से औषधियो के नाम आये है। उनमे से कुछ के लक्षण दिये गये है। कुछ बिल्कुल अज्ञात है। अतएव श्रेणी विभाजन इस प्रकार बन जाता है।

१—अज्ञात -(i) वेदोक्त अज्ञात द्रव्य।
(ii) सहितोक्त अज्ञात द्रव्य।
(iii) निघण्टु के अज्ञात द्रव्य।

२-ज्ञात परन्तु विवादास्पद—
(i) सहितोक्त विवादास्पद द्रव्य।
(ii) निघण्टूक्त विवादास्पद द्रव्य।

यह सदिग्धता जैसा कि पूर्व मे कहा है। पर्याय वैविध्य के कारण भी हुआ है। इनके निम्न वर्ग बन सकते हैं -

१—शास्त्रोक्त अनेकार्थक द्रव्य।
२—टीकाकारोक्त मतभेदात्मक द्रव्य।

इस विभाजन के अनुसार सदिग्ध व अज्ञात द्रव्यो की नामावली आगे दी जा रही है।

(१) वेदोक्त अज्ञात द्रव्य

नाम	सन्दर्भ		नाम	सन्दर्भ
१. आङ्गीरसी—	अथर्व वेद	८-७-१७	१३ पीवला	अथर्व वेद ६-५९-३
२ अपक्रीता —	,, ,,	८-७-११	१४ तौविलिका	,, ६-१६-१
३. काण्डिनी —	,, ,,	८-७-४	१५ प्रमदनी	,, ४-३७-३
४ एकशुङ्गा—	,, ,,	६-७-४	१६ दशवृक्ष	,, २-१९-१
५ महन्रात्त--	,, ,,	४-२०-६	१७ विश्वरूपा	,, ९-५९-३
६ केश वृहणी—	,, ,,	६-२६-३	१८ सहस्रपर्ण	,, १९-३२-१
७. क्लीव करणी—	,, ,,	६-१-३८	१९ पाटा	,, ९-२७-१
८ कृत्यादूषिणी	अथर्व वेद		२० वलामनशिनी	,, ८-७-१०
९ नग्नासा	,,	६-१५	२१ बृहस्पति प्रसूता	ऋग्वेद १०-९७-१५
१० पीला	,,	६-२७-३	२२ रोहिणी	अथर्व वेद ४-१२-१, ८-७-१
११. नरादी	,,	४-३७-३	२३ अरुन्धती	अथर्ववेद ६-५९-१
१२ जीक्षगवी	,,	४-३७-३	२४ [illegible]	[illegible]



नाम	सन्दर्भ	नाम	सन्दर्भ
२५ राजिल्वरि	ऋग्वेद १०-९७-३	३१ अजश्रृङ्गी	अथर्व ४-३७-१
२६ धननिमन्ति	,, १०-९७-८	३२. हरित भेषज	,, ४-९-३
२७. सीरा	,, १०-९७-९	३३ सोमलता	ऋग्वेद ९-१-९
२८ सुभगा	अथर्व. ६-२९-२	३४ उदम्बर मणी	अथर्व वेद १९-३१-१
२९ स्वनिनि	यजुर्वेद ४-१	३५ फग्लमणी	,, १९-३१-१
३० जङ्गिण.	अथर्ववेद २-४-१	३६ पर्णमणि	,, १०-३-१

आयुर्वेद के संहिता ग्रंथो में वर्णित ११३ संदिग्ध वनौषधियों की सूची —

१ अम्लवेतस, २. अशोक ३ एलवालुक ४ स्पृक्का ५ पुष्करमूल, ६ सारिवा ७ ककुष्ठ ८ कुष्ठ ९ जीवंती, १० रास्ना ११ प्रियगु १२. पर्पट १३ तालीस १४ रुद्रवती १५ नागदमनी १६ अश्मतक १७ लामज्जक १८ जीवक १९ ऋषभक २०. काकोली २१. क्षीरकाकोली २२ ऋद्धि २३ वृद्धि २४ मेदा २५ महामेदा २६. वृद्धदारुक २७. मेषश्रृङ्गी २८. त्रायमाण २९ नागकेशर ३० कर्कट श्रृङ्गी ३१ क्लीतनक ३२. मूर्वा ३३ शालि-पर्णी ३४ पृश्निपर्णी ३५ नाकुली ३६. निर्विषी ३७ विडग ३८. काकनासा ३९ महाबला ४०. गागेरुकी ४१. तुवरक ४२ अम्लिकाकन्द ४३. सर्पाक्षी ४४. मत्स्याक्षी ४५ प्रसारिणी ४६ तगर ४७ अगरु ४८ वालक ४९ गभारी ५०. काडीर ५१ चव्य ५२. गजपिप्पली ५३ तुरुष्क ५४ सप्तला ५५ मयूरशिखा ५६ वंशलोचन ५७ वलाहक ५८ क्रौंच ५९ कर्कोटक ६०. कालकूट ६१ पालक ६२. इन्द्रायुध ६३. मेधक ६४. कुशपुष्पक ६५ हालाहल ६६. मुग्ध ६७ गर्गरक ६८ करघाट ६९ करभ ७० महाकरभ ७१ हिज्जल ७२ सर्पपक ७३. कर्दमक ७४ वैरातक ७५ ऐन्द्री ७६. क्षीरपुष्पी ७७ ब्रह्म सुवर्चला ७८ .काष्ठ गोधा ७९. सर्पा ८०. पद्मा ८१.अजा ८२ नीला ८३ अजगरी ८४ श्वेत कापोती ८५ कृष्ण कापोती ८६ गोनसी ८७ आदित्यपर्णी ८८ महावेगवती ८९ कटमी ९० सोममेदके अंशुमान ९१. मूंजवान ९२ चन्द्रमा ९३. रजतप्रभ ९४. दूर्वासोम ९५ कनीय सोम ९६ श्वेताभ सोम ९७ प्रताप वान सोम ९८ नालवृन्त सोम ९९ करवीर सोम १०० स्वयप्रभ सोम १०१ महासोम १०२ गरुडाहृत सोम १०३ गायत्र्य सोम १०४ त्रैष्टुभ सोम १०५ जागत सोम १०६ पावन सोम १०७ शार्क्वर १०८ अग्निष्टोम सोम १०९. रैवत सोम ११० लक्ष्मणा सोम १११ चोरक ११२ तिलवक ११३ अभिपुक ।

आयुर्वेद साहित्य मे वर्णित संदिग्ध ११३ औषधियों मे से स्नातकोत्तर प्रशिक्षण केन्द्र मे निर्णीत ३६ औषधियों की सूची

१. अधोगुडा, २. अभिपुक, ३ अम्लवेतस, ४. एलवालुक, ५ कर्कटशृगी ६ काकनासा, ७ झिंटी (सहचर), ८ तिलवक, ९. रास्ना १० सर्पगन्धा ११ पुष्कर मूल, १२ जीवन्ती, १३ कुष्ठ १४. प्रियंगु, १५ पर्पटक, १६ अशोक, १७. लामज्जक १८ तालीस १९ इन्द्रवारुणी, २० त्रायमाण, २१ नागकेशर, २२. स्नुही, २३. मूर्वा, २४ शालिपर्णी, २५ पृश्निपर्णी, २६ नाकुली २७ विडग, २८ तुवरक २९ जटामासी, ३० अगुरु, ३१. चव्य, ३२ मायाफल, ३३ सप्तला ३४ सारिवा, ३५ वंशलोचन, ३६. क्लीतनक ।

संहिताओं (वृहत्रयी) की संदिग्ध औषधियाँ)

सुश्रुतोक्त अज्ञात दिव्य औषधियाँ

१. श्वेत कापोती, २ कृष्ण कापोती, ३ गोनसी, ४ वाराही ५ क्षत्रा ६ अतिक्षत्रा ७ करेणु, ८ अजा, ९ चक्रका, १० आदित्य पर्णी, ११ ब्रह्म सुवर्चला, १२ श्रावणी, १३. महा श्रावणी १४ गोलोमी, १५ अजलोमी, १६. कन्या १७ अजगरी, १८ महावेगवती । —सु० चि० २९-३०,

१ अंशुमान सोम, २. मुंजमान सोम, ३ चन्द्रमा सोम ४ रजत प्रभ सोम ५. दूर्वासोम सोम, ६ कनीय सोम, ७ श्वेताक्ष सोम ८. कनक प्रभ सोम ९ प्रतानवान सोम, १०. ताल वृन्त सोम, ११. करवीर सोम, १२ अंशवान सोम, १३. स्वयं प्रभ सोम, १४ महासोम १५ गरुणाहृत सोम १६ गायत्र सोम १७ त्रैष्टुभ-सोम, १८ पोक्त सोम, १९ जागत सोम २० शाक्वर सोम २१ अग्निष्टोम सोम, २२ रैवत सोम २३ त्रिपदि सोम

चरकोक्त अज्ञात औषधियां (च चि अ १)

१. ऐन्द्री, २ ब्राह्मी, ३ पयस्या, ४ क्षीर पुष्पी, ५. श्रावणी, ६ महा श्रावणी, ७ जीवन्ती ८ नाग-बला, ९ स्थिरा, १० क्षया ११ अतिक्षया १२ मेदा, १३ महामेदा, १४ ऋषभक, १५ जीवक १५ काकोली, १७. क्षीर काकोली, १८ ऋद्धि, १९ वृद्धि, २० ब्रह्म सुवर्चला, २१ आदित्य पर्णी २० नागी (अश्ववला), २१. काष्ठ गोधा २२. सर्पा, २३. सोम, २४ पद्मा, २५. अजा २६ नीला।

बृहत्त्रयी की संदिग्ध विवादास्पद औषधियां

सं० नाम	संदर्भ	सं नाम	सन्दर्भ
१. अगरु	सु, सू ४५-१२३	२२. अमित सारिवा	सु. सू ७।४२
२ अग्निक	सु उ ५१-२७	२३ अक्षिकी	च सू २७।१५६
३ अग्निमथ	सु सू ३८-८	२४ अक्षत	च चि. ६।५०
४. अजकरण	च वि. ८-१६५, सु क. १-१७१	२५. अक्षीव पिप्पल	सु क ८।१२०
५. अजगंधा	सु. सू ४८।१६, च सू ४।६८	२६ आदारी शिम्बी	सु उ ४४।१६
	वा. उ ५।२०	२७ उस्तुम्बुरु	
६. अजाजी	च. सू., सु सू, वा. उ	२८ इन्दुक.	च सू २७।१०८
७. अवोगुडा	च. सू, १।७७	२९ इन्द्ररेखा	वा उ. १।४४
८. अनन्ता	च. सू., सु. सू., वा उ	३० इन्द्रवृक्षक	सु सू. ११।१८
९. अन्नपाकी	च सि. १२।५७	३१. इमकणा	सु उ ५२
१०. अन्त्रपाचक	सु क. २।५	३२. उज्ज्वाल	वा सू ६।८
११. अणु	सु. सू २७	३३. उत्तमारणी	वा. उ ३०।२७
१२. अमृतफला	च चि २६।८६	३४ उदकीरिया	सु सू. १।८०, सु. सू ४६।६,
१३. अमोघा (लक्ष्मणा)	च. सू ४।७३		वा सू १५।१८
१४ अम्लवेतस	च सू ४।३०, सु सू ४२।१८	३५. उदीच्य	च सू २५।३३, सु उ ६।१२
	वा. सू १०।१५		वा क २।२४
१५ अम्लिकाकन्द	च. सू २७।११५	३६ उन्दुरु	वा चि ६।४८
१६. अरलु	च सू. ४०।६२	३७ उपकुञ्चीका	
१७ अरोह्वा	च चि ३।२६२	३८ ऋद्धि	च.,सु.,वा.
१८. अरजक	च सू २७।१६४, सु. सू ४६।२३५	३९ ऋषभक	च सु वा.
	वा. सू ६।१०५	४० एलवालुक	वा चि ११।३७
१९ अर्जुन	च.सू २५।४१, सु सू ३८।१२, वा सू १५।४१	४१ एलुका	सु चि. ९९।५९
२०. अलम्बा (स्थावर विष)	सु. क. २।४०	४२ ऐन्द्रक	च सू २७।१०८
२१. अवगुह्य	सु सू ४६	४३ अन्त. कोटर पुष्पी	च. सू. १।८१

स. नाम	संदर्भ
४४ अम्बु	च. सु वा.
४५. अम्बष्ठा	च. चि. ३०।८८
४६. अम्ब	वा सू. १५।३८
४७. कच्चक	सु चि ७।६
४८. कटु दौग्धिक	वा० उ० ३०-७४
४९. कटिञ्जर	च० सू २७-९४ सु० सू० ४६-२७४
५०. कण्डीर	च० वि० ८-१६१
५१ कर्दमक	सु० क० २-५
५२. कपोल वल्ली	सु० चि० ९-१३९
५३. करघाट	सु० क० २-५
५४. करम्भ	सु० क० २-५ वा० सू० १५-२४
५५. कर्कट श्रृंगी	
५६ करकटक (स्थावर विष)	च० चि० २२-११३
	सु० उ० ५८-४२
५७. कर्कारुक	मु० चि० १८-२९
५८. कर्तरीय (स्थावर विष)	सु० क० २-५
५९. काकमालिका	वा० उ० ३५-२५
६०. काकलक	
६१. काकोली	
६२. कार्मुक	
६३. काण-विकाणिके	सु० उ० ५०
६४. काञ्चनक	सु० सू० ४६-१
६५. कामुका	वा० सु० १५-३०
६६. कालानुसारिवा	सु० उ० १७-१७
६७. काष्ठालुक	सु० सू० ४५-२९८
६८. क्लीतक	सु० क० २-५
६९. कुक्कुटी	सु० सू० ३०-७
७०. कुतिली	वा० सू० ६-७५
७१. कुन्तलिका	सु० सू० ४६-२७६
७२. कुन्ती	च० चि० १७-१२
७३. कुमुदघ्नी	सु० क० २-५
७४. कुलहल	वा० सू० १५-८०
७५. कुलाहल	सु० सू० १८-३०
७६. कुलिंगाक्षी	च० चि० ८-१३९

सं० नाम	सन्दर्भ
७७. कुक्कुण्ड	च० सू० ५-११
७८. कुष्ठ	
७९ कोठफला	च० चि० २०-२४०
८० कोपना	वा० चि० २१-५७
८१ कौन्ती	च० चि० २६-४३
८२. खद्योतक	सु० क० २-५
८३. गज पिप्पली	च० सु० वा०
८४. गण्डीर पुष्पी	
८५ गन्धन	
८६ गन्वला	च० सू० २७-१३
८७ गन्वनाकुली	
८८. गर्गरक	सु० क० २-५
८९. गरमुटी	च० सू० २७-१७
९० गागेरूकी	सु० सू० ४६
९१. गालव	च० चि० २५-१०
९२. गिरिकर्णिका	
९३. गुडमञ्जरी	वा० उ० ४०-४२
९४, गुडशर्करा	च० क० १०-६
९५. गुण्ठ	वा० सू० १५-२४
९६. गोकर्ण	सु० सू० ४५
९७. गोचन्दना	वा० सू० १६-२४
९८ गोपी	वा० सू० २०-३७
९९ गोलोमी	
१००. गन्धना	वा० सू० ६-८
१०१ गन्धनाकुली	च० चि० ३-२६, सु० क० ६-२२
१०२. गन्धपलास	वा० चि० १४-१४
१०३. गन्धफली	च० चि० २५-४५
१०४ घोटा	वा सु १५।१७, सु चि १७३४
१०५. चण्डा	च सू.
१०६ चर्मरी	सु क २१५
१०७ चर्मवृक्ष	सु. चि ११।९
१०८ चविका	च सु. वा.
१०९ चव्य	च सु वा.
११० चारुक	च सू. २७।१७

स. नाम	संदर्भ	सं. नाम	संदर्भ
१११. चुक्र	सु उ ४७।२८	१४६ पुष्करमूल	सु. नि ५।३१, च. नि. २५।८
११२. चेतकी	वा उ ३०।२६	१४७. प्रत्यक श्रेणी	च क १।२
११३. जातीफल	च. सू वा	१४८. प्रियगु	च सु वा
११४ जातीरस	वा सू १५।३	१४९. प्लव	च नि २५।५२
११५ जातुक	सु सू ४६।२७४	१५० फणिज्झक	सु सू. ३८।१८
११६ जातुक शाक	सु. सू २०।१३	१५१ बस्तान्त्रि	वा स १५।१५
११७. जातक क्षीरी	सु क. २।५	१५२ वाष्पद्वय	सु नि ४।३५
११८ जटिला	च. सु वा	१५३ बिल्वपर्णी	च सू २७।१०२
११९ जीवन्ती	च सु वा	१५४. बृक	वा सु १५।२८
१२० कुकुरक	सु सू ४६।२७८	१५५ भीम	सु उ ३६।२२४
१२१ झञ्झू	वा. सू ७।९२	१५६. मधुरसा	वा नि १६।८१
१२२ तरुर	च सू २७।११४	१५७. मण्डूक पर्णी	च वि. ८।१६०
१२३ तुगा	वा उ ५७।१०	१५८ मरुवक	
१२४ तुम्बुरु	च सू २७।१६५	१५९. महाद्रोणा	वा. उ. ३६।८२२
१२५ तुरणक	वा सू ६।११	१६० महामेदा	च. सु वा.
१२६ तोदन	च सू २७।१३६	१६१. महाविष	सु. क २।५
१२७ तिल्वक	च सू १।११५	१६२ महाश्यामा	सु० सू० ३८।२६
१२८. तिक्तला	च क १।११	१६३. महाश्रावणी	च० वि० ८।१६०
१२९ तालीस	च सू वा.	१६४ माचीक	च० वि० ८।१६५ वा० उ० ३८।४७
१३०. त्रायमाणा	च. क ७।५३	१६५. मुपूलक	च० सू० २७।१५०
१३१ दीर्घमूला		१६६ मुञ्जातक	च० सू० २७।११४
१३२ नक्तमाल	च सू ४।३६	१६७ मूर्वा	च० सु० वा०
१३३ नन्दन	सु क २।५	१६८ मेदा	च० सु० वा०
१३४ नाकुली	च चि २५।५५	१६९. मेषशृंगी	च० क० ६।५,
१३५ नागकेशर	च चि ४।६५		सु० सू० ३८।३, वा० सू० १५।१७
१३६ नागवला		१७० मोचरस	
१३७ नाराचक	सु क. २।५	१७१ यवक	
१३८ नारी	च चि १।१६८	१७२ रेणुका	सु० उ० १७।२६
१३९ परिपेलव	च वि ८।१६५	१७३ लक्ष्मण	च० सू० २७।६६
१४०. पर्पटक	च सु वा	१७४ लागुलक	च० चि० २३।१०, च० सू० २।१७
१४१ पाटल	च सू २७।१४, सु सू. ४६।१२, वा सू ६।१६	१७५ लागुली	सु० सू० १९।२९
१४२ पारावत	च सू २६।११६, सु सू ४६।१५८	१७६ रोहीतक	
१४३ पालंक	सु क २।५	१७७. वशीर	च० सू० ५।५६
१४४ पालेवत	वा सू ६।१३३	१७८ वृक्षादनी	सु० सू० ३८।१२
१४५. पीतदारु	च स वा	१७९. शीत भीरुक	स० स० ४६।४

31 K1 em 21

सा० नाम	सन्दर्भ	स नाम	सदर्भ
१८० घर्ज	सु० सू० ६।३२	१८५ श्यामा त्रिवृत	वा० चि० ८।१३६
१८१. सारपाक	सु० क० २।५	१८६ सर्प सुगन्धा	वा० चि० १४।१०४
१८२ मारिवा	सु० सू० ३८।४	१८७ मातला	च० चि० १५।१६
१८३. सुगन्ध	सु० क० २।५	१८८. सुरसेन	वा० चि० ३।१६२
१८४. हलाहल	सु० क० २।५	१८९. स्पृक्का	वा० सू० १५।४३

सन्दिग्ध प्रचलित द्रव्य सूची—

कर्कटश्रृ गी, अतिबला, बला, नागबला, महाबला, त्रायमाणा, मूर्वा, प्रियङ्गु, तालिसपत्र, नाकुली, मेषश्रृ गी, रास्ना, शखिनी, कटभी. पाषाणभेद, तिलक, स्मन्तक, वृद्धदारु, वाराही, जीवन्ती, पर्पट, द्रवन्ती, अम्लपर्णी, अम्लवेतस, जिङ्गिनी, काकजघा, काकनासा, अम्लिकाकद, सप्तला, लक्ष्मणा, मूरा, रेणुका ग्रान्थेपर्ण, सुवर्चला, अजगन्धा, गिरिर्कणिका, श्योनाक, अरणी, शालिपर्णी, कृष्णपर्णी, मयूरशिखा, ब्राह्मी, मण्डूकपर्णी, सारिवा, ऋद्धि, वृद्धि, कोकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, रोहीतक, स्वर्णक्षीरी, तिल्वक, लोध्र, दन्ती, सर्पगन्धा, विदारी, क्षीरविदारी, पुनर्नवा, अश्वगन्धा, अधोगुणा, कावूमरी, चित्रक ।

चरक के सदिग्ध द्रव्य

नाम	सन्दर्भ	नाम	सन्दर्भ
अंजनामक	चि. २३।१५	कष्मी	चि. ६।७० १५।१८८
अधोगुणा	सू. १।७७	कटभरा	मि. ६।४७
अन्त कोटर पुष्पी	सू. १।८२	कम्पिल्लक	मू ३८।२९
अभीषुक	सू. १३।१०, २७।१५१ चि. ११।३७	कर्कटश्रृङ्गी	वि. ८।१३९
अम्लवेतस	सू. २।२९, ४।९ चि ८।१२८	काश्मरी	सू ४।१३
अम्लिकाकन्द	सू २७।२१ वि. ८।१४०	काकनाशा	सि. ४।६ वि ८।१२९
अगुरु	सू. ६।२७	काकोली	सू. ४।९
अश्वगन्धा	मू.४।९ (२)	काला	चि. ३।२५८ ३।२६७
अशोक	सू. ४।१८ (४७)	गण्डीर पुष्पी	वि ८।१५१
स्मन्तक	सू ११।१६	गर्मुटी	सू. २७।१८
अशन	सू ४।१७ (४५)	चव्य	सूत्र ४।११
उशीर	सू ४।२१	चारटी	चि ६।४५
एला	सू. २।७	चोरक	सू ३।२४ चि ६।४५, ६।५७ क १।२३
ऐन्द्री	सू ३।२७	चण्डा	सू ३।८, ४।१६
उरकट	सू. ४।१२ (१७) चि. ३।२६८ वि ८।१३९	जम्बीर	सू. २७।१६७
एलवालुक	सू ५।१२ (२०) चि. १५।१६४ १४।१६९	जातुक शाक	सू २६।८४
ऋद्धि	चि. १।६२ ३।२५०	जीवक	सू ४।९ चि १५।१५६
ऋषभक	सू ४।९ चि. १५।१५६	झीम्टी	सू. २७।१८
ऋष्यगन्धा	सू ४।९ वि ८।१३९	तगर	सू ४।१७
ऋष्यप्रोक्ता	चि. ३।२५८	तिल्वक	मू १।११७, ११७ कल्प ६।३

नाम	सन्दर्भ
तैल	चि २३।१२
त्रायमाण	वि. ८।१४३
दुरासमा	सू ४।१४
नन्दीतक	वि ८।१४०
नाकुली	चि. २३।६७
नाकुलीद्वय	चि ६।४६
नारी	चि १।४ (७)
नागकेशर	चि. २८।१५४
पाठा	सू २७।८८
प्रतिविपा	चि ७।१४४
प्रस्तरणी	चि. २८।१६६
प्रियगु	सू. ४।१५ (३१)
पृश्निपर्णी	सू २।२०
पापाण भेद	सू. ४।१५ (३५)
पर्पटक	सू ४।१४।२६
पुलाक	चि. १४।१०
पुष्कर	चि. २३।१६
पयस्या	चि. ८।७६
वालक	चि २०।३२
मुक्ता	सू ४।१८ (५०)
महामेदा	सू. ४।६(१) चि ३।२५८
मञ्जातक	सू. २७।१२० चि २६।७२
मुस्तक	चि. २३।११
मेदा	सू. ४।६ (१) चि ३।२६०
माम्मी	सू. ६।२१
मोचरस	सू. ३८।४५
मूपाकर्णी	
मण्डूक पर्णी	
मयूर शिखा	
रास्ना	सू. ३।१८ ४।१३
रोहिप	चि २३।१२ ३।२६७
लक्ष्मणा	सू २७।१०१
वशलोचन	चि २३।७१
विडग	सू. ४।११ (११)
शालिपर्णी	सू. ४।१६

नाम	सन्दर्भ
सोम	सू. २५।४० चि. १।४ (७)
सोमवल्ली	वि. ८।१३६
सर्प क्षत्रक	सू. २७।१२३
शटी	सू. ४।१४ (३०)
सप्तला	क. १।१३
स्प्रिक्का	चि. १२।६६
हिंगु	सू २।२६
अनन्तमूल	
गागेरुकी	
रुद्रवन्ती	
क्षीरकाकोली	

सुश्रुत के संदिग्ध द्रव्य

नाम	सन्दर्भ
अभीषुक	सू.४६।१८७
अम्ल	उ. १२।१८
वेत्राम्ल	उ. १२।१८
अश्ववला	सू. ४६।२५६
आदारी	उ. ४४।१६
इभगधा	क. २।५
उत्तमारणी	चि. ६।१२, १०/८
ऋद्धि	सू. ३८।३५
ऋपभक	" "
एलवालु	उ. ४७।४२
एलुकारव्य	चि. १६।५६
एलवालुक	सू. ३८।१४ क. २।६७-६।१६
वासुक	सू. ३८।२४
कटभी	क. ३।१२-५।१८-५।८४
काकनासा	चि. ३७।२० (३७/२३)
काकोली	सू. १४।३६ (३८।१५)
काण	उ. ६०।४७
कुमुदघ्नी	क. २।६
कुमुद्वती	क २।६
कृष्ण कापोती	चि. ३०।६ (३०।१३)
श्वेत कापोती	चि ३०।५ (३०।११) (३०।१५) (३०।३५)
क्लीतक	चि. १८।३४ क. २।५

नाम	सन्दर्भ	नाम	सन्दर्भ
क्षीरकाकोली	सू. ३८।३९ (चि ५।७)	विष पत्रिका	क० २।६
विपाणिका	उ. ६०।४७	वृद्धि	सू० ३८।३५, ३७।१५, ३८।२८
चक्का	चि ३०।५ (३०।१६)	साङ्गॅष्टा	सू० ३८।६
चर्मार	क. २।५	स्थौणेयक	सू० ३८।२४
चोरक	सू ३८।२४ (क. ५।८४)	स्थौणेय	क० ५।६६
चोरक पत्र	सू. ३८।४८		

सुश्रुत सहिता के अनिर्णीत अज्ञात द्रव्य

नाम	सन्दर्भ	नाम	सन्दर्भ
तस्कर	चि ३७।१७	अजगरी	चि ३०।६ (१०,३०,३२)
चण्डा	सू० ३८।२४, ४-१११, चि० ३८।२६	अजरुहा	क० १।७८
	उ० ५१।४५	अन्त्र पाचक	क २।६
छगलान्त्रि	सू० ३८।२९	अवगृह्य	सू ४८।१२१
वृद्धदारुक	सू० ४६।२४७	कच्चक	चि. ७।६
जालक्षीरी	क० २।५	करम्मक	क २।६
जातुक	सू० २०।१३ (सू० ४६।२७४)	करहाट	क. २।६
जीवक	सू० ३८।४ (४६।२७४)	करेणु	चि. ३०।६, ३०।१६, ३०।३२
जीवन्ती	सू० १९।३३ उ० ४०।६६	कर्दमक	सू २०।६, ४६।४ (क २।६)
भुरभुरक	सू० ४६।२७४	कर्दमाख्य	क. २।६४
तालीस	सू० ३९।६	काल कूठ	क २।६, २।१७
तालिमपत्र	उ० १७।१७	खर्घातक	क २।६
तिलपर्णी, तिलपर्णिका	सू० ४६।२२१	गरगरक	क २।६
तिल्वक	सू० ११।११ (चि० ४।२७)	तोदन	सू ४६।१६३
तृणमूली	क० ६।२१	नन्दन	क २।६
त्रायमाण	सू० ३८।६४	पारावत	सू. ४२।११, ४६-१२६
त्रायन्ति	उ० ३९।२२३	प्रपुण्डरीक	क. २।६
नन्दी	सु० ४६।२४७ (३४।३)	महाविष	क. २।६
नाकुली	क० ८।१०२	महावेगवती	चि ३०।६
गन्धनाकुली	क० ६।२२ (८।११७)	मोहन वल्लिका	उ ६०।४८
ब्रह्म सुवर्चला	चि० ३०।५ (३०।२१)	मोहनिका	चि २८।२२
महामेदा	सू० ३८।३५	वेगनाम	सू ४६।२३८
महाश्रावणी	चि० ३०।५ (२३।३२)	वेगवती	चि ३०।२६, ३०।३६
मेदा	सू० ३८।३५	वैराटक	क २।६, २।१४
रास्ना	सू० ३७।३ (३८।१७)	सुगन्ध	क. २।६
सुरभी	क० ६।२१ (चि० ६।७)	हालाहल	क २।६, २।१७

चरक सहिता की अनिर्णित व अज्ञात द्रव्यो की सूची

नाम	सन्दर्भ	नाम	सन्दर्भ
रेणुका	क० २।६		
लक्ष्मणा	शा० २।३२, १०।१६, उ० ३०।६	अजा	चि १।४ (१।७)
वल्लिज	क० २।६	आदित्यपर्णी	चि १।४ (१।८)



नाम	सन्दर्भ	नाम	सन्दर्भ
उन्द्रायुद्ध	चि० २३।१२	पालक	चि० २३।१२
ऐन्द्री	चि ११३, ११४, ११६	पुण्डरीक	,, २३।१२
कटुक	सू ५।७७	पुलाक	,, १४।४०
कपोल वल्ली	वि. ८।१२६	वलाहक	,, १३।११
कर्कट	चि २३।११	ब्रह्म सुर्वचला	,, ११५८
काककूठ	,, २३।११	मर्कट	,, २३।१३
काष्ठबोधा	,, ११७	मेचक	,, २३।१२
कुश पुष्पक	,, २३।१२	लौहित्य	सू २७।१७
कुक्कुण्ड	शा ६।११	शिविर	,, २७।१८
केलूट	सू २७।११४	सकोच	वि २३।१३
क्रौंच	चि २३।१३	सर्पा	चि १ चतुर्थपाद ७
नीला	,, ११७	हालाहल	,, २३।१३

निघण्टूक्त विवादास्पद औषधियाँ :-

निघन्टुओ मे औषधियो की सख्या बहुत सीमित है। इनमे भी कई औषधिया अज्ञात है और विवादास्पद हे। यद्यपि निघण्टुकार के लेखको ने सदिग्धता के नाम पर कोई अपना विचार नही दिया हे, तथापि प्रतिनिधियों का उल्लेख इन्होने स्पष्ट किया हे, जिससे यह पता चलता हे कि द्रव्यो के दुर्लभ होने के बाद प्रतिनिधि द्रव्यों का निर्णय किया गया हो। उनमे से कुछ सदिग्ध द्रव्यो की सूची नीचे दी जा रही है।

- राज निघण्टु-धन्वन्तरि निघण्टु—

१ मूर्वा, २ मोरट (राज निघण्टु), ३. शालिपर्णी, ४ पृश्निपर्णी, ५ कपटम्, ६ गुण्ठ, ७ लक्ष्मणा ८ अग्निमथ, ९ श्योनाक, १० काश्मरी, ११ जीवक, १२ वृषभ, १३ मेदा, १४ काकोली, १५ ऋद्धि १६ पाषाणभेद, १७ सारिवा, १८ षड्भुजा, १९ कुडुहुञ्ची, २० काष्ठधात्री, २१ अरणी (दन्ती विशेष) २२ पर्वतिक्ता, २३, त्रायमाणा, २४ गाङ्गेरुकी, २५ वालिका (वला विशेष), २६ प्रसारिणी, २७ वृषमेधा, २८ उपकुञ्ची, २९ वगलोचना, ३० चविका, ३१ अम्ल (अम्लवेतसम्), ३२ अजगधा, ३३ प्रियङ्गु, ३४ अगरु, ३५ कर्पूर, ३६ जातीफलम्, ३७ मासी, ३८ गन्धमासी, ३९ आकाश मासी, ४० रेणुका, ४१ चोरक ४२ स्थौणेयक, ४३ एलवालुक, ४४ काकुष्ठम्, ४५ जिगिणी, ४६ काण्डीर, ४७ जन्तुकारी, ४८ ग्रीस्ती, ४९ जलद (मधुक विशेष), ५० अशन, ५१ नाग पुष्पा (धन्वन्तरि नि०), ५२. वलामोटा (राज धन्व०), ५३ अन्धादोडी (राज०), ५४ अर्कपुष्पी (राज०), ५५ पाची (राज०), ५६. आराम शितला (मदनपाल, राज०) ५७ आरुक (म रा धन्व०), ५८ आवर्तकी (रा धन्व), ५९ धूम्रपत्रा (राज०), ६० एकमूला (राज), ६१ जीर्णफञ्जी (राज, नि रत्नाकर), ६२. अर्जक (राज), ६३ कुलाहल, ६४ मुस्तकक (विष वर्ग), ६५. पालक (विषवर्ग), ६६ पुण्डरीक (विष वर्ग), ६७. समष्ठिल, ६८ अग्निदमनी, ६९ भूम्पाटुल्यम् (राजनि.), ७० श्वेताम्ली (राजनि.), ७१ नीलाम्ली (राजनि), ७२ कालाञ्जनी (राजनि), ७३. कामवृद्धि (राजनि), ७४ झिञ्झिरिटा (राजनि), ७५. कुटुम्बिनी (राजनि), ७६ काथरा (राजनि) ७७ गुण्डाला (राजनि), ७८ शाकुरुण्ड (राजनि), ७९ हिमावली (राजनि), ८० फोण्डालु (राजनि), ८१ मूत्रपोती (राजनि), ८२. घोली (राजनि), ८३ कारी (राजनि), ८४ गूली (राजनि), ८५ गगापत्री (राजनि)।



वाल्मीकि रामायण की
सन्दिग्ध औषधियाँ

वाल्मीकीय रामायण इतिहास का महान ग्रन्थ है। यह कोई निघण्टु का ग्रन्थ नही है किन्तु प्रसङ्ग वस इसमे ३२५ औषधि द्रव्यो के नाम कथावर्णन के क्रम मे उपलब्ध होते है। इनमे कई नये नाम की दिव्य औषधिया है जो सदिग्ध या अज्ञात है। इनकी भी सूची नीचे दी जा रही है। 'वाल्मीकीय रामायण मे आयुर्वेद' से उद्धृत)।

अगरु (अगर)–अयो. १४।२८ श्री रामराज्याभिषेक के समय अयोध्या नगरी मे धूप, अयो १७।१-२ श्री राम के अभिषेक के समय ३-६ अगरु धूप।

अतिबला–बा. २२।१२ विश्वामित्र द्वारा राम १५-१८ प्रदत्त।

अरणी (अग्निमथ)–अयो ३०।२३ अग्नि उत्पन्न करने के लिए। अयो १०४।२६ अग्नि उत्पन्न होकर उसे ही जला डालती है।

अशोकवन–अशोक वनो से युक्त सु. ५८।५५ लङ्का का अशोक वन।

असन (असन का वृक्ष)–अयो. ९५।८ चित्रकूट मे, कि ३०।८, ६२ सीता के लिए विरही श्री राम की कल्पना।

असिपत्र (जिस वृक्ष के पत्ते लोहे की धार के समान तीक्ष्ण हो)–उ २१।१५ यमलोक के वर्णन मे।

अक्षत–अयो १९।६ श्री राम के अभिषेक के लिए, अयो २०।१७ देवपूजन के लिए।

इषीका (काश तृण)–अयो ३०।१२ राम वनगमन के प्रसङ्ग मे सीता की कल्पना।

उत्तरच्छद–अयो ९४।२४ चित्रकूट के प्रसङ्ग मे,

उत्तरा अरणी–यु १११।११६ रावण की चिता जलाने के लिए।

एणीय (गजकन्द)–अयो ५६।२२–२३, चित्रकूट मे, २५–२६, २७–२८।

कर्ण (लम्बे पत्ते का स्वनाम वृक्ष)–सु ५६।२४ अरिष्ट गिरि पर लका मे।

कर्पूर-केशर–अयो ९१।७२ भरत के स्वगत मे भारद्वाज आश्रम मे।

कल्पवृक्ष–कि ३४।५ लक्ष्मण का उपमा।

कामवृक्ष (कल्पवृक्ष) अ ५६।३३ सर्व काम फलैः वृक्षैः।

कुष्ठ (कूठ) अयो ९४।२४ चित्रकूट मे।

कोयाष्टिक (जल कुकुम) अर ७५।१२ पपा तट पर

कचन वृक्ष (कचनार) कि ५०।२९ दक्षिण प्रदेश की एक गुफा मे।

गज पुष्पी (लता विशेष) कि १२।३९–४० ऋष्यमूक पर्वत पर।

गन्ध पूर्णा (स्वनाम वृक्षा–पीपल अथवा प्रियगु)–सु २।९ हनुमान ने लका मे देखा, कि १।७७ पपासर के अरण्य मे, यु ४।७८ लका की राह मे पर्वत शिखरो पर।

चन्द्र–दिव्य औषधि विशेष, यु ५०।३१ मूर्छित वानरो को चेत कराने के लिए।

चूर्णाक–धान्य विशेष कि १।८० पम्पासर के अरण्य मे, सेमल यु ४।८१ सह्य पर्वत कानन मे।

तगर (तगर)–उ २६।६ कैलाश मे।

तिनिश–स्वनामख्याता अयो ९४।८-१०, चित्रकूट मे तिरच्छ वृक्ष, अर ११।४७ सुतीक्ष्ण के आश्रम के आगे।

तिमिद–स्वनामख्याता वृक्ष कि २७।१८ तुङ्गभद्रा नदी के किनारे प्रस्रवण गिरि पर।

दिव्य अगरु (उच्चकोटि का अगर)–अयो० ९१-८३ भारद्वाज आश्रम मे।

दिव्य औषधि–कि० ३७-३१ हिमालय की राह मे।

दिव्य चन्दन (चन्दन)–अयो ९१-८३ भारद्वाज आश्रम मे, उ २६-१९ कैलाश मे।

द्रोण (स्वनाम दिव्य औषधि) यु ५०-६१ क्षीरसागर मे उपलब्ध होने वाली दिव्य औषधि। मूर्च्छित वानरो को चेता करने के लिये।

नागवृक्ष (नागकेशर तथा नागदन्त) अर ७३-४

मचा

पपासर के पास, कि. १-७८, ८३ पपासर के अरण्य मे। कि० ५०-२६ दक्षिण प्रदेश की गुफा ऋष्यबिल मे।

निवास वृक्ष (कल्पतरु)-कि १५-१६ साधुओं के लिए श्री राम तथा लक्ष्मण ऐसे ही वृक्ष है-तारा।

नीलाशोक (नीला अशोक)—अर० ७३।४ पपासर के पास, कि० १।७६ पपासर के कानन मे। यु० ४।८१ सह्य पर्वत कानन मे।

पर्णधन-नलिन (अशोक) यु० १४।५२ लका के अशोक वन मे।

पर्णिन—बा० १४।२२ अयोध्या मे अश्वमेध यज्ञ का यूप बनाने के लिये।

पतत्रिण—बा० १४।२६ दशरथ के अश्वमेध यज्ञ मे।

परमौषधि (दिव्य औषधिना)-यु० ५।३१ चन्द्र और द्रोण पर्वत पर उगने वाली।

पत्र विटप—सु० १६।२५ लका मे हनुमान जी छुपे हुये।

पाटला (पाटला)—बा० २४।१५ विश्वामित्र के साथ रामवन जाते राह मे।

पाटल—अर० १५।१८ पचवटी मे।

पाटलै (पाढर का वृक्ष)--कि० १।८० पपासर के वन मे। यु० ३६।४ सुवैल पर्वत से दृष्ट लका मे। उ० २६।५ कैलाश मे।

पारिभद्रक (नीम-देवदारु)-अर० ७३।५ ऋष्यमूक की राह मे।

प्रिय-(सप्तपर्ण, कदम्ब या असन) कि० ३०।३४ माल्यवान पर्वत पर।

प्रियगु (फूल प्रियगु)-कि० २६।२७ सुग्रीव के राज्याभिषेक पर।

पुण्डरीक (अतिश्वेत कमल)—अयो० ८७।२ भरत के नेत्र कमल। अयो० ६६।२७ चित्रकूट मे भरत।

पलाशाक्ष्या सु० ३३।४ सीता के अश्रुपूरित नेत्रो मे।

महारोही (कन्द विशेष)—अ० ६८।३२ जटायु को पिण्डदान।

रक्तकुरवक—कि० १।८२ पपासर के अरण्य मे।

रजका (रजक)-यु० ४।७६ मह्य गिरि कानन मे।

राजा (सोमलता ?)-बा० १४।६ अश्वमेध यज्ञ के लिये सोमरस।

लव (लामज्जक तृण) (घास की एक जाति)—यु० ११।१८ माम मे मिश्रित, उ० २२।२ मार्जन के लिये।

वनराजी (सेवती लता)-यु. ५६।२६ पर्वत के परिधान के रूप मे।

विशल्या (विशल्य करणी) एक दिव्य औषधि जो देह मे प्रविष्ट शल्य को आसानी से निकाल देती है—अयो० २५।३८ कौशल्या द्वारा राम के हाथ पर बाधना। यु० ५०।३० क्षीर सागर मे होने वाली दिव्य औषधि।

वञ्जुल (वेतस, अशोक, तिनिश)—अर० ११।७४ सुतीक्ष्ण के आश्रम के आगे।

शिखरिणी-अर० ४६।१८ सीता की दातो की समानता रावण द्वारा।

सर्ज-कि० २७।१० प्रस्रवण गिरि पर।

सन्धान करणी (सधानी)-अस्थि सधानक दिव्य औषधि यु० ७४।३३ हिमालय मे ऋषभ तथा कैलाश के बीच। यु० १०१।३०, ३२ महोदय पर्वत के दक्षिण शिखर पर।

सुवर्ण करणी-देह को सुन्दर तथा अव्रण बनाने वाली दिव्य औषधि—७४।३३ हिमालय पर ऋषभ तथा कैलाश के मध्य प्राप्त।

सोम-सोमवल्ली-यु. अयो० ६१।१८ यज्ञ से सबन्धित

सजीवकरणी-जीवित करने वाली-यु० ५०।३० क्षीर सागर मे पैदा होने वाली दिव्य औषधि।

सजीवनी (दिव्य औषधि)-७४।३३ (मृत सजीवनी) हिमालय मे ऋषभ तथा महोदय के बीच मे होने वाली।

"वाल्मीकीय रामायण मे आयुर्वेद" से उद्धृत।

विशिष्ट दिव्य औषधियो का प्रसंग सहित कुछ विवरण

१. विशल्यकरणी– इस दिव्य औषधि का प्रयोग शरीर रक्षा के लिये किया जाता था–माता कौशल्या ने श्रीराम के वन जाते समय इसको बाँधकर रक्षोपाय किया था –

इति पुत्रस्याशिषश्च कृत्वा शिरसि भामिनी।
गधंश्चापि समालेच्य राममायत लोचना॥
औषधिं च सुसिद्धार्थां विशल्य करणीं शुभाम्।
चकार रक्षा कौशल्या मन्त्रैरभिजजाप च॥

२. बलाअतिबला–ऋषि श्री विश्वामित्र ने मन्त्रसहित बला अतिबला नामक प्रसिद्ध औषधियो को श्रम ज्वर

से रक्षार्थ तथा रूप विकृति रक्षक के रूप मे राम को प्रदान किया।

मंत्र तन्त्र गृहाणत्वं वलामतिबला तथा।
न श्रमो न ज्वरो वाते न रूपस्य विपर्ययः॥

३. संजीवकरणी व विशल्या—सजीवकरणी या सजीवनी दिव्य बूटी को जामवन्त जानते थे जिनके प्रयोग से मृत मनुष्य भी जी उठता था। शरीर मे शल्य किसी प्रकार का हो विशल्या के प्रयोग से निकल जाता था एव मद्य बलकर होता था। बदर भी इन औषधियो को जानते थे अत. हनुमान को जामवन्त ने निम्न रूप मे समझाया—

हरयस्तु विजानन्ति, पार्वती ते महौषधिम्।
सजीवकरणीदिव्या विशल्यां देवनिर्मिताम्॥

युo ५०–३०

इनके अतिरिक्त मृत सजीवनी विशल्यकरणी सावर्ण्य-करणी व सधानकरणी इन चार औषधियो का स्थान व गुण का प्रयोग ज्ञात होता है।

मृत संजीवनी—मृत पुरुष को भी जिला देती थी। संज्ञाशून्य भी इसके प्रयोग स्वरूप होकर होश मे आ जाते थे। यह दिव्य औषधियाँ हिमालय के क्षेत्र मे होती थी।

मृत सजीवनी चैव विशल्य करणीमपि।
सावर्ण्यकरणी चैव सधानकरणी तथा। यु. ७४-३३

विशल्यकरणी[१] को सूंघकर रोगी बाधा से मुक्त हो जाता था और शल्य व्यथा जाती रहती थी। सुषेण वैद्य ने इसे हनुमान को उपदेश दिया था। श्रीराम और लक्ष्मण के मूर्च्छित हो जाने पर सुघाकर होश मे लाये थे। वानरो को भी विशल्य किया था था। विशल्य करणी का नाम तथा स्थान.—

विशल्य करणी, सावर्ण्य करणी, सजीव करणी और सधानीय दिव्य औषधियो का स्थान और गुण सक्षेप मे दिया गया है। विवरण निम्न[२] है —

४. सोमलता—रामायण मे सोमलता का भी वर्णन है किन्तु पाप नाशक सोमलता यहाँ लिखा हुआ है और सोमलता के रस को यज्ञ प्रारम्भ करने से पहले पाप-नाशन के लिये विधिवत पीकर तब यज्ञ आरम्भ करते थे, तथा सोम को सिल पर पीसकर पीने का भी प्रसङ्ग प्राप्त होता है।

इस प्रकार युद्ध मे प्रयुक्त होने वाली औषधियो का वर्णन राम और रावण के युद्ध मे प्रसग वस मिलता है।

५ गजकन्द—कन्दो मे से गजकन्द का वर्णन भी रामायण मे मिलता है और कुटीर निर्माण के लिये इसके गूदे का प्रयोग किया गया है।

राजनिघण्टु और धन्वन्तरि निघण्टुओ मे महिषकन्द राजकन्द का वर्णन मिलता है जो विषहारक होते हैं।

---

[१] तावुभ्युभौ यानुपराजपुत्रौ।
तं गंधमाघ्राय महौषधीनाम्॥
बभूवतुस्तत्र तदा विशल्या।
वुत्तस्थुरन्ये च हरिः प्रवीरा.॥
सर्वे विशल्या विरुजा क्षणेन,
हरि प्रवीरा विहताश्च येस्युः।
गन्धेन तासां प्रवरौषधीना सुप्ता निशान्तेष्विव सप्र-बुध्दा.॥ यु. ७४-७३-७४
राम सुषेण मुदित सभा भाष्येदमब्रवीत।
विशल्यो महा प्राज्ञ· सौमित्र वत्सलः॥ यु. ९१-२०
यदा भवति सुस्वस्थस्तथा एव समुपाचरा॥ २१
एवमुक्त स रामेण महात्मा हरियूथम·।
लक्ष्मणाय ददौ नस्त सुषेण परमौषधम्॥
स तस्य गधमाघ्राय विशल्य समपद्यत।
तदा निर्वेदनश्चेवय सरुढ़ व्रणस्तथा॥ यु ९१-२४-२५
विभीषण मुखाना च सुहृदा राघवाज्ञया।
सर्व वानर मुख्याना चिकित्सामकरोत तदा॥
ततः प्रकृति मापन्नो हृतशल्यो गतक्लमः।
सौमित्रि युमुदे तत्क्षणेन विगत ज्वर॥ यु. ९१-२६-२७

[२] सौम्य शीघ्रमितो गत्वा पर्वतंहि महोदयम्।
पूर्वानु कथितो योऽसौ वीर जाम्ववता तव॥
दक्षिणे शिखरे जाता महौषधि मिहानय।
विशल्य करणी नाम्ना सावर्ण्य करणीं तथा॥
सजीव करणी वीर संधानी च महौषधीम्।
यु १०१, ३०-३२
सुषेणो वानर श्रेष्ठो जग्राहोत्पाय चौषधी। यु १०१,४:
तत· संक्षोदयित्वा तामोषधीं वानरोत्तम।
लक्ष्मणस्य ददौ नस्त· सुषेण. सुमहाद्युति॥
यु. १०१, ४४
सशल्य ससमाघाय लक्ष्मण परवीरहा।
विशल्यो विरुज शीघ्रदमुतिष्टन् महीतलात्॥"
यु. १०१-४५

विषनाशक औषधिया

मेघनाथ द्वारा नाग पास मे वद्ध होकर राम और लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये थे और गरुड ने इन दोनो भाइयो को सर्प विष से रक्षा किया था , इसका प्रसग भी युद्ध मे प्राप्त होता है ।

इस प्रकार वाल्मीकीय रामायण मे ३२५ औषधियो का नामोल्लेख आता है, उनमे पूर्वोक्त कतिपय औषधियाँ विशिष्ट रूप मे वर्णित है ,

बुद्धचरित व त्रिपिटक में वर्णित संदिग्ध औषधियाँ

५१० शताब्दी पूर्व से ८६ शताब्दी बाद तक

त्रिपिटक साहित्य बुद्धकालीन जीवन के ऊपर अच्छा प्रकाश डालता है । इसमे बहुत से सद्विचार प्राप्त होते हैं । साथ ही साथ कुछ औषधियो का वर्णन भी प्रसङ्ग वस मिल जाता है । इसमे कुछ ऐसी भी औषधियाँ उल्लिखित हैं जो सदिग्ध है । इसमे ४३४ औषधियो का प्रसग मिलता है ।

श्री ज्योतिर्मित्र ने 'हिस्ट्री ऑफ इन्डियन मेडिसिन फ्रॉम प्रि मौरियन टू कशान पिरियड' नामक पुस्तक मे उनका उल्लेख किया है । उनमे बहुत सी औषधियाँ सदिग्ध भी हैं । इनकी सूची नीचे दी जा रही है –

१ अगरु, २. अक्षीव, ३. अर्जक, ४. अजकरण ५. अर्जुन, ६ अञ्जन, ७ अनोजा, ८. आस्फोता, ९ अरणी, १०. असन, ११. अशोक, १२. अश्वकर्ण, १३ अहिच्छत्रक, १४. आयुत, १५ उशीर, १६. ऐलवालुक १७. कच्चक, १८ कटुरोहिणी, १९. कर्पूर, २०. कालीयक २१. कुष्ठ, २२. गिरिपुन्नाग, २३. तगर, २४. तालीश, २५ त्वकसार, २६ नक्तमाल, २७. नागवला, २८. वल्वज २९ त्रिपक, ३० प्रियगु, ३१ पुन्नाग, ३२. मूर्वा, ३३. लामज्जक, ३४ लोध्र, ३५ हिंगु, ३६ ह्रीवेर ।

कुछ नाम पालि भाषा मे दिये हैं जिनका कुछ निर्णय नही हो सका है । इनके नाम निम्न हैं । यथा—

१. अनङ्ग, २ अनोजा, ३. असि, ४. अन्नक, ५ ओपिका, ६. कच्चक, ७ कालवल्लीक, ८ केका, ९ गवतिन्दू, १०. गवशिला, ११. तिरिवच्च, १२ दादुल १३. धनकारिका, १४ नोजक, १५ पुलाक, १६. मन्दालक, १७. मालिनी, १८. रुचिर, १९ हाट ।



वनस्पति शरीर

(ANATOMY & PHYSIOLOGY OF PLANT)

आचार्य श्री डाक्टर विश्वनाथ द्विवेदी, विशेष सम्पादक

उद्भिद विज्ञान के ऊपर पृथक से लिखा हुआ साहित्य आयुर्वेद के साहित्य भण्डार मे कम मिलता है। परन्तु इसका साहित्य बहुत ही स्पष्ट और विस्तृत रूप मे निघटुओ और रसवैशेषिक मे मिलता है। आचार्य नागार्जुन ने इस विषय पर पर्याप्त विचार किया है तथा लोक प्रकाशक द्रव्य खण्ड मे मिलता है। इसको देखकर ज्ञात होता है कि आधुनिक वनस्पति-शास्त्री भी इस विषय पर उतना विचार नही कर पाये हैं। अथर्ववेद, बृहत् संहिता, अग्नि पुराण, विष्णुपुराण व महाभारत, चरक, महाभागवत, वाराही-संहिता का साहित्य इसका उत्तम पोषक है। परन्तु इस वैशिषककारने अपने ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय मे इस विषय पर सुन्दर विवरण दिया है।

चरकादि आचार्यो ने द्रव्यो को पाचभौतिक लिखा है। मनु की तरह द्रव्य भी पाँच भौतिक है—यथा.—

"सर्व द्रव्य पाच भौतिकम् इति"

वनस्पति शरीर पाच भौतिक है और पंचमहाभूत इसकी उत्पत्ति मे किस प्रकार भाग लेते है इसका सुन्दर विवरण दिया है।

नागार्जुन ने द्रव्य स्थावर व जगम दो प्रकार के दिये है।

"द्रव्य स्थावर जगम च।—रस० वै० हि० ७६"

द्रव्यभेद मे समस्त संहिता मे इस भेद को स्वीकार किया गया है। स्थावर किसे माना जाय यह इस नाम से ही स्पष्ट है कि जो स्थिर रहते है वह स्थावर है, परन्तु इसमे पर्वत वगैरह का ग्रहण हो एतदर्थ नागार्जुन ने इसे यो लिखा है:—

"वृक्ष वीरुदोषधि वनस्पति प्रभृतय च स्थावरम्"

—र० वै० द्वि०—७७

उत्पत्ति—स्थावर की उत्पत्ति कई प्रकार से होती है। चरकने ऋतु क्षेत्र, अम्बु, बीज के सयोग मे उत्पत्ति बतलाई है। स्थावर मे अकुरण से वर्गोत्पत्ति होती है।

अकुरण (Germination)—उत्तम क्षेत्र मे बीज डालने से जल पड़ने पर उसमें अकुरण होता है। किन्तु इनका क्या होता है यह विवरण रस वैशिषक स्पष्ट देता है। चरक भी कहते है—

अम्बु योन्यग्नि पवन नभसा समवायत ।
तन्निर्वृत्तिः विशेषस्तु खादय प्रत्ययास्त्वथ ॥

बीज से अकुरोत्पत्ति मे पृथ्वी मे बीज रखते है। अम्बु डालते है। आधार क्षेत्र है। अम्बुद्भव की योनि-शेष महाभूत सहायक है। विशिष्ट विचार निम्न है—

बीज को पृथ्वी मे डालकर जल डालते है। इसके बाद-तेज उसमे के प्रसुप्त अगावयवो को, जो अतर्हित या सूक्ष्मरूप मे बीज मे होते है, उन्हे बढा कर अन्तराय पैदा करता है। तेज महाभूत की क्रिया से उसके पोषक अङ्ग प्रवर्धित होते हैं—

"तेजोऽन्तर करोति (र० वै० २-७९)

पच महाभूतो की क्रिया मे तेज प्रथम भाग लेता है और वह प्रसुप्त भूत गुणो को जागृत कर अन्तराय पैदा करता है। उसके गुणो मे अकुर वृद्धि उदय करता है। उष्मा की क्रिया होने पर वायु विषमन करती है।

बीजेऽद्भि ससृष्टां पृथिवीसभिनिर्हरति ।
वायुस्तस्मात् सोऽकुर ॥ ८० ॥

अब तत्व का भाग जल जब प्रवेश करता है बीज के प्रसुप्त भाग जागृत होते है.—उष्मा बढती है—उसके बाद वायु के प्रभाव से विषमित होकर प्रवर्धन का उपक्रम करते है और बीज शरीर बढना है, अकुर बनता है।

अत. बीज मे निम्न परिवर्त्तन होते है —

विवर्धमानस्य पृथिव्या वृद्धि अद्भिश जीवनम् ।
अग्निना परिग्रहोऽभिनिहारो वायुनावकाशे ॥८१॥

जल बीज मे जाता है, तो बीज शस्य फूलकर पार्थिव भाग की वृद्धि करता है। अग्नि सयोग से वृद्धि होती है, जीवन का स्वरूप आता है, कार्य दिखाई पड़ता है। जब जीवन आता है, तो वह आहार का परिग्रह करता है अत पृथ्वी से पोषक वस्तु लेता है। वायु से उसके अगावयवा-वकाश बनते है। सातमादि बनकर उसमे सक्रिय बनाते है

और बीज अ कुरण करके पृथ्वी से अपने आहार की प्राप्ति करता है। इसमे एक जीवन चक्र बनता है। अ कुर बनकर पृथ्वी मे जाता है और फिर अपनी क्रिया प्रारम्भ कर एक उद्भिद जीवन प्रारम्भ करता है।

अब इसमे वृद्धि होती है स्कध विटप-शाखा, पलाश, पुष्प, फलात्मा बीज अपने शरीर को उपचित कर बढता है, वृद्धि पृथ्वी तत्व से होकर रोहण होती है। जीवन जल तत्व के द्वारा-परिग्रह अग्नि मे होता है। अग्नि ही जीवन के उपक्रम का आधार बनती है और उद्भिद बढने लगता है। गुण रत्न ने इसे और स्पष्ट लिखा है —

"यथा मनुष्य शरीरेस्योपध प्रयोघाद्वृद्धि हानि क्षत भुग्न सरोहणानि तथा वनस्पति शारीर स्यापि"। तथा

यथा मनुष्य शरीर स्तनक्षीर व्यजनोदनाद्याहारी व्यवहारम्यवहारात्मक एव वनस्पति शरीरमपि भूजला द्याहारादाहारकम्। तथा यथा मनुष्य शरीरम् इष्टा-हारानिष्टाहादिप्राप्त्या वृद्धिहान्यात्मक तथा वनस्पति शरीरमपि ॥

अत मनुष्य शरीर आहार पाकर बढता है यह उद्भिद भी अन्यत्रहारात्मक जीव ही है।

इससे स्पष्ट है कि भूमि व जल मे सयुक्त होकर मनुष्य शरीर वृद्धि की तरह वनस्पति-शरीर भी बढता है, हानि को प्राप्त करता है या क्षतादि को प्राप्त करता है।

जीवन के चिह्न-वृद्धि व हानि—

उद्भिद अ कुरण करने के बाद पृथ्वी का आधार लेकर अम्बु व अग्नि के सहयोग से बढता है। वायु इसमे प्रवमनात्मक श्वास का कार्य करती है। बाहर की वायु से जीवन बद्ध श्वास-प्रश्वास की क्रिया वनस्पति शरीर करता है। अग्नि की क्रिया से वायु सी०२ कार्बन द्विओषित ग्रहण करता है—पाद मे अवस्थित द्रव्यो का पान करता है, इन्हे अपने शरीर मे लगाता है। उद्भेदन के बाद इसमे दो स्वरूप बनते है। अमरसिंह ने लिखा है —

"अ कुर प्ररोहश्च"—अ कुर निकल कर नीचे पृथ्वी की शरण लेना है। पृथ्वी के क्षेत्र मे होने से पोषण मिलता है। पृथ्वी इनकी माता है—क्षेत्र ही स्थान है, इसके अ क मे रहना है। अप जीवनार्थ इसमे रमण करता है अतः इनके जीवन की योनि है। यही चरक-अष्टाग सग्रह-अष्टाग हृदयकार ने लिखा है—

"पंच भूतात्मकलत्त् क्ष्मामधिष्ठाय जायते"

अम्बुयोनि— चरक.

उद्भेदन के बाद जब तक सामान्य स्थिति होती है इसमे ऋजु स्कध शाखादि होते है—

'यावद्दृजु परिगृहणाति तेजस्यावद्दृजुर्ग्रंथिश्च स्कंध' ।र० नी० २-४८२॥

सामान्य क्रिया होने पर प्ररोह मे सीधे ऊपर को वृद्धि होती है। ग्रन्थियाँ भी सीधी रहती है, कोई विभेद नही जान पडता। पृथ्वी व अप महाभूत के परमाणु पिण्डित होकर अग्नि से परिग्रहीत होकर ऊर्ध्व परिप्लुत होते है—अग्नि की सम्यक् क्रिया से वनस्पति स्कध व ग्रथि ऋजु होती है। प्रशस्त पाद ने टीका करते हुए यह लिखा है—

पृथिव्यपरमाणवत् सपिण्डितान् अग्निनापरिगृहीतान् उर्ध्वमभिप्लव मानान् अग्निर्यावत् प्रमाणामृजु परिगृहणाति तावदृजु ग्रथिश्च स्कधो भवति वृक्षादीनाम्।

वृक्ष सीधे होते है इसका कारण यह है कि पृथ्वी व अप के परमाणु पिण्डित होकर अग्नि की क्रिया से ऋजु विकास पाते है अत. वृक्ष ऋजु (सीधे) होते हैं। जहाँ तेज की क्रिया अधिक होती है वहा ग्रन्थी बनती है—जहाँ तेज व्यवस्थित होकर वायु के द्वारा अवधमित होता है वहा पर वनस्पति शारीर मे सुषिरता आती है। यही वनस्पति शरीर मे शिरा धमनी बनाते है। अग्नि की क्रिया से द्रव्याभिग्रहण होता है और पाचन होता है अत दो प्रकार के सूत्र निर्मित होते है।

पृथ्वी से पादप पाद द्वारा आहार लेते है अत पादप सज्ञा है। अग्नि की क्रिया से पृथ्वी से पाचभौतिक परमाणु सग्रहीत होते है, स्कध मे परिग्रहण करते है तो स्कध बनता है। एक पार्श्व मे यह परिगृहीन होते है, तो स्कध का एक पार्श्व बनता है—उभयत होने पर उभय पार्श्व बनता है अत स्कध के सुषिर भाग से इनका परिग्रह चलता रहता है। तेज की जहा अधिक क्रिया होती है वहा ग्रन्थि बनती है।

स्कध निर्माण—स्कध मे जब अग्नि-क्रिया द्वारा

---

१. यत्रावतिष्ठते तेजस्तत्र ग्रथि ।८३।
२ यत्रावस्थितमेतद्धीयते तेजोऽनुविधमति नर्दन वायुस्तत्र सुषिरम् ।८४।

आहार द्रव्य परिग्रहीत होते है और शोषण व सग्रहण बराबर होना है, तो स्कन्ध ऋजु होता है। एक पार्श्व मे अधिक से गृहीत हो, तो कुब्ज टेढा बन जाता है। इस स्कध मे दो तल बनते है, दो प्रकार की वीची सूत्रो मे बनती है, दो प्रकार के धातु सग्रह होते है। स्कध मे जब आगे जाकर दोरे लहरें (वीची) पृथक बन जाती है एक स्कध के दो भाग हो जाते हैं–दो विभाग बन जाते हैं। यदि वीची एक ही रहे, तो सीधा स्कध बनता है। यही जब पृथ्वी व जल-भाग लेकर विभिन्न वीची देता है बहुत-सी शाखा-प्रशाखाये बन जाती है और विटप का स्वरूप प्राप्त करता है। यथा —

'यत्रावस्थितभुभयतोवीचीर्ददाति पृथिव्यमसी क्वचि निर्हरति अनिलस्तत्र द्वंतकम् ॥८६॥ यत्रावस्थित मनेका वीचीर्ददाति पृथीव्यमसीश्चापि निर्हरति अनिलस्तत्र विटपम् ॥८७॥

पत्र पुष्प फल निर्माण—पत्र–तेज का परिग्रह जिस रूप मे होता है पत्र बनता है और उसका आकार बनता है। स्कध के क्षेत्र मे यदि लम्बाई मे तेज परिग्रह करता है दीर्घ पत्र बनता है। बृत्त करने पर व गोलाकार–तिर्यक करने पर तिरछा चारो तरफ काटने पर चतुरस्र पत्र बनता है, यह तेज के परिग्रह मे होता है। वनस्पति-शरीर मे पत्र केन्द्र जिस रूप मे कार्य करता है पत्र का आकार वैसा बनता है। यथा—

'दीर्घवृत्ततिर्यक् चतुरस्रत्‍श तेजस'
परिग्रहवशात पत्राणाम् ॥८८॥

अग्नि की क्रिया ही स्कध शाखा-पत्र-पलाश आदि की अभिनिर्वृत्ति का कारण है। पत्र मे पत्राग्र क्यो बन जाते हैं इसका बहुत सुन्दर उत्तर दिया है—

यत्रावस्थित भवपीड्य मध्येऽनुपूतः परिहीयते तेजस्तत्र पत्र शाखाः ॥८९॥

तेज की क्रिया जिस भाग मे अधिक सक्रिय होती है उधर पत्र का भाग बढ जाता है–पत्र की शाखायें बढती है और उसमे पोषणार्थ शिरायें बन जाती है पत्र लेखा बन जाती हैं। पत्र लेखा-पत्र की शिरायें ऊँची नीची तिर्यक इस कारण बनती है।

यही कारण है कि अग्नि की क्रिया विशेप मे वृक्ष की शाखा पलाश कण्टक या स्कध ऋतु या वक्र होते है और नाना आकार धारण करते है।

वायु ग्रहण कर अग्नि जहाँ परिग्रह करती है एक विशेप अवस्थान बनता है। ऐसे दो परिग्रह स्थान पर्व बनते है और अग्नि व वायु की क्रिया से निर्हरण कर वृक्ष अपना ऊर्ध्वाविहनन करते है वहाँ कांड होता है। यह पर्व ग्रन्थि शाखा पत्र तेज द्वारा वायु के कर्म से छोटे बडे पर्व युक्त बनने से पर्व करीव या दूर बनते हे। पत्र समीप–समीप या दूर-दूर बनते है। ऐसे ही पुष्प व फल भी अग्नि के द्वारा वस्तु अभिग्रहण करके बनते है। यथा —

शाखापलाश कटकाना स्कधऋजुत्व वक्रत्व च ॥९१॥
ऐतेन पुष्प फल व्याख्यातम् ॥

पुष्प व फल—जिस प्रकार पत्र-शाखादि विविध वर्ण, आकार-प्रकार के बन जाते हैं वैसे ही वनस्पति शरीर पर अग्नि के अभिग्रहण व वायु के अवधमन से उसके विशिष्ट केन्द्र मे उद्भवकारक क्षेत्र बन करके पुष्प के विविध आकार व प्रकार तथा गध बनाते है।

ऐसे पुष्प मे पत्र केशर कर्णिका[1] आदि की उत्पत्ति होती है ऐसा नागार्जुन का कथन है।

पुष्प का सम्मिलन व उन्मीलन—पुष्प मे कलिका से पुष्प का विकास होना है। यह तेज की क्रिया के द्वारा होता है। यथा—

"सम्मीलनमद्भिरुन्मीलन तेजसा"—पुष्पो मे तेज महाभूत की अधिकता होने पर उन्मीलन या पुष्प का विकसन होता है और अपतत्वाधिक्य से सकोच होता हे। अत वे दो भेद पुष्पाधार पर होते है। चान्द्र पुष्प व आग्नेय पुष्प[2] नागार्जुन ने ये विचार सुश्रुत से लिए। वे दो प्रकार के द्रव्य बतलाते है—सौम्य व आग्नेय, अत पुष्प मे वर्ण के भेद से दो भेद है। श्वेत कृष्ण, नील वर्ण के पुष्प चान्द्र पुष्प और आहार (किंचित लिप्त) रक्त वर्ण पीत-अरुण यह आदित्य वर्ग के पुष्प है। यथा—

आदित्यश्चन्द्रभास्तारः कृष्णो लोहितक सित.।
यच्चान्यदेवजातीय सर्वं तत् तेजसस्मृतम्।

ऐसा ही विचार कर स्थावर जगत मे विचार करना चाहिए—

"अवेक्षितव्यमन्यत्"। ६७

---

[1] **विटपवत् पत्र केशर कर्णिका प्रभृतीनाम् ॥६४॥**
एतेन पुष्प फलं व्याख्यातम् ॥६२॥

[2] **चन्द्रश्चाग्नेय एव च।**

यह स्थावर द्रव्य महाभूतो के उत्कर्ष व अपकर्ष से विविधात्मक होते है अत सब पाँचभौतिक कहे जाते है।
१. भूतोत्कर्षोपकर्षासन्निवेश विशेषाद् द्रव्यवैषम्यम् ॥६८
२. पॉच भौतिक शरीरमित्येके—

यह सामान्य विवरण रस वैशेषिककार ने उद्भिद जगत के लिए दिये है और इनमे रस वर्ण गन्ध-गुण-कर्म कैसे उत्पन्न होते है यह विस्तारपूर्वक विवरण दिया है।

अब इसका विशेष विवरण क्रमश शास्त्रीय आधार पर देते है, जो वनस्पति-शरीर की क्रिया को बतलाते है।

विटप व पादक—

पादप—वृक्ष एक स्थान पर आश्रय करके रहता है और गतिशील बनता है अत वृक्ष तरु कहलाता है। अपने मूल या पाद के द्वारा यह अपना आहार पान करता है अत पाद कहलाता है। अंध्रिप भी इसी आधार पर होता है।

विटप—नीचे से आहार द्रव्य लेने पर भी उसका पूर्ण पोषण नही होता अत पत्रो द्वारा श्वास-प्रश्वास की क्रिया करता है अत इसमे नीचे की सामग्री के अतिरिक्त वायु से विड जातीय कार्बन नाईट्रोजन लेता है। अतः इसे विटप कहते है। विड पातीति विटपम्।

पादप—अंध्रिय-सज्ञाये-वृक्ष की क्रिया की द्योतक है और विटप-वृक्ष के श्वास-प्रश्वास की क्रिया का ज्ञापक है।

वनस्पति युद्गल (Cells)—

वनस्पति शरीर भी मानव शरीर की तरह सूक्ष्म युद्गल-यापभाण्डु अवयवो के समूह से बना हुआ है। यथा

उदयन ने किरणावली मे पृथ्वी निरूपण के प्रसग मे इस विषय पर स्पष्ट लिखा है कि—मनुष्य शरीरवत वनस्पति शरीर भी भूमि से आहार ग्रहण कर जीवन-मरण, स्वप्न-प्रजागरण का अनुभव करता है। यह सजातीय द्रव्य से वृद्धि, विजायीय द्रव्य से हानि प्राप्त करता है, इत्यादि—

"इत्थप्रतिनियत भोक्त्र्यधिष्ठिता. जीवन-मरण-स्वप्न जागरण-रोग भेषज प्रयोग-सजातीयानु विद्यानुकूलोपगम प्रतिकूलोपगमा दिव्य, प्रसिद्ध. शरीरवत्।

स्वप्न-जागरण रोग आदि सबकी समता मनुष्य शरीरवत् वनस्पति शरीर मे भी होती है। अत शरीर जिस प्रकार शीर्यमाण होता है नवीन युद्गल बनते है उसी प्रकार वनस्पति शरीर के भी सूक्ष्म परमाणु अवयव बनते है। अत उनमे जीवन होता है। जीवन के स्वरूप मे ये प्रवर्द्धित होते है। अंकुर से वृक्ष बनता है। एक स्कध से कई शाखाये मिलती है और विशाल शरीर धारण करता है।

सुख दु ख व चेतनता—वनस्पति शरीर मे सुख-दु ख का अनुभव होता है, यह अन्त सज्ञा वाले होते है-यथा—

अतः पुरुष शरीर तुल्यत्वात् सचेतनो वनस्पतिरिति।

वनस्पति मे आत्मा—वनस्पति मे आत्मा है इस पर विचार किया जाय, तो सामान्य रूप मे यह बात स्वय दृष्टिगोचर होती है कि इसमे आत्मा है यथा—

(१) आत्म लक्षण मे निम्न बाते होनी चाहिए, जो कि जीवन के चिन्ह की साक्षी है—

(क) **रसपरिभ्रमण**—वनस्पति के मूल को जल से सिक्त करने पर उसमे रस का ग्रहण हो, तो वनस्पति फूलती फलती है। बिना जीव के ये लक्षण नहीं आ सकते। यथा—

मूले सिक्तेषु वृक्षेषु फलादिषु रसः स्फुटः।
स चोच्छ्वास मंतरेण कथमूर्ध्वं प्रसर्पति ॥

—द्रव्यलोक द्रव्य सग्रह पचमखण्ड ३२

(ख) **श्वासोच्छ्वास**—रस परिभ्रमण होने पर उसके जीवन प्रयोगार्थ श्वास-उच्छ्वास लेना होता है। यह जीवन के बिना नही हो सकता। यदि श्वास की क्रिया नही हो, तो जीवित प्राणी जी नही सकता। वनस्पति जीती है अत यह स्पष्ट है कि इसमे श्वास-प्रश्वास की क्रिया होती है। श्वासोच्छ्वास आत्मा का धर्म है। यथा—

अन्वय व्यतिरेकाभ्यां ततो रस विसर्पणम्।
उच्छ्वास माक्षिपति यत् व्याप्य् न व्याप्यकंबिना ॥
उच्छ्वासश्चा त्मनोधर्मं निर्विवादमिदखलु ॥ लेख प्र०

(ग) **दौहृद या इच्छा**-मनुष्य मे इच्छा की उत्पत्ति होती है इसी प्रकार वनस्पति मे भी इच्छा की उत्पत्ति होती है। दौहृद आत्मा का धर्म है। इच्छित वस्तु को पाकर वनस्पति फूलती व फलती है अन्यथा सूख जाती है। यथा—

दृश्यते दोहदोत्पत्ति र्द्रुमाणमपि नृणामिव।
यत्तत्प्राप्य फलन्त्येते हृष्टा शुष्यन्ति चान्यथा ॥
दोहदश्चात्मनो धर्मः कथंनात्मान माक्षिपेत्।
इच्छा रूपोदोहदो हि नेच्छावेन्तबिना भवेत् ॥

संज्ञा नियत सकोचविकाशप्रमुखा अपि ।
सञ्जिनं कथमात्मान नज्ञापयति युक्तिभिः ।
यद्वा तारतम्यमेव द्रुमेष्वपि नरेष्विव ।३६। ३६

मनुष्यवत् वनस्पति मे भी यह इच्छा पायी जाती है।

वृक्षायुर्वेद मे कई ऐसे योग है, जिनको रोगी वनस्पति मे देने पर अथवा सूखते हुए वनस्पति मे देने पर वे रोग-रहित होते है अथवा पुन हरे हो जाते हैं।

(घ) योनित्व वनस्पति मे है.

देखने मे आता है कि वनस्पति मे विभिन्नता है जो कि विना हेतु के नही होती। यथा ,एरड जैसा छोटा द्रुम व आम्र जैसा वडा पेड, कोई कटकित व कोई कोमल, कोई सरल व कोई टेढा। हर एक मे अपना-अपना उचित रस व गन्ध भी है। कोई सविप कोई निर्विष, कोई पानी मे कोई रेत सागर या क्षार मे होते है। अत इनमे नानात्व है, जो कि कर्मजनित हेतु के नही होता अत इसमे सातमकत्व है। यथा

वनस्पते सात्मकत्वं स्फुट मेकप्रतीयते ।
जन्यादि धर्मो पेतत्वात्मनुष्यादि शरीरवत् ॥
अनुमानं पुरस्कृत्य साधयत्यागमोऽपि च ।
वनस्पतेः सचैतन्य माचारांगेयथोदितम् ॥४६॥

अत वनस्पति मे चैतन्यता है यह सिद्ध होता है। वनस्पति आचरांग मे भी लिखा है यथा

इमपिजाइ धम्मय एयंपि जाइ धम्मय इमंपि बुद्धि धम्मयं एयपि बुद्धि धम्मयं इमपि चित्तऽमतय, एयपि चित्त मतय, इमपि छिन्न विलायई एयंपि छिन्नविलायई, इमपि आहार ग एयपि आहारगम् इमंपि अणिच्चय एयपि अणिच्चय, इमंपि असासयं, एयपि असासय; इमपि चओवचइय, एयपि चवो वचइय, इमपि विपरिणाम धम्मयएयपि विपरिणाम धम्मयम् ।

वनस्पति-आचार-सहिता मे इस प्रकार का लिखा हुआ मिलता है। अत मनुष्यवत् वनस्पति-शरीर भी जन्मात-धर्मता, बुद्धि-धर्मता, चित्त-मयता, व काटने पर नष्ट धर्मता, आहार-ग्राहकता, श्वास-ग्राहकता, आयु प्राप्यता, विपरिणाम-धर्मता आदि मे वनस्पति शरीर मे मनुष्यवत् धर्म होने से सात्मकत्व निर्विवाद सिद्ध होता है।

योनित्व भी वनस्पति शरीर मे सिद्ध है।

प्राणियो मे शुक्र व रज के उचित रहने पर जीवोत्पत्ति होती है इसी प्रकार वनस्पति मे भी बीज के योनित्व रहने पर ही बीज से उत्पत्ति दिखाई पडती है।

वनस्पति का बीज भी योनि-रहित होने पर नही जमता।

योनित्व का अर्थ प्रज्ञापना वृत्ति मे योनित्व का अर्थ उत्पत्ति सामर्थ्य का अविध्वस्त होना माना गया है। यथा **जन्तोरुत्पत्तिस्थानमविध्वस्त शक्तिकं तत्रस्थ जीव परिणामन शक्ति सपन्न भावमिति भाव ।**

अर्थात् जन्तु उत्पादन शक्तिता ही योनि है। इसके नष्ट हो जाने पर, उत्पादकता नष्ट हो जाती है। वनस्पति मे भी यही पाया जाता है। इनकी योनि की अवधि भी निर्दिष्ट है यथा

त्रिवार्षिकी योनि यवायव यवाश्चापिगोधूम व्रीहि शालय ।
धान्याना भो जिनैरेषामुक्तायोनि त्रिवार्षिकी ।
पचवार्षिकी योनि
कलाय माष चपल तिल मुद्ग मसूरकाः ।
तुलस्यतुवरीपृत्तचणका. वल्लकास्तथा ॥
प्रज्ञप्ता योनि रेतेषा श्रीजिनै पच वार्षिकी ।
सप्त वार्षिकी : लट्टातसी शणकंगु कोर दूषक कोद्रा ।
बीजानि मूलकानासर्षपा वरट्टरालका ॥
प्रज्ञप्तायोनिरेतेषा आगमे सप्त वार्षिकी ॥

इस प्रकार आगम मे प्रत्येक बीज का योनि-धर्म निश्चित होता है। इसकी बीजोत्पादन शक्ति विधान युक्त ---न मे रखने पर कुछ दिवस और रुक सकती है। परन्तु यह निर्दिष्ट क्रम है। प्रवचन सारोद्धार के पचभाग मे लिखा है कि जब तक प्रजनन-शक्ति इनमे होती है वह ही इनकी योनि की अवधि है। उसके बाद वे अकुरित नही होते। सब वनस्पति बीज से ही नही उगते। कोई पत्र से, कोई मूल से, कोई स्कध से और कोई शाखा से भी उगते दिखाई पडते है। यही इनकी योनि है। अत इनमें भी जीव है। चक्रपाणि ने लिखा है —

अत सज्ञा भवन्त्येते सुखदु.ख समन्विता. ॥

गुण रत्न ने लिखा है कि —

अत पुरुष शरीर तुल्यत्वात् सचेतनो वनस्पतिरिति।

भागवत पुराण मे वृक्ष के शरीर क्रिया का अच्छा विवरण दिया है। यथा —

तेषा साधारण लक्षणमाह-उत्स्रोतसः ।
तम प्राया अव्यक्त चेतन्या अ-त. स्पर्शा ॥

अर्थात्-वृक्ष मे स्रोतस् ऊपर की तरफ होते है—तमोगुण प्रधान होता है—इसकी चैतन्यता तमोगुण प्रधान होने से अव्यक्त होती है और यह अन्तः स्पर्श प्रधान होते है।

चक्रपाणि ने भानुमति नामक चरक की टीका मे लिखा है कि—"वृक्षास्तु चेतना वन्तोऽपि तमसाच्छन्न ज्ञानतया शास्त्रोपदेश विषया एव"

अर्थात्—वृक्ष चेतनावान होने पर भी तमोगुणाधिक्य होने से उनका ज्ञान प्रच्छन्न रह जाता है और प्रत्यक्ष दृष्ट नही होकर शास्त्रोपदेश का विषय मात्र बनता है। किन्तु पचेन्द्रिय के विवरण इनमे मिलते है। यथा—

स्पर्श

१. **वनस्पति शरीर पर धूप**—वायु-ताप के प्रहार से बचने के लिये त्वगिन्द्रियवत् वाह्यत्वचा बनती है। स्पर्श सौवर्ण्य होने से अन्य प्राणी हानि न पहुचाये एतदर्थ वह मोटी खुरदरी-फटी हुई-कर्कश-दृढ बनती है और वृक्ष की रक्षा करती है।

२. **लतायें वनस्पति**-शरीर के आश्रय से मृदुस्पर्शगम्य होकर आवेष्ठित करती हैं और लिपटती है, प्रवृद्ध होती है और स्पर्शानुभव करती हैं।

३ वृक्षायुर्वेद मे रोग-विवरण मे स्पष्ट लिखा है कि वनस्पति शरीर-धूप-वायु वात्या व शीत के द्वारा पाडुर हो जाते है यह स्पर्शज दोष है। शीत-उष्ण से जैसे शरीर पर प्रभाव पडता है वैसे ही वनस्पति शरीर पर भी प्रभाव पडकर रोगी होता है।

४. **अशोक पल्लव**—युवती स्त्री के स्पर्श से पुष्पित होते है-यह स्पर्शगम्य क्रिया है।

५. **बकुल**—स्त्री-स्पर्श व मुख मे मद्य लेकर उस पर गडूष की रखकर उसके निक्षेप से पुष्पित होता है।

६. **कमल**—उष्मा के प्रसार (सूर्योदय) से खिलता है, रात मे शीत स्पर्ण से सकुचित होता है।

७. **कुमुदिनी**—शीत चन्द्रिका मे विकसित होती है।

८. **घृत करज**—रात्रि मे पुष्पित होता है अतः नक्तमाल नाम है।

९. **लज्जावन्ती**—स्पर्श से सकुचित हो जाती है।

१०. **मृदु**—कठिन, स्निग्ध, पिच्छिल-खर यह स्पर्श वनस्पतियो मे होते हैं और इन स्पर्शों को ये अनुभव भी करती हैं। —लोक प्रकाश पचम खड

दर्शन

वनस्पति के दर्शन शक्ति होती है।

(१) इसका मूल पृथ्वी मे फैलता है, चलता अतः चरण कहलाता है। जिधर खाद्य द्रव्य मिलता है उधर फैलता है-अतः मूल का नाम नेत्रप भी है अर्थात् वह वस्तु का दर्शन करता है।

(२) लता वामावर्तिनी या दक्षिणा-वर्तिनी होकर वृक्षाश्रय करती है, यह दर्शन का विषय है।

(३) कुष्माण्ड पुष्प—अंगुली दर्शन कराने से गल जाता है।

(४) अक्षि—कद मूल या स्कंध मे अंकुरण करने वाली आंख या अक्षि ही होती है। वह देखकर चलती है।

(५) सूर्य-भक्त व श्वेतार्क पुष्प सूर्य की रोशनी की तरफ मुख रखते है-सूर्यमुखी उसका नाम ही है।

श्रवण

(१) स्कंध दोष्य वृक्षो मे या काण्ड दोष्य वृक्षो गीत वाद्य स्पर्श-जलधर निनाद श्रवण से अंकुरण होता है।

(२) सगीत श्रवण से शस्य-वृद्धि होती है। यह आधुनिक विचार है।

रसज्ञान

जीवित प्राणियो की तरह-स्थावर वृक्ष भी रस का स्वाद लेते है और इनका सग्रह करते हैं और उनसे तद्रसानुकारी रस द्रव्य बनते है।

इसका वर्गीकरण करते हुए चिकित्सको ने रसस्कध का निर्माण किया है। यथा—

(१) मधुर स्कध, (२) अम्ल स्कध, (३) कटुक स्कध, (४) तिक्त स्कध, (५) कषाय स्कध, (६) लवण स्कध।

कुछ वनस्पति—भले-बुरे रस का भी ग्रहण करते है।

गध ज्ञान—वनस्पति मे गध-ज्ञान भी पाते हैं।

खाद्य द्रव्य—(खाद-Manure) का वर्णन करने मे मत्स्य जलोत्सेक मासोदक सेचन से पुनः पुष्प व फलोद्भुम का विवरण वृक्षायुर्वेद मे शार्ङ्गधर पर पद्धति व वाराही सहिता मे लिखा है।

सुगध वर्ग का सगठन उन वनस्पतियो मे पाया जाता है, जिनमे गन्ध होता है। ऐसी बहुत सी वनस्पतिया है। महासुगन्ध वर्ग इनमे से निकलता है।

उद्भिद शरीर निर्माण (Morphology)—इस विषय पर पूर्व मे पाँचभौतिक शरीर निर्माण का क्रम लिख चुके है। सूक्ष्म शरीर-रचना मे विभिन्न बाते पाई जाती हैं।

बीज से अकुरण होता है। बीज मे उद्भिद के सब

अङ्ग अणु रूप में होते हैं। विष्णुपुराण व महाभारत के शान्ति पर्व में इसका विवरण मिलता है। प्राचीन शास्त्री मानते है कि बीज मे वृक्ष के प्रत्येक अङ्ग प्रसुप्त होते है जिस प्रकार शुक्र व आर्तव मे मातृ-पितृ अंश होते हैं। कालान्तर मे उपयुक्त स्थिति पाकर वे बढ़ते है और बीज मे वृक्ष बन जाता है। व्रीहि बीज का उदाहरण इस प्रकार दिया है। यथा—

व्रीहिबीजे यथा मूल नाल पत्राकुरो यथा।
काड कोष तु पुष्पं च क्षीरं तद्वच्च तडुला ॥
तुषाः कणाश्च सतोवैं यान्त्याविभावमात्मन.।
प्ररोह हेतु सामाद्दीमामात्र मुनिसत्तम।

वि. प्र. अ ७-(३५-३८-६६)

अर्थात्—एक व्रीही धान के बीज मे जैसे अ कुर-मूल पत्र नाल–काड पुष्प बीज-तुष-कणा-क्षीर व तडुल होते है और समय व अनुकूल सामिग्री पाकर अपने स्वरूप मे आते हैं। अत. आधुनिक शास्त्र मे भी बीज के भीतर इससे अधिक विवरण नही मिलता, जो लिखा है। शब्द का फेर है अन्यथा स्पष्ट व सब विवरण मिलते हैं।

यह अध्ययन ईस्वी सन् से कई सौ वर्ष पूर्व का है जबकि इस विषय का ज्ञान १८ वी शताब्दी मे हुआ था। लीनियस ने सर्वप्रथम (१७५१) मे जो पुस्तक लिखी थी वह फिलोसफी आ बोटेनिक की थी—इसके बाद कैसपर (Casper) फटरिच (Freadreach) वुल्फ (Wolf) ने १७५६ मे लिखी व गोथे (Gothe) ने १७९० मे एक पुस्तक लिखी थी, जो डार्काट्रन आफ मेटामारफोसिस लिखी, जिसमे बहुत सामान्य विवरण दिया है। बीज मे अंकुरण होने के लिए ऋतु-क्षेत्र-अम्बु व बीज का विवरण चरक—काश्यप—हारीत व सुश्रुत सबने दिया है।

बल्कि हारीत ने तो अमैथुनी सृष्टि का विवरण प्रथम बार दिया है। उन्होने लिखा है कि प्राणियो मे तो सयोग से ही गर्भ होता है। बिना सयोग के गर्भ क्यो नही होता जैसे वृक्षों मे होता है ? बिना सयोग के वृक्षो मे पुष्प व फल पाये जाते है। इस प्रकार प्राणीजाति की स्त्रियो मे गर्भ धारण क्यो नही होता ? आत्रेय का उत्तर है कि स्थावरो मे शिव व शक्ति दोनो अंश होता है अर्थात् स्त्री व पुरुष अंश होता है। निश्चय होने से इनमे व्यामिश्र चिन्ह होता है। इनमे स्त्री-पुरुष दोनो गुण होते हैं। आम्र मे पुष्प व बीज दोनो होते हैं। यथा—

हारीत– संयोगेन बिनाप्राज्ञ कथ गर्भोन् विद्यते।
संयोगेन विनापुष्प फलवान कथ भवेत्।
वृक्ष वन्नकथ स्त्रीणां फलोत्पत्ति प्रदृश्यते ॥
आत्रेय–विरुद्धाना च वल्लीना स्थावराणा च पुत्रक।
तत्रधरतुसम बीज सहयोगेन वर्तते ॥
न भिन्न दृष्टि तस्येव दृश्यन्तेश्रृणु पुत्रक।
स्थावराणा च सर्वेषा शिवशक्ति मय विदु ॥
निश्चरोपि शिवो ज्ञेयो व्याप्तिशक्तिर्सहीयते।
तत्र स्त्री पुरुष गुणा वर्तन्ते समयोगत ॥
आम्र पुष्प फल तद्वत् बीज शुक्रमय विदु।

इतना ही नही वाराही सहिता के लेखक ने तो बीज को ही शुक्र मात्र न मानकर अकुरण के नये आधार बतलाये है। गुण-रत्न ने भी कई आधार दिए है। इनके विशेष आधार रोहण के निम्न है—लोक प्रकाश से श्री विजय सूरिने यही आधार माने है।

(१) बीजसह By Fruits and Seed
(२) मूलज–मूलसह By Root
(३) स्कधजकाडसह By Cutting and Grafting
(४) अग्रज By Apecal Portion
(५) पर्णयोनि By Leaves
(६) सन्निरोधज By Unions Joints

बीजसहः—अकुरण के लिए बीज का वपन सामान्य विधि है। बीज भूमि मे डालने व जल ताप वायु सयोग से अकुरण होता है।

मूलज —मूल कद व तद्वत द्रव्य भूमि मे डालने से अकुरण होता है। कद की परिभाषा ही ऐसी है यथा — यन्मूलमेव बीज स कन्दः। यथा-आलुक-आर्द्रक-शूरण-आदि

स्कधज'—क्षीरी वृक्षो के स्कध को काट कर वर्षा मे रोपण करने पर उसमे अकुरण होता है। शीत वायु–शीतल जल–घन निनाद से अकुरण बतलाया गया है। यथा —

वट पिप्पलनिम्बादीना प्रावृट जल धर निनाद शिशिर वायु सम्पर्कादकुरोद्भेद ॥ सद्दर्शन समुच्चय-गुण रत्न टीका

परिवर्तित काड मूल के रोपण से भी अकुरण और आरोहण होता है। यथा.–वचा–जटामासी–दूर्वा–वीरण इत्कट। गुडीची को भी छिलसही सज्ञा इस अर्थ मे दी गई है। अर्थशास्त्र मे चाणक्य ने व वृहत सहिता मे वराहमिहिरने इनके विवरण बहुत स्पष्ट व सुन्दर श्रेष्ठ विभाग करके दिये है। वाराहमिहिर ने कटहल-(Jack

fruit) अशोक (Saraca Indica) कदली (Plantein) जम्बू (Brack Berry) लकुच (Artocarpus Lacooch) दाडिम (Pome grauati) द्राक्षा (Vine)वाले वत (वीज अतिमुक्तक् इनको छिन्न सह वर्ग मे दिया है। काट कर लगाने पर लगते हे।

अग्रज (Apecal) शाखाग्रभाग लगाने से वहुत से वृक्षो मे अ कुरण होता है पुष्प जातीय वहुश ऐसे हें। इनकी शाखाये काटकर लगाते है। गुलाव-चादनी-मदयतिका, जाती आदि। जिस भाग मे शाखा, शुङ्ग या अक्षि होते है, लगाने से रोहण होता है।

पर्णयोनि—पत्र लगा देने से वीजवत् अ कुरण होता है। यथा पर्णवीज-(Bryophytem Calycumen)

सधिदोषज सधि या वर्ण के लगाने से उसमे मे अक्षिका रोहण होना हे। यथा —इक्षुपर्व-नलपर्व-वीरणपर्व-कुश पर्व-कास पर्व कभी-कभी स्कध से निकलने वाले अव-रोह भी वृक्ष का रूप धारण करते हे-यथा-वरावरोह पिप्पलावरोह—वद्ध घोष ने (अश्वघोष) का विस्तारपूर्वक इनका नामपूर्वक गणना की है। यथा.—

(Root Seed) हरिद्रा Turmearea

श्र गवेर Zingeber

Aconehin Heters वचा Acorns Calamus

Phithun अतिविषा Puroheza Cummoa

Pecrohize Curmo कटुक रोहिणी A Muricatus

उशीरम् A Muricaturs।

काण्ड वीज (Cutting beebs)—

(१) अस्वस्थ–Fcus Religroja

(२) कच्चक–Cedreta Toona

(३) न्यग्रोध–Fcus Bengabaresis

(४) प्लक्ष–Fcus Infectoria

(५) उदुम्बर–Fcus Glomertata

(६) कपित्थम्–Feronia elephentum

पर्व वीज (Joins) नल वीरण। अग्रवीज (Badding) अर्जक(Ocjimum Basilecum) ह्रीवेरम्(Andropogen cynanthus)

वीज वीजम् – (१) शूक धान्यम् (7 Dravyas) (२) अपरान्नम्-शिम्बी धान्यम् (Puls & cucurbuta)

पूर्व के वर्णित वीज के भीनर वृक्ष का प्रत्येक अ ग। इनको सवसे पहले प्राचीन भारतीय चिकित्सको ने इस्वीय सन् से कई सौ वर्ष पहले समझा था। आधुनिक वनस्पति-शास्त्रियो मे एड्रिचर (Endricher) ने अध्ययन कर समझा। इसने कहा था कि इसमे (Formation of ossemblage) शब्द का प्रयोग न किया था (1837)

अलक्जेण्डर ब्राउन (Alexander Brown)1805-1827)

वनस्पति के अङ्गो के क्रमिक विकास प्रथम वार समझा और प्ररोह को वनस्पति वर्द्धन का आधार माना और कहा कि प्ररोह (Shootha) का शुंण वढकर शाखा, पत्र, पुष्प वनता है। गोथे (१७६०) मे डाकट्रिन आफ मेटा-मार्फोसिस लिखकर यह वतलाया कि वनस्पति शरीर वढने पर उसके कार्य मे स्हील के वाद अन्य टिस्यू वनाते हैं वह सामान्य या पूर्ण रूप से शरीर निर्माण करते हे।

(२) वृक्षा मे साइक्लिक टेडेंसी स्त्री-अ ग का और वर्टिकल टेंडेंसी पुंजातीय होता हे।

समय-समय पर आधुनिक वनस्पति शास्त्रियो ने कई विचार किए हे परन्तु १८ वी शताब्दी तक अस्पष्ट थे। इसके वाद निमोक्ति विचार (Systematic Organs Therapy) वना। ए० पी० डी० कडोले ने जो रस पर कुछ लिखे थे टीघेम (Tieghem) ने वनस्पति शरीर का अध्ययन कर कहा कि मूल-कांड-पत्र—यह सिमेट्री के आधार पर वने है। यथा —

1. Root Axil Symaetry basis of Primary wood
2 Stem Axil symmaetry
3. Leaves-(By lateral symmaetry)

काष्ठ मे वाह्य व मध्य व अन्तस्तरीय रचना होती है यह प्रथम वार कहा—जवकि भारतीय इसका अध्ययन प्रथम कर चुके थे। काष्ठ दारु व सार का उनका गम्भीर अध्ययन हो चुका था। वह काष्ठ मे श्वेत सूत्र, पीत सूत्र कृष्ण व रक्त सूत्र—नील रस का ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। ११ वी शताब्दी मे धन्वन्तरि निघण्टुकार व १४ वी शताब्दी मे नरहरि और प्रथम शताब्दि मे अमरसिंह ने लिखा है। विवरण निम्न है —

काष्ठ व दारु—गोथे ने जिस साइक्लिक-वृत्ताकार रचना की वाते लिखी हैं वह भारतीय चिकित्सक कई सौ वर्ष इनसे पूर्व लिख चुके थे। गुडची को चक्रागी निसोथ का त्रिवृत सप्तचक्रा सप्तरगी आदि के अध्ययन से स्पष्ट दिखाई पडता है कि उन्हें इसका परिचय ही नही था

अपितु आभ्यन्तरिक रचना का अध्ययन भी सूक्ष्म रूप से किया था । ।

प्रारम्भिक रचना को जेफरे (Jeffery 1860) ने वनस्पति शरीर के दो भाग लिखे हैः - (१) सेप्रोस्टील (Seppro stele) (२) प्रोटोस्टील (Proto stele)

इसने मज्ज भाग या पिथ को एक्स्ट्रासेल्युलर आरिजिन (Extracellular origin) माना था । काष्ठ सूत्र व दारु सूत्र को क्रमश जाइलस व फ्लोयम—पेरीक्षाइकिल व इन्डोदुरमिस आदि का उल्लेख किया था—ए० पी० टी० कण्डोलेने काष्ठ के वाह्यस्तर (External) मध्यस्तर (Cortical) अतः स्तर (Central region) का वर्णन किया है, भारतीय भी त्वचा व कांड की रचना में यह मानते थे । यथाः—

(१) वाह्य त्वक- अन्तस्त्वक ।

पुनः स्थूलत्वचा-तनुत्वचा-दृढत्वचा-दृढ वल्कल—श्लक्ष्णत्वक का भी ज्ञान किया था ।

काड-प्रकाड काड-उद्दण्ड दण्ड—

प्राचीनों का धातुनिर्माण

काण्ड (Stem)—त्वचा के (अन्तस्त्वचा) के वाद काड का विवरण मिलता है । प्राचीन काल के वनस्पति-शास्त्रियो ने इसका सूक्ष्म अध्ययन किया था-जो विवरण निम्न है—

प्रथम शाख का अध्ययन कर उसे शाखा शब्द से माना । काण्ड स्तव-शाखा-शाला यह सज्ञाये क्रमश आई ।

(१) उद्भिज के उत्पन्न होने या उद्भेदन के बाद उसके घटक सूत्रो का उद्गम होता है और उसमे मृदुता हटकर कठिनता आती है अत उसमे एक चमकदार वस्तु दृढ रूप धारण करती है अत उसे प्रथम सज्ञा काष्ठ की दी गई है। काष्ठ का अर्थ है-स्पष्ट दिखाई देने वाला प्रकाशमान वस्तु।

(कासृ दीप्ता—कासते) प्रकाशमान होता हे ।

(२) इसके वाद उसके दूसरे रूप का अध्ययन किया और उसकी सज्ञा दारु दी । विदारण से दारु वनता है। उन्होंने देखा कि मृदु सूत्र को हटा कर उन्हे विदारण कर दूसरा दृढ सूत्र स्थान लेता है और उसे कठिन वना देता है। अत दारु सज्ञा दी—

(३) सूत्र-काड-शाख मे इस प्रकार के सूत्र देखकर के उन्होने उसकी सज्ञायें भिन्न-भिन्न दी ।

(१) स्तम्भ—वृक्ष के कटि प्रान्त का भाग ।

(२) स्कध—स्कध की तरह दृढ रखने वाला ।

(३) प्रकाण्ड-प्रकृष्ठ चमकदार सूत्रो से बने भाग को प्रकाण्ड या प्रकृष्ठ सूत्रो को दृढ भाग प्रकाण्ड कहा ।

(४) अपर काण्ड-लघु काण्ड-छोटे पौधो मे उन्होने पतले काण्ड देखे-प्रकार के वाद के सूत्र मृदु व कम दृढ पोत से उन्हे अपरकाण्ड-लघुकाण्ड कहा ।

(५) इसमे से शाखाये निकली-स्कध के दृढ भाग के वाद के भाग का अ श जहाँ से दूसरी शाखाये निकली,उन्हे शाखा मे निकलने वाली शाखा को प्रशाखा-फिर प्रतिशाख अनुशाख सज्ञाये दी ।

प्रतान-वल्ली-लता के भी मृदु काण्ड को शाखा कहा ।

इनमे की ग्रन्थी-पोरक-पर्व गड का अध्ययन किया। यथा—शतपर्वा-दूर्वा । गडदूर्वा ।

ग्रन्थी—षड्ग्रन्थी-सधिस्थल को कटी और भीतर से रिक्त रहने वाले तृण जातीय वृक्षो की-सधि को पोरक कहा । यथा-शत पोरक सन्धि से निकलने वाली—

ग्रन्थी के पास पोरक देने वाली वस्तु का अध्ययन कर अक्षि सज्ञा दी ।

काष्ठ सूत्रो का अध्ययन और विभेद -

इसके वाद काष्ठ के चमकदार रेशो का अध्ययन किया और फिर विश्लेपण किया ।

सार—उनके भीतर के स्नेहाशयुक्त सार भाग का अध्ययन किया । काण्ड के आकार के अनुसार नाम दिये ।

१—दृढ दड व मृदु दड

स्थूल दड	— नल
ब्रह्म दारु	— कार्पासी
महास्कधा	— जम्बू, आम्र, लकुच, वट, पिप्पल
घनस्कध	— कोशाम्र

वर्ण—

१—श्याम काण्डा	— गंडाली
२—पीतसारक	— निम्ब
३—कृष्ण गर्भ	— काश्मरी
४—पीत वृक्ष	— श्योनाकः
५—पीतसार	— अंकोल
६—कृष्णसारा	— शिंशपा
७—नीलसार	— नील वीजक
८—हारिद्र	— हल्दु-वीजक
९—कालस्कध	— खदिर
१०—रक्तसार	— अगरु
११—कनकस्तम्भ	— कदली
१२—खरस्कध	— प्रियाल
१३—भद्रदारु	— देवदारु
१४—सरल काण्ड	— चीड़



इनसे स्पष्ट है कि- पीत-श्वेत-रक्त-कृष्ण-श्याम-हारिद्र वर्ण के सूत्रो से बने काष्ठ का अध्ययन किया और उनके आधार पर सज्ञाये दी।

Primary and secondry fibers

इन्होने देखा —प्रारम्भिक सूत्र-काण्ड।

द्वितीय सूत्र—दारु–जो पहले वाले को विदीर्ण करके अपना स्थान बनाया।

इसके बाद—अन्य सूत्रो का अध्ययन किया—

१–तूल — कार्पासी
२–तूंद — मृदुसूत्र
३–मूर्वा — दृढसूत्र
४–बला — खरसूत्र
५–उमाक्षुमा — दृढसूत्र । श्लक्षणसूत्र
६–रेशमीसूत्र — शाल्मली

काण्ड की आभ्यन्तर रचना—आतरिक रचना का अध्ययन करके उन्होने निम्न बातें बतलायी —

१—चक्रागी — वर्तुला-वृत्ता-गुडूची
२—त्रिवृत — निशोथ
३—सप्तचक्रा — सप्तरगी
४— आवर्त्तकी — आवल-दंगी मनाय

धातु निर्माण—सूत्र या फाइबर (Fiber)

अकुरण के बाद स्कध-निर्माण मे दो प्रकार के सूत्र बनते है। एक श्वेत व दूसरा पीत वर्ण का। इसे अमरसिंह मेदिनीकार ने स्पष्ट लिखा है।

श्वेत सूत्र (Primary Fiber)—

काष्ठ निर्माणः—काष्ठ दीप्तौ धातु से काष्ठ बनता है। इसका अर्थ है चमकदार दीप्तमान श्वेत सूत्र का समूह। यह काष्ठ है। प्रथम श्वेत सूत्र बनकर वनस्पति शरीर बनाते हैं–यह सूत्र बढकर काष्ठ का रूप धारण करते हैं और काड व स्कध का रूप लेते है।

पीतसूत्र व अन्य वर्ण के सूत्र (secondary fiber)—

दारु—विदरण इस धातु से दारु बनता है। प्रथम श्वेत सूत्रो के अतिरिक्त उनके बीच विदीर्णकर यह सूत्र बनते है इनका समूह दारु कहलाता है। पीतवर्ण का हो पीत दारु कहलाता है। कृष्ण हो कृष्ण दारु (खदिर)। रक्त हो–रक्त दारु (रक्त चदन–अगरु), नील हो नील दारु बीजक आदि मे प्राप्त होते है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के सूत्र मिलते हैं। यही नही, प्राचीन शास्त्रियो ने इनसे बने काष्ठ या दारु को देखकर विभिन्न सज्ञाये दी है। उनके भीतर पाये जाने वाले मज्जसार को पाकर कई सज्ञायें दी है। यथा —

पीतसार — निम्ब –अकोल
कृष्णसार —शिशपा
दिव्यसार —सज
असार —नल (कार्पासी)
तीक्ष्णसार —शिशपा
नीलसार —नील बीजक

वनस्पति या उद्भिज सग्रह (Morphogenesis)—

उत्तरीय सन् से १०,००० से ५,००० वर्ष पूर्व का जो इतिहास, जिसमे वैदिक काल सहिता, काल आता है, उद्भिज वर्ग का विवरण जानता है। चरकसहिता मे स्थावर वर्ग मे निम्न भाग उद्भिज के गिनाये हैं—

१ –मूल, त्वकसार, पल्लव, पुष्प, फल।

इनमे पाये जाने वाले उपाङ्ग निम्न हैं—

१-त्वक-मूलत्वक, काडत्वक–शाखात्वक्, फलत्वक्।
२–सार—मूलसार–काडसार–मज्जसार।
३–क्षीर—मूलसार–काडक्षीर–शाखा व पत्रक्षीर।
४–निर्यास–त्वक्निर्यास–हिगु, श्रीवेष्टक, सारनिर्यास खदिर-सर्ज-कुंदुरु, शाखा-काड-निर्यास-कर्पूर-स्वरस, फलनिर्यास-अहिफेन, पत्र निर्यास-कन्यासार।
५–स्वरस–पत्रस्वरस, त्वक्स्वरस, पचागस्वरस। फल स्वरस।
६–कटक–स्कध-शाखा पत्रकटक।
७–क्षार–पचागक्षार-यवक्षार, नालक्षार-तिलनालक्षार, काडक्षार-स्नुहीकाडक्षार, जटाक्षार-नारीकेल क्षार।
८–प्ररोह—वट प्ररोह, अश्वत्थ प्ररोह।
९–फल—प्रत्येक के फल —फल वर्ग-शाक वर्ग।
१०–तैल–तैलयोनि-तिल-सर्षप-अलसी-मधूक-तुवरकादि
११–कद सूरण-आलूक।
१२–पुष्प —बहुविध पुष्प।
१३–पत्र—पत्र शाकवर्ग
१४–बीज —विभिन्न उद्भिदो के बीज
१५–कुड्मल —शाखाग्रभाग (Buds Apical Portion)

जो पुष्प-फल-शाखा को निर्माण करते है। आधुनिक वनस्पति–शास्त्री मूल–काड–पत्र–फल मात्र अठारहवी शताब्दी तक जान सके थे।

पुन. इनके अवान्तर भेद का अध्ययन मिलता है।

यथा त्वक — (Bark Rind skin)

१—त्वक-वल्कल—इनके दो भाग बतलाये हैं —

(१) वाह्य त्वक्

(२) अन्तस्त्वक

त्वक—आवरण अर्थ मे है। अत जो वनस्पति या फल शरीर को आवरण किये रहे उसे त्वक कहते हैं।

बृहदारण्यक मे मनुष्य शरीर की तरह वनस्पति शरीर की या वृक्ष की रचना दी है।

त्वक् मे लोम का स्थान दिया—वनस्पति त्वक्, पत्र व शाखात्मक मे लोम मिलते है। निघटुकारो ने इसका अध्ययन सूक्ष्म रूप मे किया है। और त्वक् के विभेद दिये हैं—

१—तनुत्वचा (Thin Bark) क्षुद्रकाश्मरी

२—स्थूल त्वचा (Thick Bark) गमारी।

३—सुदृढ त्वचा (Solid Bark) गमारी।

४—दृढत्वच—बीजपूरत्वक (फलत्वक का भी ग्रहण किया गया है।

५—श्लक्ष्ण त्वच्—अश्मतक।

६—खर त्वक्—वव्वूल आदि।

७—लोमश त्वक—पटोल।

१—मधुर त्वच—धव-काश्मरी।

२—तिक्त त्वक्—किरात-निम्ब।

३—कपायत्वक—वट—अश्वत्थ।

४—कटु—श्योनाक—(कटूंग)।

५—तिक्त—कुब्ज।

वाह्यत्वक—दो प्रकार के वर्णित हैं—

खरत्वक्—मोटे पेड पौधो मे त्वक् का भाग फटा हुआ होता हे। यह वनस्पति शरीर का रक्षण करने वाला भाग है जो पोपण न प्राप्त कर फट जाता है—कडा खुरदरा और मोटा होता है। इसके नीचे त्वक का पोपित सरल मोटा भाग होता है। श्लक्ष्णत्वक—कई वृक्षो की त्वचा—श्लक्ष्ण होती है। नारिकेल—वश—आदि। आधुनिक विचारको ने इसके कई विभाग निश्चित् किये है।

इन त्वगाय भागो मे—पोपणार्थ उर्ध्वमुख स्रोतस होते है। उत्स्रोतसाम् प्रायो अन्त स्पर्शा विशोपिण। भागवत्—श्रीधर स्वामी टीका। भा प्र अ १०—२०

श्रीधर स्वामी ने उत्स्रोत का अर्थ "उर्ध्वस्रोत आहार सचारी येपाम्" ऐसा लिखा है। इन स्रोतसो के निर्माण करने वाले विभिन्न वर्ण के सूत्र होते ह। इन सूत्रों को पुन वस्तु सयोगो द्वारा दृढ होने मे वे उनसे वने स्रोतसो से रस प्रवाह होता है।

पुष्प (Morphology of Flower)—

पुष्प की रचना—प्राचीनकाल के चिकित्सकों ने पुष्प का अध्ययन करके कई विशिष्ट वाते लिखी है। रस वैशेपिक का कथन है कि अग्नि की विशिष्ट क्रिया, जो शाखाग्र पर होती है, उससे पुष्प वनता है।

(१) पुष्प शुग से वनता है—शुंग शाखाग्र पर प्राय होते है, इनमे पुष्प पैदा होता है अतः शुङ्ग सुनु इसका नाम है।

(२) विकमित होता हे अत पुष्प कहते है। सुन्दर होने से शुभ और मन को प्रसन्न करने से सुमनस और फल को उत्पन्न करने से प्रसवम कहा है। यह फल पैदा करता है अत प्रसूनम् कहा जाता है। प्राचीन लोगो ने इसे अच्छी तरह समझा था, इसकी प्रत्येक अवस्थाओ का ज्ञान था, जो पूर्व मे लिखा जा चुका है।

शुगसुनु—आधुनिक वनस्पति शास्त्रियो ने इसको १८वी शताब्दी मे समझने की चेष्टा की-सामान्य ज्ञान तो था।

गोथे-गोथे ने पुष्प को शाखाग्र (short) का परिवर्तित रूप माना था, जिसमे पुष्प के सर्वांग प्रसुप्त रहते हे।

The flowers as a unit structure a modified vegetative shoot in which each of the flower has espended to foliar appendages of the shoot ईमस (Eames 1925) पुष्प की निम्न परिभाषा दी हे।—

A typical stem with appendage

अर्थात्—शाखा का एक विशिष्ट प्रकार का वृन्त सगठन। उसने यह भी कहा कि सैद्धान्तिक रूप मे वनावट मे भी यह काड व पत्र मे पृथक नही हे।

In no fundamental way does is apart structurally from the normal stem with leaves

मिस सडर (*Miss Sunder 1865*) ने इसे पत्र रचना का रूपान्तर पाया और शूट का रूपान्तर पाया।

ग्रेगरी (Gregoeire 1870-1938) ने इसका खडन किया कि पुष्प व शूण्ड का प्रतिरूप नही है, वल्कि पुष्प व प्ररोह अलग-अलग है—

(That flower and vegetative shoots belongs to fundamentally different categories that the former was not derieved from the latter)

ग्रेगोरी का कथन है कि शाग्राग (shoot) और शुङ्ग (Apical Bud) भिन्न-भिन्न रचना का है। शाग्राग्र-कूट यह पैरे का हमेरम कारपस का बना होता है और शुङ्ग के नीचे की रचना है।

ग्रेगरी के अनुसार शुङ्ग--(Floral Apex) का निर्माण गुण निर्माण सेलों की वृद्धिङ्गत क्रिया है।

The multiplication of embryonic cell in the superficial ' Manchone meristematiqur"or embryonice muff-which has no defemable group of meristemetic initial cells

इसमे ग्रेगरीका सिद्धात गोथे, ट्रोल आदि से उत्तम है। गोथे भी Vegetative shoot को ही आधार मानते हैं। परतु प्राचीन वनस्पति शास्त्री इसे शुङ्गसुनु मान कर शुङ्ग को पृथक और उससे पैदा होने वाले सुनु—सतान को पृथक मानते है। शुङ्ग तो पुष्प का उत्पादन करता है परन्तु शुङ्ग के आगे पुष्प वृ त-मजरी-वृ त तथा पुष्प-स्वत भिन्न-भिन्न होते हैं, रचना भी भिन्न होती है। ग्रेगरी की तरह जौन मेकलीनथौम्पसन् (१९३६) (John Mohean Thompson) ने सबसे अन्त मे इसी सिद्धात को माना है और कोई निर्णय न कर पाने पर (State of Angiesperung) माना है। यह १९३६ की बात है। अभी भी अध्ययन जारी है। अभी भी वनस्पति शास्त्री किसी एक निर्णय पर नही आये है।

परन्तु शुङ्गसुनु की थ्योरी चिरकाल से चली आ रही है और वह उपयुक्त जचती है।

पुष्प मधु–मकरद (Nector)

पुष्प मे गध की उत्पत्ति होती है उसमे पुष्प मधु–पुष्प के आधार मे मधुर रस जिसे भ्रमर चूसते हैं, पाया जाता है। प्राचीनकाल के वनस्पति शास्त्रियो ने उसे अध्ययन किया था और उसकी सज्ञा निम्न दी थी—पुष्प मधु (१) मकरन्द, (२) मरंद, (३) मधु, (४) पुष्प रस।

यह पुष्प तैयार होने के साथ बनता है। अत पुष्परस मिष्ट होने से मधु और भ्रमर को आनन्दप्रद होने से मकरन्द कहा जाता है।

पुष्प के निम्न भाग होते है (१) पुष्पावरण-पत्र (Calyx), (२) पुष्प पत्र-दल व पत्र (Corola), (३) पुष्प सार (Polen), (४) पुष्प गध।

पुष्पावरण—वृन्त के आगे पुष्प का आवरण भाग होता है। अत आवरण कहते है। उसकी रचना पत्र से मिलती-जुलती होने से इसके अग्रभाग को पुष्प पत्र (Sepals) कहते है।

पुष्पदल—भीतर के भाग जो जो, पुष्प का प्रधान शरीर बनाते है, उन्हे पुष्पदल कहते है।

सप्तदल—सहस्रदल।

पुष्पसार–(Polen)–यह कई भागो का बना होता है उसमे—(१) पुकेशर, (२) स्त्रीकेशर, (३) पुष्परज (४) पुष्पगन्ध आदि होते है।

पुंकेशर पुष्प का पुवाचक अङ्ग और स्त्री केशर स्त्री अ ग का पोषक है। इनके ऊपर पुष्परज या पराग लगा होता है और यह धूलिकणवत वस्तु होने से उसका नाम पुष्परज है। पुष्पो का सारभाग होने से पुष्प सार कहते है। इसके पर्याय–(१) पौष्परज, पुष्प पर होने वाला रज कणवत् वस्तु, (२) पराग—जो दूर तक जा सके। (३) मधूली-सहत बढे धूलिकण युक्तम्। (४) धूलिका—धूलि वत। (५) केशररेणु—पुष्प केशरवत् रेणु। (६) सुमनोरज—पुष्प का रज। सबका आधार है और सार है पुष्प पर होने वाला धूलिकणवत् वस्तु पुष्प रज है या पोलेन।

गध—पुष्परेणु व पुष्परज मे एक विशिष्ट प्रकार की गध होती है। —(१) परिमल—वायु के साथ चलने वाला सुगन्धित वस्तु। (२) अमोद - मन को प्रसन्न करने वाला। (३) गध – सुन्दर गध वाला। (४) सौरभ - सुगन्ध भरा हुआ। यह सब द्रव्य पुष्प की रचना भौतिक रचना पर निर्भर करता है, आग्नेय पुष्प तीक्ष्ण गधी सोम जातीय हल्के गध वाले होते है।

पुष्प सार—(Polen) इसका आधान केशरो पर होता है अत इसका सानकरण–उपागो पर है। इसके दो भेद हैं- (१) पुकेशर—stemen, (२) स्त्री केशर—style। यह पुष्प मे कभी दोनो कभी एक-एक भी पाये जाते हैं।

पुकेशर—इनमे (१) सूत्रादि भाग, (२) सूत्रान्त भाग, दो होते हैं।

सूत्रात भाग के आगे सूत्र पर कुछ उभरे हुए गण होते है। इनमे पुष्परज बसता है फिर खुल जाता है। इनका

आकार शर या बाण के अग्रभाग से मिलता-जुलता है। अत इसका भाग यो होना है—(१) किशरा—क्या शर है वर्ग है ?

नहि अपितु केशराः—नहीं यह शर नही केशरी के (सिंह के) स्कंध बाल के वर्ण के होने से केशर है।

प्राचीनो का पुष्प दर्शन सम्बन्धी ज्ञान—some other observations by ancients.

अविकसित पुष्प (Buds)।

(१) कलिका—जो पुष्प को सुन्दर बनाती है-कलयति पुष्पम्। (१) कल गतौ सताने च -जो धीरे-धीरे गतिशील होती है, छोटे से बढ कर बडी होती है—पुष्प को सौन्दर्य देती है। (२) जो सतान देती है।

(२) क्षारक, जालक जो पुष्पित होकर खिल जाती है। क्षर सचलने-क्षरति।

(३) कुद्मल—खिलने वाला।

(४) कोरक—जो शब्द करता है। बढता है। (कुट शब्दे)

(५) मुलक—जो गोल बेर का आकार बनाती है। उन्निद्रम्, विनिद्रम् निद्राधीन। उत्फुल्लम्—ऊपर की तरफ फैलते हैं।

खिला हुआ-पुष्पित। उन्मिलितम्—बाहर की तरफ से मिले हुए उद्भिन्नम्।

(१) विकसित—खिला हुआ। स्मितम्, विजृंभितम्-हसते हुए (हसितम्)। (२) मुकुलित—खिला हुआ। (३) प्रस्फुरित—फुला हुआ। उद्बुद्ध। (४) विकच—कच (वाह्यावरण calyx) से वाहर हो चुकने वाला। (५) स्फुटक—खिला हुआ।

(१) पुष्प के खिलने के प्रकार के आधार पर यह सज्ञाये दी गई है। पुष्प अपने वाह्यावरण—कच(Calyx) से अविकसित अवस्था मे बन्द होता है, धीरे-धीरे बढता है। उस कच से विगत कच होता है, बाहर आता है-बद-सकुचित पुष्प दल फैल जाते है। अत—स्फुटक प्रस्फुटित विकच नाम है।

(२) पुष्प अविकसितावस्था मे सकुचित होकर सिकुडा रहता है। फूलने पर कच से सकोच से विरहित होता है अत विकसित होता है।

(३) कलिकावस्था मे यह बालिका—कुछ फलित होती है। अधिमुख होकर दल फैल जाने पर मुकुलित होती है। अत पुष्प के पर्याय भिन्न होते है—

(४) कुसुम-कुस्मति (कुसश्लेषणे) से जो सश्लेषको सकोच को छोड शुभ-मनको सुष्ट बनाता है खिल जाता है।

सुमनस जो मनको प्रसन्न करता है (सुष्टु मन्यते अभि.) सुप्रीत मनो आभि। प्रसूनम—प्रसूयते इति प्रसूनम्—पैदा होने वाला साधन। प्रसवम् फल प्रसव करने-वाला—या प्रसव क्रिया हुआ। शुभ-सुन्दरम्। सुनु-पुत्रवत फुल्ल—खिला हुआ। पुष्प—विकसित हुआ—पुष्प विकसने शुङ्गसुनु—जो शुङ्ग से पैदा हुआ हो।

मिलितपुष्प—(Copetulum)—(१) गुच्छ, (२) लगुच्छ, (३) स्तावक, (४) गुच्छक, (५) कुसुमोच्चय। कई पुष्प एक साथ मिलित होकर (पुष्पित) गुच्छ कहलाते हैं।

पुष्प दण्ड—(Inflorscence) (१) सशाख पुष्प (Bunch of flower), (२) बल्लरी, मजरी - (Compound pedicle)।

पुष्प दो प्रकार के होते है—(१) एक फुल्लित होकर वैसे ही बने रहते हैं। (२) फूलकर पुन सकुचित होते है। सूर्य व चन्द्र किरण पाकर पुन खिलते है।

फुल्ल के पर्याय—उज्जृंभितम्, उज्जृंभम्, स्मितम्। उन्मिलितम्-विजृंभितम्, उद्बुद्धि, उद्भिदु, उद्भिन्नम्-विनिद्रम-उन्निद्रम्-विकसित-हसित-विकच—व्याकोश—फुल्लम्-सम्फुल्लम्-स्फुरम्, उदिनम्, दलित-दीर्घ-स्फुरित, उत्फुल्ल-प्रफुल्ल।

बन्द होने वाले—(१) निद्रगम्, (२) मुद्रितम्, (३) सुप्तम् (४) मिलितम् (५) नतम् (६) निकूणितम् (७) सन्निद्रम् (८) आलसम्।

यथा—(१) कमल खिलकर पुन: रात्रि को सकुचि होता है। (२) कमलिनी—दिन मे सकुचित—चन्द्र किर पाकर प्रफुल्लित होती है।

फल व बीज का आन्तरिक अध्ययन—

पुष्प से फल बनता है। यह फल कई प्रकार का होत है। कलिका—कच्चा—परिपुष्ट—पक्व आदि रूप धारण करत है। इसमे कुछ रसदार होते है, कुछ छोटे होने से सूख पर शुष्क बीज या फल बनते है यथा—धनिया, सौफ, जीर आदि ये भी फल है। बडे फलो मे (रसाल फलो मे) अ या बीज होते है।

विष्णुपुराण मे—व्रीहि बीज का वर्णन करते हुए लि

है—बीज मे मूल, नाल, पत्र, अ कुर, काण्ड, कोष, पुष्प क्षीर व तण्डुल, तुष व कणा होते हैं। अत बीज के ऊपर भी भीतर के सब भागो का वर्णन किया है—ऊपर से—

(१) तुष ( ) कोष (३) कणा

अर्थात्—सबसे ऊपर छिलका होता है, इसके नीचे एक झिल्ली होती है, इसके नीचे कणा पर धान्य का दाना होता है। इसमे इसके वृक्ष के सब भाग होते हैं। यथा—

(१) अ कुर (Embryo), (२) पत्र (Cotyledons), (३) नाल—प्ररोह (Secondary root), (४) मूल—(Primary root), (५) काण्ड (Stem), (६) पुष्प (Flower), (७) क्षीर (Jice), (८) तदुल।

अस्थि—बीजय जग के लिए कहा है—

जम्म मगास्थि दुर लमा—च चि १६।६०

अत स्पष्ट है कि उन्हे बीज के भीतर के सब अङ्गो का जिन्हे आधुनिक वनस्पति शास्त्री बतलाते है, का ज्ञान था। यथा—(Embryo), (Cotyledons)

Systemic organography—

प्राचीन लोगो का विचार था कि वनस्पति के सब अङ्ग बीज मे होते है और समय-समय पर अनुकूल परिस्थिति पाकर विकास होता है। महर्षि व्यास ने इसे स्पष्ट लिखा है—"धान के बीज मे अ कुर, मूल, नाल, पत्रकाड-कोष-पुष्प, क्षीर और तदुल-तुष व कणा रहते है परन्तु उचित सामग्री को प्राप्त कर विकसित होते हैं।

व्रीहि बीजे यथा मूल नाले पर्णांकुरो यथा।
कोड कोषतु पुष्प च क्षीर तद्वच्च तदुला ॥
तुषा कणाश्च सतो वै यांत्याविमात्मन'।
प्ररोह हेतुसामग्री मसाद्य मुनिसत्तम ॥
—वि पु अ. उ ३७

अर्थात् बीज मे सब होने पर भी बीज के प्ररोहण के लिए उचित सामग्री मिलने पर अ कुर मल नाल—पत्र—काड पुष्प व तन्तु निकलते है, ये विचार पौराणिक युग के है (500 B C) चरक ने भी इनकी उचित सामग्री का वर्णन अ कुरण के लिए किया है।

ऋतु क्षेत्रम्बुबीजानां सामग्र्याद कुरो यथा ॥   च शा.

यह साम'ी ऋतु (Season) क्षेत्र (Field) बीज (Seed) अम्बु (Water) है। इनके उचित साधन पर बीज मे अ कुर निकलता है।

सुश्रुत ने लिखा है (500 B C) कि बीज के भीतर वृक्ष की सब सामग्री उसके अन्दर रहती है, जो धीरे धीरे अवसर पाकर वृद्धि होती है। बीज ही विभिन्न रूप मे पौधे के रूपान्तर को प्राप्त करता है। ... शुक्रार्तव के सयोग के बाद पुत्र मे मृदु अ श मातृ ... के कठिन अ श के लिये है और पेड पौधो मे भी आ... की पुष्टि इसी आधार पर की है। उन्होने कुटज के स्त्री पुरुष भाग मे निम्न विचार किये है—

कुटज के पुरुष व स्त्री के भेद—

बृहत्फल' श्वेतपुष्प स्निग्धश्च पुमान्भवेत्।
श्यामा चारुणपुष्प स्त्री फलवृन्तैरणुमि ॥३॥

अमर सिंह और नरहरि पण्डित ने तीन जातिया स्थावरो की लिखी है।

स्त्री पु नपु सकत्वेन त्रैविध्य स्थावरेष्वपि।

स्त्री—पुरुष व नपुसक भेद से स्थावरो के भी तीन भेद है। इनमे जिन स्थावरो मे स्कन्ध काड—पत्र—पुष्प—पल्लव फलो स्निग्धशरीर, पतलापन—मृदुता—मनोरमता होती है, उन्हे स्त्री—स्थावर कहते है।

पुरुष—जो पौधे स्थूल—पुष्प होते है पुष्प—प्रवाल न तो बहुत बडे होते है न छोटे उन्हे पुरुष जाति का स्थावर कहा है।

नपु सक—जिनमे स्त्री पुरुष दोनो के लक्षण होते हैं और स्कध पत्र—फल—पुष्पादि दोनो लक्षणो से युक्त होते हैं, उन्हें नपुसक कहते हैं। यथा—

स्त्री—

स्निग्धदीर्घ तनुता मेनागास्त. स्त्रिय. खलुमता विपश्चिताम्।
इक्षवेणु तरू वीरुधादर स्कध काड फल पुष्प पल्लवै ॥

पुरुष पत्र पुष्प प्रवालादि नाति दीर्घ नचाल्पकम्।
स्थूलं पुरुषमित्येव्य पुमानुत्तेतु मनीषिभिः ॥

नपु सक—स्त्रीपु सयोयत्रविमातिलक्ष्म द्वयो विस्कन्ध फलादि
केषु सदेहदैनक तरावधारि नपु सक हि्वबुधावदति राज।

इनके गुणो मे भी—स्त्री जाति वनस्पति।

स्त्रियो मे पुरुष जाति, पुरुष मे नपु सक जाति के द्रव्य नपु सको मे अधिक लाभप्रद होते है।

द्वितीय जातिगत भेद—

स्त्री, पुरुष नपु सक के अतिरिक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र ये चार जातिया उद्भिदो मे नरहरि पण्डित ने बतलाई है।

जिनके पत्र व कुसुम प्रकाण्ड व शाखाये श्वेत होती है वह विप्र, जिनमे रक्त होती है वह क्षत्रिय, जिनमे कनक वर्ण

पीत होती है वह वैश्य और इनसे भिन्न वर्ण वाली शूद्र जाति की होती है।

यह विभाग—प्रकाण्ड शाखा—पुष्प व पल्लव को देख कर वर्ण के आधार पर किये गये है।

किसलय कुसुमे प्रकाण्ड शाखादिदेषु विशषु वदति विप्रमेताम नरपति मतिलोहितेषु, वैश्य कनकन्निमेषु इतरेषु शुद्रम्। रा.

पुनः व कुर के बाद इनके पाच भेद हैं—(१) वनस्पति (२) वानस्पत्य (३) क्षुप (४) वीरुध (५) औषधि।

आधुनिक लिंग विज्ञान—यह विज्ञान पुष्प के भीतर के पुंजातीय अङ्गकेशर व स्त्री जातीय और स्त्रीकेशर की स्थिति पर रखे गये हैं, जिनमें ये स्त्रीकेशर होते हैं। वह स्त्री जाति जिनमें पुकेशर होते हैं पुंजाति के और जिनमे दोनो अङ्ग होते हैं, ऊपलिंग के मानते हैं।

अन्यभेद—

वनस्पति भेदा —१—सामान्य रूप से वनस्पति शब्द सबके लिए प्रयुक्त होता आया है। परन्तु जैन शास्त्र में इसके कई भेद बतलाये गये है। यथा—

(१) सूक्ष्म व स्थूल भेद मे यह दो प्रकार के हैं।

(२) स्थूल भेद के वनस्पति जो कि अपने कर्मोदय के कारण वनस्पति जाति मे जन्म लेकर स्थूल रूप धारण करते है वे वादर नामक होते है हम लोग जिनको अपने स्थूल चक्षु से देख सकते है ये वनस्पति ही वे वादर हैं। यथा—

वादराख्यनामक कर्मोदयाद् ये स्थूलता गता।
धर्म चक्षु दृश्यमाना वादरास्ते प्रकीर्तिता ॥ लोक प्र ५.२

, प्रधान भेद इनके प्रधान ६ भेद हैं। (१) पार्थिव (२) आप्य (३) तैजस (४) वायव्य (५) नाभस (६) साधारण द्रुमा।

पुन' इनके दो भेद हैं यथा—(१) पर्याप्ता (२) अपर्याप्ता.।

(१) पर्याप्ता—वे द्रव्य पर्याप्त कहलाते है जो कि दीर्घ जीवन पाते हैं। इनके सहस्त्रो भेद है। (२) अपर्याप्ता—हैं, वे जो कि अल्प जीवन वाले होते है।

पुन उनके दो भेद हे—(१) मृदु (२) खरा।

जो वादर मृदु भूमि मे होते है वह मृदुवादर व जो खर भूमि मे होते हैं खरवादर कहलाते है।

वर्ण भेद से पुन उनके सात भेद होते हैं। यथा—

चूंकि पृथ्वी का वर्ण सात प्रकार का होता है अत' ये सात प्रकार के होते है। यथा पृथ्वी भेद मे भूमि की वर्ण का भेद—(१) कृष्णा भूमि (२) नीलाभूमि (३) अरुणा भूमि (४) पीता भूमि (५) शुक्ला भूमि (६) पाडु भूमि (७) पनकामिद।

ऊपर के वर्ण के अनुसार छ रङ्ग की मृत्तिका होती है। सातवी नदी या क्लिन्न भूमि के आस पास जो भूमि किनी, पिच्छिल, मृदु व श्लक्ष्ण होती है उनको पनकामिध नाम से कहा है। सूक्ष्म रज वाली मृत्तिका को भी पनक नाम दिया है। पृथ्वी काय भेद मे प्रज्ञापना वृत्ति मे भूमि के और भी कई भेद बतलाये गये है—

पृथ्वीकाय भेद मे—यह सात भेद है। और भी कई भेद है। इनमे खर भूमि के ४० चत्वारिंशत भेद खर भूमि मे १८ मणि भेद वाली मृदु और २२ और भूमि भेद हैं। इनके आधार पर पृथ्वी काय वनस्पति के खर मृत के हिसाब से चालीस मृदाधार बनते है। यथा—मणय, गोमेद, अर्कांक, लोहिताक्ष, हरित, मणिमसार गल्ल भुज मोचक इन्द्रनील चन्दन, गैरिक, हंस कर्मकमोगन्धिक, पुलकचन्द्र, मणि, जलकान्त, मणिरुचक, अर्कोपल।

अन्य मृद भेद —शर्करा उपल, कर्करा, सिकता, सूक्ष्म, कणिका, उपल, लघुअश्मक, महान शिला, वार, उसर, अब्विज, लवण, सुवर्ण, रूप्य, ताम्रलोह, त्रपु, सीव, वज्र, हरिताल, हिंगुल, मन शिला, प्रवाल, पारद, सौवीर, अभ्र, पटल व मिश्र मृत्तिका।

यह पृथ्वी काय भेद के निरूपण मे प्रज्ञापना वृत्ति मे लिखा हुआ पाते है।

आप्य काय—शुद्ध जल, शीत उष्णजल, क्षार, अम्ल, हिम, करक, घूमरी, अन्तरिक्षजभूमि, जल व आप्य कार मे घृत, इक्षु, वारुणी, दुग्ध, उदक, वर्षा जल या नदी आदि के जल के विवरण मे जितने जल आते है वे सब आप्य वनस्पति के आधार है।

अग्निकाय के स्थान—शुद्ध अग्नि, अशनी, ज्वाला, स्फूलिंग, अङ्गार, विद्युत, अलात, उल्कामुर्मुरा, निघातक, काष्ठसभूत, सूय सभूत या अन्य अग्नि भेद इसके आधार हैं।

वात काय —दिशा-विदिशा की वायु उर्ध्व अधोवात उद्गमवात, गुजावात, झझावात, सवर्त माडलिक वात, धनवात, तनुवात, आवर्तकावात के स्थान वात काय वनस्पति के है। नामस काय —आकाश स्थित भेदादि भेद।

पुनः इसके भेद —(१) एक वीजी, (२) बहु वीजी।

पुन: एक जीव कृन्त दूसरा वहु जीव कृन्त।

इसमे बीज का ग्रहण केवल बीज से ही नही है अपितु बीजात्मक क्रिया चाहे बीज मे हो या पर्ण मे पुष्प मे, काण्ड से या कद से हो सब बीज माने जाते है।

पुन (१) एक जतुज, (२) वहु जतुज।

एक जतुज—जिससे एक अकुर निकलता है वह एक जतुज है।

वहु जतुज—जिससे वहुत से अकुर निकलते है वह वहु जतुज कहलाता है। इसके दश आधार है-यथा—(१)मूल, (२) स्वध, (३) कद, (४) शाखा, (५) प्रवाल, (६) पत्र, (७) पुष्प, (८) फल, (९) बीज, (१०) त्वक्। यह दश आधार अकुरण के माने जते हैं।

एक जीव अनन्त जीव के चिह्न—एक जीव—जिसके भग्न होने पर उसमे बीच मे हीर दिखाई पडे वह एक जीव है। वहुजीव या अनन्त जीव-जिसमे भग्न करने पर हीर न दिखाई दे वह अनन्त जीव की वनस्पति है ऐसा मानते है।

हीर—हीरो नाम विशमच्छेद उद्गन्तरो वा।

अर्थात् जिसके छेदने पर उसमे के सेल या पुद्गल के मध्य मे सामान्य प्रकाश के अतिरिक्त विषम दर्शन नेत्र दिखाई पडे उसे हीर कहते है।

एक हीर होने पर एक जीव मानकर विचार करें, तो अथवा विषमच्छेद या उर्ध्व उपस्थित दिखाई पडे वह हीर है।

यदि चक्राकार रूप काटने पर मध्य मे स्कध मूल शाखा मे त्वचा मे दिखाई पडे तो वह अनन्त जीव वाली है यह मानना चाहिए।

त्वचा काटने पर चक्राकार हो, कद काटने पर चक्राकार हो, ग्रन्थी काटने या पर्व काटने पर चक्राकार च्छेद दिखाई पडे तो उसे वहु जीवात्मक मानना चाहिये। यथा—

येषामूल कन्दपत्रपुष्पफल त्वचाभवेत्।
चक्राकार समच्छेदोभगेऽनन्तात्मक हि तत्॥
ग्रथि पर्वान्मिकाभगस्थान सामान्यतोऽथवा।
रजसा च्छुरितयम्यभगेऽनन्तात्मक हि तत्॥

इसी प्रकार छेद लेने पर जिसके भीतर रेखात्मक या वीची की तरह रचना दिखाई दे वह अनन्त कायिक माना जाता है। सक्षीर अथवा निक्षीर पत्र या शाखा जो कि च्छेद लेने पर निगूढ दिखाई पडे अनन्त जीव का बीज है मानना चाहिये।

अन्य भी जनता मे प्रचलित विचार हों उनको भी सग्रह करके ऐसा विचार करना चाहिये।

वनस्पति की मात्रा—सारे ससार की वनस्पति की मात्रा के विषय मे यह निर्देश है कि इनकी मात्रा अष्टादश भार है। लोक प्रकाश मे निम्न विवरण है—

एकैक जाते रेकैक पत्र प्रचयतो भवेत।
प्रोक्त संख्यमणेर्भारैं स्ते त्वष्टादश भूरुहाम्। लोक प्र. ५।६६

अर्थात् यदि प्रत्येक वनस्पति मे एक-एक पत्र लिया जाय और उनका भार ग्रहण किया जाय तो १८ भार पत्र के होगे। उनका विवरण निम्न है—

चत्वारो पुष्पकाभारा अष्टौ च फल पुष्पिता।
स्युर्वल्लीनां च षड् भारा ह्येव नागेन भाषितम। लो.प्र ७०।

अर्थात् अपुष्प वनस्पति के चार भार और सपुष्प के आठ भार और ६ भार बल्ली जाति के होने हैं।

इनके स्थानाश्रय तो पूर्व मे कहे है परन्तु स्पष्ट निर्देश यो हैं.

पृथ्वी कायस्य स्थान—पृथ्वी, अधोलोक, पाताल, कलश भित्ति, मनुष्य, राक्षस, देव, भवन, उर्ध्व लोक, विमान कूट, अद्रिगैल जगत, वेदिका द्वीप, समुद्र यह पृथ्वी कायिक स्थान है।

आप्य कायिक स्थान—जहाँ कही भी जल हो वह स्थान आप्य काय का है। यथा—

घन, उदधिवलय—सप्त समुद्र पाताल कुम्भ उर्ध्व लोक के जलाशयतिर्यक लोक जलाशय निर्भर, वापी, तडाग, गर्त्तकेदार द्वीप इत्यादि स्थान।

अग्निकाय—उर्ध्व अध अग्निस्थान तिर्यक लोक पाक दाह स्थान आदि स्थान।

वायु काय-घनानिल वलय, घनानिल, तनुवात वलय तनुवात, अधोलोक पाताल उर्ध्व लोक कुम्भ भवन निष्कुटदिक विदिक आदि।

असख्य वनस्पति—वनस्पतियो के शरीर मे असख्येय जीव निवास करते है। उन सबके मिलने पर वनस्पति काय वनता है। योनि—

पृथिव्यम्बु वह्नि मरुतां प्रत्येक परिकीर्तिता।
योनि लक्षाः सप्त सप्तसप्त सोप्ति समप्रमं॥
योनीनां दश लक्षाणि स्तु प्रत्येक महीरुहाम्।
साधारण तरूणां च योनि लक्षा चतुर्दश॥

योनि साधारणतः के १४ लक्ष योनि हैं और प्रत्येक महीरुह के दस लाख योनि हैं।

वनस्पति कुल— पृथ्वी के १२, जल के सात, अग्नि के तीन, अनिल के सात, भूरुह के २८ लाख कुल कोटिया है। इस प्रकार सप्त पचाशत लाख कुल कोटिया वनस्पति की हैं। अर्थात् ५७ लाख कुल की कोटिया है। यह एकेन्द्रिय वनस्पति जीवो की कोटि है।

पुष्प जातीय की कोटि—पुष्प जाति के सोलह लाख कोटि है।

अम्भोरुह की कोटि—जल की वनस्पतियो की कोटि जाति भेद से चार लाख है।

स्थल जन्मवाली वनस्पति—चार लाख हैं, जो कि कुरटकादि की तरह हैं।

गुल्म जाति का—चार लाख। मधूकादि महावृक्ष— इनकी कोटि असंख्य है।

त्रिविध योनि—मिश्रा योनि, सचिता योनि, अचिता योनि यह तीन प्रकार की है।

संवृत्त योनि—जैन लोगो ने उष्ण, अनुष्ण, शीतोष्ण शीता यह भी योनि कहा है।

आयु—वनस्पति की आयु प्रत्येक जाति के भूरुह की आयु भिन्न-भिन्न है।

आयु २२ सहस्र वर्ष की आयु सबकी बतायी गई है। यथा—(१) पृथ्वीकाय सबसे उत्तम है। अतः उसमे मृदु भूमि मे एक सहस्र वर्ष। १२ हजार वर्ष कुमार मृत्तिका कौसिकता भूमि मे १४ सहस्र वर्ष, मनः शिला की भूमि मे १६ हजार वर्ष, शर्करे भूमि मे १८ हजार वर्ष, २२ हजार वर्ष अश्म व सर भूमि मे ७ हजार वर्ष जल की। तीन सहस्र वर्ष मरुत की भूमि की आयु अग्नि का १० हजार वर्ष।

आकृति पार्थिव वनस्पति वपु:

मसूरचन्द्र संस्थान बादराणाँ भुवाँ वपु:।

जलानाँ स्तिवुकाकारम्

सूच्योषाकृति तैंजसाम्।

मरुताँ ध्वजसकासम् द्वं वानामपि भूरुहाम्।

स्यु शरीराण्यनियत स-थानानिति दद्विद.।

अर्थात् पार्थिव जाति के शरीर मसूर व चन्द्राकार होते हैं। आप्य के स्तिवुक के आकार के और सूची की आकृति के आग्नेय ध्वजाकार मरुत जाति के शरीराकार होते हैं। यह विवरण उनके आभ्यतर शरीर के पुद्गलो के रचना मे भाग लेते है। इन आकारो से बने वनस्पति शरीर अनेक प्रकार के आकार वाले होते है।

कर्मादि—अपने-अपने कर्म के अनुसार वनस्पति भी जन्म लिया करते है। इनका विवरण जिनेश्वर स्वामियो ने लिखा है। इनकी मृत्यु होने पर यह भी उच्च व तिर्यक योनि मे पैदा होती है। ऐसा माना गया है। भार की मात्रा—

शून्यसप्ताक हस्ताश्वसूर्वेन्दु वसु वह्नय।

एतत् सख्यांक निर्दिष्टो वनभार प्रकीर्तित।

अर्थात् : ३,८१,१७,२२,९७० सख्या का वन भार होता है। अन्य मत——

रामो वश्वश्चन्द्र सूर्यो मुनिस्तथैव च।

मुनि शून्य समादिष्ट भार सख्या निगद्यते॥

अर्थात् ३,०७,११,१७० मन की वजन की भार सज्ञा है।

एकैकजातेरेकैकपत्र प्रचयतो भवेत्।

प्रोक्त सङ्ग्रहीभीणेभर स्तेतरद् दश भूरुहाम्।

अर्थात्—प्रत्येक वनौषधि के एक-एक पत्तो को संग्रह करके तौला जाय तो उनका भार इतना होता है।

आयुर्वेद विकास के सौजन्य से

औषधियों में संदिग्धता और उसका निवारण

१—औषधियो के आकार प्रकार व रूप मे साम्यता

कई औषधियाँ इस प्रकार की है जिनका रूप एकसा ही होता है। यथा वत्सनाभ श्रृंगीक व इसकी कई जातियाँ। निर्विषी, प्रतिविषा आदि। इनका रूप करीब करीब मिलता है अत एक के न मिलने पर दूसरे का प्रयोग व मेल प्रारम्भ हो गया होगा। जैसे आज भी वत्सनाभ मे इनकी मिलावट होती है। अत: वत्सनाभ कौन है और श्रृंगीक कौन है यह जानना सर्व साधारण व योग्य वैद्य के लिए भी कठिन हो गया है। कुष्ठ, पुष्कर मूल का विवेचन तो आज की कठिन समस्या है। मुज्ञान औषधियो मे जैसे दन्ती व द्रवन्ती मे भेद करना साधारण वैद्य को ही नही वनस्पति शास्त्रियो को भी कठिन है। कोई दन्ती रतनजोत को लिखता है कोई व्याघ्र एरड को कोई नाग दन्ती को तो कोई जयपाल को। काश ! निघटुओ मे नादकर्णी, इण्डियन मेडिसिनल प्लान्ट्स पढिए और देखिये। केशर के बदले अन्य पुष्पो का केशर व बनावटी कागज या आम्र के कटे रेशे।

२—एक नाम के कई द्रव्यो का होना

एक ही नाम के कई द्रव्य हैं और भिन्न भिन्न लेखक व टीकाकार उस पर भिन्न भिन्न मत देते हैं। यथा: रास्ना, सुरसा, सुगधा गध नाकुली, एलापर्णी, सुवहा - यह नाम रास्ना के अतिरिक्त तुलसी, नाई कद कुष्ठ,महा-भरी वच आदि के नाम से मिलता जुलता है अत रास्ना के नाम पर कई द्रव्य लिये जा रहे हैं। कोई वदाक को कोई रासन को कोई कुलिजन को कोई किसी को कोई किसी को मानने लगता है। और भ्रम का सृजन करता है।

३—वैद्यो की अज्ञता व प्रचलन

काल क्रम से वैद्य विद्या का अभाव हो जाने और वैद्यो म वस्तु का ठीक ज्ञान न होने से पसारियो द्वारा विकल्प की औषधि देने से व उनका ज्ञान उतने तक सीमित होने से वह अन्य वस्तु को नही मानते केवल उसीको मानते है जिनका उपयोग कर आये है। अन: ठीक द्रव्य का ज्ञान कराने पर भी वह यह ही कहते है कि हमारे गुरु जी तो इसका उपयोग करते थे और लाभ होता था हम उसी का प्रयोग करेंगे अन वाला व सुगधवाला के स्थान पर नाडी शाक, नगर व दूधिया वच का प्रयोग करेंगे।

४—व्यापारिक प्रचलन—

औषधियो की सुरक्षा के लिए व्यापारियो की विभिन्न प्रकार की वस्तुओ का मेलन जिन्हें वैद्य जगत जानता तक नही और उसके क्रम को असली और नकली द्रव्य मान कर प्रयोग करता है। यथा वत्सनाभ मे व श्रृंगीक मे कीट लगने से बचाने के लिए कोयला व तैल का उपयोग करते है। इससे कीडे नही लगते। वैद्यगण काले वच्छ-नाग या वत्सनाभ को जानते मान हैं। काले रग का द्रव्य न हो तो चाहे वह असली ही वत्सनाभ क्यो न हो वह नही लेते। और रगे हुए मिश्रण को ठीक द्रव्य मान कर उसे ही ले लेते है। पारसीक यमानी के बीज को रग कर चूना लगा कर या खडिया लगाकर बाजार मे बेचा जाता है। यह भी सरक्षण का उपाय है। अत जिस वैद्य ने बिना रग का प्रयोग किया है रगदार को सही नही मानता और जो रगदार प्रयोग करते हैं वह बिना रग वाले को नकली कहते है। वही थोडा सा बीज हाथ मे लेकर पानी से रग हटा दें तो उसे ही ठीक मानते लगते हैं। शुंठी घुसरी अच्छी होती है। वैद्य हकीम इसे उचित मानते है यह भी सुरक्षा की तरकीब है। सोठ मे चूना लगाने से यह कीडे नही खाते, देर तक टिकता है। परतु व्यापारियो ने उत्तम है मध्यम है ऐसा विचार बनाकर उन पर थोप दिया है। वह अच्छी चाहे भारतीय सोठ हो सुमात्रा की लका की हो या विदेशी कोई अन्य ही बिना छिल्के वाली हो छिलका सहित हो नई हो उत्तम नही मानते। यह व्यापारिक प्रचलन है जिसे प्रयोग करते करते आज वही सही मानते ह।

५—संस्कार व संग्रह की विधि—

कुटकी को सग्रह करते समय खोट कर एक ढेर बनाते है। ऊपर मे मिट्टी का एक स्तर लगा कर ढक देते हैं और एक सप्ताह तक रखते है वह अपनी गर्मी से फर्मेंट होता हे। रग जो प्राकृतिक व श्वेत था अव पीलापन लिए हो जाता है। इसकी काड भगुर व कुछ सुगधयुक्त होती है। वही सूख कर बाजार मे आती हैं। अधिक फरमेंट होने पर वर्ण कालापन लिए हो जाता हैं। विना सस्कारित कुटकी भी बाजार मे आती है। वह श्वेत होती है कटी होती है। आप पीले वर्ण वाले को पसद करते है अन्य को नही। पुष्कर मूल व कूठ को तालाव से निकालकर परिपुष्ट कद को छाट कर अलग कर लेते है। कच्चे को अलग रखते है। व्यापारिक रूप देने व सुगधी लाने के लिए इसे पुन. एक स्थान पर रख कर फरमेंट करते हैं और उन पर का एक परत छाल का हटा देते हैं और सुखा देते है। भीतर से अच्छा जालीदार परतवाला पुष्कर मूल दिखाई पड़ता है और मनोरम भी लगता है। जिसमे का त्वक् नही हटा है और जिनकी पुष्टि नही हुई है दो जाति के छाट कर लिए जाते है। कुछ काल के बाद इनमे सुगन्धी आ जाती है और अब यह बाजार मे लाने योग्य बन जाता है। अच्छा सब व्यापारीगण परफ्यूमरी के लिए खरीद लेते हैं। बचा भाग रह जाता हे और वैद्यो के जिम्मे पडता है। व्यापारी मोटे कद को कूठ व पतले कद को पुष्करमूल कहते है। पसारियो से आप पुष्कर मूल व कूठ का नमूना मगा कर देखिए, पता चल जायगा। विदेशी व उत्तम कूठ, दक्षिण कूठ करके बाजार मे जो भी मिलेगा उसे मूल्यवान होने से आपकी फार-मेसियाँ खरीद नही सकती व डाल भी नही सकती। अत कूठ तो आप को मिलेगा नही सौसुरिया लप्पा करके जगली कूठ आपको मिलने पर भी सदिग्धता व सकीर्णता से इसको ले नही सकते। केशर एक पुष्प के स्त्री केशर के ऊपर का भाग है। लाल वर्ण का होता है। इसे एकत्र करके सुखाकर पुन कीट से शीघ्र नष्ट न हो इसलिए उसको ज आर्द्र करके प्रेस करके सुखा कर रख लेते है। पालिश भी करके रखते है। कीमती होने से इसमे व्यापारी लोग कई प्रकार के फूलो के केशर मिलाते हैं। यथा: इसके अन्त के भाग को मोगरा कहते है जो पुष्प के योनिच्छत्र का भाग होता है स्टिगमा कहलाता है। अत इस प्रकार के कुसुम्भ के पुष्प का स्त्रीकेशर, गेंदा पुष्प का केशर और गुलदाउदी के पुष्प का केशर सग्रह करके उन को प्रेस कर के पालिश कर के यदि रग गहरा नही है तो गहरे लाल रंग मे रग करके वह केशर से भी अधिक सुगन्धित करके उसे एकत्र करते हे और बेचते है। इससे भी आगे वुद्धि रखने वाले है जो कागज को जो एक प्रकार का बनता हे और नकली पुष्प बनाने के लिये व्यवहृत होता है उसको वारीक काट करके गध देकर केशर के रूप मे बाजार मे मिलता है। जब आप किसको असली मानते है वह वान-स्पतिक द्रव्य की तरह फूलेगा, गध देगा, पुष्प के केशर की तरह बढ भी जायगा। आप चार आने दर से ७ रुपये तोले दर मे खरीदते है।

६—विद्वानों की विचारधारा व टीकाकारो की लिखावट या वनस्पति सम्बंधी अज्ञता—

चरक टीकाकार चक्रपाणि, श्री गगाधर व सुश्रुत के टीकाकार डल्हण इन लोगो की एक सम्मति एक ही द्रव्य पर एक तरह की नही है। भिन्न-भिन्न राय है। कभी तो ये टीकाकार बगाली होने से द्रव्य का बगला नाम लिख देते है जो इतर देशीय नही समझ पाते, कही उसी नाम के द्रव्य को वे एक पर्याय देते है उसी नाम के द्रव्य को दूसरा नाम दे देते है। भ्रम हो जाता है। चरक मे इस प्रकार की सदिग्ध ५६ की सख्या मे द्रव्य है। इनकी सूची स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र के महानिबन्ध या थीसिस "चरक की अनिर्णीत औषधियाँ।" इस नाम के निबन्ध मे देख सकते हैं। उनका विवरण देना यहा सरल नही है। बहुत स्थान लेने वाला विषय है। एक दो उदाहरण—

गगाधर जी —

१. गण्डीर—चरक सूत्र ४-११ (१५) शालची
च० सू० २७-१७१ समष्ठीला
च० चि० २-६७ दूर्वा
च० वि० ८-१५१ गण्डीर पुष्पी

२. चोरक—च० सू० ३-२४ चोर पुष्पी
च० चि० ९-४५ स्थलज चोर पुष्पी
च० चि० ९-५७ विडग इति लोके

चक्रपाणि—

गण्डीर—च० सू० ४-११ (१५) शमर शाक
च० सू० २७-१७१ रक्त कटुत्वेन हरितवर्णो

शुक्ल जलज—शाकवर्ग
च चि. २–६७—गमठ भेद
च चि ८–१५१ गाण्डीर पुष्पी
चोरक —च सू. ३–२४ चोर पुष्पिका
च चि. ९–४५ चाण्डालक
क १–२३ गंध द्रव्य स्वनामख्यातम्

७ औषधियों की दुर्लभता या कष्टसाध्य रूप मे मिलना—

कई औषधिया इस प्रकार की है कि जिनके विषय मे उनके न मिलने से प्रतिनिधि द्रव्य ही अधिक लिये जा रहे हैं। अष्टवर्ग की औषधियाँ। उदाहरण स्वरूप ले लीजिए जीवक ऋषभक मेदा महामेदा, ऋद्धि वृद्धि काकोली क्षीर काकोली यह एकदम उपलब्ध नही होती। जो आजकल चल रही है वह केवल सदिग्ध ही हैं। सोम, लक्ष्मणा, रुद्रवन्ती-रुदती आज के युग मे अलभ्य ही है। इनका न मिलना या ज्ञान न होना बडा भारी हेतु है। दिव्य औषधियाँ जिनका वर्णन चरक मे है और सुश्रुत मे है आज उनका पता ही नही है। अजवरी, सुवर्चला, ब्रह्मसुवर्चला, कापोती विभिन्न प्रकार के सोम जिनका प्रयोग ऋषिगण करते थे वह आज एकदम अज्ञात ही हैं। अतः कोई बुद्धिमान खोज करके कोई वस्तु ला देते हैं और उसको वही द्रव्य कहते है। सदिग्धता की वृद्धि बनी रहती है।

इस प्रकार कई हेतु हैं जिनके कारण औषधियो मे सदिग्धता उत्पन्न हो गई हे इनके निराकरणार्थ आवश्यकता हे कि कोई उपाय अपनाया जाय।

सबसे बडा हेतु दुराग्रह है। वैद्य सम्प्रदाय का उपयोग सदेह निराकरणार्थ होता था। अब वह 'वैद्य समूहो सशय छिन्न कराणाम्, नि सशय कराणाम्' आदि वाक्य कितने सुन्दर हैं इनका उपयोग हम आज उलटा पा रहे है। एक द्रव्य यदि निर्णय करके कहा जाय तो दूसरा वैद्य उसमे दोष निकालेगे या नही मानेंगे। कई वैद्य महासम्मेलनो मे कुछ बाते तय हो जाती हे किन्तु हम मानते नही। इस दुराग्रह के कारण सारी व्यवस्था रुक सी जाती है। अत प्रश्न है कि सदिग्धता का निवारण कैसे व किस प्रकार किया जाय। यह सदिग्धता आज की ही नही है वह तो चिरकाल से चलती आ रही है। किन्तु पहले वाले एक निर्णय पर पहुच जाते थे परन्तु हम लोग उ[illegible] एक कदम आगे चलते हैं और मानते भी नही तो क्या किया जाय।

धन्वन्तरि निघण्टु व राज निघण्टु के समय मे भी सदिग्धता थी किन्तु उनका एक रूप था जिसके अनुसार वह निर्णय करते थे या मानते थे। वही विधि अपनाने पर कार्य बन सकता है। उनकी विधि यह थी कि यदि कोई द्रव्य सदिग्ध है तो वह पहले उस नाम वाले द्रव्य को खोजने मे स्थानीय नाम वाले वस्तु को गोपाल, तापस, व्याध, माला-कार, वनेचर आदि से पूछकर मिलते-जुलते नाम वाले को समझते थे। फिर शास्त्र मे उसके रूप रंग, गुण आदि को देखकर प्रयोग करके तब उसको स्वीकार करते थे।

हम भी इस पथ का अनुसरण करें और सब कुछ साम्य मिल जाने पर भी रोगी पर प्रयोग करके वैसा ही पावें व अपने बन्धुओं के सामने रखे तो सम्भवत. एक निर्णय पर पहुच सकते है। यथा—'रास्ना वात हराणाम् लिखित है।' रास्ना के नाम पर चलने वाली विविध वस्तुओ का प्रयोग करके इस अर्थ मे जो ठीक निकले उसे हमे हठ छोडकर मानना ही चाहिए।

इस निमित्त यह समझ मे आ रहा है कि सदिग्ध द्रव्य के नाम पर जो भी द्रव्य सारे देश मे व्यवहृत होते है उनको एकत्र करके उनका मिलान, आकार प्रकार, रूपरंग, रस गुण वीर्य विपाक के आधार पर किया जाय और जो सबमे अधिक व उचित गुणप्रद हो उसका निर्णय किया जाय व वैद्य समूह के सामने रख कर सारा विवरण उपस्थित किया जाय और वह उस वस्तु को विवेचन पूर्वक स्वीकार करलें।

वैज्ञानिक साधनो का उपयोग—

आज हमे कई प्रकार के निर्णय सम्बन्धी वस्तु उपकरण के रूप मे उपलब्ध हैं जिनका आश्रय लेकर हम अपनी सब औषधियो को चाहे निर्णीत हो या अनिर्णीत हो निर्णय का रास्ता निकाल सकते हैं।

कितना अन्याय है कि कालीमिर्च महगी हो तो व्यापारी उस मे वायविडग व पपीते के बीज मिलाकर बेच ले। छोटी पीपल महगी हो तो साचे मे रख कर काले पाउडर का पीपल बनाकर बेचा जाय। नकली हरीतकी को दुर्लभ हरीतकी बना कर जैलप के चूर्ण व हरीतकी के चूर्ण को साचे मे ढाल कर सुन्दर हरीतकी बनाकर बेचा जाय और वैद्य ही उसके अच्छे ग्राहक हो।

अत सामान्य वस्तुओ को भी धोके से बचाने के लिए उसके बाह्य व आभ्यन्तर स्वरूप का अध्ययन करके छात्रो को इसका ज्ञान दिया जाय।

औषधियों का आयुर्वेद में वर्णनक्रम

नामकरण-वर्गीकरण

औषधियो के वर्णन के विषय मे बहुत विशाल साहित्य आयुर्वेद मे पाया जाता है । किन्तु कुछ लोगो का विचार ऐसा दिखाई पडता है कि जिससे ज्ञात होता है कि आयुर्वेद मे इस विषय पर उचित विवरण प्राप्त नही है । और इस कारण बहुत-बहुत सी औषधिया सदिग्ध पटी हुई हैं । इस विषय मे हमारा नम्र निवेदन यह है कि इस प्रकार के विचार निराधार व आयुर्वेदिक साहित्य के विशाल उपलब्ध विचार का अनुशीलन किये बगैर ही किया जाता है । कुछ लोग यहाँ तक कह डालते हैं कि निघटुओ मे जाति, आकृति, वर्ण, गन्ध व रसादि सम्बन्धी विवरण उपलब्ध नहीं है जैसा कि आज के वनस्पति शास्त्र के ग्रन्थो मे मिलता है ।

वास्तव मे आयुर्वेद के इस विषय का विवरण अपना एक प्रधान स्थान रखते है । इस विषय के पडितो को निघटुकार के नाम से पुकारा जाता है । इनका विशाल साहित्य इस विषय का निराकरण सुस्पष्ट रूप मे करता है । जो परिश्रम करना नही चाहते या इन ग्रन्थो का अध्ययन नही करते वे ही इस प्रकार की चर्चा करते हैं । निघन्टु विज्ञान, औषधि द्रव्यो के जाति, आकृति, भेद, उपभेद वीर्य व आगिक विवरणो को बहुत ही स्पष्ट रूप मे देता है । और इनका औषधि पदार्थ के रूप मे प्रकट करता है । विशेष कर औषधि के उस अन्श का विशेष विवरण देता है जिनका प्रयोग औषधि मे अधिक होता है । यदि सर्वांग का प्रयोग होता है तो उन सबो का उल्लेख सब अङ्गो का करना होता है । हा, इसके लिए संस्कृत का अच्छा ज्ञान होना चाहिये । निघन्टुकारो ने वर्णनक्रम मे ऐसे सूक्ष्म किसी भी अङ्ग का विवरण नही छोडा है जिनका औषधि मे पाया जाता है । औषधियो का यह वर्णनग्रथ गद्य मे नही उपलब्ध होता । पद्य मे ही मिलता है । यही एक वडी कठिनाई है जिससे सबका ध्यान इधर नही जाता । हरएक अङ्ग के परिचय के लिये वे भिन्न-भिन्न पर्याय एक या एकाधिक देते है । और उस विषय को स्पष्ट कर देते है । इस विवरण के देने मे वे सूक्ष्मतम विवरण भी देना नही भूलते । कभी २ इस प्रकार के वर्णन से कठिनाई यह हो जाती है कि एकही पर्याय दो तीन द्रव्य के हो जाते हैं और अर्थ एकसा ही मान होता है । विद्वान चिकित्सक इस भूल मे नही पडते । इस आधार पर लोगो का कथन होता है कि कई द्रव्य सदिग्ध हो गये है । यह बात कुछ द्रव्यो के पक्ष मे ठीक भी होती है किन्तु अधिकतर विचार न कर पाने के कारण होते है । पहले के विद्वानो को भी यह कठिनाई हुई थी । उन्होंने इसके निराकरण की पद्धति भी बताई है । यथा —

धन्वन्तरि निघन्टुकार का मत है कि एक ही सज्ञायें समान रूप से कई द्रव्यो के मिलते हैं तथा एकही द्रव्य के कई पर्याय हैं कोई व्यक्ति एक द्रव्य को एक ही नाम से जान सकता है । दूसरा उसे कई नाम से जानता है । कोई उसे ही पृथक नाम से पहचानता है । देश भेद व भाषा भेद से एक ही द्रव्य के कई नाम होते है । उन देशो के लोग उसी नाम से जानते हैं । अतः द्रव्य के परिचय में यथा विधि अपनाई जाय ताकि भ्रम नही । इसका उपाय यो बतलाया है । द्रव्यो के नाम व प्राकृत[1] व सस्कृत[2]

---

१ एकतेनाम प्रथित बहूनामेकस्य नामानि तथा बहूनि । सुश्रुतं केनचिदेकमेव तेनैव जानाति स भेषजतु । अन्यस्तधान्येन तु वेत्ति नाम्ना तदेव धान्यो परेण कश्चित् । नामो मेकस्यथोपधस्य नामा परस्यापि तदेव चोक्तम् । शास्त्रेपु लोकेपु च यत प्रसिद्ध गद्यते सौ पुनरुक्त दोषा ।

—धन्व० नि०

२ गोपाल तापसा व्याधा येचान्ये वनचारिण । मूलजातिश्च ये तेभ्योभेषज व्यतिरिक्तं किरात गोपालक तापसाधा वनेचरास्तत् कुशलास्तथान्ये । विन्दति नाना विध भेषजानां प्रमाण वर्णाकृति नाम जाति तुभ्य सकाशादुपलभ्य वैद्य पश्चाच्च शास्त्रेपु विमृश्य बुद्धया । विकल्पयेद्रव्य रस प्रभावानविपाक वीर्याणि तथा प्रयोगातु । प्राय जना संति वनेचरास्ते गोपालय प्राकृत नाम तज्ज्ञो । प्रयोजना वचन प्रवृति यस्यादत. प्राकृत सिद्ध्यदोष ।

मे बहुत हैं अतः उनके ज्ञानार्थ निम्न विधि अपनायें—

> बहुत्वत प्राकृत संस्कृतानि,
> नामानि विज्ञाय बहूश्च पृष्ट्वा।
> दृष्ट्वा च संस्पृश्य च जाति लिंगे
> विचार्य भिषग् भेषजं मादरेण॥

अर्थात्–द्रव्यों के नाम प्राकृत व संस्कृत में बहुत हैं देश व भाषादि भेद से बहुत-बहुत सी संज्ञायें हैं। अतः इन सब नामों को संग्रह करके जानकारी से पूछ कर, द्रव्य की जाति व उनके चिह्नों को पहचान करके विधिवत् स्पर्श करके उसके गुणों को जानकर तब निर्णय करें।

प्राकृत संज्ञाओं के जानकार मूलजाति वाले वनचारी, जंगली लोग होते हैं। अतः उनकी संज्ञाओं को जानकर अपभ्रंश नामों के साथ मिलान करने के लिए उनसे पूछकर मिलाकर समझने की चेष्टा करनी चाहिए। इस निमित्त तथा इनकी पुष्टि के लिए जंगलों के जीवन व्यतीत करने वाले गोपाल, तापसतपस्वी, व्याध व वनचारी अन्य जो परंपरागत नाम जानते हैं उनसे संज्ञायें संग्रह करके तब जानना चाहिए।

आदिम जाति के वनचारी लोगों से पूछकर उनकी संज्ञायें संग्रह करना चाहिये। क्योंकि परम्परा के रूप में यह लोग नाम जाने होते हैं। वन में रहने से औषधियों के जाति आकृति के जानकार होते हैं। इनसे जानकर शास्त्र में मिलान करके द्रव्य के रस, गुण, वीर्य का ज्ञान करना चाहिए। तब अपना निर्णय करना चाहिए। जहां पर योगों में समान नाम वाले द्रव्य आ गये हों उनका ठीक अर्थ प्राप्त करने के लिए—

> तुल्याभिधानानि तु यानि शिष्टे द्रव्याणि योगे निर्दिशितानि।
> अयोविकारागम सप्रदाये विभज्य तर्केण च तानि युञ्ज्यात्॥
> —ध० नि०

अर्थात् एक ही नाम वाले तुल्य संज्ञावाले द्रव्यों को शास्त्रों में जहाँ प्रयोग किया गया है वहा पर ग्रन्थकर्ता के प्रसंग, अभिप्राय, अधिकार व संप्रदाय को देखकर तब निर्णय करना चाहिए।

महर्षि चरक ने भी यही सम्मति दी है। यथा—

> अतश्च प्रकृत बुद्ध्वा देश कालान्तराणि च
> तत्र कर्तुरभिप्रायान् उपायाश्चार्थमादिशेत्।
> —च० सू० २६।५५

यह इतने आधार हैं जिनके आधार पर औषधि निर्णय का अपनाना चाहिए। यह कोई तात्पर्य कभी भी नहीं रहा है। केवल [illegible] ही तो पूछ [illegible] का निर्णय करना चाहिए। बल्कि अपने मत का मिलाने के लिए व पुष्टि के लिए उनसे भी पूछकर तब निर्णय कर लेना चाहिए।

नरहरि पण्डित ने अपने राज निघण्टु में स्पष्ट ही औषधियों के पर्याय के व्याकरण सौन्दर्य व कई प्रकार से संज्ञाओं का [illegible] किया है जो कि उनके [illegible] श्लोक है।—

> नामानि क्वचिदिह रूढितः स्वभावात्
> देश्योक्त्या क्वचन च लाञ्छनोपमाभ्याम्।
> वीर्येण क्वचिदितराह्वयादि देशात् द्रव्याणामिह
> [illegible]दितानि।

अर्थात् राजनिघण्टु में जो पर्याय दिये गये हैं उनके आधार सात प्रकार के हैं। यथा १. रूढ़ी में गढ़े नाम के आधार पर। २. स्वभाव। ३. देशोक्ति। ४. लाञ्छन व ५ उपमा के आधार से। ६. वीर्य के अनुसार ७. इतरनामों के आधार पर। इन सात प्रकारों से पर्याय दिये गये हैं।

इसके अतिरिक्त रस, गुण, वीर्य विपाक के अनुसार व भावानुसार भी संज्ञायें प्रयुक्त हुई हैं। ये संज्ञायें निघण्टुकार ने नाना देशों के आधार पर संग्रह किया है। कुछ संस्कृत व प्राकृत के आधार पर व अपभ्रंश नामों के आधार पर किया है।

यही नहीं बल्कि वनौषधि के मूल छाल, काण्ड, पत्र, पुष्प, फल, बीज, मज्जा, क्षीर, क्षार, लोम, गुण, प्ररोह वय, रस, स्पर्श, कटक उत्तोलन वर्धन पद्मगन्ध, पराग व पुष्प पर लगने वाले क्रिमि कीट, पतंग, भ्रमर आदि ८० आधारों पर पर्याय बनाया है। कई पर्याय छेद लेकर, काटकर, कांड मूल व आभ्यन्तर की स्थिति देखकर तब लिखे हैं। इनका विवरण नीचे दिया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि वनौषधि के सूक्ष्मतम अङ्ग की बनावट को जानकर पर्याय लिखे गये हैं। यही इनके आधार हैं। पहले हम एक दो उदाहरण वनौषधि के समग्र अङ्ग का देंगे। पीछे प्रधान प्रयोज्य अङ्ग के देंगे। यथा—

गुडूची का विवरण पर्यायों द्वारा देखिए—

जाति वल्ली या लता। अमृतवल्ली, अमृतलता, सोमवल्ली, सोम लतिका। रोहण सम्बन्धी पैदा होने के आधार पर · छिन्नोद्भवा, छिन्नागी, कंदोद्भवा, जीवितज्ञा, छिन्ना, तन्त्रिका, अमृतकंदा, बहुरुहा, छिन्नरुहा.

कद, रोहिणी, अमृता तन्त्रिका । इसमे दो प्रकार से गुडूची लगाने का विवरण है। यथा—१–कद लगाकर, २–काड को काट कर । इन दोनो प्रकारो का वर्णन मिलता है । चाहे काड लगाकर या कदवाली को कद लगाकर, ३–इतिहास के आधार पर अमृत सभवा, देवनिर्मिता, सुरकृता ।

भावमिश्र के अनुसार देवताओ के अमृत पीते समय अमृत बूद गिर जाने से जन्म है । ४ – च्छेद लेकर देख कर चक्रागी, चक्र लक्षण, कुंडली द्वारा मडली । उसके च्छेद लेकर देखने पर चक्र की तरह चिन्ह दिखाई पडता है ।, ५—कद सम्बन्धी पिडामृता ।

कुटज का विवरण—

स्थान कुटज कौटज कोट कलिग कालिग पहाडियो पर होने वाला व कलिग देश का वर्धन शीलता : वत्सक जो बहुत से सतान को देना हो जो वर्द्धनशील हो।

पुष्प · गिरिमल्लिका, मल्लिका पुष्प महागंध, जिसमे मल्लिका या गिरिमल्लिका का गध हो जो पर्वत पर की मल्लिका की तरह सुगन्धित हो ।

शाखा चक्रशाखी जिसके काड गोल हो । च्छेद लेने पर जिसमे चक्राकार बनावट हो। वृक्ष की स्थिति वृक्षक : इन्द्रवृक्ष . शाकुवृक्ष पाडुरदुम । शक्र पादप । जो वृक्ष की तरह ऊँची नही । छोटे वृक्ष की तरह की साइज वाला पाडुवर्ण का जो हो । देखने मे सुन्दर ।

बीज इन्द्रयव, शक्रयव , यवपलः, वत्सक बीज , तडुली । बडेयव के आकार का

नाम शक्र व इन्द्र की जितनी सज्ञायें है वह सब ।

ऋतु प्रावृष्य : प्राविपेण्य । वर्षाऋतु मे होने वाला ।

कर्म सग्राही । मल को बाधने वाला ।

रस वर तिक्त । अधिक तिक्त रस वाला ।

इस प्रकार इन्द्रयव का विवरण मिलता है । सामान्य रूप से इन्द्रयव का विवरण हो जाता है कि यह एक छोटे आकार का वृक्षक जातीय वनौषधि है। जो एक जगह पर झुँड के रूप मे होता है ।

सज्ञाये : चरक मे कुटज, वत्सक बीज, गिरिमल्लिका, कलिग मल्लिका पुष्प. शक्र :

ध नि.. कुटज, कौट , वत्सक , गिरिमल्लिका तडुली, कलिग , मल्लिका पुष्प , इन्द्र वृक्ष , वृक्षक ।

रा० नि० शक्र . शक्रपादव प्रावृष्य , वरतिक्त : यवफल सग्राही, पाडुरदुम प्रावृषेण्य । महागध । यह नाम धन्वन्तरि निघटु के नामो से अधिक है ।

भाव० प्र० पूर्व पेक्षा अधिक नाम. कलिग शक्रशाखी यवफल , कुटज, इन्द्रयववल अमरकोष ने भी इन्ही नामो को कहा है । सुश्रुत ने कुटज वत्सक शक्रशाखी शक्र यव इन नामो का प्रयोग किया है । इन सज्ञाओ के आधार पर यह विवरण दिया है । गुण कर्मानुसार, वातो के आधार पर नही । अन्य सज्ञायें भी हो सकती है । गुणकर्मानुसार भी रसादि के आधार पर विवरण उपस्थित किया जाता है । यह यहा पर नही दिया गया है ।

एला छोटी का विवरण –

रुढि नाम : सूक्ष्मेला एला ।

स्थान —द्राविणी । करगी सूक्ष्म सागर गामिनी । द्रविड देश करग देश व समुद्र के किनारे ।

वर्ण . कपोत वर्णा चन्द्रवाला, तुत्था, कोरगी, गौरागी, उपकुंची ।

गध बहुल गधा गध फलिका ।

पुष्प चन्द्रवाला । चन्द्रि ।

आकार बल त्रिपुटा, त्रुटि निष्कुटि' वाला कायस्था पृथिवका ।

मात्रा बहुला बहुत बल लगने वाला ।

गुण बलवत्ती, हिमा, नर्मारि

इस प्रकार से इनका वर्णन सामान्यरूप से हो जाता है ।

राज निघटु के अनुसार रुढित. प्रसिद्ध कुछ सज्ञाये —

बोकडी, वस्ता श्रीया विधारा, कान्डीर, डोरली-बृहती, टुन्टुक -श्योनाक, कट्बग , चपचया–दार्वी, नीली-नील, महानील–नील, नील–नील, किणिही–अपामार्ग , बला-खरेटी, बीरतरु-विल्वन्तर, छर्दन-मदन , चीरवृक्ष-बीरतररु, महौषधि-दूर्वा, तेजोवृक्ष -तेजिनी, नृपद्रुमः-आरग्वध , राजवृक्ष, मूर्वा ।

ऊपर वाले नाम राजनिघटुकार के काल के हैं। जो कि स्थानीय नाम लोक नाम के आधार पर रुढि होकर प्रयुक्त होते है । इनमे से सबका नाम सस्कृत के धातु प्रत्यय के अनुसार ठीक नही बनता पर तो भी प्रसिद्ध है । डोरली बोकडी ये नाम इसी आधार पर ही बला, बल्या तरु वृक्ष चीर वृक्ष गुण के आधार पर है ।

स्वभाव से प्रसिद्ध होने के आधार पर निम्न संज्ञायें हैं—

वाताद—बादाम, वातनाशन, भूनिम्ब—चिरायता, तोयवल्लिका-अमृतस्रवा, निद्रातुः—सुमुख, निद्रक—पिचुमर्द माल्यासुभद्रा—शमी, मधवासिनी—धव। उदकिका—बला, निद्रारि—किरात।

इस प्रकार ये नाम स्वभाव मे जैसे प्रसिद्ध है, जैसा काम करते थे उसके अनुसार प्रसिद्ध है।

देशोक्त्या प्रसिद्ध नाम जो मिलते है—

धन्वयास—धन्व देश का, काम्बोजी—कपास, कलिंग—इन्द्रयव, वैदेही—पिप्पली, काम्बोजी व—खदिर, मरुजः, केरात—किरात देशज, कलिंग—शिरीष, नैपाल—निम्ब नैपाली निम्ब, तरुष्क—पारसीक यवानी, यावनी—पारसीक यवानी, चीनाकः—कर्पूर, चीनाक—चीना धान्य, गोमर्द—दासपुर, परिपेलव, मुस्ता, मलयज—चन्दन, सौराष्ट्री—फटकरी, मुराघट्वा, काश्मीर—कूठ—केशर, गन्धमादन—गधक, केदारज—पद्मक।

ऊपर के नाम सब देश के अनुसार ही यहा पर दिये गये है।

लाछों के आधार पर—

चित्रा—मषाकर्णी, उपचित्रा—दन्ती, अंशुमती—शालिपर्णी, चित्रक—मूर्वा, पचराजिफल—पटोल।

उपमा के आधार पर—

वजकर्ण व वस्तकर्ण सर्ज, कुण्डलिनी—गुडूची, स्वलता—ज्योतिष्मती, शरपुखा—फाड पुंखा, सरपाक, इषुपुखा, मडूकपर्णी—पत्र मडूक की तरह, कणिका—कणिका की तरह अनीदार पत्र, मायूरी—जिसके पत्र मयूरशिखा की तरह है। शुकनाश—श्योनाक, फल शुक के नाम की तरह, मयूर जघ—श्योनाक वृत मयूर की जघा की तरह, दीर्घ वृतका—श्योनाक, रक्ताङ्ग—कमीला छत्रा—धनिया पुष्प छत्राकार, तृणराज—ताल, राजतरु—अमलतास, कर्णिकार—झुमक की तरह पुष्पाकृति, कृतमाल—जिसमे पुष्प मालावत लगे हो, कर्णाभरणक—पुष्पाकार करन के आभरण की तरह, शृगवेर—बेर के आकार का अङ्ग वाला अदरक।

उपमा के अधार पर तो अधिकाश भाग भरा पडा है। जिस औषधि की आकृति जिस प्रकार की है उसके आधार पर नाम हैं। कुछ उदाहरण और देखिये—

कर्कटशृगी—केकड़े के शृग की तरह, [illegible], सर्पांगी व भुजाक्षी—सर्पगन्धा, [illegible], कटुफला—कटुरस वाले फल की, कालमर्दन—[illegible] पटोल, ऊणम—विधवा, कुष्ठघ्न—पटोल, [illegible], चर्महन्त्री—चन्द्रसूर, नागागनि व नागहन्त्री—कर्कोटकी, पुत्रदात्री—कर्कोटकी, सहस्रवेधी—हिंगु, [illegible]—श्योनाक, दुष्प्रधर्षा—धन्वयास, शीता—[illegible], [illegible]—शमी।

[illegible] के आधार पर—

काकाह्वा—काकमाची, देवाह्वा—देवदारु [illegible]—इन्द्रयव, शक्राह्वा—इन्द्रयव [illegible]—चित्रक।

[illegible] कई नाम है।

प्राणिस्थान के आधार पर—

मृगनाभि व मार्जारी—कस्तूरी, मृगमद—मृगाण्डज, कस्तूरी, कृमिजा—लाक्षा, मधुच्छिष्टम्—मधुच्छिष्ट, नीडा [illegible]—श्रीवेष्टक, शबर व शबर पादप—लोध्र, लाक्षा प्रसादन—लोध्र, मरुलम्भव—मूलक, मूली, जतुका—लाक्षा, मृगशृग—लाक्षा, अर्कपत्री—सुवर्चला, सप्तपत्रिका—दुरालभा, सूक्ष्म पत्रिका—दुरालभा, गोजिह्वा व धेनुजिह्वा—गोजिह्वा, स्निग्धपत्र—करज, पद्म पत्रम्—पुष्करमूलम्, कटुपर्णी—स्वर्णक्षीरी, राषशाकः—मारगी, मण्डूक पर्णी—मजीठ।

पत्रवाचक संज्ञायें—

लेख्यदल—ताल, त्रिपर्णी व भिन्नदला—मूर्वा, लघु—पर्णिका व गोकर्णिका—मूर्वा, पृथक पर्णिका—अन्तर से पत्र देने वाली। कर्कश च्छद—शाक, सूर्प पर्ण—माष, स्वर्ण पत्री, वृत्त पत्र—पद्म।

आयुर्वेद मे कर्ष एक तोले का बोधक है।

कौल—दो माशे का तिंदुक—एक कर्ष का।

भार या मात्रा के आधार पर—

अक्ष व कर्षफल विभीतक, अक्षफला—विभीतक, कौला मरिचम्, तिष्यफला—धात्री, तिंदुक—तेंद, पिंडी व पिंडीतक—मदनफल।

ग्रन्थी के आधार पर—

शतग्रन्थी—दूर्वा, षड्ग्रन्था—वचा।

फलराजि के आधार पर—

पचराजिका—पटोल, धारा वल—मदन, पचरेखा—अभया, पचराजिफल—वचा।

बीज के आधार पर —

वीजगर्भ-पटोल., कृष्ण वीज-तरवूज, रक्तवीज-तारटी ।

पुष्प के आधार पर —

लोमशपुष्प वाट्यपुष्पी-वला, शिरीष घटा-अतिवला वृत्त पुष्प पीत पुष्पा, नील पुष्पी विषपुष्पक-मदन, श्वेत पुष्पीका-अध पुष्पी, शतपुष्पा, रजनी पुष्प, अहिछत्रा, नक्तमोल ।

फल वच-वनचक सज्ञायें.—

पाडुफल-पटोल, अमृत फल-पटोल, पचराजिफल-पटोल, स्नेहफला-कटकारी, कटफल-करज, धाराफल-पटोल, घटोल-शण, गोलफल-ग्रन्थिफल.-मदन, कटफला-जीमूतक, कोपफला-जीमूतक, कटुफला-जीमूतक, वृत्त-कोषा-जीमूतक, ज्योतिष्मती, युग्मवला-इन्दीवरी, काक-नासा, काकतुडा, कटकी फल, वृहती-मटाकी ।

काड सम्वन्धी सज्ञायें -

वस्तात्री-वकरे के आत के आकार की, मेषात्री-मेष के आत के आकार की, अजात्री-अजा के आत के आकार की, काड कटुका-कटुकी, सुकाडक-कांडीर, देवदडा-भद्रोदनी, महाकांडा-भद्रोदनी, कालस्कध.-भद्रोदनी, क्षीरकाडक-स्नूही, दीर्घ दडक-वर्धमान, मृढकाड-कतृण, काडतिल-चिरायता, दीर्घदडक-एरड, ब्रह्मदडी, रक्त काडा मजीठ, मधुयष्टि-मुलहठी ।

क्षीर निकलने के या पाये जाने के आधार पर सज्ञाये—

क्षीरा-काकोली, क्षीरशुक्ला-क्षीरकाकोली, पयस्विनी, पयस्या, क्षीरविदारी, क्षीरा स्नुही, तिक्त दुग्धा मेषशृगी, पीत-दुग्धा-स्वर्णक्षीरी, हेमक्षीरी स्वर्णक्षीरी ।

वर्ण के आधार पर पाडु —

पांडु-पटोल, कालिका-काकोली, कृष्णवृन्ता-माषपर्णी हेमा-जीवन्ती, हेमवती-जीवन्ती, स्वर्णपर्णी-जीवन्ती ।

स्पर्श के आधार पर: —

दु स्पर्श-यवासा, दुष्प्रर्षापणी-कटकारी,

कटक के आधार पर. —

गोक्षुर.—गो के लिए छुरे की तरह, दीर्घ कटक—ववूल, क्षुरक—छूरे की तरह, कटाकू—वदूल, श्वदष्ट्रा—श्वान के दात की तरह, गोश्रृग—कथारी, तीक्ष्ण कटक—ववूल, तीक्ष्ण कटका—कथारी, तीक्ष्ण कटका—ईगुदी,

सार के आधार पर—क्र वहुतसार—खदिर:, तिक्तसार—कतृण

गध के आधार पर—

सुगन्धा—रुद्र जटा, सुगधा—गधनाकुली, वृष गधा—गध माड, गधारिका—शतुपुष्पा, वृषगधिका—शतपुष्पा, अश्व-गधा—हयगधा, हविगधा—शमी, तीक्ष्ण गधा—कथारी, क्रूर गधा—कथारी, ऋष्य गधा—विधारा,

नोट—गध के आधार पर वहुतसी सज्ञाये मिलती है इनका अर्थ सरल हैं अत हमने इनका अर्थ हरएक के साथ नही दिया है। अश्व की तरह गध देने वाला, वृष की तरह गध देने वाला, सुन्दर गन्ध देने वाला।

रस के आधार पर सज्ञाये—

मधुरसा—मूर्वा, मधुदला—मूर्वा, मधुलिका—मूर्वा, सुतिक्ता—कोपातकी, कटुतुम्बिनी—कडवी तोवी, कटुवला—जीमूत, बहुरसा—ज्योतिष्मती, कटूवी—कटुकी, महतिक्त व महातिक्ता—महानिम्व, किराततिक्त—चिरायता, भूनिम्व—चिरायता, किराततिक्त—चिरायता,

ऊपर के शब्द स्पष्टार्थक है जिसके पत्र मे मधुरता है वह मधु दला, जिसमे कटु रस है वह कटुकी, तिक्त रस है वह चिरायता ।

स्थान के आधार पर—

अरण्यमुद्ग-जगली मूग, ख वल्ली-आकाश वेल, शैल सुता व गिरिनिम्व-कैडर्य, वाप्यम्-कुष्ठ, काश्मीरम्-केशर, पुष्करम्-पुष्कर मूल, पोष्करम्-पुष्कर मूल, नेपाली-मन. शिला ।

इस प्रकार स्थान के आधार पर कई सज्ञाये हे ।

ऐतिहासिक विवरण के आधार पर -

अमृत सम्भवा अमृता, यज्ञस्य भूषण-कुश, विभीषण-नल, शाभवी-दूर्वा, कुशिक तरु-अश्व कर्ण, कोशिक-गुग्गुलु, सुषेण-वेतस, अर्जुन-अर्जुन, चाणाक्य-मूली, विष्णुक्षुप्त-मूली ।

जाति के आधार पर—

अमृत वल्ली, सोमलतिका, दिव्यलता-काक्कोली, जीव वल्ली काक्कोली -

कन्द वल्ली सुरलता स्वर्णलता सोम वल्ली, ताम्र-वल्ली स्फोटलता । कटुक वल्ली आदि लता जाति के सूचक हैं ।

जिन औषधियो का आकार अच्छा सुन्दर और दर्श-नीय है उसके आधार पर निम्न हे। भद्रा, मगल्या,

जीवसृष्टा, सुपिंगला यह जीवन्ती के नाम हैं। कपिलोग फलाआत्मगुप्ता का नाम है।

आकार के आधार पर—

मासपर्णी माष के पत्र की तरह पत्र वाली, मुद्गपर्णी-मूग के पत्र की तरह पत्र वाली, हय पुच्छिका अश्व पुच्छिका यह मासपर्णी के शाशणिम्बाका जिसके फल शणक की तरह हो, घन्टाली-घन्टा की तरह बहुत फल वाली।

प्राणियों के ऊपर प्रयोग करके जो हानि या लाभप्रद ज्ञात हुई हो उसके आधार पर—

अश्वमार-कनेर, काकघ्नी-महाकरज, अहिमारक-हरिभेद, जन्तुनाशन-यमानिका, भूतनाशन-सर्षप, क्रमिघ्न-भल्लातक, क्रमिघ्न-विडग।

जिन वृक्षों के नाम उनके अङ्गों के वाचक है। यथा—

शुक्ल वृक्ष धव.-रोमालुदुम-कु मी द्रुम।

इस प्रकार पेडो के नाम वृक्ष के नाम से दिये गये हैं।

धनुवृक्ष-धन्वनः, वल्कद्रुम-मोपपत्र, राजवृक्ष-आरग्वध, पाडुरद्रुम-आरग्वध।

पराग पुष्प, पराग के आधार पर। मजरी सूचक, पुष्प मजरिका इन्दीवरी।

खर मजरो अपामार्ग

शाखा के अनुसार शाखोट व शाखा ल बेर,

वल्क के आधार पर —सोम वल्क काश्मरी जिनके वल्कल सफेद रङ्ग के हो।

सोम बल्क खदिर—

वृन्त के अनुसार-कृशन वृ ता काश्मरी। ग्र थी के अनुसार-षड्ग्रन्था वच, तेल के आधार पर-सूतेला ज्योतिष्मती स्नायु के अनुसार, तस्कर स्नायु-काकनासा, कटक के अनुसार। कृशन वृ ता-मुद्ग पर्णी, शतपाकी-दूर्वा, तिल। गुप्त स्नेहा अ कोल।

सिंहिका व्याघ्री, वज्री-थूहर। गोक्षुर, गोखरू। जिह्म—शल्य, खदिर विषकटक—शासा। तीक्ष्ण कटका, यवास.। कोष के रचनानुसार—कोषातकी-नगेश्या। जालिनी व कृत छिद्रा-कोषातकी, कोष फला-कोषातकी। कद के आधार पर—श्री कदा व सुकदा-वन्ध्याकर्कटिकी। ऋतु के आधार पर—वसन्त दूती-पाटला। प्रावृष्य.-कुटज। प्रावृषेण्या-कीच।

आधिक्य के अनुसार—कदम्बा—जीमून। महागुलमा—
। रामसेनक.—किरात जिसके क्षुप राम की सेना की तरह अधिक हो। पुत्र श्रेणी—जिसमें [illegible] फल लगे हो। गण्डिका—धधी।

नाडी के अनुसार—नाडी [illegible]। [illegible] —नाल। शीतालः स्फोट फल—आस्फोट [illegible]। स्फोट फल—लता पुष्पी, उदकीर्य—करज। प्रकीर्य व प्रकीर्ण—करज जिसके फल पकने पर फटकर फैल जाते है। शाखा के परिवर्तित रूप कटक से [illegible] शाखा कटक—स्नुही जिसके पत्र परिवर्तित होकर काट के रूप में हो गये हो।

प्रयोग के अनुसार—नेमि वृक्ष न [illegible] की रथ की धुरी बनाने के आधार पर खदिर का नाम नेमि वृक्ष है।

[illegible] अतिविषा—जिसमें विषात्मक असर होता है।

शुक्ल कदा—अतिविष श्वेत कदवाली—श्वेत को अतिविषा कहते है।

श्यामकदा—श्याम कद वाले अतीस का प्रतिविषा कहते हैं।

चन्द्रमा की ज्योत्सना की तरह श्वेत वर्ण की व श्वेत वचा की तरह श्वेत अतीस होती है। ताम्र पुष्प—व महापुष्प—अर्थात् जो लालवर्ण के बड़े पुष्पवाला हो वह। कोविदार है। अन्यथा—अश्मतक है। अम्लपत्र—अश्मतक होता है। समस्तदुग्धा—स्नुही होता है।

आमोद के अनुसार—जो वस्तु जिस प्राणी को आनन्द दायक होता है उसे उस नाम से पुकारते हैं। यथा—

वस्तमोदा-अजमोदा। अजमोदा के नाम से।

इस प्रकार हम देखते है कि विभिन्न नामों के आधार पर वनी औषधियो का नामकरण करके आचार्यों ने वनौषधि को मुज्ञान करने की चेष्टा की है। विभिन्न नामो को देकर उनका स्वरूप परिचय देने की पद्धति को अपनाया गया है। यद्यपि इस प्रकार के बहुत से पर्यायों का उल्लेख निघण्टुओ मे पाया है पर यहा पर उनका उदाहरण मात्र दिया गया है। विद्वान वैद्यो का इसके निर्णय करने मे इनसे सहायता मिली है। और सदिग्ध औषधियो का भी विवरण प्राप्त करके कई द्रव्य जहा पर एक नाम के हो वहा पर विभिन्न रस गुण व पत्र पुष्प वल व फल सूचक शब्दो का सग्रह करके उनके नाम व रसादि का निर्णय कर द्रव्य का निर्णय किया जा सकता है। जो लोग इस प्रकार विश्लेपण कर ऊहापोह नही कर सकते वैही इस पर सदिग्धता का अधिक दोषारोपण करते हैं।

द्रव्य विज्ञान पर सैद्धान्तिक प्रभाव

आयुर्वेद एक स्वतत्र दर्शन पर आधारित है । तथापि आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्त प्रायश वेद, उपनिपद, पुराण एव अन्य दर्शन आदि मे वर्णित मूल-भूत सिद्धान्तो के अनुसार है । वेदो के बाद साख्ययोग न्याय-वैशेपिक और मीमासा के पूर्वोत्तर सिद्धान्तो का प्रभाव आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्तो पर विशेप रूप से दृष्टिगोचर होता है ।

द्रव्य की परिभाषा—द्रव्य की परिभाषा के लिए जो सामग्री आयुर्वेद विज्ञान मे वर्णित है, वह इन दर्शनो से भिन्न है । एतदर्थ यहा क्रमश आयुर्वेद सम्मत द्रव्य परिभाषायें लिखी जाती हैं :—

चरक संहिता–"यत्राश्रिता. कर्मगुणाः कारणं समवायि यत्" तद्द्रव्यम्, चरक सूत्र १–५१

सुश्रुत सहिता—द्रव्य लक्षणं तु "क्रियागुणवत् समवायि कारणम्" इति । —सु० सू० ४०–३

रस वैशेषिक "रसादीनां पचाना भूताना यदाश्रय भूत तद् द्रव्यम्"–'भावप्रकाश" वाचस्पत्याभिधानम्–

रसो गुणस्तथा वीर्यो विपाक शक्तिरेव च ।
पंचानां यत् समाहारस्तद् द्रव्यमिति कथ्यते ॥

उपर्युक्त परिभाषाये तद्यपि दार्शनिक पृष्ठभूमि पर ही बनी हुई है, यथापि इनकी भी अपनी विशेपनायें हैं ।

इनमे सामान्यरूप से यही अर्थ होता है कि "जिसमे कर्म व गुण आश्रित हो तथा जो अपने कार्यद्रव्यो का समवायी कारण हो" वह द्रव्य कहलाता हे ।

यह परिभाषा प्रायः दार्शनिक परिभाषा सी ही है किन्तु उसका कुछ रूपान्तर इन सबमे दिखाई पडता है ।

द्रव्य की दार्शनिक परिभाषा का लक्ष्य कुछ और था तथा इसकी आयुर्वेदीय परिभाषा का लक्ष्य कुछ और ही था । यथा –

वैशेषिक दर्शन–"क्रियागुणवत् समवायि कारणमिति द्रव्यलक्षणम्" "वै० सू० १-१-१५"

वैशेषिक का उपर्युक्त लक्षण सुश्रुत के लक्षण से ठीक मिलता जुलता है । यहाँ जिसमे क्रिया व गुण दोनो रहते हैं और जो क्रिया व गुण दोनो का समवायी कारण होता है, उसे द्रव्य कहते हैं ।

आयुर्वेद मे द्रव्य की परिभाषा का विचार, कारण-द्रव्य व कार्य द्रव्य दोनो के प्रति नही दिखाई देता, जिस प्रकार कि अन्य दर्शनो का है । अतएव आयुर्वेदीय द्रव्य-लक्षणो के परिलक्षित भाव को यहा क्रमश लिखा जाता है । चरक के अनुसार "जो पदार्थ कर्म और गुण का आश्रय हो तथा जिसमे कर्म व गुण समवाय कारण रूप मे निवास करते हो, वह ही द्रव्य हे ।"

सामान्यतया ऊपर के दोनो लक्षणो मे कोई अन्तर नही हे । यहाँ दर्शनो की तरह यदि विचार करे तो कार्य व कारण द्रव्य दोनो का ही समावेश हो जाता है । साथ ही द्रव्य सग्रह[1] मे चरक सूत्र स्थान के कतिपय उद्धरणो से पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, आत्मा, मन, काल, दिशायें[2], बुद्धि,मनोर्थ, (शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध, [3]चिन्त्य, विचार्य, उह्य, ध्येय सकल्प्य) आदि अनेक द्रव्यो व गुणो का समावेश कर लिया जाता है । यह सब तत्समवर्ती दार्शनिक विचारधाराओ का सामान्य प्रभाव ही कहा जा सकता है । वास्तव मे कारण द्रव्यो का प्राधान्येन व्यपदेश इन्हे अभिप्रेत न था । महर्षि अग्निवेश का तो स्पष्ट मत है कि द्रव्य तथा औषधि एक ही है ।[4] जगत यावन्मात्र द्रव्य औपधि ही है । चिकित्साशास्त्र के अनुसार द्रव्य की परिभाषा का लक्ष्यार्थ औषधि की तरफ ही रहना भी चाहिये । इसी सिद्धात को आगे चल कर सुश्रुत मे कही अधिक विकसित रूप मे देखा जाता है । महर्षि सुश्रुत ने स्पष्ट रूप मे लिख दिया है कि [5]द्रव्य से औषधि का ग्रहण करना चाहिए । स्थावर और जङ्गम भेद मे विभक्त इस कार्य द्रव्य की परिभाषा को भावमिश्र

---

१ खादीन्यात्मा मन कालो दिशश्च द्रव्य संग्रह ।-च सू १-४८

२ मनो मनोर्थो बुद्धिरात्मा चेत्यध्यात्म द्रव्यगुण सग्रहः ॥ —च सू ८-१३

३ चिन्त्य विचार्यमूह्य च ध्येयं सकल्प्यमेव च ।
यत्किञ्जिन्मनसो ज्ञेय तत् सर्वं ह्यर्थसंज्ञकम् ॥ —च शा १-२०

४ अनेनोपदेशेन नानौषधि भूत जगति किञ्चितद्रव्यमुपलभ्यते,
तां तां युक्तिमर्थं च त तमभिप्रेत्य । —च.सू २६,१२

५ द्रव्याणि पुनरोपधय । —सु. सू १-२८

और नागार्जुन ने तो और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है। यथा :—

द्रव्यमाश्रय लक्षण पचानाम् । —रस वै.

रसादीना पचाना यदाश्रय भूत तद्द्रव्यम् । —भाव.

इन लोगो ने अन्धानुकरण न करके "औषधिया ही द्रव्य है" ऐसा मान कर यह परिभाषा दी है। अर्थात् जिसमे रसादि "रस-गुण-वीर्य-विपाक-प्रभाव" ये पाच रहते है वह ही द्रव्य है अन्य नही। इसमे स्पष्ट औषधि ग्रहण करना अभिप्राय था और है। रस पचक कारण द्रव्य मे नही पाते। यह भी अर्थ हो सकता है कि पाचभौतिक तत्वो से बने हुए द्रव्य मे—

'रसगुणवीर्य विपाक प्रभावादीनां यदाश्रय भूत तद्द्रव्यमिति।"

इससे स्पष्ट है कि कारण द्रव्य मे रस गुण वीर्य विपाकादि निवास नही करते। वे औषधियो मे ही निवास करते है। आयुर्वेद मे द्रव्य शब्द से स्पष्ट औषधिया ही अभिप्रेत है। अत दार्शनिक व आयुर्वेदीय परिभाषा मे अन्तर है। चरक का इस परिभाषा मे स्पष्ट रूप से यह शब्द कहने पर कि '—

"यत्राश्रिता' कर्म गुणा. कारणं समावयि यत् तद्द्रव्यम्।"

सुश्रुत से कही स्पष्ट अर्थ रखता है। यह कारण व कार्य द्रव्य दोनो से समान रूप से लागू होता है। इससे स्पष्ट है कि चरक ने जहा पर वैशेषिक का विचार ग्रहण किया, औषधि विवरण मे आते ही वह अपने विचार मे एक मौलिक परिवर्तन करके सब द्रव्यो को पाचभौतिक मानकर झट उस विचार से पृथक कर लिया। क्योकि पाचभौतिक विकार ही ग्रहण करना था। कारण द्रव्यो का ग्रहण अभिप्रेत न था। यदि ऐसा मान भी ले तो इस बात की सगति नही बैठती कि आत्मा व मन की तरह काल व दिक् भी द्रव्य की उत्पत्ति के निमित्त कारण होते है समवायी नही। अत औषधार्थ जिनका उपयोग होता है वे वनस्पतिया, जैवद्रव्य या खनिज द्रव्य माने गये है क्योकि इसमे रसादि पचक रहते हैं। यथा —

शुठी मे कटुरस, उष्ण-स्निग्ध गुण और वातहर उदर-रोग-हर व श्वासकासहर, कर्म समवाय सबध से रहते है। अत प्रथक परिभाषा की आवश्यकता ही न पडी और औषधि को ही द्रव्य के नाम से मानना पडा।

इस प्रकार कर्मगुण के आश्रय देने वाले समवाय कारण के रूप मे रहने वाले यह द्रव्य ही औषधि रूप मे माने गये। अत सर्व-सम्मति से द्रव्य का लक्षण भावमिश्र व रस वैशेषिक के आधार पर यही मानना उचित हुआ कि —

द्रव्य उस वस्तु को कहते है जिसमे रस गुण-वीर्य-विपाक-प्रभावादि कर्म के आश्रय भूत हो। यह परिभाषा दार्शनिक व आयुर्वेदीय दोनो मे समान रूप से ठीक बैठती है।

द्रव्य का पांचभौतिकत्व—

द्रव्य गुण विज्ञान मे कहे गये सब द्रव्य पाचभौतिक है। यह प्रतिज्ञा चरक की है। वैशेषिक दर्शन के मानने वाले और विशेष करके पहले अध्याय मे वैशेषिक के अनुसार नव द्रव्य की गाथा गाने वाले चरक को, जब २६ वें अध्याय मे द्रव्यो का वर्णन करना पडा, तो यह कहना पडा कि —

सर्व द्रव्य पाचभौतिकमस्मिन्नर्थे तच्चेतनावदचेतन च। तस्य गुणा.शब्दादयो गुर्वादयश्च द्रवान्ता। कर्म पचविधमुक्त वमनादि। —च. सू २६-१०

इससे आहार द्रव्य व औषधि द्रव्य का पाचभौतिकत्व होने से काल-दिक्-आत्मा-मन आदि का निराकरण हो जाता है। और यह विचार सांख्य दर्शन के अनुसार होता है। सुश्रुत ने भी स्पष्ट शब्दो मे घोषणा की है कि —

तत्र पृथिव्यप्-तेजो-वाय्वाकाशाना समुदायात् द्रव्याभिनिर्वृति. उत्कर्षस्तु अभिव्यजको भवति। इद पार्थिवमिदमाप्यमिद वायव्यमिदमाकाशमिति। —सू. सू. ४६-३

अष्टाग हृदयकार ने भी स्वीकार किया कि :—

पचभूतात्मक तत्, क्ष्मामधिष्ठाय जायते।
अम्बुयोन्यग्नि-पवन-नभसा समवायतः॥
—अ हृ.सू अ. ९।१॥

तथा. "इह हि द्रव्य पचमहाभूतात्मकम्। तस्याधिष्ठान-पृथ्वी, योनिरुदक, खानिलानल समवायान्निर्वृति विशेषा.। —अ स अ १७॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि औषधि द्रव्य की उत्पत्ति मे पच महाभूतो से उपलब्धि मिलती है। यहाँ कारण द्रव्यो को छोड कर कार्य द्रव्य ही औषधि द्रव्य के रूप मे माने गये हैं।

वैसे तो सृष्टि की उत्पत्ति मे साख्य दर्शन के क्रमानुसार अव्यक्त से महान्, अहकार व पच तन्मात्राओ की उत्पत्ति होती है। वे पच महाभूतो की उत्पत्ति करते हैं। और भी इनके पारस्परिक सन्निकर्ष, प्रवेश और सघर्ष से चतुर्विंशति तत्वो की उत्पत्ति होती है। चेतन के साथ मिलकर यह चेतन सृष्टि वन जाती है। वैशेपिक दर्शन व वैदिक विचार के अनुसार ब्रह्म या ईश्वर की इच्छा से सृष्टि उत्पन्न होती है। इस इच्छा के साथ ही सत्व, रज, तम गुणो की सक्रियता से भूत सघर्ष होकर अणु व परमाणुको मे आकर्षण, अनुग्रह व अनुप्रवेश से द्रव्यो की उत्पत्ति होती है। इसमे सब भूतो का सयोग होता है। जो-जो अधिक भाग लेते है उनका उत्कर्ष व शेष का अपकर्ष होता है और यह सृष्टि पचभूतात्मक कहलाती है। सुश्रुत ने इस विचार को रस विशेप विजातीय अध्याय मे लिखा है। यह वर्णन बहुत ही सुन्दर व वैज्ञानिक है। यथा —

"परस्पर संसर्गात् परस्परानुग्रहात् परस्परानुप्रवेशाच्च सर्वेषु सर्वेषां सान्निध्यमस्ति उत्कर्षापकर्षात्तु ग्रहणम्।
—सु.सू.अ. ४२।२

दार्शनिको की पद्धति मे वडी दुरूहता है। एकाणु द्व्यणुक व त्र्यणुक का सयोग भूत, महाभूत या स्थूल भूतोत्कर्ष की स्थिति को पार करना व फिर द्रव्य का स्वरूप ग्रहण करना आदि।

आयुर्वेद सदा स्थूल भूत को मान कर चलता है। अत औषधि द्रव्य की उत्पत्ति मे पच महाभूत के इस क्रम का निर्देश मिलता है। चरक व वाग्भट ने लिखा है कि द्रव्यो का आधार पृथिवी और योनि उदक है, इनके अतिरिक्त तीन महाभूत भी उत्पत्ति मे सहायक है। इस प्रकार पाचभौतिक स्थिति वनती है। यह नियम विशेप कर उद्भिज व जीव वर्ग के द्रव्यो मे अधिक लागू होते है और पोषणार्थ अन्य भौतिक अङ्गो का ग्रहण करते है और उनके पत्र पुष्प काड व फल एक विशेष रस से युक्त हो जाते है। यह ही गुणकर्म की उत्पत्ति मे व प्रभाव मे आश्रयभूत होते है। अन्य खनिज द्रव्य भी भूगर्भ की उष्मा, आर्द्रता व अन्य स्थिति से लाभ उठाकर अपना विकास करके आकार ग्रहण करते है। वर्णान्तर मे रूपान्तर मे प्रवृत्त होते है और विभिन्न नाम से माक्षिक, गोदन्ती, मन शिला आदि संज्ञा पाते है।

इस प्रकार पाँचभौतिक द्रव्यो का सगठन विभिन्न प्रकार से होता है और सृष्टि सजीव व निर्जीव वस्तु के रूप मे होती है।

इस प्रकार सृष्टि सब ही पचमहाभूतात्मक मानी गयी है और सृष्टि के सब द्रव्य औषधि द्रव्य है अतः कहा है कि :—

"सर्वं द्रव्य पाचभौतिकमस्मिन्नर्थे।" यह ठीक ही है।

अनेन निदर्शनेन नानौषधिभूत जगति किंचिद् द्रव्यमस्तीति कृत्वा त तं युक्ति विशेषमर्थं चाभिसमीक्ष्य स्ववीर्य गुणयुक्तानि द्रव्याणि कार्मुकाणि भवति।—सु सू अ ४१।५

पुनश्च—न किंचिद् विद्यते द्रव्यं वशान्नानार्थयोगयो.।
—अ.हृ सू अ.९।

पुनश्च—द्रव्य च नानौषधिभूत जगति किंचित् द्रव्यमस्ति विविधार्थ प्रयोगवशात्। —अ.सं सू.अ १७

अत ऊपर के विचार से स्पष्ट है कि ससार का कोई भी द्रव्य युक्ति-पूर्वक प्रयोग करने पर औषधि द्रव्य का स्वरूप ग्रहण करता है। भले ही वह धूल मिट्टी मात्र या इससे भी निकृष्ट क्यो न हो। इस प्रकार कार्य द्रव्य के रूप मे प्राप्त सब औषधि ही है।

(औषधि विज्ञान शास्त्र से साभार सगृहीत)

दैनन्दिन की प्रायोगिक

बाजारू औषधियों की

सन्दिग्धता का निवारण

अगुरु (अगर) (बनौषधि विशेषांक प्रथम भाग पृष्ठ ४६)

वर्ग—श्वासहर, तिक्तस्कंध, शीतप्रशमन (चरक), शिरोविरेचन।

सु०—एलादिगण, सारिवादिगण, श्लेष्मप्रशमन ।

असली—अगर एक्वीलेरिया एगेलोचा (Aquilaria Agallocha Roxb)

वर्ग—अगुर्वादि–Thymelaceae.

रस परीक्षा—तिक्त, कटु ।

वीर्य—उष्ण ।

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण ।

प्रतिनिधि - लवग, केशर, दालचीनी ।

नकली–काला चन्दन । तगर काष्ठ—काले रग का ।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा–असली अगर-अगर पेड का भीतर का मज्जाभागीय काष्ठ–काले भूरे रङ्ग का सुगन्धित होता है । छोटे-छोटे काष्ठ के टुकडो मे सग्रहीत होता है ।

यह तीन प्रकार के होते है—

१. गुरु-गर्की-पानी मे डूबने वाला भारी-काला



२. अगुरु-नीमगर्की-जो जल मे डूबता है । परन्तु उतराता रहता है । काला धूसर ।

३. अगरुक–जो तैरता रहता है ।

वर्ण—गुरु—काला—कालागरु

अगुरु–काला भूरा
अगरुक–कम काला भूरा
गध––अगर मे एक विशेप मनमोहक गध होती है।
स्पर्श–स्निग्ध होता है। इसमे से चिकना तेल निकलता है। लकडी भी गन्धित होती है।
सख्या–तीन प्रकार का-१ कालागरु
२ काला भूरा।
३ सामान्य भूरे रग का

शब्द––आग मे जलाने पर धूमपूर्वक जलता है शब्द नही
नकली–सब तैरते है
वर्ण––हलके काले रग का
स्पर्श––रूक्ष
गध––गधरहित जलाने पर भी गधहीन।
वीर्यकालावधि––५ वर्ष
उपयोगीअश–काष्ठ का सारभाग-कीट दष्ट भाग शाखा, निर्गम स्थान।

अग्निमन्थ (वनौषधि विशेषाङ्क प्रथम भाग पृष्ठ २३४)

नाम––अग्निमन्थ, गनियारी, प्रेम्ना लेटिफोलिया, Premna Latifolia Roxb

कुल–वर्विनेसी (Verbenaceae)

शुद्ध द्रव्य––(१) अग्निमन्थ वृहत्।
(२) अग्निमन्थ क्षुद्र।

इन दोनो के त्वक् व डालियो का सग्रह बाजार मे पसारियो पर मिलता है। यद्यपि अग्निमन्थ मूके ल का त्वक् औषधि मे प्रयोग होना चाहिये।

गण –दशमूल, वृहत्पचमूल, शीतहर-शोथहर, (चरक) **बरुणादिगण**, वीरतर्वादि गण (सुश्रुत)।

मिलावट वाले द्रव्य––१ प्रेम्ना इन्टेगीफोलिया- इसकी शाखाओ पर काटे की तरह क्षुद्र शाखाये होती है। इसकी मूल लम्बी गोल ठोस वाहर से भूरे रग की और भीतर से पीली होती है। २ प्रेम्ना सेराटिफोलिया-वृहद् अग्निमन्थ की जाति का है। ३ प्रेम्ना मोक्रोनाटा। ४ प्रेम्ना वार्वेटा।

इनकी त्वक् और शाखाये वाजार मे अधिक मिलती हैं।

परीक्षा—वृहद् अग्निमन्थ और क्षुद्र अग्निमन्थ की शाखायें काटकर इनका सग्रह कर वाजार मे वेची जाती है। इनका वर्ण शाखा की उपरि त्वचा श्याम वर्ण की रूक्ष होती है। इनके मूल की त्वचा स्पर्श मे रूक्ष, तोडने पर सरलता से टूट जाती है। इनकी शाखाओ मे काटे नही होते है।

रस—तिक्त, कटु, कपाय।
गुण—रूक्ष और लघु।
विपाक—कटु
वीर्यावधि—६ मास
विशेप—मुख्य योग वृहद पचमूल व दशमूल।





अजमोदा (वनौषधि विशेषांक प्रथम भाग पृष्ठ ७५)

नाम—म०—अजमोदा, अजमोद।

ब०—राणधोनी, वनजोयान।

गु०—अजमोद।

शुद्ध द्रव्य—अजमोदा,लै०--ट्रेकिस्पेर्मुम, राक्सवर्गीयानुम (Trachyspermum Roxbarghianum)

कुल—गार्जर-कुल (Umbelliferae)

अजमोदा १ वर्ष आयु के छोटे पौधे है। यह सर्वत्र मिलते है किन्तु इसकी खेती दक्षिण भारत और बगाल मे होती है। केवल इसके बीज का ही प्रयोग किया जाता है। मात्रा—३-६ माशे (बीज)

मिलावट वाले द्रव्य—अजमोदा पर्याप्त मात्रा मे मिलती है और खेती से प्राप्त की जाती है।

(१) अजमोदा की एक जगली-जाति-कैरमस्ट्रिक्टोकार्पम) (Carom Strictocarpum)—इसके बीज-फल अजमोदा के फलो से काफी छोटे होते हैं। उसका मिश्रण अजमोदा के साथ होता है।

(२) फारस मे एक और पौधा-अजमोदा की तरह होता है जिसका नाम एपियम ग्रेविओलन्स (Apium Graviolens Linn) है। इसको अरबी मे हिन्दुस्तानी अजमोद या करफ्स हिन्दी कहते है। इसके दाने अजमोदा से छोटे होते हे। इनकी मिलावट अजमोद के हे। इसके अतिरिक्त अजमोदा के कच्चे फल डाल जैसे—पत्तिया भी अजमोद मे मिली रहती है। पन्द

परीक्षा—अजमोदा का फल लगभग $\frac{५}{२४}$ से०मी० रर होता हैं। रूपरेखा मे गोल अजवायन के बीजो ् मिलता जुलता धूसर वर्ण का होता है। इसका फल बाहर की तरफ उभरा हुआ भीतर की तरफ सिकुडा हुआ होता है। हरेक फल मे दो बीज होते है। प्रत्येक खण्ड मे ५-५ उन्नत रेखाये होती है और तैल की बहुत सी ग्रन्थि पायी जाती है। ऊर्ध्व पृष्ठ की रेखाये वडी और अध पृष्ठ की रेखाये छोटी होती है। भीतर को सिकुडी रहती है। इसलिए इसका नाम वानरी है। इसमे एक तीक्ष्ण सुगन्ध होता है। चबाने पर बीज चरपरे और सुगन्धित मालूम पडते हैं। इसमे एक उडनशील तैल पाया जाता है। और इसमे थायमल का अ श अल्प मात्रा मे होता है।

रस—कटु-तिक्त।

गुण—रूक्ष-लघु-तीक्ष्ण।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—दीपन-पाचन-शूलप्रशमन वातानुलोमन।

वीर्य कालावधि —२-३ वर्ष तक।

अजवायन (बनौषधि विशेषाँक प्रथम भाग पृष्ठ ७९ से ९३ तक)

नाम—अजवायन, यमानी, दीप्यक।

शुद्ध द्रव्य—अजवायन, यमानी।

लै०—ट्रेकीस्पर्मम-अम्मी (Trachy seprmum Ammi) अथवा कैरम कैप्टिकम वेंथ (Carum Copticum)

कुल—गार्जर-कुल। (Umbelliferae)

इसके क्षुप अजमोदा की तरह १-१॥ फीट ऊँचे होते है। इनके बीजो का सग्रह कर औषधार्थ प्रयोग किया जाता है। इसके तैल और सत्व दोनो का उपयोग बहुत बडी मात्रा मे होता है। मात्रा—३ माशे।

सम्पूर्ण भारत मे इसकी खेती की जाती हे।

मिलावट वाले या प्रतिनिधि द्रव्य—इसके बीजो के साथ अजमोद के बीजो की मिलावट होती है। किन्तु



अगुरु-काल
अगरुक-गन्ध होती
गध—अगर
स्पर्श—स्निग
संख्या

[१०३

...रए होते है । इसके ...का भी मिश्रण

...क फल रूप रेखा मे अजमोद के ... होते है । इसका बाहरी भाग उभरा ...रा होता है । इसके प्रत्येक भाग मे ५-५ ... होती है । इसमे तीव्र गध आती है और स्वाद मे ये कटुतीक्ष्ण होते हैं । इनमे ५% उडनशील तैल होता है जिसमे अजवाइन का सत्व या थाईमल (Thymol) मिलता है । इसके अतिरिक्त इसमे क्योमीन-टर्पीन और थाइमीन भी अल्प मात्रा मे पाया जाता है ।

रस—कटु-तिक्त ।

गुण—लघु-रूक्ष-तीक्ष्ण ।

विपाक—कटु ।

वीर्य—उष्ण ।

प्रभाव—तीव्र दीपन-पाचन-वातानुलोमन-शूलप्रशमन



वीर्य कालावधि—२-३ वर्ष तक ।

इसके फल मे सुगन्धित तैल ४-६ प्रतिशत जिसमे थायमल ४५-५५% होता है ।

अतिविषा (वनौषधि विशेषांक प्रथम भाग पृष्ठ ११९)

नाम—अतीस, अतिविषा ।

शुद्ध द्रव्य—अतीस, एकोनाइटम हेट्रोफाइलम (Aconitum Heterophyllum Wall) ।

कुल—वत्सनाभ कुल (Ranunculaceae) ।

६०००–१५००० फीट की ऊचाई पर प्राप्त होता है । इसके मूल का प्रयोग होता है ।



भेद—श्वेत, पीत, रक्त । श्वेत का ही प्रयोग करते हैं । ऊपर मूल का आवरण लाल बादामी रहता है, भीतर का भाग श्वेत रहता है ।

मिलावट वाले द्रव्य—अतीस के कन्द के साथ एक प्रकार के मूल की मिलावट जिसको क्रिप्टोकोरीनो स्पाईरेलिस (Cryptocoryne Spiralis Fisch) कहते है । इसके भौमिक काण्ड अतीस के नाम से बेचे जाते है । इनको तेलगु भाषा मे नन्ति अतिवस कहते हैं ।

संग्रह—बीज पक जाने पर मूल खोद कर सग्रह करते है ।

परीक्षा—(१) औषधि दृष्टि से अतीप का नया और छोटा कन्द जो प्रायः पौन इन्च से २ इन्च लम्बा हो प्रयोग किया जाता है । इनमे पुरानी और नई जडे मिली हुई होती है । यह शक्वाकार बाहर से लाल रग के बादामी वर्ण के, भीतर से तोडने पर सफेद दिखाई पडते है । तोडने पर भीतर कन्द मे चार छिद्र दिखाई पडते हैं और सरलता से टूट जाता है । यह स्वाद मे अति तिक्त होती है ।

(२) मिलावट वाले अतीप शक्वाकार न होकर एक समान गोल झुर्रीदार होती हैं । ऊपर से इसका रग श्याम वर्ण का होता है ।

रस—तिक्त, कटु । विपाक—कटु । वीर्य—उष्ण ।
कर्म—दीपन, पाचन, ग्राही । वीर्यकालावधि—१-३ वर्ष ।

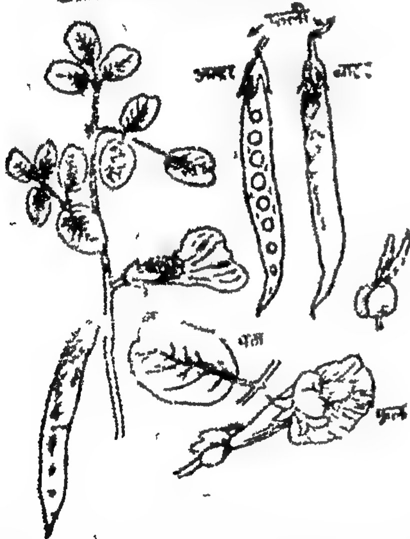
अपराजिता (वनौषधि विशेषांक प्रथम भाग पृष्ठ १६७)

नाम—अपराजिता, विष्णु क्रान्ता । हि.—कोयल । गु०—गरणी ।

शुद्ध द्रव्य—अपराजिता, विष्णु क्रान्ता ।

लैटिन-क्लिटोरिया टेरनेटिया (Clitoria ternatea Linn) ।

कुल—शिम्बी कुल (Leguminoceae-Papilionaceae) ।



प्रयोज्यांश—पचांग, मूल, पुष्प और बीज अपराजिता की सुन्दर और पतली लतायें होती हैं इनके मूल, पुष्प, बीज, पत्र का प्रयोग औषधार्थ होता है। अपराजिता नील पुष्प भेद से दो प्रकार की होती है। इसका मूल वमन के लिए प्रयोग करते है।

गण—चरक-सुश्रुत,शिरोविरेचन द्रव्य

मिलावट वाले द्रव्य—अपराजिता के बीज काले और चपटे होते हैं। इसके बीज के साथ इसके अतिरिक्त इसके स्थान पर और भी कई औषधियां प्रयुक्त होती है। जैसे-'डल्हण' ने श्वेतगिरि कर्णिका के स्थान पर श्वेतस्पन्द लिखा है। आदिवासियों ने अपराजिता के स्थान पर वादी चाद और चनाखी और डागन का स्तेमाल करते है और विशेषकर सर्पविष के लिए देते हैं। इसके बीज के स्थान पर रेणुका का भी प्रयोग होता है।

परीक्षा—अपराजिता के बीज ५/८ सेमी. या चौथाई इन्च लम्बे होते है। बीजावरण चमकीला, चिकना, कृष्ण वर्ण का होता है। भीतर दो दल होते है।

अपराजिता की मूल सफेद मासल १ इन्च से अधिक मोटी होती है। मूल की वाह्यत्वक काफी मोटी रेशेदार होती है। ये भीतर के काष्ठीय भाग से अलग हो जाती है। प्रधानमूल से उपमूल निकलकर आलू की तरह वृत्ताकार रूप धारण करते है। इनका प्रयोग यन्त्र बनाने के लिए भी होता है। इसमे एक प्रकार की विचित्र गन्ध होती है।

दक्षिण भारत मे अपराजिता के स्थान पर एक पेड के पत्र और पुष्पों का प्रयोग होता है।

रस—कटु ।

विपाक—कटु ।

गुण—रूक्ष, लघु ।

वीर्य—उष्ण ।

प्रभाव—शिरोविरेचक, विषाप. और मेध्य ।

वीर्यकालावधि—बीज व मूल १ वर्ष तक ।

अपराजिता का बीज चपटा, चिकना चमकदार होता है किन्तु काला दाना का बीज काला बाहर से उन्नतोदर और भीतर त्रिकोण होता है। इसका मूल सत्व शीघ्र विरेचक है। काला दाना गुल्वास के बीज और जैलप का प्रतिनिधि है।

अम्लवेतस (वनौषधि विशेषांक प्रथम भाग पृष्ठ २२७)

नाम—सं० अम्लवेतस, हि० अमलवेत ।

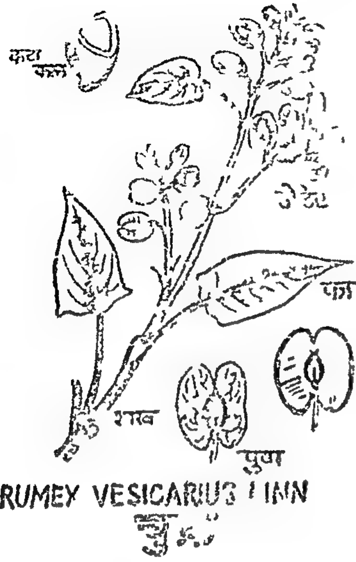
शुद्ध द्रव्य—अमलवेता ।

लै०—एसिडो-जाईफोलिया (Acido Zyfolia) ।

कुल—निम्बूकादि-कुल । (Rutaceae)

यह बहुत सदिग्ध द्रव्य है, किन्तु चरक-सुश्रुत-वाग्भट्ट सबने फल वर्ग मे पाठ किया है। और अम्लस्कन्ध मे भी पाठ किया है। इसके फल का प्रयोग होता है। यह नीबू जाति का फल है।

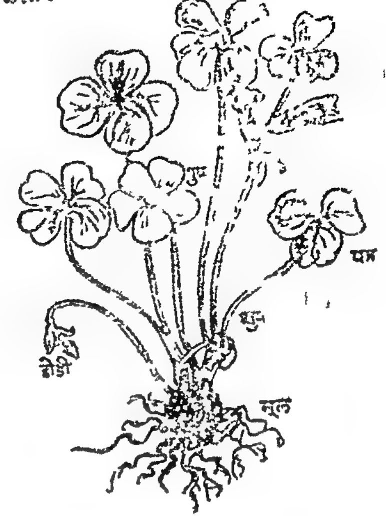
गण—चरक-दीपनीय, हृद्य, श्वास हर वर्ग ।



RUMEX VESICARIUS LINN
चुक्र



कोकम
GARCINIA INDICA CHOIS



OXALIS CORNICULATA LINN.



भव्य (चालता)
DILLENIA INDICA LINN

मिलावट वाले द्रव्य—अम्लवेत के नाम पर बाजार मे कई फल मिलते है—

१. थैकल, २ मेगोस्टील, ३ चुक्र, ४ रुमेक्स-वेसिकेरियस, ५ रेवन चीनी की शाखा, ६. अम्लवास्तूक, ७ गलगल, ८ भव्य—इत्यादि मिलते है।

परीक्षा—अम्लवेतस नीबू की जाति के खट्टे फल हैं। यह अम्ल होते हे, इसलिये व्यापारी कई अम्लफलो को बाजार मे बेचते है। जिनमे चार प्रधान है—

१ रेवन चीनी की गुत्थी हुई डाली। २ कोकम के कटे हुए फल। ३ थैकल के कटे फल। ४ चालता के कटे टुकडे।

नोट—इस विषय का पूरा विवरण आगे अम्लवेतस के लेख मे पढिये जिसमे स्पष्ट है कि अज्ञानता के कारण टीकाकार, ग्रन्थकार, निघण्टुकार और आधुनिक वनस्पति शास्त्रकारो ने किस प्रकार मनमाने द्रव्यो का प्रयोग अम्लवेत के नाम पर किया हे।

रस—अत्यम्ल।

गुण—रूक्ष, लघु, तीक्ष्ण।

विपाक—अम्ल।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—हृद्य, वातानुलोमन, शूलहर, भेदन।

वीर्य कालावधि—१ वर्ष तक।

अर्जुन (वनोषधि विशेषाङ्क प्रथम भाग पृष्ठ २२५)

नाम—अर्जुन, कोह।

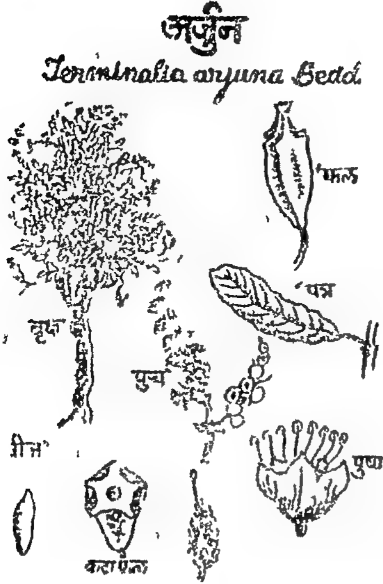
शुद्ध द्रव्य—अर्जुन। लै० -टर्मिनेलिया अर्जुना (Terminalia Arzuna)

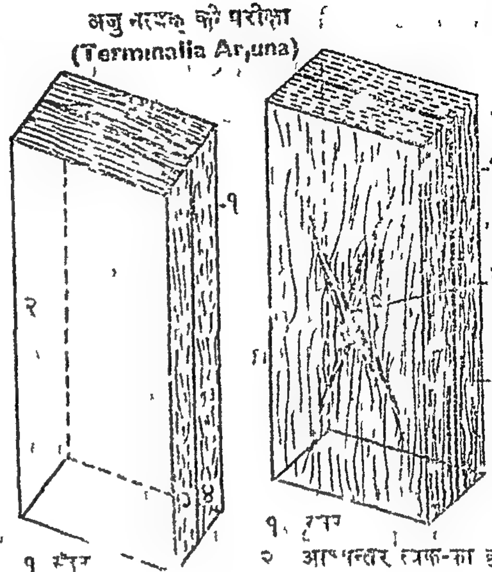
कुल—हरितक्यादि-कुल (Combrataceae)

अर्जुन के बडे-बडे ६०-८० फुट ऊँचे वृक्ष होते है। इसकी छाल का प्रयोग औषधि के लिये होता हे। छाल श्वेत होती है अत अर्जुन कहते हे।

मिलावट वाले द्रव्य—अर्जुन की छाल के साथ निम्न लिखित पेडो की छाल मिली रहती है—

१ साजड की छाल, २ उदुम्बर की छाल,





१ साजड की छाल बाहर से सफेद परन्तु फटी हुई होती है। २ उदुम्बर की छाल बाहर से श्वेत, भीतर से लाल और अन्तरछाल पीत वर्ण की होती है। ३ महुवा की छाल बाहर से श्वेत मटमैली फटी हुई और भीतर से लाल होती है। यह इनका अंतर है।

परीक्षा—ताजी अर्जुन की छाल बाहर से श्वेत तथा अन्दर से चिकनी मोटी, गुलाबी रंग की होती है। बाजार मे जो छाल मिलती है, वह सूखी हुई विभिन्न लम्बाई की, चपटी और भीतर को मुडी हुई होती है। यह टुकडे ६ इन्च चौडे ४ इन्च लम्बे आधा इन्च मोटे होते है। यह बाहर से मटमैली सफेद भीतर से गुलाबी रंग की होती है। तोडने पर सरलता से टूट जाती है और टूटने की जगह गहरे लाल रंग की दिखाई पडती है। अन्तर छाल सौत्रिक तन्तुओ से बनी होती है। इसमे अर्जुनीन, अर्जुनेटिन, लैक्टोन, और टैनिन का भाग पाया जाता है।

रस—कषाय।

गुण—लघु, रूक्ष।

विपाक—कटु।

वीर्य—शीत।

प्रभाव—हृद्य, रक्तस्तम्भक है।

वीर्य कालावधि—२ वर्ष तक।

अश्वगंधा (वनौषधि विशेषांक प्रथम भाग पृष्ठ २८२)

नाम - अश्वगधा, असगध।

शुद्ध द्रव्य—असगध, ले०—वियानिआ सोम्नीफेरा (Bithania Somnifera Dunal)

कुल—कण्टकारी-कुल। (Solanaceae)

गण—चरक—बृंहणीय-मधुरस्कध

इसके मूल-पत्र एव बीज तथा क्षार का प्रयोग किया जाता है। मात्रा—मूल—३से ६ ग्राम।

मिलावट वाले द्रव्य - असगध की तरह दूसरी जाति "वियानिया कोगुलास" की जडे भी मिली रहती है। खेती करने मे असगध बो देने पर इसके पौधे निकलते है। इनकी जडे मृदु और मोटी होती हैं। मूली की तरह इनकी जडे मोटी और १२ इन्च तक लम्बी होती है। सूखने पर अंगूठे की तरह मोटाई से पेन्सिल की तरह मोटाई मे हो जाती है। पुष्पित होने से पूर्व ही इनको खोद लेते हैं।

(१) इसकी खेती करके जडका संग्रह होता है। जडे ऊपर मोटी नीचे क्रमश पतली होती है। बाजार मे यह आधा इन्च व्यास की मोटाई तक २-२॥ इन्च लम्बी पीताभ श्वेत पायी जाती है जो मसृण, बाहर मे हल्का पीताभ,

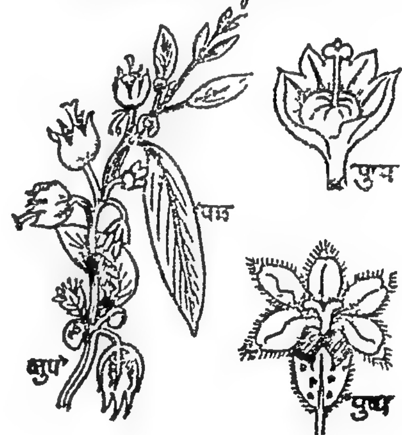
घूमर, तोडने पर श्वेत और सरलता से टूट जाती है ।

(२) खेती वाले असगध मे जगली असगँव की जड मिली होती है । जो तोडने पर टूटती नही । अधिक पीली होती है ।

परीक्षा–असगध के टुकडे वाजार मे १-२।। इन्च लम्बे मोटाई मे आधी इन्च तक होते हैं । बाहर से यह श्वेत पीत वर्ण का भीतर से तोडने पर सफेद मिलता है - यह खेती कर एकत्र किया जाता है । वाजार मे मिलने वाला असगध खेती किए हुए असगध की जड है जो पुष्पित होते ही उखाड कर सग्रह कर लिया जाता है । इस समय यह मृदु सूत्रो से युक्त होता है । फल और बीज आने पर जडो मे सौत्रिक अ श अधिक हो जाते है, और यह सरलता से टूट नही सकता । खेती किए हुए असगध की मूल मूली की तरह शक्वाकार ऊपर से नीचे की तरफ पतली होती जाती है । इसकी लम्वाई १-१।। फुट और मोटाई १-१।। इन्च तक जाती है । बाजारो मे मिलने वाले असगध मूल की मोटाई चौथाई से आधा इन्च तक होती है । लम्वाई मे ४-८ इन्च तक होते है । अधिकाश मूल दो इन्च लम्बे टुकडो मे पाया जाता है ।

रस—तिक्त, मधुर ।
गुण—लघु-स्निग्ध ।
विपाक—मधुर ।
वीर्य—उष्ण ।
प्रभाव—हृद्य-बल्य-स्तन्य-शुक्रल ।
वीर्यकालावधि—२ वर्ष तक ।





अशोक (वनौषधि विशेषाँक प्रथम भाग पृष्ठ २७४)

नाम—अशोक-मधु पुष्प-रक्त पल्लव । लै०—सेरेका इन्डिका । (Saraca Indica linn), Zonesia Ashoka (जानैसिया अशोका) ।

कुल—शिम्बिवर्ग ।

परिचय—यह एक प्रकार का वडा वृक्ष होता है जिसके त्वक् का प्रयोग किया जाता है।

मिलावट व प्रतिनिधि—रक्त- अशोक की छाल का प्रयोग औषधि के निमित्त होता है । इसकी पत्तिया नवीन ताम्र वर्ण की होती है । यह अधिकतर पूर्वी वगाल आसाम व वर्मा के अराकान और टेरासरीन पहाडियो पर होता है । दक्षिण भारत के मालावार और उत्तर प्रदेश मे कुमाऊँ के क्षेत्र मे मिलता है । यह १२-१५ फीट तक ऊँचा होता है । इसकी छाल औषधि के प्रयोग मे आती है । इसके वदले मे निम्न द्रव्यो का प्रयोग प्रतिनिधि स्वरूप या मिलावट के रूप मे किया जाता है—

१ देशी अशोक की छाल । देशी अशोक का नाम पोलीएल्थिया लाङ्गीफोलिया ।

२ कचनार की छाल ।

३ वट प्ररोह की छाल ।

इन तीनो के छाल अशोक के वदले मे प्रयोग होते

हैं। व्यापारी इसकी मिलावट इसलिये करते हैं कि इन की छाल रक्त अशोक की छाल से मिलती है। अत सरलता से मिलावट हो जाती है।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—१. रक्त अशोक की छाल पतली होती है। इसके काण्ड का छाल कुछ मोटा लाल रग का होता है। अधिकतर इसकी पतली-पतली टहनियो की छाल ही मिल पाती है। यह लाल रग की पतली मुडी हुई भीतर को सिकुडी रहती है।

२ देशी अशोक के पेड वहुत ऊचे और बहुत मोटे होते हैं। इसलिये इसकी छाल मोटी, फटी हुई और खुरदरी होती है। भीतर यह लाल रङ्ग की और सौत्रिक तन्तुओ से पूर्ण होती है। यद्यपि यह अशोक नही है फिर भी उत्तर प्रदेश और बिहार मे इसे अशोक कहते हैं। इसका सस्कृत नाम आशुपल्लव है।

३ लाल कचनार की छाल पतली होती है। और इसे लाल रङ्ग से रङ्ग देते हैं।

४ वट प्ररोह, वट की शाखाओ की छाल निकालकर उसे रङ्ग देते है। अशोक की छाल इन छालो से पृथक वर्ण की भिन्न-भिन्न मोटाई और लम्बाई मे होती है। इसे पहचाना जा सकता है।

रस—कपाय-तिक्त।

गुण—लघु-रूक्ष।

विपाक—कटु।

वीर्य—शीत।

प्रभाव—रक्त शोधक, गर्भाशय सिरा विस्फारक और रक्त रोधक होता है।

वीर्यकालावधि—त्वचा १ वर्ष (पुष्प ६ मास तक)।

अहिफेन (वनौषधि विशेषांक प्रथम भाग पृष्ठ १८१)

नाम—अहिफेन, अफीम।

शुद्ध द्रव्य—अहिफेन, अफीम (निर्यास)।

लै०-(१) पापावर सोम्नीफेरम लिन (Papaver Somniferum Linn) (२) फल या डोडा,-खसफल, हि पोस्त, (३) लै. पापावेरिस्कैप्सूलिस (Papaveris Capsulee) बीज खसखस (३) क्षीर या निर्यास, अफीम।

इंग्लिस—ओपियम (Opium)

कुल—अहिफेन-कुल

इसके फल बीज और क्षीर का प्रयोग औषधार्थ होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—पोस्ता के पुष्प भेद से दो भेद है लाल और काला। इसकी खेती की जाती है। इसके पौधे ३, ४ फीट ऊँचे होते है। ऊपर एक पुष्प लगता है। पुष्प के वाद एक फल लगता है, इसी पर चीरा लगा कर उसका रस निकालते हैं और सूखने पर सग्रह होता है। इसका ही नाम अफीम है। यह अफीम कीमती और काले रग का होता है स्वाद मे वहुत तिक्त।

मिलावट—(१) अफीम मे रसौत मिलाकर उसका भार बढाकर वेचते है। यह भारतीय या देशी अफीम है। (२) तुर्की अफीम, (३) यूरोपियन अफीम और (४) फारसी अफीम।

इस प्रकार इसके कई भेद वाजार मे मिलते है।



अहिफेन

अफीम भारतीय वाजार मे घनाकार वर्फी के रूप मे जमाकर वेचे जाते है। इसके ९०० ग्राम वजन के भी घनाकार टुकड़े आते हे। यह टीसू पेपर या प्लास्टिक मे लपेट कर रखे जाते हैं। सूखी अफीम भगुर होती है। जरा भी नमी पाने पर यह मुलायम हो जाती है।

रग—काला-गहरा-भूरा होता है। स्वाद तिक्त। इसमे १० प्रतिशत मार्फीन होता हे।

परीक्षा -(१) १।। ग्रेन अफीम को ७५ बूंद जल मे गरम कर घोलिये। इसको छानकर कुछ बूंद फेरिक क्लोराइड की डालिये। रग गाढा बैगनी और लाल होगा।

(२) ३ ग्रेन अफीम का चूर्ण लेकर उसमे ५ सी.सी. क्लोरोफार्म मिलाइये, १० मिनट तक उसे हिलाइये ताकि मिल जाय, इसमे कुछ बूंद अमोनिया द्रव की डालिये। उसे काच की पट्टी पर फैला दीजिये। क्लोरोफार्म उड जायेगा। भूरा सफेद रग रह जायेगा। इस पर १ बूंद फार्मेल्डिहाइड डालिये और ५ बूंद गधकाम्ल डालिये। गहरा लाल रग दिखाई पडेगा।

रस—तिक्त।

विपाक—कटु।

गुण—रूक्ष—लघु—सूक्ष्म और विकाशी।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—मादक। वेदनास्थापन, ग्राही।

वीर्यकालावधि—ठीक प्रकार संरक्षित रखने पर कई वर्ष तक।

आकारकरभ (वनौषधि विशेषांक प्रथम भाग पृष्ठ ३२)

नाम—आकारकरभ।

असली शुद्ध—पाइरेथ्रम रेडिक्स (Pyrethrum Radix) अकरकरा।

कुल—मुण्डीकुल (Compositae)

मूल—१ मोटी, २ पतली भी मिलती है।

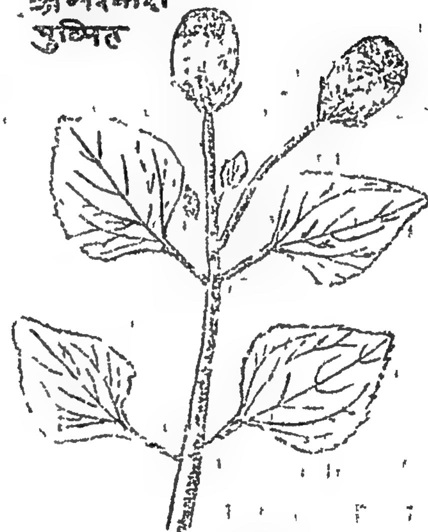
इनका ही प्रयोग आयुर्वेद की औषधि मे होता है।

नकली-अशुद्ध—पाइरेथ्रम की जाति के अन्य पौधो के मूल नकली, असली मे मिला कर आती है। वर्ग मे विवर्ण मिलता जुलता वर्ण, पर क्रिया मे अल्पता रहती है।

परीक्षा—१-आकार—हाथी के शुड की तरह ऊपर मोटा नीचे पतला होने वाला मूल है।

कर्म—अल्पवल्य।

तीक्ष्ण—क्रम-अल्प समय तक।



२—जो ६ इन्च मे ३-४ लम्बे टुकडे के रूप मे मिलता है। इसकी मोटाई ताजा रहने पर १ इन्च सूखने पर पौन इन्च गोल बेलनाकार। झुर्रीदार—रूक्ष गात्र पर मूल के चिह्न।

३—तोडने पर सरलता से टूट जाती है। मूल के शिखर पर रोए।

४—तोडने या गीला कर छेद लेने पर केन्द्र मे बाहर जाती रेखायें रश्मिवत दिखाई पडती है। मूल त्वक ¼ इन्च मोटी।

५—रग—बीच मे श्वेत—पश्चात पीत व श्याम रचना भूरापन श्याम बाहर मे।

६—रस—जिह्वा पर चिमचिमापन लालास्राव नमकीन स्राव होगा।

७—गन्ध—विशिष्ट गन्ध हरित रहने पर, सूखने पर निगन्ध, तोडने पर सामान्य गन्ध।

८—स्पर्श—रूक्ष, खुरदरा—झुर्रीदार होने से।

वीर्य कालावधि—सुरक्षित रखने पर ५—७ साल तक

गुण—रूक्ष-तीक्ष्ण-लघु।

रस—कटु, विपाक-कटु, वीर्य—उष्ण।

कर्म वात कफ नाशक—नाडीबल्य—वेदना स्थापक, कामोद्दीपक।

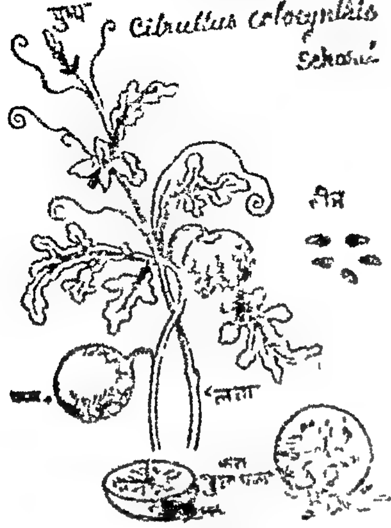
शुद्ध—अकरकरा मे तीक्ष्णता अधिक देर तक।

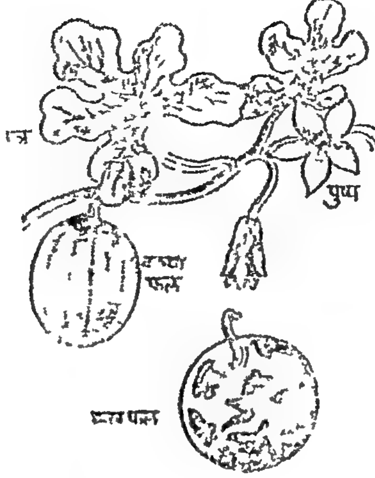
इन्द्रायण (वनौषधि विशेषांक प्रथम भाग पृष्ठ ४१५ से ४३६ तक)

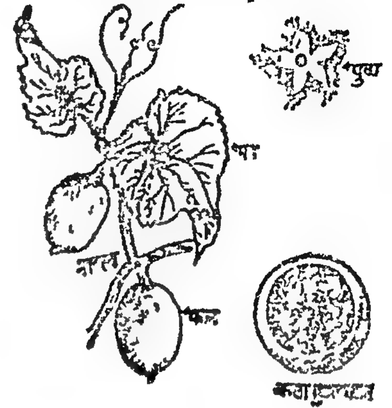
नाम—इन्द्रायण, इन्द्रवारुणी, हि० इनारुन।

शुद्ध द्रव्य—इन्द्रायण, इन्द्रवारुणी,

ले०—सिट्रुलस कोलोसिन्थिस। (Citrullus colocynthes)





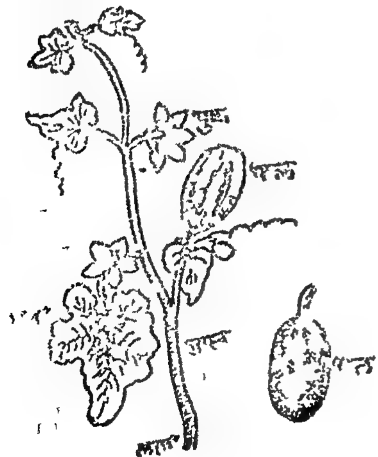


कुल—कर्कटी कुल (Cucurbitaceae) ।

नोट—यह एक फैलने वाली लता होती है, जिसके मूल और फल का उपयोग औषधि के लिए होता है ।

मिलावट वाले द्रव्य—बाजार मे इन्द्रायण की मूल सुखाकर बेची जाती है । इसके फल पकने पर पीले वर्ण के लम्बगोल होते है । फलो को काट और सुखाकर कटे टुकडो के रूप मे आते है । इसके साथ निम्न फलो की मिलावट होती है—

(१) कण्टकी इन्द्रायण के पीले फल (२) बडे फल वाले इन्द्रायण के कटे फल । (३) हिंसा (हैस) के फल । (४) कडुई ककडी के फल ।



परीक्षा—(१) बाजार मे इन्द्रायण के पक्व फल के जो टुकडे आते हैं, वे गहरे-पीले नारगी रग के बाहर से होते है । फलत्वक १ मि. मी. मोटा गहरे पीले रग का होता है । पुराना होने पर मटमैला श्वेत हो जाता है । इनमे बीज चिपके हुए होते हैं । बीजो का आकार कुछ अण्डाकार चपटा सफेद और पीला होता हे । बीज त्वक पीताभ,श्वेत सा गाढे भूरे रग का । यह स्वाद मे अतितिक्त होता है ।

(२) मिलावट मे ककडी के जो बीज होते है, वे बहुत छोटे और एक साथ बहुसख्यक होते है ।

(३) कण्टकी इन्द्रायण के फल के ऊपर छोटे छोटे उभार होते हे । बडी इन्द्रायण का गोडूम्बा के फल बडे बडे व हरे रहने पर आकार मे छोटे खरबूज की तरह होते है । ये काटकर सुखा देने पर छोटी इन्द्रायण से मिलते जुलते टुकडो से हो जाते है ।

हिंस्रा के फल छोटे-नीबू के आकार से लेकर बडे नीबू के आकार तक पीले वर्ण के होते है ।

रस—महातिक्त होता है ।

गुण—लघु-रूक्ष-और तीक्ष्ण ।

विपाक—कटु ।

वीर्य—उष्ण ।

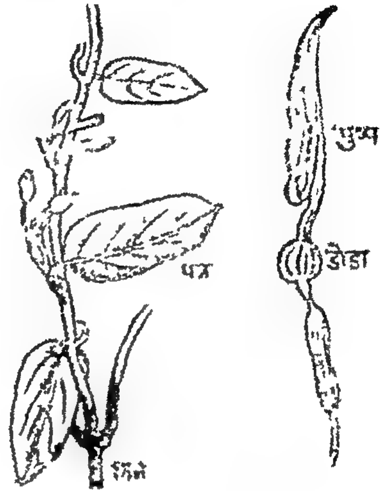
कर्म—तीव्र रेचक । कृमिहर, शोथघ्न, गर्भाशयोत्तेजक होता हे ।

वीर्य कालावधि—इन्द्रायण के फल १ वर्ष तक ।
मूल—२ वर्ष तक ।

ईश्वरमूल (वनौषधि विशेषांक प्रथम भाग पृष्ठ ४७०)

नाम—ईश्वर मूल, ईसरौल ।
शुद्ध द्रव्य—ईश्वर मूल, इसरौल ।
लै०—आरिस्टोलोचिया इण्डिका
(Aristolochia Indica linn)
कुल—ऐश्वर्यादि कुल (Aristolochiaceae)

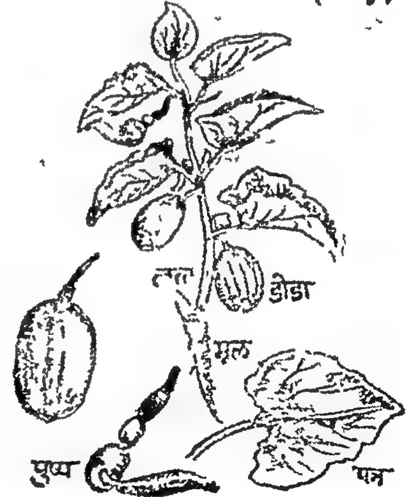
इसके मूल और काण्ड का प्रयोग औषधि के लिए होता है ।



मिलावट वाले द्रव्य—ईश्वर मूल के साथ अन्य जातियो के मूल और कांड भी मिले हुए होते हैं । (१) कीडामारी (अरिस्टोलोचिया ब्रैक्टाटा) (२) अरिस्टोलोचिया टेगाला ।

परीक्षा—ईश्वरमूल और काण्ड के टुकडे ३-४ इंच लम्बे और आधा इन्च मोटे और चौडे होते है । सफेद काण्ड त्वक बाहर से सफेद पीताभ भूरे रग के होते हैं जिससे लम्बाई की दिशा मे कई ऊँची उठी हुई रेखायें होती है और जगह-जगह गाठे दिखाई देती है । इसकी मूल बाहर मे मुलायम और बादामी रग की बहुत लम्बी अंगुष्ठ से भी अधिक मोटी होती है । स्वाद अत्यन्त तिक्त होता है ।

रस—तिक्त ।
गुण—लघु-रुक्ष-तीक्ष्ण ।
विपाक—कटु ।
वीर्य—उष्ण ।
प्रभाव—विषघ्न-वेदनास्थापन, स्वेद जनन—मूत्रल ।
वीर्यकालावधि—६ मास से १ वर्ष तक ।



ईषद् गोल (वनौषधि विशेषांक प्रथम भाग पृष्ठ ४६२)

नाम—ईषद गोल, ईषद् गोल ।
शुद्ध द्रव्य—ईषद गोल, ईसब गोल,
लै० इस्पागुला, प्लैन्टेगो ओवाटा
(Plantago ovata Forsk)
कुल—ईषद्गोलादि कुल (Plantagoniaceae)

प्राप्तिस्थान-पजाब, सिंध-अजमेर-सिद्धपुर । इसके बीज और भूसी का प्रयोग औषधि के लिए होता है ।

मिलावट वाले द्रव्य—ईषद गोल के साथ इस जाति के पौधो के बीज जो ईषदगोल की आकृति मे मिलते है, मिलाया जाता है । (१) प्लान्टेगो एम्प्लैक्सिकाडलिस (२) वातघ्न के बीज प्लान्टेगो मेजर (३) प्लान्टेगो लैन्सियोलाटा (४) तुख्म मलाङ्गा-सैल्विया इजिप्टिका (५) विदेशी ईषदगोल मे प्लैन्टेगो सिलियम तथा प्लैंटेगो आर्नेरिया इनके बीज मिलते जुलते होते हैं ।

परीक्षा—ईपवगोल के बीज नौकाकार कडे भूरे वर्ण के होते है। फल के बीच मे एक छोटी खात होती है। यह बाहर से गुलाबी मटमैले श्वेत वर्ण का होता है। इनका तल उन्नतोदर तल के मध्य मे लालिमा लिए भूरे रग का होता है। नतोदर तल मे मध्य मे नाभी का भाग होता है। बीज का स्वाद मधुर लोआवदार होता है। कम से कम सौ बीजो का भार १७ ग्राम होता है।

(२) ईपवगोल की भूसी–ईसबगोल के बीजो के ऊपर पतली चमकदार श्वेत झिल्ली होती है। इसे अलग करके बेचते है। यह भीगने पर लोआवदार हो जाती है।

रस—मधुर

गुण—स्निग्ध-गुरु पिच्छिल।

विपाक—मधुर।

वीर्य—शीत।

प्रभाव—स्नेहन मार्दवकर।

वीर्य कालावधि—बीज और भूसी की २ वर्ष तक।

उपकुञ्चिका (बनौषधि विशेषाङ्क द्वितीय भाग पृष्ठ १७६)

नाम—उपकुञ्चिका, मगरैला।

शुद्ध द्रव्य—उपकुञ्चिका, मगरैला।

लै०—नाईगेला सैटिवा लिन (Nigella Sativa Linn), बीज–कलौजी–मगरैला।

कुल—वत्सनाभ-कुल (Ranunculaceae)।

मगरैला की खेती बिहार पजाब मे विशेष होती है। बाहर से यह सीरियासे मगाया जाता है। भारतवर्ष में मगरैला की खेती होती है। इसके बीज का प्रयोग मसाले के लिए होता है। इसमे एक प्रकार की सुगन्धि होती है।

मिलावट वाले द्रव्य—मगरैला की खेती होने से मिलावट की कम संभावना है। फिर भी इसके साथ लहसुन के बीज की मिलावट हो सकती है। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित बीज भी रङ्ग कर मिला दिये जाते है—

(१) भागरे के बीज (२) सुदाव के बीज

नोट—कुछ लोगो का यह विचार है कि मगरैला लहसुन के बीज हैं, किन्तु यह विचार निराधार है।

परीक्षा—मगरैला के बीज तिकोने गहरे भूरे या काले रङ्ग के होते है। इनका बीज २॥ से ३ मि०मी० लम्बा २ मि०मी० चौडा होता है। बीज का बाह्यतल खुरदरा होता है और इन पर धूल जैसी वस्तु जो तीक्ष्ण गन्ध वाली होती है। जिसका गन्ध तीक्ष्ण होता है। सूंघने पर नाक की भीतरी कलाए जलने लगते है। इनकी गन्ध यूकेलिप्टस तैल की तरह या तीक्ष्ण नीबू की तरह होती है। स्वाद मे यह तीक्ष्ण और चरपरे होते है। इनकी खेती नदियो के किनारे बलुई मिट्टी मे या दुमट मिट्टी मे अधिक उपजाऊ होती है। पौधा सौफ की तरह २ फीट तक ऊँचा होता है। पुष्प श्वेत नीले वर्ण के होते है। इनमे २-३ अगुल लम्बी फली लगती है। इनमे तिकोने बीज भरे रहते है।

उपकुञ्चिका (मगरैल)
Nigella sativa Linn.



रस—तिक्त, कटु।

गुण—हृद्य, लघु, तीक्ष्ण।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—दीपन, पाचन, वेदनास्थापन।

वीर्यकालावधि—५ वर्ष तक।

एरण्ड (वनौषधि विशेषाङ्क छठा भाग पृष्ठ ६६)

नाम—एरण्ड, रेडी ।

शुद्ध द्रव्य—एरण्ड, रेडी ।

लै०—रीसीनुस कोम्यूनिस (Ricinus Communis Linn) ।

कुल—एरण्ड-कुल (Euphorbiaceae) ।

यह एक साधारण ऊँचाई का वार्षिक पेड है, जो ८-१५ फीट ऊँचा होता है। औषधार्थ इसके मूल-त्वक्, पत्र, फल, बीज तथा तैल का प्रयोग किया जाता है।

मिलावट वाले द्रव्य—यह सर्व सुगम वृक्ष है, किन्तु इसके मूल और तैल में बडी मिलावट होती है। मूल के साथ व्याघ्र एरण्ड मूल, नागदन्ती मूल, अर्कमूल और कार्पास मूल का मेल किया हुआ पाते है।

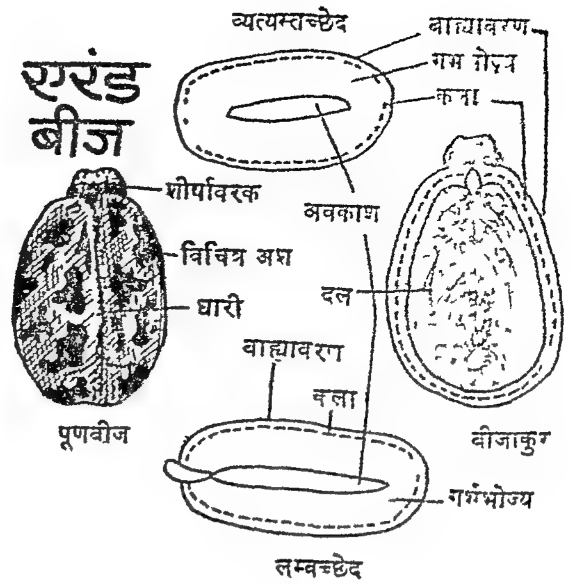
तैल—इसके बीज से ४५% तैल और २% विजातीय से सेन्द्रिय तैल प्राप्त होता है। तैल का आपेक्षिक गुरुत्व २० शतांश पर ०.९५३ से ०.९६४ मिलता है। इसका एसिड वेल्यू अधिकतम ४ और आइडिन वेल्यू अधिकतम ८२-९० होता है।

बीज मे स्थिर तैल रेशमीन श्वेतसार, विच्छिल द्रव्य और शर्करा मिलते है।

अम्ल—इनमें वसाम्ल ऋपिनोलिकाम्ल, ओलिकाम्ल, लिनोल्निकाम्ल, स्टेरिकाम्ल पत्र काण्ड-मूल और बीज मे पाये जाते है। इसमें अलसी का तैल मिला देते है। चूंकि इसका तैल गाढा होता है इसलिये इसमें सस्ते गाढे तैल मिलाये जाते है।

परीक्षा—मूल-एरण्ड मूल १-१॥ फीट लम्बी १-२॥ इन्च व्यास मे पायी जाती है। सूखने पर इस पर झुर्रियाँ लम्बाई की दिशा मे पाई जाती हैं। मूल सामान्य रूप से ऊपर मोटी, नीचे पतली खुरदरी लोमस होती है। सूखने पर ऊपर मटमैली सफेद, भीतर काष्ठ श्वेत होता है।

काण्डत्वक्—स्निग्ध, हरित, श्वेत, बीच मे सफेद लाल



रहते है। काण्ड पर पत्र चिह्न भी होता है। फल—बडे कण्टकयुक्त प्रत्येक फल मे ३ बीज सम्मिश्रित होते है। यह स्फोटी फल है। फल के ऊपर कंटकयुक्त हरित आवरण होता है। ये फल बडे-बडे गुच्छों मे लगते हैं, जो सूखने पर फटकर अलग हो जाते हैं। बीज—बीज चमकदार लाल या काले, लाल वर्ण के चिह्नों से चित्रित होते हैं। बीज के शिखर पर एक सफेद टोपी लगी रहती है। बीज ऊपर से उन्नतोदर भीतर त्रिकोणाकार होते हैं। ऊपर के आवरण को तोडने पर भीतर श्वेत मज्जा मिलती है।

रस—मधुर, कटु, कषाय ।

गुण—गुरु, स्निग्ध ।

विपाक—मधुर ।

वीर्य—उष्ण ।

प्रभाव—स्नेहन-भेदन् ।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष बीज का, ५ वर्ष तैल ।

घृत कुमारी या एलुवा (वनौषधि विशेषांक द्वितीय भाग पृष्ठ ४६८)

नाम—घृत कुमारी, ग्वारपाठा ।

शुद्ध द्रव्य—घृत कुमारी, ग्वार पाठा ।

लै—एलोय वीरा-(Aloe bera) या एलोय बर्बाडेन्सि (Aloe barbadensis)

कुल—पलाण्डु-कुल (Liliaceae)

घृत कुमारी का क्षुप होता है और इसकी पत्तियाँ रसदार मोटी होती है। इसके पत्र, पुष्पदण्ड व सार का प्रयोग किया जाता है। कन्यासार का नाम मुसब्बर

अथवा एलुवा है। मुसब्बर का निर्माण मैसूर और काठियावाड के जफरावाद में होता है। इसका आयात अरब और अदन से होता है।

मिलावट वाले द्रव्य-(१)कुमारी की कई जातियाँ हैं। भारतवर्ष अफ्रीका, यूरोप-अरब आदि मे खूब पैदा होता है। इसकी छोटी से लेकर बडी कई जातिया होती हैं। यह पर्याप्त मात्रा मे मिलता है, इसलिए मिलावट की सभावना नही होती।

(२) कन्यासार या मुसब्बर—इसमे कई प्रकार की मिलावट की सभावना है, विशेष कर काला कत्था, बालू-रेत और लोहे के बुरादे। इसके अतिरिक्त घृत कुमारी की जाति के अनुसार इससे निर्मित मुसब्बर मे भी अन्तर होता है। घृत कुमारी की १६० जातियाँ पायी जाती हैं। जैसे (१)—पूर्वी अफ्रीका का एलुवा (२) जजीबार का—एलुवा (३) केप का—एलुवा (४) पश्चिमी द्वीप समूह का एलुवा। इन सबकी मिलावट होती है।

परीक्षा—प्राय प्रत्येक देश मे एलुवा सग्रह करने की विधि एक ही है। यथा जमीन के भीतर २० इन्च लम्बा और ६ इन्च गहरा गड्ढा खोद कर उसमे बकरे का चर्म या कैनवास का टुकडा रख देते हैं और इसके ऊपर ताजी कटी हुई पत्तियो को इस प्रकार एक दूसरे के ऊपर रख देते हैं कि पत्ते का चौडा भाग गड्ढे की तरफ रहे। एक बार मे २ या ३ सौ पत्तो की तर ऊपर रख देते है। धीरे धीरे रस चूकर गड्ढे मे एकत्र होता है। अच्छे मौसम मे सारा रस ६-८ घन्टे मे नितर जाता है। इसके बाद इस रस को एक टीन मे डाल कर मद आँच पर पकाते हैं। धीरे-धीरे इसको गाढा होने देते हैं। इसको बराबर चलाते रहते है और बीच-बीच मे उठा कर देखते रहते हैं। जब इसकी चासनी गाढी हो जाती है और पानी मे डालने पर जम जाती है एव सरलता से टूट जाती है तो इसे ठीक समझते है और भिन्न भिन्न प्रकार के डिब्बो मे सग्रह कर लेते है।

परीक्षा—१ ग्राम औषधि को १०० ग्राम पानी मे उबालते हैं और उसे छान लेते है। इन पर भिन्न २ रसो की प्रतिक्रिया भिन्न प्रकार की होती है—

१—शार्टेन की परीक्षा- छना हुआ विलयन ५ मि० ग्राम मे २ ग्राम सुहागा मिलावे। तब तक ताप दे जब तक घुल न जाय। इसकी कुछ बूदे जल से भरे पात्र मे डाले, उसमे हरा भाग दिखाई देगा।

रस—कटु।
गुण—लघु-तीक्ष्ण।
विपाक—कटु। वीर्य-उष्ण।
प्रभाव—आर्तवजनन-वेदनाहर।
वीर्य कालावधि—२-५ वर्ष तक।

कटुकी (वनौषधि विशेषांक द्वितीय भाग पृष्ठ २६०)

नाम—कटुकी, कुटकी।

शुद्ध द्रव्य—कटुकी, कुटकी।

लै०—पिकरोइजा कुर्री (Picrorhiza Kurroa Royle)

कुल—कटुको कुल (Scrophulariaceae)

परिचय—यह १००००—१५००० फीट ऊँचाई पर होने वाली क्षुप की मौसमिक काड है, विशेष कर बाजारो मे सुखाकर बेचा जाता है।

मिलावट वाले द्रव्य—कुटकी के साथ इस जाति के पौधो की जडे भी कुटकी की तरह होती है। इनकी मिलावट की जाती है। जैसे न० १—जनसियाना कुर्रो या भारतीय कुटकी। न० २—त्रायमाणा की जड न० ३—वालसेनिया की जडे। इनको नकली कुटकी कहते है।



परीक्षा—न० १—कटुकी की भौमिक काडो को खोदकर एक जगह एकत्र कर ढेर लगाते हैं। इसके ऊपर मिट्टी का परत चढा देते है। ७-८ दिनो के बाद यह अपनी उष्मा से परिपक्व होकर श्वेत काड पीली हो जाती है। इसको सुखा देते है, और चार अंगुल के टुकडे काट देते है। यह पीले वर्ण की भगुर बन जाती है।

न० २—भौमिक काडो को सुखाकर जो भौमिक कांड, बिना फर्मेन्ट किए बनते हैं, वे ऊपर से सफेद होते है।

न० ३—कुटकी के तोटने पर इसमे पाँच बिन्दु दिखलाई पडते है।

न० ४—ताजी कटुकी स्वाद मे मधुर और सूखने पर कटु हो जाती है। इसका बाह्य त्वक् श्यावधूसर वर्ण का एक मि० मी० मोटा होता है। आभ्यन्तर त्वक गहरे भूरे वर्ण का २-४ मि० मी० का होता है। काष्ठ भाग श्वेत होता है और इसमे श्याव वर्ण की ५ रेखायें होती हैं।

कपूर कचरी (बनौषधि विशेषांक द्वितीय भाग पृष्ठ १२५)

नाम—कपूर कचरी, शटी।

शुद्ध द्रव्य—कपूर कचरी, शटी।

लै०-हेडिचियम् स्पिकेटुम्(Hedychium Spicatum Ham)

कुल—आर्द्रक कुल (Scitaminaceae)

नोट—प्रयोगांश-कन्दाकार मूल।

मिलावट वाले द्रव्य—कपूर कचरी की जाति के अन्य पौधो के मूल की मिलावट कपूर कचरी के नाम से की जाती है।

न० १—हेडिचियम् केरोनेरिया—इसके कन्द जमीन के भीतर दूर तक फैले होते है। इसके मूल का सग्रह कपूर कचरी के नाम मे किया जाता है।



परीक्षा—बाजार मे कर्पूर कचरी के गोल-गोल कतरीनुमा तिरछे काटे हुए टुकटे मिलते हैं जो व्यास मे आधा इन्च तक होते हैं। इसके ऊपर की त्वक भूरे लाल रग की होती है। भीतर का अन्तर वस्तु सफेद होता है। इसमें कर्पूर जैसी उग्र गध होती है। स्वाद मे तिक्त सुगन्वित और तीक्ष्ण होती हे। चीन से आये हुए कपूर कचरी के कटे हुए टुकडे बडे और अधिक सफेद होते है। इस पर त्वचा मोटी पायी जाती है। स्वाद मे तीक्ष्णता कम होती है।

रस—कटु तिक्त।
गुण—लघु-तीक्ष्ण।
विपाक—कटु।
वीर्य—उष्ण।
प्रभाव—शोथहर, शूलप्रशमन, कास-श्वासहर।
वीर्यकालावधि—१ वर्ष तक।

कबाबचीनी (बनौषधि विशेषांक द्वितीय भाग पृष्ठ १३०)

नाम—कबाबचीनी, ककोल, शीतलचीनी

शुद्ध द्रव्य—कबाब चीनी, ककोल।

लै०—कुबेबा फ्रूक्टस (Cubeba Fructus)

लता का नाम - पाइपर क्यूबेबा (Piper cubeba L. F.)

यह इस लता का फल है जो औषधार्थ प्रयोग होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—कबाबचीनी के परिपुष्ट शुष्क फलो के साथ कच्चे और निकृष्ट और सडे हुए फल मिला दिए जाते हैं।

परीक्षा—पानी मे डालने पर कच्चे सूखे व मडे फल तैरने लगते हैं। परिपक्व फल पानी मे डूब जाते हैं।

परीक्षा—कवावचीनी के फल काली मिर्च की तरह गोल और व्यास मे ४ मि०मी० के होते है। फल के साथ वृन्त लगा होता है। इसके ऊपर झुर्रियो का जाल सा होता है। फल के अन्दर एक गुठली होती है। गुठली के अन्दर एक वीज होता है। इसको रगडने से एक सुन्दर गन्ध आती है। चवाने पर चरपराहट और शीतलता का अनुभव होता है।

परीक्षा—फल के ऊपर या कवावचीनी के चूर्ण के ऊपर गन्धकाम्ल छिडकने पर वैगनी रग दिखाई पडता है। इसके फलो का सग्रह पूर्ण परिपक्व हो जाने पर ही होता है। रस मे एक उडनशील तेल होता है। फल और तेल मूत्रल होता है।

रस—कटु-तिक्त।
विपाक—कटु।
वीर्य—उष्ण।
प्रभाव—मूत्रल, मूत्र मार्ग शोधक।
वीर्य कालावधि—२ वर्ष तक।

कम्पिल्लक (वनौषधि विशेषॉक द्वितीय भाग पृष्ठ १४४)

नाम—मेलोटस फिलिपेनसिस (Mallotus Philippensis Muel) कवीला या कमीला, कम्पिल्लक।

शुद्ध द्रव्य—यह कवीला के वृक्षो का फलरज है। इसके फल का आकार बेर की तरह होता है। फल पर फल की ग्रन्थियो से लाल रग की धूल दानेदार बन जाती है। इनको सग्रह करके एकत्र कर लेते है। यह लाल रग का चूर्ण की तरह दानेदार द्रव्य होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—कमीला मे फलो के रज के अतिरिक्त फल के छिलके के सूक्ष्म कण भी मिले होते है। इसके अतिरिक्त लाल रग की वलुई मिट्टी आदि अपद्रव्य भी मिला देते है। ऐसे कमीला को जल मे घोलने मे मिट्टी आदि नीचे वैठ जाती है और इसमे भस्म की मात्रा भी अधिक होती है। कभी कभी सग्रहकर्ता वृक्ष के अन्य भागो से प्राप्त रज को भी मिला देते है। इसमें ईट के चूर्ण की भी मिलावट होती है।

परीक्षा—शुद्ध कवीला लालिमा लिए भूरे रग से लाल रग का सूक्ष्म दानेदार चूर्ण होता है, जो प्राय निर्गन्ध तथा स्वादरहित होता है। उक्त कवीला चूर्ण मे वास्तव मे लालिमा युक्त भूरे रग से पीत वर्ण की असख्य सूक्ष्म रोमश ग्रन्थियाँ (Glandulor bairs) होती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ग्रन्थि रहित सूक्ष्म लोम (Nonglandular bairs) भी होते है। कमीला शीतल जल मे अविलेय, उवलते जल मे अशत विलेय किन्तु ऐल्कोहल तथा ईथर मे पर्याप्त मात्रा मे घुलनशील होता है। ऐल्कोहोलिक अथवा ईथेरियल विलयन को जल मे डालने से तरवूज जैसी गन्ध (Melon-like odour) निकलती है। जल से भीगी हुई उंगली से कवीले को उठाकर सफेद कागज पर जोर से लकीर खीचने या रगडने से यदि वह मसृण वर्ति रूप मे परिणत हो जाय अथवा उस पर उज्ज्वल पीले रग का निशान हो जाय तो शुद्ध एव उत्कृष्ट अन्यथा मिश्रित या अशुद्ध कवीला समझना चाहिए। भस्म अधिकतम ६०%। अम्ल मे अविलेय भस्म (Acid insoluble ash) अधिकतम ६०%। ईथर मे विलेय अनुत्पत्त् (Non-volatile)। सत्व—कम से कम ६६%। (१०० अश तापक्रम पर तव तक गरम करें जब तक और अधिक देर तक गरम करने पर भार मे कमी न हो)। अग्नि परीक्षा—जलती हुई आग की लौ मे डालने पर वारूद की तरह जल उठता है और इसकी लपट गहरे लाल पीले रग की होती है।

कर्पूर (वनौषधि विशेषाङ्क द्वितीय भाग पृष्ठ ११३)

नाम—कर्पूर (Camphora)।

शुद्ध द्रव्य—असली वस्तु कपूर निम्न पेडो से निकाला जाता है—

१. सिनेमोमम कैम्फोरा, २ ड्राइओस वैलन आपस एरोमेटिक्स, ३ ओसिमम किलिमान एसवेरिकुन या कर्पूर तुलसी।

इनमे न १ का कर्पूर न १ से ही अधिक मात्रा मे निकलता है।

मिलावट वाले द्रव्य—असली कर्पूर के अतिरिक्त सिन्थेटिक कर्पूर भी बनाया जाता है जो ठीक कर्पूर की तरह होता है।

परीक्षा—१ कर्पूर एक सफेद रङ्ग का जमा हुआ सुगन्धित द्रव्य होता हे।

२. हवा मे रखने से उड जाता हे।

३ जलाने पर शीघ्र जल जाता हे और धुयेदार चमकीली लोह देता है।

रूप—१. श्वेत रङ्ग की दानेदार वर्गाकार जमाई हुयी टिकिया के रूप मे अथवा मोटी डयी कली के रूप मे मिलता है।

२. दानेदार चूर्ण रूप मे भी मिलता हे।

३ कँसूरी कपूर (फार्मूषा का कपूर)—अत्यन्त श्वेत, स्वच्छ, उज्वल और परकदार होता हे।

उत्तम कर्पूर—इसके रासायनिक विश्लेषण मे कम से कम ९६% $C_{10}H_{16}O$ होता है।

गन्ध-कर्पूर की एक विशेष प्रकार की उग्र गन्ध होती है। स्वाद मे तीक्ष्ण और सुगन्धित होता हे और मुह मे शीतलता का अनुभव होता हे।

घुलनशीलता—पानी मे कपूर कम घुलता हे किन्तु अलकोहल मे घुल जाता है। सालवेन्ट इथर, क्लोरोफार्म और वानस्पतिक तेलो मे शीघ्र घुल जाता है।

रस—तिक्त और कटु।

गुण—लघु, तीक्ष्ण, उष्ण।

वीर्य—उष्ण।

वीर्यकालावधि—चिरकाल।

मेल—पिपरमैन्ट, अजवाइन का सत्व, फेनोल नेक्थोल के साथ मिलने पर तेल बन जाता है।

कर्चूर (बनौषधि विशेषाङ्क द्वितीय भाग पृष्ठ ३४)

नाम—कचूर, कर्चूर।

शुद्ध द्रव्य—कचूर, कर्चूर।

लै०—कुर्कुमा जेडोरिया (Carcuma Zedoaria Roscoe)

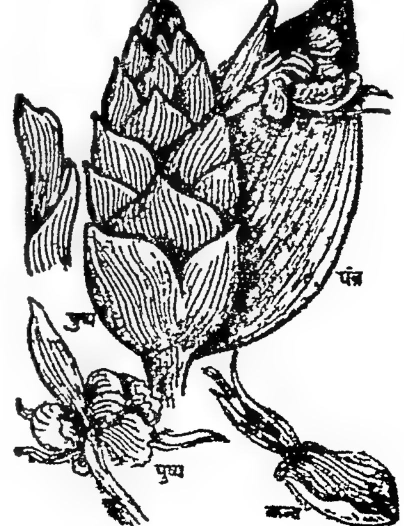
कुल—आर्द्रक कुल (Scitaminaceae)

इसके मूल कन्द का उपयोग औषधार्थ होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—कर्चूर की जाति के कई क्षुपो का कन्द मिला दिया जाता है। जो कचूर स्वाद मे मधुर और अल्प गन्धी होता है, वह असली कचूर नही है। इसका एक बड़ा भेद भी पाया जाता है, जिसे नर-कचूर या काली हल्दी (हिं० गु०) तथा बगला मे काली हलदर कहते है। इसका लैटिन नाम (१) कुर्कुमा सेसिया (Curcuma Caesia Roxb) हे। नर कचूर के पौधे बगाल मे प्रचुरता से जगली रूप मे पाये जाते हे, और वहा इसकी खेती भी की जाती है। भारतीय बाजारो मे इसका आमद मुख्यत बगाल से ही होता है। लम्बा कन्द नर कचूर एव गोलगाठदार कन्द मादा कचूर के नाम से पुकारा जाता है। किन्तु बाजार मे दोनो ही मिश्रित रूप से मिलते है। ताजी जड प्राय हल्के पीले रग की होती है, किन्तु बाजारो मे आने वाले कन्द पानी मे उबाल कर







सुखाये हुये होते है, जिससे इनके रग मे काफी अन्तर आ जाता है। बाजार मे आने वाला नर कचूर बाहर से गाढे भूरे रग का तथा अन्दर भूरापन लिये काले रग का होता है। कभी-कभी समूचे कन्द के स्थान मे गोल-गोल काटे हुये कतरे मिलते है जो काले रग के न होकर मटमैले पीले रग के होते हैं। यह गुण कर्म मे नर कचूर से मिलता जुलता होता है।

परीक्षा—कर्चूर के ताजे कन्द अदरख की तरह बाहर से श्वेत और भीतर श्वेत-पीत रग के कपूर के गन्ध से मिलते जुलते गन्ध वाले होते हैं। इसकी बडी और मोटी गाठ हल्दी की तरह आकार प्रकार मे परन्तु श्वेत होती हैं। सूखने पर इनके कटे हुये टुकडो का रग ईषत् पीत श्वेत होता है। ये दो प्रकार के बाजार मे मिलते हैं—

१ आधा इन्च से छोटे छोटे कटे टुकड़े जो गन्ध मे तीक्ष्ण होते हैं।

२ १ इन्च चौडे कटे-टुकडे जो सफेद श्वेत और मटमैले होते है। कम सुगन्ध वाली इनके अतिरिक्त समूचे कन्द भी सूखे हुये शुण्ठी की तरह पाये जाते है। तोडने पर कठिनाई से टूटते है। टूटे स्थल के कारण श्वेत ईषत् पीत होता है। इसमे कर्पूर जैसी गन्ध होती है।

रस—कटु-तिक्त।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

गुण—लघु, तीक्ष्ण।

प्रभाव—वेदनास्थापन, शोथहर, श्वासकासहर।

वीर्यकालावधि—२-५ वर्ष तक।

कलिहारी (वनौषधि विशेषाङ्क द्वितीय भाग पृष्ठ १७०)

नाम—कलिहारी, लाङ्गली।

शुद्ध द्रव्य—कलिहारी।

लै०—ग्लोरिओसा सुपर्बा (Gloriosa Superba)

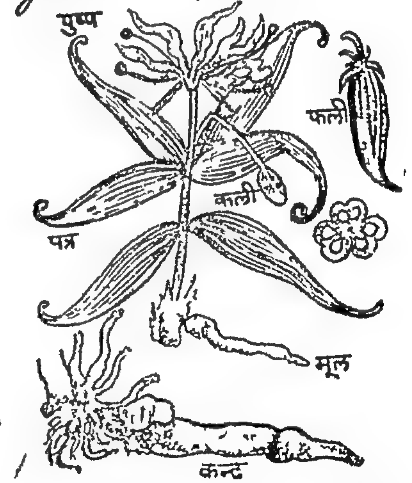
कुल—पलाण्डु कुल (Liliaceae)।

कलिहारी एक आरोही लता है। उसके नीचे का कद औषधार्थ प्रयोग होता है। कन्द का ही प्रयोग औषधि मे किया जाता है।

मिलावट वाले द्रव्य—(१) यह अति सुलभ औषधि है। इसका कद गोल चपटा ७-८ इन्च लम्बा होता है।

(२) कोई-कोई उसमे केमुक की जड (कास्टस स्पेसिओसस) के भौमिक काण्ड का ग्रहण भी कलिहारी के नाम मे करते है।

परीक्षा—कलिहारी की लता-फूल और फल लगने के बाद स्वय सूख जाती हैं और उसके काण्ड झर जाते हैं। पुन दूसरे साल उसमे से कद निकलता है और शीत ऋतु के अन्त मे सूख जाता है। तब इसके कद सग्रह किये जाते हैं। कद मे विशेषता यह होती है कि लम्बे कद पर एक छोटा कद चिपका रहता है जिससे उसका आकार हल की तरह हो जाता है। जहाँ पर दोनो टुकडे जुडते है उस सधि स्थल के ऊपर के पृष्ठ पर एक गोलाकार चिह्न रहता है। सधि के अध पृष्ठ पर एक चिह्न होता है, जहाँ छोटी-छोटी जडे लगी रहती है। कद के



दोनो टुकडे सिरो की ओर कम चौडे और मटमैले सफेद रग के और शेष भाग बाहर से हल्की लालिमा लिए भूरे रग का होता है। भीतर की वस्तु तोडने पर सफेद होती है।

गध—हल्की कटु गध, स्वाद—कटु-तिक्त है।

रस—कटु-तिक्त।

गुण—लघु तीक्ष्ण।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—गर्भपातन।

काकड़ा सींगी (बनौषधि विशेषाङ्क द्वितीय भाग पृष्ठ २०२)

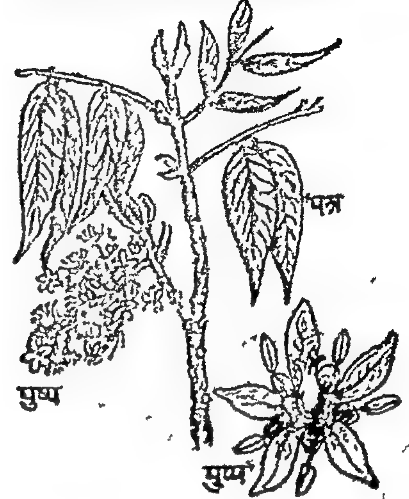
नाम—कर्कटसीगी, काकडासीगी ।

शुद्ध द्रव्य—कर्कट शृ गी, पिष्टेसिया खिन्जुक (Pistacia Khinjuk)

कुल—आम्रादि कुल (Anacardiaceae)

यह एक पेड की फली है, जिसे काकड कहते है। यह इसके पुष्प-मजरी पर एक प्रकार के कृमि जिसे हेमीटेरस कहते है द्वारा बनाया जाता है। इनका आकार सीग की तरह होता है जो १॥ इन्च से ६ इन्च तक लम्बे और चौथाई इन्च से ½ इन्च तक चपटे, काले और लाल रग के होते हैं।

तितिडीक जाति वाले वृक्षो मे भी इसी प्रकार के शृ गाकार वस्तु बनते हैं। इन्हे "ह्ृस सक्सिडेनियाँ" कहते हे। इनके शृगो का भी प्रयोग कर्कटसीगी के लिए होता है।



मिलावट वाले द्रव्य—अधिक सुलभ होने से मिलावट की आशका कम होती है।

परीक्षा—बाजार मे दो तरह की फली मिलती हैं।

(१) मोटी, चपटी, कत्थई रग की भीतर से पोली और हल्की १॥ इन्च लम्बी और १ इन्च चौडी।

(२) केकडे की सीग की तरह लाल रङ्ग की ६ इन्च लम्बी आधा इन्च चौडी लाल रग की विषमाकार फली की तरह होती है जो प्रारम्भ मे गोल और मोटी तथा उसके अग्र भाग पर नोकदार होती है। फलियो पर धारिया स्पष्ट दिखाई पडती है। इनके भीतर स्थान-स्थान पर धूल की तरह सभी द्रव्य दिखाई पडते हैं। यह कीडो द्वारा सग्रहीत कृमिगृह होते है।

रस—कषाय और तिक्त।

गुण—लघु, रूक्ष। वीर्य—उष्ण। विपाक—कटु।

प्रभाव—कासघ्न।

वीर्यकालावधि—१ साल तक।

काञ्चनार (बनौषधि विशेषांक द्वितीय भाग पृष्ठ १८ से ३० तक)

नाम—कचनार।

शुद्ध द्रव्य—कचनार, काँचनार। बौहिनिया वेरियेगाटा (Bauhinia Variegata linn)

कुल—सिम्बी कुल (Leguminoceae)।

मिलावट वाले द्रव्य—(१)कचनार की अन्य जातियो की छाल (२) वट जटा की छाल (३) वट की डालियो की







छाल। कचनार की छाल के बदले व्यापारी इनकी छाल मिलाकर बाजार मे बेचते है।

परीक्षा—यद्यपि लाल कचनार सर्वत्र सुलभ है फिर भी बाजारो की छाल मे अन्य छालो का सम्मिश्रण रहता है।

कचनार के तीन मुख्य भेद है—

(१) लाल कचनार, (२) श्वेत कचनार, (३) पीला कचनार—इसे कोविदार, कोईनार भी कहते है। इनके अतिरिक्त इनकी और भी जातिया है जैसे—

(१) मालावारी कचनार (B Malabarica)

(२) काष्ठ कचनार (B. Raceamosra-Lamb)

परीक्षा करने पर इनकी छालो मे कोई अन्तर नही दिखाई पडता। अत व्यापारी कचनार के स्थान पर इन सबो का मिश्रण कर देते है।

रस—कषाय।

गुण—रूक्ष और लघु।

वीर्य—शीत।

वीर्यकालावधि—एक वर्ष।

रचना—कचनार की छाल बाहर से धूसर वर्ण की दिखाई पडती है। अन्तर वस्तु सघन दानेदार तोडने पर लालिमा लिये भूरे रग की होती है। बाह्य स्तर पर छोटे छोटे अण्डाकार उभार दिखाई पडते है। अन्तः स्थल सफेद रग का होता है। चूर्ण करने पर छाल का चूर्ण लाल रग का होता है। स्वाद कपैला होता है।

कालादाना (बनौषधि विशेषांक द्वितीय भाग पृष्ठ २२५)

नाम—काला दाना, कृष्ण बीज।

शुद्ध द्रव्य—कालादाना, कृष्ण बीज।

लै—आईपोमीया हेडेरोसिया (Ipomoea Hederacea)।

कुल—त्रिवृत कुल (Convolvulaceae)

इसके बीजो का प्रयोग औषधार्थ होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—कालादाना के साथ कई प्रकार के बीज मिलाये जाते है, यथा—

१—आईपोमिया म्यूरीकाटा।

इसके बीज कालादाना की अपेक्षा बडे होते है।

२—शण के बीज

परीक्षा—कालादाना के बीज त्रिकोणाकार दो पार्श्व से चपटे बाहर की ओर अर्धवृत्ताकार होते है। बीज का आवरण काले रग का कठिन और चिकना होता है। पानी मे भिगो देने पर आवरण फट जाता है और भीतर हरे रग का पंख की तरह सिकुडा हुआ भाग दिखाई पडता है। एक वृन्त मे ऐसे दो पक्ष दिखाई पडते है, जो सिकुडकर बीजावरण के भीतर वद रहते है। रस मे किंचित् मधुर व कटु होते है। जीभ पर चरपराहट अनुभूत होती है।



रस—कटु-मधुर।

गुण—लघु रूक्ष, तीक्ष्ण।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—विरेचक।

वीर्य कालावधि—२-३ वर्ष तक।

काली मिर्च (बनौषधि विशेषाङ्क द्वितीय भाग पृष्ठ २२९)

नाम—गोल मिर्च।

शुद्ध द्रव्य—गोल मिर्च।

लै०—पाइपर नाइग्रम (Piper Nigrum Linn)।

काली मिर्च—यह एक आरोही लता है, जिसमे पुष्प मजरी २—६ इन्च लम्बी होती है और इन्ही पर बीज लग जाते हैं जो कच्चे रहने पर हरे और पकने पर लाल

हो जाते है। हरे फलो को सुखाकर एकत्र किया जाता है।

मिलावट वाले द्रव्य—कालीमिर्च बहुतायत से मिलती है फिर भी इसमे पपीते के बीज और वायविडग रगकर मिला दिया जाता है।

परीक्षा—(१) बाजार मे मिलने वाली काली मिर्च मे कच्चे और पक्के फल सुखाकर मिले होते है। यह गोलाकार हरे काले रग के होते हैं। बाहरी तल झुर्रीदार होता है जिनसे जालीदार रचना बन जाती है। फल के सिरे पर पुष्पावशेष के चिह्न रहते है। मूल मे डठल का कुछ भाग लगा रहता है। गध मे सुगन्धित और चबाने पर तीक्ष्ण मालूम होती है। इसमे पाइपरीन नाम का अल्कलाईड होता है।

परीक्षा—(१) परिपुष्ट सूखी काली मिर्च पानी मे डालने पर डूब जाती है। कच्चे फल पानी के ऊपर तैरते रहते हैं। (२) पपीते और विडग के बीज भी पानी पर तैरते रहते है, इनके ऊपर जालीदार रचना नही होती। (३) काली मिर्च को सुरक्षित रखने के लिये इन्हें तेल और कोयलो से रग दिया जाता है। पुराना हो जाने पर यह रूक्ष और हल्के काले रग के हो जाते हैं। कालान्तर मे रग और भी कम हो जाता है।



रस—कटु।

गुण—लघु और तीक्ष्ण।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

आर्द्र फल—गुरु मधुर विपाकी और अनुष्ण होता है।

वीर्य कालावधि—२ साल तक।

किरात तिक्त (वनौषधि विशेषाङ्क तृतीय भाग पृष्ठ ९४)

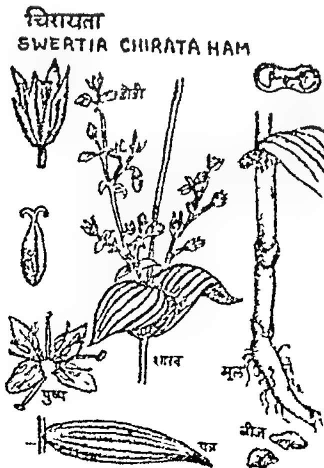
नाम—किरात तिक्त, चिरायता।

शुद्ध—चिरायता, किराततिक्त, ले०-स्वेरटियाचिराटा (Swertia cherata),

कुल—किरात तिक्त (Gurtranaccae)

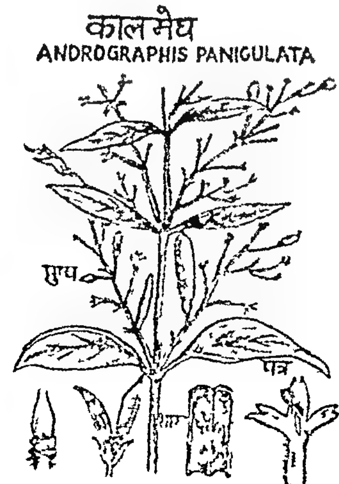
मिलावट व नकली—चिरायते की कई जातिया होती हैं जो कडवी नही होती और चिरायते की तरह होती हैं इनमे अधिकतर—

(१) स्वेर्टिया आगुस्टीफोलिया (Swertia Angustifolia Ham).





ENICOSTEMMA LITTORALE BLUME
चिरायता छोटा (कडुनाई)



(२) स्वेटिया अलाटा (Swertia Alata Royle),

(३) काल मेघ भी मिला देते हैं। जिसे हरी चिरायता कहते हैं।

परीक्षा—चिरायते का काण्ड ही प्रयोग होता है जो ३ फुट लम्बा होता है। भूरे रग का गोलाकार आगे चल कर यह छोटा होता है। शाखाये अधिक होती हैं। इनको काटकर वण्डल बनाकर सुखा देते है।

मूल छोटी पतली होती है–गध स्पष्ट नही होनी। पत्र-काण्ड-पुष्प अत्यन्त तिक्त होते हैं।

परीक्षा—चिरायते के क्वाथ या सत्व मे फेरिक क्लोराइड द्रव मिलाने पर नीली स्याही जैसा रग होता है।

इसके सगठन मे—चिरेटिन, आफेलिक एसिड (यह तिक्त तत्व है) इनके अतिरिक्त ओलिक एसिड, परमिटिक एसिड, स्टियरिक एसिड आदि तत्व भी मिलते है।

रस—तिक्त।

गुण—रूक्ष लघु।

विपाक—कटु।

वीर्य—शीत

प्रभाव—ज्वरघ्न-दाहघ्न कृमिनाशक।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष।

कुटज त्वक् (वनौषधि विशेषांक द्वितीय भाग पृष्ठ २६५)

नाम—कुटजत्वक्, कोरइया।

शुद्ध द्रव्य—कुटजत्वक्, कोरइया।

वै० - राइटिया टिंटोरिया (Wrightia tinctoria)

राइटिया टोमनटोसा (Wrightia Tomontosa)

इसकी छाल और बीज का औषधि मे प्रयोग होता है। फल को इन्द्रयव-कहते है।

कुल - कुटज कुल।

मिलावट वाले द्रव्य कुटज के दो भेद होते है सित और असित कुटज।

असित कुटज बहुत तिक्त होता है। इसे होलोरिना एन्टिडाइसेंटेरिका कहते है।

सित कुटज की छाल कम तिक्त होती है इसे राइटिया टोमेन्टोसा कहते हैं। छाल मे दोनो की मिलावट होती है। इसके अतिरिक्त भारगी का त्वक् उदुम्वर का त्वक् भी मिला देते है।

परीक्षा—कुटज की छाल पतली नलिकाकार चौकोर या लबी होती है। सूखने पर यह मुडकर उन्नतोदर वृत्ताकार हो जाती है। बाहरी त्वक हरित-पीत श्वेत वर्ण की होती है जिस पर छोटे–छोटे दाने उभरे होते है। अन्दर का भाग रक्ताभ होता है। तोडने पर चट आवाज करके टूट जाती है। यह स्वाद मे अति-तिक्त होती है। मद्य मे घुलनशील तत्व ४ प्रतिशत। सेन्द्रिय द्रव्य ५ प्रतिशत।

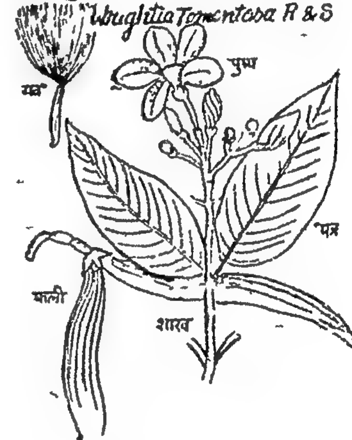
रस—तिक्त।

गन्ध—मृदु।

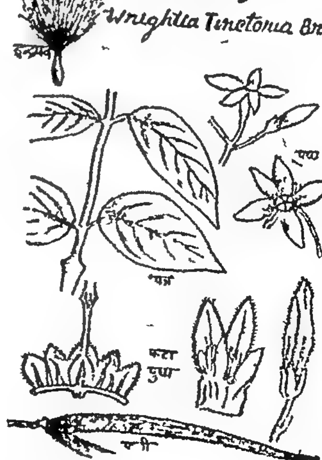
गुण—कठिन-खर-रूक्ष-लघु।

विपाक—कटु।

सित कुटज (इन्द्रयव मीठा)



असित कुटज (इन्द्रयव)



वीर्य—शीत।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष तक।

प्रभाव—अतिसार नाशक स्तम्भक ज्वरघ्न।

कुपीलु (वनौषधि विशेषांक द्वितीय भाग पृष्ठ २४८)

नाम—कुपीलु, कुचीला ।

शुद्ध द्रव्य—कुपीलु, कुचला ।

लैं०—स्ट्रिकनस नक्सवोमिका (Strychnos nuxvomica Linn)

कुल—कारसकरादि कुल (Loganiaceae)

कारसकर वृक्ष के फल व त्वक का प्रयोग औपधार्थ होता है ।

मिलावट वाले द्रव्य कुचला के बीजो मे इसी कुल एव प्रजाति के दो अन्य वृक्षो (१) स्ट्रिक्नोस नवसब्लैंडा (२) स्ट्रिक्नोस पोटाटोरुम ।

निर्मली के बीजो का प्रयोग कभी-कभी मिलावट के लिए किया जाता है । इनमे प्रथम के बीज आकृति मे बहुत कुछ कुचला के बीजो से मिलते जुलते होते है । निर्मली के बीज प्रायः अधिक मोटे और छोटे होते हैं । दोनो ही मे तिहाई नही पायी जाती है । जगलो मे कुचला काफी परिमाण मे पाया जाता है । अतएव जान-बूझ कर मिलावट प्रायः कम ही होती है ।

परीक्षा—कुचला के बीज गोल चपटे बटन की तरह १ इन्च व्यास के चौथाई इन्च मोटे होते है । बीज के बीच मे एक खात होता हैं । खात के चारो ओर रेशमी रोयें पाये जाते है । अतः ये स्पर्श मे मसृण किन्तु बहुत कठोर होता है । इसके किनारे पर छोटा सा उभार होता है । इसका रग हरिताभ मटमैला होता है ।

रस—तिक्त कटु ।

गुण—रूक्ष-लघु-तीक्ष्ण ।

वीर्य—उष्ण ।

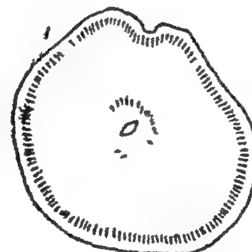
विपाक—कटु ।

प्रभाव—दीपन, पाचन-नाडीबल्य-आमवातनाशक-वाजीकरण एव शूल प्रशमन तथा स्वेदापनयन आदि ।

वीर्यकालावधि—दीर्घकाल तक ।



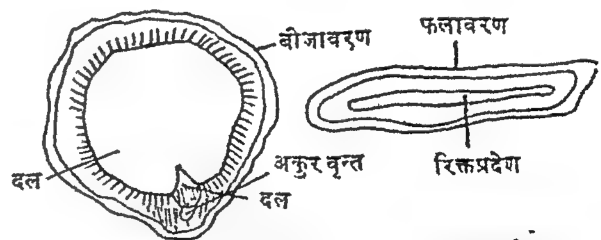
कुचला





पडे रहने पर

सामने से खडे रहने पर अनुलम्बच्छेद



कुचिला का अनुलम्बच्छेद व्यत्यस्तच्छेद

कुलिञ्जन (वनौषधि विशेषांक द्वितीय भाग पृष्ठ २८४)

नाम—कुलिजन, मलय वचा ।

शुद्ध द्रव्य—कुलिञ्जन, मलयवचा ।
(Alpinia galanga willd)

कुल—आर्द्रक-कुल ।

कुलिजन का मूल औपधार्थ प्रयोग होता है । इसकी ...ी की जाती है ।

मिलावट वाले द्रव्य—इसके साथ जगली कुलिजन व चीनी कुलिजन के टुकडे मिला दिए जाते है । कुछ लोग पान की जड समझते है । यह पान की जड नही है । बाजार मे दो प्रकार के कुलंजिन मिलते है ।

न० १—अल्पिनिया आफिसिनेरम् अथवा **चीनी कुलिजन**—इसका चीनी नाम-काओनलियङ्ग कियङ्ग

है। इसके टुकडे ३-१० से०मी० लंबे १-२ से०मी० चौडे एक तरफ मोटे दूसरी तरफ कुछ पतले पाये जाते हैं। इनमे एक प्रकार की सुगन्धि होती है। इसकी और भी कई जातियां मालाबार मे पायी जाती हैं और उनकी जडें अंगुलि जैसी पतली होती है। इसे दक्षिणी कुलिंजन कहते हैं।

परीक्षा—कुलिंजन को भावमिश्र ने मलयवचा लिखा है। यह एक प्रकार का हल्दी की तरह पौधा होता है, जो बहुवर्षायु होता है। पौधे १ या दो गज ऊँचे होते हैं। इसमे पुष्प हरित-श्वेत वर्ण के होते हैं। इसकी भौमिक कांड को काट कर सुखाकर रख लेते हैं। यह ऊपर से लाल वर्ण का, भीतर पीत वर्ण का काष्ठीय होता है। स्वाद मे यह तिक्त और कटु होता है। यह मलय प्रदेश मे सुमात्रा, हिमालय, बंगाल और मालाबार मे स्वयं पैदा होता है। इसकी खेती भी की जाती है। खेती किए हुये मूल की मोटाई अधिक होती है। बाहर से नारंगी वर्ण के भूरापन लिये होते हैं। भीतर से पीताभ श्वेत होते है।

रस—कटु।
गुण—लघु-तीक्ष्ण-रूक्ष।
विपाक—कटु।
वीर्य—उष्ण।
प्रभाव—कफनाशक-मूत्रावरोधक।
वीर्यकालावधि—१-२ वर्ष तक।

भावमिश्र ने इसको मलय वचा लिखा है। वास्तव मे यह वचा नहीं है। वच की आकृति के होने से संभवतः भावमिश्र ने वच लिखा है।

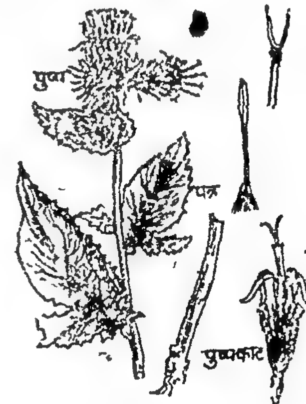
कुष्ठ (वनौषधि विशेषांक द्वितीय भाग पृष्ठ २६१)

नाम—कूठ।
शुद्ध द्रव्य—कूठ
लै०-सोसुरिया लप्पा (Saussurea Lappa)
कुल—मुण्डी कुल (Compositae)
मिलावट वाले द्रव्य—कूठ के साथ कई वनस्पतियो की जडें मिलाई जाती हैं—

(१) मल्विया लेनाटा-तुलसी कुल (२) कास्टस् स्पेसिओसस् (३) इनुला रोयलियाना-कम्पोजिटि कुल (४) सेनेसिव जेकेमान्टिआनुस (५) मीठा कूठ।

परीक्षा—कूठ के टुकडे टेढे मेढे १-६ इन्च लम्बे व्यास मे आधा इन्च से १॥ इन्च तक मोटे होते हैं। यह गोल, चिकने, बाहर से काले—लाल रंग के मटमैले होते है। पुराने बहुवर्षायु टुकडे भीतर से खोखले भी होते हैं। तोडने पर कठिनता से टूटते हैं। इसमे मीठी और सुन्दर सुगन्ध होती है। इसका संग्रह पुष्प पक जाने पर कर लेते हैं। अन्यथा भूमि के ऊपर का काण्ड सूखकर अलग हो जाता है। इसके काण्ड लम्बे भीतर से पोले होते है। पसारी इनको भी कूठ के बदले मे देते हे।

कूठ के मूल अक्तूबर और नवम्बर के महीने में संग्रह करते है। ३-४ वर्ष तक पुराने पौधो का मूल अधिक उत्तम होता है। इसके मूल निकाल कर सुखाकर रख लिए जाते हैं। दूसरी विधि यह है कि इसके मूल को उखाड कर ऊपर की त्वचा हटा कर मंद आंच पर सुखा देते हैं। इससे इनका वर्ण श्याम हो जाता है।



संग्रह की दूसरी विधि—इनके मूल को खोल कर तीन-तीन-चार-चार इन्च के टुकडे काट कर सूखने देते है। छोटे मूलो के सूख जाने पर इसे टोकरी या पत्थर मे बोरियो मे बांधकर रगडते है। इससे छोटी २ जडें टूट जाती हे और मिट्टी अलग हो जाती है। इसको धान्य-राशि मे दबा देते है। ३-४ महिने बाद इसमे बहुत सुन्दर सुगन्ध निकलने लगती हे। यह औषधार्थ प्रयोग की जाती है।

रस —तिक्त-कटु। जीभ पर चुन्चुनाहट पैदा करता है।

गुण—लघु-रूक्ष और तीक्ष्ण।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष तक।

विशेष—बाजारो मे कडआ कूठ और मीठा दो प्रकार के कूठ मिलते हे। कूठ हमेशा कड़ुआ ही मिलता है। मीठा कूठ, कूठ की जाति के अन्य पौधो का मूल है। वह असली कूठ नही है। मीठे कूठ का विचार व्यापारियो द्वारा बनाया हुआ है।

कृष्ण जीरक (वनौषधि विशेषांक तृतीय भाग पृष्ठ २३८)

नाम—कृष्ण जीरक, श्याह जीरा।

शुद्ध द्रव्य—कृष्ण जीरक, श्याह जीरा।

लै०-केरवी फ्रुक्टस् (Carvi Fructus)

पेड—केरम् कारवी (Caumcarvi Linn)

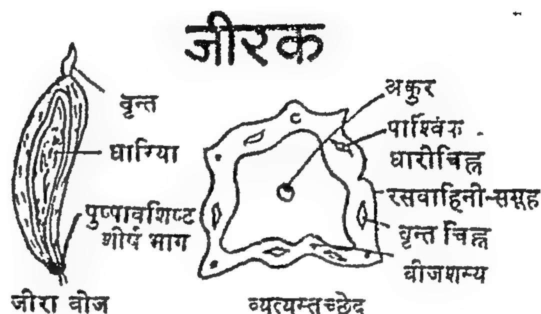
कुल—शतपुष्पादि कुल (Umbellifareae)

मिलावट वाले द्रव्य यह महगा होने के कारण इसमे मिलावट अधिक होती है। इसके स्वरूप के जितने वीज होते हे, रगकर मिला दिए जाते हे। जैसे—

(१) गाजर के बीज, सोया के बीज, सर्पत के पुष्प दण्ड इत्यादि इन्हे काले रग मे रगकर मिला देते है।

(२) तेल खिचे हुए जीरे को भी मिला देते है। ऐसे बीज रग मे गाढे बाहर से सिकुडे हुए होते है। बीज मे सुगन्धि कम होती है।

परीक्षा—काला जीरा पतला काला और दोनो सिरो पर पतला बीच मे कुछ मोटा होता है। नीचे की तरफ वृन्त लगा रहता है, जो छोटा होता है। इसके अन्तिम सिरे पर योनिक्षत्र का पुष्पावशिष्ट भाग होता है। लम्बाई ४–७ मि मी०, चौडाई १–२ मिमी० होती है। दो बीज एक साथ जुटे होते हैं। वर्ण भूरा या भूरा काला



होता है। इसमे लम्बाई की दिशा मे चार पाँच रेखायें पायी जाती है। ऊपर का आवरण हटाने पर बादामी रग का बीज दिखाई पडता हे। वृन्त की तरफ भ्रूण का छोटा अश रहता है।

रस—कटु-तिक्त।

विपाक—कटु।

गुण—लघु, स्निग्ध।

वीर्य—उष्ण।

गध—सुगन्धित।

प्रभाव—दीपन-पाचन।

वीर्य कालावधि—२ वर्ष तक।

कृष्ण सारिवा

नाम—कृष्ण सारिवा।

शुद्ध द्रव्य—कृष्ण सारिवा लै०-क्रिप्टोलेपिस बुचलानी (Cryptolepis Buchlani Roem)

कुल—अर्क कुल (Asclepiadaceae)। इसके मूल और कांड का उपयोग औषधि के लिए होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—कृष्ण सारिवा को बगाली श्यामालता, हिन्दी मे दूधी के नाम से पुकारते है। इसके अतिरिक्त इस नाम से करवीर कुल की एकनोकार्पस फ्रुटसेंस नामक लता की जड का ग्रहण करते हैं। उसके कांड काले रग के होते हैं। इसको तोडने पर दूध निकलता है। इसकी मूल लम्बी काष्ठीय टेढी-मेढी लाल या काले रग की होती है। त्वचा का बाहरी भाग चिकना होता है। ताजी मूलत्वक् हल्के गुलाबी वर्ण की होती है। सूख जाने पर यह जामुनी रग की हो जाती है। श्यामालता के साथ इसकी मिलावट की जाती हे अथवा स्वतत्र भी मिलता है।

परीक्षा—कृष्ण सारिवा की लता और मूल सग्रह करके छोटे-छोटे टुकडे बनाकर बन्डल बाधकर इनका उपयोग होता है। मूल का वर्ण ऊपर से भूरा और श्याम वर्ण का होता है। काड की बाह्य त्वचा श्याम वर्ण की

होती है। भीतर का काष्ठीय भाग छिद्र युक्त होता है। हरी लता मे ३-४ फीट के कांड काटकर उसके एक सिरे मे फूंकने पर दूसरे सिरे पर रस निकलता दिखाई पड़ता है।

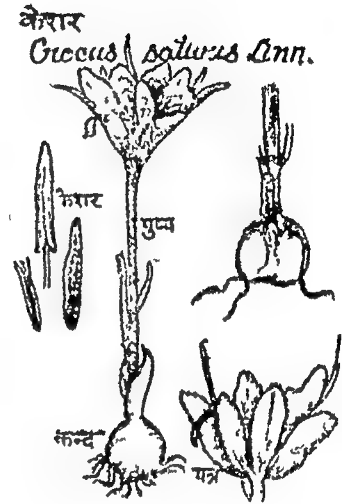
रस – कषाय, मधुर।
गुण—रूक्ष, लघु, शीत।
विपाक–मधुर।
वीर्य—शीत। वीर्य कालावधि—३–६ मास तक।

केशर (वनौषधि विशेषांक द्वितीय भाग पृष्ठ ३१२)

नाम—केशर, कुंकुम।

शुद्ध द्रव्य—केशर। लै०–क्रोकुस सेटिवुस् (Crocus Sativus Linn)।

कुल—केशरादि कुल (Iridaceae)। केशर के पुष्प के भाग से उनके स्त्री केसर का संग्रह करके सुखाकर सूत्राकार भाग होते है जिनका वर्ण गहरे लाल रग का होता है।



मिलावट वाले द्रव्य—(१) केशर मे उसके स्त्री केशर के बदले पुंकेशर, पुष्पदल इत्यादि सब मिलाकर केशर की गुच्छी बनाते हैं।

(२) केशर की जाति के अन्य पुष्पो के केशर मिलावट के काम आते है।

(३) कुसुम्ब या बर्र का पुष्प।

(४) जरेगुल गेलेण्डुला आफिसिलेनिस के पुष्प।

(५) कागज के कटे हुए बारीक रगे हुए सूक्ष्म भाग रगकर मिलाते हैं। मिलावट की चीजो मे ग्लेसरीन व ग्लुकोज रग कर भार बढाने के काम आते हैं।

परीक्षा—(१) केशर की गुच्छियो को गधक के तेजाब मे डालने से तत्काल नीला रग हो जाता है जो बाद मे नील-अरुण और अन्त मे बैगनी लाल रंग के हो जाते है।

(२) केशर के पुष्पो को कुछ देर तक पानी में डुबो रखने पर वह फैल जाते हैं। अणुवीक्षण यत्र से इनको सरलता से पहचाना जाता है।

(३) पानी मे फुलाकर खरल मे पीसने पर सुन्दर केशरिया रग का कल्क बन जाता है और धीरे-धीरे यह फूलता जाता है।

(४) कागज या आत्र की कटन नही घुलते और रगडने पर सिकुडकर एकत्र हो जाते है। पानी की परीक्षा मे अन्य तृण केशरो के केशर वैसे ही फुलते और रग देते है।

रस—कटु।
वर्ण—केशरिया।
गुण—लघु, स्निग्ध।
वीर्य—उष्ण।
विपाक—कटु।
वीर्य कालावधि—६ मास से १ वर्ष तक।

खदिर सार (वनौषधि विशेषांक द्वितीय भाग पृष्ठ ३६४)

नाम कत्था खैर, खदिर सार।

शुद्ध द्रव्य—खदिर सार,

लै०—एकेसिया कटेचुन (Acacia catechun Linn)

कुल—सिम्बि-कुल

उपयोगी अंग—काण्ड त्वक और खदिर सार (कत्था)। खदिरसार खैर के काष्ठ व त्वचा से बनाई गई शुष्क रसक्रिया है।

मिलावट वाले द्रव्य—बाजार मे कई प्रकार का कत्था मिलता है।

(१) ललाई लिए भूरा बाहर से। भीतर से हल्के बादाम रग का तोडने मे सरलता से टूट जाता है।

(२) लाल रग का (३) काला।

श्वेत खदिर—यह लता खदिर से प्राप्त किया हुआ खदिर है। इसकी लता बोर्नियो-सुमात्रा और मलाया मे अधिक मिलती है। इनके छाल से एकत्र किया हुआ खदिर श्वेत खदिर होता है। और पाश्चात्य वैद्यक मे इसका ही प्रयोग अधिक होता है।

परीक्षा—(१) शुद्ध कत्था गाढे भूरे व काले रग का जमाया हुआ चोकोर वर्फी की तरह शुष्क मिलता है। यह सरलता से टूट जाता है। स्वाद मे पहले तिक्त और बाद मे मधुर और कसैला लगता है।

(२) खदिर तथा बब्बूल की जाति के पेडो के छाल से रसक्रिया द्वारा एकत्र किया हुआ कत्था के साथ मिला कर बनाया जाता है। यह काला कडा और टूटने मे सख्त होता है।

(३) इसको असली की तरह बनाने के लिए कत्था मे खडिया मिलाकर जमा देते हैं।

(४) लाल रग का कत्था—यह पानी मे घोल कर खडिया और लाल रग मिला कर जमाया जाता है। यह केवल पान के काम मे आता है। परीक्षण—खैर के चूर्ण को सूक्ष्मदर्शक यत्र द्वारा देखने पर सूची के आकार के क्रिस्टल मिलते है। जल मे यह सरलता से घुल जाता है। जल मे न घुलने वाला अवशेष अधिकतर २५%और अल्कोहल मे अविलेय अश ४०%, भस्म ८%। असली खदिर की छाल बाहर मे फटी हुई काले लाल रंग की अन्तस्त्वचा गहरे लाल भूरे रग की होती है। स्वाद मे कषाय और तिक्त होती है।

कत्था के अन्य परीक्षण—(१) १०%शक्ति का जलीय घोल १ मि० लि० लेकर उसमे चूने के पानी की कुछ बूंद मिलाने पर विलयन भूरे रग का हो जाता है। और बाद मे लाल रग का अवक्षेप परीक्षा नली मे हो जाता है।

(२) १%का जलीय घोल ५ सी० सी० टेस्टट्यूब मे लें और इसमे फेरिक अमोनियम सल्फेट १% का विलयन समान भाग मिलाने पर रग गाढा हरा हो जाता है। इसीमें पुन सोडियम हाइड्राक्साइड मिलाने से बैंगनी रग का हो जाता है।

रस—तिक्त और कषाय
गुण—रूक्ष-लघु।
विपाक—कटु।
वीर्य—शीत।
प्रभाव—कुष्ठघ्न।
वीर्यकालावधि—छाल १ वर्ष तक। और खदिर सार बहु वर्ष।

खूनखराबा (वनौषधि विशेषांक षष्ठम् भाग पृष्ठ ४९२)

नाम—रक्त निर्यास, खुनखराबा।

शुद्ध द्रव्य—रक्त निर्यास, खूनखराबा।

लै०—ड्राकेना सिन्नाबारी (*Dracaena Cinnabari Balf*)

कुल—पलाण्डु-कुल (Liliaceae) के अन्तर्गत ड्रैलेमस ड्राको-ताड-कुल।

यह पूर्वी अफ्रीका मे पाया जाता है। भारतीय बाजार मे यह बहुत दिनो से जावा,बोर्नियो और सुमात्रा से एक ताड कुल के पौधे से सग्रह किया जाता है। यह लाल वर्ण का होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—(१) असली खूनखराबा ड्राकेना सिन्नाबारी पौधे का सग्रहीत निर्यास है। इसकी कई जातिया होती है। इनका निर्यास भी मिला होता है। जिनमे जिंजिबारी खूनखराबा है।

(२) कैलेमस ड्रैको आरोही क्षुप है। सुमात्रा बोर्नियो के जगलो मे पाया जाता है। इनका निर्यास उनके फलों पर होता है। इन्हे फलो से खुरचकर अलग कर लेते हैं। बाद मे फलो को पकाकर भी पिण्डाकार टुकडो मे सग्रहीत होता है। कैलेमस की और भी जातियो का स्राव सग्रह होता है।

परीक्षा—उत्तम रक्त निर्यास छोटे-छोटे दानो के रूप मे सग्रहीत होता है। जो बाहर से मटमैला-लाल रग के चूर्ण से मिलता जुलता है। इनको तोडने पर टूटा हुआ भाग चमकीला होता है।

व्यापारी लोग मिट्टी मिले हुये चूरे का दानेदार बना कर असली दानो का स्वरूप देते है। तोडने पर यह चमकीले नही होते। दूसरा क्रम व्यापारी यह करते है कि खूनखराबा के निर्यास को पिण्डाकार टुकडो मे एकत्र करते है। इसमे फलो के टुकडे, छिलके, मिट्टी इत्यादि मिले रहते है। उत्तम गोंद के टुकडे तोडने पर

भुर-भुरे और चमकीले होते हैं। इसे सकोतरी खूनखराबा कहते हैं। इसे असली खूनखराबा के बदले प्रतिनिधि स्वरूप मे ले सकते है।

रस—कषाय।

गुण—लघु रूक्ष।

विपाक—कटु।

वीर्य—शीत।

प्रभाव—रक्त शोधक।

यूनानी हकीमो के यहा—दम्मुल अरवैन के नाम से मिलता है।

वीर्यकालावधि—बहुवर्ष तक।

यह आयुर्वेदीय निघण्टु का द्रव्य नही है।

खुरासानी अजवायन (वनौषधि विशेषांक प्रथम भाग पृष्ठ ८५)

नाम—पारसीक यवानी, खुरासानी अजवायन।

कुल—कण्टकारी कुल (Solanaceae)।

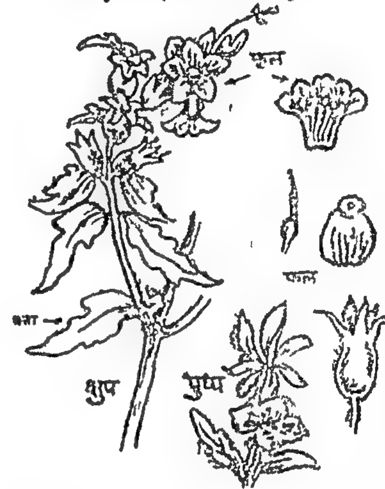
शुद्ध द्रव्य—खुरासानी अजवायन ले -हायोसाइमस रेटिकुलेटस - (Hyocyamus Reticulatus Linn)

खुरासानी अजवायन हायोसाइमस रेटिकुलेटस का बीज होता है जो हिमालय और काश्मीर की भूमि से प्रचुर मात्रा मे होता है। यह बहुत छोटे-छोटे वृक्ष की आकार के होते हैं। यह विदेशो से खुरासान, बिलोचिस्तान और ईरान से भारतवर्ष में आते है। यह भूरे चिपटे होते है।

मिलावट वाले द्रव्य—खुरासानी अजवायन के साथ कई प्रकार के बीजों की मिलावट होती है। जैसे हुरहुर के बीज। इनकी सुरक्षा के लिए चूने के घोल मे भिगो कर सुखा देते है।

परीक्षा—(१) खुरासानी अजवायन के बाजार मे मिलने वाले बीज वृक्काकार चपटे श्याम वर्ण के भूरे रग वाले होते है। बीजों के ऊपर बीजकवच पर मधुमक्खी के छत्ते की तरह जालीदार रेखायें होती है। बीज गर्भ (Embryo) अग्रेजी की संख्या 9 के आकार का होता है।

(२) हुलहुल के बीज भी इसी आकार के और इसी वर्ण के होते है किन्तु बीजो की ऊपर की बनावट जालीदार न होकर धारीदार होती है जो केन्द्र से बाहर की तरफ किरण की तरह निकले होते है। यह रचना बीज के छोटे होने के कारण आखो से नही दिखलाई पड़ती। इसकी परीक्षा के लिये शक्तिशाली ताल



अथवा अणुवीक्षण यन्त्र की सहायता लेनी पडती है। शुद्धाशुद्ध परीक्षा के ये उत्तम साधन है।

विशेष- हिमालय प्रदेश मे काश्मीर से गढवाल तक ५०००-११००० फीट की ऊँचाई तक अजवायन के क्षुप मिलते है।

रस—कटु-तिक्त-कषाय।

गुण—गुरु और रूक्ष।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—मादक।

गज पिप्पली (वनौषधि विशेषाक द्वितीय भाग पृष्ठ ३७७ तथा तृतीय भाग पृष्ठ ५४)

नाम—गज पीपर।

शुद्ध द्रव्य—गज पीपल। लै०-पाइपर चवा हन्टर (Piper Chaba Hunter)।

कुल—पिपल्यादि कुल (Piperaceae)

इसकी लता और फलिया प्रयोग मे आती है।

मिलावट वाले द्रव्य—गज पिप्पली के नाम से कई द्रव्य बाजार मे मिलते है।

(१) सिन्डाप्सस आफिसिनेलिस—इसके पुष्प व्यूह बाजार मे गज पिप्पल के नाम से आते है।

(२) ताड के पुष्प व्यूह बाजार मे गज पीपल के नाम से बिकते है।

परीक्षा—(१) पाइपर चवा मलाया द्वीप की एक लता है जिसके फल का प्रयोग होता है। फलिया एक मे २ इन्च लम्बी और आधे से पौन इन्च तक मोटाई मे होती है। मूल अधिक मोटा और उसका शिखर कुण्ठिताग्र होता है। इसका आकार बेलनाकार, मूल सवृन्त और आधा इन्च लम्बा होता है। फलिया बाजरे की बाली की तरह बनावट मे होती है। इनके दाने धोने पर लालिमा लिए भूरे रग के होते है। इनमे एक विशिष्ट सुगन्ध होती है। चबाने पर जीभ पर चरपराहट मालूम होती है।

(२) मिलावट वाली गज पीपल बहुत मोटी एक से १॥ इन्च व्यास की ६ इच से १० इन्च तक लम्बी होती है।

(३) ताड की पुष्प मजरी मोटी ६–१८ इन्च लम्बी पौन इन्च व्यास मे होती है। इसका कोई स्वाद नही होता।

असली गजपीपल—

रस—कटु।

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण।

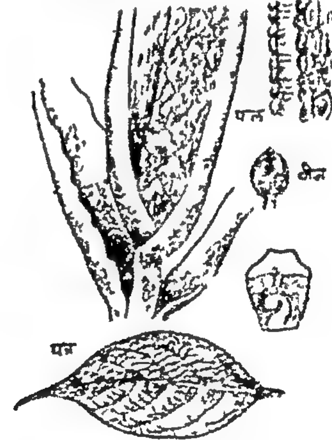
विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण।

वीर्य कालावधि—१ से २ वर्ष तक।

विशेष—गज पिप्पली के अभाव मे बडी पीपर का प्रयोग होना चाहिए।

कर्म—कफ-वात शामक—लालास्रावजनक, दीपन—पाचन, ग्राही, यकृदुत्तेजक, वातानुलोमन है।





गम्भारी (बनौषधि विशेषांक द्वितीय भाग पृष्ठ ३७५)

नाम—गम्भारी, गम्भार।

शुद्ध द्रव्य—गम्भारी।

ले—मेलिना आर्वोरिया(Gmdina Arboria Linn)।

कुल-निर्गुण्डी कुल (Verbenaceae) गम्भारी के वृक्षो की त्वचा, पुष्प और फल का उपयोग औषधि मे होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—गम्भारी की तरह अन्य वृक्षो की छाल का उपयोग औषधि मे होता है।

(१) मेलिना एसियाटिका (२) प्रेम्ना फ्लावेन्सिस

इन दोनो के त्वक् का उपयोग भी गम्भारी की छाल मे अधिक होता है।

परीक्षा—(१) गम्भारी की जड बाहर से हल्के भूरे रग की होती है किन्तु भीतर का काष्ठ पीताभ होता है। यह स्वाद मे तिक्त और लोआबदार होती है। इसकी ताजी जड की छाल चौथाई से आध इन्च तक मोटी होती है। बाह्यत्वक् मटमैली श्वेत भूरे रग की होती है। यह कडी भगुर और परकदार होती है। मोटी ताजी छाल मुलायम रसेदार और रेसेदार होती है। स्वाद मे मीठी होती है।

(२) मिलावटी गम्भारी की छाल कडुई और कषैली होती है।

रस—तिक्त-कषाय-मधुर।

विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण। गुण—गुरु।

कर्म—शोथहर, ज्वरघ्न, रसायन और विषघ्न है।

वीर्य कालावधि—६ मास से १ वर्ष तक। (त्वचा)

गुड़मार (वनौषधि विशेषांक द्वितीय भाग पृष्ठ ४०८)

नाम—गुडमार, मेषश्रृंगी।

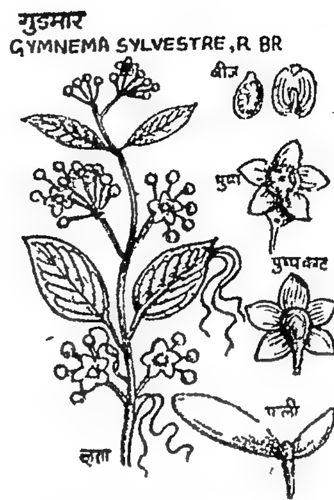
शुद्ध द्रव्य—गुडमार, मेषश्रृगी। लै –जिम्नेमा सिलवेस्ट्रिम (Gymnema Sylbestre Br)

कुल–अर्क कुल (Asclepiadaceae)।

यह एक आरोही लता है, जिसके काड पतले, वहुशाखी होते है। शाखा और क्षुद्र शाखाये रोमस होने से पीत वर्ण की हो जाती हैं। अतः पीताभ दिखलाई पडता है। पत्तियाँ १-३ इन्च लम्बी १। इन्च चौडी होती है। इनके पचाग का प्रयोग होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—गुडमार के साथ इसीकी जाति के क्षुपो का पचाग सग्रह किया जाता है। यह स्वाद मे तिक्त नही होता और उनके स्वाद लेने पर मधुर रस का ज्ञान नही होता।

परीक्षा—गुड़मार के पत्र शाखाओ का प्रयोग होने से वाजार मे इनकी प्राप्ति होती है। इसकी पत्तिया १०-१२ सेमी० लम्वी ३ सेमी० चौडी लट्वाकार नोकदार होती है। ऊपर का पृष्ठ गहरे हरे रग का चमकदार, अध. पृष्ठ फीके हरे रग का सूक्ष्म मृदु लोमावृत, सिरायें जालीदार होती हैं। स्वाद नमकीन और तिक्त होता है। पत्तियो



के चवाने पर स्वाद ग्रहण की शक्ति नष्ट हो जाती है। वीज लम्वी फली मे लगते है। इनका सग्रह पुष्प आने पर कर लिया जाता है।

रस—कषाय, तिक्त।

गुण—लघु, रूक्ष।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—मधुर रस का ज्ञान न होना।

वीर्यकालावधि—६ मास से १ वर्ष तक।

गुग्गुलु (वनौषधि विशेषाङ्क द्वितीय भाग पृष्ठ ४२८)

नाम—गूगल।

शुद्ध द्रव्य–गुग्गुलु, कोम्मीफोरा वाइटिआई (Commiphora wightii)

कुल—गुग्गुलु-कुल।

इसके निर्यास का प्रयोग औषधि मे होता है। ये दो प्रकार के होते है—

१ कण गूगल।
२ महिषाक्ष या भैसा गुग्गुलु।

मिलावट वाले द्रव्य—१. गूगल की एक जाति कोमीफोरा राक्सवर्गाई या वाल सेमोडेन्ड्रन राक्सवर्ग—इसका निर्यास गूगल की तरह ही होता है।

२ गूगल की तरह का पेड जिसमे गोद बहुत अधिक होता है। इसकी मिलावट की जाती है।

परीक्षा—१ कण गूगल लालिमा लिए पीले वर्ण का होता है २–महिषाक्ष हरे और पीले वर्ण का होता है। यह चमकीला चिपकने वाला विशेष प्रकार की गन्ध युक्त पानी मे घोलने पर सफेद हो जाता है। पानी मे कम घुलता है, तेल और घी मे घुल जाता है, मुंह मे डालने पर जल्दी नही घुलता। अल्कोहल-ईथर और तारपीन के तेल मे पूरा घुल जाता है। ३–मिलावटी गूगल मे भी यही गुण होते है।

रस—तिक्त, कटु, कषाय।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—त्रिदोषहर।

वीर्यकालावधि—५ वर्ष तक।

कर्म–शोथहर, वेदनास्थापन, व्रणशोधन, नाड़ी वल्य, मूत्रल और लेखन।

गुडूची (बनौषधि विशेषांक द्वितीय भाग पृ. ३९३)

नाम—गुडूची, अमृता, गिलोय।

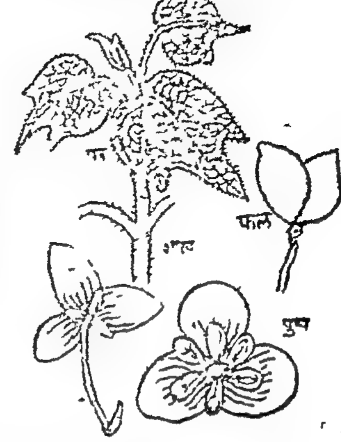
शुद्ध द्रव्य—गुडूची, अमृता।

लै०—टिनोस्पोरा कार्डीफोलिया (Tinospora Cordifolia Miers)।

कुल—गुडूची कुल (Menispermaceae)। यह बहुवर्षायु लता होती है। इसके काड का प्रयोग होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—गुडूची की तरह अन्य लतायें भी होती हैं। पिंड गुडूची की लता भी ऐसी ही होती है। बाजारू सूखी हुई गुडूची मे इनका मेल मिलता है। गुडूची बहुतायत से मिलती हैं। अत मिलावट का डर कम होता है।





परीक्षा—गुडूची के ताजे काण्ड काटकर सुखा दिये जाते है। ताजे रहने पर ऊपर मे हरा रग दिखाई पडता है। सूख जाने पर ऊपर का रग हल्के भूरे रग का हो जाता है। छुडाने पर कागज की तरह छूट जाता है। सूखे हुए काड मे ऊपर का परक छुट जाने पर नीचे हरा रग दिखाई पडता है। काड पर चारो तरफ छोटे गाठदार उभार दिखाई पडते हैं। कटे हुए स्थान पर चक्राकार रचना मिलती है। इसके क्वाथ मे आयोडीन का घोल डालने पर गहरा नील वर्ण का हो जाता है।

रस—तिक्त कषाय।

विपाक—मधुर।

वीर्य—शीत।

गुण—गुरु, स्निग्ध।

प्रभाव—त्रिदोषघ्न।

वीर्य कालावधि—३ मास तक।

गिरिपर्पट (बनौषधि विशेषांक चतुर्थ भाग पृ. २३४)

नाम—गिरिपर्पट, वन ककडी।

शुद्ध द्रव्य—गिरि पर्पट, वन ककडी।

लै०—पोडोफील्लुम हेक्साड्रम (Podophyllum Hexandrum Royl)।

कुल—दारुहरिद्रा कुल (Berberidaceae)।

इसके मूल स्तम्भ का प्रयोग किया जाता है।

मिलावट वाले द्रव्य—गिरिपर्पट के छोटे-छोटे शाकीय मासल पौधे होते हैं। जिनका वायव्य भाग तो प्रतिवर्ष सूख जाता है, किन्तु मूल स्तम्भ बहुवर्षायु स्वरूप का होता है और जमीन के अन्दर फैलता है।

पुष्पध्वज या स्केप १५-४५ सेमी या ६ से १८ इञ्च लम्बा, काफी मोटा किन्तु कोमल और स्वावलम्बी होता है जिसके सिरे के पास प्राय २-३ पत्तिया होती है जो एकान्तर क्रम से स्थिर होती है।

उसके स्थान पर विदेशी गिरि पर्पट जैसे—पोडोफाइलम पेंटाटम कहते हैं। इसका भी प्रयोग होता है।

अमेरिकन गिरि पर्पट भी बाजार मे मिलता है। यह भारतीय गिरि पर्पट से मिलते-जुलते हैं। विदेशी गिरि पर्पट मे रेजिन की मात्रा अधिक होती है।

परीक्षा—गिरि पर्पट के भौमिक काड टेढे-मेढे आधा से डेढ इञ्च लम्बे मिलते हैं और पौन इञ्च मोटे होते है। इनके ऊपर जडो के टूटने मे उन पर प्यालीनुमा गड्ढे दिखाई पडते हैं। यह बाहर से पीताभ भूरे और मटमैले रग के देखे जाते हैं तथा तोडने पर सरलता से टूट जाते है। इसमे एक विशेष प्रकार की गन्ध आती है। स्वाद तिक्त और कटु होता है। अनुप्रस्थच्छेद लेने पर कटा हुआ भाग वृत्ताकार हल्के भूरे रङ्ग का पिष्टमय होता है। बीच मे मज्जा मिश्रित भाग काफी चौडा होता है और केन्द्र से बाहर की तरफ जाती हुई स्पष्ट रेखाये दिखाई पडती है। इसका चूर्ण हल्के भूरे रङ्ग का होता है। इसके मूल का सग्रह—वायव्य काण्ड निकलने से पूर्व सग्रह करना उचित है। इस समय मूल मोटी राल से भरी हुई होती है।

रस—तिक्त, कटु ।

गुण—लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण ।

विपाक—कटु ।

वीर्य—उष्ण ।

प्रभाव—पित्तसारक, विरेचक ।

वीर्य कालावधि १-५ वर्ष तक ।

गोक्षुर छोटा (वनौषधि विशेषांक द्वितीय भाग पृष्ठ ४४८)

नाम—गोक्षुर, गोखरू ।

शुद्ध द्रव्य—गोक्षुर छोटा, त्रिकण्टक

लै० - ट्रिबुलस टेरेस्ट्रिस लिन (Tribulus Terrestris linn)

कुल-धन्वयास कुल (Zygophyllaceae)

प्रयोगाग—पचाग, फल, मूल ।

मिलावट व मिश्रण—यह पर्याप्त मिलता है अत मिलावट की सम्भावना कम होती है ।

(१) फिर भी गोक्षुर की एक इससे भी छोटी जाति होती है जो पजाब सिंध बिलोचिस्तान अरब मिश्र व राजस्थान मे होती है उसका मिश्रण होता है। इनको गोक्षुरू कला या ट्रिबुलस एलाटस (Tribulus Alatus Delite) कहते हैं ।

(२) एक पौधा इससे मिलता जुलता और है जिसे Acanthospermum Hispidum D C कहते है। फल बिलकुल मिलता जुलता है। इसका भी मिश्रण व्यापारी कर देते है ।

परीक्षा गोखरू छोटे का फल गोलाकार कांटेदार होता है। इसमे पांच कोष्ठ मिलकर फल को बनाते हैं। हरे फल रोमान्वित प्रत्येक कोण पर छोटे २ कटक होते हे जो ऊपर व नीचे के सिरो पर होते है। १० कटक ऊपर १० नीचे होते है ।

कुछ मे तीन ही प्रकोष्ठ होते है। इन पर ऊपर दो दो कटक नीचे भी दो दो कटक होते हैं। ऊपर के बडे नीचे के ईषत छोटे होते हैं। इनके प्रकोष्ठो मे बीज होते है ।

मूल—लम्बी श्वेत मृदु गोल होती है। इसमे एक सुगन्ध पायी जाती है। स्वाद मधुर कषाय होता है ।

रस - मधुर

गुण—गुरु स्निग्ध

विपाक—मधुर

प्रभाव—मूत्रल-वृष्य

वीयकालावधि—१वर्ष

चित्रक (वनौषधि विशेषांक तृतीय भाग पृष्ठ ८०)

नाम—चित्रक, चीता

प्लम्बेगो जिलेनिका (Plumbago Zeylanica Linn)

असली—चित्रक (१) श्वेत चित्रक—लै०—प्लम्बेगो जिलेनिका (Plumbago Zeylanica Linn)

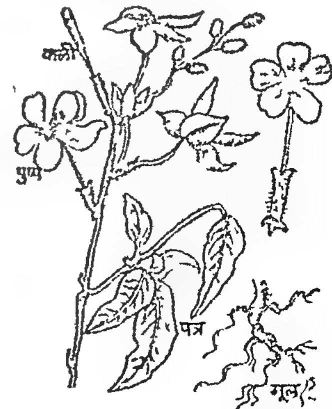
(२) रक्त चित्रक (Plumbago Indico Linn) प्लम्बेगो इन्डिका

(३) नीलचित्रक (Plumbago Copensis Thumb) प्लम्बेगो कैपेन्सिस

(१) इनमे श्वेत चित्रक ही अधिक मिलता है। इसकी मूल औषधि मे प्रयोग होती है ।

(२) लाल की भी मूल के साथ मिलावट होती है ।

मिलावट—चित्रक मूल से मिलती जुलती जडे इसमे मिलाई जाती है ।



परीक्षा—चित्रक की जड आधे से १॥ इन्च मोटी एक इन्च व्यास में मोटी होती है। मूल त्वक सूखने पर

लाल गाढे भूरे रग की हो जाती है। इसका अन्तर भाग भूरे रग का रेखान्वित होता है। तोडने पर टूट जाता है। स्वाद मे कटु और जीभ पर चरपराहट पैदा करता है। मूल काष्ठ हल्का गुलावी पीत श्वेत रग की होती है।

सग्रहण–चित्रक के मूल मे सगठित तत्व प्लम्वेजिन होता है जो ६ से १००% पाया जाता हे।

रस—कटु
गुण—लघु-रूक्ष-तीक्ष्ण
वीर्य—उष्ण
विपाक—कटु
प्रभाव—दीपन पाचन
वीर्य कालावधि—१-२ वर्ष।

चोपचीनी (बनौषधि विशेषांक तृतीय भाग पृष्ठ १२४)

नाम—चोपचीनी, द्वीपान्तर वचा।

शुद्ध द्रव्य—चोपचीनी, द्वीपान्तर वचा–भावमिश्र

लैं०—स्माइलेक्स चाइना (Smilax China L)

कुल—चोपचीनी (Smilaceae)

प्रयोज्य अ श—यह चाइना से आने वाला एक मूल है जो भौमिक काण्ड का स्वरूप हे।

मिलावट—यह चीन से आती है। जापान मे भी पायी जाती है। इसके कई भेद भी है—

(१) वडी चोपचीनी (Smilax Glabra Roxb)

(२) हिन्दी चोपचीनी (S Lancefolia Roxb)

(३) जगली देशी उसवा (S Macrophylla Roxb)

यह प्रतिनिधि स्वरूप ग्रहण किया जा सकता है।

परीक्षा—चोपचीनी के कद को चोपचीनी नाम से पुकारते हे। आकार मे लम्वगोल वडे आलू की तरह कुछ चपटा ग्रन्थियुक्त भूरे रग की छाल से आवृत होता है। छिल्का हटाने पर कद का भाग गुलावी, लाल, श्वेत, कठिन, पिष्ट वहुल, पिच्छिल व गध रहित होता ह। छिल्का ग्रन्थी व श्वेत भाग हटाकर कठिन गुलावी चपटा भाग वाजार मे आता है। इसे सम्हाल कर न रखने पर कीट लग जाते है। इसमे वसा, शर्करा, ग्लूकोसाइड, रजक द्रव्य व राल जैसा पदार्थ मिलता है। इनमे पिष्ट या स्टार्च का भाग होता है।

रस—तिक्त कटु।
गुण—लघु रूक्ष।
विपाक—कटु।
वीर्य—उष्ण।
प्रभाव—शोथहर, वेदना स्थापक, वल्य।

जटामांसी (बनौषधि विशेषांक तृतीय भाग पृष्ठ १५६)

नाम—मासी, जटामासी।

शुद्ध द्रव्य—जटामासी लैं०–नार्डोस्टैचिज जटामासी (Nardostachys Jatamansi)

कुल—तगर कुल (Valarianaceae) यह हिमालय व भूटान के ११ से १७ हजार फीट की ऊँचाई पर क्षुप के रूप मे पाई जाती हे। लोमावृत भौमिक काण्ड जटामासी या वालछड कहते है।

मिलावट—जटामासी की विभिन्न जातियाँ पाई जाती है। इनमे निम्न की मिलावट होती है–

(१) सिम्वोपोगन स्किनैन्थुम (Cymbopogon Schoenanthus)

(२) एन्ड्रोपोगन स्किनैन्थुम (Andropogon Schoenanthus Linn) की जडो की मिलावट होती हे।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—जटामासी के छोटे-छोटे वहुवर्षायु होते है। इनका भौमिक काण्ड वाजार मे सूखा हुआ मिलता है जो छोटी अगुली जैसा मोटा होता है। जटा की भाँति उसके पत्रावरण लिपटे रहते है जो सघन भूरे रेशे या सूत्र की तरह दिखाई पडते हैं। काण्ड मे पुष्प दंड भी पाये जाते हे। वीच से काटने पर काष्ठीय भाग लालिमा लिये भूरे रग का कोणाकार दिखाई पडता हे। यह स्वाद मे तिक्त होता हे।

रस—तिक्त।
गुण—लघु-रूक्ष।
विपाक—कटु।
वीर्य—शीत।
प्रभाव—मेध्य–अनुलोमन।
वीर्य कालावधि—६ मास से १ वर्ष।

विशेष—इसमे सुगन्धित उडनशील तैल राल व जल विलेय अम्ल होता हे। यह निद्राकारक मेध्य व अरति नाशक है।

जयपाल (वनौषधि विशेषाङ्क तृतीय भाग पृष्ठ १६७)

नाम—जयपाल, जमालगोटा।

शुद्ध द्रव्य—जयपाल।

लैटिन—क्रोटन टिग्लियम (Croton Tiglium Linn)।

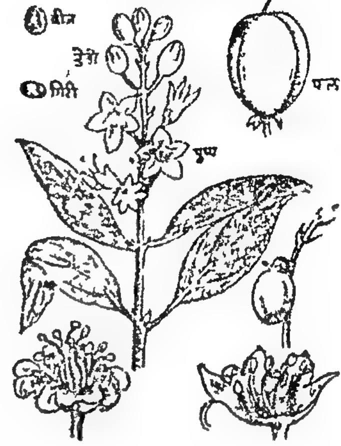
कुल—एरण्डादि कुल (Euphorbiaceae)।

प्रयोज्यांश—इसके बीज तथा बीज के तेल का प्रयोग औषधि मे किया जाता है।

मिलावट वाले द्रव्य—एरण्डादि कुल की अन्य जातियो के बीज की मिलावट होती है।

जेट्रोफा कोर्कास-या व्याघ्र एरण्ड के बीजो को देहरादून के आस-पास जयपाल के नाम से पुकारते है। इसके बीज बडे लम्ब गोल होते है। बीज के पृष्ठतल पर उन्नतोदर और दोनो पार्श्व दबे हुए त्रिकोणाकार हो जाते हैं। इसके ऊपर हल्का चित्रण रहता है। बीज के सिरे पर एक घुण्डी होती है जो सफेद होती है। एक फल मे तीन बीज होते है।

परीक्षा—जमालगोटा एरण्ड बीज की भांति ½ इञ्च लम्बा, ⅖ इञ्च चौडा अण्डाकार कृष्णाभ भूरे, रङ्ग का होता है। इसका बाहरी आवरण बादामी रङ्ग का तथा चित्रित होता है। इसका बाहरी पृष्ठ उन्नतोदर और भगुर होता है। आवरण के टूटने पर भीतर सफेद गूदा निकलता है। इसमे दो दल होते है। दोनो दलो के बीच मे सूक्ष्माकार जीभी होती है। इसके गूदे से तैल निकलता है। गूदा खाने पर बादाम की तरह, कटु स्वाद का होता है। जीभ पर जलन पैदा करता है।



तैल—जमालगोटे का तैल भूरे पीले रङ्ग का होता है। पुराना होने पर लाल हो जाता है। स्वाद मे कटु और जीभ पर जलन पैदा करता है।

रस—कटु

गुण—गुरु, स्निग्ध, तीक्ष्ण।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—तीव्र रेचक, स्फोटजनन।

वीर्य कालावधि—२-५ वर्ष तक।

जायफल (वनौषधि विशेषाङ्क तृतीय भाग पृष्ठ २२५)

नाम—जायफल, जातीफल।

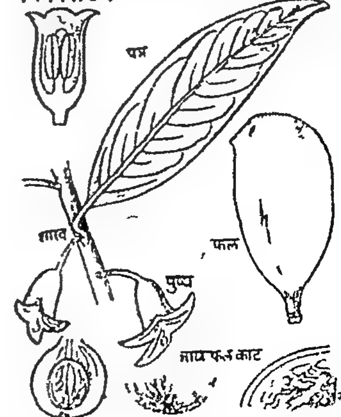
शुद्ध द्रव्य—जायफल, जातीफल।

लैटिन—मिरिस्टिका फ्रेग्रेन्स (Myristica Fragrans Houtt)।

कुल—जातीफल कुल (Myristicaceae)

प्रयोज्यांश—बीज तथा बीजावरण। बीजावरण को जावित्रि के नाम से पुकारते है।

मिलावट वाले द्रव्य—बाजार मे जायफल असली और नकली दो प्रकार के मिलते है। नकली जायफल असली जायफल से मिलता जुलता होता है। इसे पहिचानना कठिन हो जाता है। इसे मिरिस्टिका अर्जेसिया

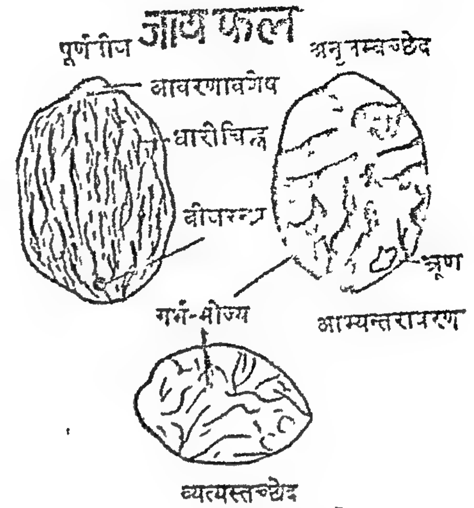


कहते है। इसका बाजारू नाम मकासर जायफल है। यह असली जायफल से अधिक लम्बा कम चौडा अल्प सुगन्धित स्वाद मे बहुत तिक्त होता है। यह मालाबारी जायफल से मिलता जुलता है।

सडे गले जायफल के बीज और उसके छिलके का चूर्ण साचो मे ढालकर पालिशकर चूना के रग मे लपेट सुखाकर बनाये जाते है। इस नकली को असली मे भेद करना कठिन हो जाता है। मिलावटमे बम्बई के बाजार मे मिरिस्टिका मालाबारिका जिसके बीज को रामफल या देशी जायफल कहते है। यह आकार मे असली जायफल से अधिक अर्थात् १-२ इच लम्बा, कम चौडा होता है।

इसमे असली जायफल की सुगन्धि नही होती। फलो की सुरक्षा के लिए इस पर चूने का घोल लगा देते है। यह सफेद रग का होता है।

परीक्षा—जायफल का आकार लम्ब-गोल वृन्त की तरह मोटा चौडा २-३ सेमी लम्बा और डेढ से दो सेमी चौडा हल्के भूरे रङ्ग का होता है। इसके ऊपर छोटी-छोटी रेखाये बनी होती है। जगह-जगह गाढे भूरे रङ्ग के बिन्दु दिखाई देते है। इसके बीज के ऊपर एक बडा आवरण होता है। इसको हटा देने पर नीचे एक पतली झिल्ली जो गहरे पीले वर्ण की फैली रहती है। सूख जाने पर यह स्थान-स्थान पर कट जाती है। इसे जावित्री कहते है। इसके नीचे लाल भूरे रङ्ग का बीज होता है। बीज को नाखून से दबाने पर तेल दिखाई पडता है। इसमे एक विशेष प्रकार की गन्ध होती है। बीज को काटने पर श्वेत और लाल रग की धारियां दिखाई पडती है। इसमे तीव्र गन्ध होती है। स्वाद तीक्ष्ण और कटु होता है। नकली जायफल या जङ्गली जायफल—यह



अधिक लम्बे, लम्बे गोल और कम सुगन्धित, स्वाद मे अति तिक्त होते हैं। उत्तम जायफल मे तेल ५% होता है।

जावित्री—यह जायफल के बीजो के ऊपर बाह्यावरण का भाग है। जो फलावरण के नीचे रहता है। ताजी जावित्री गहरे लाल वर्ण की होती है। सुखा देने पर सुनहले पीले रग की हो जाती है। इसमें ४-१७ प्रतिशत उडनशील तैल होता है। यह बहुत सुगन्धित पत्राकार और स्वाद मे तिक्त होती है।

रस—जायफल का रस-कटु-तिक्त।

गुण—लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—वेदनास्थापन, ग्राही, दीपन, पाचन, वातानुलोमन।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष तक। तैल का-बहुवर्ष और जावित्री के बहुवर्ष।

जीवन्ती (वनौषधि विशेषाँक तृतीय भाग पृष्ठ २४६)

नाम—जीवन्ती।

शुद्ध द्रव्य—जीवन्ती, लै०—लेप्टाडेनिया-रेटिकुलाटा। (Leptadenia Reticulata), कुल-अर्क कुल (Asclepiadaceae), प्रयोज्य अङ्ग-इसका पचाग विशेषकर पत्र और काण्डमूल तथा पुष्प का प्रयोग होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—जीवन्ती की वृक्षारोही लता होती है जिनके पुराने काण्ड रूक्ष और खरदरे तथा कोमल भाग श्वेताग मृदुरोम से भरी होती है। पुरानी पत्तिया मोटी और नयी पत्तिया मृदु कोमल होती है। इसके बदले मे कई प्रकार की लताओ का प्रयोग होता है जैसे—डेन्ड्रोबियम मेकाई तथा एक वृक्षारोही लता जो आर्किट जाति की है। इसका सुखाया हुआ पीला काण्ड बाजारो मे मिलता है।

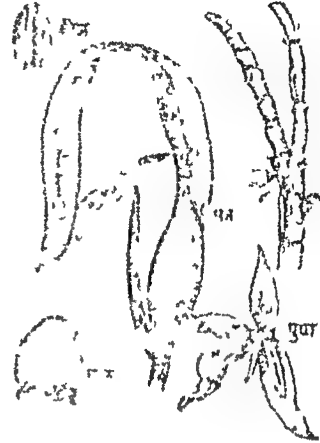
परीक्षा—जीवन्ती की लता बहुत ही सुन्दर और वृक्षारोही होती है। पत्र कोमल रोमस तथा पुष्प बाहर दण्ड पर गुच्छो मे लगते है। इसकी फलिया एक साथ दो

निकलती है,जो २ से ३॥ इन्च लम्बी पौन इन्च मोटी होती हैं और इनका अग्रभाग कौवे की चोंच की तरह होता है। यह दो प्रकार की होती हैं—जीवन्ती और स्वर्ण जीवन्ती। फलियों को तोड़ने पर सफेद दूध निकलता है। यह सामान्य जीवन्ती है और जिससे पीला दूध निकलता है उसे स्वर्ण जीवन्ती कहते हैं। पत्तों के तोड़ने पर दूध नहीं निकलता है।

बाजारों में अधिकांश वृक्षों पर उगने वाली आर्किड वंदा की जाति की होती है, उसका सूखा हुआ पीले रंग का काण्ड बाजार में मिलता है। गुजरात और महाराष्ट्र में लेप्टाडेनिया रेटिकुलाटा-डोडी के नाम से पुकारते हैं और इसका शाक बड़े शौक से खाते हैं किन्तु पीले रंग वाली जीवन्ती का शाक कोई नहीं खाता, तरा यह पैदा होती है। यह सिक्किम बंगाल में अधिक पायी जाती है।

जीवन्ती को 'शाकश्रेष्ठा' लिखा है। अतः यहाँ जीवन्ती लेप्टाडेनियम् रेटीकुलाटा का असली जीवन्ती मानना चाहिए।

रस—मधुर।
विपाक—मधुर।
वीर्य—शीत।
गुण—गुरु, स्निग्ध।
प्रभाव—हृद्य।
वीर्य कालावधि—मूल १ वर्ष तक।
पत्र—पुष्प सद्य प्रयोगात्।




डोडी शाक (जीवन्ती)
LEPTADENIA RETICULATA W&A

तगर (वनौषधि विशेषांक तृतीय भाग पृष्ठ ३००)

नाम—तगर, सुगन्धवाला

शुद्ध द्रव्य—तगर, सुगन्धवाला। लैं०—वेलेरिआना इन्डिका राइजुमा (Valerianae Indica Rhizoma)

कुल—जटामासी कुल (Valerianaceae)

नोट—यह ७०००-१०००० फीट की ऊँचाई पर पाया जाने वाला एक सुगन्धित क्षुप है। जिसका मूल तगर के नाम से प्रयोग होता है। यह सुगन्धित और गांठदार होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—(१) हिमालय में ४०००-१२००० फुट की ऊँचाई पर और खासिया की पहाड़ियों पर ४०००-६००० फुट की ऊँचाई पर इसकी एक जाति पायी जाती है जिसे वेलेरियाना हार्डविकिआई कहते हैं। इसकी जड़ें सुगन्धित होती हैं और तगर से बड़ी होती है। इसका प्रयोग तम्बाकू आदि को सुगन्धित बनाने के लिए होता है। (२) बाजारों में तगर के नाम से चन्दन की तरह एक काली लकड़ी बिकती है जो वास्तव में तगर नहीं है।

परीक्षा—(१) तगर 'वेलेरियाना इन्डिका'-का भौमिक काण्ड या राइजोम है, जो मटमैला पीले रंग का टेढ़ा-मेढ़ा गांठदार और बेलनाकार चपटा होता है। उसके नीचे के तल पर टूटी हुई जड़ों का चिह्न होता है। यह गांठें पत्तियों के वृन्तावरण से बनती हैं। तोड़ने पर सरलता से टूट जाता है। इसमें एक प्रकार की सुगन्ध पाई जाती है।

(२) विदेशों से भी तगर मगायी जाती है। यह कुछ अधिक भूरे रग की सुगन्ध युक्त होती है। स्वाद मे तिक्त और कर्पूर जैसी गन्ध वाली होती है।

रस—तिक्त, कटु।

गुण—लघु, स्निग्ध।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

प्रधान कर्म—वेदनास्थापन, आक्षेपहर और मेध्य होता है।

वीर्य कालावधि—६ मास से १ वर्ष तक।

तालीस पत्र (वनौषधि विशेपाङ्क प्रथम भाग पृष्ठ २२५)

नाम—तालीस पत्र।

शुद्ध द्रव्य—तालीस पत्र।

लेटिन—टॉक्सस बक्काटा (Taxus Baccata Linn)।

कुल—सरल कुल (Coniferae)।

तालीस के इस पेड के पत्रो का सग्रह औषधार्थ होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—सरल वर्ग के अन्य पेडो के पत्र भी मिलाये जाते है—

१ एबिस वेबीयाना (Abies werviana) २ रोडोडेंड्रन एन्थोपोगन ३ रोडोडेंड्रन कम्पेनुडेटम् ४ रोडोडेंड्रन लेपिडोटम् इत्यादि। इनके पत्र तालीसपत्र के समान होते है। धात्री पत्र को भी तालीशपत्र की जगह पर मिला देते है।

परीक्षा—थुनेट के मध्यम ऊँचाई के सदा हरित वृक्ष होते हैं। पत्तिया दो कतारो मे निकली होती है, जो २.५ से ३.७५ से०मी० या १-१॥ इन्च लम्बी, १/४ से० मी० या १/१० इन्च के लगभग चौडी रेखाकार चिपटी नोकीली तथा उर्ध्व पृष्ठ पर गहरे हरे रग की और अध पृष्ठ पर हलके पीले या भुरचई रग की होती है। सिरा एक और पत्रनाल छोटा होता है। पत्तियो मे विशेषतः सूखने पर एक प्रकार की गन्ध आती है।

बाजार मे मिलने वाले तालीस पत्र मे बारीक शाखाएँ भी होती है, तथा पत्र बेद पत्र के समान १-२ इन्च लम्बे, शल्याकृति, शिरारहित और पिलाई लिए हरे रग के होते हैं। इसकी किसी किसी टहनी पर पुष्प भी लगे पाये जाते है। पत्रो मे एक सुगन्धि पायी जाती है।

रस—तिक्त।

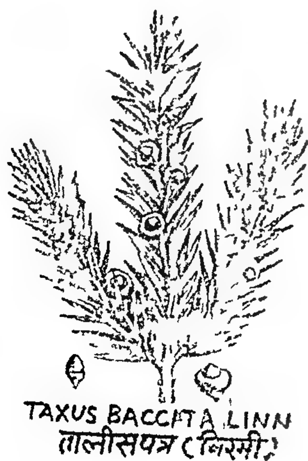
गुण—लघु, तीक्ष्ण।

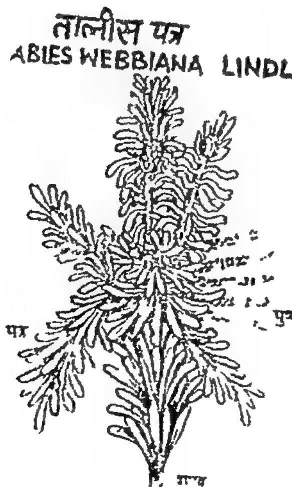
विपाक—मधुर।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—कफवातशामक, वेदनास्थापन, रेचन, दीपन, वातानुलोमन, ज्वरघ्न, श्वास-कासहर, मूत्रल एव बल वर्धक आदि।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष तक।


TAXUS BACCATA LINN
तालीसपत्र (निरमी)


तालीस पत्र
ABIES WEBBIANA LINDL


तालीस पत्र
RHODODENDRON LEPIDOTUM

तिल (बनौषधि विशेषाँक तृतीय भाग पृष्ठ ३४५)

नाम तिल्ली।

शुद्ध द्रव्य तिल्ली। लै०-सेसमम इन्डिकम लिन्न। (Sesamum indcum Linn).

कुल–तिक्त कुल (Pedaliaceae)

यह २-५ फीट तक ऊँचा कोमल एक वर्षायु क्षुप है। इसका पौधा रोमावृत्त होता है। इसकी फली १ इञ्च लम्बी और चतुष्कोणाकार होती है। इसमे छोटे-छोटे काले बीज होते है। बीज तीन प्रकार के होते हैं। १ काले २. लाल। ३ सफेद।

काले तिल्ल का तैल सर्वोत्तम होता है। इसके बीज और पत्र का प्रयोग होता हे।

मिलावट वाले द्रव्य—तिल्ल की खेती होती है। इस लिए तिल्ल पर्याप्त मात्रा मे बाजार मे मिलता है। अत बीज मे इसकी मिलावट सभव नही हैं।

तैल—तिल्ल का तैल एक मीठा तैल है। यह गाढा, हल्के पीत वर्ण का तैल होता है। यह तैलो मे श्रेष्ठ होता है और महगा भी बिकता है। इसलिए इसमे सस्ते तैलो की मिलावट की जाती है। जैसे—मूंगफली के तैल,बिनोले का तैल, सरसो का तैल विशेषकर मूंगफली का तैल जो उसकी खली से निकाला जाता है। पतला, श्वेत और निर्गन्ध होता है। इसका मिश्रण किया जाता है।

मूंगफली का तैल—पहले मिलो मे पेर लिया जाता है। जो खली बच जाती है, इसको पुन. पेट्रोल अथवा ह्वाइट आयल से मुलायम करके बडी भारवाली मिलो मे पुन पेरा जाता हे। यह तैल पतला, सफेद, निर्गन्ध और अधिक सस्ता होता हे। इसका मिश्रण तिल्ली के तैल मे किया जाता है। लोभी व्यापारी तिल्ली के तेल मे सफेद खनिज तैल अधिक मात्रा में मिलाकर कुछ सस्ते भावो में बेचते है। ये नीच व्यापारी मनुष्य के जीवन का ध्यान न रखकर ऐसा करते है। इससे बाल असमय मे पक जाते है और सफेद हो जाते है।

परीक्षा—तिल्ल का तैल–एक सर्वोत्तम तैल हे। तिल्ल से निकलने के कारण इसको तैल कहते है। फिर इस तैल शब्द से सब तरह के तैलो का ग्रहण होता है। तिल्ल के तैल मे तिल्ल की गध आती है। यह किसी मे विलेय नही होता। अल्कोहल-ईथर क्लोरोफार्म-पेट्रोलिय मे यह आशिक घुलनशील है। इसका अपेक्षित गुरुत्व २० डिग्री उष्मा पर ०·९१६ से ०·९२० तक रहता है। इसका अम्लिक मूल्य ४—आयोडिन वेल्यू १०३ से ११२ है। सैपोनिफिकेशन वेल्यू १८८ से १९३।

परीक्षण—१० सी सी नमक के तेजाब मे १॥ ग्रे० शुकोज मिलाइये। एक परीक्षण नलिका मे १ सीसी तिल्ल तैल ले और उसमे उपर्युक्त विलयन मिलावे। १/२ मिनट तक खूब हिलावे। इसके बाद उसे रख दे। परिणाम यह होता है कि अम्ल वाला भाग टेस्टट्यूब मे अलग हो जाता हे जो चमकीले लाल रग का हो जाता हैं। बाद मे यह गाढ़े लाल रँग का हो जाता है। ऐसा परिवर्तन अन्य किसी स्थिर तैल मे नही होता। तिल्ल मे जो तैल निकलता है वह ४८ से ५० प्रतिशत स्थिर तैल, २० प्रतिशत प्रोटीन, अल्प मात्रा मे कोलीन-सेक्रोज और लेसिथिन पाये जाते है। तिल्ल तैल की विशेषता यह है कि इसमे ओलिक अम्ल-लिनोलिक अम्ल के अनेक भाग तथा स्टेयरिक, पामीटिक और अरेकिडिक अम्ल के ग्लिसराइड्स पाये जाते है। जिसके कारण तिल्ल का तैल अन्य तैलो से बालो के लिए अधिक पौष्टिक होता है।

रस—मधुर।
अनुरस—कषाय।
गुण—गुरु-स्निग्ध।
विपाक—मधुर।
वीर्य—समशीतोष्ण।
प्रभाव—केश्य-मेध्य और स्नेहन होता है।
वीर्यकालावधि—बीज २ वर्ष, तैल-कई वर्ष तक।

तुवरक (बनौषधि विशेषाँक प्रथम भाग पृ. ६७)

नाम—तुवरक, चालमोगरा

शुद्ध द्रव्य—तुवरक, चालमोगरा।

लै०–हीड्नो कार्पस वाईटिआना (Hydnocarpus Wightiana Blume) अथवा हीड्नोकार्पस लाउरीफोलिया (Hydnocarpus Laurifolia)

कुल—प्राचीनामलक कुल (Flaccurtiaceae)

इसके बीज और तैल का औषधार्थ प्रयोग किया जाता है।

मिलावट वाले द्रव्य – तुवरक के सुन्दर वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ सीताफल की तरह चिकनी और चमकदार होती हैं। इसके स्वरूप मे मिलते-जुलते निम्न भेद मिलते हैं–

न० १—हिडनोकार्पस कुर्जीई।

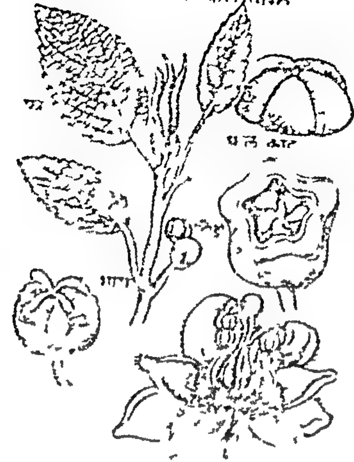
न० २—गाईनोकार्डिया ओडोरोटा।

इनके तैल का सगठन तुवरक के तैल मे बहुत मिलता है। कुर्जी का बीज स्वरूप और तैल तुवरक के फलो मे मिलता जुलता होता है। अत तुवरक का यह अच्छा प्रतिनिधि है।

बीजो के ऊपर एक बीजावरण होता है।

परीक्षा—तुवरक के फल मे १०-१५ तक बीज निकलते है जो पौन इन्च लम्बे दोनो किनारो पर कोणाकार होते हैं। बीजो के ऊपर गूदा लगा रहता है। उसे साफ कर देने पर बीज का आवरण दिखाई पडता है जो काफी कडा होता है और इसके ऊपर धारियाँ बनी होती हैं। भीतर बीजो में दो दल पाये जाते हैं। बीजावरण के नीचे बीज के ऊपर का छिलका बादामी रग का होता है। इसके नीचे सफेद दो मोटे दल होते हैं जो सफेद रग के होते ह। इनमे काफी स्नेह होता है।

तैल–इसका तैल तुवरक तैल या कवा का तैल कहलाता है। लै०–ओलियम हिडनोकार्पी है। यह गाढा जमजाने वाला तैल होता है। जो गरम करने पर पीले



रग का होता है। जम जाने पर घी की तरह सफेद जम जाता है। इसमे एक विशेष प्रकार की अहृद्य गध होती है। स्वाद किंचित कटु होता है। यह गरम अल्कोहल मे घुल जाता है।

परीक्षा—परखनली में चालमोगरे का तैल लेकर गधक का तेजाब १ मी० मी० डालने पर रग भूरा लाल हो जाता है। बाद मे यह हरे रग का हो जाता है।

रस–तिक्त, कटु, कषाय।

गुण – गुरु-स्निग्ध।

विपाक – कटु। वीर्य–उष्ण।

प्रभाव—कुष्ठघ्न, रक्त शोधक, व्रण रोपण।

वीर्यकालावधि—तैल दीर्घ काल तक।

तुम्बुरु (वनौषधि विशेषाङ्क द्वितीय भाग पृष्ठ ३५५)

नाम—तुम्बुरु, नेपाली धनिया।

शुद्ध द्रव्य—तुम्बुरु, नेपाली धनिया।

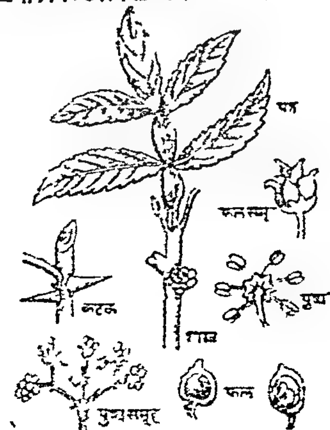
लै०-जन्थोक्सिलम-एलाटुम् राक्सबग (Zathoxylum Alatum Roxb)

कुल–जम्बीर-कुल (Rutaceae)

प्रयोज्य अङ्ग—तुम्बुरु तेजबल का फल है।

यह धनियाँ नही है किन्तु बडी धनियाँ के आकार से मिलता जुलता होता है। इसका आयात नेपाल से होने के कारण इसको नेपाली धनियाँ कहते ह।

मिलावट वाले द्रव्य तुम्बुरु की अन्य जातियाँ भी जिनका प्रयोग नेपाली धनिये के रूप मे होता है। जैसे—(१) त्रिफल-जान्थोक्सिलुम् हेट्सा। (२) जान्थोक्सिलुम बदरोगा।



दोनो के फल तुम्बुरु जैसे किन्तु कुछ बडे मटर के बराबर होते है ।

तिमूर —जो कि जान्थोक्सिलुम के ही वर्ग का है उसके भी फल का प्रयोग होता है । इनमे प्रधान—

(१) जान्थोक्सीलुम् अकाथोपोडियम् (Z Acanthopodium DC (२) जाथोक्सीलुम आँक्सीफिल्लुम (Z Oxyphillum Edgew) (3) जाँथो-ओवाली फोलिइम Z ovalifollium Wight तथा (4) Z Bamiltanianum Well जाथो अकाथोपोडियम तथा जाथो आक्सी-फिल्लुम के वृक्ष हिमालय प्रदेश मे सिक्किम से भूटान तक (२१३३-२४०८ मीटर या ७-८ हजार फुट की ऊँचाई तक) तथा खासिया की पहाडियो पर(१२०४-१८२८ मीटर या ४-६ हजार फुट तक) पाये जाते है ।

जाथो० हामिल्टोनिआनुम आसाम की पहाडियो पर तथा जाथो० ओवाली फोलिइम आसाम मे तथा दक्षिण भारत मे कनाडा, कुर्ग, नीलगिरी, एव मद्रास मे पाया जाता है। जाथो आक्सीफिल्लुम् एव जाथो० हामिल्टोनि-आनुम के फल तुम्बुरु की ही भाति किन्तु प्राय अवृन्त (Sessil-) तथा स्वाद मे तिरफल की भाति होते है ।

परीक्षा—तुम्बुरु का फल देखने मे धनियाँ की तरह लगता है । किन्तु यह अर्ध गोलाकार कालीमिर्च से बडा होता है । तथा उसका आधा भाग फटा हुआ दिखाई देता है । बाहर से देखने मे रक्ताभ भूरा दिखाई पडता है । बाह्य पृष्ठ दानेदार होता है । ये दाने एक प्रकार के स्निग्ध राल व तेल से पूर्ण होते है । फलो के अन्दर छोटा सा गोल काला चमकदार बीज होता है । स्वाद मे कटु और चरपरा लगता है तथा तीक्ष्ण गध आती है। यह स्वाद मे कुछ अम्ल, सुगन्धित-तिक्त और कटु होती है। कुछ लोग इसकी चटनी पीसकर भी प्रयोग करते हैं। इसके पेड को नेपाल में तेजवल कहते है। यह हिमालय प्रदेश मे पजाब से नेपाल तक पाया जाता है। इसका आयात् नेपाल से और विदेशो मे सूडान से होता है ।

रस—कटु-तिक्त ।
गुण —लघु-रुक्ष-तीक्ष्ण
विपाक—कटु ।
वीर्य—उष्ण ।
प्रभाव—हृद्य और मुख शोधन ।
वीर्यकालावधि—१ वर्ष ।

तेजपत्र (वनौषधि विशेषॉक तृतीय भाग पृष्ठ ३८२)

नाम—तमालपत्र, तेजपत्र ।

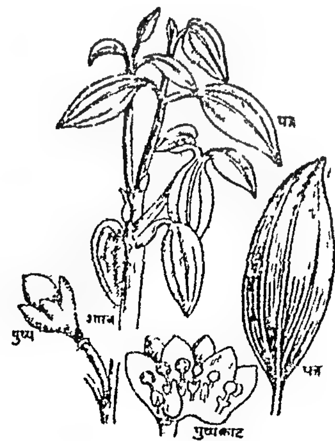
शुद्ध द्रव्य—तमालपत्र तेजपत्र । लै०-सिनेमोमम् तमाला (Cinnamomum Tamala Nees)

कुल—कर्पूर कुल (Lauraceae) ।

इसके वृक्ष मध्यम ऊँचाई के होते है । जो सिन्धु नदी से भूटान तक तथा ३००० से ७००० फीट की ऊँचाई तक हिमालय के चक्रवता, गढवाल, कुमाऊँ, सिलहट तथा खासिया की पहाडियो पर पाये जाते है । इनके पत्तो का प्रयोग औषधार्थ होता है। इसके फलो का भी प्रयोग काले नागकेशर के नाम से होता हे ।

मिलावट वाले द्रव्य—तेजपात की कई जगली जातियाँ होती है जिनके पत्तो की मिलावट इसमे की जाती है। इसमे लौग और दालचीनी के पत्र भी मिलाये जाते है।

परीक्षा—तेजपात की पत्तियाँ लम्बाई मे ६ इन्च तक लम्बी और १॥ से २॥ इन्च चौडी होती हैं। इनका आकार प्रारम्भ मे आयताकार और आगे नोकदार हो



जाता है । इसमे विशेषता यह होती है कि पत्र वृन्त मे तीन सिराये निकलती हैं—दो किनारो से और एक मध्य से, यह इसकी विशेष पहचान हे । पत्तियो का रग हरा-पन लिए होता हे। पत्र का उर्ध्वपृष्ठ चिकना और पत्रोदक

मसृण होता है। इसमे विशेष प्रकार की लौंग और दालचीनी की तरह गध आती है। वृक्ष जब दस वर्ष के हो जाते हैं तब उनके पत्रो मे विशेष सुगन्ध होती है। इस समय इसके पत्रो का सग्रह उचित होता है। पत्रो का सग्रह अक्टूबर, दिसम्बर से मार्च तक किया जाता है।

रस—कटु और मधु।

गुण—लघु और तीक्ष्ण।

विपाक -कटु।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—दीपन, पाचन, वातानुलोमन।

वीर्य कालावधि—६ मास से १ वर्ष तक।

त्रायमाणा (बनौषधि विशेषांक तृतीय भाग पृष्ठ ३८९)

नाम—त्रायमाणा।

शुद्ध द्रव्य—त्रायमाण

लै०—डेल्फिनियम जलील (Delphinium Zalil)

कुल—किरातादि कुल (Gentianaceae)

इसके पचाग का प्रयोग होता है।

मिलावट वाले द्रव्य-त्रायमाणा के बदले इसमे नीचे लिखे द्रव्यो की मिलावट की जाती है

(१) कुटकी के पत्र और जड, (२) जेन्सियाना डेकवेस, (३) जेन्सियाना टेनुला, ४) ममीरा, (५) ममीरा की अन्य जातिया, (६) बगाली त्रायमाणा, (७) बलाडमूर (८) गुल बनप्सा।

इसमे-(१)जेन्सियन पर्प्यूरिया, (२) जेन्सियन पेनोनिका और (३) जेन्सियन पेन्टाटा के भौमिक काड को भी कटुकी की तरह ग्रहण करते है।

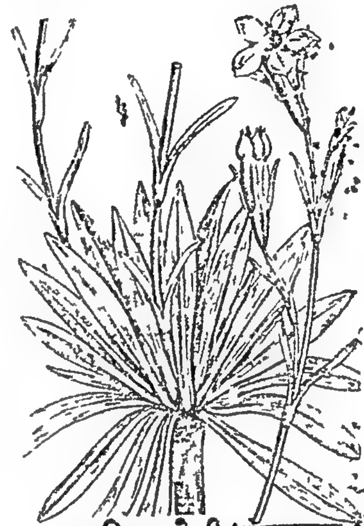
परीक्षा-(१)त्रायमाणा १ वर्षायुक्षप हे जिसका स्वाद वहुत तिक्त होता है। इसका पौधा कुटकी के पौधे से मिलता-जुलता होता हे। यह अल्मोडा, नैनीताल और कुमाऊ की पहाडियो पर अधिक होता है। इसको वहा के लोग भी त्रायमाण ही कहते है।

(२) बम्बई के बाजारो मे गुल्जलील के नाम से जो पौधा आता है, वह वास्तविक त्रायमाणा है। इसके पुष्प पीले और पानी मे डालने पर पीला रग देते हैं।

(३) जेन्सियम कुर्रो या कटुकी तथा कटुकी की अन्य जातिया कुछ लोग प्रयोग करने की सम्मति देते है। यह तिक्त रस होने के कारण प्रतिनिधि स्वरूप ग्रहण की जा सकती है।

(४) ममीरा-ममीरी, इनका ग्रहण प्रतिनिधि के रूप मे भी उचित नही है।

(५) बगालियो का बलाडुम्बर नितान्त त्रायमाणा के



गाफिस देशी (त्रायमाण)
GENTIANA KURRO ROYLE



गाफिस (गुल्ले गाफिस)
[illegible] IANA DAHURICA FISCH

रस-गुण-वीर्य-विपाक से प्रथक् हैं। इसका ग्रहण अनुचित है।

रस—तिक्त।

गुण—रुक्ष-लघु।

विपाक—कटु।

वीर्य—शीत।

प्रभाव—ज्वरघ्न।

वीर्यकालावधि—३ मास से ६ मास तक।

आभ्यन्तर मज्जा भाग भूरे वर्ण का होता है। इसके—

रस—तिक्त।

गन्ध—मृदु सुगन्ध।

गुण—लघु-खर-कठिन-रुक्ष।

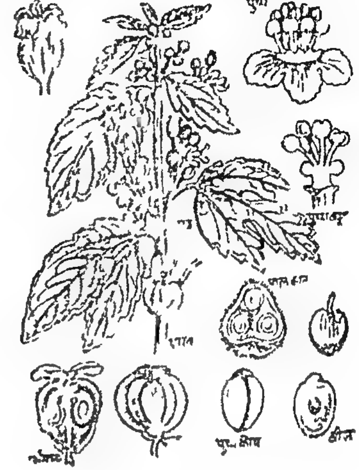
विपाक—कटु।

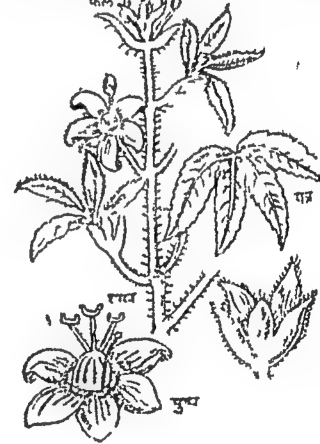
वीर्य—शीत।

प्रभाव—भेदन-तिक्त-बल्य-ज्वरघ्न।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष तक।

दन्ती (वनौषधि विशेषांक तृतीय भाग पृष्ठ ४१६ से ४२८ तक)





नाम—दन्ती, उदूम्बर पर्णी ।

शुद्ध द्रव्य—दन्ती, उदूम्बर पर्णी ।

लै०—वेलियोस्पर्मम-मान्टेनुम (Baliospermum Montanum)

कुल—एरण्ड कुल (Euphorbiaceae) ।

प्रयोज्याग—दन्ती के मूल और बीज का उपयोग औषधार्थ होता है । दन्ती के गुल्म ३-६ फुट तक ऊँचे बहुशाखाओ से युक्त होते हैं । इनकी पत्तियाँ गूलर के पत्तो की तरह ऊपर की ओर प्रायः छोटी, नीचे की ओर लट्वाकार, बहुत बडी, आगे को नोकदार हो जाती हैं । पुष्प और फल मजरी मे लगते हैं ।

मिलावट वाले द्रव्य—(१) दन्ती की मूल ऊपर मोटी, नीचे क्रमश पतली होती जाती है । अत त्वचा मृदु और नीचे का काष्ठ कडा होता है । इससे मिलती-जुलती मूल व्याघ्र एरण्ड (वघरेणा या वज्रदन्ती) की होती है । इसके मूल का मिश्रण दन्ती मूल के साथ होता है । बाजारो में दन्ती मूल के स्थान पर इसी की मूल मिलती है ।

(२) नागदन्ती का मूल भी बाजार मे दन्ती मूल के नाम से मिलता है ।

(३) एरण्ड मूल का मिश्रण भी इनके साथ होता है । बाजारो मे दन्तीमूल न मिलकर इनके मूल आते हैं ।

परीक्षा—दन्ती के गुल्म ०.९ से १.८ मी० या ३-६ फुट ऊँचे तथा अनेक मूलोद्भूत शाकीय शाखाओ से युक्त और काष्ठीय मूलस्तम्भ वाले होते है । पत्तिया सवृन्त (वृन्त ५-१५ सेमी० या २-६ इन्च लम्बे) तथा एकान्तरक्रम मे स्थित और नीचे से ऊपर तक इनके कद और आकार मे बडी भिन्नता होती है । ऊपर की ओर की पत्तियाँ प्राय छोटी, मालाकार या पक्षाकार शिराजालयुक्त और नीचे की ओर लट्वाकार बहुत बडी और प्राय करतलाकार ३-५ विच्छेदो वाली होती है । इनकी कुछ पत्तियाँ उदुम्बर पत्र सदृश होती है । पुष्प एक लिंगी, छोटे तथा हरिताभ वर्ण के होते है । पुपुष्प एव स्त्री पुष्प प्राय एक ही पौधे पर (Monoceious) पाये जाते है । पुष्पवृन्त $\frac{1}{4}$ सेमी० से $\frac{3}{4}$ सेमी० ($\frac{1}{10}$ से $\frac{3}{10}$ इन्च) लम्बे तथा मजरियो पर गुच्छबद्ध होते हैं । मजरिया ऊपर की पत्तियो के कोणो से निकलती हैं, जिनमे थोडी-थोडी जगह छोडकर पुष्प गुच्छबद्ध (Interrupted racemes) होते है । पु पुष्प एव स्त्री पुष्प प्राय दोनो मे आभ्यन्तर कोष का अभाव होता है । नर पुष्पो मे पुकेशर सख्या मे १५-२० होते हे तथा स्त्री पुष्पो मे कुक्षिवृन्त (Style) काफी मोटी, द्विविभक्त तथा मटमैले लाल रग की होती है । फल $\frac{3}{4}$ सेमी० से $\frac{5}{4}$ सेमी० ($\frac{3}{10}$ से $\frac{1}{2}$ इन्च) तक लवा किंचित् रोमश तथा तीन खण्डो वाला (3 Lobed) होता है जिनमे तीन बीज निकलते हे । उक्त बीज भूरी वाह्य वृद्धि से युक्त होते हे और आपातन देखने मे एरण्ड बीजवत् मालूम होते है । दन्ती मे प्राय वर्षभर फूल-फल मिलते हैं । मूल एव दन्ती बीज

का प्रयोग चिकित्सा मे होता है, जो भेदन एव रेचक होते है।

सगठन—दतीमूल मे राल (रेजिन) तथा स्टार्च होता है। बीजो मे एक स्थिर तैल प्राप्त होता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व (150°पर) ०.९३८ से ०.९४३। सेपोनिफिकेशन वैल्यू २०७ से २१५।

रस - कटु।

गुण—लघु-रूक्ष-तीक्ष्ण।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—कफ, पित्तहर, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, रेचन आदि।

वीर्यकालावधि—मूल १ वर्ष। बीज एव तैल दीर्घ काल तक।

दालचीनी (वनौषधि विशेषांक तृतीय भाग पृष्ठ ४४५)

नाम—दालचीनी।

शुद्ध द्रव्य—दालचीनी।

सिन्नामोमी कार्टेक्स (Cinnamomi Cortex)।

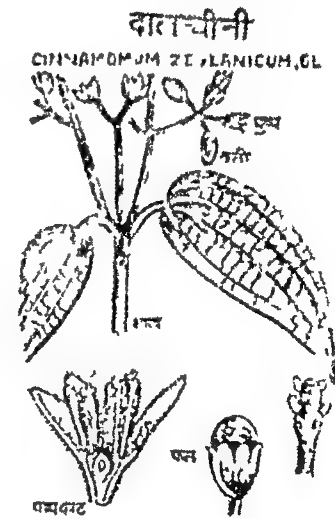
कुल—कर्पूर कुल (Lauraceae)

मिलावट वाले द्रव्य—व्यावसायिक लबे टुकडो की तैयारी मे उनके टूटे हुए छोटे टुकडो (Quillings) को पृथक सग्रहीत कर बेचा करते है। यह भी प्राय न० १ के टुकडो की ही भाति होते हैं किन्तु इनमे उडनशील तैल की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है। बिना छिली हुई छाल के टुकडो अर्थात् छिप्पी या चैली (Cinnamum chips) मे कार्क का भाग अपेक्षाकृत अधिक होता है। उत्तम एव छिली हुई दालचीनी की अपेक्षा इसमे एलकोहल (९०%) विलेय सत्व भी कम प्राप्त होता है। इसके कागजी छिलके (Featherigs) चैलीदार टुकडो की अपेक्षा उत्तम होते है। सिहली दालचीनी के जगली पौधो की छाल (Jungle Cinnamon) गाढे रग की तथा खुरदरी और कम सुगन्धित होती है। व्यावसायिक सैगन दालचीनी (Saigon Cinnamon) सिन्नमोमम् लूरिरियाई (Cinnomomum Loureirii Nees) नामक जाति से प्राप्त की जाती है। इसकी छाल सिहली दालचीनी की अपेक्षा मोटी, रग मे खाकसारी या खाकस्तरी भूरे रग की तथा वाह्यतल पर ग्रथिल सी (Warty and ridged) तथा स्वाद मे मीठी होती है। जावा दालचीनी (Java Cinnamon) सीन्नामोन वर्मान्नी। (C. Burmnia Blume) की छाल होती है। यह सिहली दालचीनी की अपेक्षा कम सुगन्धित होती है तथा ऐल्कोहल विलेय सत्व भी अपेक्षाकृत कम प्राप्त होता है। इसके मज्जकिरणो (Medullary rays) मे कैल्शियम ऑक्जलेट के पट्टाकार क्रिस्टल्स (Tabular Crystals) पाये जाते है। कभी कभी इसमे तज (Cassia bark) के टुकडे भी मिला दिये जाते हैं।

दालचीनी मे तज की मोटी छाल की मिलावट होती है जो देखने मे दालचीनी की तरह किन्तु मोटे होते है। स्वाद मे बहुत हल्की मीठी होती है।

दालचीनी

CINNAMOMUM ZEYLANICUM, CL



परीक्षा—(१) दालचीनी के पौधे की डालियो की छाल है जो ३-६ फुट तक लम्बी और १ सेमी० मोटी होती है। वाहर से यह मटमैले-पीले भूरे रग की होती है और लम्बाई मे इस पर कई लहरदार रेखाये होती हैं। छाल पर जगह-जगह छोटे-छोटे छिद्र भी पाये जाते हैं। वाहर से इसका छिलका छुडा कर सग्रह करते हैं।

(२) छाल छुडाई हुई दालचीनी पतली पीली नलिका सी होती है।

(३) बिना छुडायी हुई छाल ऊपर से मटमैले भूरे रग की और भीतर हल्के पीले रग की तथा तोडने पर गहरे

लाल वर्ण की और मद सुगन्ध से युक्त होती है। स्वाद लेने पर यह मीठी लगती है। तोड़ने पर सरलता से टूट जाती है। उत्तम दालचीनी में दालचीनी का तेल १%पाया जाता है। विजातीय सेन्द्रिय अन्य द्रव्य अधिकतम २%, भस्म अधिकतम ७% मिलती है। दालचीनी लंका, मलाया से लेकर दक्षिण भारत, जावा और अमेरिका मे खेती की जाती है। लका की सिगली दालचीनी उत्तम होती है।

रस—कटु तिक्त।

गुण—लघु-रूक्ष और तीक्ष्ण।

विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—वेदनास्थापन, वातानुलोमन, हृदयोत्तेजक।

वीर्यकालावधि— त्वक १ वर्ष तक।

दारुहल्दी (बनौषधि विशेषांक तृतीय भाग पृष्ठ ४३४)

नाम—दारुहरिद्रा, दारु हल्दी।

शुद्ध द्रव्य—दारु हरिद्रा

लै.—बरबेरिस अरिस्टाटा (Berberis Aristata)

प्रयोज्य अंश—

इसकी लकडी (काड) फल व सत्व (रसौत) का प्रयोग औषधि मे होता है।

संग्रह—वर्षाऋतु के बाद काण्ड काट कर सुखाकर रखते है।

रसवती (रसौत)—इसके काष्ठ काटकर पकाकर रस गाढा करके सुखाकर रखते हैं।

मिलावट वाले द्रव्य—इस दारु हरिद्रा की जाति के अन्य पौधो की मिलावट होती है—

(१) बरबेरिस चित्रिया (Berberis Chitria Linn)

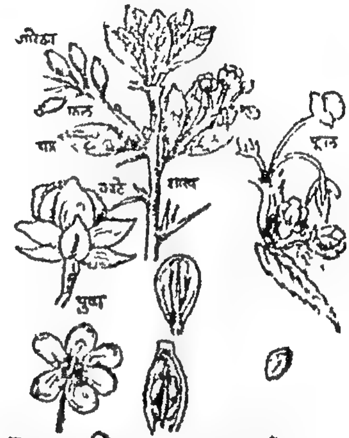
(२) बरबेरिस एसियाटिका (B Asiatica Roxb)

इसे गढवाल के आसपास मे किंगोरा कहते है। इसकी काण्ठ पीली होती है-पत्तियां चिकनी अखड कटकी तथा चतुर धारवाली होती हैं।

परीक्षा—बाजार मे दारुहल्दी के छोटे बडे टुकड़े कटे हुये मिलते है। छाल हल्के भूरे रग की होती है। लकडी पीली हरदी के समान होती है। रस मे तिक्त होती है।

मूल—दारु हल्दी के मूल छोटे छोटे पीताभ भूरे रग के गोल ग्रन्थिल टुकडे होते हैं। मूल त्वक् गाढे भूरे रग की, स्वाद मे अत्यत तिक्त,सरलता से टूटजाती है।

रसवत या रसोथ—मूल काण्ड को काटकर पकाकर



दारु हरिद्रा (दारुहल्दी)
BERBERIS ASIATICA ROXB

रसक्रिया द्वारा तैयार किया जाता है। यह कृष्णाभ पीत पिंड के रूप मे मिलता है। सूख जाने पर गाढा चमकदार, काले वर्ण का होता है। यह पानी मे घुल जाता है और पीला रग देता है।

काड—काड को काटने पर केन्द्र से बाहर की तरफ किरणाभ रेखायें दिखाई पडती है जो अन्य भेदो मे नहीं पाई जाती। यह विशेष पहचान है।

रग—गहरे पीत वर्ण का होता है।

रस—तिक्त-कषाय।

गुण—रूक्ष, लघु।

विपाक—कटु। वीर्य—शीत।

प्रभाव—ज्वरघ्न-ग्राही।

वीर्यकालावधि— २–५ वर्ष।

द्राक्षा (बनौषधि विशेषाँक प्रथम भाग पृष्ठ ६५)

नाम—मृद्वीका, मुनक्का।

शुद्ध द्रव्य—मृद्वीका, मुनक्का।

लै०—विटिस विनिफेरा (Vitis Vinifera)।

कुल—द्राक्षा कुल (Vitaceae)।

यह बहु वर्षायु दीर्घलता है। इसका फल अंगूर कहलाता है। यह दो प्रकार का है—

१. द्राक्षा—(दाख के फल वाला)।

२. किशमिश—(छोटा [illegible])।

ये दोनों औषधि के काम में आते हैं।

मिलावट वाले द्रव्य—दाख [illegible] कई [illegible] हैं। १. सफेद दाख २. लाल दाख और ३. काला दाख।

यह लम्बा गोल और [illegible] होता है। [illegible] आयात ईरान, अफगानिस्तान और [illegible] से होता है। इनकी कई किस्में होती हैं।

१. लाल मुनक्का या आब-जोश, पंजाबी मुनक्का।

२. फारस का मुनक्का या मुनक्का [illegible] लाल अंगूर को चूना और सज्जीखार के [illegible] बनाते हैं। जब यह बहुत लाल और नमकीन हो जाता है।

३. काला मुनक्का—ये भी बड़ा मोटा, मीठा किन्तु बहुत सूखा हुआ न हो। यह भी उत्तम माना जाता है। औषध के लिये इनका प्रयोग अधिक होता है।

परीक्षा—मुनक्का अथवा किशमिश अंगूर के सुखाये फल होते हैं। इनकी प्राप्ति पंजाब, काश्मीर, काबुल, अफगानिस्तान, फारस तथा यूरोप के देश फ्रांस, पुर्तगाल, ग्रीस के विभिन्न भागों [illegible] में रोपे जाते हैं और स्वयं भी जंगली दाख की तरह पैदा होते हैं। अमेरिका और कनाडा से भी अधिक मात्रा में आने लगे हैं।

बड़ा मुनक्का दो प्रकार का होता है। १. गोल—बड़े मोटे छिलके वाला। २ लम्बगोल—लम्बे पतले छिलके वाले। दोनों में बीज होते हैं। ४ छोटा मुनक्का—ये भी दो प्रकार के होते हैं—छोटे गोल और लम्बे छोटे गोल बीज रहित। इनको विशेष प्रकार से सुखाया जाता है। [illegible] मुनक्के [illegible] हैं [illegible] भागों [illegible] होता है। [illegible] से किशमिश बनाई जाती है। [illegible] और [illegible] प्रकार [illegible] है। [illegible] प्रकार के [illegible] पायी जाती है।

[illegible] में [illegible] है। [illegible] मोटा, [illegible] है। [illegible] होता है। [illegible] प्रकार [illegible] है। [illegible] पीत, [illegible] और [illegible] रंग के [illegible] मिलते हैं। [illegible] कार्बो-हाइड्रेट, [illegible] एसिड, [illegible] एसिड, [illegible] और [illegible] पाये जाते हैं। इनमें पोटैशियम, [illegible], कैल्शियम, मैग्नीशियम, फास्फोरस और लोह का भाग होता है। [illegible] में [illegible] पाया जाता है। [illegible] में [illegible], कैल्शियम, मैगनीशियम, पोटैशियम, फास्फोरस और लोह मिलते हैं। यह एक पौष्टिक खाद्य है। इसका—

रस—मधुर।

विपाक—मधुर।

वीर्य—शीत।

गुण—स्निग्ध, मृदु, गुरु।

प्रभाव—वातपित्त शामक, बृंहण, वृष्य।

वीर्यकालावधि—मुनक्का १ वर्ष।

धत्तूर (वनौषधि विशेषांक तृतीय भाग पृष्ठ ४७८)

नाम—धतूरा, धुस्तूर।

शुद्ध द्रव्य—धतूरा, धुस्तूर। लै०-डाटूरा ईनॉक्सिया (Datura Innoxia Mill), डाटूरा स्ट्रेमोनियम।

इसके चार भेद होते हैं। श्वेत पुष्प, कृष्ण, पीत और लाल।

कुल-कण्टकारी कुल (Solanaceae)।

इसके मूल, पत्र, बीज और पचांग का प्रयोग होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—धतूरे की कई जातियाँ होती है। जिसमे सफेद और काले धतूरे का बीज अधिक इस्तेमाल होता है।

न० १—डाटूरा मिटल-यह श्वेत धतूरा है। इसे डेटूरा फास्टोजा भी कहते हैं।

न० २—डाटूरा स्ट्रेमोनियम-यह काला धतूरा है।

राज निघण्टुकार ने काले और पीले दो भेद स्वीकार किये है। जिसे राजनिघण्टुकार कृष्ण धुस्तूर कहते है। श्वेत, कृष्ण, नील और पीत इन चारों भेदों को स्वयं बाग मे लगाकर देखा है। कृष्ण धुस्तूर के बीज के बदले काले धतूरे का बीज काला और भूरा होता है। श्वेत धतूरे का बीज श्वेत बादामी रंग का होता है। आकृति लाल मिर्च

के बीजो की तरह वृक्काकृति होती है। इसे काला रग कर काले बीज के लिये प्रयुक्त करते हैं।

परीक्षा—धतूरे के बीज वृक्काकृति चपटे, खुरदरे, पीलापन लिए भूरे रंग के होते है। इसके बीज के किनारो पर कान की तरह उभार होते हैं। यह स्वाद मे तिक्त होता है।

बीज परीक्षा—श्वेत धतूरे के बीजो को रगकर काला बना देते हैं, इन्हे पानी से धोकर मसल देने पर रग छूट जाता है।

रस—कटु, तिक्त।

गुण—रूक्ष, लघु।

गंध—सामान्य, धूपन मे उग्रगंध।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—मादक-विपाक्त।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष तक।

धनियाँ (वनौषधि विशेषाङ्क तृतीय भाग पृष्ठ ४६८)

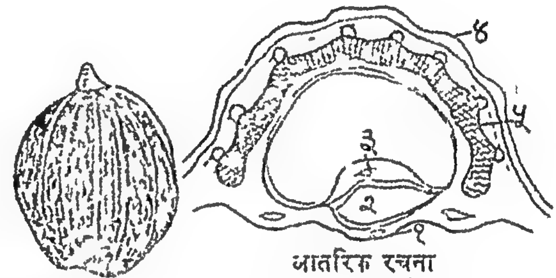
नाम—धनिया, धान्यक।

शुद्ध द्रव्य—धनिया, धान्यक।

लै—कोरिएण्ड्रम सेटिवम् (Coriandrum Sativum Linn).

कुल-शतपुष्पादि कुल। (Umbelliferae)

धनिया का वार्षिक पौधा होता है जिसकी ऊचाई तीन फीट तक है। इसकी खेती खूब होती है। प्रयोज्याग पत्र और फल। भारतवर्ष के अतिरिक्त इसका आयात रूस, मध्य यूरोप, एशिया माइनर और मोरक्को से प्रचुर मात्रा मे होता है।



धनिया का बीज १ फल २ अकुर ३ बीज गर्भ्य ४- नालक ५ आभ्यन्तरत्वक्

मिलावट वाले द्रव्य—भारतीय धनिया की प्रचुर मात्रा मे खेती की जाती है। इसके फल दो प्रकार के होते हैं। बडे दाने और छोटे दाने।

विदेशी धनिया का आकार छोटी धनिया की तरह अण्डाकार होता है। इसके प्रारम्भ मे फलवृन्त और दूसरे सिरे पर पुष्पावशेष भाग होता है। फल गोलाकार व्यास मे २ मिमी से ३॥ मिमी. तक, पकने पर पीताभ भूरे रग का हो जाता है। इसकी ८-१० उन्नत रेखाये होती हैं। १ बीज मे दो दाने होते है। इनमें एक प्रकार की सुगन्धि होती है। देशी और विदेशी धनिया मिलाकर बेचे जाते है। बाजारू धनिया मे मिट्टी, ककड, मेथी के बीज, फलो के डंठल और काण्ड मिले रहते हैं।

परीक्षा—धनिया भारतवर्ष का प्रधान मसाला है, जो खेती करके प्राप्त होता है। (१) देशी धनिया बडा और लम्बगोल होता है, (२) विदेशी धनिया छोटा, गोल होता है।

(क) देशी धनिया मे रेशे अधिक और उडनशील तैल कम मात्रा मे होता है।

(ख) छोटी धनिया का आकार गोलाकार अपेक्षाकृत छोटी भूरापन लिए पीली होती है। उत्तम धनिया के फल मे ३% और चूर्ण मे २% उडनशील तैल होता है।

(ग) औषध के लिए छोटी धनिया का प्रयोग होना चाहिए।

(घ) बडी धनिया के छिलके हटाकर उसके कोपल को सुखाकर मुख शोधन के लिए गुजरात और महाराष्ट्र मे अधिकाधिक प्रयोग होता है। इसमे १% तक उडनशील तैल, १३% स्थिर तैल और कुछ प्रोटीन के अ श भी होते हे।

रस—ईषद् तिक्त, मधुर, कषाय।

गुण—स्निग्ध-लघु।

विपाक—मधुर।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—दीपन, पाचन, वेदनास्थापन, वातानुलोमन।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष तक।

नागकेशर (वनौषधि विशेषाङ्क चतुर्थ भाग पृष्ठ ३५)

नाम—नागकेशर, नाग पुष्प।

शुद्ध द्रव्य—नागकेशर, नाग पुष्प।

लैं०—मेस्वाफेरिया लिन (Mesua Ferrea Linn)

कुल—नागकेशर कुल (Guttiferae)

नागकेशर के पुष्प के केशरो का प्रयोग और फल का भी प्रयोग होता है। नागकेशर के पेड मध्यम ऊँचाई के सदा हरित जो ५००० फीट की ऊँचाई पर मिलते हैं।

मिलावट वाले द्रव्य—नागकेशर एक सुगन्धित पुष्प है। यह सुवर्णनाग या नागचम्पा के पुष्पो का केशर है। इसके मिलावट मे निम्न द्रव्य होते है—

१. लाल नागकेशर—ओक्रोकार्पस लागीफोलियम।

यह नागकेशर का वृक्ष कोकण से मालावार तक समुद्र के तट पर स्वय पैदा होता है। उसके पुष्प की कलियाँ जो सूखने पर हल्की लालिमा लिए भूरे रग की होती हैं, मिर्च की तरह छोटे-छोटे दाने होते है।

२ काला नागकेशर—यह तज, तेजपात के वृक्षो की सूखी हुई कलियाँ हैं, जो ठीक लाल नागकेशर के बराबर किन्तु काले रग की होती हैं। इसका आयात चीन और दक्षिण भारत से होता है।

परीक्षा—नागकेशर का पुष्प सुगन्धित, श्वेत पीताभ, व्यास मे ७॥-१० सेमी० होता है। पुष्प वाह्यदल स्लाई और कठोर होता है। फलवस्था मे भी यह बना रहता हैं। पुकेशर पीत वर्ण के गुच्छो मे होते है। पुष्प वाह्यदल गोलाकार, मोटे, किनारे पर पतले होते है। सूखने पर बाहर की तरफ झुक जाते है और उनका आकार सर्प फण की तरह होता है। आभ्यन्तर दल और वाह्यदल सख्या मे चार होते है। इसके भीतर कराल कोष होता है। और दो प्रकार के केशर मिलते हैं। पुंकेशर पौन इन्च से १ इन्च लम्बे बहुसंख्यक होते है। उनका अग्र भाग सर या बाण की तरह कुछ चपटा नोकदार होता है। नरों के बीच मे स्त्री केशर होता है जो गर्भ नलिका से लगा हुआ होता है जिसका अग भाग सूख जाने पर नाग के फण की आकृति का हो जाता है। सूखने पर भी इनका वर्ण केशर की तरह सुगन्धित और पीले वर्ण का होता है।

इसमे फल १-१॥ इन्च लम्बे और १ इन्च मोटे होते हैं। फलो मे बीज किसी मे १ या किसी मे दो होते हैं। इनका आकार वर्ण धूसर होता है। बीज ठीक महुये के बीज की तरह होता है। इनसे एक प्रकार का तैल निकलता है।

रस—कषाय-तिक्त।

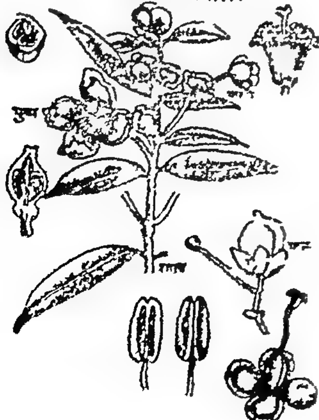
विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

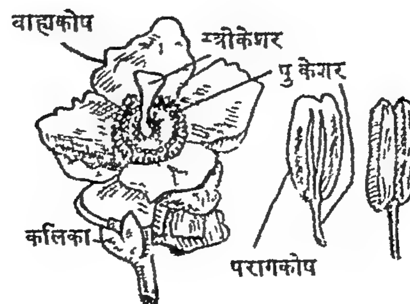
गुण—लघु-रूक्ष।

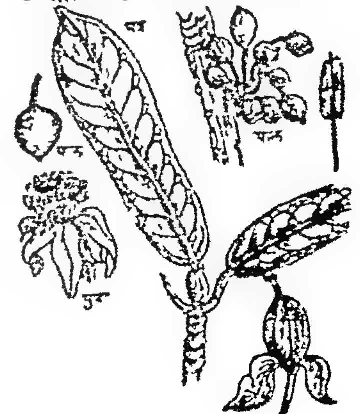
प्रभाव—रक्तस्तम्भन, दीपन, पाचन, ग्राही।

वीर्यकालावधि—पुष्पकेशर ६ मास से १ वर्ष तक।



नागकेशर पुष्प





नागबला (वनौषधि विशेषाँक द्वितीय भाग पृष्ठ ३७२)

नाम—नागबला, गगेरन, गुल सकरी ।

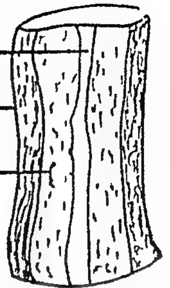
शुद्ध द्रव्य—नागबला, गगेरन, गुल सकरी ।

लैं०—ग्रेविया पपुलिफोलिया (Gravia Populifolia) ।

कुल—धन्वनादि कुल (Tiliaceae)।

यह एक गुल्म जातीय वृक्ष है। इसके पचाग और फल का प्रयोग होता है।





मिलावट वाले द्रव्य—नागबला के नाम पर कई मत-भेद है। यह ३-१० फुट तक ऊंची होती है और पत्र आधे से १॥ इन्च लम्बे होते है। नागबला के नाम पर बला जाति के निम्न पौधो का प्रयोग किया जाता है—

(१) ग्रेविया हिसोटा (२) ग्रेविया साल्वीफोलिया (३) गगेरम्—कुछ लोगो ने (४) ग्रेविया टेलिफोलिया (५) सिडाह्यूमिलिस (भूमि बला) (६) गुल सकरी-के रूप में बला जाति के नाम से एक क्षुप का ग्रहण किया जाता है, जो गुलाबी रग की भाँति बला की तरह होती है और फल गोल मिर्च की तरह कटंकित होते है।

यह यद्यपि सब धन्वनादि वर्ग के ही है किन्तु आकार भिन्न होने से नागबला मे ही माने जा सकते है।

परीक्षा—राज निघन्टुकार ने गागेरुकी के पर्याय मे चतुष्फला लिखा है। साथ ही पत्र के लिए महापत्रा और फल के लिए महाफला लिखे है। अत. इसका निर्णय बडी सरलता से हो जाता है। नागबला के पेड खारी भूमि मे होते है। पत्र आधा से १॥ इन्च लम्बे और इतने ही चौडे होते है। पुष्प ज्येष्ठ और अषाढ मे लगते है, फल शीतकाल मे परिपक्व होते है। फलो मे २-४ बीज होते हैं। औषधार्थ इसकी मूल,त्वचा,फल और पत्र का उपयोग होता है। सद्य क्षत मे इसके पत्र का रस लगाने से या मूल का रस लगा देने से व्रणसद्य भर जाता है। इसलिए जगल मे रहने वाले शिकारी इत्यादि इसका प्रयोग करते है। शार्ङ्गधर ने भी सद्योव्रण मे इसका प्रयोग लिखा है। नागबला की दिशा मे टीकाकारो मे भी भेद हैं किन्तु बला की जाति के किसी भी भेद मे चार फल नही होते जैसा इसमे होते हैं।

फल का रस—कषाय-मधुर ।

त्वचा का रस—कषाय कटु-तिक्त ।

त्वचा का गुण—गुरु-स्निग्ध ।

विपाक—कटु ।

वीर्य—उष्ण ।

प्रभाव—रसायन-बल्य-रक्तस्तम्भन ।

वीर्यकालावधि—त्वक और फल-१ वर्ष तक

नागरमोथा (वनौषधि विशेषांक चतुर्थ भाग पृष्ठ ४८)

नाम—नागरमोथा, भद्रमुस्तक ।

शुद्ध द्रव्य—नागर मोथा, भद्र मुस्तक ।

लैं—साइपेरस स्केरिओसुस (Syperus Scariasus)

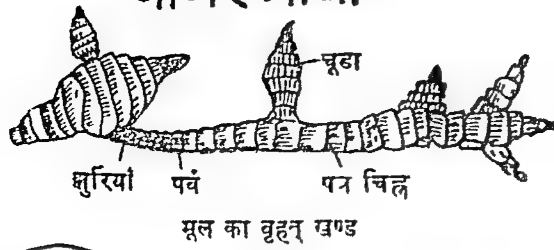
कुल—मुस्तादि कुल (Cyperaceae)

प्रयोज्यांश—इसका भौमिक कांड कन्दाकार जड का प्रयोग होता है। इसमे कर्पूर जैसी गध आती है।

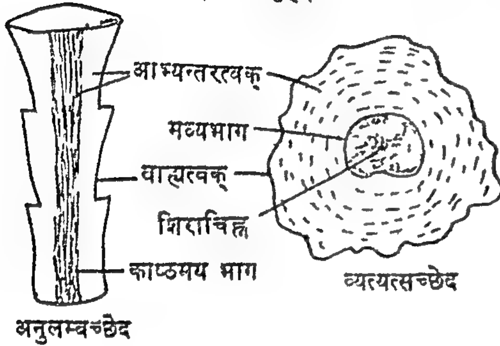
मिलावट वाले द्रव्य—मुस्तक की कई जातियाँ पायी जाती हैं, जो गुणकर्म मे बहुत कुछ मिलती-जुलती है। अत जिनमे नागरमोथा सबसे श्रेष्ठ होता है। जैसे—(१) साईपेरस रोटन्डस (२) कैवर्त्ति मुस्तक।

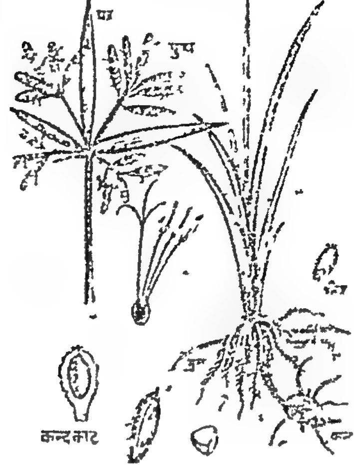
नागरमोथा साईपेरस स्केरिओसस है। यह जलीय प्रदेशो तालावो मे पैदा होता है। इसके भौमिक काड मोटे और लम्बे होते है। इसको भावमिश्र ने कुरुविन्द कहा है।

(१) साइपेरस रोटन्डस-यह उससे छोटा और साधारण जलीय प्रदेशो मे हो जाता है। इसके भौमिक काँड और मूल पतले होते है।



मूल का वृहत् खण्ड





(२) कैवर्ति मुस्तक—खेतो मे होता है और इसके मूल गोल १ इन्च लम्बे कशेर की तरह होते हैं।

परीक्षा—नागरमोथा के मूल कन्दाकार लम्बे दबे हुए टेढे मेढे और काले रग के होते हैं। यह २-६ इन्च या ८ इन्च लम्बे होते हैं। बीच-बीच मे यह शाखा देते जाते हैं और उन पर शल्क पत्रो के अवशेष चिन्ह गोल गोल आवरण होते हैं। इन पर मूल लगने के चिन्ह होते हैं।

कन्द के भीतर का भाग श्वेत, बाहर गाढे भूरे रग का होता है। इसमे एक विशेष प्रकार की गध मिलती है। इसमे एक सुगन्धित उडनशील तैल वसा-शर्करा-अल्ब्यूमिन और क्षार पाये जाते है।

रस—कटु-तिक्त-कषाय।

गुण—रुक्ष-लघु।

विपाक—कटु।

वीर्य—शीत।

प्रभाव—ग्राही।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष तक।

नारिकेल (वनौषधि विशेषांक चतुर्थ भाग पृष्ठ ६१)

नाम—नारियल।

शुद्ध द्रव्य—नारियल।

लै०—कोकोस्नुसिफेरा (Cocasnusifera Linn)

कुल—ताड कुल (Palmaceae)

नारियल के ऊँचे-ऊँचे पेड ताड जैसे होते हैं। इसके फल और तैल का प्रयोग औषधार्थ होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—नारियल दक्षिण भारत मालाबार, पूर्वी-बगाल, लका आदि स्थानो मे बहुत मात्रा मे होते हैं। इनमे कई भेद होते है। फल प्राय अण्डाकार ६-१२ इन्च लम्बा होता है। इसके कच्चे फल के भीतर एक प्रकार का रस भरा होता है। इस रस को पीने का प्रयोग करते हैं। फल परिपक्व होने पर इसकी गिरी कठिन कम स्वाद की हो जाती है। इसके गिरी मे कोई मिलावट नही होती।

तैल—गरी के तेल मे कई प्रकार के तेलो की मिलावट होती है। जैसे-१ मूँगफली का तैल, २ खनिज तैल, ३ महुये का तैल। नारियल का तैल गाढा और घी की तरह सफेद हो जाता है। ये ग्रीष्म ऋतु मे पतला और जाडो मे जम जाता है। द्रव रहने पर यह पीले रग का पारदर्शक द्रव रहता है।

परीक्षा—नारियल का तैल पकी हुई गरी को सपीडन कर तैल निकाला जाता है। बीस डिग्री तापक्रम पर जम जाता है। १५ डिग्री तापक्रम पर कडा होकर मोम की तरह जम जाता है। इसमे गरी की तरह गध होती है।

स्वाद मे मधुर होता है। हवा मे देर तक रहने पर यह विकृत भी हो जाता है।

आपेक्षिक गुरुत्व—२५ डिग्री तापक्रम पर ०.९१८२। ३५ डिग्री तापक्रम पर '९१२५।

फल की गिरी मे मांसवर्द्धक तत्व, वसा, द्राक्ष शर्करा-इक्षुशर्करा मिलती है। गरी मे ६० से ७० % तैल मिलता है।

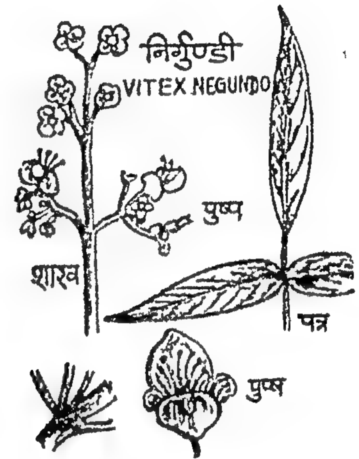
डाभ के जल मे प्रोटीन-इक्षुशर्करा-क्लोराइड्स और विटामिन ए. वी पाये जाते हैं।

रस—मधुर।
गुण—गुरु-स्निग्ध।
विपाक—मधुर।
वीर्य—शीत।
प्रभाव—केश्य।
वीर्यकालावधि—तैल बहुवर्ष।

निर्गुण्डी (वनौषधि विशेषाङ्क चतुर्थ भाग पृष्ठ ७४)

नाम—निर्गुंण्डी, सम्हालू, मेउडी।
शुद्ध द्रव्य—निर्गुण्डी, सम्हालू, मेउडी।
लै०—वीटेक्स-निगण्डो (Vitex Negundo Linn)
कुल—निर्गुंडी कुल (Verbenaceae)

पत्र-मूल और बीज का प्रयोग चिकित्सार्थ किया जाता है। इसके पत्र तीन या पाच पत्ते वाले होते हैं।



मिलावट वाले द्रव्य - निर्गुंडी की ही एक जाति होती है जिनकी आकृति निगुंडी मे मिलती-जुलती है। इसका लै० नाम-वाईटेक्स ट्राईफोलिया है। उसके पत्रादि भी निर्गुंडी से मिलते-जुलते हैं। उसके पुष्प श्वेत और बैंगनी रंग के होते हैं और इसी के बीज विलोचिस्तान और अफगानिस्तान तथा ईरान से आते हैं। इसी को रेणुका नाम से बम्बई के बाजारों मे बेचा जाता है।

परीक्षा—(१).निर्गुण्डी के गुल्म दो प्रकार के होते हैं—श्वेत पुष्प और नीरा पुष्प वाले। यह कभी कभी वृक्ष की तरह मोटे भी हो जाते है। जो ६-१२ फुट तक ऊँचे होते है। शाखायें बहुत होती है। उनमे पत्र संख्या पाच होती है। पुष्प छोटे-छोटे मंजरी मे और श्वेत नील वर्ण के होते हैं।



(२) दूसरा भेद-पहले वाले मे छोटा होता है। पत्तिया छोटी ३-५ तक होती है और इसके बीज भी बहुत छोटे होते हैं। पत्तियो मे एक विशेष प्रकार की गंध आती है। स्वाद मे यह किंचित तिक्त और अहृद्य होती है। फल मे भी एक प्रकार की सुगन्धि पायी जाती है। पत्र मे एक उडनशील तैल और कुछ राल का भाग होता है।

बीजो मे भी सेन्द्रिय अम्ल, राल और कुछ रंजक पदार्थ होते हैं।

रस—तिक्त, कटु, कषाय।
गुण—रूक्ष-लघु।
वीर्य—उष्ण।
विपाक—कटु।
प्रभाव वेदनास्थापन, शोथहर।
वीर्यकालावधि—१ वर्ष तक।

निशोथ (वनौषधि विशेषाङ्क चतुर्थ भाग पृष्ठ ८८)

नाम—निशोथ, त्रिवृत ।

शुद्ध द्रव्य—नि॰ त्रिवृत् ।

लै॰—ओपेरकुलिना टुपथुम (Operculina Turpethum)

कुल—त्रिवृत्-कुल । (Convolvulaceae) ।

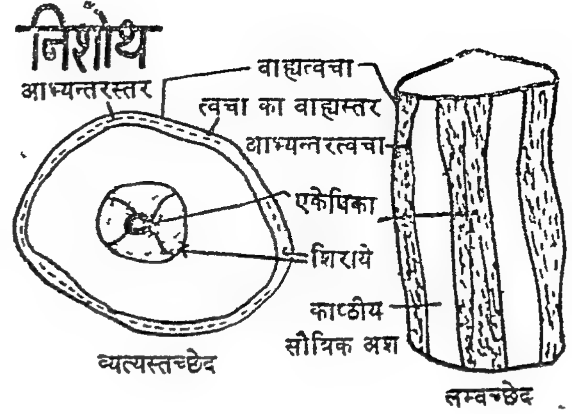
प्रयोज्यांश—इसकी लता होती है । लता, मूल और काण्ड औषधार्थ प्रयुक्त होते हैं ।

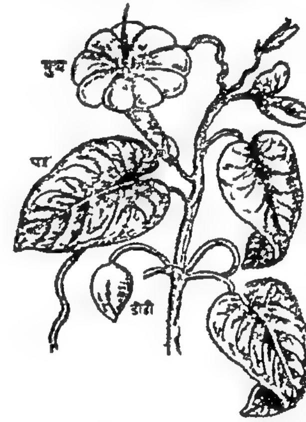
मिलावट वाले द्रव्य—(१) बाजार मे निशोथ के नाम से इसके मूल मे काण्ड भी मिला हुआ होता है । इसकी मूल मोटी होती है । भीतर काष्ठीय भाग होता है । रग भेद से श्वेत और काली दो प्रकार की होती है । कृष्ण निशोथ अधिक दस्तावर होती है । इसके ऊपर का वर्ण काला, लाल होता है और श्वेत निशोथ के ऊपर का छाल का वर्ण ललाई लिये बादामी वर्ण का होता है ।

(२) बाजार मे जो श्वेत निशोथ के नाम से चीज मिलती है, वह निशोथ नही । वह मार्सिडेनिया टेनसिममा लता की जड और काण्ड होती है । यह स्वाद मे तिक्त-कटु होती है, विरेचक गुण नही होता ।

परीक्षा—निशोथ का मूल चरक और सुश्रुत ने अरुणाभ लिखा है । यह लता होती है और इसकी मूल बादामी रग की मोटी और मासल होती है । यह ऐंठी हुई होती है । इसके बीच मे एक पतला काष्ठीय भाग होता है । इसलिए इसको एकेशिका कहते है ।

त्वचा मोटी रेशेदार मांसल और क्षीरपूर्ण होती है । इसका चौडाई मे छेद लेने पर कटा हुआ भाग हल्के भूरे रङ्ग का दिखाई पडता है । इसमे एक प्रकार का राल जातीय तत्व मिलता है जो रेचन क्रिया मे सहायता करता है । इसकी मात्रा ५% होती है ।





रस—कटु, तिक्त ।

गुण - लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण ।

विपाक—कटु ।

वीर्य—उष्ण ।

प्रभाव—विरेचक ।

वीर्यकालावधि—२ वर्ष ।

पतंग (वनौषधि विशेषांक चतुर्थ भाग पृष्ठ भाग १८९)

नाम—पतग या पीत चन्दन ।

शुद्ध द्रव्य—पतग या पीत चन्दन ।

लै॰—सिसलपीनिया सप्पन (Seasalpinia Sappan)

कुल—सिम्बी कुल (Lagumınoceae)

पतग के छोटे कद के वृक्ष होते हैं । इसका काष्ठ पतग नाम से प्रयुक्त होता है । इसकी लकडी का सार भाग लाल होता है । इसकी गाठदार लकडी रग बनाने के लिए अधिक प्रयुक्त होती है ।

मिलावट वाले द्रव्य—बाजारो मे भिन्न-भिन्न आकार प्रकार के कटे हुए बडे या छोटे चपटे टुकडे बाजार मे मिलते हैं, जिनका रग लाल या नारगी रग का होता है । लाल चन्दन के टुकडे इसमे मिलाकर प्रयुक्त होते हैं ।

परीक्षा—पतग का काष्ठ कठिन भारी होता है। ताजा कटा होने पर रक्ताभ श्वेत होता है। किन्तु हवा लगने पर लाल हो जाता है। इसमे कोई गन्ध नही होती। जल और सुरासार मे उत्तम लाल रग आ जाता है।

रस—मधुर।
विपाक—मधुर।
वीर्य—शीत।
प्रभाव—गर्भाशय सकोचक।
वीर्यकालावधि– ५ वर्ष तक।

पटोल (वनौषधि विशेषाङ्क चतुर्थ भाग पृष्ठ १६६)

नाम–पटोल, परवल।

शुद्ध द्रव्य –पटोल, परवल। लै०–ट्रिकोसेंथिस् डिआइको रॉक्सवर्ग (Trichosenthis Deoico Roxb)

कुल–कुष्माण्ड कुल (Cucurbitaceae)

यह दो प्रकार का होता है—

(१) कृषि जन्य। (२) स्वय जाती या जंगली।

पटोल का पचाग और फल औषधि मे प्रयुक्त होते हैं।

मिलावट वाले द्रव्य—१. चिंचोडे की लता—ट्रैकोसेथिस् ऍंगुइना (Trichosenthis Angurna Linn)

(२) ट्रैकोसेथि कुकुमेरिना (T.Cucumarina Linn) इनके पचाङ्ग परवल के बदले बाजारो मे आते है।


परवल
TRICHOSANTHES DIOICA

परीक्षा—परवल की एक वर्ष आयु की दीर्घलता होती है। इसकी लता सुखाकर औषधि प्रयोग मे आती है। यह स्पर्श मे कर्कस और सूक्ष्म रोम से आवृत्त होता है। इसका कच्चा फल हरा और पकने पर पीला हो जाता है। इसे कृषि करके सग्रह करते है, फलो का शाक बनाते है, इसके फल पर ५ धारियाँ होती है।

रस—तिक्त।
गुण—रुक्ष, लघु।
विपाक—कटु।
वीर्य – उष्ण।
प्रभाव—व्रणशोधन रोपण, कृमिघ्न।
वीर्यकालावधि—१–२ वर्ष तक।

पर्पट (वनौषधि विशेषांक चतुर्थ भाग पृष्ठ २४६)

नाम—पर्पट, पित्तपापडा।

शुद्ध द्रव्य—पर्पट, पित्तपापडा, शाहतरा। लै–फ्युमेरिया आफिसिनेलिस् (Fumeria Officinalis Linn)

कुल—पर्पटादि कुल।

पर्पट का पचाङ्ग ग्रहण होता है। इसको शाहतरा कहते है। यह गेहू, यव तथा चने के खेतो मे गाजर जैसे पत्तो वाला तथा बैंगनी रग के पुष्प जैसा मिलता है।

मिलावट वाले द्रव्य—(१) बगीय पर्पट-ओल्डेन्लेन्डिया कोरिंबोसा (Oldenlandia Corymbosa Linn)

(२) जौनपुरी पित्तपापडा–पोलीकार्पिया कोरिंबोसा (Polycaipea Corymbosa Linn)

(३) बम्बई का पित्तपापडा–जेस्टिसिया प्रोकुम्बेन्स (Justicia Procumbens Linn)

(४) सोलापुरी पित्तपापडा–ग्लासोकार्डिया लिनिपरिफोलिया (Glosocardia Linearifolia cass)

इतने द्रव्यो का प्रयोग भिन्न-भिन्न स्थानो मे पर्पट के लिये होता है।

परीक्षा—शाहतरा–पारस देश से हिन्दुस्तान आता है। यह फ्युमोरिया आफिसिनेलिस का सुखाया हुआ पचाग होता है। बाजार मे इसके सूखे पौधे और प्राय टूटे-फूटे टुकडे मिलते है, जिनमे लगभग गोल चिकने और आलपीन की डडी की तरह बहुसख्यक फल मिश्रित होते है। इसका स्वाद कटु-तिक्त होता है। ठीक इसी प्रकार का हिंदुस्तानी शाहतरा भी होता है। यह स्वाद मे किंचित कटु–तिक्त और कषाय होता है।

रस—तिक्त। गुण लघु। विपाक—कटु।
वीर्य – शीत। वीर्यकालावधि—६ मास तक।

पाटला (बनौषधि विशेषांक चतुर्थ भाग पृष्ठ २२१)

नाम—पाटला, पाढल।

शुद्ध द्रव्य—पाटला, पाढल।

लै०—स्टेरियोस्पर्मम स्वाविओलेन्स (Stereospermum Suaveolens)

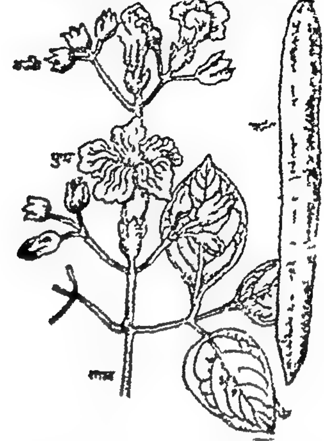
कुल—श्योनाक कुल (Bignoniaceae)

पाटला का वृक्ष ३०-६० फीट ऊँचाई का होता है। पत्तिया एक सीक पर समानान्तर पत्र वाली १-२ फीट लम्बी होती हे। उनमे पत्र पक्षाकार लगते है। पुष्प गुच्छ मञ्जरि मे होते है। 'इसके त्वक् और फल का प्रयोग होता है। फली १-१॥ फीट लम्बी होती है। जिसके भीतर बटन की तरह कई बीज होते है। इसे अवकपारी भी कहते हैं।

मिलावट वाले द्रव्य—पाटला से मिलते-जुलते और भी पेड होते हैं जिनके छाल की मिलावट होती है। जिसका नाम स्टेरियोस्पर्मम केलोनोइडिस है। पुष्प पीले या गुलाबी रग के होते हैं। फली १-१॥ फीट लम्बी होती है और उस पर चार रेखायें होती हैं। दक्षिण मे इसी को पाटला कहते हैं। इसके पुष्प मे मधु अधिक होता हे।

परीक्षा—पाटला की छाल बाहर से धूम्र वर्ण की होती है और इसमे कई परत कागज की तरह मिले रहते है। इसके पुष्प बडे-बडे और पीत होते है और मधु का अ श अधिक होता है।

पाढल (पाटला)
STEREOSPERMUM SUAVEOLENS D C



रस—तिक्त और कषाय।

गुण—रूक्ष, लघु।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—शोथहर, वेदनास्थापन।

पुष्प—हृद्य, पौष्टिक और बाजीकरण।

वीर्य कालावधि—६ मास से १ वर्ष तक।

पाठा (बनौषधि विशेषाक चतुर्थ भाग पृष्ठ २१५)

नाम—पाठा, पाढी।

शुद्ध द्रव्य—पाठा, पाढी।

लै०—सीसूसाम्पेलास पारेईरा (Cissampelos Pareira Linn).

कुल—गुडूची कुल (Menispermaceae).

परिचय—यह एक आरोही लता है जिसका मूलस्तम्भ बहुवर्षायु होता है। फूलने-फलने के बाद सूख जाता है। वर्षात् मे नये काण्ड निकलते है, जो मृदु रोमश होते है। पत्तिया गोल होती है और इनके बीच से वृन्त लगा होता है। मूल और काड का प्रयोग होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—पाठा की तरह अन्य वनस्पतियो के काड और मूल भी सग्रह कर लेते हैं। इसमे विशेषकर

१ स्टेफेनियाग लैबरा—अधिकतर इसमे मिलता-जुलता होता है। सग्रह करने वाले इसीको एकत्र कर लेते हैं।

२ राजपाठा—के नाम मे स्टेफे नियः हर्नेण्डीफोलिया नामक लता की जड पाठा के बदले मे ग्रहण की जाती है।

पाढी (पाठा)
CISSAMPELOS PAREIRA



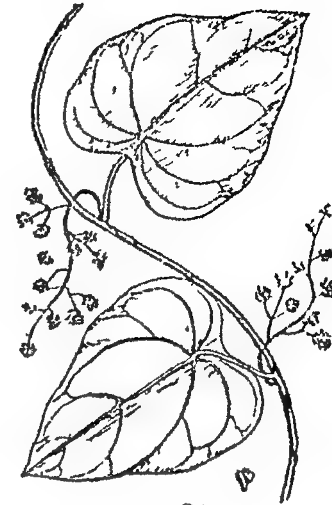
बाजार मे इन्ही के काण्ड और मूल की मिलावट अधिक होती है।

परीक्षा—पाठा एक आरोही लता है, जो बहुवर्षायु होती है किन्तु ऊपर का काण्ड वर्षान्त पर मृत जाता है और उसमे से नये काण्ड वर्षात मे निकल आते हैं जो पतले मृदु श्वेताभ रोम से आवृत होते है। पत्तिया चिकनी, चमकदार और गोल होती हैं। दोनो पृष्ठो पर रोम लगे होते है। अतः इसकी लता बहुत मोटी और बडी नही हो पाती। मूल पर्याप्त मोटी और लम्बी होती है।

स्टेफेनिया ग्लैबरा—की लता मोटी और बडी होती है और देखने मे पाठा से मिलती-जुलती है।

पाठा की जड व्यास मे १/२ से १ इन्च होती है। ऊपर कई खात होते हैं। यह टेढी-मेढी ग्रन्थियुक्त हो सकती है। इसकी सूखी हुई जड मे एक सुगन्ध प्राप्त होती है। स्वाद मे तिक्त होती है।

रस—तिक्त।



पाठा (जड़ी)
CYCLEA PELTATA

विपाक—कटु।
गुण—लघु, तिक्त, तीक्ष्ण।
वीर्य—शीत।
प्रभाव—ग्राही, दाहप्रशमन।
वीर्यकालावधि—१ वर्ष तक।

पाषाण भेद (वनौषधि विशेषांक चतुर्थ भाग पृष्ठ १८५)

नाम—पाषाण भेद।

शुद्ध द्रव्य—पाषाण भेद।

लै०—सेक्सिफ्रेगा लिगुलाटा (Saxifraga Ligulata)

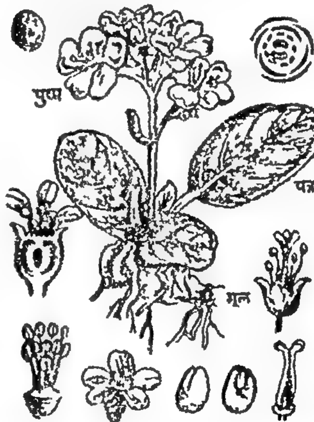
कुल—पाषाण भेद कुल (Saxifragaceae).

परिचय—इसके बहुवर्षायु छोटे-छोटे कोमल क्षुप होते है। चट्टानो की दरारो से यह बाहर निकलते हैं। इसके मूल का उपयोग होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—पाषाणभेद के नाम पर कई औषधियो का प्रयोग होता है।

१. पत्थरचूर या पर्णबीज।
  लै०—ब्रायोफाईलम कैलिसिनम।
२ कपूर वल्ली या अजवाईन पत्र।
  लै०—कोलियस एरोमेटिकस।
३ एरुआ लनाटा या गोरखगाजा।
४ आईरीस स्यूडोएकोरस।
५ मर्मरी या ओसीमम् वैसिलिकम।
६ खतरसोवा या ब्रीडेलिया रेट्यूसा।
७ रोदुला एक्वेटिका।

पाषाण भेद के नाम पर इन सातो का प्रयोग भिन्न भिन्न प्रातो मे होता है। यद्यपि यह उतना सदिग्ध नही है, जितना समझा जाता है। फिर भी इनका नाम पाषाण भेद के नाम पर आता है। बाजारो मे जो पाषाण भेद मिलता है, वह सेक्सिफ्रेगा लिगुलाटा का ही मूल है और यही असली भी है किन्तु प्रतिनिधि के रूप मे इनका प्रयोग होता है।





पाषाणभेद देशी
(पत्थर चूर)
COLEUS AROMATICUS BENTH

परीक्षा—बाजार मे पाषाण भेद के नाम से काटकर

सुखाए गए मूल के टुकड़े मिलते हैं। यह १-२ इञ्च लम्बे १/२ से १ इञ्च चौड़े इतनी ही मोटाई के मिलते हैं। बाहर से भूरे रंग के लाल धुरीदार होते हैं। उस पर टूटे हुए मूलों के चिह्न होते हैं। इसकी अन्तरवस्तु घनी कठिन लाल रंग की होती है। स्वाद में यह कुछ कसैले होते हैं। यह हिमालय प्रदेश में काश्मीर से भूटान तक १०००० फुट की ऊंचाई पर मिलते हैं। इसकी मूल मोटी लाल रंग की ताजी होने पर भीतर सफेद १०-१२ इञ्च तक लम्बी होती है। पत्तियां बड़ी-बड़ी वट पत्र की तरह चमकदार और रोमावृत होती हैं। आकार में पत्तियां ऊपर से हरी नीचे रक्ताभ बरगद के बराबर होती हैं। एक साथ ३-४ पत्तियों से अधिक पत्र नहीं लगते हैं। इनके बीच में पुष्प बाहक दण्ड निकलता है जो चार से ५ इञ्च तक लम्बा होता है। इस औषधि के मूल का औषधि कार्य में उपयोग होता है।

अणुवीक्षण यन्त्र से परीक्षा करने पर [illegible] श्वेत पिस्टल पुञ्ज और स्टार्च दिखाई पड़ता है। [illegible] टैनिक अम्ल, गैलिक अम्ल, दाक्ष [illegible] ग्लाम-स्टार्च, अल्यूमिन व खनिज लवण पाये जाते हैं।

रस—कषाय-तिक्त।

गुण—लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण।

विपाक—कटु।

वीर्य—शीत।

प्रभाव—मूत्रल और अश्मरीनाशक।

वीर्यकालावधि १ वर्ष तक।

प्रियंगु (वनौषधि विशेषांक चतुर्थ भाग पृष्ठ ३५६)

नाम—प्रियङ्गु, गंध प्रियङ्गु।

शुद्ध द्रव्य—प्रियंगु, गंध प्रियंगु।

लै०—केलीकार्पा मेक्रोफाईला (Callicarpa Macrophylla Vahl)।

कुल—निर्गुण्डी कुल (Verberaceae)

प्रियंगु के फल औषधि के प्रयोग में आते हैं। यह सुगन्धित और छोटे दानों के रूप में होते हैं।

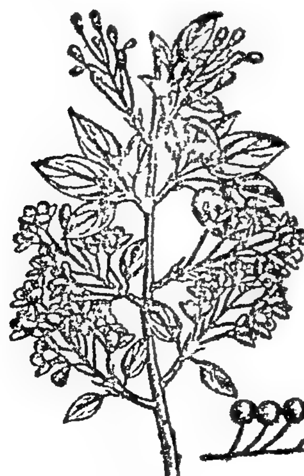
मिलावट वाले द्रव्य—प्रियंगु के नाम पर कई द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है। जिनमें प्रधान निम्न हैं—

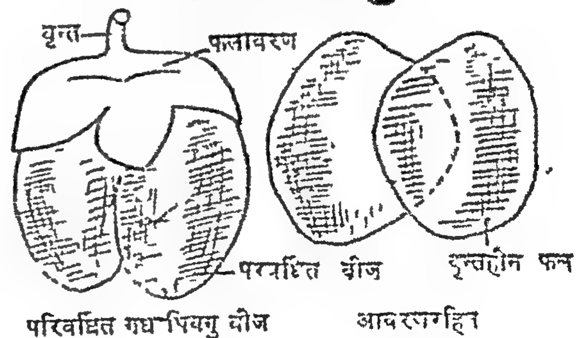
१ अगलाईया राक्सबर्घियाना।

२. धकुला प्रूनसमहालेब।

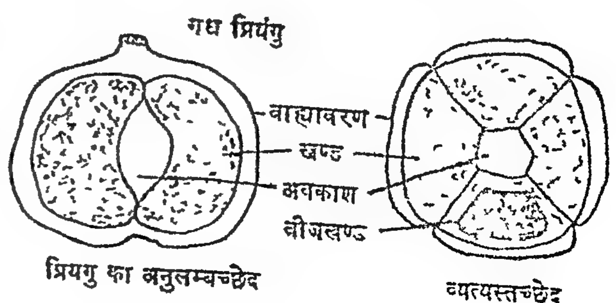
३. गोंदनी। (i) ग्रीटेनिया मोटाना। (ii) कार्डिया राथियाई। (iii) कंगनी—के फलों का प्रयोग होता है।







परिवर्धित गंध-प्रियंगु बीज आवरणरहित



प्रियंगु का अनुलम्बच्छेद व्यत्यस्तच्छेद

परीक्षा—गंध प्रियंगु से गंधयुक्त फल का ग्रहण होता है। केलिकार्पा मेक्रोफाइला का फल सुगन्धित होता है, और पहाड़ों में इसका लेप लगाते हैं। इसके क्षुप देखने में सुन्दर पुष्प और फलों से लदे हुए होते हैं। इसका ही प्रयोग उचित है।

रस—तिक्त, कषाय।

गुण—रूक्ष, लघु।

विपाक—कटु।

वीर्य—शीत।

प्रभाव—दाह प्रशमक।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष तक।



पुनर्नवा (बनौषधि विशेषांक चतुर्थ भाग पृष्ठ ३१३)

नाम—पुनर्नवा, गदहपुर्ना।

शुद्ध द्रव्य—पुनर्नवा, गदहपुर्ना।

लै०—बोयेरहेविया डिफ्यूजा (Boerhavia Diffusa)

कुल—पुनर्नवा कुल (Nictaginaceae)।

इसके मूल और पंचांग का प्रयोग होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—पुनर्नवा की कई जातियां हैं। श्वेत पुनर्नवा और रक्त पुनर्नवा ये दो प्रधान हैं। वर्षा ऋतु में होने वाला रक्त पुनर्नवा है। श्वेत जाति की पुनर्नवा भी वर्षा में उत्पन्न होती है। अतः लाल पुनर्नवा के स्थान पर श्वेत पुनर्नवा का भी प्रयोग किया जाता है। ये दोनों पर्याप्त मिलते हैं। अतः लाल की जगह श्वेत और श्वेत के जगह लाल दोनों का प्रयोग होता है। इसकी मूल १ फीट तक लम्बी और ॰.१ अंगुल तक मोटी होती है। इसकी एक ही प्रधान मूल निकलती है। कभी दो शाखायें भी हो जाती हैं।

परीक्षा—पुनर्नवा की सूखी हुई जड़ बाजार में मिलती है। हरे रहने पर इनके पंचांग का भी उपयोग किया जाता है। इसकी जड़ें बाहर से मटमैली पीले रंग की भीतर श्वेत और झुर्रीदार होती हैं। काटने पर चक्राकार सूत्र रचना पायी जाती है। इन दोनों श्वेत और लाल पुनर्नवा के मूल में पुनर्नवीन उपक्षार मिलता है। इसमें पोटेसियम नाइट्रेट, पोटेसियम सल्फेट, पोटेसियम क्लोराइडस् पाये जाते हैं।

रस—कटु, तिक्त, कषाय। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण।
गुण—रूक्ष-लघु। प्रभाव—मूत्रल, शोथहर।
वीर्यकालावधि—१ वर्ष तक।

पुष्करमूल (बनौषधि विशेषांक चतुर्थ भाग पृष्ठ ३३७)

नाम—पुष्कर मूल।

शुद्ध द्रव्य—पुष्कर मूल।

लै०—ईनूला रेसिमोसा (Inula Racemosa)

कुल—मुण्डी कुल (Compositae)

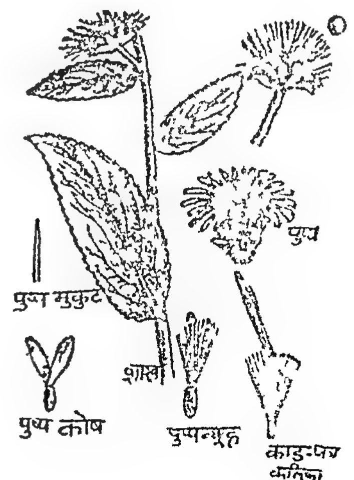
इसके मूल का प्रयोग औषधि में किया जाता है।

मिलावट वाले द्रव्य—१ पुष्कर मूल के साथ कूठ के टुकड़े मिले हुए होते हैं।

२. औरिस रूट-का प्रयोग पुष्करमूल के लिए होता है।

३. इर्सा या सोसन जिसे बाजार पोप कहते हैं। पुष्कर मूल के बदले बिकता है।

परीक्षा—पुष्करमूल का संग्रह बीज पकजाने के



वाद किया जाता है। इसका मूल २ इन्च से ६ इन्च तक लम्बा १ इन्च मोटा गोल बादामी रंग का होता है। पुष्कर मूल की जड आकृति मे कुछ-कुछ कुष्ठ से मिलती जुलती होती है। तोडने पर यह नरम एवं चटकदार टूटती है और ताजी अवस्था मे टूटा हुआ तल सफेदी लिए मटमेला सा होता है। इसके अतिरिक्त यह कुछ सुषिर भी मालूम होता है। कुष्ठ का तोड नरम एवं भुरभुरा होता है। पुष्कर मूल मे कपूर की सी कुछ गन्ध लिए मीठी-मीठी वास आती है जो कई वर्षो तक बनी रहती है। इसमे कीडा नही लगता। पुष्कर मूल स्वाद मे कुछ चरपरा कटु गन्ध होता है और कण्ठ मे लगता है।

रस—तिक्त, कटु।

गुण—लघु, तीक्ष्ण।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।



प्रधान कर्म—कफवात शामक, शोथहर, वेदनास्थापन, नाडी बल्य, कास-श्वासहर, हिक्का निग्रहण, पार्श्वशूल नाशक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, वाजीकर, गर्भाशयोत्तेजक, आमपाचन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न आदि।

वीर्यकालावधि—कई वर्ष तक।

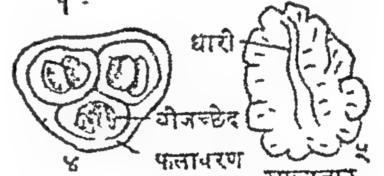
बड़ी इलायची (वनौषधि विशेषांक प्रथम भाग पृष्ठ ४५७)

नाम—बडी इलायची, बृहदेला (Amomum subulatum Rsr)।

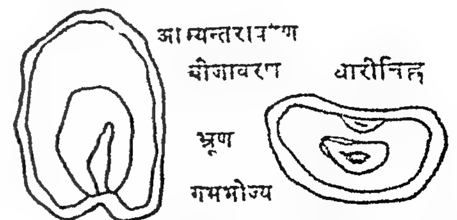
कुल—आर्द्रक (Zingiberaceae)

परिचय—बाजार मे मिलने वाली बडी इलायची के फल अर्द्ध वृत्ताकार त्रिपार्श्विक साधारणत एक इन्च लम्बे और आधा इन्च परिधि मे ललाई लिये हुये भूरे रङ्ग के होते हैं। इनके फलाग्र भाग पर तन्तुओं का एक गुच्छा होता है जो कालान्तर मे झड जाता है। फल का छिलका मोटा रक्ताभ धूसर होता है और लम्बाई मे इस पर धारिया दिखाई पडती है। सूखने पर अथवा पक जाने पर किसी किसी फल का छिलका फट जाता है। इसके भीतर बीज छोटी इलायची की तरह परन्तु उससे बडे गोल-गोल होते है। जो आपस मे चिपके रहते है। ताजे बीजो पर एक प्रकार का मधुर चिपचिपा गूदे का भाग लगा होता है। सूख जाने पर अथवा छिलका हटा देने पर यह भाग उड जाता है। केवल भूरे बीज रह जाते हैं। यह बीज ही औषधि मे काम आते है। बीजो मे ही मिलावट की संभावना है।





१ मंगलोर की इलायची २ मालाबार की इलायची ३ मैसूर की इलायची ४ इलायची का व्यन्तराच्छेद ५ इलायची का एकबीज



बीज का अनुलम्बच्छेद बीज का व्यन्तराच्छेद

एला

मिलावट—बाजार मे जो इलायची के दाने मिलते है उनमे कई प्रकार के इलायची से मिलती-जुलती जाति के बीजो की मिलावट होती है । विशेषकर मोरङ्ग इलायची के बीजो से मिलते जुलते होते है । यह बडी इलायची के बीजो से कुछ बडे होते हैं और इलायची के बीज के स्थान पर औषधि मे इसका प्रयोग किया जा सकता है किन्तु इनमे इलायची के सदृश गुण वाले अंशो का अभाव होता है । इसका वानस्पतिक नाम एमोमम एरोमेटिकम (Amomum Aromaticum) है ।

इलायची बडी

Amomum subulatum Roxb



बबूल (बनौषधि विशेषॉक चतुर्थ भाग पृष्ठ ४५२)

नाम—बबूल, बबूर ।

शुद्ध द्रव्य—बबूल, बबूर ।

लै०—आकेसिया अरेबिका (Acacia Arabica Willd) ।

निर्यास—ग एकेसिया (Gum acacia) ।

इसके छाल,फल और निर्यास का प्रयोग किया जाता है ।

मिलावट वाले द्रव्य—बबूल की छाल कडी बाहर से कालिमा लिए हुए फटी हुई, अन्दर से भूरे लाल रग की होती है । इसका अन्तस्तल चिकना और सौत्रिक होता है । स्वाद में कपैला होता है । पर्याप्त मिलता है । इस लिए इसमे मिलावट की कोई गुन्जाइश नही है ।

निर्यास—बबूल के गोद मे पर्याप्त मिलावट होती है । बबूल के गोंद के साथ एकेसिया, सेनेगल बबूल की जाति मे अधिक होता हैं । यह श्वेत चमकदार होता है और इसके पौधे सिंध,पजाब और राजपूताना मे होते है ।

परीक्षा—बबूल का गोद गोल-गोल अथवा लब गोल लाल चमकदार छोटे बडे टुकडो मे मिलता है । बाजार में जो गोद मिलता है इनके समूचे या छोटे बडे टुकडे होते हैं । यह रग मे सफेद हलके गुलाबी रग के होते है । इन पर दरारे पडी होती है । तोडने पर टूटा हुआ प्रदेश चमकदार दिखाई पडता है । यह गधहीन स्वाद मे मधुर और चिकना होता है । इसका चूर्ण पीताभ भूरे रग का होता है ।

विलेयता—निर्यास के भार से द्विगुण जल डालने पर गोद पूरा घुल जाता है और गाढा चिपचिपा बन जाता है ।

परीक्षण—(१) बबूल के गोद का २ प्रतिशत घोल १० सी० सी० लेकर इसमे ३ बूंद डाइल्यूट साल्यूशन ऑफ लेटसब्रोसिटेट—डालिए रेगेदार तलपट हो जायेगी ।

(२) २ प्रतिशत निर्यास का घोल बनाकर उबालकर ठडा होने दे । इसमे आयोडिन-द्रव डालने पर उसका रग हल्के नीले या लाल रग का हो जायगा ।

रस—कषाय ।

विपाक—कटु ।

गुण, स्निग्ध ।

प्रभाव—वल्य ।

वीर्य—शीत ।

वीर्यकालावधि—फल पत्र—१ वर्ष ।

त्वक—१ वर्ष ।

गोद—१-५ वर्ष तक

बला (बनौषधि विशेषॉक द्वितीय भाग पृष्ठ ३४६)

नाम—बला, बरियारा, खरेटी ।

शुद्ध द्रव्य—बला, बरियारा, खरेटी ।

लै०—१ सीडारोम्बीफोलिया (Sida Rhombifolia L)

(२) सीडा कार्डिफोलिया (Sida Cordifolia Linn)

कुल—कार्पास कुल। (Malvaceae)।

पञ्चाग, मूल और वीज का प्रयोग किया जाता है।

मिलावट वाले द्रव्य—सीडा कार्डिफोलिया का ही अधिकतर प्रयोग किया जाता है। किन्तु बाजारो मे वला के नाम पर सीडा रोम्बीफोलिया—

(१) सीडा अल्वा (२) सीडा अनिफोलिया (३) सीडा एक्यूटा आदि का पचाग और मूल एकत्र कर बाजार मे मिलते है। इनमे वला की तरह ही गुण कर्म होते हैं। अत ये प्रतिनिधि के रूप मे भी काम कर सकते हैं। दक्षिण मे शिला स्पाइनोसा का प्रयोग वहुत होता है।

परीक्षा—वला नाम से उत्तर प्रदेश मे सीडा कार्डिफोलिया का अधिक ग्रहण होता है। यह १-२ फीट तक ऊँचे होते है। पत्तियाँ हृदयाकार गोल होती हैं। इनको चवाने पर मुह मे लोआव आ जाता है। सूखे हुए काण्ड चिकने और उनके ऊपर का त्वक जालीदार दिखाई पडता है। पुष्प—श्वेताभ-पीत होते हैं। वीज छोटे-२ भूरे काले रग के होते है। वर्षायु क्षुप है। फल लगने के वाद स्वय सूख जाता है।

मूल—इसका मूल १०-१२ इन्च तक लम्बा, ऊपर मोटा और नीचे पतला होता है। इसमे वहुत से उपमूल के अ श लगे हुए होते हैं। यह मूल वहुत ही दृढ होता है। इसकी कई जातियाँ होती है। सबमे अधिक गुण इस वला मे ही होता है। अन्य वला के कॉड वहुत भगुर होते हैं। जल्दी टूट जाते हैं किन्तु इसके कॉंड बहुत ही दृढ होते हैं। इसके मूल मे पिच्छिल द्रव्य वसा-राल और पोटेशियम नाइट्रेट मिलता है।

रस—मधुर।
गुण—गुरु-स्निग्ध।
विपाक—मधुर।
वीर्य—शीत।
प्रभाव—वल्य-हृद्य।
वीर्यकालावधि—१ वर्ष तक।

वाकुची (वनौषधि विशेषॉक पंचम भाग पृष्ठ १२४)

नाम—वाकुची, वावची।

शुद्ध द्रव्य—वाकुची, वावची।

लैं०—सोरेलिया सीड्स या सेमिना (Psoralea seeds or Semina)

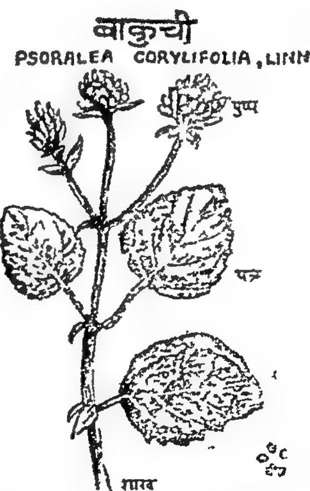
वनस्पति—सोरेलिया कोरीलीफोलिया (Psoralea Corylifolia linn)

कुल—शिम्वी कुल।

वाकुची के क्षुप १-४ फीट तक ऊचे होते हैं। यह वर्षायु होते है। इनके वीज और तैल का प्रयोग औषधार्थ होता है। इसमे एक विशेष प्रकार की गन्ध आती है।

मिलावट वाले द्रव्य—वाकुची के बीज कृमिघ्न और कुष्ठघ्न क्रिया के लिए प्रयुक्त होते है। ये बाजार मे पर्याप्त मात्रा मे मिलते हैं। इसके साथ वाकुची की जाति के अन्य पौधो के वीज भी मिश्रित होते है। वाकुची की खेती होती है जो भारतवर्ष और अमेरिका इन दोनो स्थानो मे होती है। भारतीय वाकुची अमेरिकन वाकुची से उत्तम होती है। अत इन देशो के वीजो की मिलावट होती रहती है।

परीक्षा—वाकुची के बीज छोटे मसूर दाने के वरावर



किन्तु उससे वडे होते है। ताजे फल गहरे भूरे रङ्ग के पुराने काले होते हैं। वीज के ऊपर एक चिपकीली गोंद जैसी वस्तु लगी होती है। इससे वहुत उग्र गन्ध आती हैं। यह स्वाद मे तिक्त कटु होता है। इसको धो देने से भीतर पीले रङ्ग का वीज निकलता है। वीजो मे उडनशील तैल होता है। इसके अतिरिक्त इसमे राल जातीय पदार्थ, स्थिर तैल तथा "सोरेलीन व आइसो, सोरेलीन" दो सत्व मिलते है।

रस—कटु, तिक्त।
गुण—रूक्ष, लघु।
विपाक—कटु।
वीर्य—उष्ण।
प्रभाव—कुष्ठघ्न, स्फोटजनक, श्वित्रहर।
वीर्य कालावधि—२ वर्ष तक।

बादाम (वनौषधि विशेषांक पंचम भाग पृष्ठ ७७)

नाम—बादाम, वाताद।

शुद्ध द्रव्य—बादाम, वाताद।

लैं०—प्रूनस एमिग्डैलुस बाम्च (Prunus Amygdalus Batsch, par)।

कुल—तरुणी कुल (Rasaceae)।

बादाम के मध्यम श्रेणी के वृक्ष होते है। इसके बीज व तैल का प्रयोग होता है।

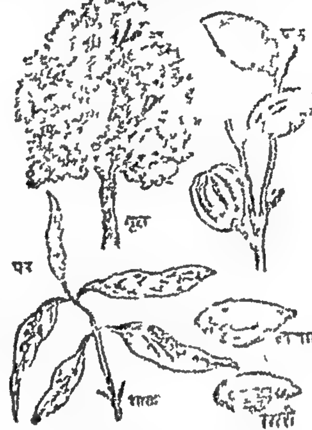
मिलावट वाले द्रव्य—बादाम की गिरी मीठी होती है। यह लम्बगोल, दोनों किनारो पर कुण्ठित व चपटी होती है। खाने मे स्वाद मधुर होता है। इसके साथ निम्न मिलावट होती है।

(१) कड्वे बादाम के बीज

(२) अलूचा फल के बीज

ये भी बादाम फल की तरह कडी गुठली मे आवृत्त रहते हैं और इनकी मज्जा भी बादाम की तरह ऊपर लाल भीतर श्वेत झुर्रीदार होती है।

परीक्षा—(१) बादाम के वृक्ष का फल प्रसिद्ध है। इसकी मज्जा स्वाद मे मीठी होती है। इसके कई भेद होते हैं। उत्तम किस्म के बीज की गुठली पतली होती है और आसानी से टूट जाती है। इसे कागजी बादाम कहते है। इसके बीज प्राय १ इन्च या उससे अधिक लम्बे होते हैं। यह आयताकार गोल, इसका प्रारम्भिक सिरा चौडा गोलाकार, दूसरा सिरा चौकोर नोकदार होता है। इसके बीज पर एक बादामी रङ्ग की झिल्ली होती है जिसमे लम्बाई मे झुर्रिया पडी होती हैं। पानी में भिगोने पर यह छिलका सरलता से अलग हो जाता है। भीतर स्निग्ध श्वेत मज्जा





होती है जिसमे दो दाल होते है जो ऊपर उन्नतोदर भीतर चपटे होते हैं।

(२) बादाम का दूसरा भेद—कठा बादाम जो अधिक चपटा और १ इन्च से छोटा होता है। यह भी कठिन गुठली मे बन्द होता है। शेष बाते सामान्य होती है।

पहिचान—कड्वे बादाम के बीज अथवा मिलावट के अन्य बीज तोडकर निकालने पर वैसे ही निकलते है जैसे बादाम किन्तु स्वाद मे तिक्त होते हैं।

रस—मधुर।
विपाक—मधुर।
गुण—गुरु, स्निग्ध, उष्ण।
वीर्य—उष्ण।
प्रभाव—वात शमन, वृष्य।
वीर्य कालावधि—२ वर्ष तक।

बायविडंग (वनौषधि विशेषांक पञ्चम भाग पृष्ठ १००)

नाम—वायविडङ्ग, भाभी रङ्ग।

शुद्ध द्रव्य—वायविडङ्ग, भाभी रग।

लै.—एम्बेलिया रीबेज (Embelia Ribes Burm F.)

कुल—विडङ्गादि कुल (Myrsinaceae)।

प्रयोज्य-अङ्ग—इसके बीज का प्रयोग होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—विडङ्ग की एक और जाति पायी जाती है। जिसके फल स्वरूप एव गुण-कर्म की की दृष्टि मे (बहुत कुछ) असली विडङ्ग की भाति होते हैं। अतएव इसे विडङ्ग भेद कह सकते है और इसका उपयोग चिकित्सा मे असली विडङ्ग के स्थान पर किया

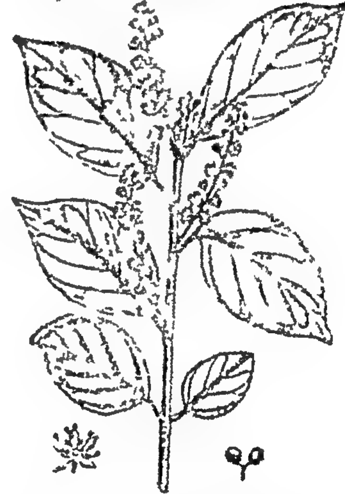
ज. ा हना है । नाम-हि०-अमचूर (देहरादून, गैया-Gaia) को० गोयण्टा (कोयनट्) माटा । मघा-मावरी ।

ले०—एम्बेलिया टग्जेरिआमकोट्टाम (Embelia-trjeiiamcattam A D C (पर्याय E Robusta C B Clarke (Fl Br Iind non Roxb) । यह भी समस्त भारतवर्ष मे ५००० फीट की ऊँचाई नक (विशेषत: देहरादून, छोटा नागपुर, सिराहट, आसाम एव मालाबार आदि मे) पाया जाता हे । इसके बडे गुल्म या छोटे वृक्ष होते है जिसकी शाखाये हल्के धूसर रग की और बिन्दुकित तथा कोमल शाखाए मुरचई रग की होती हैं। पत्तिया १२ ५-१७ ५ से०मी० या ५-७ इन्च लम्बी, ५ से ७ ५ से०मी० या २ ३ इन्च चौडी, अण्डाकर अग्रपर सहसा नुकीली लहरदार और कभी-कभी सूक्ष्म दन्तूर धार से युक्त अधः पृष्ठ पर प्राय रोमश और मुरचई रग की होती हैं । फल गोल नीरस और लाल तथा पके फल खाने मे खट्टे-मिट्ठे होते हैं । असली विडङ्ग की भाति यह भी अग्रपर कृत्तिवृन्त से युक्त होते है । बीज विडङ्ग की भाति गोल और आधार पर अन्दर की ओर धसा होता है। हिमालय की पर्वत श्रेणियो मे कश्मीर से नेपाल तक १५४ ६ मी. से २३६ ५५ मीटर या १,०००-८,५०० फुट की ऊँचाई तक एक और वृक्ष होता है जिसे वनवान, जौनसार, रिखडाल्मी (Rikhdalmi) गढवाल कहते हैं। इसका वानस्पतिक नाम मीरसेने आफ्रीकाना (Mirsine Africana linn) है । इसके छोटे-छोटे सदा हरित झाडीनुमा गुल्म होते हैं, जिनकी कोमल शाखायें एव पर्णवृन्त मुरचई रग को (Fersuginous) होते है । इसके फल भी गोल (५ मि० मी० से ६·२५ मि. मी या ⅕ से ¼ इन्च)लाल रग के (पूर्णत पकने पर कालिमा लिए बेगनी रग के) होते ह । यह भी विडग के नाम से वेचे जाते हैं।

परीक्षा—विडग के आरोही स्वभाव के बडे गुल्म होते है । इसकी शाखा प्रशाखाये बहुत होती है । कांड पर जगह-जगह ऊँचे उत्सेक होते ह । इसकी पत्तियाँ दो तीन इंच लम्बी १॥ इन्च चौडी अडाकार आगे नोकदार हो जाती है । पुष्प हरित पीत वर्ण के छोटे मजरी के स्वरूप मे लगते है । फल मरिच के गुच्छो की तरह व्यास मे ३-४ मि० मी० चिकने और गूदेदार होते ह, जो सूखकर काली मिर्च के बराबर उससे भी छोटे चिकने गोल काले भूरे रग के होते हैं । अत इसे हि. मे भाभी रग कहते है।



वाय विडंग
EMBELIA RIBES



वायविडंग
EMBELIA ROBUSTA

वाह्यतल पर वृत की तरफ से शिखर की तरफ अनुलम्ब हल्की धारिया होती हे । सिरे पर स्त्री केशर का अवशेष भाग रहता है । इसका छिलका भगुर होता है । तोडने पर भीतर से बीज निकलता हे । बीज गोल एक आवरण से ढका रहता है । इस पर सफेद छोटे-छोटे दाग होते है । अत इसे चित्रतण्डुला कहते हैं ।

फल पुराना होने पर गाढे काले रग का हो जाता हे । परीक्षण—

वायविडग मे २॥ मे ३ प्रतिशत विडगाम्ल होता हे । एक परखनलिका मे ५ मिलीलिटर (५ मी सी) ईथर ले । इसमे ० २ ग्राम वायविडग का चूर्ण डालकर खूब हिलावे और इसे छान लें । इसमे १-२ बूंद

डायल्यूट साल्यूशन आफ अमोनिया डालने पर नीलापन लिए बैंगनी रंग का अवक्षेप (Bluish voilet precipitate) होता है, जो असली बायविडंग का द्योतक है।

रस—कटु।

गुण—लघु-रूक्ष-तीक्ष्ण।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—दीपन-पाचन-अनुलोमन उदर कृमिनाशक

वीर्यकालावधि—२ वर्ष तक।

ब्राह्मी (वनौषधि विशेषांक पञ्चम भाग पृष्ठ २४५)

नाम—ब्राह्मी।

शुद्ध द्रव्य—ब्राह्मी।

लै०—हाईड्रोकोटाईल एसीएटिका (Hydrocotyle Asiatica Linn).

कुल—गर्जर कुल (Umbelliferae)

इसके पंचांग का प्रयोग होता है। यह जमीन पर फैलने वाली विसर्पी लता है। इसके प्रत्येक ग्रन्थि के पास मूल व शाखायें निकलती जाती है। इसका कांड लाल रंग का और पत्तियां गोल अनिदार होती है।

मिलावट वाले द्रव्य—ब्राह्मी के साथ इसी आकृति की अन्य जातियों का भी ग्रहण होता है—

(१) मण्डूकपर्णी—ब्राह्मी की तरह बड़े पत्तों वाली गोल पत्रयुक्त स्वाद में शाकवत् होती है।

(२) हाइड्रोकोटाईल रोटन्डीफोलिया।

(३) हाइड्रोकोटाईल यवानिका।

इनके पत्ते व्यास में १-२ इन्च लम्बे दूसरी जाति के चौथाई से १ इन्च लम्बे गोल और नोकदार होते हैं।

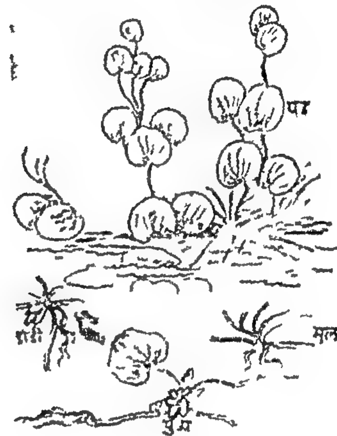
(४) ब्राह्मी के लिए जलनिम्ब—

यह लोडिका की आकृति की होती है और गीली तथा पानी में फैलती है। यह स्वाद में महातिक्त होती है। यह ब्राह्मी की आकृति में बहुत ही भिन्नाकृति की होती है।

परीक्षा—(१) ब्राह्मी के पत्र—यह गोल छोटे-छोटे अनिदार होते हैं। प्रारम्भ में हरे और प्रौढ होने पर पीले वर्ण के हो जाते है। पत्तियों का व्यास १/२ से १ इन्च हो जाता है। स्वाद में तिक्त होती हैं। इसके कांड बहुत पतले बादामी रंग के होते हैं। पुष्प और बीज से एक प्रकार की सुगन्ध निकलती है।

(२) मण्डूकपर्णी—इसके पत्र गोल-अनिदार १-२ इन्च व्यास तक हरे रंग के होते हैं। इनका स्वाद विरस होता है। इसके पुष्पों में केवल बहुत हल्की ही गन्ध आती है।

ब्राह्मी (मंडूकपर्णी)
HYDROCOTYLE ASIATICA LINN.





मंडूक पर्णी
HYDROCOTYLE ROTUNDIFOLIA

अन्य जाति के पत्र गोल लम्बे नोकदार होते हैं। ब्राह्मी के दलपत्र कण्ठिताग्र अनिदार होते हैं।

रस—तिक्त। अनुरस—कषाय, मधुर।

विपाक—मधुर। वीर्य—शीत। गुण—लघु और सर।

प्रभाव—मेध्य, रक्तशोधक।

वीर्यकालावधि—६ मास तक।

बिजयसार (वनोषधि विशेषांक प्रथम भाग पृष्ठ ४१०)

नाम—विजयसार, बीजक ।

शुद्ध द्रव्य—विजयसार, बीजक ।

लै०—प्टेरोकार्पस मार्सूपियम (Pterocorpus Marsupium)

कुल—शिम्बी कुल (Leguminoceae).

इसके विशाल पेड होते है, जिसका सार-काष्ठ-त्वक् और निर्यास औषधार्थ प्रयोग किया जाता है ।

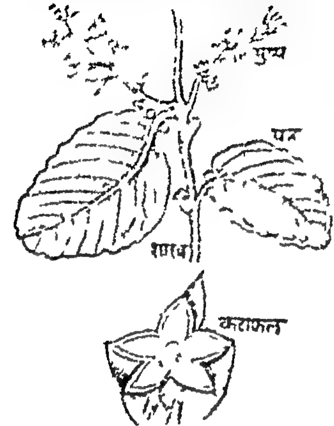
मिलावट वाले द्रव्य—विजयसार के काष्ठ जो बाजार मे मिलते है, कई प्रकार के होते है जिसमे असन काष्ठ व सर्जिका काष्ठ मिला रहता है तथा लाल पीले रग की लकडिया मिली रहती है ।

गुण-कर्म की दृष्टि से बीजासार का गोद प्रसिद्ध औषधि खूनखराबा (दम्मुल अख्वैन) एव पलाश गोद (Butea kino) का उत्तम प्रतिनिधि द्रव्य है । इसके गोद की अधिक खपत होती है, इसलिए निम्नलिखित गोद की मिलावट होती है—

१ मकरेगा कार्डनो-यह मेकरागा पेन्टाटा का निर्यास है । २ जाति पत्री का गोद, ३ पलाश निर्यास, ४ यूकेलिप्टेस की जाति के नीलगिरी पौधो का निर्यास ।

परीक्षा—विजयसार त्वक्—यह मृत्तिका वर्ण का पीला और मोटा होता है जिसके बाहर की तरफ छाल फटी हुई होती है । यह दरारें लम्बाई की दशा मे होती है । स्वाद मे यह कषाय रस का होता है ।

काष्ठ—विजयसार की लकडी पीले वर्ण की होती है । पानी मे डालने पर पहले पीला रग होता है । बाद मे काले रग का हो जाता है ।



निर्यास—इसके छोटे-छोटे टुकडे कोणाकार होते हैं । यह चिकने चमकीले और काले लाल वर्ण के होते हैं । स्वाद अत्यन्त कषैला लाल रग का होता है ।

परीक्षा—(१) रेक्टीफाइड स्प्रिट मे घुल जाता है और एकदम गाढ़ा लाल रग देता है । पानी मे कम घुलता है ।

(२) बीजक का निर्यास—पानी मे घोलकर उबाल कर उसमे फेरिक क्लोराइड डालने पर गाढ़े हरे रग का हो जाता है ।

रस—कषाय ।
गुण—रूक्ष-लघु ।
विपाक—कटु ।
वीर्य—शीत ।
प्रभाव—मूत्र सग्रहणीय, रक्तशोधक ।
वीर्यकालावधि—काष्ठ १ वर्ष । निर्यास ५ वर्ष तक ।

बेल (वनौषधि विशेषांक पंचम भाग पृष्ठ १९४)

नाम—बिल्व, श्रीफल ।

शुद्ध द्रव्य—बिल्व, श्रीफल ।

लै०—ईगल मार्मेलोज (Aegle Marmelas Correa)

कुल—जम्बीर कुल (Rutaceae)

त्वक् और बेलगिरी का औषधार्थ प्रयोग किया जाता है।

मिलावट वाले द्रव्य—बिल्व के फल प्राय सुलभ होते है । इसके कच्चे फल को काट सुखाकर प्रयोग किया जाता है । फिर भी इसमे निम्न फलो का गूदा मिश्रित होता है।

(१) कपित्थ के फल के टुकड़े ।

(२) गार्मीनिया मेगस्टोन के फल के टुकडे ।

परीक्षा—(१) बेल के फल गोलाकार २-८ इन्च व्यास के मासल फल होते हैं । इसका सग्रह जब तक इसके बाहर का भाग कडा नही हो जाता इसे काटकर सुखाकर छोटे-छोटे चपटे और गोल टुकडो मे सग्रह करते है । सूखने पर लाल रग का होता है । इसमे एक विशेष गध होती है । स्वाद मे यह मधुर कषाय होता है ।

(२) कपित्थ—के फल की मज्जा श्वेत पीताभ होती है। स्वाद मे अम्ल होता है।

(३) गार्सीनियां मेगस्टोन का फल भी पीले-लाल रग का होता है तथा स्वाद मे अम्लीय होता है।

बिल्व त्वचा—बाहर से फटी हुई हल्के पीले व धूम्र वर्ण की होती है। काटने पर भीतर से पीले दिखाई पडते हैं। ऊपर का छिलका हटा देने पर वर्ण पीला होता है। स्वाद मे यह कषैला होता है, इसमे एक विशेष सुगन्ध होती है। भीतर का काष्ठ पीला चन्दन का-सा होता है। इसमे एक विशेष गन्ध होती है।

रस—कषाय, मधुर।

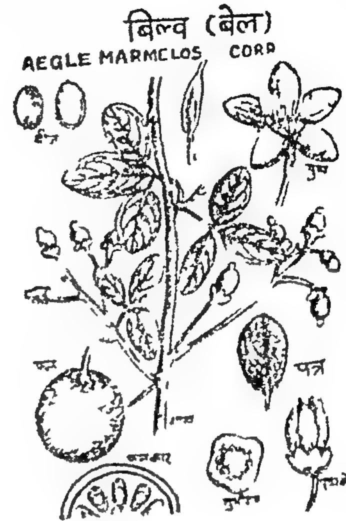
विपाक—कटु।

गुण—गुरु, स्निग्ध।

प्रभाव—ग्राही।

वीर्यकालावधि—फल का १ वर्ष, त्वक् १ वर्ष।

बिल्व (बेल)



बोल (बनौषधि विशेषांक पंचम भाग पृष्ठ २३५)

नाम—बोल, बीजा बोल, हीरा बोल।

शुद्ध द्रव्य—बोल, बीजा बोल, हीरा बोल।

लै०—मिर्रह (Myrrha)।

वृक्ष—कम्मीफोरा मिर्रह (Cammiphora myrrha)

कुल—शल्लकी-कुल (Burseraceae)।

इसके निर्यास का प्रयोग किया जाता है। इसका आयात अरब-ईरान, श्याम, पूर्वी अफ्रीका से होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—बोल एक प्रकार का तैल युक्त निर्यास है किन्तु इसमे मिलावट अनेक जातियो (कम्मीफोरा) के पौधो से सग्रह किया जाता है। इसके वृक्ष पर चीरा लगाकर पीताभ श्वेत निर्यास सग्रह होता है। ताजा सूखा निर्यास पीत वर्ण का होता है किन्तु सूखने के बाद कालान्तर मे यह लाल हो जाता है। इसमे कई प्रकार के निर्यासो का सम्मिश्रण कर देते हैं।

परीक्षा—बोल के दाने गोल-गोल बेडौल छोटे बड़े पाये जाते हैं। बाहर से इनकी रगत ललाई लिए पीले रग की होती है। इसके ऊपर बाहरी तल पर कालान्तर मे सूक्ष्म श्वेत चूर्ण जैसा रग बन जाता है। इसके टुकडे कटे और भगुर बन जाते है। यह स्निग्ध होता है जगह-जगह सफेद चिन्ह या रेखायें दिखाई देती हैं। इसमे एक विशिष्ट प्रकार की गन्ध होती है। स्वाद तिक्त होता है।

रस—तिक्त, कटु, कषाय।

गुण—लघु, रूक्ष, स्निग्ध।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—रक्तावरोधक, स्वेदजनन।

वीर्यकालावधि—निर्यास की दीर्घ काल तक।

बृहती (बनौषधि विशेषाङ्क द्वितीय भाग पृष्ठ ५८)

नाम—बडी कटेरी, वनभन्टा।

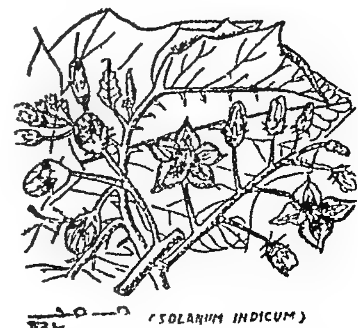
शुद्ध द्रव्य—बृहती।

लै०—सोलेनुम इन्डिकम (Solanum Indicum)।

कुल—कण्टकारी कुल (Solanaceae)

इसके पचाग का प्रयोग औषधि मे होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—बृहती के नाम से वनभटा की कतिपय जातियों का ग्रहण किया जाता है।



कटेरी (SOLANUM INDICUM)

(१) श्वेत बृहती—कुटुम्ब, सोलेनम टारूम (Solanum Tarum)।

(२) सोलेनम मेलान्गामा (Solanum Melangama) जंगली वनभन्टे का एक भेद है।

(३) भन्टा—शाक [illegible] वाले भन्टा का पचांग।

परीक्षा—बृहती के गुल्म १ से ६ फीट तक ऊँचे पाये जाते [illegible]। शाखायें श्वेत रोमश एवं टेढे काटों वाली होती है। इनके [illegible] १ से २ इन्च लम्बी मंजरी में निकलते हैं। इनका फल आधा इन्च से १ इन्च तक बडा होता है। फल कच्चे हरे और पकने पर पीले हो जाते है। इसी का पचांग काम में आता है। श्वेत बृहती और जंगली बैंगन इसके [illegible] में अधिक कांटे होते हैं। फल गोल और व्यास में १ [illegible] होते हैं। इनके आकार प्रकार बृहती के समान ही होते हैं। केवल कांटे करीब-करीब रहते है। [illegible] इनसे मिलावट में सरलता होती है।

रस—कटु-तिक्त।



गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण।
विपाक—कटु।
वीर्य—उष्ण।
वीर्य कालावधि—१ वर्ष तक।

भंगा (वनौषधि विशेषांक पञ्चम भाग पृष्ठ २६४)

नाम—भंगा, विजया, भांग।

शुद्ध द्रव्य—भंगा, [illegible]।

लै०—कैनाबिस सटिवा (Cannabis Sativa Linn)

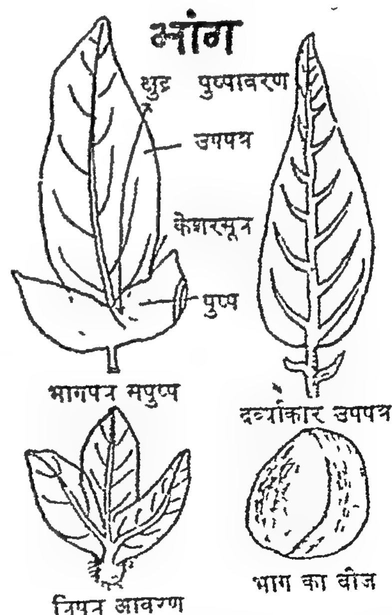
या कैनाबिस इन्डिका (Cannabis Indica Linn)

कुल—भंगादि कुल। (Cannabinaceae)

यह गुल्म [illegible] क्षुप होते हैं। इनकी पत्तियां प्रयोग में आती हैं। [illegible] गांजा के नाम से और पुष्प [illegible] नाम से कहे जाते है। इनके निर्यास का भी प्रयोग होता है। [illegible] हुई गोल चरस कहलाती है।

मिलावट वाले द्रव्य—(१) भांग की सुखाई हुई पत्तियों का उपयोग होता है। [illegible] रंग गाढे हरे रंग का होता है। [illegible] भी मिले हुए होते हैं। [illegible] होती है जो रेखा- [illegible] होती है। इसमें एक [illegible] बाजार में यह पत्तियां [illegible] के नाम से पुकारते हैं।

(२) [illegible] लिए मटमैले हरे रंग [illegible] मोटे चिप- [illegible] में मिलते हैं उसके साथ



पत्ते, फल, फूल मिले रहते हैं। इनमें बीज भी मिले रहते हैं।

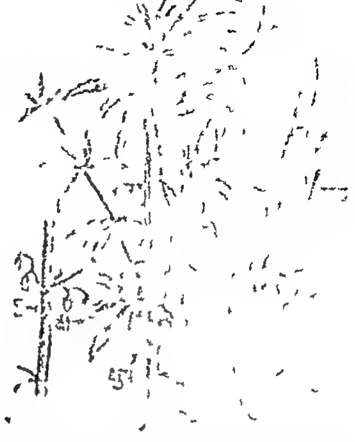
परीक्षा—भांग—१ वर्षायु क्षुप है जो ३-३॥ फुट ऊँचे और खडे पाये जाते हैं। इसकी पत्तियाँ सवृन्त, एकान्तर ७-२० से०मी० बडी कर्णनाकार होती है। ऊपर की पत्तियां ५ तक और नीचे की पत्तियों में ११ तक

ऊर्ध्वपृष्ठ पर हरे रग की और अधः पृष्ठ पर उसमे फीके रग की रोमावृत होती हैं। इनमे एक बड़ी अच्छी सुगन्ध आती है। इनका सग्रह मई और जून के महीनो मे पुष्प युक्त हो जाने पर काट कर सुखाकर और पीटकर एकत्र कर लिया जाता है।

गाजा—इनका संग्रह लगाये हुए पौधो से होता है। पौधे पुष्पकाल से पहचान मे आ जाते हैं। इस समय नर पौधो को उखाड़ कर फैंक दिया जाता है। नीचे की पत्तिया सूख कर गिरने लगती ह और पुष्प पीले होने लगते हैं। तब इनको काटकर छाया मे सुखाकर बण्डलो मे बाध कर रखते ह। इनके पुष्प मजरी पर राल की तरह एक चिकना पदार्थ लगा रहता है जिससे इनके पत्ते चिपकीले और मोटे हो जाते हे।

चरस—गाजा के पत्रो पर लगे हुए रालदार गोंद को जो एक मदकारक गधवाला होता है इसको हाथ या रुई से सग्रह कर एकत्र कर लेते हैं। यह चरस के नाम से प्रसिद्ध है।

परीक्षण—शुद्ध चरस हरिताभ भूरे रग का गीला गोद होता है जिनमे पत्तिया के टुकडे रोम इत्यादि मिले होते हैं। इसमें बहुत तेज गध आती है। बाजारू चरस मे भाग की भस्म गोद आदि की मिलावट होती है।



इसमे केनाबीनोन नाम की राल होती है। इसमे एक प्रकार का तैल मिला होता है। यह बहुत मादक होता है। हवा मे खुले रहने पर गीला और चिपचिपा हो जाता है।

रस - तिक्त।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

गुण—लघु-तीक्ष्ण-व्यवायी-विकाशी।

प्रभाव—मादक-निद्राजनन आक्षेपहर-ग्राही।

वीर्य कालावधि—१ वर्ष तक।

भारंगी (वनौषधि विशेषांक पंचम भाग पृष्ठ ३०८)

नाम—भारगी या भार्ङ्गी।

शुद्ध द्रव्य—भारङ्गी या भार्ङ्गी।

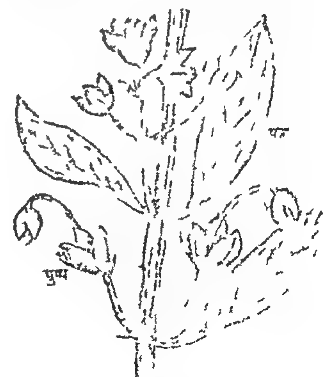
लै०—क्लेरोडेंड्रन सेर्राटुम (Clerodendron Serratum) कुल-निर्गुण्डी कुल (Verbenaceae).

परिचय—भारगी के बहुवर्षायु गुल्म होते ह। इस की त्वचा का प्रयोग औषधार्थ किया जाता है।

मिलावट वाले द्रव्य—१ भार्गी के नाम से इसकी दूसरी जाति-क्लेरोडेंड्रन सिफोनेथस-का ग्रहण किया जाता है।

२ बगाल मे प्रिक्रेसमा क्वयेगीओइट की छाल भार्गी के नाम से मिलती है।

परीक्षा—भारङ्गी के गुल्म मे अनियमित क्रम से कई चौकोर शाखाये निकलती हैं। इसका मूल बहुवर्षायु होता है। इसके मूल से प्रतिवर्ष नये काण्ड निकलते ह। पत्तिया ३-८ इन्च लम्बी और १।।-२।। इन्च चौडी होती हे। दण्डाग्र पर गुच्छो मे पुष्प निकलते है। फल—परस्पर सयुक्त और मासल होते है। जाडो मे इसके मूल का सग्रह



करते हैं। इसकी मूल ईषत् तिक्त कषाय होती है।

रस - तिक्त, कटु, कषाय।

गुण - रूक्ष, लघु।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—कफनाशक, कासश्वासहर।

वीर्यकालावधि—६ मास से १ वर्ष तक।

भूम्यामलकी (वनौषधि विशेषाङ्क पचम भाग पृष्ठ ३३१)

नाम—भूम्यामलकी, भुई-आवला।

शुद्ध द्रव्य—भूम्यामलकी, भुंई आवला।

लै०-फाईलेन्थस यूरिनोरिया (Phylanthus Urinaria Linn).

कुल—एरण्ड कुल (Euphorbiaceae)

वर्षा ऋतु मे सम्पूर्ण भारतवर्ष मे इसके क्षुप पैदा होते है जो गर्मी आते ही सूख जाते है। इसके पचाग का प्रयोग किया जाता है।

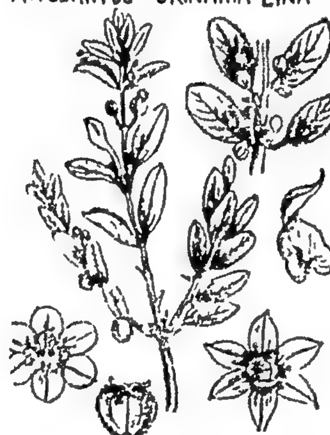
मिलावट वाले द्रव्य—भुई आवला के लिए भूम्यामलकी के नाम से दो क्षुद्र क्षुपो का ग्रहण होता है—वडा और छोटा।

१ भूम्यामलकी वृहत् अथवा फाईलेन्थस यूरिनोरिया का क्षुप १/२ से १ फुट ऊचा होता है। अच्छी भूमि मे और भी ऊचा हो सकता है। इसके साथ लघु भूम्यामलकी की मिलावट होती है। यह छोटे ३-४ इन्च लम्बे होते हैं। पत्तिया इसके शिखर से ५ या ६ सीको मे निकलती हैं। प्रत्येक सीक मे आवले की तरह छोटी-छोटी पत्तिया २५ ३० जोडो मे लगती है। इसके काण्ड, पुष्प, फल सब हरे होते हैं। फल बहुत छोटे-छोटे राई की तरह आवले के आकार के होते हैं। अत इसे भूम्यामलकी भी कहते है।

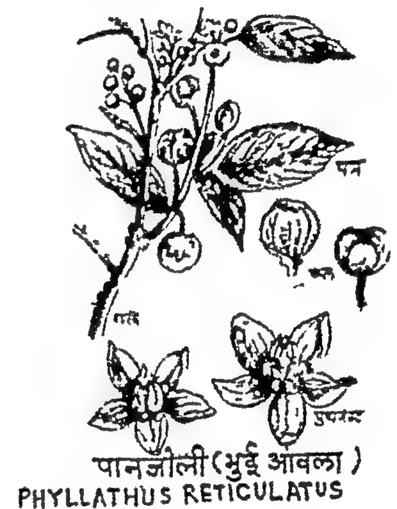
परीक्षा—फील्लाथुस ऊरीनारिया—इसके एक वर्षायु कोमल काण्डीय छोटे-छोटे (१५ सेमी० से ३० सेमी० या १/२ से १ फुट कमी अनुकूल परिस्थिति मे अपेक्षाकृत ऊंचे) पौधे होते है जो वर्षा मे खेतो मे तथा परित्यक्त भूमि मे उगते हैं। काण्ड पतले सीधे खडे (Erect) रक्ताभ कुछ कुछ चिपटे होते हैं। उनकी फैली हुई पर्णमय शाखायें सपत्रक पर्णसदृश होती है। पत्तिया सघन, द्विपत्तिक प्राय विनाल ५/८ सेमी० से ५/४ सेमी० या १/४-१/२ इंच तक लम्बी, ५/२४ सेमी० से १/२ सेमी० या १/१२ से १/५ इन्च चौडी लट्वाकार रेखाकृति, पत्राग्र गोल, पत्र उर्ध्वभाग हरित और पश्चाध भाग हरित-पीत वर्ण का होता है। पुष्प छोटे, फल आवले सदृश गोल १/८ इन्च वडे, शाखाओ के नीचे एक कतार मे होते है। फलों के भीतर बीज १/८ इन्च होते हैं। इसके काण्ड लाल, पत्तिया परिपक्व होने पर ईशत् रक्ताभ हो जाते है।



भुई आवला
PHYLLANTHUS NIRURI LINN



भुई आवला लाल (हजारदानी)
PHYLLANTUS URINARIA LINN



पानझोली (भुई आवला)
PHYLLATHUS RETICULATUS

छोटे भूम्यामलकी मे काण्ड हरित, पत्र हरित-पीत और फल भी हरित पीत ही होते है। गुण मे छोटे वडे दोनो बराबर होते है।

भूम्यामलकी के ताजे पत्तो मे फाईलेन्थी। नाम का तिक्त सत्व मिलता है।

रस—तिक्त-कषाय।

गुण—रुक्ष-लघु।

विपाक—मधुर। वीर्य—शीत।

प्रभाव—कामलाहर, पित्तप्रशमन।

वीर्यकालावधि—६ मास तक।

मधुयष्टि (वनौषधि विशेषॉक पंचम भाग पृष्ठ ३९५)

नाम—मुलहठी, मधुयष्टि।

शुद्ध द्रव्य—मधुयष्ठी

ग्लिसिराइजा ग्लेब्रा लिन (Glycyrrhiza Glabra Linn)

मधुयष्टि के मूल और काण्ड का उपयोग औषधि के लिये होता है।

कुल—शिम्बि-कुल

मिलावट वाले द्रव्य—मुलहठी के असली पौधे के साथ इसी की जाति के अन्य पौधो के काण्ड भी मिला कर बाजार मे आते है, जिनमे निम्न भेद प्रधान है—

(१) रूस की—ग्लैण्डुली फोरा बाल्क।
(२) स्पेन की—मुलहठी
(३) फारस की—मुलहठी
(४) मञ्चूरिया की—मुहलठी, गुञ्जा के मूल और काण्ड।

परीक्षा—बाजार मे मुलहठी के एक इञ्च से १½ इञ्च के काण्ड के टुकडे पाये जाते हैं। बाजार मे मुलहठी के छोटे बड़े (२ ५ से. मी. से १०-१२ ५ से. मी या १ इञ्च से ४-५ इञ्च तक लम्बे टुकडे आते है। बिना छिलका उतारी हुई मुलेठी के टुकडे बाह्यत रक्ताभ भूरे अथवा कालिमा लिये भूरे रग के होते है, और उस पर लम्बाई के रुख झुर्रियाँ पडी होती (Longitudinally wrinkled) है। इस पर जगह-जगह टूटी हुई वृत्ताकार चिह्न (Roat Scars) तथा काण्ड के टुकडो पर शल्क कलिकाओ के अवशेष अथवा चिन्ह होते हैं। छिले हुये टुकडे बाह्यत पीले, चिकने और रेशेदार होते है। अन्दर का काष्ठीय भाग पीला और रेशेदार होता है। अनुप्रस्थ विच्छेद करने पर कटे हुये तल (Transversely cut Surface) पर एधा की रेखा (Cambium ring) स्पष्ट दिखाई देती है, जिसके बाहर की ओर पीताभ भूरे रग के वल्कल का भाग होता है, तथा अन्दर की ओर पीला काष्ठीय भाग होता है। काण्ड मे केन्द्रस्थ मज्जक (Central Pitb) होता है। उर्ध्व वाही (Xylem) एव अधोवाही (Phloem) अरवत् (Radiate) क्रम से स्थित होते है। मुलेठी मे एक विशिष्ट प्रकार की गन्ध होती है, तथा स्वाद मे मधुर होती है। उत्तम मुलेठी मे तिक्तता नही पायी जाती। भस्म-छिलकेदार मुलेठी मे अधिकतम १०% छिलका उतारी हुयी मे ६%। जल मे विलेय सत्व-कम से कम १०%। अम्ल मे अघुलनशील तत्व-बेछिलकेदार मे अधिकतम १%, छिलका युक्त मे अधिकतम २½%।

पहचान—गन्धकाम्ल या सल्फ्यूरिक एसिड (८०%v/v) मे भिगोने पर वह क्षेत्र पीतवर्ण का हो जाता है। मुलेठी का चूर्ण पीले रग का या मटमैले पीले रग का होता है।

भेद—स्पेन की मुलेठी मे भौमिक काण्ड का भाग अधिक होता है। यह बहुत मीठी होती है और इसमे तीतापन प्राय नही होता। अतएव यह उत्तम मानी जाती है। रूसी मुलेठी प्राय जगली पौधो से प्राप्त की जाती है। इसमे अधिकाश मूल ही होता है। मधुरता के साथ इसमे कुछ तीतापन भी होता है। ईराक की मुलेठी के टुकडे अपेक्षाकृत मोटे होते है। मिस्री-तुर्की एव अरबी मुलेठी मे मिस्री उत्तम, अरबी मध्यम और तुर्की हीन कोटि की होती है। सत मुलेठी-सत मुलेठी के बाजार में काले रग के पेंसिल के आकार के बत्तीनुमा टुकडे अथवा काले या लाल रग के चौकोर टुकड़े आते ह।

रस—मधुर

गुण—गुरु-स्निग्ध

विपाक—मधुर

वीर्य—शीत

प्रभाव—वातपितशामक—वातानुलोमक—शोणितस्थापन—बल्य—शोथहर—ज्वरनाशक।

वीर्यकालावधि—१-२ वर्ष तक।

मधूक (वनौषधि विशेषांक पंचम भाग पृष्ठ ३६१)

नाम—महुवा।

शुद्ध द्रव्य—महुवा।

लै०—मधूका इन्द्रिका (Madhuca Indica Gmel)

कुल—मधूकादि-कुल (Sopotaceae)

महुवा के बडे-बडे वृक्ष होते हैं। इनका पुष्प, क्षीर, फल और तैल का प्रयोग किया जाता है।

मिलावट वाले द्रव्य—महुवा के पेड बहुतायत से मिलते है। इसके पुष्प और तैल का ही अधिक प्रयोग

होता है। इसके तैल मे मिलावट होती है। महुवे से मिलती-जुलती जातियाँ दक्षिण भारत मे अधिक मिलती है। जिनका नाम—

(१) मधूका लोंगीफोलिया (Madhuca Longifolia Linn) या जल मधूक (Bassia Longifolia)

(२) डिप्लोक्लेमा (Diploklema)

(३) ब्यूटीरेसिया (Butyraceae) जो उत्तरी विहार, चम्पारन और सोमेश्वर की पहाडियो पर अधिक मात्रा मे मिलती है। इनके पत्र-पुष्प और फल महुवे के समान होते है।

परीक्षा—महुवे की छाल—वाहर से खुरदरी फटी हुई भूरे, काले रग की होती है। भीतर छाल का रग लाल होता है, स्वाद कपैला होता है।

शुष्क पुष्प महुवा—यह पुष्प का सूखा भाग है, जो दूर से देखने मे मुनक्के की तरह, पास मे देखने पर चिपके हुए लाल रग के मासल पिचके हुए, १॥ सेमी० लम्बे और उतने ही चौडे होते है। इसका प्रयोग खाने और मद्य वनाने मे होता है।

तेल – मधूक के वीजो से ५० से ५५% स्थिर तैल निकलता है। इसमे कई प्रकार के पोषक तत्व पाये जाते हैं।

रस—मधुर-कषाय।

गुण—गुरु-स्निग्ध।

विपाक—मधुर।

वीर्य—शीत।

प्रभाव—नाडीवल्य, कफनि सारक, दाहप्रशमन।

वीर्यकालावधि—तैल कई वर्ष। पुष्प ३ वर्ष तक।

माजूफल (वनौषधि विशेषांक पंचम भाग पृष्ठ ३६५)

नाम—माजूफल, मायाफल।

शुद्ध द्रव्य—माजूफल, मायाफल।

लै०—गाल्स (Galls)।

वृक्ष का नाम—क्वेरकस इन्फेक्टोरिया (Quercus Infectoria Obiv)।

विशेष—माजूफल के ऊपर नोकदार कई उभार होते हैं। यह कपैला होता है। यह वास्तव मे फल नही होता हैं। यह क्वेरकस इन्फेक्टोरिया नामक वृक्ष की डालियो पर एक प्रकार के कृमि द्वारा छिद्र करके उसके रस को एकत्र कर अण्डे देने से वन जाता है। वास्तव मे यह इस कीट का गृह है।

मिलावट वाले द्रव्य—(१) असली माजूफल हरे रग के ऊपर काँटेदार उभारयुक्त गोल फल की आकृति की तरह होते हैं।

(२) इन फलो मे टूस जाती के वृक्षो पर 'मेलाफिस चिनेन्सिस" नाम के कीडो द्वारा माजूफल की तरह गोल-गोल कीट गृह वनते हैं, जो माजू के आकार से मिलते-जुलते होते हैं। इनका सम्मिश्रण असली माजू मे किया जाता है।

परीक्षा—माजूफल क्वेरकस इन्फेक्टोरिया वृक्ष की डालियो पर उसके रसो के द्वारा सग्रहीत होता है। अत इसका स्वाद कषाय होता है। इनका सग्रह कीट निकलने से पहले ही करना चाहिए। वाद मे सग्रहीत फलो पर कृमिकृत छिद्र पाया जाता है।

रस—कषाय।

गुण—रूक्ष-लघु।

वीर्य—शीत।

विपाक—कटु।

प्रभाव—रक्तस्तम्भन।

सगठन—माजूफल मे ५-७% टैनिक एसिड अल्प मात्रा मे गैलिक एसिड, शर्करा और स्टार्च मिलते हैं।

वीर्य कालावधि—२—३ वर्ष तक।

मालकांगनी (वनौषधि विशेषांक पंचम भाग पृष्ठ ३८४)

नाम—ज्योतिष्मती, मालकाङ्गनी।

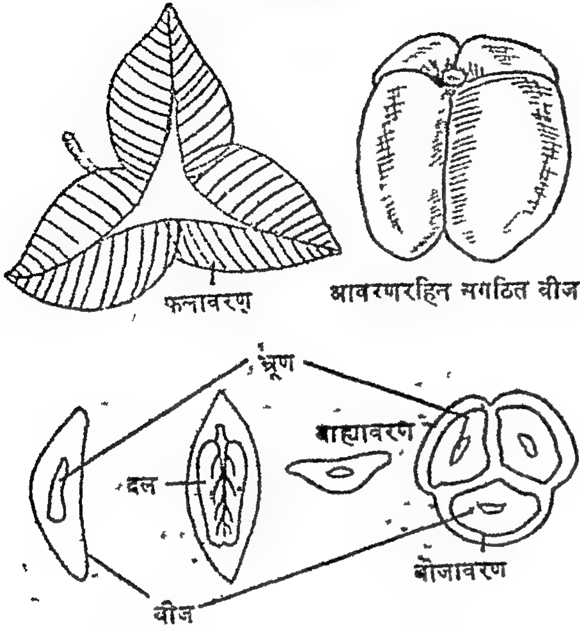
शुद्ध द्रव्य—ज्योतिष्मती।

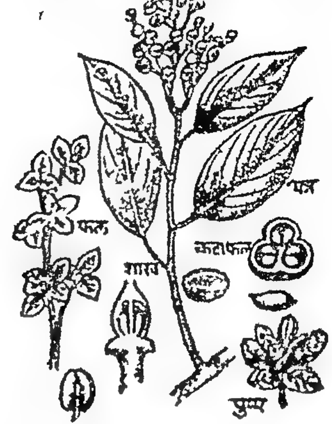
लै०—सिलैस्ट्रस्पेनिकुलेटम।

कुल—ज्योतिष्मत्यादि-कुल।

यह वहुत वडी वृक्षारोही लता होती है। इसके फल वीज और तैल का उपयोग औषधार्थ होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—ये भारतवर्ष मे सर्वत्र पाई जाने वाली लता है। यह ४००० फीट की ऊँचाई तक





स्वयजात पायी जाती है। यह बड़े बड़े पेड़ों का आवरण करके इनके शिखर तक पहुच जाती है। इसके कई भेद हैं—पुष्पागम ग्रीष्म ऋतु मे होता है। शरद ऋतु मे फल लगते और पकते हैं। फल मटर के बराबर होते है, जो कच्चे हरे नीले रंग के और पकने पर लाल पीले हो जाते है। प्रत्येक फल तीन कोष्ठ वाले होते हे और प्रत्येक कोष्ठ मे २-३ तिकोने बीज मिलते हैं। सूख जाने पर ऊपर का छिलका फट जाता है। भीतर लाल-काले रग के गूदे से ढका हुआ बीज होता है। ये प्रभूत मात्रा मे मिलते हैं। अत मिलावट की सम्भावना नही है। मिलावट में हरमल और सुदाब के बीज क्वचित मिले पाये जाते हैं।

परीक्षा—ज्योतिष्मती के फल के गुच्छे लगते हैं। पकने पर यह सूखकर फट जाते हैं। फल के मूल पर वृत लगा होता है। इसमें तीन उभार होते है जो मूल भाग भाग पर फैले रहते हैं। आवरण के नीचे आर्द्रावस्था मे गूदा रहता है। इसके द्वारा बीज आपस मे चिपटे रहते हैं। यह ऊपर से पीले लाल रग के होते है। प्रत्येक फल मे ३-६ बीज होते हैं। कभी-कभी १ भाग मे २ के बदले ३ या अधिक होते हैं। आकार त्रिकोणाकार आगे को झुका होताहै। बीज छेदन करने पर भीतर २ द्विदल मिलते है। १ फल का भार १ रत्ती होता है। प्राकृत वर्ण फल का कत्थई और क्वाथ-तैल-तथा घृत मे पीत वर्ण ज्वाला पीत वर्ण की।

रस—तिक्त-कटु।
सुगध—उग्र।
गुण—रुक्ष-लघु-स्निग्ध।
विपाक—कटु।
वीर्य—उष्ण।
प्रभाव—वेदनाहर-मेध्य।
वीर्यकालावधि—२ वर्ष तक।

तैल—ताजा तैल गहरा-पीला-गाढा-उग्र-गध वाला होता है। शरीर पर मलने और कपडे पर लगने पर गहरा पीला रग देता है। पुराना होने पर यह लाल रग का हो जाता है। वातव्याधि मे इसका प्रयोग—अर्थात् मालिस करते है। मात्रा—२-१० बूद तक। मेध्य और चक्षुष्य है।

राजिका (वनौषधि विशेषांक छठा भाग पृष्ठ ३८)

नाम—राई।
शुद्ध द्रव्य—राई।
लै०—ब्रासिका जूंसिया (Brassica Juncea).
कुल—सर्षप कुल (Cruciferac)

राई एक वर्षायु क्षुप होते है। देखने मे सरसो की तरह लगते हैं। इनके शुष्काश बीज और तैल का प्रयोग किया जाता है। इसमे एक विशेष प्रकार की तीक्ष्ण गन्ध होती है।

मिलावट वाले द्रव्य—राई की कई जातिया होती हे। रग के आधार पर काले-भूरे रग के वीज, पीले और सफेद रग के वीज। इनका स्वाद वहुत तीक्ष्ण होता है।

मिलावट—राई के वीजो के साथ स्वर्णक्षीरी के वीज मिलाये जाते है और तैलो मे भी मिलावट किया जाता है।

परीक्षा—राई के वीज भूरे पीताभ वर्ण के सरसो के वीज मे छोटे २०८३ मि० मी० लम्वे गोल होते हैं। इनमे एक प्रकार की तीक्ष्ण गध आती है।

तैल—राई का तैल भूरापन लिए पीले अथवा सुनहरे पीले रग का होता है। यह गध मे तीक्ष्ण शरीर मे लगाने पर प्रदाहजनक, त्वचा पर छाले डालने वाला होता है।

रस—कटु। गुण—लघु-तीक्ष्ण।

विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—स्फोटजनन, वेदनास्थापन।

वीर्यकालावधि—वीज २ वर्ष, तैल २-५ वर्ष तक।



नोट—स्वर्ण क्षीरी के वीजो की राई मे मिलावट की जाती हे।

रॉल (वनौषधि विशेषांक छठा भाग पृष्ठ ६१)

नाम—राल साल, निर्यास।

शुद्ध द्रव्य—रॉल, साल निर्यास, यह साल वृक्ष का निर्यास है। वृक्ष का नाम—

लै–सोरिया रोविष्टा (Shorea Robusta-Gaertn)

कुल—साल, कुल (Dipterocarpaceae)

मिलावट वाले द्रव्य—यह प्रभूत मात्रा मे मिलता है फिर भी इसमे सर्ज का राल भी मिला देते हैं।

परीक्षा—ताजा साल निर्यास प्राय रगरहित सफेद मटमैला होता है। पुराना होने पर गाढे भूरे रग का हो जाता है। इसके निर्यास से एक प्रकार का तारपीन जैसा तेल निकाल देने पर शेष राल का हिस्सा रह जाता है जो सफेद और लाल रग का डडाकृति जमा दिया जाता है।

परीक्षा (१)—यह ईथर और तारपीन का तेल और किसी तेल मे घुल जाता है। (२) गन्धकाम्ल मे घोलने पर लाल रग का द्रव वन जाता हे। (३) उसका अपेक्षित गुरुत्व १.०९७ से १ १२३ तक होता है।

रस—कषाय, मधुर।

नोट—राल मुख के रस मे नही खुलता अत. तेल मे घुलने पर यह रस प्राप्त होता है।

गुण—रुक्ष-लघु।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।

वीर्यकालावधि—वहुवर्षीय।

रोहीतक (वनौषधि विशेषांक छठा भाग पृष्ठ २९)

नाम—रोहेडा, रोहीतक।

शुद्ध द्रव्य रोहीतक। लै०—टेकोमेला उण्डूलाटा (Tecomella Undulata)।

कुल—श्योनाक कुल (Bignoniaceae)

रोहीतक मध्यम जाती का वृक्ष होता है। इसके त्वक पुष्प दोनो का प्रयोग होता है। क्वचित पत्रो का भी व्यवहार होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—रोहीतक का वर्णन दो नामो मे शास्त्रो मे मिलता है—

(१) दाडिमच्छद (२) शाल्मलक।

(१) दाडिमच्छद–के लिए और दाडिम पुष्पक के लिए टकोमेला उण्डूलाटा का वर्णन मिलता हे। और कूट शाल्मली और शाल्मली के लिए अमूरा रोहीतक या एफानें मिक्सिस पालिसटेक्चिया का विवरण मेल खाता है।

और सदियो से अमूरा रोहीतक का प्रयोग वगाल के वैद्य करते आ रहे हैं। यह श्वेत और रक्त पुष्प से इसके दो भेद हैं।

(२) रक्त रोहीडा— जो बम्बई का रोहीडा कहलाता है। यह वदर कुल का वाईटिआई नामक वृक्ष के छाल हैं जो लाल रग के होते हैं और यह बम्बई के वाजारो मे खूब मिलते है।

(३) बम्बई बाजार मे एक दूसरा रक्त रोहीडा नाम से पोलिगुनम् ग्लैब्रम् का छाल भी खूब विकता है।

(४) दक्षिण भारत मे रोहीतक छाल से जो वस्तु मिलती है वह क्लोरोक्सीलन स्वाइटेनिया डिसि. का छाल है।

मिलावट वाले द्रव्य—(१) असली रोहीतक के स्थान पर बंगाल के वैद्य "ऐफेना मिक्सिस पीलिस टेचियापार्कर"

(२) अमूरा रोहीतक।

(३) रक्त रोहीडा-एम्नस विटिआई।

(४) दक्षिण भारत का क्लोरोजाईलन स्वीटेनिया

(५) बम्बई का रक्त रोहीडा पोलिगोनम ग्लैबरम् के छाल बाजार मे मिलते है।

परीक्षा—इसके छाल और पुष्प का प्रयोग होता है। त्वचा बाहर से लाल रग की झुर्रीदार होती है।

इसके स्थान पर व्यवहार होने वाले छाल भी इसी प्रकार के मिलते-जुलते है।

इसकी दो जातिया होती हैं— (१) एक सफेद पुष्प वाला और (२) अनार के पुष्प की तरह पुष्प वाला इन दोनो की छाल एक समान होती हैं।

परीक्षा—रोहीतक मध्यम कद का वृक्ष है। इसकी शाखायें पत्तियों से भरी हुई लटकी रहती हैं। इसके पत्र नीउ हरित वर्ण के ५-१५ सेमी लम्बे और २—३॥ सेमी० चौडे आयताकार अग्रकुण्ठित होते है। पत्र के किनारे लहरदार, पत्तियाँ सूक्ष्म रोमावृत्त स्पश मे किंचित रूक्ष दाडिम के पत्र के तरह दिखाई पडती हैं। पुष्प १॥—२॥ इन्च लम्बे पीले से लेकर नारगी के रक्त वर्णो से मिलते है। दाडिम पुष्प की तरह से होते है। इसलिये शास्त्रो मे दाडिम पुष्पक लिखा है।

त्वक्—(१) इसकी छाल उपर से मटमैली भूरी भीतर लालवर्ण की होती है। अधिकतर यह रोहतक



और हिसार मे अधिक पैदा होता है। इसीलिए इसे रोहीतक या रोहडा रूढ नाम वन गया है।

(२) ममूरा रोहीतक के पुष्प—विना वृन्त के छोटे गुच्छ मे गुच्छाकार आकार मे शालमली पुष्प की तरह निर्गन्ध होते है। भावमिश्र ने केवल दाडिम पुष्पक का वर्णन किया है। शालमली या कूट शालमली भेद का वर्णन नही लिखा है। इसके पत्र ४-८ जोडे मे होते है। अन्त मे एक अकेला पत्र रहता है अत शालमली पत्रवत् दिखाई पडते हैं। राज निघण्टुकार ने कूट शालमली का वर्णन रोहीतक के पर्याय मे दिया है। और पुष्प का वर्णन शीत पुष्प- श्वेत रोहीत, शुक्लरोहीत नाम दिया है। इससे स्पष्ट दाडिमच्छद वाले रोहीतक से पृथक हो जाता है। अमूरा रोहीतक इस नाम से भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि वौटोनिस्टो ने भी रोहीतक नाम को यथावत् रखा है। और चिरकाल से यह रोहीतक के नाम से चला आ रहा है। इसकी छाल चिकनी, काटने पर लाल श्वेत रेखाओ से युक्त होती है। अत ये दोनो रक्त रोहीडा और श्वेत रोहीड़ा के नाम से निघण्टु मे लिखे गए है। रोहीत शब्द से लाल का ही अर्थ वनता है। अत रक्त रोहीतक का प्रयोग श्वेत रोहीत से अधिक होना चाहिए। गुण दोनो के एक ही हैं।

रस—तिक्त, कटु, कषाय। गुण - लघु, स्निग्ध।
विपाक—कटु। वीर्य—शीत।
प्रभाव—दीपन, रोचन, प्लीहघ्न रक्तशोधक।
वीर्यकालावधि—१ वर्ष तक।

रूमी मस्तगी (वनौषधि विशेषांक पंचम भाग पृष्ठ ३७३)

नाम—मस्तगी, रूमीमस्तगी।

शुद्ध द्रव्य—मस्तगी, रूमी मस्तगी।

लै० —माष्टिक (Masticbe)।

वृक्ष का नाम—पिस्टेसिया लेन्टिम्कम् (Pistacia Lentiscus Linn)।

कुल—आम्रादि कुल (Anacardiaceae)।

यह उपर्युक्त वृक्ष का गोद है जो भूमध्यसागर या रूम सागर के प्रदेशो से सग्रहीत होकर वाजार मे आते है। इसका गोद ही औषधि और वार्निग के काम आता है।

मिलावट वाले द्रव्य—मस्तगी के भाडीदार गुल्म छोटे वृक्षाकार होकर इसका गोद सग्रह किया जाता है। इस जाति के अनेक पेड यहा पर उत्पन्न होते है। इनका मिश्रण इसमे पाया जाता है। गोद सग्रह करने के लिए वृक्ष पर अनुलम्ब चीरा लगाया जाता है और दो महीने तक जून जुलाई मे इनका सग्रह किया जाता है। उत्तम वृक्ष से ४-५ पौड गोद निकलता है।

परीक्षा—१. मस्तगी का गोद छोटे-छोटे गोल, लम्ब गोल आकार मे पीलापन लिए सफेद होता है। स्वाद में किंचित मधुर और सुगन्धित होता है।

२ बाजारो में सफेद गोंद वाले द्रव्यों को इसी आकार का ढाल कर बेचते हैं। मुंह मे रखते समय यह चिपक जाती है। दांतो मे भी चबाने पर यह चिपक जाता है। है। असली रूमी मस्तगी के दाने दांत मे दबाने पर टूट कर चिपकता है।

३ इसमे एक उड़नशील तेल १०% मेस्टिकिन ३०% अल्कोहल मे घुलनशील द्रव्य मिलता है।

वीर्य कालावधि—बहुवर्षीय।
रस—मधुर कषाय।
गुण—लघु, रूक्ष।
विपाक—मधुर।
वीर्य—उष्ण।
प्रभाव—आमाशय-बल्य, कफनिःसारक, रक्तरोधक, वाजीकरण।

लाक्षा (प्राणिज-खनिज-द्रव्यांक पृष्ठ ३०७)

नाम—लाख

शुद्ध द्रव्य—लाख (Lac)।

लै०—लैसिफेर लक्का (कीट) (Laccifer Lacca)।

कुल—जन्तुकादि कुल (Coccidae)

लाख की उत्पत्ति बृक्ष पर आश्रय लेने वाले छोटे छोटे कीटो के द्वारा होती है। यह कई प्रकार के पेडो पर पाये जाते हैं। जैसे—वैर, पिप्पल, पाखर और इस जाति के अन्य पेड।

लाख—वृक्षो से निकले हुए रस का सूखा हुआ भाग है। इसका औषधार्थ प्रयोग किया जाता है।

मिलावट वाले द्रव्य—पिप्पल के वृक्ष की लाख सबसे उत्तम होती है। इसमे वैर पाखर महुआ की लाक्षा का भी मिश्रण होता है। पहले लाख लगी पतली-पतली टहनियो को एकत्र कर लाख तैयार करते है। फिर इन्हे गलाकर चपडा इत्यादि तैयार करते है। औषधार्थ डालियो से निकाला हुआ लाख ही प्रयोग किया जाता है। लाख मे राल का भाग, मोम और रञ्जक द्रव्य रहते हैं।

परीक्षा—लाख की उत्पत्ति एक विशिष्ट प्रकार के क्षुद्र कीट से होती है। यह कीट पीपल, वरगद, बेल और पलास की पतली टहनियो पर आश्रय लेते है। इनके लारवा लगभग ½ मि० मी० तक छोटे वृक्षो की कोमल टहनियो पर चपकते है। यहा से वृक्ष के रस को लेकर जीवन निर्वाह करते हैं। इसके नर कीट छोटे-छोटे पखो से युक्त हो जाते है। स्त्री कीट से गर्भाधान होने पर तीव्रता से इनकी वृद्धि होती है। क्रिमी के स्थान पर त्वचा मे क्षत होने पर उनसे रस निकलता है। पोषण के लिए यह रस आता है और कीट के मुख रस के साथ निकल कर लाख का स्वरूप धारण करता है। कृत्रिम ढङ्ग से भी वृक्षो पर ये कीडे बैठाये जाते है। जुलाई और दिसम्बर मे ये अधिक लाख उत्पन्न करते है। स्त्री कीट जितना ही अधिक अण्डे देती है लाख उतना ही अधिक बनता है। इन्हे एकत्र कर विभिन्न कार्यो मे प्रयोग किया जाता है।

रस—कषाय ।

वीर्य - मधुर ।

विपाक—मधुर ।

गुण - लघु, स्निग्ध ।

प्रभाव—रक्तस्तम्भन, पित्त प्रशमन ।

वीर्य कालावधि—लाक्षा का बहुवर्षीय ।

लाल चन्दन (बनौषधि विशेषांक तृतीय भाग पृष्ठ ४१)

नाम—रक्त चन्दन, लाल चन्दन ।

शुद्ध द्रव्य—रक्त चन्दन, लाल चन्दन ।

ले—प्टेरोकार्पस सेंटेलिनस (Pterocarpus sentalinus linn F) ।

कुल—शिम्बी कुल (Leguminoceae) ।

प्रयोज्य अङ्ग—लाल चन्दन के वृक्ष मध्यम ऊँचाई के होते है। इसकी काड और शाखा का प्रयोग औषधार्थ होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—लाल चन्दन का काष्ठ अतीव सुलभ है। इसमे कोई गन्ध नही होती है। अत मिलावट की सम्भावना कम है। फिर भी लाल रङ्ग के काष्ठो का सम्मिश्रण इसमे कर दिया जाता हे।

बगाल मे लोटा काष्ठ करके इससे भी भारवान लकडी लाल रङ्ग की मिलती है। इसके मिलावट की सम्भावना अधिक होती है।

परीक्षा—लाल चन्दन के छोटे बडे टुकडे बाजार मे मिलते हैं जो काले लाल रङ्ग के होते हे। पानी मे डालने पर यह डूब जाता है। जल के साथ घिसने पर लाल रग निकलता है। बगाल मे लोहा काष्ठ अथवा 'एडेनोन्थोरा पेओनिया को' लोहा काष्ठ लाल कम्बल, रक्त चन्दन कहते हैं। यह रक्त चन्दन नही है।

रस—तिक्त, कषाय ।

गुण—गुरु, रूक्ष ।

विपाक—कटु ।

वीर्य—शीत ।

प्रभाव—रक्तशोधक, दाह प्रशमन ।

वीर्य कालावधि—४–१० वर्ष तक ।

लोध्र (बनौषधि विशेषांक छठा भाग पृष्ठ १६८)

नाम—लोध्र, पठानी, लोध ।

शुद्ध द्रव्य—लोध्र, पठानी लोध ।

लै.–सिम्प्लोकोज रेसिमोसा (Symplocos Racemosa)

कुल–लोध्र कुल (Symplocaceae).

मिलावट वाले द्रव्य—लोध्र मे इसी की जाति के दो पेडो की जाति बाजार मे मिली हुई पायी जाती है।

१ सिम्प्लोकोज क्रेटेग्वाइड्स २ सिम्प्लोकोज-स्पिकाटा

सिम्प्लोकोज क्रेटेग्वाइड्स—का छाल १/२ से १ इन्च मोटी स्लेटी या मृत्तिका रग की होती है। बाहरी छाल पतली होती है। छाल का भीतरे भाग हल्के भूरे रग का होता है।

परीक्षा—लोध की छाल नालीदार चपटी और मोटी होती है। इसका वाह्य भाग धूसर वर्ण का श्लक्ष्ण होती है। आभ्यन्तर भाग खुरदरा होता है। तोडने पर टूट जाती है।

रस—कषाय अनुरस तिक्त

गुण—लघु, मृदु, रुक्ष ।

विपाक—कटु ।

वीर्य—शीत ।

प्रभाव—ग्राही, स्तम्भन, सकोचक होता है।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष तक ।

लौंग (बनौषधि विशेषाँक षष्टम भाग पृष्ठ १७७)

नाम—लवङ्ग ।

शुद्ध द्रव्य–लवङ्ग, कारियोफिल्लम (Caryphyllum) एडजेनिया केरियोफाइलुस (Eugenia caryoppyllus) ।

कुल—लवङ्ग कुल (Myrtaceae)

लवङ्ग मलक्का द्वीप पुज का एक पौधा है जिसकी खेती अब कई स्थानो मे होने लगी है। अधिकाँश यह जजीबार और पेंबा के टापुओ से आयात होता हे। इस के

पुष्प की कली का सग्रह ओषधार्थ किया जाता है। जिसे खिलने से पहले तोड लिया जाता है।

मिलावट वाले द्रव्य--लौंग के साथ तेल निकाला हुआ लौंग अथवा पुराना सूखा हुआ लौंग मिलाया जाता है। पुष्प के साथ पुष्प वृन्तो की भी मिलावट, कभी-कभी विकसित कलिकाये फल तथा टूटे पुंकेशर के दल एव पुष्प के दल पत्र आदि मिलाये जाते हे।

परीक्षा—लौंग पुष्प की कलिका १ मे० मी० से पौने दो से मी. लम्बी लालिमा लिए भूरे रग की होती है। ऊपर पुष्प कलिकाये सूखी हुई भ्रदनाराकार मालूम होती है। नीचे का डठल वाला भाग गोल चपटा और चतुष्कोण होता है। इसमे चार वाह्य पुष्प पत्र होते हैं। उनके ऊपर पुष्प के अन्तर दल अर्ध्य वृत्ताकार सटे हुए नरोल हो जाते हे ये दल पत्र चार होते हैं। इनके भीतर अन्तर मुख पुंकेशर वहु सख्यक होते है। इसके बीच मे एक नोकदार पुष्प गर्भाशय का भाग होता है। इसमे एक वहुत तीव्र मसालेदार सुगन्धि होती है।

(१) उत्तम लवग पर नाखून मे दवाने पर तेल दिखाई पडता है।

(२) पानी मे डालने पर डूब कर नीचे बैठ जाता है

(३) निर्वीर्य लौंग जिसका तेल निकाल लिया गया है पानी पर तैरता रहता है।

(४) उत्तम लौंग मे १५% लवग का तैल होता है। जलाने पर भस्म ७% प्राप्त होता है।

(५) लवग का तैल—ताजा तैल पतला हल्के पीले रग का सुगन्धित होता है। कालान्तर मे यह गाढा लाल वर्ण का हो जाता है, इसमे लौंग की विशेष गंध आती है।

रस—तिक्त और कटु।

गुण—लघु तीक्ष्ण-स्निग्ध।

विपाक—कटु।

वीर्य—शीत किन्तु वाहर लगाने मे उष्ण होता है। यह त्वचा जीभ पर चरपराहट पैदा करता है।

वीर्यकालावधि--२ वर्ष तक। लवग का तैल ३ वर्ष तक। देर तक रखने मे पुराना होने पर लौंग का तेल निर्वीर्य गाढा और नीचे जम जाता है।

बचा (वनौषधि विशेषांक चतुर्थ भाग पृष्ठ ३९५)

नाम -वचा, घोडवच।

शुद्ध द्रव्य—वचा, घोडवच।

लै०—एकोरस कैलेमस (Acorus Calamus Linn)

कुल--शूरण—कुल। (Araceae)।

परिचय – वच के दो भेद माने जाते है।

(१) वच।

(२) वाल वच। या

श्वेत वच, दूधिया वच। इसके मूल भौमिक काड का प्रयोग चिकित्सा मे अधिक होता है।

मिलावट वाले द्रव्य –(१) वच वाजार मे पर्याप्त मिलती हे किन्तु पचार और व्यापारी कभी-कभी वच के नाम पर दक्षिणी कुलिजन की जड मिला देते है।

(२) अकोट वच—के नाम से वत्सनाभ की कई जातियो की जड मिला दी जाती है। श्वेत वच के छिलका उतारे चूर्ण के स्थान पर कभी-कभी दालो के चूर्ण को मिला देते हैं।

परीक्षा–वच की जडो को काट कर इन्हे साफ सुखाकर ६-६ अगुल के टुकडे वाजार मे आते हैं। ये दो प्रकार के मिलते है कुछ छिलका हटाये हुए, कुछ विना छिलके के। छिलका हटाए हुये वाहर से हल्के भूरे रग के होते हैं। ऊपर का तल चिकना रोमश पत्र चिह्न से अकित होता है। और पर्व की चिह्न पर्व की तरह दिखाई पडते हैं। पर्वों के स्थान पर सूक्ष्म वाल दिखाई पडते है। कही कही पर सूखी हुई कलियो के अवशेष भी पाये जाते हैं। नीचे के तल पर सूत्राकार उपमूलो के वहुत से उपचिह्न मिलते है। अनुलम्ब दिशा मे इन पर पतली पतली झुर्रियाँ पायी जाती हैं। इनके तोडने पर उग्रगध मिलता है। इसकी प्राप्ति भारतीय वच के अतिरिक्त ईरान से होती है। यह अधिक लाल होते हैं। स्वाद मे यह कटुतिक्त और तीक्ष्ण होते हैं। जीभ पर चरपराहट देर तक होती है। इसमे एक सुगन्धित उडनशील तैल होता है।

इसमे पाईनीम-कैम्फीय-केलेमीन इत्यादि उपक्षार पाये जाते है।

रस—तिक्त- कटु। गुण--लघु-तीक्ष्ण-सर।

विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—मेध्य वामक-वेदना स्थापन वातानुलोमन।

वीर्य कालावधि—१ वर्ष तक।

वत्सनाभ (बनौषधि विशेषाङ्क चतुर्थ भाग पृष्ठ ४०९)

नाम—वत्सनाभ या मीठा विष, वच्छनाग।

शुद्ध द्रव्य—वत्सनाभ या मीठा विष वच्छनाग।

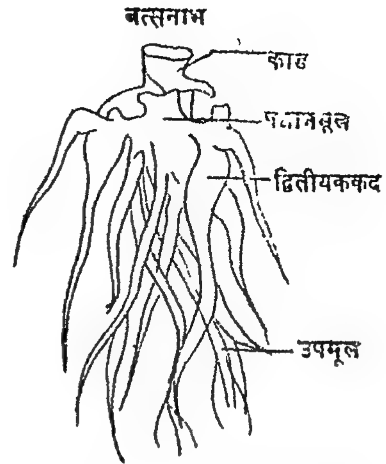
लै०–एकोनाइटम फेरोक्स (Aconitum Ferox)

कुल–वत्सनाभ-कुल (Ranunculaceae)

यह ७०००-१२००० फीट ऊचाई पर होने वाला एक क्षुप का कद है। इसका क्षुप बहु वर्षायु, मूलकद १-३ इन्च लम्बा, चौथाई से १ इन्च मोटा, वृत्ताकृति, ऊपर मोटा और नीचे गाजर की तरह पतला होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—वत्सनाभ के साथ वत्सनाभ की जाति के सविष और निर्विष कद मिले हुए बाजार मे पाये जाते है। यह सिंगिया के अपेक्षा कम विषाक्त होता है। इसके साथ गाजर विलायती के सूखे हुए कद का भी मिश्रण होता है।

परीक्षा—प्राकृतिक वत्सनाभ का कद बाहर से मटमैला सफेद होता है। सूखने पर झुर्रीदार यह अधिक से अधिक ३-४ इन्च बडा होता है। इसके बहुवर्षीय कद ही सग्रह किये जाते है। अत यह मोटे और ३-४ इन्च तक लम्बे होते है। सग्रह करने वाले छोटे कदो को भी सग्रह करते है। अत छोटे-छोटे कद भी बाजार मे मिश्रित पाये जाते है। यह तोडने पर कठिनाई से टूटते है, और टूटने की जगह श्वेत, चमकदार कठिन कॉच की तरह होती है सग्रहकर्त्ता इसे सग्रह कर सुखा देते है। सुखाने से पहले कट्टो या बोरो मे भर देते हैं। यह अपनी गर्मी से सिक्त



हो जाता हे और सूखने पर झुर्रीदार चौडाई मे सिकुडे हुए बन जाते है। उबालने पर भीतर का रग भी लाल रग का हो जाता है। कूटने पर इनका चूर्ण रवेदार चमकीला बनता है। सीगिया का रग काला होता है। तोडने पर कठिनाई से टूटता है। आकृति मे सीग की तरह और कठिनाई मे भी सीग की तरह कठिन होता है।

रस—मधुर, चबाने पर जिह्वा को शून्य करता है।

विपाक—मधुर।

वीर्य—उष्ण।

गुण गुरु, स्निग्ध, व्यवायी, विकासी।

प्रभाव - ज्वरघ्न, स्वेदल, मूत्रल और मारक अधिक मात्रा मे।

वीर्यकालावधि - २ वर्ष तक।

वनप्सा (बनौषधि विशेषाङ्क चतुर्थ भाग पृष्ठ ४४१)

नाम—वनप्सा।

शुद्ध द्रव्य—वनप्सा।

लै०–वाईओला ओडोराटा (Viola Odorata Linn)

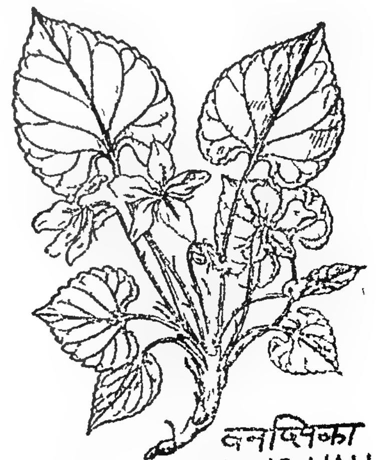
कुल–वनप्सादि कुल (Violaceae)

वनप्सा के सूखे हुए पचागो का प्रयोग होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—वनप्सा का आयात अरब और ईरान से होता है। ये बम्बई के बाजारो से आकर चारो तरफ फैल जाता है। भारतवर्ष मे भी इसकी खेती होती है। पर्याप्त न होने के कारण बाहर से आयात होता है।

वनप्सा मे निम्न जातियो की भी मिलावट होती है—

(१) वाईओला सेनेरिया—



VIOLA SERPANS WALL

यह पंजाब, बिलोचिस्तान, सिंध, काठियावाड और राजपूताना की पहाड़ियो पर मिलता है।

(२) वाईओला सर्पन्स—यह भारतवर्ष के पहाड़ी इलाको मे सब जगह पाया जाता है।

परीक्षा—यह एक क्षुद्र वनौषधि है जो जमीन पर फैलती हे। इसकी पत्तियाँ हृदयाकृति गोल अधोपृष्ठ पर पत्रोदर रोमश शिरायें उभरी हुई किनारे दन्तुर होते हैं।

फूल—बैंगनी नीले रग के झमकेदार होते हैं और इनमे बडी सुगन्ध आती है। पुराने पडने पर यह भूरे पीले और सफेद हो जाते है। इसकी जड ५-६ अगुल लम्बी पतली होती है। इसका पचाग, पुष्प और मूल तीनो अलग-अलग सग्रहीत होते है। फूल युक्त वनप्सा अधिक उत्तम माना जाता है। फूल वाला वनप्सा बाजार मे कम मे आता है। कम फूल वाला काश्मीरी का होता है। इसकी जड फीके पीले रग की कौवे की चोच की तरह टेढी-मेढी होती है। इसमे ४-५ उपमूल मिले रहते हैं।

रस—मधुर तिक्त।
विपाक—मधुर।
वीर्य—शीत।
गुण—लघु मृदु।
प्रभाव—श्लेष्म नि.सारक, पित्तप्रशमन।
वीर्यकालावधि—१ वर्ष तक।

वंश लोचन (वनौषधि विशेषाक पचम भाग पृष्ठ ५८)

नाम—वंशलोचन, तुगाक्षीरी।

शुद्ध द्रव्य—वंशलोचन, तुगाक्षीरी।

लै०—वेम्बूसा-आरून्डिनेसिया (Bembusa Arundinaceaea)।

कुल—तृण कुल (Gramineae)।

परिचय—यह एक प्रकार के स्त्री वास के खोखले मे प्राप्त होता हे। पहले यह रस के रूप मे सग्रह होता है और बाद मे यह सूख जाता है। यह बर्मा सिंगापुर के एक विशेष जाति के बासो से निर्माण होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—शुद्ध वंशलोचन वास के रस से निकलता है, जो श्वेत दानेदार होता है। यह सफेद नीले रग के या मटमैले श्वेत रग के होते हैं। इसकी जगह पर नकली वंशलोचन यह सिलीका से तैयार होता हे। इसे साफ करके नीला रग डाल कर बड़े-बडे श्वेत अपारदर्शक टुकडो मे एकत्र करते है। यह नकली वंशलोचन ही अब बाजार मे पाया जाता हे। असली वंशलोचन का आयात ग्रेट वार अर्थात महायुद्ध के बाद आना बन्द हो गया। तब से नकली वंशलोचन ही बाजार मे मिलता है।

परीक्षा—असली वंशलोचन बास के रस का सूखा हुआ सार है जो श्वेत वर्ण का होता है। यह श्वेत मटमैला रस मे-मधुर होता है। इसको विशेष प्रक्रिया द्वारा पकाकर श्वेत-नीला वर्ण का तैयार किया जाता है। यह छोटे-बड़े टुकडो मे मिलता है। ये वास मे जमा होने के कारण उन्नतोदर होता हैं। यह बहुत हल्का होता है, जो दबाने पर टूट जाता है और चूर्ण बन जाता है। पानी मे घुल जाता है। नकली वंशलोचन बड़े-बडे टुकडो मे और छोटे टुकड़ो मे श्वेत नीले वर्ण का मिलता है। यह सिलका और कैल्शियम के योग से रसायनिक प्रक्रिया द्वारा बनाया जाता है। यह तोडने पर सरलता से नहीं टूटता। पानी मे नही घुलता। पीसने पर भी जल्दी इसका चूर्ण नही बनता। दानेदार इसका चूर्ण बना रहता है। यह विरस होता है। इसमे कोई रस नहीं होता। असली वंशलोचन पानी मे घुल जाता और श्वेत वर्ण का अर्थात् पानी मे इसका दूधिया घोल बन जाता है।

रस—मधुर।
विपाक—मधुर।
वीर्य—शीत।
गुण—लघु, रूक्ष।
वीर्य कालावधि—६ मास से १ वर्ष तक।

विधारा (वनौषधि विशेषांक पंचम भाग पृष्ठ १५४)

नाम—विधारा, वृद्ध दारुक, घाव पत्ता।

शुद्ध द्रव्य—विधारा, वृद्ध दारुक, घाव पत्ता।

लै०—आर्जीरिया स्पेसिओसा स्वीट। (Argyrcia-Speciosa Sweet)।

कुल—त्रिवृत-कुल। (Convolvulaceae)।

इसके मूल और काड बाजार मे मिलते हैं। वास्तव मे यह घाव पत्ता मर्यादा वेल या समुन्दर शोष की लता के काण्ड है। बाजार मे यही विधारा के नाम से मिलते हैं।

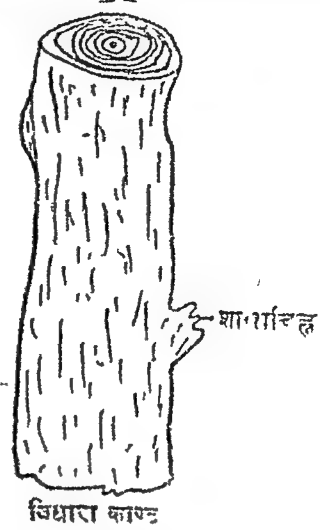
मिलावट वाले द्रव्य—(१) शास्त्रीय विधारा का जो वर्णन मिलता है उसके लक्षण इस मर्याद वेल मे नही मिलते। इसकी जगह पर दक्षिण भारत मे मर्याद वेल नाम से आईपोमिया त्रायलोवा का ग्रहण विधारा नाम से होता है।

(२) आईपोमिया पेटालोइडिया नामक त्रिवृत की जड़ चित्रकूट से विधारा नाम से आती है और उसके ६ मासे चूर्ण देने से मलत्याग भी ५-६ हो जाते हैं।

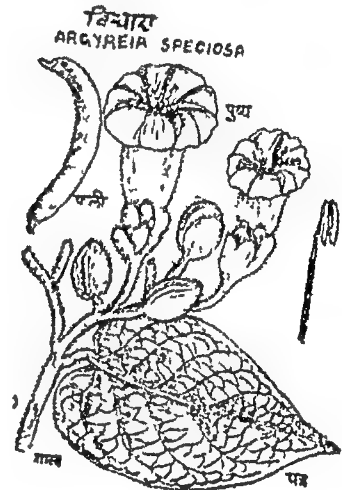
परीक्षा—समस्त भारत मे समुन्दर शोष या घाव पत्ता की तथाकथित विधारा की लता पायी जाती है। इसका वर्णन निम्न है–घाव पत्ते की जड लम्बी, काष्ठीय तथा चिमडी होती है जिसकी छाल गाढ़े भूरे रग की होती है। अनुप्रस्थ विच्छेद करने पर मध्य मे सुषिर काष्ठीय ऊति होती है जिसके चारो ओर एक केन्द्रिक वृत्तो मे काष्ठीय तन्तु स्थित होते है। इन वृतो के बीच बीच मे तनुभित्तिक ऊति या पैरेकाइमा पायी जाती है। केन्द्रस्थ काष्ठीय भित्ति मे आक्षीर वाहिनिया होती हैं, जिनमे पीले रग का दूध मिलता है। तनुभित्तिक ऊति मे रेफाइड्स पुंज होते है।

"विधारा के मूल एवं बीजो को अनार्द्र शीतल स्थान मे मुख बंद पात्रो मे रखना चाहिये। उक्त विधारा की जडो मे अम्लीय राल तथा टैनिन की भांति तत्व पाये जाते हैं।

रस—कटु-तिक्त—कषाय।



विधारा काण्ड



गुण— लघु-स्निग्ध।

विपाक—मधुर।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव—कफ वात शामक, व्रण पाचन-दारण-शोधन रोपण।

वीर्य कालावधि—१ वर्ष तक।

शंखपुष्पी (वनौषधि विशेषांक षष्टम भाग पृष्ठ २५२)

नाम—शखपुष्पी, शखाहुली।

शुद्ध द्रव्य—शखपुष्पी, शखाहुली

लै०—"कन्वोलवुलम प्लुरिकाउलिस" (Convolvulus Pluricaulis Clois)

कुल त्रिवृत कुल (Convolvulaceae)

इसके पचाग का प्रयोग चिकित्सार्थ किया जाता है। यह क्षुप जाति की वनौषधि है।

मिलावट वाले द्रव्य—निघण्टुओ मे श्वेत पुष्प वाली शखपुष्पी का वर्णन है। किन्तु इसके स्थान पर रक्तपुष्पी और, नीलपुष्पी शखपुष्पी का भी मिश्रण किया जाता है।

(१) नील-पुष्पी कन्वालवुलस आल्सिनोरडिस

इसको विष्णुक्रान्ता या नील पुष्पी कहते हैं। दूसरी कासकोरा डेकुसाटा—कालमेघ वर्ग की है। इसके क्षुप कुछ बडे और ऊँचे होते है। बगाल और विहार मे इसे डानकुनी कहते हैं। इसका प्रयोग शखपुष्पी के लिए बहुत होता है।

परीक्षा—शखपुष्पी प्रसरणशील छोटा पौधा है जो घास की तरह फैलता है। ४–१२ इन्च तक जगह घेरता है। इसकी शाखा रोमश पत्तियाँ ½ से १॥ इन्च लम्बी अवृन्त सूक्ष्म रोमश ३ सिराओ से युक्त होती है। पुष्प मे वाह्यदल रोमश और भीतर का आभ्यन्तर दल शख की तरह सफेद वृन्त मे छोटा और आगे फैला हुआ कुपी के आकार का होता है। श्वेत पुष्प होने के कारण शखपुष्पी दधि पुष्पी और फलो के कई गुच्छ होने के कारण शखावली या शखाहुली कहते हैं।

मूल—४–६ इन्च लम्बा पतला किंचित रोमश हरिताम श्वेत होता है। फल छोटे-छोटे शाखाओं पर लगे रहते है। इसमे मेध्य गुण होने के कारण सफेद पुष्प वाली शखपुष्पी ही औपधि के काम मे प्रयुक्त होती है। इसमे नील और लाल पुष्प वाले का सम्मिश्रण किया जाता है।

रस—कषाय, तिक्त।

गुण—स्निग्ध, पिच्छिल, गुरु, सर।

विपाक—मधुर।

वीर्य—शीत।

प्रभाव—मेध्य, बुद्धिवर्धक।

वीर्यकालावधि—६ मास से १ वर्ष तक।

हरी और ताजी शखपुष्पी का प्रयोग रक्त भार कम करने के लिए भी होता है।

शतपुष्पा (वनौषधि विशेषाँक षष्टम भाग पृष्ठ ४११)

नाम—शतपुष्पा, सौफ

शुद्ध द्रव्य—शतपुष्पा सौफ

लै०—फोइनीकुलम कैपिलिकम (Foeniculum Capilicum) अथवा फोइनीकुलम वल्गेरी (F Balgerae) भी कहते है।

कुल—मण्डूकपर्ण्यादि कुल।

यह एक क्षुप जातीय पौधा है, जो ३–४ फीट ऊँचा होता है। इसके मूल और फल का औषधार्थ प्रयोग होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—सौफ का फल एक साधारण जाति का फल है। यह छोटा, लम्बा, गोलाकार होता है। इसके कई भेद होते हैं—(१) हरी सौफ वडी।

(२) हरी सौफ छोटी।

(३) सफेद सौंफ छोटी।

(४) सफेद सौफ वडी।

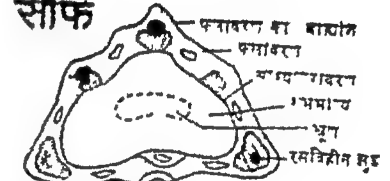
सफेद सौफ के साथ सोवा के वीज, गाजर के वीज, सर्पत के सीक, और सड़े गले सौफ का भाग भी मिश्रित होता है।

परीक्षा—इसके फल वहुत छोटे, लम्बे, गोलाकार, बीच मे मोटे, किनारो पर पतले अधोभाग पर वृन्त लगा होता है। उर्ध्वभाग पर योनिक्षत्र का अवशिष्ट भाग होता है। इनके ऊपर पीताभ १० अनुलम्ब रेखायें होती हैं। दो

सौंफ



शतपुष्पा सामने से   शत पुष्पा पीछे से



शतपुष्पा का व्यावर्तन अनुप्रस्थछेद

रेखाओ के बीच हरिताभ गर्त होता है। और प्रत्येक फल पर दो वीज होते हैं। दोनो के सन्धिस्थल पर एक मोटी रेखा होती है। भीतर दो वीज होते हैं। सन्धिस्थल पर दबाने से दो वीज निकल आते हैं। वीज लम्बे और अन्दर की तरफ नतोदर होते है। वीजो के वीच एक सूक्ष्म झिल्ली होती है। वीज के ऊपर एक आवरण होता है। जो पीले रग की होती है। इसको हटाने पर एक लव गोल मज्जा मिलती है।

रस—मधुर।

गध—सुगन्ध।

गुण—कठिन, खर, रूक्ष, लघु।

वीर्य—शीत।

विपाक—मधुर।

प्रभाव—ग्राही, दीपन, पाचन।

वीर्यकालावधि—१ वर्ष तक।

शतावरी (वनौषधि विशेषांक षष्टम् भाग पृष्ठ २०८)

नाम—शतावरी, शतावर

शुद्ध द्रव्य—शतावरी, शतावर।

लै०—स्पेरेगस रेसीमोसस् (Asparagus Racemosus)

कुल—पलाण्डु—कुल (Lilliaceae)

शतावरी कांटेदार की काटेदार आरोही लता होती है। इसके मूल से छोटे-छोटे सैंकडो मूल निकलते हैं। इन मूलो को सुखाकर औषधि में उपयोग होता है। वर्षा ऋतु मे शतावरी के ऊपर का काण्ड जब गिर कर सूख जाता है। नये कोपल निकलते हैं, जिनको अकुर के नाम से कहते है। इनका भी प्रयोग औषधार्थ होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—(१) शतावरी के मूलो को सुखाकर औषधार्थ बाजार मे एकत्र करते है। इसकी कई जातियाँ होती हैं, छोटी शतावरी की भी कई जाति है। जो गमलो मे लगाये जाते है और सदा हरित होते हैं किन्तु जगली शतावरी का सग्रह अधिक होता है। इसके सूखे हुये कन्द २—१० इन्च तक लम्बे दोनो सिरो पर पतले और बीच मे मोटे होते हैं। ये रग मे मटमैले पीले और लाल भी होतें हैं।

(२) महाशतावरी—यह शतावरी की बडी किस्म है, जिनकी मूल मे २—६ गज लम्बे मूल निकलते हैं। और एक मूल से सहस्रो मूल निकलते हैं। उसका नाम गजवेल है। इसके छिलके उतार कर ४-४ अगुल के टुकडे बनाकर सुखा देते हैं। इसे उत्तम शतावरी मानते है।

परीक्षा—(१) शतावरी के कन्द छोटे बडे छिलके सहित और बिना छिलके के दोनो प्रकार के मिलते हैं। जगली शतावरी के छोटे भेद से कन्द छिलके सहित २-१० इन्च तक लम्बे बीच मे मोटे और दोनो तरफ पतले सिकुडे हुये झुर्रीदार मिलते है। यह ऊपर से श्वेत-पीत या मटमैले भूरे रङ्ग के होते है। इनके एक सिरे से दूसरे सिरे तक अनुलम्ब रेखायें होती है। खाली रहने पर उनका बाहरी रङ्ग मटमैला भूरा और भीतर की तरफ श्वेत रेशम की तरह चमकता है। कन्द—छिले हुये श्वेत सिकुडे हुये झुर्रीदार होते है।

(२) महाशतावरी—के कन्द कई गज लम्बे होते है। अतः इनके १०-१० इन्च के टुकडे काटकर सुखा देते है। गुजरात, महाराष्ट्र और बम्बई के बाजारो मे इसीके छिले हुये टुकड़े अधिक मिलते हैं। यह चपटे, पतले, गोल झुर्रीदार श्वेत-श्वेत मूसली कन्द की तरह दिखाई देता है। श्वेत मूसली मे इसकी मिलावट होती है। दोनो शतावरी छिली हुई, स्वाद मे मधुर, ईषद् तिक्त होती है। और कुछ लोआबदार होती है। महाशतावरी सहस्र मूला महल वीर्या है। और शतावरी सतमूली सतवीर्या है। ये दोनो मे अन्तर है।

रस—मधुर—ईषद् तिक्त।

गुण—गुरु—स्निग्ध।

विपाक—मधुर।

वीर्य—शीत।

प्रभाव—बल्य-स्तन्यजनन-रसायन।

वीर्यकालावधि—१—२ वर्ष तिक्त।

शाल्मली (वनौषधि विशेषांक षष्टम भाग पृष्ठ ३८१)

नाम—शाल्मली, सेमल।

शुद्ध द्रव्य—शाल्मली, सेमल

लै०—बम्बेक्स सेइबा (Bombax Ceibe)

कुल—शाल्मली कुल (Bombacaceae)

नोट—सेमल के मूल और निर्यास तथा मोचरस का औषधार्थ प्रयोग होता हैं।

मिलावट वाले द्रव्य—कूट शाल्मली (Ceibapentandra) इसके निर्यास मोचरस से मिलते-जुलते होते हैं। यह सेमल की जगह पर प्रयोग किया जाता है।

परीक्षा—(१) शाल्मली निर्यास—काण्ड की त्वचा फटने से अथवा चीरा लगाने से एकत्र होता है। इसका वर्ण गहरा लाल होता है। तथा बहुत चिपचिपा होता है।

(२) मोचरस—यह सेमल की डालियो पर एक कीट के द्वारा डालियो को काटने से और रस निकलने पर उस पर कीडे द्वारा घर बनाने से लाख की तरह एकत्र होता है। यह सूखकर पहले श्याम वर्ण का और धीरे-धीरे कत्थई रग का पपडी जैसा तैयार हो जाता है। यह भीतर से खोखला होता है। पानी मे भिगो देने पर फूल

कर मोटा हो जाता है। तोडने पर सरलता से टूट जाता है। टुकडो के भीतर कृमि के धूल की तरह अवशेष पाये जाते हैं।

(३) सेमल का मुमला—यह सेमल के छोटे क्षुप मे मूली की तरह मोटा रसदार और चिकना होता है। इसकी छाल को हटाकर सुखाकर छोटे-छोटे टुकडो मे काटकर रख लेते है।

मोचरस—

रस—कषाय।

विपाक—कटु।

वीर्य—शीत।

प्रभाव—रक्तस्तम्भन।

सेमल का मूपला—

रस—मधुर।

विपाक—मधुर।

वीर्य—शीत।

वीर्यकालावधि—सेमल का मूसला १ वर्ष।

मोचरस—१-३ वर्ष तक।

पुष्प चूर्ण—३ मास तक।

शालिपर्णी (वनौषधि विशेषॉक षष्टम् भाग पृष्ठ २३१)

नाम—शालिपर्णी, सरिवन।

शुद्ध द्रव्य—शालिपर्णी सरिवन।

ले०—डेस्मोलियम गजेटिकम (Desmodium Gangeticum D C)।

कुल—शिम्बी कुल (Leguminoceae)।

इसके पचाग का प्रयोग होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—इस जाति तथा कुल की अन्य वनस्पतियो का शालिपर्णी नाम से ग्रहण किया जाता है।

(१) Desmodium Polycarpum D C.—इसके पत्र त्रिपत्रक (3 Folialate) त्रिपर्णी तथा रूपरेखा मे गोलाडाकार होते हैं। फलिया १.२५ से २ सेमी या १/४ से ४/५ इन्च लम्बी तथा अवृन्त होती हैं।

(२) Desmodium pulcbellum Benth ex Baker—इसे गढवाल मे जलमाल पान कहते है।

(३) D Tiliaefolium G Don

(४) फ्लेमिंजिया चप्पर (Flemingia Chappar Ham) तथा

(५) F Semialate Roxb—इनको देहरादून के जङ्गलो मे सालपान तथा वडा सालपान कहते हैं। इनके पौधे भी कुछ शालिपर्णी से मिलते जुलते होते है। अतएव कभी शालिपर्णी के नाम से इनका सग्रह कर लिया जाता है।

(१) शालिपर्णी का अर्थ शालीय या धान की तरह पत्ते वाली ऐसा अर्थ करने पर व्रीहीपर्णिका, दीर्घपत्रा, सुपत्रिका, दीर्घपत्रिका यह पर्याय इसके अर्थ मे ठीक बैठते हैं।

(२) शालपर्णी करके जो अर्थ लगाया जाता है, वह शाल की तरह चौडे पत्ते वाली अर्थ करके पिठवन को भी वहुत से लोग शालिपर्णी कहते हैं।

परीक्षा—शालिपर्णी के नाम मे उक्त वनस्पति का ही ग्रहण करना चाहिये। शालिपर्णी के मूल सहति (Root System) मे प्राय अधिमूल (Tap Root) का विकास अधिक नही होता। उसके स्थान मे मूल के आधार के पास से पतली रस्सी की भाँति लम्बी-लम्बी (२-३ फुट या अधिक (अनेक (५-१५ तक या अधिक) शाखाये निकलकर काफी गहराई तक फैल जाती हैं। यह प्राय. प्रारम्भ से अन्त तक रूपरेखा मे बेलनाकार (Cylindrical) १/४ इन्च तक मोटे हल्के पीताभ वर्ण के अथवा पीताभ श्वेत रग के तथा प्राय चिकने होते है। इनके अग्र पर सूत्राकार अनेक उपमूल (Rootlets) होते है जिनके अग्रो पर कुल स्वभाव के अनुसार अनेक दण्डालुयुक्त सूक्ष्म ग्रन्थिकाये (Bacterial nodules) पाई जाती है। केन्द्रस्थ काष्ठीय भाग भी अपेक्षाकृत अधिक तथा तृण वर्ण का होता है। मूलत्वक (छाल) अपेक्षाकृत पतली किन्तु चिमडी (Tough) होती है। उक्त छाल न तो काफी मोटी और न ही मासल ही होती है किन्तु रचना मे चर्मिल या चिमडी होती है और आसानी से पृथक की जा सकती है। रग मे यह पीताभ श्वेत वर्ण की होती है। इसमे कोई विशेष गन्ध नही पाई जाती किन्तु स्वाद मे लवाबी तथा कुछ मिठास लिए होती है। बाजारो मे जो शालपर्णी बिकने आती है वह प्राय एक-एक पौधे का अलग-अलग अथवा कई-कई पौधो का पचाङ्ग होता है। जिसमे उसी के तने या सूत्राकार जडो से बाँधे हुए बडल होते हैं। कभी-कभी पृथक

रूप से मूल भी वेचने को लाते है जिसमे पत्र युक्त काण्ड का भी कुछ भाग लगा होता है ।

रस—तिक्त, मधुर ।

विपाक—मधुर ।

वीर्य—शीत ।

प्रभाव—शोथहर ।

गुण—गुरु, स्निग्ध ।

वीर्य कालावधि—३–६ महीने तक ।

शिरीष (वनौषधि विशेषांक षष्टम् भाग पृष्ठ ३५३)

नाम शिरीष, शिरस ।

शुद्ध द्रव्य—शिरीष, शिरस ।

ले -अल्विजिया लेब्बेक (Albizia Lebbeck Bereth)

कुल—शिम्बि कुल (Leguminoceae-Mimoceae)

उपयोगी अङ्ग—त्वक, वीज और पुष्प ।

मिलावट वाले द्रव्य - शिरीष की कई जातिया समान रूप से देखने मे एक से प्रतीत होते है। इसके श्वेत, कृष्ण और लाल तीन भेद होते हैं । श्वेत शिरीष के साथ वीज और त्वक की मिलावट होती है ।

न० १ कृष्ण शिरीष—अल्विजिया ओडोरेटिसिमा (A Odoratissima Benth)

(२) श्वेत शिरीष (A Procera Benth) अल्विजिया प्रासेरा ।

(३) लाल शिरीष-अल्विजया अमारा (A Amara Benth) ।

एक और शिरीष मिलती है जो ट्रामको और प्रोचीन मे पायी जाती है । उसे अल्विजिया मार्जिनेटा (A Marginata merr) कहते हैं ।

परीक्षा—शिरीष की छाल का वाह्यतल भूरे रङ्ग का खुरदरा और विदीर्ण (Fissured) होता है । वाह्य स्तर लम्वे-लम्वे चप्पडो (Large flakes) मे पृथक होता, है, जिसके नीचे का तल लाल रङ्ग का होता है । छिलके का अन्तर्वस्तु (Substance of the bark) हल्के रक्त वर्ण का कडा एव खुरदरा होता है। छाल का अन्तस्तल सफेद होना है । छाल जलाने पर भस्म ९% होती है ।

बीज—शिरीष के बीज अमलतास के बीजो की भाति किन्तु उनकी अपेक्षा छोटे होते है । यह ६.२५ मिमी. से ८ ३ मिमी. या १/४ से १/३ इन्च लम्वे रूपरेखा मे लम्वाकार या गोलाकार चपटे पीताभ भूरे रङ्ग के होते है । किनारे पर नाल की रूपरेखा का एक चिन्ह होता है ।

रस—कषाय, तिक्त, मधुर ।

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण ।

विपाक—कटु ।

वीर्य ईपद् उष्ण ।

प्रभाव—वेदनाहर, शोथहर, विषघ्न, शिरोविरेचन ।

वीर्य कालावधि—त्वक का १ वर्ष, वीज २ वर्ष ।

शुण्ठी (वनौषधि विशेषांक प्रथम भाग पृष्ठ १२६, षष्टम् भाग पृष्ठ ३९१)

नाम—आर्द्रक शुण्ठी, सोठ ।

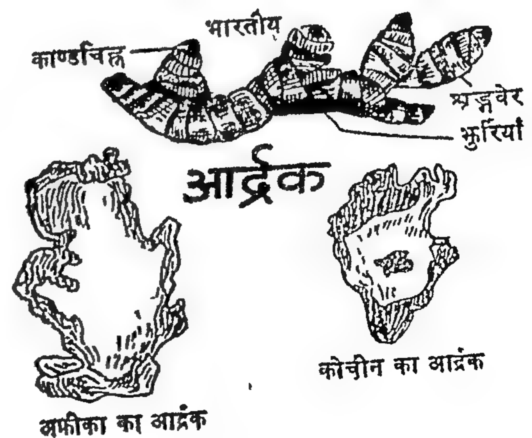
शुद्ध द्रव्य—आर्द्रक शुण्ठी, सोठ ।

लै०—जिंजिवर आफिसिनेल (Zingiber oficinal)

कुल—हरिद्रा-कुल (Scitaminaceae) ।

यह आर्द्रक का भौमिक काण्ड है । इसका क्षुप ३, ४ फीट ऊँचा होता है । इसके पत्र हल्दी की तरह पतले पतले वास के पत्र की तरह होते है। पुष्प हरिताभ वैगनी, परिपक्व होने पर इसके मूल का सग्रह कर लेते है ।

मिलावट वाले द्रव्य —शुण्ठी की वहुत वडी खेती भारतवर्ष मे होती है । इसके अतिरिक्त लका जजीवार द्वीप समूह-मलाया मे भी इसकी खेती होती है । अफ्रीका मे भी इसके जगली जाति के पौधे मिलते है । अग्रेजो ने इसकी खेती पहले लंका मे, उसके वाद जजीवार द्वीप



से प्रारम्भ की थी और भारतीय व्यापार पर आघात कर जजीवार से इसका व्यापार प्रारम्भ किया । इसलिए इसका नाम भी "जजीवार आफिसनेल' रखा गया । आज भी जजीवार से बहुत बडी मात्रा मे इसका व्यापार होता है । शुण्ठी कई प्रकार की बाजार मे मिलती है ।—
१– छिलके रहित सफेद । २––छिलका रहित पीला ।
३ – छिलका सहित पीला । ३— छिलका सहित श्वेत

व्यापारी कीडो से बचाने के लिए इसे चूने के पानी मे डाल कर सुखा देते है । यह सफेद सोंठ है । जिसमें चूना नही लगाया जाता वह सादा भेद है । शुण्ठी के साथ कोई मिलावट सभव नहीं है किन्तु अच्छी सोंठ मे कृमि भक्षित सड़ी गली और घुनी सोंठ का मिश्रण किया जाता है । छिलकेदार या बिना छिलके वाली सिकुड़ी हुई छिपटी और अच्छी उभारदार सोंठ सब मिलाकर एक साथ बेची जाती है । मिलावट मे कचूर के सूखे टुकड़े भी मिले होते है ।

परीक्षा— आर्द्रक के कन्द उसके काण्ड के परिवर्तित स्वरूप है । बोने के बाद यह धीरे धीरे खाद्य द्रव्य का सग्रह करके मोटे हो जाते हैं । प्रारम्भ मे मोटा फिर पतला और फिर मोटा होता जाता है । इस प्रकार भूमि के नीचे फैलता जाता है और उसमे से नये पौधे निकलते है । ये पौधे जमीन से बाहर आकर छोटे क्षुप का स्वरूप धारण करते है । और फिर जमीन से बाहर आकर सूख जाते है । इस प्रकार नयी अक्षिया निकलती जाती है और जगह जगह पर काण्ड का रूप बनता जाता है । अत एक कन्द पर कई उभार या शृग बनते जाते हैं जो गोल बेर की तरह होते है । इसलिये इसका नाम शृगवेर है । आर्द्रावस्था मे यह पीत बादामी रग का होता है । ऊपर स्पर्श मे श्लक्ष्ण होता है और उस पर धारियां दिखाई पडती है । ऊपर की त्वचा बहुत पतली होती है । नीचे श्वेत पीत भाग दिखाई पड़ता है । इनमे बडी मनोहर गध होती है । इसका छेद लेने पर चौडाई मे काटने पर ऊपर तनु त्वक बादामी रग का उसके नीचे अन्तर त्वक मासल मोटा श्वेत पीत वर्ण का, इस के नीचे अन्त भाग होता है । इसमे सौत्रिक अश पिष्टाश युक्त मिलता है । जगह-जगह पर ग्रन्थियां दिखाई पडती हैं । इनमे सुगन्धि होती है ।

शुण्ठी का निर्माण—अद्रक के आर्द्र कद को बोरी मे



शुण्ठी
ZINGIBER OFFICINALE, ROSE

रख कर जोर से रगडने पर ऊपर का छिलका आसानी से हट जाता है । जो बच रहता है उसे चाकू से खुरच कर अलग कर देते हैं । इनको पुन भाप से अर्ध वाष्पित कर देते है । ताकि इनका स्टार्च मिल जाये । फिर इन्हे सुखा देते हैं, और सुखाकर चूने के पानी मे डाल कर पुन सुखा लेते है । इसका नाम दूधिया सोंठ या धूमरी सोंठ है । बिना छिलका हटाये भी यही विधि करते है । इससे इसमे कीडे जल्दी नही लगते हैं ।

दूसरे प्रकार मे चूने की भावना नही देते । यह सादी सोंठ होती है । यह भी छिलका सहित और बिना छिलका सहित दोनो प्रकार की होती है । जो सोंठ आर्द्रक को बिना वाष्पित किये धूप मे सुखाई जाती है, वह परिपुष्ट न होकर चिपटी और भुर्रीदार होती है । तोडने पर यह सूखे हुए कद खट से टूट जाते हैं और भीतर का भाग दिखाई पडता है । उत्पत्ति स्थान के भेद से अदरक और सोंठ के कई प्रकार हैं जैसे—(१) पहाडी सोंठ—जो पहाडो पर पैदा होते है । इनके कन्द बहुत मोटे-गोल होते है । (२) देशी सोंठ—यह २-४ इच लम्बी आधा इन्च मोटी चपटी और श्वेत-पीत वर्ण की पतली और लम्बी होती है ।

(३) विदेशी सोंठ— यह भी देशी सोंठ के समान ही होती है । इनका आयात जजीवार से होता है । यह बम्बई के मार्केट से मिलती है । यह सर्वत्र होती है । इस लिये इसका नाम विश्व भेषज है ।

रस—कटु । गुण—लघु-स्निग्ध,तीक्ष्ण । विपाक—मधुर ।
वीर्य—उष्ण । प्रभाव—दीपन पाचन-ग्राही ।
वीर्य कालावधि— १ वर्ष तक ।

श्वेतबच (बनौषधि विशेषांक चतुर्थ भाग पृष्ठ ४०६)

नाम—श्वेतवचा, बालवच।

शुद्ध द्रव्य—श्वेतवचा, बालवच।

लै०-पेरिस पोलीफील्ला स्मिथ (Paris Polyphylla Smith)

कुल-लीलिएसी कुल (Liliaceae)

परिचय-इसका भौमिक काण्ड प्रयुक्त होता है जो गाठदार मोटा ऊपर से लाल और भीतर सफेद होता है।

मिलावट वाले द्रव्य--बाल बच मे इसीमे मिलती जुलती जट आईरीस रूट कीजड मिलायी जाती है। भावमिश्र ने चार प्रकार के बच का उल्लेख किया है—

(१) वचा या घोडवच।

(२) श्वेत वच या पारसीक वचा।

(३) महाभरी बचा या मलय वचा। जो कुलिंजन है।

(४) द्वीपान्तर बचा अथवा चोपचीनी।

ये भिन्न-भिन्न जाति के पौधे हैं। आकार कुछ मिलता जुलता होने के कारण सभवत भावमिश्र ने इन सबो को वचा कहा है। यहाँ पर श्वेत वचा से तात्पर्य है।

परीक्षा--बालवच के छोटे-छोटे जलीय पौधे होते है। यह जमीन के नीचे फैलता है। पत्तिया भल्लाकार होती है। इनसे १ पुष्प दण्ड निकलता है, पुष्प और फल समाप्त होने पर इनका सग्रह किया जाता है। इसके गाठदार छोटे-छोटे मूल पाये जाते हैं। जो गोलाकार ½ इन्च से २ इन्च व्यास तक मोटे ऊपर से लाल छिलके वाले भीतर श्वेत वर्ण के कम रेशे वाले होते है। ये ६००० फीट की ऊँचाई पर पाये जाते है। इसमे हल्की गन्ध होती है।

रस—कटु-तिक्त।

गुण—लघु-रूक्ष-तीक्ष्ण।

विपाक—कटु।

वीर्य—उष्ण।

प्रभाव- मेध्य-वातानुलोमन।

वीर्यकालावधि—१-२ वर्ष तक।

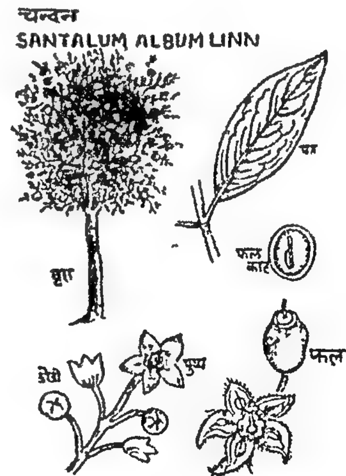
श्वेत चन्दन (बनौषधि विशेषांक ततीय भाग पृष्ठ ३६)

नाम - श्वेत चन्दन, सफेद चन्दन।

शुद्ध द्रव्य—श्वेत चन्दन सफेद चन्दन।

लै०-सेन्टेलुम् अल्बम् (Santalum Album Linn)

कुल— चन्दन-कुल (Santalaceae)



प्रयोज्य-अग-श्वेत चन्दन के वृक्ष दक्षिण भारत मे मैसूर, कूर्ग और मालावार मे बहुत मिलते हैं। इनके सार और काण्ड का या लकडी का तथा तैल का उपयोग औषधि के लिए होता है। यह बहुत सुगन्धित होते हैं।

मिलावट वाले द्रव्य—चन्दन के काष्ठ छोटे-छोटे टुकडो मे मिलते है। ये हल्के पीले रग के होते है। बाजारो मे ऐसे ही निर्गन्ध काष्ठो मे चन्दन का गध लगा कर बाजारो मे बेचते हैं।

परीक्षा—चन्दन का काष्ठ पीत वर्ण के सुगन्धित स्वाद मे तिक्त रगडने पर पीले काटने पर भीतर से लाल होता है। वह श्रेष्ठ चदन काष्ठ माना जाता है। घिसकर लगाने पर यह सफेद ही दिखाई पडता है। इसके पेड छोटे और बहुशाखी होते हैं। इसको काटने पर वार्षिक चक्र की रेखाये दिखाई पडती है। इसकी शाखाओ की लकडी उतनी सुगन्धित नही होती, जितनी काष्ठ सार की लकडी सुगन्धित होती है।

चन्दन का तैल—यह सार काष्ठ से परिस्रवण क्रिया द्वारा निकाला जाता है। यह हलके पीले रग का तैल है। इसमे स्थाई सुगन्धि पायी जाती है। यह स्वाद मे तिक्त, चरपरा, तीक्ष्ण और अरुचिकारक है। गाढे तैल को रगडने पर त्वचा मे उष्मा मालूम होती है। इसके काष्ठ मे २-६% उडनशील सुगन्धित तैल, राल और टैनिक एसिड प्राप्त होते है।

रस—तिक्त-मधुर।

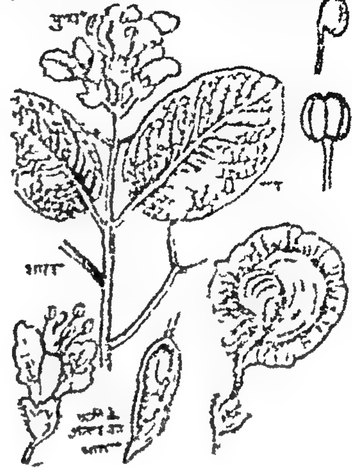
विपाक—कटु।

गुण—लघु-स्निग्ध।

वीर्य—शीत।

प्रभाव—पित्त प्रशमक दाह प्रशमन, हृद्य।

वीर्य कालावधि—दीर्घ काल तक।



श्योनाक (वनौषधि विशेषांक प्रथम भाग पृष्ठ २४१)

नाम—श्योनाक, सोनापाठा।

शुद्ध द्रव्य—श्योनाक या सोनापाठा।

लेटिन ओरोक्साइलम् इन्डिकम् (Oroxylum Indicum Vent)।

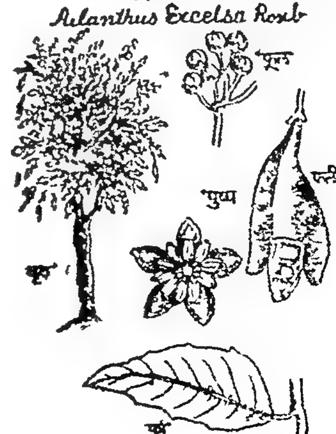
कुल—श्योनाक कुल (Bignoniaceae)।

नोट—श्योनाक के वृक्षो की छाल मूल की छाल और शाखाओ की छाल का औषधार्थ प्रयोग होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—श्योनाक की छाल के साथ घोडा करज के छाल के वदले मे सग्रहीत होकर एइलेन्थस एक्से लसा (Ailanthus excelsa) के वृक्ष विहार, छोटा नागपुर और दक्षिण भारत मे प्रचुरता से पाये जाते है, जिसकी पत्तिया देखने से वकायन की पत्तियो से मिलती हैं, इनके छाल को अरलू और श्योनाक से प्रयोग होती है।



परीक्षा—श्योनाक की जड की छाल मोटी वाहर से भूरे रग की और भीतर पीले रग की होती है। सूखी हुई छाल तोडने मे सरलता से टूट जाती है। श्योनाक की जडे दूर तक जमीन के अन्दर फैलती हैं। एक पेड के पास कई पेड उग जाते है। जडे जहा ऊपर निकलती है, एक पौधे का स्वरूप धारण करती है। अत मूल की छाल पर्याप्त मिल सकती है। काण्ड त्वक मूल त्वक की अपेक्षा अधिक रेशेदार होती है। अत तोडने पर जल्दी से टूटती नही है। इसकी छाल निकालने पर ऊपर से भूरी और भीतर हरित-पीत वर्ण की होती है।



रस—तिक्त-कषाय ।

गुण—रूक्ष-लघु ।

विपाक—कटु ।

वीर्य—उष्ण ।

प्रभाव—शोथहर, वेदनास्थापन ।

वीर्य कालावधि—६ मास से १ वर्ष तक ।

शृंगी विष (बनौषधि विशेषांक चतुर्थ भाग पृष्ठ ४२२)

नाम—शृगी विष, सिंगिया ।

शुद्ध द्रव्य—शृङ्गी, विष सिंगिया ।

लै.—एकोनाइटम् चेस्मन्थम (Aconitum Chasmanthum) ।

कुल—वत्सनाभ कुल (Ranunculaceae) ।

यह ७०००-१२००० फीट की ऊँचाई पर होने वाले एक क्षुप की जड़ है जो द्विवर्षायु होती है और एक कन्द मे दूसरा कन्द मिला होता है । इस मूल का ही प्रयोग किया जाता है ।

मिलावट वाले द्रव्य—बाजार मे मिलने वाले सिंगिया विष के साथ वत्सनाभ कुल की कई जातियो के मूल मिश्रित रहते हैं । इसके कन्द के साथ नयी पुरानी कन्द आपस मे जुटे रहते हैं । अन्य जातियो के कन्द अकेले एक एक होते है । सूखने पर त्वचा का वर्ण काला-भूरा झुर्रीदार और भीतर से श्वेत होता है । यह वत्सनाभ मे भार मे हल्का होता है । इन दोनो का मिश्रण कन्द एकत्र करके गोमूत्र और गोबर मे डालकर रख देते हैं । कुछ समय बाद सुखाकर कोयला और तेल से रङ्ग देते है । अत सब काले हो जाते है और बाजार मे सब एक साथ विकते है । इसके साथ गाजर निर्विषी इत्यादि को भी सुखा रङ्ग कर बाजार मे बेचते है ।

परीक्षा—सिंगिया के कद ४ इञ्च से १० इच तक पाये जाते हैं । अत. बड़े टुकडो को काट सुखाकर बाजार मे बेचते हैं । इसमे वत्सनाभ के टुकडे अधिक मिले होते है ।

परीक्षा—(१) सिंगिया के ९०% शक्ति के अल्कोहल मे बने हुए सत्व को गाढ़े गन्धकाम्ल मे मिलाने पर गहरा बैंगनी रङ्ग बन जाता है ।

(२) ५% सोरकाम्ल के घोल मे मिलाने पर सिंगिया का सत्व श्वेत वर्ण का नीचे तलछट के रूप मे बैठ जाता है ।

रस - जिह्वा से अज्ञात ।

सत्व—कटु ।

गुण—लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, विकाशी, व्यवायी ।

विपाक—कटु ।

वीर्य—उष्ण ।

प्रभाव—मारक, लघु मात्रा मे, ज्वरघ्न और वेदना स्थापन ।

वीर्य कालावधि—२-३ वर्ष तक ।

सनाय (बनौषधि विशेषांक षष्टम् भाग पृष्ठ २७८)

नाम—सनाय, स्वर्णपत्री ।

शुद्ध द्रव्य—सनाय, स्वर्णपत्री ।

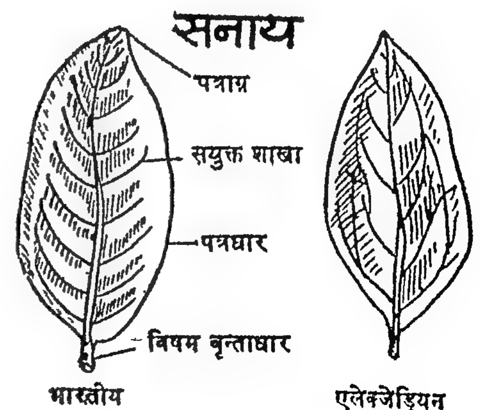
लै०—कैसिया अंगुष्ठीफोलिया (Cassia Angustifolia linn) ।

कुल—शिम्बी कुल ।

परिचय—यह एक क्षुप है जिसके पत्र का प्रयोग विरेचनार्थ किया जाता है ।

मिलावट वाले द्रव्य—सनाय अरब और मक्का से आने वाले एक पौधे की पत्तियाँ है । इसमे कई द्रव्य मिले होते हैं ।

(१) बम्बई सनाय या सनाय मक्की—यह सनाय या सनाय मक्की ।



यह सनाय जङ्गली पौधो से सग्रह की जाती है। इसकी पत्तिय लम्बी कम चौडी भूरापन लिए हरे रङ्ग की होती हैं।

(२) मिश्री सनाय – यह मिश्र से आती है और उसे एरोक्जेंड्रियम सेना सनाय कहते है।

(३) देशी सनाय—इण्डियन सेना।

वाजारु सनाय मे इनकी मिलावट होती है।

परीक्षा—सनाय के गुल्म ३ फीट तक ऊँचे होते हैं।

पत्तिया—एक सीक पर समानान्तर लगी हुई होती है। इनको सुखाकर काम मे लाते है। यह पत्तियाँ पीत हरित वर्ण की लम्बी और पतली होती हैं। वाजार मे भारतीय सनाय या टिनेवली सेना कहते हैं। इसके पत्र अपेक्षाकृत लम्बे पत्रवृन्त अनुपस्थित सिरायें एकान्तरित पत्रगार अखण्डित पत्र शिखर कम तीक्ष्णाग्र आकार भरलाकृति हरित पीत होता है।

अरब की या अरमेग् जेन्डियम सेना पत्र वृन्त अनुपस्थित एकान्तरित अखण्डित पत्रधार बहुतकम अन्त भुग्न पत्र शिखर तीक्ष्णाग्र पत्तिया परिपुष्ट आकार भलाकृति किन्तु अण्डाकार रङ्ग हरित पीत लम्बाई २।। से ५ सेमी।

रस–तिक्त, कषाय पिच्छिल होता है।

रस–तिक्त, कटु, कषाय।

गुण–रूक्ष लघु।

विपाक–कटु।

वीर्य–उष्ण।

प्रभाव–रेचन।

वीर्य कालावधि–१-३ वर्ष तक।

सफेद जीरा (वनौषधि विशेषांक तृतीय भाग पृष्ठ २३८)

नाम—जीरा सफेद।

शुद्ध द्रव्य—जीरा सफेद।

लै०—क्यूमिनम माईमिनम

कुल—शतपुष्पादि-कुल।

जीरे की खेती होती है। यह एक वर्षायु १।। फीट ऊँचा पौधा होता है। इसके बीजो का प्रयोग औषधार्थ किया जाता है।

मिलावट वाले द्रव्य—जीरे की खेती होने के कारण पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। अत मिलावट की सम्भावना कम है। फिर भी सौफ के साथ मिलावट मे उसके डठल-बीज वृन्त सडे-गले और छाँटे हुये निकले बीजो का अन्श कभी कभी इसके साथ तेल निकाले हुये सौफ के बीज मिला देते हैं। ये देखने मे पतले सिकुडे हुये तथा गन्ध-हीन होते हैं।

परीक्षा - जीरे का फल छोटा-लम्बा १/४ गोल इच तक लम्बा और १/१० इच तक चौडा होता है। १ दाने मे दो बीज होते हैं। जो परस्पर आपस मे जुटे होते हैं। प्रत्येक फल खण्ड मे ५-५ सिरायें उभरी होती हैं। तथा ४-४ गौड रेखायें भी होती है। इनमे तैल ग्रन्थिया पायी जाती है। इसमे एक प्रकार का सुगन्धित तैल होता है। शीत काल के अन्त मे फूल और फल लगते है। पक जाने के बाद इन फलो को सग्रह कर लेते हैं। भारतवर्ष मे इसकी खेती पर्याप्त होती है। उत्तर प्रदेश, गुजरात और पजाब मे प्रचुर मात्रा मे बोया जाता है। फिर भी इसका आयात एशिया माइनर और ईरान से होता है।

रस–कटु।

गुण–लघु-रूक्ष।

विपाक–कटु।

वीर्य–उष्ण।

प्रभाव—दीपन-पाचन और वातानुलोमन।

वीर्यकालावधि–२ वर्ष तक।

सर्षप (वनौषधि विशेषांक षष्टम भाग पृष्ठ ३०६)

नाम—सरसो।

शुद्ध द्रव्य—सरसो।

लै०–ब्रेसिका कम्पेस्ट्रिस (Brassica compestris)

कुल—सर्षप-कुल। (Cruciferae)

सरसो ३-४ फीट ऊ चे क्षुप का बीज है। इसके बीज और तैल का प्रयोग होता है। इसके कई भेद होते हैं।

(अ) पीली सरसो।

(ब) लाल „ ।

(स) सफेद „ ।

प्रयोज्या-अ श-पत्र-बीज और तैल।

मिलावट वाले द्रव्य—सर्षप की खेती होती है। अत- प्रचुर मात्रा मे यह उत्पन्न होता है। फिर भी

व्यापारी इसमें निम्न मिलावट करते हैं—बीज में स्वर्ण क्षीरी बीज-जो बिल्कुल लाल सरसों की तरह ही छोटा होता है। तैल में मिलावट—

१. अलसी का तैल
२. कुसुम्ब या बर्रे का तैल
३. एरण्ड का तैल

तथा तैल में तीक्ष्णता उत्पन्न करने के लिए लाल मरिच के बीज मिलाये जाते थे। किन्तु अब विज्ञान के युग में मनुष्य के जीवन का ध्यान न रख कर नीच व्यापारी पैसे के लोभ में मनुष्य जीवन से खिलवाड़ कर निम्नलिखित द्रव्य मिलाते हैं—

१ मोबायल—आयल
२ गाढा खनिज-तैल
३. पीला रंग व पोटाश का कुछ अंश—कभी-कभी ये व्यापारी सांप की चर्बी भी मिलाने से नहीं हिचकते।

नोट (१) सत्यानाशी के बीज को मिलाने से जो तैल बनता है, उससे बेरि बेरि और स्कर्वी रोग पैदा होता है। (२) खनिज तैल इत्यादि मिलाने से आंतों में प्रदाह, पीलिया अग्निमांद्य, पैदा होता है।

परीक्षा—सरसों का तैल हलका भूरापन लिए पीत वर्ण का अथवा सुनहले गाढ़े पीले रंग का होता है। इसमें सरसों की तीव्र गंध आती है। स्वाद में यह मधुर और कटु होता है। इसमें सरसों के बीज में २६-३५%प्रतिशत स्थिर तैल मिलता है। २८%प्रोटीन तथा चिकने वस्तु पाये जाते हैं। इसके तैल में विशेषकर स्टेयरीक एसिड और ओलिक एसिड के ग्लिसराइड्स मिले रहते हैं जिससे यह गाढा और चिकना होता है। इसमें कुछ उड़नशील तैल भी होता है, इसलिए यह गाढा और पौष्टिक होता है।

रस—मधुर कटु।
गुण—बीज और तैल में गुरु-स्निग्ध।
विपाक—कटु।
वीर्य—उष्ण।
प्रभाव—कृमिघ्न कुष्ठघ्न और वेदना स्थापन।
वीर्य कालावधि—२ वर्ष तक बीज के लिए।

सर्पगन्धा (वनौषधि विशेषांक षष्टम भाग पृष्ठ २८६)

नाम—सर्प गन्धा, धवल बरुआ।

शुद्ध द्रव्य—सर्पगन्धा।

लैं०—राउोल्फिया सर्पेन्टाइना (Rauvolfia Serpentina Benth)।

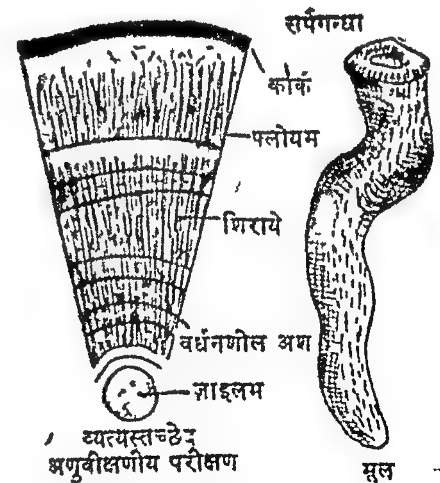
कुल—करवीर कुल (Apocynaceae)।

सर्पगन्धा के मूल का प्रयोग औषधार्थ होता है।

मिलावट वाले द्रव्य—(१) सर्पगन्धा की जड़ों में इसके काण्ड के टुकड़े भी मिलाकर देते हैं। (२) सर्पगन्धा की दूसरी जाति रावल्फिया केनेसेन्स (R. Canascence) की जड़ें प्रचुर मात्रा में मिलाई जाती है।

(३) रावल्फिया डेसिफ्लोरा। (R. Desiflora Benth)।

(४) रावल्फिया माईक्रेन्था (R. Micrantha) की जड़ें सर्पगन्धा की जड़ों में मिलाकर बेची जाती हैं।



व्यत्यस्तच्छेद अणुवीक्षणीय परीक्षण

परीक्षा—सर्पगन्धा की जड़ पतली पीली अंगुली जैसी मोटी टेढी-मेढी २ इन्च से ६ इन्च लम्बे टुकड़ों में पायी जाती है। स्पर्श में यह चिकने कोमल होते है। इसका रस तिक्त होता है और मूल के ऊपर का छिलका बाहर से कुछ पीला लाल पीले रंग का दिखाई पड़ता है। तोडने में सरलता से टूट जाता है। मूल का भीतरी काष्ठ भाग तोडने पर हल्के श्वेत वर्ण का होता है।

विशेष परीक्षा—(१) दो भाग सोरे का तेजाब और एक भाग जल का घोल मूल के टूटे हुए भाग पर डालने पर बीज का भाग गाढे लाल रंग को देता है। त्वगीय भाग और किनारे के काष्ठ भाग पर यह रंग अधिक गाढा दिखाई देता है।

(२) रावेल्फिया कनेसन्स—की जड़ें मोटी, कड़ी और श्याम पीत वर्ण की होती है। यह स्वाद में कम तिक्त होती है। अन्य भेदों में भी मूल मोटी और कम पीली होती है और इन जड़ों में वह गुण नहीं होते जो रावल्फिया सर्पेन्टाइना में होते है।

संग्रह और संरक्षण—सर्पगन्धा का मूल सर्पगन्धा के दो तीन वर्ष के पुराने पौधो से मूल खोद कर छाया मे सुखाकर संग्रह करना चाहिए।

रस—तिक्त।

विपाक—कटु।

वीर्य—शीत।

गुण—रूक्ष, लघु।

प्रभाव—निद्राजनक, रक्तभारशामक, और विषघ्न।

मूल का चूर्ण—१-२ माशा।

पागलपन दूर करने के लिए इसका प्रयोग हिन्दुस्तान मे होता आया है।

सारिवा (वनौषधि विशेषाङ्क प्रथम भाग पृष्ठ १३३)

नाम—सारिवा, अनन्तमूल।

शुद्ध द्रव्य—सारिवा, अनन्तमूल।

ले० हेमीडेस्मस् इण्डिकस् Hemidesmus Indicus Ro)।

कुल—अर्क कुल (Asclepiadaceae)।

सारिवा लता का मूल रक्तशोधन के लिए प्रयुक्त होता है।

मिलावट वाले द्रव्य बाजार मे कई प्रकार की जड़ें सारिवा के नाम से मिलती हैं जो छोटे-छोटे बण्डलो मे बधी रहती हैं।

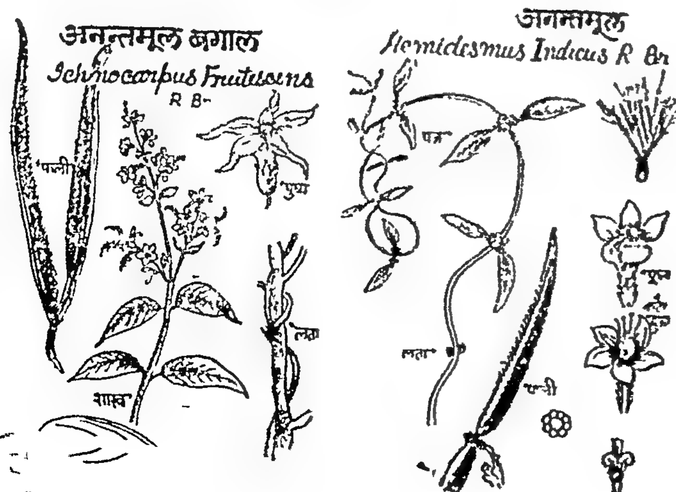
(१) सफेद सारिवा—इसके मूल और काण्ड का ६-६ इंच का टुकड़ा मिलाकर बण्डल बांधकर बाजार मे आते हैं। यह जड़े चौथाई से आध इन्च तक मोटी होती हैं। मूल त्वक् बाहर से भस्म वर्ण का गाढे भूरे रङ्ग का होता है। इस पर लम्बाई मे रेखाये दिखाई पड़ती है। त्वचा के नीचे श्वेत वर्ण की लकड़ी मिलती है।

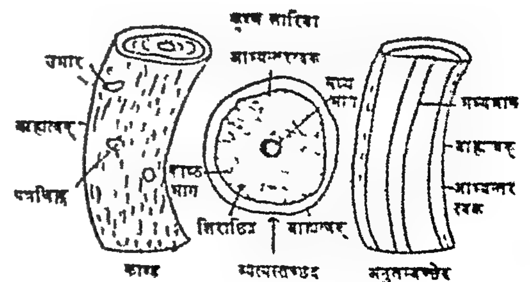
(२) जड़ें पतली श्याम वर्ण की टेढ़ी-मेढ़ी जिनमे मूल शाखायें होती है। बण्डलो मे बधी हुई आती है। ये ऊपर से श्याम वर्ण की होती है। त्वचा के नीचे का काष्ठ पीत होता है, इसमें हल्की कपूर जैसी सुगन्ध होती है।

(३) कृष्ण सारिवा के काण्ड और मूल छोटे-छोटे ६ इन्च के टुकड़ो मे काटकर बण्डल बनाकर मिलते है। काष्ठ के ऊपर का त्वगीय भाग श्याम वर्ण का और भीतर का काष्ठ हल्के श्वेतपीत वर्ण का होता है और बाजारो मे मिलता है।

(४) सारिवा की तरह अन्य लताओं के मूल लाल रङ्ग में रङ्गकर गोल-गोल बण्डलो मे मिलते है।

परीक्षा—असली अनन्त मूल की जड़ें बहुत लम्बी दूर तक पृथ्वी मे फैली पाई जाती है। हरी लता में तोड़ने पर दूध निकलता है। मूल मे एक प्रकार की कर्पूर की गंध आती है इसलिए इसे कपूरी भी कहते है। सूखने पर इसके मूल की त्वचा मटमैली लाल काले वर्ण की दिखाई पड़ती





है। इसमे एक प्रकार की सुगध भी पाई जाती है। मूल मे छोटे-छोटे उपमूल के टुकडे बहुत से दिखाई पडते हैं। मूल लम्बी होने से इसे अनन्तमूल भी कहते है। यह जडे दो तीन मास तक सवीर्य रहती है, सुगन्ध नष्ट होने पर इनका वीर्य नष्ट हो जाता है।

रस—तिक्त मधुर। गुण—गुरु, स्निग्ध।
विपाक—मधुर।
वीर्य—शीत।
प्रभाव—रक्तशोधन, स्तन्य शोधन ,कुष्ठघ्न ।
वीर्य कालावधि—२-३ मास तक।

सुपारी (वनौषधि विशेषांक षष्टम भाग पृष्ठ ३६३)

नाम—पूग, सुपारी।
शुद्ध द्रव्य—पूग, सुपारी।
आरेका कटेचू (Areca Catechu linn)
कुल—ताड कुल पामेमी (Palmaceae)

नोट—सुपारी के वृक्ष का फल है जिनका प्रयोग औषधि के लिए व मुखशुद्धि के लिए करते है।

मिलावट वाले द्रव्य—सुपारी बहु सख्या में प्राप्त होती हैं। अतएव मिलावट का प्रश्न नहीं उठता किन्तु सुपारी की कतिपय जगली जातिया भी होती हैं। विशेष कर निम्न फलो की मिलावट पायी जाती है—

(१) नागा सुपारी (आरेका नागेन्सिस)
(२) लका की वनी सुपारी (आरेका कान्सिन्ना)
(३) अण्डमान और सुमात्रा की सुपारी (आरेका ट्रीएन्ड्रा)

परीक्षा-सुपारी के बीज छोटे छोटे नारियल की तरह गोलाकार ऊचे उठे हुए शकुवत् आधे से सवा इन्च तक लम्बे और पौन इन्च से १॥ इन्च तक चौडे होते हैं। छिलका हटा देने पर भीतर से लाल भूरे रग के बीज निकल आते हैं इसके बाह्यतल पर सूक्ष्म सफेद रेखाओ का जाल सा फैला होता है। तोडने पर कठिनता से टूटती है। काटने पर भीतर सफेद और लाल रग का भाग दिखाई पडता हैं। फलाकार मे छोटे या बड़े कई प्रकार के होते हैं। यह दो प्रकार की मिलती है। न० १—चिकनी सुपारी न० २ दक्षिणी सुपारी।

चिकनी सुपारी—स्वाभाविक फल है। जो बडे-बडे जायफल की तरह दिखाई पडती है। चिकनी सुपारी-यह बनायी जाती है। कच्ची सुपारी को जब यह हरी होती है, तब इसे उबाल कर कत्थे के घोल मे डाल देते है। सूखने पर यह चिपटी—चमकदार और कपैली हो जाती है। काटने या चबाने पर इसके दाने सरलता से टूट जाते है। जो स्वाद मे कपैले-मीठे और चिकने होते हे। सुपारी के मूल भाग पर उसके बीजो के अकुर का भाग होता है, जो खाने पर चक्कर देता है। इसी लिए कभी कभी सुपारी के टुकडो मे यह भाग मिला रहने पर पान के साथ चबाने पर चक्कर आने लगता है। हरी सुपारी मे विशेष कर जगली सुपारी मे यह बडे आकार मे मिलता है। अत हरी सुपारी के खाने मे अधिक चक्कर आता है।

रस—मधुर-कषाय।
गुण—गुरु-स्निग्ध।
विपाक—मधुर।
वीर्य—शीत।
वीर्य कालावधि—१-१० साल तक।

सुपारी का प्रयोग कच्चा और भून कर दोनो प्रकार से होता है। भुनी सुपारी मे मादकता नही होती हे।

सूक्ष्मैला (Elelloria Cardamomum)(वनौ विशेषाङ्क प्रथम भाग पृष्ठ ४५१,तथा पन्चम भाग पृष्ठ ४७२)

नाम—एला, इलायची छोटी।
शुद्ध द्रव्य—सूक्ष्मैला।
(१) कार्डामोमी फ्रुक्टस (Cardamomum Fructus)।
(२) एलाटेरिया कार्डेमोमम (Elatteria Carda-Momum Maton)।
कुल—आर्द्रक (Zingeberaceae)।

मिलावट वाले द्रव्य—जङ्गली या देशी लका की इलायची (Eletteria Cardamomum Var mojor)।

(२) एमोमम केपुलाग (Amomum Capulage Sprangue)।

इनके वीज इलायची के कुल के किन्तु वडे चपटे झुर्रीदार होते हैं। वीज मिलता जुलता है।

परीक्षा—इलायची कई स्थानो की होती है। आकार व रग भिन्न-भिन्न होता है असली इलायची मैंसूर, एलवी, कोरग से आती है।

परिचय—इलायची की फली १-२ सेमी लम्वी, अण्डाकार लम्व गोल, त्रिकोण होती है। वृत की तरफ का भाग गोल और वृत का भाग लगा रहता है। अग्र-भाग नोकदार होता है।

छिलका—इलायची के फली का ऊपरी भाग पतला कागज की तरह होता है जो हरिताभ वादामी या श्वेताभ पीत होता है।

फल—इसमे तीन प्रकोष्ठ होते हैं। इनमे दो कतारो मे वीज चिपटे रहते है।

मैंसूरी—अण्डाकार २/५ इच लम्वी पीले क्रीम वर्ण की होती है। छिल्का चिकना होता है।

मालापारी—छोटी मोटी छिल्के पर अनुलम्व रेखाये या झुर्रियाँ।

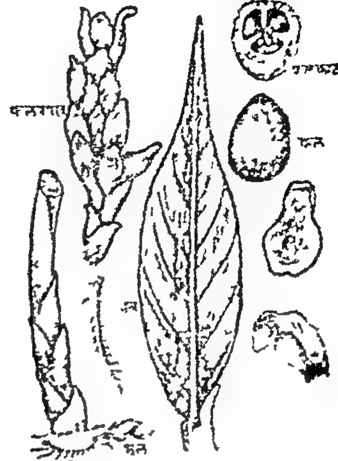
मगलोरी—कुछ गोलाकार मालापारी की तरह लम्वी वडी, खुरदरी छिल्के वाली।

एलेवी—छिल्का हरित, हरिताभ पीत वर्ण की मालावारी की तरह।

वीज—चार मिमी लम्वे, ३ मिमी चौडे त्रिकोणाकार कडे लम्वाई लिए श्याम वर्ण की होती है। चवाने पर कपूर गधी सुगधित होती है।

(१) जङ्गली इलायची—काली आकार मे लम्वोतरी छिल्का झुर्रीदार गहरे भूरे रङ्ग के।

(२) एकोमम केपूलाम के वीज पर १४ धारी पाई जाती हैं।



वीजो मे अर्क खीचे हुए वीज मिलाये जाते हैं।

रस—कटु, तिक्त।

गुण—लघु, तीक्ष्ण।

वीर्य—शीत।

इलायची के वीज खरीदते समय इसका ध्यान रखना चाहिए क्योकि इलायची के वीजो मे एक प्रकार का सुगन्धित उडनशील तेल होता है जिसमे प्रभूत मात्रा मे सिनिओल (Cineole) होता है।

वीर्य कालावधि—छिलके के भीतर रहने पर वीज २ वर्ष तक गुण युक्त वने रहते है। छिल्का रहित वीज १ वर्ष तक कार्यशील रहता है।

परीक्षा—रस प्रथम मधुर होता है। वीज टूटने पर कर्पूर की तरह सुगध मालूम होती है। कटुरस पश्चात् तिक्त मालूम देता है।

गुण—लघु, रूक्ष।

वीर्य—उष्ण।

सोवा (बनौषधि विशेषांक षष्टम भाग पृष्ठ ४०३)

नाम—सोवा, सोया।

शुद्ध द्रव्य—सोवा, सोया।

लै०—अनेथुम अथवा (Anathum Fructus gravoleus) आनेथुम-सोवा।

कुल—शतपुष्पादि कुल।

मिलावट वाले द्रव्य—सोया भारतवर्ष मे अधिक पैदा होता है, किन्तु यह विदेशो से भी मगाया जाता है। विदेशी सोया जिसे-प्यूसेडेनम् ग्रेविओलन्स कहते है। इसके वीज गुण कर्म की दृष्टि से मिलते-जुलते होते हैं। किन्तु देशी सोया के वीज, विलायती सोया से कम चौडे और अधिक मोटे होते है। इन दोनो का मिश्रण व्यापारी कर के वेचते हैं। स्वाद मे यह पहले मधुर और वाद मे यह कटु होते हैं। इसमे एक प्रकार का तैल पाया जाता है।

परीक्षा—यह एक क्षुप जातीय पौधे का फल है। फल

हिंगु (बनौषधि विशेषाङ्क षष्टम भाग पृष्ठ ४८१)

नाम—हींग या हिंगु ।

लेटिन—१. फेरुला फोयटुडा व (Ferula foctida)

२. फेरुला नार्थेक्स (Ferula nathex).

कुल—छत्रक कुल (Umbelliferceae).

यह हीग के पौधो मे चिरा लगाकर उसके गोद को सग्रह करते है ।

मिलावट वाले द्रव्य—बाजारों मे कई प्रकार के हीग मिलते हैं । १. हीरा हीग—यह पेड से निकाले हुए सूखे निर्यास का भाग है । यह सफेद हल्का पीलापन लिए हुए दानेदार छोटे-छोटे टुकडो मे मिलते हे । यह असली हीग है और इसमे तीव्र गध होती है ।

२ तलाब हीग—यह लाल-लाल मोटे-मोटे जमे हुए थको मे हीग के अन्य पौधों के निर्यास होते हैं । इसमे गोद और लाल रग मिलाकर जमा दिया जाता है ।

३. सफेद मटमैले रग का हीग—यह किसी पेड के गोद को हींग की भावना देकर सुखाकर रख लेते है । यह बहुत सस्ते भाव मे बिकता है ।

४. नकली हीग—मूंग और उड़द की बडी मे हीग की भावना देकर सुखाकर रख लेते हैं । इस प्रकार हीग मे कई प्रकार की मिलावट होती है ।

परीक्षा—बाजार मे हीग प्राय दो रूपो मे मिलती है । (१) अश्रुवत गोल-गोल या चपटे दानो (जो व्यास मे ५ मि. मी से ३१.२५ मिमी० या १/५ से १¼ इन्च तक होते हैं) के रूप मे (Tears) जो खाकस्तरी या मटमैले पीताभ वर्ण के होते हैं । (२) ढेलो के रूप मे-जिसमे अनेक अश्रुवत् दाने परस्पर चिपके होते हैं । बाजारू हीग प्राय इसी रूप मे मिलती है । कभी-कभी हीग राल की तरह जमे पेस्ट (paste) के रूप मे भी मिलती है । हीग का ताजा कटा हुआ तल पीताभ वर्ण का तथा पारभासी अथवा सफेद तथा अपारदर्शक होता है, जो उत्तरोत्तर गुलाबी तथा लाल और अन्तत लालिमा लिये भूरे रग का होता है । पारस मे हीग चमडे के थैलो मे बाधकर भेजी जाती है । जब यह थैले खोले जाते है, तो बीच मे ढेलो के दबाव से शुद्ध हीग अर्द्ध घन द्रव के रूप मे मिलती है । इसको पृथक हीरा हीग के नाम से अधिक मूल्य पर बेचते है । हीग मे लहसुन जैसी उग्रस्थाई गध होती है तथा स्वाद मे यह कटु एव तिक्त होती है । उत्तम हीग को जल मे घोलने पर धीरे-धीरे पूर्णत घुल जाती है, और विलयन दूधिया घोल जैसा हो जाता है । पात्र तल मे प्राय कोई अवशेष प्रक्षिप्त नही होता । दियासलाई लगाने पर उत्तम हीग प्राय पूरी की पूरी जल जाती है । इसको जलाने पर ३ से ५% तक भस्म प्राप्त होती ह । उत्तम हीग मे अम्ल मे अनघुलनशील भस्म अधिकतम १५% तथा ऐल्कोहल मे अविलेय सत्व अधिकतम १५% प्राप्त होते हैं ।

सल्फ्यूरिक एसिड के सपर्क से इसका रग गाढे लाल रग का या लालिमा लिये भूरे रग का हो जाता है । पुनः जल से एसिड का प्रक्षालन कर देने से बैंगनी रग का हो जाता है । हीग के ताजे कटे हुए तल पर नाइट्रिक एसिड (५०%v/v) डालने से उसका रग हरा हो जाता है ।

सग्रह—हीग को मुखबन्द पात्रो मे अनार्द्र शीतल स्थान मे रखना चाहिए । पात्र के अन्दर आर्द्रता या नमी नही पहुचनी चाहिए ।

रस—कटु । गुण—लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण ।

विपाक—कटु । वीर्य—उष्ण ।

प्रभाव—कफवातशामक, पित्तवर्धक, उत्तेजक, वेदना-स्थापन आदि ।

वीर्यकालावधि—दीर्घ समय तक ।

परीक्षा—१ उत्तम हीग को जल मे घोलने पर बिल्कुल घुल जाता हे और दूधिया रग का हो जाता है । २. जलाने पर जलने लगता है और ३ से ५% भस्म रह जाती है । ३ हीग अम्ल और अल्कोहल मे मिलाने पर अधिकतर भाग नही घुलता ।

हरिद्रा (बनौषधि विशेषाँक षष्टम् भाग पृष्ठ ४५२)

नाम—हरिद्रा, हल्दी, हरदी ।

कुर्कुमा डोमेस्टिका (Curcuma Domestica wall C. Longa Linn ।

कुल—आर्द्रक कुल (Zingiberaeceae)

हल्दी के वर्षायु पौधे के मूल से हल्दी प्राप्त होती है । और इस मूल का ही उपयोग औषधि मे होता है ।

मिलावट वाले द्रव्य—बाजार मे हल्दी की दो प्रकार की गाँठें मिलती है। न० १ गोल, न० २ लम्बी।

गोल हल्दी देखने मे आयताकार मोटी और गोल हुआ करती है। लम्बाई की आधी चौड़ाई हुआ करती है। लम्बी हल्दी १-२ इन्च लम्बी और १ से. मी. से २ से. मी. चौडी होती है। हल्दी की ये गाठे ऊपर से पीले रग की होती हैं। तोडने मे भीतर का भाग गाढ़ पीत रक्ताभ होता है। हल्दी की बहुत बडी खेती होती है। विशेष कर बिहार बगाल मद्रास और बम्बई मे। अतः इसमे मिलावट की गुजाइस कम होती है। इसकी मिलावट चूर्ण मे होती है। जिसमे पीली मिट्टी लकडी के बुरादे और पीले रग मिला दिये जाते हैं।

परीक्षा—न० (१) गन्धकाम्ल मे अथवा अल्कोहल अथवा गधकाम्ल के मिश्रण मे हल्दी का चूर्ण डालने से लाल रग का होता हैं।

(२) हल्दी मे चुना मिलाने पर लाल रग हो जाता है।

रस—तिक्त—कटु।

चबाने पर मुह से लाल रग का रास निकलता है।

गुण—रूक्ष—लघु। वीर्य—उष्ण।

वीर्य कालावधि—१ वर्ष तक।

सग्रह—(१) हल्दी के कद को व्यापारी हल्के भाप मे उबाल कर सुखा देते हैं। यह हल्दी सिकुडती नही। इसे गहरे पीले रग से रँग देते है।

(२) ताजी उखाड़ी हुई हल्दी ऊपर से सफेद-पीले वर्ण की होती है। और सुखाने पर इस पर धारिया पड कर सिकुड जाती हैं। तोड़ने पर गहरे पीले लाल रग की टूटती हैं। हल्दी जल्दी ही घुन जाती है। हल्दी में कपूँर हल्दी का एक और भेद होता है।

हरीतकी (वनौषधि विशेषांक षष्टम भाग पृष्ठ ४२५)

नाम—हरड, हरीतकी, हर्रे।

लै०—टर्मिनेलिया चेबुला (Terminalia Chebula Retz) कुल—हरीतकी कुल (Combritaceae)

नोट—हरीतकी का फल औषधार्थ प्रयोग होता है। यह तीन रूप मे पाया जाता है।

(१) बडी हरड। (२) पीली हरड या अर्द्ध पक्व हरड। (३) अपक्व हरड, छोटी हरड या जगी हरडा।

मिलावट वाले द्रव्य—हरीतकी की सात जातिया होती है। उसमे से दो जातिया ही बाजार मे अधिक मिलती है।

(१) बडी हरीतकी—यह गोलाकार लम्बी और पीले वर्ण की होती हैं, इस पर धारिया स्पष्ट नही होती। इसको विजया कहते है।

(२) अभया—पीले रग की बडी १॥ इन्च तक लम्बी चौडाई १/२ से १ इन्च तक पीले वर्ण की ५ रेखाओ से युक्त होती है। छोटी हरड यह हरीतकी के अपक्व फल हैं, जब तक गुठली नही हो पाती इन्हे तोडकर एकत्रा कर देते हैं। और इसके ढेर के ऊपर मिट्टी लगाकर बद कर देते हैं। तीन चार दिन मे यह अपनी स्वभाविक उषमा से अर्द्ध पक्व हो जाती है। और रग काला हो जाता हैं। यह सुखाने पर काले रग की हो जाती है।

(२) इन छोटे फलो का सग्रह करके एक गड्ढे मे कुछ समय छोड देते हैं। देर तक रहने से यह भी अपनी उषमा से परिपक्व होकर काले और कुछ पीले वर्ण की हो जाती है। हरीतकी बहुतायत से मिलती है, इसलिए इसमे कोई मिलावट नही होती है।

(१) चेतकी हरड—इसको खाने या हाथ मे लेने से दस्त आते हैं।

(२) विजया हरड—मृदुरेचक, बलकारक और ४-५ अगुल लम्बी होती हैं अत कुछ धूर्त व्यापारी जलापा के कन्द को जो हरड के आकार की होती है। बडी हरीतकी के नाम से १-१ दाने को कई-कई रुपयो पर बेचते है।

(३) अच्छा-पैसा पैदा करने के लिए व्यापारी जलापा व हरड का चूर्ण मिलाकर हरीतकी के आकार का साचा बनाकर पाच-पाँच छ-छ तोले वजन की हरड ढाल लेते हैं और पालिस कर बाजारो मे बेचते है।

(४) यह अधिक मूल्य मे बिकते है। पालिस कर देने पर हरीतकी से भी उत्तम वर्ण की दिखाई पडते हैं। और इसमे जेलप का चूर्ण मिला रहता है। इसलिये थोड़ा सा भी घिस कर बच्चो को घुटि देने से पैखाना साफ हो जाता है। नकली हरड़ को असली बनाकर बेचते हैं।

परीक्षा—बड़ी हरड़ जो हरड १॥ से २ तोला वजन की होती है। उत्तम मानी जाती है। इस प्रकार अभया हरड भी जो पीले वर्ण की और मासल होती है, और पानी मे डालने पर डूब जाती है, वह उत्तम मानी जाती है। जगी या काली हरड काले वर्ण की और तोड़ने मे ठोस व उत्तम होती है। ग्रन्थो में उत्तम नवीन और प्रशस्त पीले वर्ण की हरड जो पानी डालने से डूब जाय उत्तम मानी जाती है।

रस—कषाय प्रधान, ईषद्-अम्ल। गुण—रूक्ष-लघु। विपाक—मधुर। वीर्य—उष्ण। प्रभाव—त्रिदोषहर, वातानुलोमन और मृदुरेचक। वीर्यकालावधि—१-२ वर्ष।

संदिग्ध बनौषाधियाँ

पर

शास्त्रीय व प्रायोगिक विवेचन

(पृथक-पृथक द्रव्यों पर विभिन्न विद्वानों के लेख)

✻ रुद्दन्ती कैपसूल ✻



जो रोगी सैकडो इन्जेक्शन लगाकर भी अपने जीवन से निराश थे उनको केवल मात्र रुद्दन्ती चूर्ण से ही लाभ हुआ है। रुद्दन्ती चूर्ण राजयक्ष्मा, पुरानी खांसी, उसके साथ रहने वाला ज्वर, कफ की अधिकता एव फुफ्फुस विकृति पर अत्युत्तम है। इसी में स्वर्ण वसन्त मालती, प्रवाल भस्म, मितोपलादि चूर्ण का मिश्रण कर दिया जाता है जो इसके गुणो में अपूर्व वृद्धि हो जाती है। मूल्य—रुद्दन्ती कैपसूल (स्वर्ण वसन्त मालती युक्त) १०० कैपसूल ५०), ५० कैपसूल २५.५०

शूलारि कैपसूल

सर्दी, जुकाम, इन्फ्लुएन्जा, अधकपारी, मलेरिया, ज्वर की बैचेनी, पसली का दर्द, वायु का दर्द, फोडे का दर्द, जोडो का दर्द, दन्तशूल आदि सभी दर्दो को तुरन्त दूर करने वाले अनुपम विशुद्ध आयुर्वेदिक कैपसूल है -
५० कैपसूल १०.००, १०० कैपसूल १९.००

गोनारि कैपसूल

मूत्र मार्ग मे होने वाली जलन, व्रण पूयमेह (सुजाक), मूत्र त्याग मे होने वाली पीडा, मूत्रकृच्छ्रता दूर कर मूत्र स्वच्छ एव बिना वेदना के आता है।

५० कैपसूल १४.००, १०० कैपसूल २७ ००

विबन्धहारी कैपसूल

मलावरोध, अपचन, ज्वर कालीन विबन्धता मे शीघ्र लाभ होता है। किसी भी प्रकार के कब्ज (विबन्ध) मे रात्रि को १ या २ कैपसूल पानी या दूध से ले।
५० कैपसूल ११ ५०, १०० कैपसूल २२.००

कैल्सी-लौह कैपसूल

मुक्ता भस्म, प्रवाल भस्म, शुक्ति भस्म तथा लोह भस्म आदि से निर्मित आयुर्वेदिक कैपसूल है। किसी भी जीर्ण रोग मे बलवर्धन के लिए उपयोगी है। ज्वर आदि के पश्चात् की दुर्वलता को शीघ्र दूर करते हैं।
५० कैपसूल ६ ५०, १०० कैपसूल १८ ००

वातरोगहर कैपसूल

वृ. वात चिन्तामणि आदि कीमती औषधियो के मिश्रण मे निर्मित यह कैपसूल किसी भी प्रकार के वायु रोग जैसे गठिया, कमर का दर्द, गृध्रसी, पक्षाघात, अर्दित आदि में अवश्य लाभ करते हैं।
५० कैपसूल २५ ५०, १०० कैपसूल ५०.००

पाण्डुनोल कैपसूल

रक्ताल्पता या अवरोधज कामला, यकृत वृद्धि, कमजोरी, जीर्ण ज्वर, प्लीहावृद्धि, कब्जियत दूर होती है। शिशुओ के यकृत दोष मे अक्सीर हैं।
५० कैपसूल १२ ००, १०० कैपसूल २३ ००

मंगाने का पता—श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भांजा रोड, अलीगढ़

महानिम्ब

आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा, अध्यक्ष–द्रव्यगुण विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा द्रव्य–गुण विज्ञान के गिने चुने विशेषज्ञों मे हैं इन्होने द्रव्य–गुण विज्ञान पर विवेचनात्मक ग्रंथ–द्रव्य–गुण विज्ञान, गोपदेव निघण्टु, अष्टाङ्ग सग्रह निघण्टु, अष्टाङ्गहृदय निघण्टु तथा अनेक महत्वपूर्ण निबन्धो को हिन्दी एव इगलिश भाषा मे लिखा है। ये चतुर, चिंतक, कवि, अन्वेषक एव मर्मज्ञ लेखक हैं।

आप हिन्दू विश्व–विद्यालय द्रव्यगुण के प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष और अन्वेषण प्रिय व्यक्ति हैं। इनके तत्त्वावधान मे कई अन्वेषण सम्बन्धी महानिबन्ध लिखे गये हैं।

—सम्पादक

सम्प्रति महानिम्ब' शब्द 'बकायन' के लिए प्रचलित है किन्तु मूलत यह शब्द इसी द्रव्य का वाचक था इसमे सन्देह है। महानिम्ब चरकसहिता मे नही है। सुश्रुतसहिता मे केवल एक स्थल (सू० ३८/२२) पर 'महानिम्बफल' का उल्लेख पिप्पल्यादि गण के अन्तर्गत आया है। पिप्पल्यादि गण के द्रव्य वातश्लेष्महर, दीपन, आमपाचन तथा गुल्मशूलघ्न होते हैं। इसी प्रकार अष्टागहृदय मे एक वार 'महापिचुमन्द' शब्द मे अर्शचिकित्सा मे लवणोत्तमादिचूर्ण के अन्तर्गत पठित है (अ.हृ ८/१६१)। ऐसी स्थिति मे विचारणीय है कि ऐसे प्रचलित द्रव्य का इतना स्वल्प उल्लेख क्यो है ? इससे यह अनुमान होता है कि अन्य पर्यायो से इसका बहुश अभिधान हुआ हो। इसका सद्य. प्रमाण अष्टागहृदय मे मिलता है। अष्टागहृदय के वत्सकादि गण (सू० १५/३३-३४) मे सुश्रुतोक्त पिप्पल्यादिगण के द्रव्य समाविष्ट हैं। वहाँ सुश्रुत का 'महानिम्बफल'

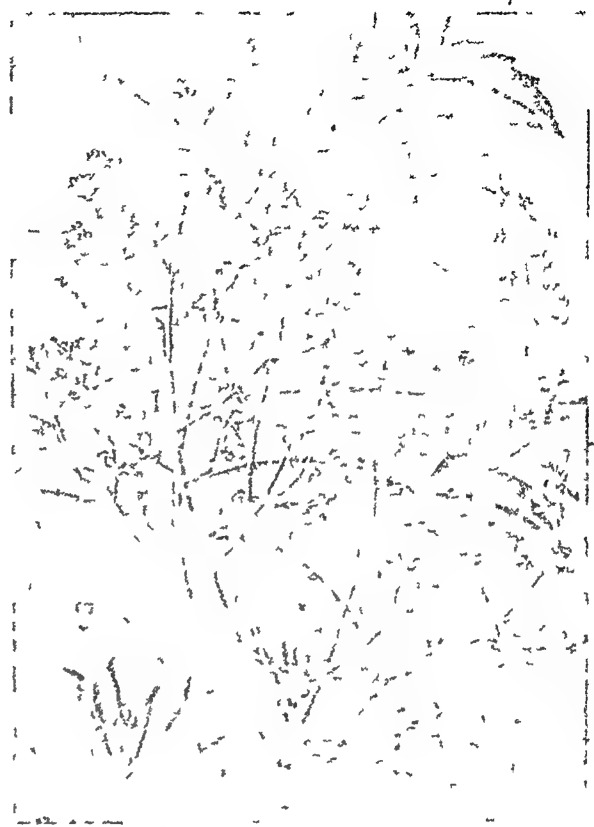


'कटूपञ्चफल' के रूप मे पठित है। चन्द्रनन्दन ने अपनी पदार्थचन्द्रिका व्याख्या मे इसे 'अरलुकफलम्' लिखा है।

इससे स्पष्ट है कि बृहत्त्रयी के काल मे 'महानिम्ब' शब्द कट्वग का एक पर्याय था न कि बकायन का बोधक। इससे दूसरा तथ्य यह भी निकलता है कि 'महानिम्ब' पर्याय चरक-काल के बाद कट्वग के लिए प्रचलित हुआ।

कट्वग के बाद के निघण्टुकारो ने श्योनाक का पर्याय बनाकर भ्रम उत्पन्न कर दिया है। वस्तुत यह शब्द मूलत अरलु का बोधक है। चरक के पुरीषसग्रहणीय गण मे अरलु का तथा शोथहर, शीतप्रशमन एव अनुवासनोपग मे श्योनाक का पाठ किया है। इससे अरलु के शीतवीर्य तथा श्योनाक के उष्णवीर्य होने का सकेत मिलता है। पुन चरक ने ग्रहणीचिकित्सा के अन्तर्गत (चि० १५/१३४) एक श्लोक मे श्योनाक तथा कट्वग का पृथक पाठ किया है (श्योनाकोदीच्यकट्वगवत्सकत्वगदुरालभा')। इससे दोनो का पार्थक्य स्पष्ट हो जाता है। विमानस्थान मे कषायस्कन्ध के अन्तर्गत कट्वग का उल्लेख है किन्तु वहाँ श्योनाक नही है। इन तथ्यो के आधार पर प्राचीनकाल मे श्योनाक और अरलु दो प्रथक् भिन्न द्रव्य माने जाते थे यह सिद्ध हो जाता है।

प्राचीनतम उपलब्ध निघण्टु, वाग्भटकृत अष्टागनिघण्टु (प्रस्तुत लेखक द्वारा सपादित तथा प्राच्यविद्यानुसधान पत्रिका, मद्रास मे प्रकाशित) में मौलिकरूप मे तथ्य उपस्थित किये गये हैं। उसमे अरलु के पर्याय दीर्घवृन्त, महानिम्ब, कट्वग तथा तिक्तक दिये गये है (दीर्घवृन्तो महानिम्ब कट्वगोऽरलुतिक्तक)। वस्तुत ये सभी पर्याय मूलत अरलु के थे जो कालान्तर में अन्य द्रव्यो से सम्बद्ध हो गये। कट्वग, अरलु, दीर्घवृन्त ये तीन पर्याय श्योनाक मे चले गये, महानिम्ब बकायन का बोधक बन गया और 'तिक्तक' से किराततिक्तक (चिरायता) का ग्रहण किया जाने लगा। इन पर्यायो मे भी आद्यनाम 'कट्वग' प्रतीत होता है क्योकि यह बृहत्त्रयी की सभी सहिताओ मे उपलब्ध होता है। अन्य पर्यायों में अरलु और दीर्घवृन्त केवल सुश्रुत और वाग्भट मे तथा तिक्तक केवल वाग्भट मे मिलता है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि अरलु, दीर्घवृन्त और तिक्तक ये पर्याय कालान्तर मे प्रचलित हुए किन्तु यह निश्चित है कि वाग्भट के काल (छठी शती) तक ये सभी पर्याय निर्भ्रान्ति रूप से अरलु [illegible] लिए प्रचलित थे जो अष्टागनिघण्टु (८ वी शती) मे [illegible] कर लिये गये।



अरलु के लिए 'महानिम्ब' सज्ञा सार्थक भी है क्योकि इसकी पत्तियाँ नीम के सदृश किन्तु उससे बडी होती हैं। पत्र वृन्त भी बड़ा होता है (अतएव दीर्घवृन्त कहते हैं)। इसकी छाल भी अत्यन्त तिक्त होती है। इन सब कारणो से ही इसका नाम महानिम्ब पडा होगा। लोक मे आज भी इसे 'घोडानीम' कहते हैं जो 'महानिम्ब' के अर्थ का ही द्योतक है। उडीसा मे इसका नाम आज भी महानीम है। निम्नांकित श्लोक मे अरलु का परिचय सुन्दर रीति से दिया गया है—

निम्बाकारदलो विष्वग् भल्लूकः पंक्तिपत्रकः।
प्रसिद्धो भंगुरोऽसारो अडूसो देशभाषय ॥
—मि सं.

बकायन मे ऐसी कोई विशेषता नही दीखती जिसके आधार पर उसे महानिम्ब कहा जा सके। न तो उसके पत्ते ही बड़े होते हैं और न फल ही का आकार निम्ब फल से बडा होता है। वृक्ष भी प्राय. नीम से छोटा होता है। ऐसा लगता है कि जङ्गलो, पहाडो पर अधिक होने के कारण पहले यह 'पर्वतनिम्ब' के रूप में प्रसिद्ध था।

चक्रपाणि ने अपनी भानुमती व्याख्या (सु सू ३८/२२) मे महानिम्ब को पर्वतनिम्ब कहा है। डल्हण ने भी इस स्थल की व्याख्या इसी प्रकार की है—'महानिम्बो द्रेका पर्वतनिम्ब इति लोके।' पर्वतनिम्ब से डल्हण का क्या अभिप्राय है इस संशय का निवारण दूसरे स्थल पर उनके कथन से हो जाता है। 'रम्यक' शब्द की व्याख्या (सु. सू ३९/४) मे कहा है—'रम्यको द्रेका बकाइणि इति लोके'। इससे स्पष्ट है कि बकायन की ही सज्ञा पर्वत निम्ब थी तथा डल्हण काल मे द्रेका और रम्यक उसके पर्याय माने जाते थे। पजाब मे बकायन को दरेक कहते भी हैं। यह भी सम्भव है कि परम्परा मे इसका अर्श मे प्रयोग होता रहा हो, और अरलु के अस्वाद होने के कारण उसके स्थान पर यह चिकित्सार्थ प्रयुक्त होने लगा हो। इस प्रकार आगे चलकर उसकी सज्ञा भी इसने अपना ली और पर्वत निम्ब से महानिम्ब हो गया। प्राचीनकाल मे प्रचलित होने पर भी अरलु परवर्ती काल मे व्यवहार से हट गया और इसके स्थान पर स्तम्भन कार्य के लिए श्योनाक तथा अर्शोघ्न कर्म के लिए बकायन का प्रयोग होने लगा। अरलु के महानिम्ब,दीर्घवृन्त और कट्वग नाम श्योनाक के पर्याय हो गये और महानिम्ब पर्वतनिम्ब का पर्याय बना। माधवकृत पर्यायरत्नमाला (८वी शती)में यही स्थिति है। इससे पता चलता है कि ८वी शती के पूर्व यह सब हो चुका था।

पर्यायरत्नमाला मे अरलु श्योनाक का पर्याय है और महानिम्ब का प्रथक वर्णन इस प्रकार है—'कैडर्य वमनेष्टश्च महानिम्बस्तु पार्वत'। धन्वन्तरि निघण्टु मे महानिम्ब का वर्णन निम्ब विशेष के रूप मे किया है जो बकायन प्रतीत होता है किन्तु राजनिघण्टु ने इसके अतिरिक्त, कैडर्य (निम्ब विशेष) का प्रथक वर्णन किया है और उसके पर्यायो मे महानिम्ब के अतिरिक्त पर्वतनिम्ब दिया है। सम्भवत इससे राजनिघण्टुकार का अभिप्राय वास्तविक अरलुवृक्ष (Ailanthus Excelsa Roxb) से है। धन्वन्तरि निघण्टु तथा राजनिघण्टु मे महानिम्ब का एक पर्याय अक्षीर दिया है। सहिताओ मे जहा'अक्षीव' का पाठान्तर'अक्षीर' है उससे इसका ग्रहण हो सकता है या नही यह विज्ञजन विचार करे किन्तु अधोभागहरगण मे पठित 'रम्यक्' शब्द से डल्हण ने जो बकायन लिया है वह चिन्तनीय है क्योकि बकायन ग्राही कहा गया है। भावप्रकाश ने यह निम्ब के पर्यायो मे अक्षीर न देकर रम्यक् का समावेश किया है जो धन्वन्तरि या राजनिघण्टु मे भी है।

जहा तक गुणकर्म का प्रश्न है, अरलु और बकायन दोनो तिक्त, कषाय, रुक्ष, कटु विपाक, शीतवीर्य, ग्राही तथा अतिसार, रक्तस्राव, प्रमेह, अर्श, विष, ज्वर और अग्निमाद्य मे उपयोगी है। इस प्रकार गुण कर्म की समानता तथा निम्ब परिवार की सदस्यता के कारण अरलु का प्रतिनिधित्व बकायन मे स्थापित हो जाना आश्चर्यजनक नही है।

बकायन मूलत पश्चिम एशिया का निवासी वृक्ष है (वेल्थ आफ इण्डिया, चार, ३२२) जो प्राय सिंध, पजाब होते हुए सारे भारत मे फैला। द्रेका, कैडर्य आदि पर्याय सम्भवत इसी के सूचक है। किन्तु इतना निश्चित है कि पर्यायरत्नमाला (९वी शती) और अष्टांग निघण्टु (८वी शती) के मध्यवर्ती काल मे इसका सात्मीकरण भारतीय चिकित्सको द्वारा हो चुका था।

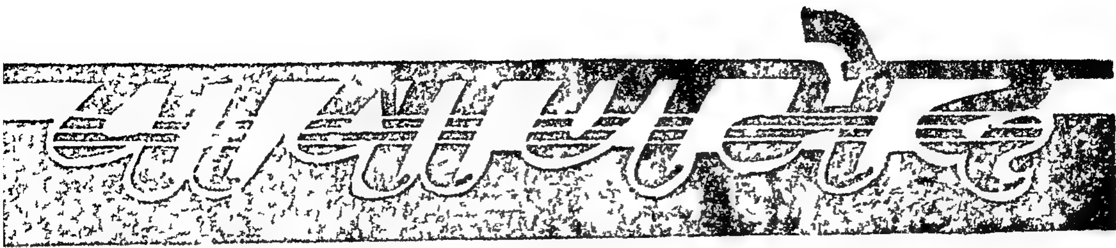
इस लेख का उद्देश्य चिकित्सक समाज का ध्यान मूल द्रव्य की ओर आकृष्ट करना है। अर्श रोग मे मूल महानिम्ब (अरलु) का प्रयोग बकायन के स्थान पर करके देखे। और उनके परिणामो का तुलनात्मक अध्ययन कर निष्कर्ष निकालें। अनेक उपयोगी द्रव्य विस्मृत हो चुके है उन्हे पुनरुज्जीवित करना चाहिये।

(पृष्ठ १९२ का शेषाश)

का आकार गोल, लम्बा, पतला १/८ इन्च लम्बा, १/१२ इच चौडा होता है। चौडाई मे किनारो पर जैसी बारीक झिल्ली लगी होती है। अधोभाग पर वृन्त और उर्ध्व भाग पर योनिक्षत्र का अवशिष्ट भाग होता है। इसमे अनुलम्ब दिशा मे दस रेखायें होती हैं।

सधिस्थान पर दो रेखाओ के सयोग से मोटी रेखा बन जाती है। इसमे दो बीज होते हैं जो दबाने से अलग हो जाते है। इसके बीज का वृन्त भाग आगे जाकर फैलकर चौडी झिल्ली बन जाता है। प्रत्येक बीज लम्बा भीतर की तरफ नतोदर होता है। प्रत्येक बीज पर एक पतला आवरण होता है जिसको हटा देने पर नीचे धूसर वर्ण की फल मज्जा मिलती है।

रस—कटु-तिक्त। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण।
गुण—रुक्ष, लघु, तीक्ष्ण।
प्रभाव—दीपन, पाचन, अनुलोमन।
वीर्यकालावधि—१ वर्ष तक।



श्री झारखण्डे ओझा एवं श्री प्रियव्रत शर्मा

श्री डा० झारखण्डे ओझा चिकित्सक जगत के एक उदीयमान नक्षत्र हैं। यह भारतीय चिकित्सा परिषद लखनऊ के स्नातक हैं। इन्होने स्नातकोत्तर शिक्षा जामनगर के प्रसिद्ध अन्वेषण केन्द्र से प्राप्त की है, तथा हिन्दू विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र से पी० एच० डी० की सम्मानित उपाधि प्राप्त की हैं। इनका अन्वेषण कार्य जटामांसी, पाषाणभेद तथा मधुमेह पर चल रहा है। ये ससोधक विचार के अच्छे अन्वेषक हैं।

—सम्पादक

शास्त्रीय स्वरूप

सहिताग्रन्थ—चरक सहिता मे पाषाणभेद का उल्लेख मूत्र विरेचनीय गण मे सर्वप्रथम आया है। इस गण मे दस द्रव्यो का उल्लेख है जो मूत्र की मात्रा को अधिक करते है[1]। पाषाणभेद इस सहिता मे अकेले नही अपितु कई अन्य द्रव्यो के साथ मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अश्मरी, वातरक्त, आनाह आदि विभिन्न रोगो मे प्रयुक्त हुआ है।

सुश्रुत सहिता मे पाषाणभेद का उल्लेख वीरतर्वादिगण मे आया है। यह गण वातविकार तथा अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राधात को नष्ट करता है।[2] वातसशमन वर्ग तथा कषायवर्ग मे भी पाषाणभेद का उल्लेख है।[3] उत्तरतत्र मे अश्मभेद का उल्लेख मूत्रदोष के प्रकरण मे प्राप्त होता है।[4]

चरकसहिता के समान अष्टाग सग्रह मे पाषाणभेद का उल्लेख मूत्र विरेचनीय गण में किया गया है[5] और यह गुल्म, मूत्राघात, उन्माद, अपस्मार तथा वातव्याधि मे उपयोगी कहा गया है।[6]

१—च०सू० ४।१५-३०
२—सु० सू० ३८।१२
३—सु० सू० ३९।७, ४२।१७
४—सु० उ० ५८।४७, ५९।१७
५—अ० सं० सू० १५।३५
६—अ० सं० चि० १६।२०

अष्टागहृदय मे पाषाणभेद का बहुश. उल्लेख प्राप्त होता है। वीरतर्वादिगण मे अश्मभेद की गणना की गई है। यह मूत्राघात, वातज अश्मरी मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, पाण्डुरोग, उदररोग, गुल्म, प्लीहा, अर्श, अपस्मार एव वातज रोगो मे प्रयुक्त हुआ है।१,२,३,४

निघण्टु—पर्यायरत्नमाला तथा अष्टागनिघण्टु मे पाषाणभेदके विभिन्न पर्यायो का उल्लेख प्राप्त होता है यथा—पाषाणभेद, अश्मभेद, शिलाभेद, अश्मभेदक, अश्मभित् तथा पाषाणभेद्।[5]

धन्वन्तरि निघण्टु ने गुडूच्यादिवर्ग मे पाषाणभेद की गणना की है। पर्यायो के अतिरिक्त इनके गुण कर्म का विवरण यहाँ से प्राप्त होना प्रारम्भ हुआ है। पाषाणभेद शीत तथा तिक्तरस कहा गया है। यह त्रिदोषजित् तथा हृद्रोग, प्लीहारोग, गुल्म, अर्श, वस्तिरोग, शर्करा, शिश्नशूल में लाभकर कहा गया है।[6]

१—अ० हृ० चि० ११।२, १२, १८
२—अ० ह्र० चि० ८।४६
३—अ० ह्र० चि० ११।१८
४—अ० ह्र० सू० १५।२४
५—पाषाणभिदश्मभेदः शिलाभेदोऽश्मभित्तथा
।। पाषाणभेदो ।।
६—पाषाणभेदकोऽश्मघ्न शिलाभेदोऽश्तभेदकः।
हृदरोगप्लीहगुल्मार्शोवस्तिशुद्धिकर पर ।।
स चैवोपलभेदश्च नगभिद्दृषदश्मजित् ।।१५७।।
पाषाणभेदक शूलकृच्छ्रमेह त्रिदोषजित् ।
हृदरोगप्लीहगुल्मार्शो वस्तिसुद्धिकर. पर. ।।
अश्मभेदो हिमस्तिक्त. शर्कराशिश्नशूलजित् ।।१५८।।

निघण्टुशेप मे पापाणभेद का पर्याय कथन से विवरण प्राप्त होता है। टीकाकार ने इसकी निरुक्ति करते हुये कहा है कि जिसमे पापाण का भेदन होता है वह पापाणभेद है।[1]

सिद्धमन्त्र के दोपघ्नवर्ग मे अश्मघ्न का उल्लेख है।[2] हृदयदीपक मे पापाणभेद का वर्णन पर्याय कथन से त्रिपादवर्ग मे किया गया है।[3]

मदनपाल निघण्टु मे अश्मभेदन एक विशिष्ट पर्याय प्राप्त होता है। इसमे पापाणभेद तिक्त एव कपाय रस, शीतवीर्य तथा वस्तिशोधन कहा गया है और प्रमेह, अर्श, मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरी मे लाभकर बतलाया गया है।[4]

राजनिघण्टु मे सर्वप्रथम पाषाणभेद चार प्रकार का कहा गया है—(१) पापाणभेद - यह मधुर एव तिक्त, शीत वीर्य तथा मेह, तृष्णा, दाह, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी मे उपयोगी बतलाया गया है[5]। (२) वटपत्री-इसके पर्यायो मे ऐरावती, गोधावती, रावती, श्यामा, खट्वाग नामिका का उल्लेख है। यह शीतवीर्य किंचित् दीपन तथा मेह, कृच्छ्र को नष्ट करने वाली कही गई है[6]। (३) श्वेतशिला-यह श्वेता, शिलावल्का, शिलजा, शैलवल्का, वल्कला, शैलगर्भाह्वा, शिलात्वक् इन सात पर्यायो से कथित है। यह मधुर शीतवीर्य तथा मेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रावरोध, अश्मरीशूल, क्षय तथा पित्त का नाश करने वाली कही गई है[7]। (४) चतुष्पत्री—इसे क्षुद्र पाषाणभेद माना गया है। इसके लिए चतुष्पत्री, पार्वती, नागभू, अश्मकेतु गिरिभू, कन्दरोद्भव, शैलोद्भव, गिरिजा, नगजा आदि पर्यायो का उल्लेख है। यह व्रण, मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरी मे प्रयुक्त हुई है[8]।

कैयदेव निघण्टु के मिश्रकवर्ग मे वटपत्री और अश्मभेद दो द्रव्यो का पृथक्-पृथक् वर्णन है[9]।

भावप्रकाश मे पापाणभेद का वर्णन हरीतक्यादि वर्ग मे आया है। इसके पर्यायो मे पापाणभेद, अश्मघ्न, गिरिभित, भिन्नयोजनी का उल्लेख है। गुणधर्मो का वर्णन करते हुए आचार्य ने स्पष्ट किया है कि यह तिक्त, कपाय, शीतवीर्य, भेदन, वस्तिशोधन, शोपहर, अश्मरीशूलहर तथा अर्श, गुल्म, कृच्छ्र, योनिरोग, प्रमेह, प्लीह, शूल और व्रण मे लाभकर है।[10]

निघण्टुरत्नाकर—इसमे पापाणभेद के निम्नाकित तीन भेद किये गये है जो सभवत राजनिघण्टु के ही आधार पर है—

१—पापाण भेद, २—श्वेत पापाण भेद, ३—वटपत्री पापाण भेद।

शालिग्राम निघण्टु—इसमे पापाण भेद का वर्णन अष्टवर्ग के अन्तर्गत किया गया है। इसके पर्यायो का वर्णन करते हुए पापाण भेद, अश्मघ्न, शिलाभेद, अश्म-

1 पाषाणोभिद्यतेऽनेन पाषाणभेदः—हैमोणादि सूत्र।३३१।
2 सप्तपर्ण पलाशाश्मघ्न पाटला ॥ १३० ॥
3 पर्वतभेदस्तूपलभेद पाषाणभिच्छिलाभेद ॥ ६३ ॥ त्रिपाद वर्ग
4 अभयादिवर्ग। ८,९
5 पापाणभेदी मधुर स्तिक्त मेहविनाशनः।
तृड्दाहमूत्रकृच्छ्रघ्न शीतलश्चाश्मरीहर ।२१०॥
6 वटपत्री (पापाणभेदक विशेष)।
अन्या तु वटपत्री स्या दन्या चैरावती च सा।
गोधावतीरावती च श्यामा खट्वागनामिका।।२१०।
7 श्वेतशिला (पापाण भेदक विशेष)।
अन्या श्वेत शिलवल्का शिलजा शैलवल्कला।
वल्कलाशैलगर्भाह्वा शिलात्वक् सप्तनामिका॥२१३॥
शिलावल्क हिम स्वादु मेहकृच्छ्रविनाशनम्।
मूत्ररो- धाश्मरीशूलक्षयपित्तापहारकम्॥
8 चतुष्पत्री (पाषाण भेदक विशेष)।
क्षुद्रपाषाण भेदाऽन्या चतुष्पत्री च पार्वती।
नागभूरिश्मकेतुश्च गिरिभू कन्दरोद्भवा। १२५।
शैलोद्भवा च गिरिजा नगजा दशाह्वया।
क्षुद्रपाषाणभेदा च व्रणकृच्छ्राश्मरीहरा॥ २१६॥
9 कटवम्लनालिका गोधावती श्यामा तु मोहनी।
वटपत्री रैवतिका, दीनक शान्तका मत ॥१२६२॥
वटपत्री कषायोष्णा योनिमूत्रगदापहा।
तत्फल मधुर रूक्ष कषाय स्तम्भन हिमम्।
लेखन कफपित्तघ्न विबन्धाध्माननवातकृत् ॥१२६३॥
अश्मभेद—अश्मभेदी दृषद्भेद प्रस्तरो नगभेदक
पाषाणभेदो नगभिदश्महाऽश्मरिभेदन. ॥१२६५॥
अश्मभेदो हिमस्तिक्त कषायो वस्तिशोधन।
भेदनो हन्ति दोषार्शोगुल्मकृच्छ्राश्महृद्रुज।
योनिरोगप्रमेहाश्च प्लीहशूलव्रणानपि ॥१२६६॥
10 पाषाणभेदकोऽश्मघ्नो गिरिभिद्भिन्नयोजिनी।
अश्मभेदो हिमस्तिक्त कषायोवस्तिशोधनः
भेदनो हन्ति दोषार्शो गुल्मकृच्छ्राश्महृद्रुजः
योनिरोगान्प्रमेहाश्च प्लीहशूलव्रणानि च ॥१३२॥

भेदक, उपल भेदक, नगभित् शैलगर्भजा का उल्लेख किया गया है। इसमे पाषाण भेद गुरु, स्निग्ध, शीतवीर्य, तथा वस्तिरोग, मूत्रकृच्छ, तोद, दाह, वातविकार तथा अतिसार नाशन कहा गया है।

१–पाषाणभेद, २–श्वेत पाषाणभेद, ३–वटपत्री पाषाणभेद।

शालिग्रामनिघण्टु—इसमे पाषाणभेद का वर्णन अष्ट-वर्ग के अन्तर्गत किया गया है। इसमे पर्यायो का वर्णन करते हुए पाषाणभेद, अश्मघ्न, शिलाभेद, अश्मभेदक, उपलभेदक, नगभित्, शैलगर्भज का उल्लेख किया गया है। इसमे पाषाणभेद गुरु, स्निग्ध, शीतवीर्य तथा वस्तिरोग, मूत्रकृच्छ, तोद, दाह, वातविकार तथा अतिसार का नाशक कहा गया है[@]। इसी ग्रन्थ मे अन्यच्च करके अन्य विवरण प्राप्त होता है जो भावप्रकाश के आधार पर है। पाषाण-भेद के अतिरिक्त एक क्षुद्र पाषाणभेद का भी उल्लेख मिलता है जो व्रण, मूत्रकृच्छ, अश्मरीहर कहा गया है।[x]

इसमे वटपत्री का पृथक उल्लेख गुडूच्यादि वर्ग मे किया गया है। इसके पर्यायो मे मोहनी, ऐरावत का उल्लेख आया है तथा यह कषाय, उष्ण, योनिरोग और मूत्ररोग को दूर करने वाला कहा गया है। अपिच करके आगे भी विवरण प्राप्त होता है। विवरण मे ग्रथकार ने लिखा है कि वटपत्री पाषाणभेद का ही भेद है। इसके पत्ते वड के पत्ते के समान होते है, इसीसे इसका नाम वटपत्री है[*]।

आयुर्वेद विज्ञानम्–इसमे एकादश अध्याय मे मूत्रविरे-चनीय वर्ग मे पाषाणभेद का वर्णन भावप्रकाश के आधार पर किया गया है। उसी प्रकरण मे आगे चलकर वटपत्री का वर्णन किया गया है।[0]

चिकित्साग्रथ—नावनीतक मे पाषाणभेद का उल्लेख नही है। वृन्दमाधव मे पाषाणभेद का प्रयोग प्रचुर है। इसके वातघ्न कर्म पर विशेष बल दिया गया है अतः वातविकार, कोष्ठाश्रितवात, मेढगतवात, कटिगतवात आदि मे इसका प्रयोग विहित है। परवर्ती चिकित्सा ग्रथो मे इसका प्रयोग अश्मरी, मूत्रकृच्छ, मूत्राघात तथा वातव्याधि मे मिलता है। इसके क्वाथ, तैल, घृत, अवलेह, पाक, अरिष्ट आदि कल्पो का प्रयोग हुआ है। गदनिग्रह मे पाषाणभेद के बीज का प्रयोग है। योगरत्नाकर मे पाषाणभेद का प्रयोग पारद तथा गन्धक की कज्जली के साथ हुआ है।

साराश—उपर्युक्त वाङमय का अनुशीलन करने पर पाषाणभेद के शास्त्रीय स्वरूप पर जो प्रकाश पडता है उसके अनुसार पाषाणभेद ऐसा द्रव्य होना चाहिये जो पाषाण का भेदन करके निकले या जो पाषाण (अश्मरी) का भेदन करे तथा इसके अतिरिक्त जिसमे वातशमन कर्म हो।

धन्वन्तरि निघण्टु को यदि प्रमाण मानें तो पाषाण-भेद तिक्तरस तथा शीतवीर्य होना चाहिये। अन्य परवर्ती निघण्टुओ को देखने से पता चलता है कि तब तक पाषाण-भेद सदिग्ध हो चला था। अत उनके वर्णन उसी स्थिति के द्योतक है।

पाषाणभेद नाम से गृहीत द्रव्य

(१) गोरखगाँजा (Aerva Lanata Juss)

कुल—अपामार्ग कुल (Amaranthaceae)

नाम—हिन्दी—गोरखगाँजा, गोरखबूटी, कपूरीबूटी।

वानस्पतिक वर्णन—यह वहुवर्षायु सीधा या फैला हुआ क्षुप होता है। प्राय यह मैदानी भाग मे पाया जाता है। इसकी शाखाये तथा काण्ड श्वेत, चमकीले परन्तु स्वावलम्वी होते हैं। पत्र-सवृन्त, एकान्तरित, प्रधान काण्ड पर एक इञ्च तक लम्बे, आधा इञ्च तक चौडे तथा अन्य शाखाओ पर छोटे दीर्घ वृत्ताकार या गोलाई लिए एव ऊर्ध्वतल पर मृदु रोमश और अधस्तल पर श्वेत तूलरोमश होते हैं। पुष्प–छोटे, हरिताभ श्वेत, अवृत एव एकलिंगी या द्विलिंगी होते हैं। पुष्पव्यूह छोटे, घने अक्षकोणीय, अवृत काण्डज गुच्छो मे होते हैं। वृन्तपत्रक–अण्डाकार, नतोदर तीक्ष्णाज, परिपुष्प १/१६ इञ्च लम्बे आयताकार, कुण्ठाग्र

@पाषाणभेदकोऽश्मघ्न शिलाभेदोऽश्मभेदकः।
स चैवोपलभेदश्च नगभिच्छैलगर्भज॥
अश्मभिद्वस्तिरुङ्मूत्रकृच्छ्रतोददाहवातनुत्।
शीतवीर्यो गुरु स्निग्धस्तथाऽतीसारनाशन॥ शा०नि०॥

xक्षुद्रपाषाणभेदश्च व्रणकृच्छ्राश्मरीहरः। रा०नि०॥

*पृ० ४५२

0पाषाणभेदकोऽश्मघ्नो गिरिभिद्... ...
वीरतरुसहचरद्वय कोशाश्मभेदाग्निमथ अस्य-
मल ग्राह्य मात्रा-१ माषका



एव पृष्ठ पर रेशम तुल्य रोमो से आच्छादित। फल-अन्डाकार, तीक्ष्णाग्र। बीज-काले एव चमकीले।

उत्पत्तिस्थान—यह भारत मे उष्ण प्रदेशो मे तथा पहाडियो पर १००० फीट की ऊँचाई तक प्राप्त होता है। नवा, अरव, अफ्रीका, जावा, एव फिलिपाइन मे भी मिलता हे। यह बगाल के मैदानो मे तथा दक्षिण भारत मे अधिकता से प्राप्त होती है।

गुण एव प्रयोग—यह स्वेदजनन, मूत्रजनन,वेदनाहर, अश्मरीहर, क्रमिघ्न एव कासहर है।

(२) एर्वा जवानिका—(Aerva Javanica Juss)

दक्षिण भारत मे इस द्रव्य को पाषाणभेद के अन्तर्गत रखते है। एर्वा लेनाटा नामक द्रव्य के अभाव मे मद्रास मे इसका प्रयोग होना है। सिद्ध सम्प्रदाय वाले इस द्रव्य को पेरुपील्ले (तामिल) कहते है जिसका अर्थ वृहद् पाषाण भेद होता है। परन्तु वानस्पतिक वर्णन मे यह पूर्व द्रव्य से भिन्न है।

कुल—अपामार्ग कुल–(Amaranthaceae)

वानस्पतिक परिचय—इसका पौधा सघन, रोमश तथा छोटे गुल्म के रूप मे २ ३ फीट ऊचा, १/२ इन्च लम्वा होता है। इसके पत्र एक से २॥ इन्च लम्बे एकान्तरित, प्रायः वृन्तहीन रेखाकार-आयताकार या आयताकार स्रुवाकार होते हैं। पत्राग्र तीक्ष्ण, कुंठित या नत होता है।

पुष्पमजरी—१-६ इन्च लम्वी सघन, ऊर्णित,आयताकार या रेखाकार होती है। इसके एकलिंगी पुष्प अलग अलग पौधो मे होते हैं।

पुंपुष्प—परिदल पुष्प १/१५ इन्च लम्वे, वाह्यदल-अण्डाकार, आयताकार पृष्ठ भाग मे ऊर्णित होते हैं।

स्त्रीपुष्प—परिपुष्प १/१० इन्च लम्वे वाह्यदल-न्यूनाधिक तीक्ष्णाग्र होते हैं। इसमे कुक्षिया दो होती है जो कुक्षिवृन्त के वरावर होती है।

गर्भाशय—अविकसित, कुक्षिवृन्त ह्रस्व एव द्विविभक्त कुक्षि होती है।

क्लोम (Utricle)—चौडाई लिए अण्डाकार तथा वीज चमकीले एव गहरे भूरे रग के होते है। यह एक मि० मी० व्यास के तथा चणक के सदृश आकृति के होते है। यह प्रायः एर्वा लेनाटा की तरह होता हे परन्तु पत्र-विन्यास मे अन्तर होता है।

उत्पत्ति स्थान—यह भारत के समुद्री तटों पर तथा रेतीले स्थानो में ही होता है तथा पञ्जाब, राजपूताना, सिंध, लका, वर्मा मे पाया जाता है। गुजरात, मध्यभारत तथा वलूचिस्तान मे भी प्राप्त होता है।

प्रयोग—इसका क्वाथ शोथहर व अश्मरीहर होता है

(३) नाथोसर्वा ब्रैकियेटा वाइट (Nothosaerva Brachiata wight).

दक्षिण भारत मे पाषाणभेद के अन्तर्गत इसका भी ग्रहण करते है।

वानस्पतिक परिचय—यह द्रव्य एर्वा लेनाटा के गुण धर्मों तथा उपयोगो मे पर्याप्त साम्य रखता हे। यह वर्षा ऋतु मे उगने वाला उद्भिद् है। यह ५० सेमी० या अधिक ऊचा होता है। इसकी शाखाये प्रायः मूल से ही निकलकर चारो ओर फैली रहती है।

पत्र—१ से २ इ० लम्बे लट्वाकार, अण्डाकार, कुण्ठिताग्र, झिल्लीदार तथा हरित होते है। पर्णवृन्त ० से १।४ इन्च लम्वे होते है।

पुष्पव्यूह—अधिक, अवृन्त १/४ से १/२ इन्च लम्वे,

वेलनाकार, श्वेत तथा घने होते ह। कोणपुष्पक तथा वृन्तपत्रक तीक्ष्णाग्र एव स्थाई होते हैं।

बाह्यदल—१/५० इन्च लम्बे रेशमी रोमो से युक्त होते हैं।

बीज—सूक्ष्म, काले तथा चमकीले होते हे।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरी भारत, पजाव, सिंध तथा मैसूर मे होता है। इसके अतिरिक्त अफ्रीका, वर्मा, लका, मारिशस मे होता है।

(४) अमानिया वैमिफेरा लिन (Ammannia Baccifera linn).

केरल के चिकित्सको मे उस पौधे का पाषाणभेद के रूप मे प्रचार है।

कुल—मदयन्तिका कुल (Lythraceae)

नाम—स०—अग्निगर्भा, अग्निपत्री, जलकरवीर

हिं०—दादमारी, जगली मेहदी, मिर्चिया।



वानस्पतिक वर्णन—इसके पुष्प मीठे पानी वाले प्रदेश मे तालाव नहरो के किनारे अथवा पानी मे उग आते है। यह ५-६ इन्च से लेकर २ फीट तक ऊँचे उठे रहते है। इसकी शाखायें और पत्र अभिमुख आते है। कदाचित् एकान्तर भी रहते हैं। पत्र—१ मे २॥ इन्च लम्बे कनेर के समान कुण्ठिताग्र होते हैं। पत्रकोण मे फूलो और गोलाकार फलो के गुच्छे आते हैं। इसका रग प्रारम्भ मे हरिताभ तथा वाद मे रक्ताभ श्वेत हो जाता है। वाह्यदल-नलिका वृत्ताकार, चतुर्दलीय और चौडी होती है। अन्तर्दल अनुपस्थित या छोटा होता है। फल-१—३ मि०मी० तक लम्बे तथा २-५ मि०मी० चौडे होते है। फल कोपायुक्त लगभग २ मि०मी० व्यास के, पतले छिलके वाले तथा पकने पर अनियमित स्फुटनशील होते हैं।

बीज—कृष्णवर्ण, अर्धवृत्ताकार तथा समतल सतह पर खातयुक्त होते हैं।

प्रयोग—पत्तो को मुँह मे रखने पर लालमिर्च के समान चरपरा स्वाद आता है। इसके पत्र को पीस कर शरीर पर वाधने से फफोला उठता है। तामिल, कन्नड एव मलयालम मे इसे कल्लुरुवी कहते है जिसका अर्थ पाषाण का भेदन करने वाला होता है। तामिल मे इसका दूसरा नाम नीमलेनिरुप्पू है जिसका अर्थ जल मे उगने वाला तथा अग्निगुणवाला है। तेलगू मे भी इसका दाहक गुण वतलाया है। कोकण प्रदेश मे कामान्ध पशुओ मे उत्तेजना को शात करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसकी राख तेल मे मिलाकर व्रण या विस्फोट मे लगाने से लाभ होता है। आमवात तथा प्लीहा वृद्धि मे प्रयोग होता है।

उत्पत्तिस्थान—अफगानिस्तान, मलाया, चीन आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका मे प्राप्त होता है। भारत मे नम स्थानो मे तथा धान के खेतो मे प्राप्त होता ह।

५—रोटुला एक्वेटिका, ल्योर (Rotula Aquatica,Lour)

वगलौर और मैसूर के वैद्य इसका पाषाण भेद के रूप मे प्रयोग करते है।

कुल श्लेष्मातक-कुल (Boraginaceae)—उपकुल—(Ehretiaceae)

वानस्पतिक वर्णन—यह २ मी० की ऊँचाई तक वढता हुआ शाखायुक्त, गुल्म वनाता हे। पत्ते—एकान्तर आधा इन्च लम्बे विशाल स्फानवत् तथा लट्वाकार होते है। पुष्प शाखाओ पर लगते है। ये द्विलिंगी, नियमित

पचतयी, अधोजाय एव हरित वर्ण के चार मि० मी लम्बे होते हैं। अन्तर्दल-५, गुलाबी रग के सयुक्त जिसके खण्ड ५ मि० मी० लम्बे तथा नलिका ३ मि० मी लम्बी होती है। गोल दलखण्ड पूर्णरूप से विकसित होने पर प्रत्यावर्तित हो जाते हे। फल-शुष्क नारगी वर्ण के ३ से ४ से० मी० व्यास के होते है। जिनमे आधार पर स्थायी वाह्य पुष्प-दल लगा रहता है एव अग्रपर कुक्षिवृन्त भी रहता है।

उत्पत्ति स्थान—यह प्राय नदी के कछार एव पहाड़ियो तथा तराइयो मे प्राप्त होता है। अधिकतर चट्टानो की तलहठी मे उगता है।

प्रयोज्य अ ग तथा आमयिक प्रयोग—प्राय पचाग ही लिया जाता हे परन्तु मैसूर एव मगलौर मे जड का प्रयोग करते हैं। इसका मूल अर्श, मूत्राशय की अश्मरी एव फिरग आदि यौन विकारो मे व्यवहृत होता है।

(६) वर्जिनिया लेगुरोटा, वाल

(Bergenia Ligulata Wall)

Engle syn Saxifraga Ligulata Wall

उत्तर भारत मे पाषाण भेद के नाम से यह द्रव्य बहुश. प्रचलित हे।

कुल—पाषाण भेद कुल—(Saxifragaceae)

हि०—पखान भेद, सिलफडा, पथरचूर पोपल, वनपत्रक, दकचु।

वानस्पतिक वर्णन—इसका छोटा वहुवर्षायु क्षुप पहाड की चट्टानो पर फैला हुआ होता है तथा चट्टानो की दरारो से कणक का उद्गम होता है। मूल-रक्तवर्ण लगभग १ इन्च स्थूल होता है। इसके अनेक उपमूल निकल कर चारो ओर फैले रहते है। पत्र—गोलाकार, प्राय ३ से ५ इन्च व्यास के मासल, किनारो पर दातयुक्त, ऊपरी पृष्ठ पर हरे तथा निचले पृष्ठ पर बिन्दुयुक्त रक्ताभ एकत्र तीन से चार पत्तियो से अधिक नही होती। पुष्प गुच्छवत् मजरियो मे श्वेत, रक्ताभ तथा बैंगनी, कुक्षिवृन्त अधिक लम्बा एव स्त्रीकेशर कभी कभी तीन होते है। फल-नीलाभ श्वेत तथा गोलाई लिए हुए छोटे होते हे। उत्पत्तिस्थान-५ से १० हजार फीट की ऊँचाई पर हिमालय प्रदेश मे कश्मीर से भूटान तक ४००० फीट की ऊँचाई पर की पहाडियों पर होते हे।

रासायनिक सगठन—मूल मे टैनिक ऐसिड एव गैलिक एसिड १५।। प्रति० श०, स्टार्च १९ प्र० श०, खनिज लवण, मेटार्विन, अल्व्युमिन ७३/४ प्र० श०, ग्लुकोज ५५/६ प्र. श. के पिच्छिल द्रव्य २१/४ प्र० श० मोम तथा सुगन्धित द्रव्य होते है।

भस्म १२ से ८७ प्रतिशत जिसमे केल्शियम आग्जलेट अधिक मिलता है। पाषाणभेद कुल मे आर्व्युटीन नामक फेनालिक ग्लाइकोसाइड पाया जाता है। यह उनकी पत्तियो से निकाला जाता हे। इसके अतिरिक्त वर्जिनिया जाति मे वर्जिनीन नामक फेनालिक घटक मिलता हे। इसकी पत्तियो मे इनके अतिरिक्त कुछ फ्लेवेनोल (Flavanol) भी पाये जाते है। वर्जिनियाँ लेगुलेटा, सिलिएटा तथा स्टैची इन तीन प्रजातियो के मूल मे लिकोएन्थोसाइनीन घटक पाये जाते हैं। केवल वर्जिनियाँ स्ट्रैची मे एक कैटेकिन यौगिक भी पाया जाता है। नानफेनालिक यौगिको मे केवल वर्जिनिया सिटास्टेराल मारतीय प्रजातियो के मूल मे तथा वर्जिनिया सिटास्टेराल भारतीय प्रजातियो के मूल मे पाया जाता है। यह स्मरणीय है कि इनके रासायनिक सगठन मे गेलिक एसिड का महत्वपूर्ण भाग होता है। सेन एव शर्मा के रासायनिक परीक्षण का परिणाम निम्नाकित हे। •गेलिक एव टेनिक अम्ल १४ २ प्रतिशत, शर्करा ५ ६ प्रतिशत, अल्व्युमिन ७ ७५ प्रतिशत, स्टार्च १९ प्रतिशत, कैल्शियम आग्जलेट ११ ३४ प्रतिशत, राल १३ प्रतिशत। इसमे अश्मरी भेदन के रूप मे इसका प्रयोग होने का सकेत किया है।

भेदप्रभेद—इसकी चार जातियो का उल्लेख सेन एवं शर्मा ने किया है—

(१) B Ligulata (wall) Engle.

(२) B. Ciliata (Royl) Raizada

(३) B Stracheyi (Hook P. & Thomb) Eugle

(४) B Parpuraseens.

इनके मत से प्रथम तीन ही चिकित्सा की दृष्टि से उपयोगी है तथा वर्जिनियाँ लेगुलेटा ही पाषाण भेद है। उक्त प्रजातियो की आभ्यन्तर रचना का अध्ययन किया गया जिससे उक्त दोनो मे अन्तर देखा गया है। उनके भौमिक कांड की रचना मे अधिक साम्य दृष्टिगोचर हुआ। वर्जिनियाँ स्टेची को वाह्य रचना द्वारा आसानी से प्रथक कर सकते है। शेष दोनो वर्जिनिया लेगुलाटा और वर्जि-

• सेन एव शर्मा—नागार्जुन-मई, १९६३, ३२६-३३६

निया सिलिएटा को सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा ही पहचान सकते है। रासायनिक परीक्षण मे वर्जिनिया लेगुलाटा से रेड्यूसिंग शर्करा की मात्रा अन्यो की अपेक्षा अधिक है तथा सिलिएटा मे सबसे कम पाया जाता है। टैनिक अम्ल वी स्ट्रैची, वी. सिलिएटा और वी लेगुलेटा मे प्राप्त हुए। वी सिंह तथा उनके सहयोगियो ने इसके वर्जेनिन नामक विशिष्ट तत्व का गुण-कर्मात्मक अध्ययन किया जिसमे मुरासरीय सत्व मे क्रियाशीलता पाई गई। इससे चूहो मे मूत्रल प्रभाव पाया गया।[x]

(७) कोलियस एरोमेटिकस बेन्थ (Coleus Aromaticus Benth Syn Coleus Amboinicus Lour.)

कुल – तुलसी कुल (Labiatae)।

नाम—स०—पर्णयवानी (पत्तियो मे अजवायन की सी गन्ध होने के कारण)।

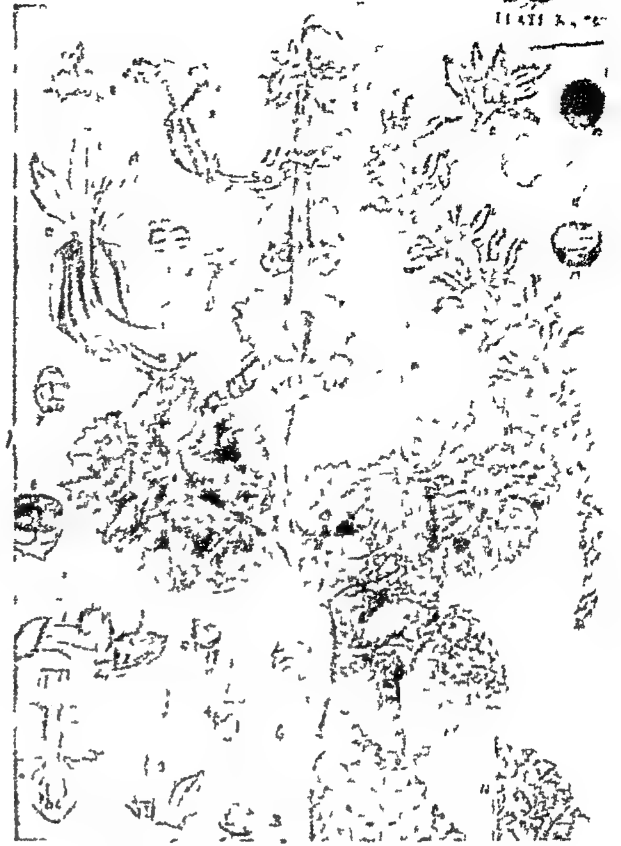
हिन्दी—पत्ता अजवायन, ब० – पाथरचूर।

वानस्पतिक वर्णन—क्षुप अतिसुगन्धित बहुवर्षायु या वर्षायु, रोमश तथा नीचे की ओर गुल्मवत्, १-३ सेमी ऊँचा तथा कोमल होता हे। पत्र—१-३ इ च लम्बे दन्तुर, मासल और किंचित् रोमश, सवृन्त, वृत्ताकार, हृदवत्, मोटे सरस, गूदेदार तथा अजवायन की गन्धवाले होते हैं। पुष्प—छोटे, नीले या बैंगनी रग के दूर-दूर किन्तु सघन चक्रो मे १/८ इ च लम्बे आते हैं। प्राय इनका विकास नही होता।

उत्पत्ति स्थान—भारत मे सर्वत्र बगीचो मे लगाया जाता है। राजस्थान मे वन्य होता है। यह मलक्का द्वीप की वनस्पति मानी जाती है।

रासायनिक सगठन—इसमे एक उडनशील तैल अल्प मात्रा मे होता है जिसमे कार्वाक्रोल (Carvacrol) पाया जाता हे।

प्रयोग चटर्जी ने विसूचिका के अतिसार पर इसका प्रयोग किया है और पर्याप्त लाभ पाया।[•] प्रथम स्वरस चार ड्राम तथा बाद मे दो ड्राम देने को कहा है। इससे विसूचिका की तीव्रता भी न्यून हो जाती है। ग्रहणी रोग मे इसके पत्तो की पकौडी का सेवन किया जाता है।



राक्सवर्ग ने पत्तियो को भोजन के साथ लेने तथा मद्य को सुगन्धित करने के लिए लिखा है। इसके स्वरस को मधु के साथ मिलाकर वातानुलोमन के लिए तथा उदरशूल एव अग्निमांद्य मे देते है। पत्तो का प्रयोग मूत्रगत विकार तथा प्रदर मे होता है। जीर्णकास, हिक्का, श्वास, अश्मरी, मूत्रकृच्छ, नेत्राभिष्यन्द, शिर.शूल, गोजर के दश मे उपयोगी है। अधिक मात्रा मे मादक प्रभाव करता है। प्रयोज्य अङ्ग—पत्र, मात्रा स्वरस आधा से एक तोला।

(८) ब्रायोफाइलम कैलिसिनिम स्लेबिस (Bryophyllum Calycinum Salisb) Syn Kalanchoe Pinnata Pers

कुल—पर्णबीजकुल (Crassulaceae)

नाम—स०-पर्णबीज, अस्थिभक्ष, हि०-पथरचुर, पथरचट, जरमेहयात, अहिरावण, महिरावण।

वानस्पतिक वर्णन – यह मासल, बहुवर्षायु क्षुप है। इसका काण्ड चिकना, १ से ४ फीट ऊ चा तथा पोला होता हे। पत्र—नीचे के साधारण किन्तु ऊपर के सयुक्त, ३ से ७ पत्रको से युक्त, ३ से ६ इं० लम्बे होते हैं। पत्रक

---

[x] वी. सिंह—इण्डि. ज्वर. फिजियोलोजी एण्ड फार्माकोलोजी ११, २, १९६७, ४५।

[•] एच एन. चटर्जी—ऐन्टीसेप्टिक, सितम्बर १९५५।

मासल, अण्डाकार, गोल दन्तुर होते है। पुष्प २ इन्च लम्बे नलिकाकार, रक्ताभ हरित तथा नीचे की ओर झुके हुए होते हैं। बाह्यदल—१ से १॥ इन्च लम्बे, बेगनी, पुकेशर हरे। फल—कागज जैसे पतले तथा स्थायी पुष्पदलो मे आवृत रहते हैं। बीज छोटे आयताकार, अण्डाकार, चिकने तथा हल्की अनुलम्ब रेखाओ से युक्त होते हैं। इसकी पत्तियो के दन्तुर किनारे मे ही बीज होते हैं जिससे पत्तिया जमीन से गिरने पर पुन नया क्षुप बना देती है। शीतऋतु मे पुष्प और ग्रीष्म ऋतु मे फल आते हैं। भेद-प्रभेद इसकी एक बडी प्रजाति जो बगाल मे हिमसागर के नाम से जानी जाती है जिसे कालेन्सिया मिलियेटा कहते है। इसके क्षुप पत्र बडे एव मासल होते है।



उत्पत्तिस्थान—यह भारत के उष्ण प्रदेशो विशेषकर बगाल मे अधिक पाया जाता है। लका मे भी पाया जाता है। मूलतः यह पौधा अफ्रीका का माना जाता है जहाँ से यहाँ बगाल मे लाया गया।

रासायनिक सगठन—इसके पत्तो मे मैलिक आइसोसाइट्रिक एव साइट्रिक अम्ल पाया जाता है। पत्तो मे कैल्शियम सल्फेट, आग्जलेट तथा ऐसिड टार्टरेट आफ पोटाशियम होता है।

प्रयोग—अभिघातजन्य शोथ, व्रण मे इसके पत्रकल्क का लेप करते हैं। क्षत, कीटदश, नवीन व्रण, रक्तातिसार मे जीरा एव मधु से पत्र स्वरस देते है। रक्तार्श, प्रदर, अश्मरी, विसूचिका मे यह उपयोगी है। प्रयोज्य अग-पत्र मात्रा १/४ से १/२ तोला।

(९) आयरिस स्यूडो अकोरस (Iris pseudoachorus)

इसका भौमिक काण्ड पाखानभेद लकडी के नाम से बाजार मे मिलता है। वर्तमान मे बम्बई और गुजरात के बाजार मे इस नाम से पखानभेद के टुकड़े मिलते हैं। वसु एव कीर्तिकर ने आयरिस की अनेक प्रजातियो का वर्णन किया है जिसमे आयरिस नेपालैसिस (Iris Nepalensis) भी है। डा० कालीपद विश्वास ने भी भारतीय वनौषधि मे इसका वर्णन किया है। अत इसी का विस्तृत विवरण यहाँ किया जा रहा है। यह द्रव्य इरसा, शोसन, आदि नामो से हकीमो मे प्रचलित है। अग्रेजी मे इसे ओरिस रूट कहते हे। वैद्य लोग इसे मीठा कूट तथा पुष्कर मूल के स्थान पर प्रयोग करते है। अनेक लोग इसे सफेद वच, बालवच, मीठावच भी कहते हे।

(९) आयरिस नेपालेसिस (Iris Nepalensis)

यह बहुवर्षायु क्षुप है। मूलस्तम्भ मजबूत एव फैले होते हैं। काण्ड १५ से ३० से० मी० ऊचा पतला होता है। पत्र—१५ से ३० से० मी० लम्बे, पुष्पागमन के समय ६० से० मी० लम्बे तथा ६ से० मी० चौड़े होते हैं। पुष्पदण्ड—३८ से० मी० से ५ से० मी० लम्बा, हल्के लिलैक वर्ण के छोटे पुष्प वाला होता है। फल—२.५ से ८ सेमी० लम्बा आयताकार और स्थायी पत्रकोष से आवृत होता है। (चित्र पृष्ठ २०८ पर देखे।)

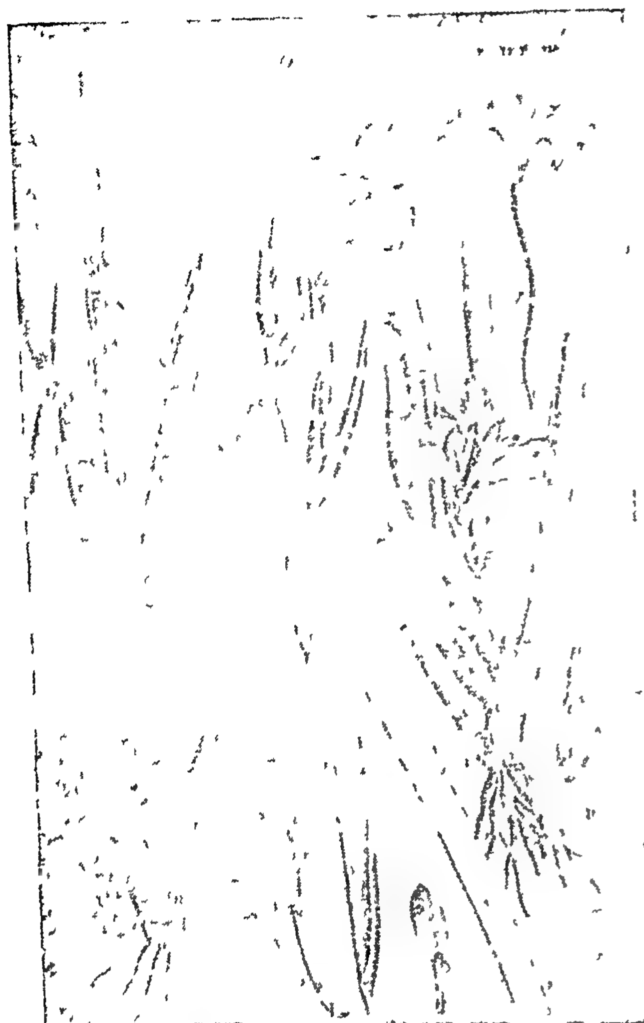
उत्पत्ति—हिमालय पर ५ से १० हजार फीट तक प्राप्त होता है।

प्रयोग—रेचक, मूत्रल, स्रोतोरोधहर, पैत्तिक शोथहर बाह्य प्रयोग मुहाँसे एव छोटे व्रणो मे उपयोगी है।

(१०) ओसिमम बैसिलिकम, लिन (Ocimum Basilicum linn)

कुल—तुलसीकुल (Labiatae)

आइग्सि नेपालेन्मिम ↓ (विवरण पृष्ठ २०७ पर)



नाम—म०—वर्वरी, तुवरी (वीज कपाय स्तम्भन होने से), तुँगी, (पुष्पमजरी वडी होने से), खरपुष्पा (पत्तो या पुष्पो मे रोम होने के कारण), अजगविका (बकरे के तुल्य गधवाले), पर्णाश। हि०—ववरी, ववई, ममरी, वनतुलसी। वम्बई मे इसके क्षुप का विक्रय सैलवा (Salva) नाम से होता है। वहाँ के मुसलमान इसे कब्रो पर चढाते है।

वानस्पतिक परिचय—इसका क्षुप रोमश, सीधा, २ से ३ फीट तक ऊचा होता है। काण्ड—शाखायें—हरी तथा कभी-कभी पीताभ वर्ण की होती है। पत्र—१ से ३ इन्च लम्बे, अण्डाकार, नुकीले सुगन्धित होते हैं। पुष्पमजरी-आधे से दो-चार इन्च लम्बी, शाखाओ के अन्त मे है। उसी मे वीजकोप लगते हैं। पुष्प—चक्राकार, श्वेत या बैगनी रग के होते है, वीज छोटे काले वर्ण के गोल किंचित् लम्वे एक ओर महराव का चिह्न और दूसरी ओर चपटे तथा मोटी नोक वाले होते है। इन्हे



ओसिमम वैसिलकम् ↑

जल मे भिगोने पर लुआव होता है। इन्हे तुख्म शर्बती या तुख्मरैहा कहते हैं। कही-कही तोकमारी भी कहते है। भावमिश्र के तीन प्रकार वतलाये है—

(१) अर्जक—श्वेत पुष्प (२) कठिल्लक तथा कुठेरक-कृष्णपुष्प (३) वटपत्र—वट के समान पत्र वाले। धन्वन्तरि निघण्टु ने इसको सुमुख तथा राज निघण्टु मे वर्वरीका नाम से वर्णन है। भगीरथ स्वामी ने अजगन्धा से वर्वरी का तथा वनवर्वरीका से उस्तुखद्दूस (जगली लवेन्डर) का ग्रहण किया है।

रासायनिक सगठन—इसकी पत्तियो मे एक पीताभ हरित सुगन्धित तेल होता है जो कुछ समय तक रहने के वाद स्फटिकाकार हो जाता है। इसे वेसिल कैंफर कहते हैं। चोपडा ने पत्रो की विभिन्न अवस्थाओ मे एसेंशियल तेलो का प्रमाण दिया है।

उत्पत्तिस्थान—आदिम स्थल दक्षिण-पूर्व एशिया है किन्तु सम्प्रति समस्त भारत मे विशेषकर पजाव, बगाल से प्राप्त हो रहा है।

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण। रस—कटु, तिक्त।

वीर्य—उष्ण।

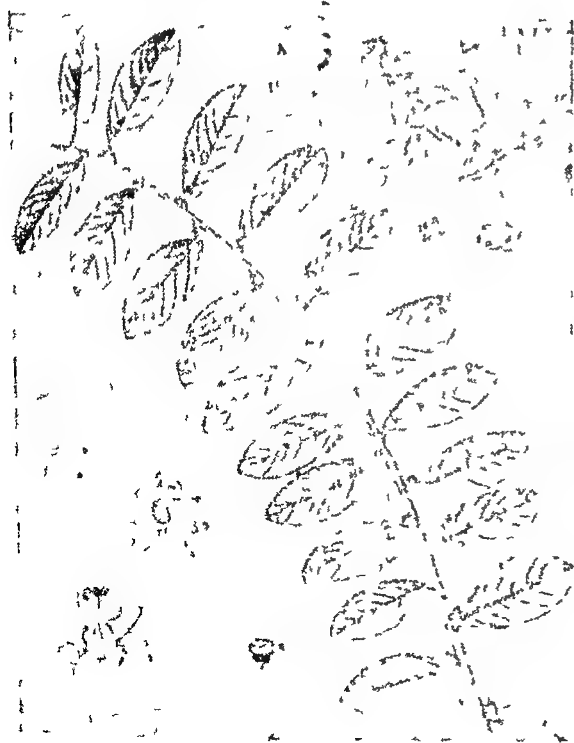
बीज—स्निग्ध, मधुर, कषाय, शीत।

कर्म—वातकफशामक, पित्तवर्धक, परन्तु बीज पित्त-शामक।

पत्र—शोथहर, वेदनास्थापन, शिरोविरेचन। बीज—स्नेहन, स्तम्भन, मूत्रल, कफनिस्सारक, कफघ्न, हृदयोत्तेजक, रक्तरोधक, आर्तवजनन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, विषघ्न, बल्य है। अतिसार, विसर्प, वृश्चिक विष, दर्द मे यह उपयोगी है। कास मे इसका स्वरस मधु के साथ तथा फाँट भी उपयोगी है। सर्पविष मे स्वरस चार से ५ तोला। वृश्चिक दश मे पत्रकल्क उपयोगी है। सर की रूसी, दाह मे स्वरस का प्रयोग है तथा व्रण मे बीजो को घोकर बाधते हैं। प्रमेह मे बीज का प्रयोग किया जाता है। प्रयोज्य अङ्ग-पचाग। मात्रा-स्वरस, आधा से एक चाय का चम्मच। बीज—१/४ से १/२ तोला दुग्ध या शर्करा के साथ फाण्ट बनाकर।

(११) ब्रिडेलिया रेटूसा स्प्रिग (Bridelia Retusa Spreng)

कुल—एरण्डकुल (Euphorbiaceae)



वानस्पतिक परिचय—यह लघु या मध्यम आकार ५० से ६० फीट तक का ऊचा वृक्ष है। पत्ते ३ से ५ इन्च कदाचित् तीक्ष्णाग्र, ऊपरी सतह चिकनी, निम्न सतह प्राय रोमश, हरे रग की होती है। पतझड के पूर्व इनका वर्ण कुछ गुलाबीपन लिये बैंगनी हो जाता है। पर्णवृन्त १/४ से १/२ इन्च लम्बे होते हैं। पुष्प-अवृन्त गुच्छेदार तथा हरिताभ पीत वर्ण के होते है। फल—मासल, मटर के आकार के नील कृष्णाभ होते हैं।

उत्पत्तिस्थान—सम्पूर्ण भारत मे तथा विशेषकर उष्ण प्रदेशो मे तथा हिमालय काश्मीर मे ३५०० फीट की ऊचाई तक प्राप्त होता है। बर्मा, मलक्का, लका मे भी प्राप्त होता है।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल मे १६ से ४० प्र०श० टैनिन प्राप्त होता है।

प्रयोग—जड एव छाल ग्राही होती है। छाल का सधिशूल मे प्रयोग करते है।

(१२) होमोनिया राइपेरिया ल्योर (Homonoa Riparia Lour. Syn. Adelia Mercifolia Roxb

कुल—एरण्डकुल (Euphorbiaceae)

नाम—स—पाषाणभेदक, हि—छोटा पाषाण।

वानस्पतिक वर्णन—यह सदैव हरित रहने वाली मृदु रोमश झाडी है। पत्र—निम्न भाग मे रक्तकृष्णाभ, रोमश ३-६ इ च लम्बे १/२ से ३/४ इ च तक चौडे तथा तीक्ष्णाग्र होते हे। इसमे १० से ३० युग्म प्रधान शिरायें होती है। पुष्प मजरी मे छोटे-छोटे अवृन्तक पुष्प होते है। बीज १/१६ इ च लम्बे तथा पीताभ भूरे रग के होते है।

उत्पत्ति स्थान—यह सिक्किम, हिमालय की नदियो के किनारे चट्टानो मे, आसाम, पूर्वी बगाल, मध्य भारत मे प्राप्त होते हैं।

रासायनिक सगठन—इसके दुग्धवत् स्वरस मे टाक्सा-ल्व्यूमिन क्रोप्टिन प्राप्त होता है।

गुणधर्म—इसके क्वाथ का अर्श, बस्तिगत अश्मरी, पूयमेह एव फिरग मे उपयोग करते हैं। इसका मूल, मृदु-रेचक, मूत्रल, व्रण मे उपयोगी तथा मूत्रविकारो मे लाभ-दायक होता है।

(१३) डिडिमोकार्पस पेडिसिलाटा, आर-ब्रोआर (Didymocarpus Pedicellata R Br.)

वहल एव शेषाद्रि ने इस द्रव्य का वर्णन पाषाणभेदी

द्रव्यों के अन्तर्गत [illegible] है। [illegible] कहते हैं। इसके [illegible] वृक्कगत अश्मरी को तोड़ देती है तथा मूत्र [illegible] मात्रा को बढ़ाती है।

कुल—यह Gesneriaceae [illegible]।

वानस्पतिक परिचय—[illegible] बिल्कुल छोटा [illegible] होता है। पत्र—प्रायः मूलोत्थित ३-६ [illegible] की मालाएँ [illegible] एवं दन्तुर होते हैं। वृन्त २-४ [illegible] है। पुष्प अनेक लगभग १ [illegible] लम्बे बैंगनी रंग, [illegible] मे आते हैं। फल—१-२ [illegible] लम्बा [illegible] लम्बे वृन्त से युक्त होता है।

उत्पत्ति स्थान—यह हिमालय में [illegible] में कुमाऊं की पहाड़ियों में २५००-५५०० फीट [illegible] होती है।

रासायनिक संगठन—इसकी पत्तियों में एक प्रकार का रवेदार रञ्जक पदार्थ होता है जिसमें पैडिगिन, पैडिलेनिन, पैडिसेनिन नामक तत्त्व पाया जाता है। इसकी पत्तियों के ईथर सत्व में उड़नशील तैल होता है जिसमें मुख्य रूप से डेडिमाकार्पिन नामक तत्व पाया जाता है।

समीक्षा—

प्राचीन संहिताओं में पाषाणभेद की रचनात्मक विशेषताओं का कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं है। पाषाणभेद नाम से इतना संकेत प्राप्त होता है कि यह वनस्पति सम्भवतः पार्वत्य प्रदेश में होती थी और पाषाण (पत्थरों) को तोड़कर बाहर निकलती थी। अश्मभित्, पर्वतभिद् आदि इसके पर्याय इसके द्योतक हैं।[१] यह अपने अश्मरीभेदन प्रभाव के लिए प्रसिद्ध रहा और अद्यावधि चिकित्सा-जगत में व्यवहृत हो रहा है। आयुर्वेद में यदि औषधियों के गुणकर्म के इतिहास को देखें तो ज्ञात होता है कि अनेक औषधियों के गुणकर्मों एवं प्रयोगों का निरूपण आकृति-साधर्म्य के आधार पर हुआ है। रक्ताशोक का प्रदर में, मञ्जिष्ठा का रक्तविकार में, मरोड़फली का प्रवाहिका एवं उदरशूल में विधान इसके उदाहरण हैं। पाषाणभित् के सम्बन्ध में भी ऐसा अनुमान होता है। प्राचीन महर्षियों ने उत्पत्तिकाल में ही इसके पाषाणभेदन कर्म को देखकर शरीरस्थ विकारभूत पाषाण के भेदन के लिए इसका प्रयोग किया गया होगा। इसके अतिरिक्त [illegible]

[illegible] है।*

[illegible]

[illegible]

१. [illegible]—[illegible]

२. वातरोगन्त—[illegible] में [illegible] इसका उल्लेख किया है। [illegible] में भी [illegible] है।

३. अश्मरीभेदन—[illegible] अश्मरी [illegible] पातन जो प्रयोग बतलाये हैं उनमें पाषाणभेद का प्रमुख स्थान है। सुश्रुत ने भी [illegible] शर्करा, मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात का नाशक बताया है।*

उपर्युक्त ऐतिहासिक [illegible] के आधार पर यह कहना कठिन है कि वर्तमान [illegible] में पाषाणभेद के नाम से गृहीत द्रव्यों में से कौन सा द्रव्य प्राचीन महर्षियों का अभिप्रेत था। यदि इसके उत्पत्ति स्थान तथा [illegible] पत्थर में उत्पन्न होने के स्वरूप पर विचार किया जाय तो [illegible] की विशेषता प्रतीत होती है। सम्भवतः गुप्तकाल एवं उत्तर गुप्तकाल तक यह लिया जाता रहा है। बाणभट्टकृत कादम्बरी (७ वीं शती) में पाषाणखण्डों पर फैले हुये मुरायुक्त पाषाणभेद का उल्लेख है।[०] इससे यह भी ज्ञात होता है कि इस द्रव्य का मूल प्रधान अङ्ग था और सम्भवतः उसी का चिकित्सा में प्रयोग होता था। आज भी इसी का प्रयोग होता है। माधवकृत पर्यायरत्नमाला में पाषाणभेद का अत्यन्त संक्षिप्त उल्लेख है। इसके पर्यायों में अश्मभेद, अश्मभित्, शिलाभेद तथा पाषाणभित्

[१] पाषाणक. पर्वतभित् अश्मभिच्चैव कीर्तित । एकाक्षरी निघण्टु, पकारादिवर्ग।

* तकृकाजिकसुरा सकुलत्था योजितानि बदराणि च तस्मिन ।।१४।। दकार्गलाध्याय ।

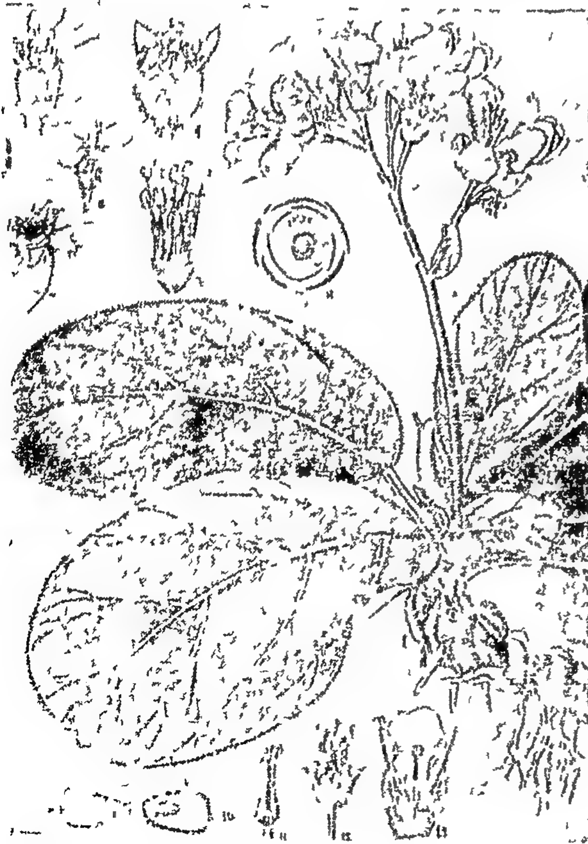
* सु० सू० ३८/८

[०] कादम्बरी—पृ० २६९

पर्याय हैं जो पाषाणो का भेदन कर उत्पन्न होने का विशेष रूप से बोध कराते है।

मूल द्रव्यो के स्थान पर प्रतिनिधि द्रव्यो के स्थानापन्न होने मे रचनात्मक की अपेक्षा उसका गुणकर्मात्मक आधार ही महत्वपूर्ण भाग लेता है। ऐसा भी देखने मे आता है कि मूल द्रव्य की अपेक्षा प्रतिनिधि द्रव्य अधिक कार्यकारी होता है। अध्ययन से यह प्रमाणित हुआ है कि 'केवुक' जो लागली के प्रतिनिधि भूत द्रव्य के रूप मे प्रचलित है उसमे मूल द्रव्य की अपेक्षा अधिक कार्यकारिता है।

ऊचे पार्वत्य प्रदेश मे उत्पन्न होने वाले द्रव्य का सर्वत्र सुलभ न होना भी इसके स्थान पर अन्य प्रतिनिधि द्रव्यो के प्रचलन का एक कारण हो सकता है। इसकी पुष्टि आगे चलकर धन्वन्तरि निघण्टु के वचन से होती है जिसमे पाषाणभेद के गुणो मे मूत्रकृच्छ्र, शिश्नशूल का नाशन तथा वस्तिशोधक लिखा है। इससे स्पष्ट है कि

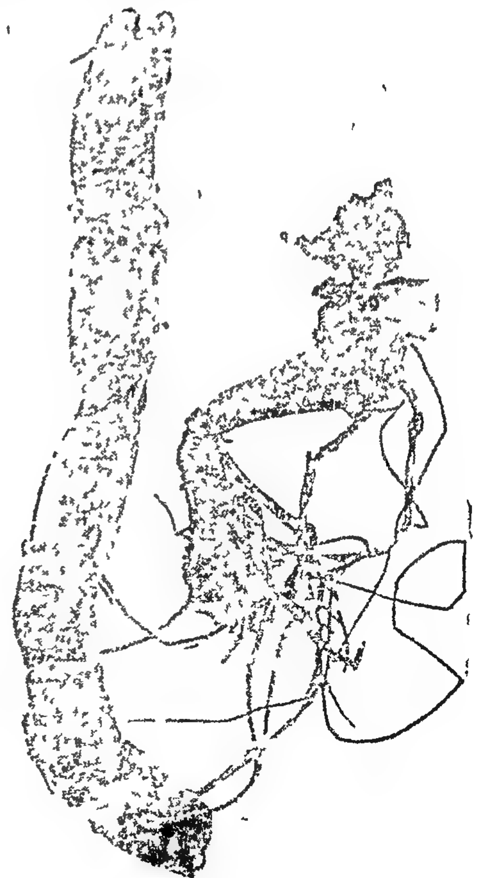


वटपत्री ↑

अश्मरी की चिकित्सा मे चिकित्सकगण केवल पाषाणभेद पर ही निर्भर नही थे। ऐसे अनेक द्रव्य उस काल में प्रचलित रहे होगे। आश्चर्य का विषय है कि अमरकोष मे पाषाणभेद का उल्लेख नही है। अभिधान चिन्तामणि मे भी ऐसा ही है।

संहिताओ के मध्यकालीन प्रसिद्ध टीकाकार चक्रपाणि (११वी शती) और डल्हण (१२ वी शती) ने भी पाषाणभेद के स्वरूप पर कोई प्रकाश नही डाला। निघण्टु शेष (हेमचन्द्र १२ वी शती) मे पाषाण भेद का एक पर्याय चित्रपर्णक है।* इससे स्पष्ट है कि ग्रथकार का अभिप्राय ऐसी वनस्पति से है जिसके पर्ण चित्रित हो। बर्जिनिया लेगुलाटा के पर्ण चित्रित नही होते अत सम्भवत इससे ब्रायोफाइलम का ग्रहण किया जाता है जिसकी पत्तियो मे चित्रित धब्बे होते है।

शोढल निघन्टु (१२ वी शती) मे पाषाणभेद के अतिरिक्त वटपत्री का स्वतत्र वर्णन उपलब्ध होता है। इससे भी स्पष्ट होता है कि बटपत्री का प्रयोग स्वतत्र रूप से चिकित्सा मे होने लगा था यद्यपि यह रक्तस्तम्भन तक ही स्वीकृत था। इसके प्रयोग के आधार पर वटपत्री



पाषाण भेद व मूल ↑

*डा० तिवारी एवं आचार्य शर्मा—शोध प्रबन्ध।

ब्रायोफाइलम प्रतीत होती है जिसे कर्म के अनुसार जख्मेहयात कहते हैं।

राजनिघण्टु (१५ वी शती) मे सर्वप्रथम पाषाणभेद के प्रकारो मे तीन अन्य वनस्पतियो का वर्णन हुआ है। ये तीन वनस्पतियाँ है । १—वटपत्री २- श्वेतशिला ३—चतुष्पत्री ।

वटपत्री के पर्यायो मे 'ऐरावती, श्याम,' आदि शब्द आये हैं। श्वेतशिला का शिलावल्का या श्वेतवल्कला तथा चतुष्पत्री को क्षुद्रपाषाणभेद कहा गया है।

वटपत्री तथा क्षुद्रपाषाणभेद को अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र के अतिरिक्त व्रण मे भी उपयोगी कहा गया है। पाषाणभेद और श्वेतशिला मे इन गुणो का उल्लेख नहीं है। इन चार नामो से किन-किन वनस्पतियो का ग्रहण किया जाय यह स्पष्ट नही होता। पाषाणभेद मे तो सामान्यत बर्जिनिया को ग्रहण किया जाता है। वटपत्री से ब्रायोफाइलम का ग्रहण किया जाता है। वटपत्री से कुछ विद्वान्, (बापालाल और भगीरथ स्वामी) बर्जिनिया का ही ग्रहण करते हैं। क्योकि इसके पत्ते वटपत्र सदृश होते हैं किन्तु ठाकुर बलवन्तसिंह, ,ऐरावती के आधार पर इसे ब्रायोफाइलम कैलिसिनम मानते है क्योकि इसे लोक भाषा मे कही कही ऐरावण या महिरावण नाम दिया गया है।

भगीरथ स्वामी ने भी अन्यत्र वटपत्री को जख्मेहयात माना है। श्वेतशिला या शैलवल्कला या शिलावल्का का अर्थ भगीरथ स्वामी ने किया है कि जिसके सफेद रगदार और ऊपर से छिलके ही छिलके उतरते हैं। किन्तु वस्तुतः ग्रन्थकार का ऐसा अभिप्राय प्रतीत नही होता। यह कोई ऐसी वनस्पति प्रतीत होती है जो पत्थर पर वल्कल के समान चिपकी हो। इसमे शैलेय का ग्रहण किया जा सकता है। (Parmelia Perlata) निघण्टुओ मे इसे अश्मरीनाशन कहा भी गया है।•

यू० सी० दत्त ने हत्याजोडी को पाषाणभेदन (Selaginnela imbricata spring, syn Lycopodium imbicatum Roxb) कहा है।x यह वनस्पति भी पथरीली जगहो मे शिलावल्कलवत् होती है।

चतुष्पत्री से क्या लेना चाहिए यह स्पष्ट नही होता। राजनिघण्टु मे अन्यत्र चतुष्पर्णी क्षुद्राम्लिका या लोणिका का पर्याय दिया गया है। व्यवहार मे चतुष्पत्री एक शाक विशेष है जिसका नाम सुनिषण्णक भी है जिसे लोकभाषा मे चौपतिया (Marsilia Minuta) कहते है।

अधिकाश निघण्टुओ मे सुनिषण्णक शितिवार के पर्याय मे आता है। किन्तु यह उससे भिन्न द्रव्य प्रतीत होता है। शितिवार का मूत्रल के रूप मे प्रयोग मिलता है।* सम्भव है उसके आधार पर सुनिषण्णक या चतुष्पत्री का भी मूत्रकृच्छ्र मे प्रयोग होता है। चतुष्पत्री को व्रण, मूत्रकृच्छ्र एव अश्मरी मे उपयोगी कहा है।

शोढलकृत गद निग्रह मे भी पाषाणभेद के बीजो का प्रयोग हुआ है। सम्भवत यहा पाषाणभेद से सुनिषण्णक या शितिवार का ही अभिप्राय है।

भाव मिश्र ने पाषाणभेद का जो वर्णन किया है उसमे अश्मरी एव मूत्रकृच्छ्र के अतिरिक्त इसे व्रण मे उपयोगी कहा है तथा इसका एक पर्याय भिन्नयोजनी भी दिया है जिससे सधानीय कर्म पर प्रकाश पडता है। सम्भवत इससे ग्रथकार का अभिप्राय ब्रायोफाइलम से ही जिसकी एक सज्ञा जख्मेहयात है जो विशेष रूप से रक्तस्राव, क्षत एव व्रणो मे उपयोगी होता है।

आयुर्वेदविज्ञान (१९ वी शती) मे पाषाणभेद और वटपत्री का पृथक्-पृथक वर्णन किया है। पाषाणभेद के अन्तर्गत कोलियस का चित्र दिया है। इससे पता चलता है कि बगाल मे विशेष कोलियस का ही पाषाणभेद के रूप मे प्रचलन था।

सिद्धभेषजमणिमाला (१९ वी शती) मे भी व्रण मे पाषाणभेद का प्रयोग किया गया है। किन्तु आश्चर्य की बात है कि अश्मरी चिकित्सा मे पाषाणभेद का कोई योग नही दिया गया है। इससे प्रतीत होता है कि सदिग्धता के कारण या अन्य किसी भी कारण से चिकित्सा में इसका प्रयोग कम होने लगा। अश्मरी भेदन कर्म के लिये लोक मे कुलत्थ का विशेष व्यवहार देखने मे आता है।

गुण की दृष्टि से यदि विचार करे तो पाषाणभेद शीतवीर्य कहा गया है। सम्भवत ऐसा शीत पार्वत्य प्रदेश

• शैलेय शीतल हृद्यं कफपित्तहर लघु।
कण्डूकुष्ठाश्मरीदाह · भावप्रकाशनिघण्टु (कर्पूरादिवर्ग)

x यू.सी.दत्त.—ग्लासरी ऑफ इण्डियन प्लान्ट्स पृ ३१४

* तर्केण पिष्ट शितिवारकस्य बीज पिबेत्तृकृच्छ्र विघात हेतो । २१ ।
—गदनिग्रह

मे होने के कारण तथा मूत्रल प्रभाव के द्वारा अनुमान से कहा गया हो। उष्ण द्रव्य भी मूत्रल एव वेदनाहर होते हैं। किन्तु स्वेदजनन कर्म उष्णवीर्य का ही है। गोरखगाजा, मूत्रजनन के साथ स्वेदजनन भी है। इसके गुण अपामार्ग की तरह वतलाये गये हैं जो उष्णवीर्य है। इसके अनुसार यह पाषाणभेद के अन्तर्गत नही आता। यही स्थिति इसकी अन्य प्रजातियो की है। नार्थोसर्वा ब्रेक्टियेटा भी गोरखगाजा के समान ही गुणकर्म मे है। अमानिया ब्रेसिफेरा तो अत्यन्त आग्नेय है। अत. यह भी इसके अन्तर्गत नही आ सकता। कोलियस भी यवानी के सदृश उष्णवीर्य वनस्पति है। अत यह भी पाषाणभेद नही माना जा सकता।

आयरिस प्रजाति जो सोसन या इरसा के नाम से यूनानी मे व्यवहृत हे उष्णताजनन कहा गया है।

वर्वरी तो तुलसी कुल की एक स्वतत्र वनस्पति है जो पाषाणभेद के अन्तर्गत नही आ सकती। इसका वीर्य भी उष्ण है। ब्रिडेलिया रेटुसा की जड एव छाल ग्राही कही गई है और इसकी छाल का सधिशूल मे उपयोग होता है। ग्राही शब्द से यदि स्तम्भन का ग्रहण करें तो शीतवीर्य हो सकता है किन्तु सधिशूल मे लेप प्राय उष्णवीर्य वाले द्रव्यो का करते हैं। होमोनिया राइपेरिया के गुणधर्म का निरुपण करना कठिन है। इस प्रकार शीतवीर्य की दृष्टि से स्पष्ट रूप से निम्नांकित वनस्पतिया सामने आती हैं—

१—बर्जिनिया लेगुलाटा

२—डिडिमोकार्पस पेडिसिलाटा

३—ब्रायोफाइलम कैलिसिनम

उपर्युक्त दोनो वनस्पतिया शीत पार्वत्य प्रदेश मे होती है और तीसरी रक्तस्तम्भक एव सधानीय है जो शीतवीर्य का कर्म है।

गुणकर्मात्मक अध्ययन के आधार पर गोरखगाजा, वर्जिनिया लेगुलाटा, और ब्रायोफाइलम मे क्रमश. अश्मरीभेदन, मूत्रल तथा वातप्रागुण्यकर कर्म सर्वाधिक पाये गये। किन्तु शेष दो द्रव्य कोलियस एव अमानिया वैसिफेरा का कोई उल्लेखनीय प्रभाव दृष्टिगोचर नही हुआ।

उपर्युक्त तीनो कर्मो की दृष्टि से यदि विचार करे तो इन तीनो मे भी गोरखगाजा सर्वोत्तम प्रतीत होता है। क्योकि अश्मरीभेदन की शक्ति तो उसमे सर्वाधिक है ही, इसके अतिरिक्त उसमे मूत्रल एव वातप्रागुण्यकर शक्ति भी साख्यिकीय दृष्टि से उल्लेखनीय हे। वर्जिनिया मे यद्यपि मूत्रविरेचनीय कर्म सर्वाधिक हे किन्तु अश्मरीभेदन तथा वात-प्रागुण्यकर कर्म नही है। इसी प्रकार ब्रायोफाइलम मे यद्यपि वात-प्रागुण्यकर क्रिया सर्वाधिक हे किन्तु अश्मरीभेदन तथा मूत्रल कर्म अपेक्षाकृत कर्म हैं। अत गुणकर्मात्मक अध्ययन* के आधार पर गोरखगाजा मे पाषाणभेद के समस्त गुण कर्म मिलते है।

गोरखगाजा का प्रयोग भी देश के विभिन्न भागो मे पाषाणभेद के नाम से चिरकाल से होता आ रहा है। जयपुर के अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन के अधिवेशन (१९२५) के अवसर पर इसके नमूने पाषाणभेद के रूप मे प्रदर्शित किये गये थे। दक्षिण भारत मे भी इसका चिकित्सा मे प्रभूत उपयोग होता है। सदिग्ध द्रव्य निर्णय समिति की जो बैठक मद्रास मे हुई थी उसमे वहाँ के मूर्धन्य विद्वान आयुर्वेदीय चिकित्सको ने गोरखगाजा को ही पाषाणभेद वतलाया था। उनका कथन था कि पाषाण भेद रचनात्मक सज्ञा न होकर कर्मात्मक सज्ञा है और अनुभव के आधार पर गोरखगाजा मे पाषाणभेदन कर्म सर्वाधिक मिलता हे अत इसे ही पाषाणभेद मानना चाहिए।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरण एव अध्ययन के आधार पर गोरखगाजा-(एर्वा लेनाटा) अश्मरीभेदन, मूत्रल, एव वातसशमन तीनो कर्म प्राप्त होते है। बर्जीनिया मे यद्यपि मूत्रविरेचनीय कर्म अधिक हे तथापि अश्मरीभेदन कर्म अपेक्षाकृत कम है। गुणो की दृष्टि से गोरखगाजा उष्णवीर्य तथा वर्जीनिया शीतवीर्य प्रतीत होता है। कर्म की प्रधानता की दृष्टि से विचार करने पर पाषाणभेद से गोरखगाजा (एर्वा लेनाटा) का ग्रहण करना चाहिए।

*ओझा एवं शर्मा—पाषाणभेद के कतिपय प्रतिनिधि द्रव्यो का अध्ययन-शोध प्रबन्ध (१९७१)

दारुहल्दी संदिग्धत्व विमर्श

—आचार्य श्री वल्लभराम जी वनस्पति शास्त्री, नित्यानन्द आश्रम, आढव, अहमदाबाद ।

चरक सुश्रुतादि के समय मे तो गुरु के उपदेश और प्रत्यक्ष दर्शन से वैद्य लोग वनस्पतियो को पहिचानते थे।

वैद्यो के अलावा उस काल के जगल निवासी एव भेडिया आदि भी वनस्पतियो को पहिचानते थे, ऐसा चरक संहिता मे लिखा है, तथाहि—

औषधी नीमरूपाभ्याम् जानतेह्यजया वने ।
अविपाश्चैव गोपाश्च ये चान्ये वनवासिन ॥सू १०॥

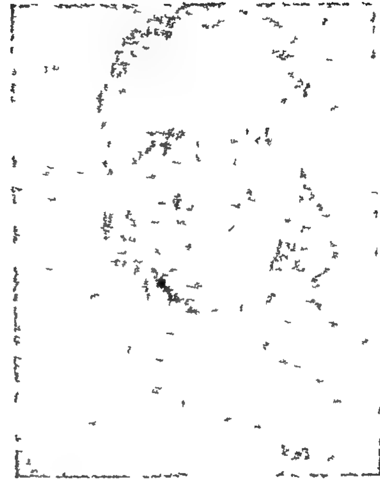
समय पाकर प्रत्यक्ष ज्ञान कम हो गया, निघण्टु आदि मे कुछ नाम वनस्पति परिचायक आने लगे, और संहिताओ के प्राचीन टीकाकारो ने भी यथाशक्ति परिचय दिया। इस प्रकार उस समय मे वनस्पति परिचय दो तरह से होता था ऐसा कह सकते है—

(१) परिचायक नाम और रूप से, जैसे चक्रिका, वत्सादनी इ ।

(२) व्यावहारकत्व नाम से, जैसे, गुडूची, अमृता-इ

काल पाकर संहिताओ का एव निघण्टुओ का भी भी पठन-पाठन नष्ट होता चला, जगल के भेडिये, गोप, अजपाल, और अन्य वनवासियो मे भी वनस्पतियो का अज्ञान फैल गया। इसलिए चरक सुश्रुत आदि के समय की कई औषधियाँ संदिग्ध हो गई और कई औषधियाँ अष्टवर्ग की तरह बिल्कुल अज्ञात हो गईं। अत कौन सी चीज असली है, उसका हेतु पुरःसर विचार करने का समय आ गया।

दारुहल्दी जिसका इस लेख मे विचार करेगे और



जिसका उपयोग संहिता काल से लेकर पं० भावमिश्र तक अच्छी तरह से होता रहा, वह भी बाजार मे नकली मिलने लग गये है।

स्व० भगीरथ स्वामी, स्व० यादव जी महाराज प्रभृति पूर्वाचार्यो ने एव अद्यतन आचार्यो ने भी, दारुहल्दी के विषय मे यद्यपि निर्णय करने का यत्न किया है, तथापि उनमे भी परस्पर मतभेद दिखाई देता है, वह आगे जाकर देखेगे, बाजार मे आजकल दो नकली चीजें दारुहल्दी के नाम से मिलती है।

प्रायश वही चीज वैद्य लोग पसारियो से लेते हैं, क्योकि आजकल वैद्यो के वनस्पति गुरू पसारी ही है। पहिले तो वे चीज क्या है वह बताते है।

इस लेख के लेखक वनस्पति शास्त्र के पारङ्गत विद्वान आचार्य श्री वल्लभ राम जी वनस्पति शास्त्री हैं। आचार्य जो इस समय नित्यानन्द योग वेदाताश्रम के संचालक हैं। आप अच्छे सङ्गीतज्ञ और योग व वेदांत के विचारक हैं। सम्प्रति आपका मनन योग शास्त्र के ऊपर चल रहा है। अभी आपने पातञ्जलि के योग के व्यास-भाष्य पर हिंदी टीका पूरी की है और इसका इङ्गलिश अनुवाद भी कर रहे है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। पाठक श्री आचार्य जी के लेख को ध्यान पूर्ववत् पढ़ें। —सम्पादक

(१) Coscinium Fenestratum हि॰ दारुहल्द ।

(२) Argyrea Speciosa समुद्र शोष, विधायरा ।

(१) इसमे प्रथम न० की चीज "कोसीमियम फेनेस्ट्राटम" बहुत बडी बल्ली (Climber) है, वह गुडूची वर्ग की (Menispermaceae) वनस्पति है, अथवा इसको चक्रिका वर्ग की कहना चाहिये, क्योंकि सारे ही वर्ग मे कोई भी वनस्पति को काटने से चक्राकार दिखाई देता है ।

(२) दूसरे न० की चीज "आर्जीरिया स्पेसिओजा" है, वह भी बडे पान वाली बहुत बडी वल्ली है । (Convolute corrola) अर्थात् एक दूसरे के साथ चिपके हुए आभ्यन्तर पुष्प कोष के पर से इसके वर्ग का नाम भी Convolvulaceae पडा है । इस वर्ग मे सभी औषधिया वैसी ही फूलो वाली होती है । इनमे भी कई औषधिया आयुर्वेद शास्त्र मे उपयुक्त हैं ।

अब यह दोनो चीज दारुहल्दी नही हैं यह निष्कर्ष हुआ, विद्वान नूतन वनस्पति शास्त्रियो का यह विषय नही है कि वे लोग सदिग्ध चीजो का निर्णय करें, सच्चा वनस्पति शास्त्र का नाम क्या है ? वह उनका विषय है, और वह नाम–सारी दुनिया में एक ही होता है । अत उसको अन्तर्राष्ट्रीय नाम भी (International) कहते हैं, इसलिये कर्नल ओझा, कीर्तिकर बसु, कूरू, ठूकर आदि वनस्पति वैज्ञानिक लोग, जिस देश मे जो स्थानिक नाम वहा के लोग बोलते हैं वही लिख देते है, इसलिए सदिग्ध द्रव्य के निर्णय के लिए उनके नाम निरुपयोगी हैं ।

इसलिए सच्ची चीज की खोज के लिये प्राचीन सहितायें, उनकी प्राचीन सस्कृत टीकायें तथा निघण्टुओ की सहायता से प्रयत्न करते हैं ।

पहिले चरक सहिता को देखते है–सूत्रस्थान के दूसरे अध्याय मे ही दोनो हरिद्राओ के दर्शन "हरिद्रे" शब्द से होता है, तदनन्तर "दार्वी" शब्द भी मिलता है । दार्वी शब्द का अर्थ दारु याने काष्ट जैसा भी हो सकता है, व्याकरण के फिट्सूत्र की सहायता से यह शब्द और अर्थ बन सकते हैं ।

'दशेमानि' सू अ-४ मे दारु हल्दी का उपयोग, अर्शोघ्न, कण्डूघ्न, लेखनीय कहा है । तदनतर अतिसार, और ग्रहणी चिकित्सा मे दोनो हल्दी का साथ उपयोग किया है, एव रसाजन का भी प्रयोग लिखा है । इसके अलावा चरक मे अनेक व्याधियो मे दारुहरिद्रा का प्रयोग लिखा है ।

अब सुश्रुत सहिता को देखें—

सूत्र स्थान अ. ३८ मे दारु हरिद्रा, और हरिद्रा का आमातिसार मे उपयोग कहा है । ३८/३८ ।

चिकित्सा स्थान मे भी दारु हल्दी के दर्शन अनेक व्याधियो मे होते ह, उत्तर तन्त्र मे सबसे ज्यादा उपयोग देखने मे आता है, कटकटेरी नाम (उ-अ-१२) भी देखने मे आता है । आचार्य डल्हण ने स्पष्ट लिखा है कि 'कटकटेरी दारु हरिद्रा" । ऐसा होने पर भी डल्हण जी ने 'कालीयकम्" शब्द के तीन जगह पर तीन अर्थ किए है, तथाहि–कल्पस्थान अ १ मे दारु हरिद्रा, उत्तरतन्त्र अ. ४५ मे—दारु हरिद्राऽनुकारि द्रव्यम् और सूत्र अ-३८ मे मलेन्द्री—चन्दनम् ऐसा लिखा हे ।

उत्तर तत्र अ. १९ और ४० मे दार्वी शब्द का अर्थ "दारु हरिद्रा" लिखते है, और चिकि० अ. २८ मे दार्वी का अर्थ "दारु हस्तक" लिखते है ।

चक्रदत्त की पुस्तक मे पृ. २८३ पर कालीयकम् का अर्थ "कलवक" लिखा है ।

अष्टांग हृदय, अष्टाग सग्रह दोनो मे भी वही बात है, क्योकि दोनो चरक सुश्रुत के सग्रहरूप है ।

सहिताओ के पश्चात् निघण्टुओ मे कुछ और नाम बढ गये, कालीयकम् का कालीयक भी हो गया । देखो "भा०प्र० निघण्टु" "पचपचीनाम अमर कोश मे भी आ गया, भाव मिश्र जी ने १३ नाम दारु हरिद्रा के लिखे है । अभिधान मजरीने दो नाम अधिक कहे है । "पलपचा" और "हेमपलाशिका" ।

"कंटकटेरीति मलंपचाऽन्या कालेयकम् हेमपलाशिका स्यात् ।। पृ. ७९ ।।

अब इनमे से कतिपय व्याधिहारक और वनस्पति-परिचायक नामो पर विचार करते है—

पर्जन्या—पर्जनी (भा०मि०), वर्षाऋतु मे होने वाली ऐसा अर्थ वैयाकरण बल से निकल सकता हे,और गरुपालकी कि मोरा वर्षा मे ही होती हे जिसको अद्यतन आयुर्वेदाचार्य दारू हल्दी कहते हैं ।

कट कटेरी—इसकी व्याख्या यद्यपि कई जगह व्याधि

हारक की गई है तथापि कटकमय क्षुप होने से, कटक के आवरण वाली ऐसा अर्थ भी वैयाकरण बल से निकल सकता है। भू आदि गण का "कटे" धातु वर्षा और आवरण अर्थ मे कहा है और वर्षा के आवरण मे भी यह क्षुप उदित होता है। सच्ची दारु हल्दी को कटक होते है ऐसा नूतन आचार्य मानते हैं।

पचपचा—पलपचा-अत्यर्थं पचतीति पचपचापलम् मासम् नमयि पचनीति। यह वनस्पति खूब पाचन करने वाली तो बृहत्रयी में भी कही है, अ मातिसार, प्रवाहिका, विपूचिका आदि में इसका उपयोग सुश्रुत में लिखा है।

हेमपलाशिका—होम -पलम् तस्य अ शद्व अ श यस्या सा "हेमपलाशिका" अर्थात् आद्यन्त सुवर्ण जैसे पीत वर्ण वाली।

प० भावमिश्र-(१५ वी सदी) ने भी अपनी पुस्तक भाव प्रकाश में करीव २० व्याधिओ में दारू हल्दी के उपयोग लिखे है, उसमें सुश्रुत जी का विपूचिका वाला अञ्जन प्रयोग भी जठराग्नि विकार चिकि भूले नहीं हैं किंतु वास्तविक पहिचान में कुछ उसके समय से ही गड-वडी देखने में आती है। क्योकि आम्रगंधि हरिद्रा का नाम भी प० भाव मिश्र ने दार्वी लिखकर दार्वी भेद भी उसको कहा है और उसकी पहिचान के विषय में भी जो भाव मिश्र जी लिखते हैं वैसा यह अद्यतन आचार्यों का Berberis Aristata "वर्र्बेरिज एरिस्टाटा" क्षुप नही है, क्योकि न तो उसके पत्र कुटज जैसे है, और न तो वह क्षीरिणी है, और अ कोल के समान भी वह नही हो सकती।

मालूम होता है कि एक ही शब्द के अनेक नामो की प्रणाली जब से चली तब से वनस्पति को वास्तविक पहिचानने मे गटबडी चली आती है,और वह तो डल्हण, चक्रदत्त आदि के समय में भी थी, वह उनकी टीकाये देखने से मालूम होता है, किन्तु धन्वतरीय निघन्टु, राज निघन्टु, तदनन्तर भा० प्र० निघन्टु वगैरह तक तो यह प्रथा विशेष हो गई, यहा तक कि "विजया" शब्द सात वनस्पतियो को वताता है।

अब इस गडवड का एक ही उपाय है कि वैद्यो को ''''' वनस्पति शास्त्र (Botany) के पहिचान विभाग (Systmetic Botany) का अभ्यास करना होगा, और आयुर्वेद के कोर्स मे भी उसको (Botany) रखना होगा, अन्यथा गाडी क्या ? सब लोग वैद्यो के गुरु बन बैठेंगे।

अब तक जो विचार किया उसका निष्कर्ष ऐसा हुआ कि पं भगीरथ जी, यादव जी महाराज और अब तक अन्य आचार्यो ने जो (Berberis) वरवेरिज कुटुम्ब की औषधी को "दारु हल्दी" माना है यह ठीक है, किन्तु आचार्यो मे भी मतभेद है, कोई एरिस्टाटा (Aristata) जाति को तो कोई एसियाटिका (Asciatica) जाति को दारुहल्दी लिखते हैं। इसका भी निराकरण करना चाहिये, क्योकि यह दोनो औषधिया एक ही कुटुम्ब की हैं तथापि जाति से भिन्न-भिन्न हैं।

नूतन बॉटेनीस्टो ने तो आगे कहा गया है वैसे केवल बॉटेनिकल नामो पर पूरा ध्यान दिया है, किन्तु--देशीय नामो मे तो इतनी गडवड़ी की है कि अनेक औषधिया जो कि दारु हल्दी नही हैं उनका भी नाम दारुहल्दी लिखा है।

अब शेष रही दो जातिया—उसमे से निर्णय किया जाय वही ठीक होगा, आंतर तत्व तो दोनो में वर्वेरिन् (Berberin) है और वह भी शायद समान है, फिर भी प्रथम नवर ' एरिस्टाटा" जाति को इसलिये दिया जाय कि वह विशेष नूतन है।

वर्वेरिन् कुटुम्ब की Lycium आदि ८-१० और भी जातिया है, उसमे भी वर्वेरिन् सत्व थोडा ज्यादा है इसलिये ये भी दारुहल्दी की प्रतिनिधि औषधिया हो सकती हैं, किन्तु एक कठिनाई और होगी कि एरिस्टाटा असली वाजार मे कैसे मिलेगी यह प्रवन्ध वैद्यो को करना होगा।

व्यक्तिगत वैद्य तो क्या कर सकता है ? यह काम तो यूनीवर्सिटी या फार्मेसी सस्थाए कर सकती हैं किन्तु यूनी-वर्सिटी मे कुर्सियों की खटपट और फार्मेसियों मे वहुधा स्वार्थ चल रहा है। कई चीजो का निर्णय करने को है। विद्वत् वनस्पति सभाषा परिषदे वार-वार होनी चाहिये, तभी औषधियो का निर्णय हो सकता है। किन्तु हिमालय के जगलो मे जाकर कौन वैद्य वनस्पति सग्रह करेगा ? और प्रत्यक्ष ज्ञान देगा ? कोई विरल वैद्य देगा भी तो लेने वाला कौन है ?

क्या राजकीय कुर्सिया छोडकर वैद्य लोग जगल मे

फिरने लगेंगे ? या ऐसे विद्वान वैद्यो को अग्र स्थान देकर सहायता करेंगे।

जो कुछ भी हो किन्तु अद्यतन सिस्टमेटिक बॉटनी के अभ्यास और अनुभव के विना सच्ची औषधियो को मिलाना खेल नही है। अस्तु—

जो दो जातियो को दारुहल्दी करके माना है उनके पूरे वनस्पति शास्त्रीय नाम ये हैं —

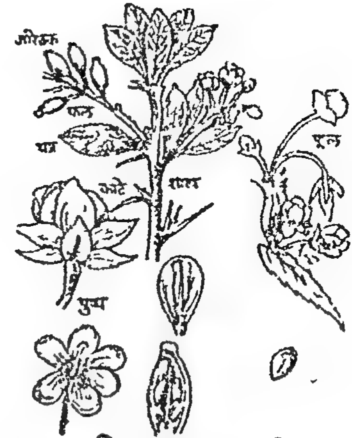
१. वर्वेरिज एरिस्टाटा (डी. सी.)

२. वर्वेरिज् एसियाटिका (रोक्स वर्ग)

इनके पूरे लक्षण तो हूकर का फ्लोरा या कीर्तिकर वसु आदि वनस्पति शास्त्रो से जानना चाहिये। विस्तार भय और वॉटेनिस्टो के अलावा किसी को उपयोगी न होने से यहाँ पर नही लिखने हैं।

तथापि सामान्य लक्षण लिखते हैं, जो सभी वर्वेरिज कुटुम्ब की जातियो मे मिलता जुलता है जिससे घुमक्कड वैद्य सच्ची चीज खोज सकते हैं।

दारू हरिद्रा–किगोरा–किगरोल–हिमालय के ४ से ८ हजार फीट की ऊंचाई वाले शिखरो मे यह होती है। इसका क्षुप होता है उसके कटक तीव्र होते हैं। वर्षाऋतु मे उदित होती है। और शरदान्त मे तो उसके खट्टे मीठे फल भी लडके लोग खाने लगते हैं। फलो को यूनानी लोग "ऍरिष्क" कहते है। पत्र छोटे-छोटे दाते वाले लव गोल और रंग मे गाढ नील होते हैं। सन् १९४० मे हिमालय मे गढवाल के कानाताल विभाग मे (८००० फीट) फिरते



दारु हरिद्रा (दारूहल्दी)
BERBERIS ASIATICA ROXB

हुये इस लेखक को इसके प्रत्यक्ष दर्शन हुये थे और उसका नमूना (Specimen) भी लिया हुआ था। इसकी सब जातियो को देहाती लोग "किंगोरा" या किंगरोज"कहते है। इसलिये उपरोक्त जातियो को पहिचानने के लिये वॉटनी ही उपाध्याय है। सभी जातियो की शाखाए काटने से पीला रग निकलता है।

इस दारु हल्दी मे से जो "वर्बेरिन्" नामक सत्व निकलता है उसकी टिकिया बाजार में केमिस्टो के यहाँ उपलब्ध हैं। कालरा, पेचिश, ग्रहणी विकार आदि मे अकसीर काम करती हैं और बाह्य लेपादि मे कई प्रकार के त्वक्‌दोषो को दूर करती है। अपने चरक सुश्रुतादि मुनियो ने तो हजारो साल के पहिले दारु हल्दी का यह उपयोग किया और बतलाया भी है।

अम्लवेतस

निम्बूकादि वर्ग

(Acidozyfolia N.O -Rulaceae)

अम्लवेतस—एक सदिग्ध द्रव्य है और इसको स्थानीय प्रचलन के प्रचारको ने और सदिग्ध द्रव्य बना दिया है। इसके नाम पर निम्न द्रव्य लिये जाते है—

व्यवहार—चरक ने भेदनीय, दीपनीय, हृद्य, श्वासहर, अम्लवर्ग, फलवर्ग मे पाठ किया है। (च० सू० अ० २७—१५१-१५३-१६१ पृष्ठ पर) सुश्रुत ने अम्ल स्कन्ध वर्ग व अष्टाग हृदयकार अम्ल स्कध मे पाठ करते हे। सु सू. अ. ४२-११। अ. हृ—सु. अ १०-२५। भावप्रकाश-आम्रादि फलवर्ग। धन्वन्तरि नि०-पिप्पल्यादि वर्ग। राजनिघण्टु-पिप्पल्यादि वर्ग।

ऊपर के विवरण से जो शास्त्रीय आधार प्राप्त होते है उनसे स्पष्ट है कि अम्लवेतस-फलवर्ग का एक फल है। रस मे अत्यम्ल होता और अग्निदीपन, भेदन, हृद्य, कर्मकारक, श्वासहर है। तीव्रपाचक भेदक गुल्म व उदर रोगनाशक है। अत जो द्रव्य ग्रहण किया जाय उसमे यह गुण होना चाहिए।

जो द्रव्य लिए जाते हैं-प्रयुक्त होते है और जिन्हे ग्रन्थकार लिखते हैं वह निम्न हैं—

१. अम्लवेतस-गार्सिनिया पेडकुलाटा (Garcenia Pedunculata) श्री बापालाल जी

२ अम्लवेतस-गार्सिनिया इण्डिका II Chois

३ अम्लवेतस-रुमेक्स वैसिकैरियस-चूका पालग (खट्टी पालक) नादकरणी—डा० उदयचन्द्र

४. अम्लवेतस—रुमेक्स क्रिसपस लिन-खट्टा शाक नादकरणी

५. अम्लवेतस-रघूम इमोडी (Rheum Emody wall) रवेदचीनी-नादकरणी

६ अम्लवेतस-गार्सिनिया परप्यूरिया-वृक्षाम्ल

७. अम्लवेतस-गार्सिनिया जैथो काइमस हूक-भव्य, चालता, बगाली। गार्सिनिया टिंकयेरिया ह्यूम-डा० नर्त

८. अम्लवेतस-सिट्रल टेकुमेता—गलगल-डा० वामन गणेश, श्री यादव जी व प्रियव्रत शर्मा

९. अम्लवेतस-एसिडो जाइफोलिया-चकोतरा

बाजार मे पसारियो व व्यापारियो द्वारा प्रचलित द्रव्य—

१-रेंवद चीनी की गुथी हुई डालिया २-थैकल की कटी हुई फलियाँ (कोकम) ३-कोकम की दूसरी जाति के फल के टुकडे ४-भव्य फल (चालना) के कटे हुए टुकडे। इनमे से किसे असली माना जाय किसे नकली यह विचारणीय विषय है।

१. नादकरणी ने Indian Materia Medica पृष्ठ १०७९ पर अम्लवेतस (Amalvedas) यह नाम एक प्रकार के शाक के लिए दिया हे जिसका नाम "चूका" है

(१) (i) Rumex crespus Linn

(ii) Rumex vesicareus Linn है (चूका-पालग है) N O Polygonaceae है।

English-(i) Yellow Dock (ii) Sour Dock (iii) Bladder Dock

(२) Rheum Emody Wall

इसको भी अम्लवेतस कहा है। इसके कई नाम हे—

१—R. officinale

२—R. Acuminalum

३—R. Speceforme

४—R Webbianum.

५—R. Moor Croftianum

६—R. Ausrate.

हिन्दी नाम—रेवन्द चीनी है।

इगलिश—Himalyan Rhubarb

(३) डा० वामन गणेश देसाई

औषधि सग्रह-Citrus गलगल नीबू की खट्टी जाति

Garcinia Pedenceculata (यह बगालियो का थैकल है)

(४) द्रव्य गुण श्री यादव जी—

जम्बीर सदृग—नीबू का फल है।

(५) द्रव्य गुण—प्रियव्रत—

Citrus Decumana.

१—आदर्श निघण्टु—

वापालाल शाह—Rumex Vasicarues (Polygonaceae) चूकपालग

२—यूनानी—थैकल

(Garcenia Penduculata Rox)

N O—Guttifereae.

३—डा० उदयचन्द—

चुक्र—के उल्लेख मे अम्लवेतस लिखा है।

४—वृक्षाम्ल—Garcinia Indica

G. Purpurea Rox.

५—भव्य, चालता—

(i) Garcenia Xanthochymous Hook

(ii) Xanthochymous Pictonous Rox.

(iii) Garcenia Tinctoria Dum

६—डा० नर्त ने लिखा है कि वास्तुक वर्ग Polyonaceae वर्ग की सैकडो जातिया समुद्र के किनारे से ऊचे पर्वत तक फैली हैं, इनमे कौनसी अम्लवेत है कहना कठिन है। डा० नर्त ने R. Vasecarious को समझकर लिखा है जो चूकापालग है। या खट्टी लोणिका के रूप को समझकर लिखा है।

I. Indian Medicinal plant

पृष्ठ—२१०७ तृतीय खण्ड,

सस्कृत नाम—गन्धचीनी, पीता, पीति भूतिका, रेवन्द चीनी।

हिन्दी—धोलू, हिन्दी रेवन्द चीनी

नोट—इसने अम्लवेत नही लिखा है।

II Rumex Vesecarius Linn

पृष्ठ—२११४ न ४

अरबी—हम्माज

बगला—चूका, चूकपालग

सस्कृत—अम्ला, अम्लभेदक, अम्लनायक, अम्लाकुश, अम्लसार, अम्लवेतस, भेदन, भेदी, भीमाबोधी, चुक्रा, गुल्महा, गुल्मकेतु, महाक्षार, मासद्रवी फलाम्ल, राजाम्ल, रक्तसार, रसाम्ल, सहस्रजित, सहस्रवेधी, शखद्रावी, शतवेधी, वरभिदा, नारगी, भेदक, वेतसाम्ल, वीराम्ल।

उर्दू, तेलगू, बगाली, दक्षिण, हिन्दी, पस्तो—चूका, चोक, चूकपालग।

भारतीय वनौषधि

Rumex Vasecareus Linn

पृ०—४५७ चूक पालग

अम्लवेतस-निघण्टु संग्रह—

अम्लोऽम्लवेतसो भीमो रसालो विड्वेतस।
फलाम्लोगुल्महा हृद्यः शतवेधी च भेदक ॥
अस्थि द्रावी महाक्षारो वेतसाम्लोऽथ शूलनुत ॥

अम्लवेतस

पर्याय—

अम्लोऽम्लवेतसो द्रावी वेधी रसाम्लो वीरवेतस।
वेतसाम्लश्चाम्लसार. शतवेधी च वेधक ॥
भीमश्च भेदनो भेदी राजाम्लश्चाम्ल भेदन.।
अम्लाकुशो रक्तसार फलाम्लश्चाम्लनायकः ॥
सहस्त्रवेधी वीराम्लो गुल्मकेतुर्वराऽक्षिधा।
शख मासादि द्रावस्यात् द्विधाचैवाम्लवेतस ॥
अम्लवेतसमत्यम्ल कषायोष्ण च वातजित।
कफार्शः श्रम गुल्मघ्नमरोचकहर परम् ॥

—रा. नि.

"अम्लवेतसहति भोट देशे गौडे च प्रसिद्धम्
हिं०—आमलतास—थैकल इति
देशान्तरे प्रसिद्ध. इति चक्रदत्तः ॥

भेद—अम्लवेतस के दो भेद होते है—

(१) शखद्रावी

(२) मासादि द्रावी

अम्लवेत का शास्त्रीयगण

राज नि०	ध. नि	भा. प्र	अमर	म. पा.	कैयदेव
अम्ल	अम्ल	—	—	+	
अम्लवेतस.	+	+	+	+	
वेधी	—	—			
रसाम्ल	+	—			
वीरवेतस	+	—			
वेतसाम्ल	+	—		वेतस	
अम्लसार	—	—			
शतवेधी	+	+	+		शतभेदी
वेधक.	—	—			
भीम	+	—			सहस्रनुत
भेदनः	भेदक	—		शतभेदन	भेदक
भेदी	—	—			
राजाम्ल	—	—			
अम्लभेदन	—	—			मासारि'
अम्लाकुश	—	—			द्रावी
रक्तसारः	रक्तस्रावी	—			
फलाम्ल	—	—			
अम्लनायक.	—	—			
शहस्रवेधी	—	शहस्रनुत	+		
वीराम्ल	—	—			
गुल्मकेतु	—	—			चुक्रकेतुश्च
	—	चुक्रम्	+	+	चुक्रक
१—शखद्रावी २—मांसद्रावी (शखमासादि द्रावी स्याद्विधा—चैवाम्लवेतस)					

"भ्रम का कारण पर्यायो का साम्य होना है।"

यथा— यह पर्याय 'चुक्र' विशेष रूप मे भ्रम का हेतु है।

अम्लवेतसः—

(१) स्यादम्ल वेतसश्चुक्रं शत वेधी सहस्रनुत।
अम्लवेतसमत्यम्ल भेदन लघु दीपनम्।
—भाव प्रकाश फल वर्ग

(२) चुक्रिका —
चुन्द्रिका स्यात्तु पत्राम्ला रोचिनी शत वेविनी।
चुक्रात्वम्ल तरा स्वाद्वी-वातघ्नी कफपित्त कृत्॥
—शाक वर्ग भा० प्र०

(३) चागेरी —
चागेरी चुक्रिकादन्तशठाम्बष्ठाम्ल लोणिका।
अम्मन्तकस्तु शफरी—कुशली चाम्ल पत्रक।—भा व.
चागेरीत्वम्लिका चुक्रा क्षुद्राम्लिका चतुष्छदा।
—म पा

(४) (१) वृक्षाम्ल —
वृक्षाम्लंतिंतिडीक च चुक्र स्यादम्ल वृक्षकम्। भा. व.

(२) वृक्षाम्ल तितिडीक शाकाम्लं रक्तपूरकम्।
अम्लयुक्तोऽम्ल शाख स्यादपरोऽम्ल महीसरः॥
—ध. नि. शतपुष्पादि

(३) वृक्षाम्लमम्ल शाकं स्याच्चुक्राम्ल तिन्तिड़ीफलम्।
शाकाम्लमम्लपूर च पूराम्ल रक्तपूरकम्।
चूडाम्ल वीजाम्ल फलाम्लक स्यादम्लादि।
वृक्षाम्ल फल रमाम्लम्।
श्रेष्ठाम्लमत्यम्लमथाम्ल वीज।
फल च चुक्रादि गजेन्द्र सत्यम्॥

(५) नीबू की जाति का होने से जम्वीर-मातुलुंग की जाति का होना चाहिए। मातुलग व जम्वीर नही क्योंकि

इनके पाठ अलग-अलग हैं—जम्बीर व मातुलुंग होना सम्भव नहीं है।

चुक्र—चुक्रन्तु चुक्र वास्तूक लिकुच चाम्ल वास्तुकम्।
दलाम्लमम्ल शाकाख्यमम्लादि हिलमोचिका ॥
—रा. नि.

अम्लवेतस के गुण

ध. नि	रा नि.	भा. प्र	रा. वल्ल.	चरक
रस—कषाय कटु	अत्यम्ल कषाय	अत्यम्ल	अत्यम्लम्	
गुण-रूक्ष		+		
उष्ण	उष्ण			
		लघु	+	
		दीपन	—	
		भेदन	+	+
तृट				
कफ	+	+ विध्वंसी	+	+
अनिल	वातजित	+	+	+
जन्तु				
अर्श	+			
हृद्‌बाधा		+		
अश्मरी				
गुल्म	+	+		
	श्रमघ्न	शूल	+—	+
	अरोचकहरपरम्	+ पित्तल		+
		लोमहर्षण		
		विण्मूत्रदोषघ्नम्		विबन्ध
		प्लीह		मन्देऽग्नौ
		उदावर्त्त		मद्यविप्लव
		हिक्का		
		आनाहघ्न		+
		श्वासकासघ्न	+	
		अजीर्णघ्न	ग्राहि	+
		वमीवृणुत		वमि
		छागमांसद्रवत्वकृत्		वर्चोगद
		लोहसूची द्रवत्वकृत्		

सुश्रुत-अम्ल वर्ग में वेत फल-लकुचाम्ल वेतस, दन्तशठ।

परिचय—गदनिग्रह औषधि कल्प में अम्लवेतस कल्प

हिमवत् परमावोस दिव्यौषधि समायुते।
गवर्व यक्षाध्युपिते नाना धातु विचित्रिते ॥
विश्वमृड् भगवास्तत्र मार्तण्ड भास्कर किल।
भ्रममारोपयामास रूपहेतो कदाचन ॥
कृतवाम् कनक प्रख्य रूप जनमनोहरम्।
विरूप शकलास्तेभ्यो ये पेतुर्गिरिमूर्धनि ॥
तेभ्यस्तेजस्विनो जाता वेतसा नाम पादपाः।
नहितेषु विलीयन्ते पतगा न सरीसृपा. ॥
तेषां फलेभ्यो निर्यास सोऽम्लत्वादम्लवेतस ।
कषाय कटु रूक्षश्च मधुजम्बीर समप्रभ ॥
भस्मतस्तत्परीक्षासु स्फुट चटचटायते।
पाषाणमथ काष्ठ वा लोहं वा एवमेव च ॥
भिनत्येष महातेजा न तुमिन्द्यादलाबुकम्।
तस्मादलाबु प्रचुर तस्य भाजनमिष्यते ॥

गुणाः—

१—कषाय कटु रूक्षणोष्ण अम्ल वेतसक विदु।
तृट् कफानिल जन्त्वर्शो हृद्‌बाधाश्मरी गुल्मजित ॥
—ध. नि.

२–अम्लवेतसमत्यम्ल कषायोष्ण च वातजित ।
कफार्श श्रम गुल्मघ्नमरोचकहर परम् ।। -रा.नि.
३–अम्लवेतसमत्यम्ल आनाह कफ वातजित् ।
तदेवसिद्ध दोषघ्न श्रमघ्नग्राहि गुर्वपि ।।
—राज वल्लभ
४–अम्लवेतसमत्यम्ल भेदनम् लघु दीपनम् ।
हृद्रोग शूल गुल्मघ्न पित्तल लोमहर्षणम् ।।
रूक्ष विण्मूत्र दोषघ्न प्लीहोदावर्त नाशनम् ।
हिक्कानाहरुचिश्वास कासाजीर्ण वमि प्रणुत् ।।
कफ वातामयध्वंसि छागमास द्रवत्व कृत ।
चणकाम्ल गुण ज्ञेय लोह सूची द्रवत्व कृत ।।
——भा प्र

५—चरक—
अम्लिकाया फलं पक्व तसतदल्पान्तर गुणैः । १५१
गुणै स्तैरेव सयुक्त भेदन त्वम्ल वेतसम् ।।
शूलेऽरुचौविबधे च मदेऽग्नौ मद्यविप्लवे ।
हिक्काश्वासे च कासेच वम्योवर्चो गदेषु च ।
वातश्लेष्म समुत्थेषु सर्वेज्वेवोपदिश्यते ।
केशर मातुलुंगस्य लघु शेषमतोऽन्यथा ।
—च सू. २७ फल वर्ग ।

प्रयोग — अम्लवेतस. चरक

सू.	२-२६	भेदिनी यवागू
,,	४-६/६	दीपनीय दशेमानि
,,	४-१०/१०	हृद्य ,,
,,	४-१६/२७	श्वासहर
,,	२५-४०	अग्न्य वर्ग,मे–अम्लवेतसो भेदनीय दीपनीय आनुलोमिक वातश्लेष्म हराणाम् ।
वि	८-१४०	अम्लगर्ग
चि.	५-७६	हिंग्वादि चूर्ण–गुल्म चिकित्सा
,,	,,-८६	शल्यादिगुटिका ,,
,,	,,-१६२	व्यजनार्थे
,,	,,-१६६	,,
,,	८-१४१	यमानीषाडव-राजयक्ष्मा चिकित्सा
,,	६-५५	लशुनादि घृत-उन्माद चिकित्सा
,,	१२-५५	चित्रकादि घृत श्वास ,,
,,	१५-१०८	मरिच्याद्य चूर्ण–ग्रहणी ,,
,,	१६-८७	हिक्का उदावर्त आध्मान उपद्रव मे
,,	,,-१०४	,, अन्नपाने
	१८-१२७	कण्टकारी घृत-काम चिकित्सा
चि	१८-१७८	पद्मकादि लौह —कास चिकित्सा
,,	२३-८०	महागन्धहस्ती अगद-विष चिकित्सा
,,	२४-१७२	कफज मदात्यय ,,
,,	,,-१७७	,, ,, ,,
,,	२६-६१	अश्मरी भेदनार्थ–अश्मरी ,,
कल्प–	७-६३	श्यामात्रिवृत कल्प
सि०–	६-६	त्रिमर्मीय सिद्धि मे वस्ति

सुश्रुत—सू ४२-११ अम्लवर्ग मे
चि ५-२१ अपतत्रक चि० तुम्बुर्वादि चूर्ण
,, ५-२८ वातरोगे हिंग्वादि चूर्ण
,, १०-४ महाकुष्ठ चि०
उत्तर—३६-२६१ ज्वरदाहे लेपार्थ
४२-२६ दाधिकघृत गुल्म
४२-३२ रसोनादि घृत
४२-७० पथ्यादि चूर्ण

चुक—चुक्रतु चुक्र वास्तूक लिकुच चाम्ल वास्तुकम् ।
दलाम्लमम्ल शाकाख्य मम्लादि हिमोचिका ।।
—रा. नि. मूलकादि वर्ग

चूकापालक (अम्ल पालक शाक)
(Rumex Vasecareous)

यह पालकी के शाक की जाति का है । इसके अग्रभेद को चूकापाल पर्वतीय व्यक्ति कहते है । चुक्र का यह अपभ्र श है। चूका खट्टे का बोधक है । पत्र पालक की तरह पतले, मोटे, चौडे, प्रारम्भ मे कांड पर पतले होते हैं । ऊपर त्रिकोणाकार होते हैं । ऊपर मजरी निकलती है जो लाल रङ्ग की खूबसूरत दिखाई पडती है ।

अष्टाङ्गहृदय—

सू	१०—२५	अम्लस्कन्ध
चि	३—६१	कास चि -कट कार्यादि घृत
,,	१७—११	श्वयथु-यमानिकादि चूर्ण
,,	४—६४	श्वासचिकित्सा चन्नपान
,,	२१—३७	वातरोग हृद्रोगे हिंग्वादिचूर्ण
,,	५—५५	राजयक्ष्मा यवन्यादि चूर्ण
,,	७—३७	मदात्यय चि.—यूपयोग
,,	७—४०	,, अष्टागलवण चूर्ण
,,	८—३४	अर्श चि –त्रिकटुवादि चूर्ण

चि.८—१४६	अर्श चि.	पूतिकरंजादिघृत
" २०—५		
" ४—६	"	हिग्वादिचूर्ण
,,—१७	"	दशमूल घृत
,,—२५		वातगुल्म लशुनादि घृत
,,—१७७		श्लेष्म-हिग्वादि चूर्ण
,,—१११		अन्नपान
,,—१२१		"
क ३—१५		वमनव्यापत, सिद्धि-पिपल्यादि चूर्ण
चि ६—३०		हृद्रोग-दाडिमादि चूर्ण
उ. २०—५		नासारोग-व्योषादि गुटिका

१—कोकम—

चरक ने वृक्षाम्ल के नाम से कोकम का वर्णन किया है। इसे गार्सिनिया इण्डिका Garcinea Indica Choisy कहते हैं। वर्ग नागकेशर कुल है। इसका फल व बीज स्नेह प्रयोग होता है।

सक्रिय वस्तु–१—मेलिक एसिड (Malic Acid)
२–टार्टरिक एसिड (Tartaric Acid)
३— साइट्रिक एसिड (Citric Acid)

वृक्षाम्ल व अम्लवेतस यह दोनो पृथक-पृथक पाठ है। अत अम्लवेतस वृक्षाम्ल का ग्रहण सम्भव नही है। हिन्दी, गुजराती, बगाली, बम्बई मे यह मगुस्तीन नाम से पाया जाता है। अम्लवेत नाम से नही।

२—थैकल—

गार्सिनिया पेडाकुलाटा (Garcinia Pendueculata Roxb)

यह वृक्षाम्लकुल-गट्टीफेरी वर्ग का है। वृक्षाम्ल का वर्णन और अम्लवेतस का वर्णन पृथक हाने से इसका ग्रहण उचित नही है। राजनिघण्टुकार–अम्लवेतस इति भोटदेशे–गौड़े च प्रसिद्धम्। चक्रदत्त ने थैकल इति देशान्तरे प्रसिद्धः(इति चक्रदत्त)ऐसा लिखा है। इससे स्वय अम्लवेत से क्या लेना यह नरहरि पडित सदिग्ध थे और चदक्रत्त ने ऐसा लिखा है ऐसी सूची मे नोट किया है।

बाजार मे अधिक इसका ग्रहण होता है। इन्होने भी वृक्षाम्ल व अम्लवेतस अलग-अलग पाठ किया है।

यह दोनो द्रव्य फल है। अम्ल हैं—कच्चे रहने पर अम्ल और पकने पर मधुराम्ल होते है। इसे वृक्षाम्ल वर्ग मे आधुनिक वनौषधि ग्रन्थ लेखक श्री बापालाल व श्री रामसुशीलसिंह ने लिखा है यह-वृक्षाम्ल राजनिघण्टु का चुक्र है। क्योकि वृक्षाम्ल, अम्लशाकम्, चुक्राम्लं पर्याय दिये हैं। इसके मूल, पत्र, कॉड, फल, बीज सब अम्ल होते हैं। लिखकर चूका की सूची दी है। अत यह वनस्पति नाम से फल है–नाम से वृक्षाम्ल है अत गार-सीनिया का वृक्ष होता है। चूका शाक वर्ग का है। अत वृक्षाम्ल से थैंकल का ग्रहण उचित होने पर भी पृथक पाठ होने से ग्रहण सम्भव न होकर प्रतिनिधि रूप मे ग्रहण किया जा सकता है।

बीजपूर चकोतरा (Citrus Decumana)

यह नीबू वर्ग का है जिसका फल प्रयोग होता है। यह दो प्रकार का होता हे। अम्ल व मधुर—

मधुर का ही अधिक प्रयोग होता है। मधुकर्कटी-मीठा चकोतरा नाम से प्रसिद्ध फल केशर लाल, गुलाबी रङ्ग के या पीले बडे-बडे यवाकार बड़े होते है और इसे अधिक प्रयोग करते है। कच्चे रहने पर यह खट्टा होता है। इसे कच्ची हालत मे खटाई के लिए प्रयोग करते हैं।

दूसरा अम्ल फल–खट्टा चकोतरा। खट्टा अधिक होता है और पकने पर मधुराम्ल होता है।

बीजपूर के नाम से इसका ग्रहण होता है और यह अम्लवेतस की तरह निघण्टुओ मे पृथक पाठ हे।

इसे अम्लवेतस के नाम से कोई नही पुकारता–पर्वतो मे भी इस नाम से नही पुकारते। अत इसका ग्रहण उचित नही है। यह बाजारो मे भी किसी रूप मे अम्ल या खटाई के लिए नही प्रयुक्त होता। अतः अम्लवेत नहीं हे।

अत फल वर्ग के सब उन फलो पर विचार किया गया जिनका नामोल्लेख आता हे।

शाक वर्ग—

(१)चुक्र १–चूका Rumex Vescicarious Linn-Polygonaceae

२–चूकापालग–Rumex Cresups Lin जिसे नाद करनी—

३—अम्ललोमिका।
४–अम्लवारतूक
५–चौपतित्रा–तिपतिया।

इनका नाम नादकरनी, डा. उदयचन्द राय, डा वसु आदि ने चुक्र व अम्लवेत के लिए बार-बार लिखा है। यह शाक है। अम्ल होने से शाक फल के बदले ग्रहण नही हो सकते। न इनमे वे गुण हैं जो अम्लवेत मे हैं। अतः फल के नाम पर शाक का ग्रहण सभव नही है।

अत नादकरणी—कार्तिक वसु का नाम सस्कृत मे लिखा अम्लवेतस नितान्त अग्राह्य है।

रेवन्द चीनी (Rhum Emody wall)

नादकरनी ने कीर्तिकर वसु का अधानुकरण कर सस्कृत नाम रेवदचीनी को भी अम्लवेत ही लिखा है और इन्होने भ्राति संस्कृत पर्याय के नाम से फैलाकर आयुर्वेद निघण्टु के सस्कृत नाम पर महान भूल की है। कहाँ से यह नाम एक ही कई के लिए प्रयोग किये है समझ मे नही आता। अस्तु इसे नादकरणी ने अम्लवेत के नाम से प्रयोग किया है।

इसका एकमात्र कारण बाजार मे वेंत की चोटी की तरह गुथी वेल जो रेवदचीनी की शाखा हैं बाजार मे अम्लवेत के नाम से प्रसिद्धि है। यह अम्ल भी है और रेचक भी है। रेवदचीनी का क्षुप तीन-चार फीट तक फैलता है। इसकी जड का सग्रह कर वेचते हैं। काण्ड व पतली टहनिया चीरकर गीली रहने पर ही चोटी की तरह गूँथकर रख देते हैं। यह खट्टी हो जाती है और सूख जाती हैं। यही बाजार मे अम्लवेत नाम से बिकती हैं। दिल्ली, कानपुर, अमृतसर की मडी से सारे भारत मे जाती है। नाम ही अम्लवेत रखा है।

सम्भव है इस कारण इसे किसी ने अम्लवेत नाम दे दिया हो। अन्यथा यह न फल है न मूल-शाक बल्कि रेवन्द चीनी की शाखा सुखाई हुई है और चीन व मगोलिया से ईरान फारस से होकर अफगानिस्तान के दर्रों से या समुद्री रास्ते से वम्बई होकर भारत के बाजारो मे फैलते है। इधर चीन, वर्मा से भारत को अधिक आते हैं अत दिल्ली इसकी मण्डी है। यह फल वर्ग की वस्तु नही है। अत. इसे अम्लवेत नही मान सकते। यह प्रतिनिधि तो बलात बनाई हुई है। दो तिहाई भारत मे अम्लवेत से यही मानी जाती है। थैकल कोकम चालता यह सब एक तिहाई भाग ही बाजार मे आते है वह अम्लवेत के नाम से नही आते—बदले से प्रतिनिधि की तरह आते है। यह अम्लवेत की नाम से ही प्रसिद्ध है और आज से नही वर्षों से चीन व मगोलिया से आ रही है।

बाजार का अम्लवेत यही है। एक बात यह है कि बेत का छिल्का निकालकर गूँथकर चोटी बनाई जाय तो यह भी कुछ अम्ल होता है और बेत की मज्जा का बेत के नाम से प्रयोग हो सकता है। अत अमलवेत समझकर अम्लवेतस नाम साम्य से अपना साम्राज्य बना रखा है।

परन्तु यह फल वर्ग की औषधि नही है। अत अम्लवेतस के नाम से मान्य नही है। इसमे अम्लवेतस के अन्य गुण नही है।

गद निग्रह का औषधि कल्प

अम्लवेतस

गदनिग्रहकार ने औषधि कल्प मे अम्लवेतस का परिचय निम्न रूप मे दिया है—

हिमालय के उच्च प्रदेशो मे जहा गन्धर्व यक्षादि रहते थे नाना प्रकार की दिव्य औषधियां व धातूपधातु पाये जाते है। यहा पर भगवान भास्कर ने अपने निवास स्थान मे जो कुछ कनक वर्ण के सुन्दर कुछ दिव्य औषधियो को लगाया था—उनके सुन्दर वर्ण के फल-फूल वाले मनोहर वेतस के पादप उत्पन्न हुए थे। इनके फलो से जो निर्यास या अत्यम्ल रस वाले रस सग्रहीत हुए वे अत्यम्ल थे अत इनको अम्लवेतस नाम दिया। ये फल जम्बीर के फल के समान थे। यह कषाय, कटु, रूक्ष गुण वाले जम्बीर के गुणों से भी गुणवान हैं। अम्ल होने के कारण धातु व पत्थर के वर्तनो मे नही रखे जा सकते। कटुतुम्वी की या अलाबुके आवरण मे इनका सग्रह किया जाता है।

इस प्रकार विवरण मिलता है। इससे स्पष्ट है कि ये वेतस पादप हिमालय प्रदेश के उच्च-स्थानो मे होते हैं भोट देश, सिक्किम नेपाल आदि मे। इससे यह खट्टे फल है इनका निर्यास व रस अत्यम्ल है। अत अम्ल रस वाले फलो मे इनका ग्रहण निम्बू जाति वालो मे समाविष्ट हो सकता है। यह क्या है क्या का निश्चय नही है।

निर्णय

(१) अम्लवेतस फल वर्ग का द्रव्य है। यह फल अम्ल रस वाला ही नही अत्यम्ल रस का निंबू वर्ग का है।

(शेषांश पृष्ठ २३० पर)

अशन और बीजक

डा० श्री [illegible] बी० ए० एम० एस० एम० डी०, पी० एच० डी० [illegible]
रिसर्च स्कॉलर, द्रव्य गुण विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

असन और बीजक के प्रभेद और प्रयोगों को बताते हुए लेखक ने दोनों एक ही द्रव्य हैं, यह सिद्ध करने की चेष्टा की है। यह लेख श्री त्रिलोकचन्द शर्मा प्रोफेसर व विभागाध्यक्ष द्रव्य गुण शास्त्र विभाग चिकित्सा विज्ञान संस्थान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी के मार्गदर्शन में लिखा गया है। वास्तव में असन और बीजक में कोई विशेष भेद नहीं है। असन का ही भेद बीजक है। [illegible] राजनिघण्टुकार ने भी वर्णन किया है उसमें असन का ही पर्याय बीजक मिलता है। इसको ही पीत वृक्ष, पीतक, पीतसार नाम से वर्णन किया है। धन्वन्तरि निघण्टु और राज निघण्टु दोनों में इसका वर्णन किया है। [illegible] बीज वृक्ष असन का वर्णन किया गया है। लेखक का विचार उचित जान पड़ता है।

—विश्वनाथ द्विवेदी

असन और बीजक का उल्लेख आयुर्वेदिक संहिताओं चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि में बहुतायत से उपलब्ध होता है। यह अनेक रोगों में चिकित्सार्थ प्रयुक्त होता है और अनेक रोगों में यह एक प्रमुख द्रव्य के रूप में व्यवहृत है।

चरक संहिता—यह एक प्रमुख चिकित्सा ग्रन्थ है जिसके रचयिता अग्निवेश माने जाते हैं। महर्षि चरक ने इस अग्निवेश संहिता का संस्करण किया। अग्निवेश का काल २००० वर्ष बी. सी. तथा चरक का काल २ री शताब्दी बी. सी. माना जाता है। अन्तिम प्रतिसंस्कर्ता दृढ़बल गुप्त कालीन (३री या चौथी शताब्दी) माने जाते हैं।

इस संहिता में असन, उदर्दप्रशमनगण (च स सू १७/४३) के द्रव्यों के साथ वर्णित है और इसे शीतपित्त व दन्तविशोधन (च स.सू. ५/७३) के लिए उपयोगी बताया है। असन-निर्यास का प्रयोग शिरोविरेचनार्थ (च स वि. ८/१५१) व पैत्तिक प्रमेह (च. स. चि. ६/३२) में बताया गया है। यह प्राय. आगन प्रदेश (च स क १/८) में उत्पन्न होता है।

बीजक का प्रयोग मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, कामला, पाण्डु रोग (च. स. सू २५/४९) आदि के लिए बताया है।

उस संहिता में असन व बीजक के बहुत से योगों का वर्णन मिलता है —

योग—	रोग—
सारासव (च. स. चि. १६/१०६)	
चन्दनाद्य तैल (च स चि ३/२५८)	ज्वर, रक्तपित्त
असनक्षार (च स चि ४/६४)	कुष्ठ(वातिक), श्वित्ररोग,
त्रिफलादि क्वाथ (च. स चि ७/१०१)	खालित्य, पालित्य
महानील तैल (च. स चि. १६/२६२०)	उरुस्तम्भ
श्योनाकादि लेप (च स. चि २७/५६)	मूत्रकृच्छ्र
बीजकारिष्ट (च. स. चि. (१६/१०६)	अश्मरी, प्रमेह, कामला आदि।

असन का प्रयोग अनेक रसायनो मे एक प्रमुख द्रव्य के रूप मे भी मिलता है जैसे बलादि रसायन (च. स. चि १-२ पा./१२), बाह्मरसायन (च. स. चि. १-३ पा./३), इन्द्रोक्त रसायन (च. स चि. १-४ पा./१३)

उपरोक्त विवरण मे यह बात विशेष महत्व की है कि बीजक का वर्णन सिर्फ दृढ़बलकृत अ श (च. चि. १६) के अलावा और कही भी दृष्टिगोचर नही होता। असन का उल्लेख चरककृत अ श के साथ साथ दृढ़बलकृत अ श मे भी बीजक के साथ मिलता है।

सुश्रुत संहिता—यह शल्य शालाक्य प्रधान ग्रन्थ है। चरक सहिता के समान यह भी सुश्रुत का मौलिक ग्रन्थ नही है बल्कि यह वृद्ध सुश्रुत सहिता का सस्करण है जिसका कि महर्षि सुश्रुतने प्रति सस्कार किया। वृद्ध सुश्रुत सहिता का काल २००० बी सी माना जाता है तथा सुश्रुत का काल,चरक के समान ही प्रतीत होता है। वर्तमान सुश्रुत सहिता अति नवीन मालूम होती है जिसका कारण चन्द्रट द्वारा १० वी शताब्दी मे अन्तिम रूप देना प्रतीत होता है।

इस सहिता मे असन, सालसारादिगण (सु स. ३८/११) मे वर्णित हैं और जिसका प्रयोग बहुलता से प्रमेह (सु. चि ११/८) शोषप्रतिशोषनार्थ (सु. उ ४१/३३) और जलशुद्धि (सु. क ३/६) के लिए किया गया है। बीजक का प्रयोग सभी कुष्ठो (सु चि-१८,९/६ ६/३१) विशेष रूप से महाकुष्ठ (सु. चि. १०/३) तथा नस्य (सु चि. २५/१६) के लिए वर्णित है। यहा पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस सहिता मे असन व बीजक का कोई भी योग उल्लखित नही है। साथ ही असन व बीजक का प्रयोग बहुलता से मिलता है। इसका कारण बीजक का अधिक प्रचलन प्रतीत होता है।

भेल सहिता—इस सहिता के रचयिता आचार्य भेल थे और अग्निवेश के समकालीन प्रतीत होते हैं।

इस सहिना मे असन का प्रयोग उरुस्तंभ, विसर्प (भे. चि १७/३१), अरोचक (भे. चि. २३ पा.२१३) कर्ण व्याधियो जैसे कर्ण शूल, कर्णस्राव आदि मे मिलता है। इसक अलावा निम्न योगो मे भी यह पठित है—

योग—	रोग—
वशकादि योग (भे. चि. १६ पा./१७१)	उरुस्तम
करजादिलेप (भे, चि १६ पा. १/८०)	”
व्यूषणादि तैल (भे.चि.२३ पा./२११)	कर्णस्राव, कर्णशूल

काश्यप सहिता—यह आयुर्वेद का प्राचीन सहिता ग्रन्थ है जो कि गुप्तकालीन प्रतीत होता है। जैसाकि इतिहास विदो का मत है कि षष्ठी पूजा जिसका वर्णन इस सहिता मे उपलब्ध है, गुप्त काल के पूर्व के ग्रन्थो मे दृष्टिगोचर नहीं होता।

इस सहिता मे असन का प्रयोग राजयक्ष्मा (का. राजयक्ष्मा चि. पृ. ११०) के प्रकरण में मिलता है, साथ ही इसका एक योग 'महाअभयारिष्ट' भी काफी महत्व का है।

वाग्भट सहिता—यह ग्रन्थ चरक व सुश्रुत सहिता का संकलन ग्रन्थ है और इसके रचयिता वाग्भट के बारे मे विद्वानो मे मतभेद है। कुछ विद्वानो का कहना है कि अष्टांगसग्रह व अष्टागहृदय के रचयिता वाग्भट एक ही थे व कुछ का कहना है कि उपरोक्त दोनो ग्रन्थो के रचयिता वाग्भट दो भिन्न भिन्न थे और जिनका काल भी भिन्न था। वस्तुत. अष्टाग-सग्रहकार वाग्भट प्रथम व अष्टाग हृदयकार वाग्भट द्वितीय थे जिनका कि काल भी भिन्न भिन्न है। वाग्भट प्रथम का काल ६ वी शताब्दी व द्वितीय का काल ७ वी शताब्दी का प्रारम्भ माना जाता है।

अष्टांग सग्रह—असन का उल्लेख इस सहिता मे असनादिगण मे किया है जिसको कि श्लेष्मप्रशमन (अ. सं. सू १४/१२) बताया गया है। इसका व्यवहार चिकित्सा की दृष्टि से श्वित्र (अ स. सू १६/१३, १४, २/१६, १७, २६, ४५, २२/५,१०), कुष्ठ, उदररोग (अ स सू १५/४२) पालित्य कफ (अ.स.उ २८/४५), क्रिमि, पाण्डुरोग, प्रमेह, मेदादोष, दुष्टप्रतिश्याय (अ. स. उ. २४/२२), मुखरोग (अ स उ. २६/५०), रक्तपित्त (अ सा. चि. ३/७०) और वातिक व्रण (अ स. उ. ३०/४३, ५३) मे किया गया है। नेत्र रोगो मे इसका व्यवहार तिमिर प्रतिषेधनार्थ (अ स.

उ. १६/१२) हुआ है तथा स्वस्थवृत्त की दृष्टि से दन्तधावन (अ स. सू ३/१३) के लिए उपयोगी बताया गया है। असन पत्र स्वरस का प्रयोग केशो को काला (अ. स उ २८/४८) करने के लिए भी वर्णित है।

बीजक का प्रयोग प्रमेह (अ.स. चि. १४/५, ७, २१, २३) तथा क्षय रोग में बताया गया है। रसायन (अ.स.चि. ४६/२२४, २२५, २२६, २२७, २३२, २४१, २४६) के प्रकरण में भी इनका उल्लेख है तथा निम्न योगो में इनका योगदान है—

योग	रोग
पुष्पघृत (अ. स. चि. ३/३७)	रक्तपित्त
सर्पिगुड (अ. स चि ७/४८)	प्रमेह, क्षय
लोहारिष्ट (अ. सं. चि. १४/१७)	प्रमेह
नारसिंहघृत (अ. सं उ ४६/२४७)	रसायन
विशिष्ट मुनि प्रोक्त रसायन (अ. स. चि. ५/६०)	क्षतज व क्षयजकास

अष्टांग हृदय—इस संहिता मे असन का वर्णन असनादिगण (अ.हृ सू. १५/१६, २०, चि. १२/१४, २६, ४१) मे हुआ है और श्वित्र, कुष्ठ, कफजक्रिमि, पाण्डुरोग, प्रमेह, मेदोदोष मे प्रयुक्त है। इसका समावेश कफनाशकगण (अ. हृ. सू. १५/७) मे भी हुआ है।

बीजक का प्रयोग श्वित्र (अ. हृ. सू. २०/८२), श्वित्र क्रिमि आदि में किया गया है। इसके अलावा कई योगो में भी इसका उल्लेख मिलता है—

योग	रोग
त्रिफलादियोग (अ.हृ.उ. २८/४२)	कुष्ठ, मेहपिडिका भगदर
शुण्ठ्यादियोग (अ.हृ.उ. ३६/१०५)	रसायन
बाकुचीरसायन (अ.हृ उ. ३६/१०७)	वार्धक्यजन्य विकार

उपर्युक्त योगो के अतिरिक्त भी अन्य रसायनो मे इनका उल्लेख मिलता है।

टीकाकारों का मत—चरक के टीकाकार जेज्जट (च.चि. १-४ पा./१३) व चक्रपाणि (च. चि १६/१०६) असन व बीजक को पर्याय मानते हैं। सुश्रुत व अष्टांग हृदय के टीकाकार क्रमश: डल्हण (सु.चि. ११/८, २५/१६, उ. ४१/३०) व अरुणदत्त (अ. हृ. उ. ३६/१५०, १५२, १७४) भी इन्हे पर्याय के रूप मे स्वीकार करते है परन्तु चक्रपाणि की सुश्रुत टीका (सु. सू. ३८/६) से यह प्रतीत होता है कि असन उस काल मे अधिक प्रचलित था परन्तु कुछ लोग इसे पीतसाल कहते थे। वोपदेव (सि.म. कफ पित्तघ्न वर्ग पृ. ७०) ने अपनी सिद्धमत्र टीका मे असन व बीजक को पर्याय रूप मे स्वीकार किया है।

मध्यकाल—

अष्टांग निघण्टु (८ वी शताब्दी)—इस निघण्टु में असन व बीजक (अ.नि.पृ १०) को पर्याय बताया है।

पर्याय रत्नमाला (९ वी शताब्दी)—इस निघण्टु मे बीजक शब्द नही मिलता और असन का प्रयोग दो भिन्न भिन्न द्रव्यो के लिए किया है (१) पीतसाल (प र. मा. ३४५) (२) महासाल (प.र मा ३५५)। पीतसाल, टेरोकार्पस-मरसूपियम व महासाल (अजकर्ण का पर्याय होने से) टरमिनेलिया की कोई जाति प्रतीत होती है।

धन्वन्तरि निघण्टु (१० वी शताब्दी)—इस निघण्टु मे भी असन को बीजक (ध.नि. १२५) का पर्याय बताया गया है तथा बीजक को रक्तपित्त मे उपयोगी बताया गया है।

निघण्टु शेष (१२ वी शताब्दी) इस निघण्टु मे असन (नि. शे. ९९, १००) और बीजक को पर्याय रूप मे स्वीकार किया है और बीजक के दो भेदो का उल्लेख मिलता है। (१) शिखिग्रीव (नि.शे. १०१) (२) गोमूत्रक, जिसमें कि शिखिग्रीव को उत्तम बताया गया है।

शोढ़ल (१२ वी शताब्दी)—इस निघण्टु मे बीजक का वर्णन नही मिलता और असन (शो नि. पृ. ४८ व रसालादि वर्ग) का उल्लेख कुष्ठ, शूल, श्वित्र, वात, कफ आदि रोगो के लिए किया गया है।

हृदयदीपक (१३ वी शताब्दी)—इन निघण्टु मे असन और बीजक (हृ दी. एकपाद वर्ग ११३) पर्याय रूप मे वर्णित है।

मदनपाल निघण्टु (१४ वी शताब्दी)—इस निघण्टु मे असनक (म.पा.नि वटादिवर्ग ५/३४, ३५) का उल्लेख बीजक के पर्याय रूप मे आया है और इसे कुष्ठ, विसर्प, श्वित्र, प्रमेह आदि मे उपयोगी बताया है।

राजनिघण्टु (१५ वी शताब्दी)—इस निघण्टु मे बीजवृक्ष (रा नि २०७, २०८) (बीजक नही) का उल्लेख असन के पर्याय रूप मे आया है तथा असनसार का प्रयोग गलदोष तथा रक्तमण्डल के लिए हुआ है।

कैयदेव निघण्टु (१५ वीं शताब्दी)—असन व बीजक

(कै नि ७४३, ७४४) इस निघण्टु मे पर्याय रूप मे उल्लिखित है और बीजक को क्रिमि, विसर्प, कुष्ठ, कण्डु आदि मे उपयोगी बताया गया है।

भावप्रकाश निघण्टु (१६ वी शताब्दी)—इस निघण्टु मे भी असन (भा प्र नि. वटादिवर्ग २८, २९) व बीजक को पर्यायवाची बताया गया है और बीजक का प्रयोग कुष्ठ, विसर्प, श्वित्र, मेद, गुदक्रिमि आदि के लिए हुआ है।

आधुनिक काल—

शिवकोष (१७ वी शताब्दी)—इस ग्रन्थ मे बीजक (शि. कोष ५०) का उल्लेख दो भिन्न-भिन्न द्रव्यो के



लिए हुआ प्रतीत होता है। (१) बीजपूर (शि कोष ५१) (२) पीतसार, जिसमे कि पीतसार से बीजक (टेरोकार्पस मरसूपियम) का ग्रहण करना युक्तिसगत होगा, जैसाकि इसके सारभाग के रग से प्रतीत होता है। परन्तु असन का उल्लेख बीजक के पर्याय रूप मे कही भी दृष्टिगोचर नही होता। असन (शि. कोष ३४, ५३, १०८, १०९) का उल्लेख, सर्ज व सर्जक के पर्याय रूप मे मिलता है। इससे यह सकेत मिलता है कि असन सर्ज के समान ही कोई वृक्ष होना चाहिए जिसमे टरमिनेलिया की किसी जाति का ग्रहण करना अभीष्ट होगा। सम्भव है कि कहीं-कहीं टरमिनेलिया टोमनटोसा का स्थानिक नाम साज मिलता है, जोकि वस्तुतः सर्ज का परिवर्तित रूप प्रतीत होता है। ग्रन्थ के टीकाकार असन व बीजक को पर्याय रूप (शि. कोष. ३४, ५३, १९०) मे स्वीकार करते हैं।

राजवल्लभनिघण्टु —(१८ वी शताब्दी) इस निघण्टु मे बीजक का उल्लेख नही मिलता। असन का प्रयोग दन्तकाष्ठ (रा. व नि १/६, ७) के रूप मे वर्णित है।

आयुर्वेदविज्ञान (१९ वी शताब्दी)—इस ग्रन्थ मे असन (आ. वि. अ १६ पृ. ५८५) व बीजक का उल्लेख पर्याय रूप मे हुआ है और बीजक का प्रयोग कुष्ठ, विसर्प, श्वित्र आदि के लिए प्रयुक्त है।

शालिग्रामनिघण्टु (२० वी शताब्दी) - इस निघण्टु मे असन व बीजक (शा नि वटादि वर्ग पृ. ६७०) का उल्लेख पर्याय रूप मे मिलता है।

समस्या—जैसाकि उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्राचीन आयुर्वेद के ग्रन्थो मे असन व बीजक पर्यायवाची थे परन्तु आगे चलकर अनेक ग्रन्थकारो ने इन्हे दो भिन्न द्रव्यो के रूप में ग्रहण किया।

यह बात पर्याय रत्नमाला का अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाती है। इस निघण्टु मे बीजक शब्द नही मिलता। असन से दो द्रव्यो का ग्रहण किया गया प्रतीत होता है (१) पीतसाल (प र. मा ३४५) (२) महासाल (प र मा ३५५)। पीतसाल से टेरोकार्पस मरसूपियम तथा महासाल से टरमिनेलिया व श्रिहेलिया की जाति का ग्रहण किया जा सकता है। चक्रपाणि ने चरक सहिता की टीका मे असन व बीजक को पर्याय बताया है (च०-चि० १६/१०६) परन्तु सुश्रुत सहिता की टीका मे "असन प्रसिद्ध पीतसाल इत्यन्ये" (सु सू. ३८/९) का पाठ किया है जिसका अर्थ यह प्रतीत होता है कि असन उस काल मे एक प्रचलित द्रव्य था परन्तु कुछ लोग इसे पीतसाल कहते थे।

हेमचन्द्र कृत निघण्टु शेष मे दो प्रकार के बीजक का निर्देश मिलता है - (१) शिखिग्रीव (२) गौसूत्रक (नि शे. १०१)।

उपरोक्त दोनो ही द्रव्य इनके सारभाग से प्राप्त

फाण्ट के रग के द्योतक प्रतीत होते हैं। शिखिग्रीव व गोमूत्रक का शाब्दिक अर्थ मयूर की शिखा (नीलाभहरित) तथा गोमूत्र के रग के समान रङ्ग का होना है। वस्तुत उपरोक्त दोनो द्रव्यो (असन व वीजक) के फाण्ट का रग गोमूत्र व मयूरशिखावत होता है। अतः प्रथम मे टेरोकार्पस मरसूपियम व द्वितीय से टरमिनेनिया या ब्रिटेलिया की जाति का ग्रहण करना अधिक युक्तिसगत प्रतीत होता है।

कैयदेव निघण्टु के टीकाकार आचार्य सुरेन्द्रमोहन स्पष्टत वीजक से टेरोकार्पस मरसूपियम (कै. नि पृ- १६२) तथा असन से टरमिनेलिया टोमनटोसा का ग्रहण करते हैं। भावप्रकाश निघण्टु (भा प्र नि ५२४) के टीकाकार डा० के. सी चुनेकर भी उपरोक्त मत से सहमत हैं। ठाकुर बलवन्तसिंह जी ने अपनी पुस्तको "वनोषधि दर्शिका (व द. पृ ८६) तथा बिहार की वनस्पतिया (वि व. पृ. ४६,५७)" मे उपरोक्त दोनो द्रव्यो का अलग अलग वर्णन किया है तथा वे वीजक से टेरोकार्पस मरसूपियम तथा असन मे टरमिनेलिया टोमनटोसा का ग्रहण करते है। बापालाल जी भी उपरोक्त मत का समर्थन करते है परन्तु वे बीजक से टेरोकार्पस मरसूपियम (नि. आ. पृ ३८०) तथा असन से टरमिनेलिया टोमनटोसा (महाराष्ट्र मे) तथा ब्रिडेलिया मोनटाना (गुजरात मे)का ग्रहण करते हैं। कालीपद विश्वासकृत 'भारतीय वनौषधियो' मे वीजक व असन का वर्णन पर्यायरूप (भा व. पृ. २१२ प्रथम भाग, पृ ४३ द्वितीय भाग) मे है तथा इससे टरमिनेलिया टोमनटोसा का ग्रहण किया है तथा पीतसाल (जिसे अन्य विद्वानो ने वीजक का पर्याय बताया है) का वर्णन भी उपलब्ध है जिसका लेटिन नाम टेरोकार्पस मरसूपियम दिया है। वैल्थ आफ इण्डिया (वै आ इ पृ २२७ [प्रथम खण्ड]) तथा फ्लोरा आफ बाम्बे (फलो वा पृ ६८ [द्वितीय खड]) का अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि असन से ब्रिडेलिया की जाति का ग्रहण किया गया है, न कि टेरोकार्पस मरसूपियम का। इससे भी इनके भिन्न भिन्न द्रव्य होने की पुष्टि हो जाती है।

पूर्व उल्लिखित सदर्भों मे यह प्रायः स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुत असन और वीजक पर्यायवाची शब्द थे परन्तु मध्यकाल मे पर्यायरत्नमाला से असन शब्द से दो भिन्न-भिन्न द्रव्यो का ग्रहण किया जाने लगा। निघण्टु शेष से भी इस बात की पुष्टि हो जाती है। अनेक परवर्ती टीकाकारो व विद्वानो ने भी असन व वीजक से दो भिन्न द्रव्यो (टरमिनेलिया टोमनटोसा तथा टेरोकार्पस मरसूपियम) का ग्रहण किया है।

अब वस्तुस्थिति विचारणीय है कि क्या असन व वीजक पर्यायवाची थे या उन्हे दो भिन्न द्रव्यो के रूप मे स्वीकार किया जाना युक्तिसगत है ?

विमर्श—उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि असन व वीजक का प्रयोग अनेक व्याधियो के लिए हुआ है। व्यवहार मे कुछ विद्वानो द्वारा असन व वीजक नाम से दो भिन्न द्रव्यो का ग्रहण किया जाता है जोकि क्रमश टरमिनेलिया टोमनटोसा या ब्रिडेलिया की जाति व टेरोकार्पस-मरसूपियम है, परन्तु अब यह प्राय असदिग्ध हो गया है कि असन व वीजक दोनो एक दूसरे के पर्यायवाची हैं और एक ही द्रव्य टेरोकार्पस-मरसूपियम के बोधक हैं। वस्तुस्थिति निम्न प्रकार है—

(१) असन व वीजक का उल्लेख एक दूसरे के स्थान पर हुआ है इसका स्पष्टीकरण चरक (च० सू० ४/४३ व अष्टाग सग्रह (अ० स० सू० १५/४२) उदर्दप्रशमन गणो के द्रव्यो के अवलोकन से हो जाता है, जिसमे कि प्रथम मे असन व दूसरे मे बीजक का पाठ है।

(२) असन-निर्यास का प्रयोग चरक सहिता मे शिरोविरेचनार्थ (च वि. ८/१५१) बताया है। निर्यास सिर्फ टेरोकार्पस मरसूपियम मे ही मिलता है, न कि टरमिनेलिया या ब्रिडेलिया की किसी जाति मे।

(३) कुष्ठ व मेह चिकित्सा मे असन सार का प्रयोग बहुतायत से मिलता है और असन का उल्लेख सालसारादि (सु० सू० ३८/६) व असनादिगण (अ० स० सू० १३/१३,१४) जो कि मूल रूप से उपरोक्त व्याधियो मे प्रयुक्त होता है, किया गया है। अगर वीजक असन से भिन्न होता तो इसकी इन गणो में अनुपस्थिति तथा कुष्ठ आदि की चिकित्सा के सन्दर्भ मे वर्णित होना कुछ सदेहास्पद मालूम पडता है और साथ ही यह भी सकेत करता है कि वीजक कोई नवीन या भिन्न द्रव्य नही है बल्कि असन का पर्याय मात्र है।

४) कुष्ठ चिकित्सा मे चरक ने वीजक का उल्लेख

एक बार भी नहीं किया है जबकि सुश्रुत (सु चि. २०/८७) व वाग्भट ने इसका उल्लेख सिर्फ एक बार किया है। साथ ही अन्य सदर्भों में चरक, सुश्रुत व वाग्भट सहिताओ मे असन का उल्लेख बहुतायत से मिलता है। आप्तो ने कुष्ठघ्न-द्रव्य के रूप मे बीजक व खदिर, जिसका उल्लेख सुश्रुत सहिता मे मिलता है, आगे चलकर सहिताओ मे खदिरासन के रूप मे प्रचलित हुआ। सम्भव है कि यही कारण सहिताकाल के बाद असन शब्द का बीजक की तुलना में अधिक प्रचलन का रहा हो। स्थानिक नाम विजयसाल सभवतः विजयसार से निकला मालूम होता है जिसका कि कही २ लोक नाम बिया या बियू मिलता है।

सदिग्ध निर्णय वनौषधि शास्त्र के लेखक प० भागीरथ स्वामी का मत है कि असन व बीजक (स. नि व. शा पृ ६२७) एक ही द्रव्य हैं और वे इनसे टेरोकार्पस-मरसूपियम का ग्रहण करते हैं।

कोषों, अमरकोष (अ कोष ४/४१) वैजयन्तीकोष (वै. कोष ३३६) मेदिनीकोष (मे. कोष., शांत वर्ग २०) मे बीजक शब्द नहीं मिलता, सिर्फ असन का उल्लेख पीतसाल के पर्यायरूप में आया है। इससे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि असन व बीजक के परिचय में कोई भी सदिग्धता नही थी और वे पीतसाल से टेरोकार्पस-मरसूपियम का ग्रहण करते थे।

सारांश—चरकसंहिता में असन शब्द का उल्लेख मिलता है, बीजक शब्द सिर्फ दृढबल कृत अ श में उपलब्ध होता है। अन्य ग्रन्थों में असन बीजक का उल्लेख पर्याय रूप से किया गया है जिससे कि इनके एक ही द्रव्य होने का सकेत मिलता है। टीकाकारों ने भी इस कथन की पुष्टि अपने स्पष्टीकरण से की है। अत हमें असन व बीजक दोनो मे टेरोकार्पस मरसूपियम (फेमिली-लेग्यूमिनोसी) का ही ग्रहण करना चाहिए। प्रयोज्य अ ग के रूप में सार, त्वक, निर्यास, पुष्प, पत्र का विविध कषाय कल्पनाओ के रूप में प्रयोग करना अभीष्ट होगा।

आभार ज्ञापन—मैं अपने पू० गुरुवर्य प्रो० प्रियव्रत शर्मा जी, विभागाध्यक्ष, द्रव्यगुण विभाग का अत्यन्त आभारी हू जिन्होने कि मुझे इस लेख को प्रस्तुत करने में मार्ग प्रदर्शन किया व प्रेरणा दी। साथ ही में डा० के०सी० चुनेकर व डा० बलवन्त सिंह जी का भी आभारी हूं जिनकी पुस्तक ग्लासरी आफ वेजिटेबिल ड्रग्स इन बृहतत्रयी ने विमर्श लिखने में मेरी सहायता की।

(पृष्ठ २२४ का शेष)

गढवाल, नैनीताल, अल्मोडा, नेपाल, भोटदेश, सिक्किम मे यह पाया जाता है। वहां इसे अम्लवेतस, अमलवेधस या अम्लवेतस कहते हैं। यह निम्बु जाति का अत्यन्त खट्टा Acid Zyfolia (एसिड जाइफोलिया) है। इसको देशी भाषा में गल-गल कहते हैं। इसके पत्ते अम्ल, शाखा अम्ल, फल अम्ल होते हैं। पेड निर्यास भी अम्ल होता है। इंगलिश मे इसे कामन स्टोरेल कहते हैं। यह पर्वतीय भागों मे होता है। इसके पौधे मैदानो मे लगाते हैं तो भी अम्ल होते हैं किन्तु पर्वतीय की तरह अम्ल नही होते। "जम्बीर समभ्रम" से मिलता जुलता है। यह नेपाल, भूटान की तराई, सिलहट, कुमाऊँ, अल्मोडा, नैनीताल, काशीपुर के पहाडी प्रदेशो मे प्रभूत मात्रा मे होता है। भूटान मे अम्लवेध ही नाम है। इसके अम्लवेत के गुण तीव्र पाचक, मासद्रावी गुण हैं। तीव्र शूल प्रशमन, गुल्म शूल प्रशमन है। इसका रस सुखाकर राख मिलाकर लकडी व अलाव के खोखले में रखते हैं। अतः इसका वर्ण काला हो जाता है। राख मिलाने से चूक की तीव्रता कम हो जाती है। चूका नाम से नैनीताल, अल्मोडा मे मिलता है।

(२) थैकल—गार्सिनिया पेडाकुलाटा यह इसका दूसरा भेद है

(३) कोकम—भी अम्ल जाति का होता है। इन दोनो को प्रतिनिधि रूप में ले सकते हैं।

(४) कोकम के नाम से कटी फलियों के टुकडो मे कच्चे लकुच (बडहल) फल के सूखे टुकडे मिले हुए आते हैं। यह भी मासल होने से मिश्रित हो जाते हैं।

(५) रेवदचीनी की लतायें बढी हुई भी प्रतिनिधि रूप मे ली जाती हैं और अधिक मात्रा मे ली जाती हैं। इन्हें भी प्रतिनिधि स्वरूप ले सकते हैं।

अष्टवर्ग ?

—श्री मायाराम उनियाल, शास्त्री रिसर्च आफीसर रीजनल रिसर्च सेन्टर
(सी. सी. आर. आई. एम. एच) जोगिन्दर नगर (हि. प्र.)

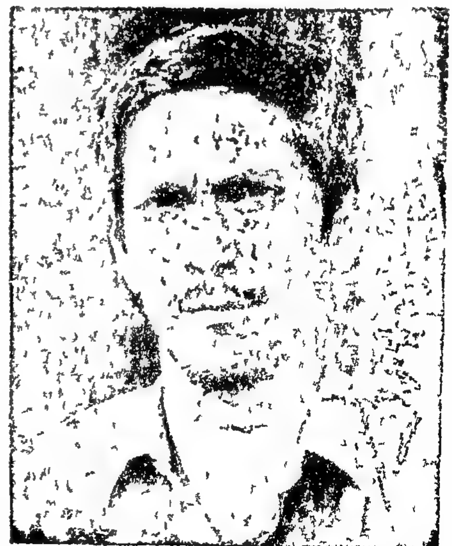
भारतीय द्रव्य गुण विज्ञान के प्रति आधुनिक विद्वानो में मिलावट की जो भावना बन गई है उसे आयुर्वेद वनस्पति शास्त्रियों को दूर करना है। इस समय औषधियो मे मिलावट करने की जो धारणा आजकल व्यापारियो मे बन गई है उसे दूर करने के उपायो पर शोधशास्त्रियो एव भारत सरकार तथा राज्य सरकारो को गम्भीरतापूर्वक विचार करना है तथा उनके परीक्षण हेतु निश्चित मापदण्ड तैयार करना है। पुस्तक लेख मे स्थानिक फार्मेसियों मे प्रयुक्त वनस्पतियो का वानस्पतिक परिचय इस लेख मे दिया जा रहा है। लेखक के कतिपय सदिग्ध वनस्पतियो के सचित्र लेख क्रमश. सचित्र आयुर्वेद, धन्वन्तरि, एव आयुर्वेद विकास आदि पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहते हैं जिन्हें सूत्र रूप में यहा पर देना सम्भव नही है। केवल शास्त्रीय अष्टवर्ग क्या हो सकता है एव प्रचलित अष्टवर्ग की साम्यता इन द्रव्यो से मिलती है या नहीं यह इस लेख में स्पष्ट किया गया है।

आयुर्वेद चिकित्सा मे अष्टवर्ग का उपयोग जीवनीय गण, बल्य एव रसायन के लिए विशेषरूप से वर्णित है। इस समय अष्टवर्ग के नाम पर कतिपय प्रतिनिधि एव शास्त्रीय द्रव्यो का उपयोग किया जा रहा है। इस सबन्ध मे विस्तृत लेख लेखक ने सचित्र आयुर्वेद मार्च १९६६ एव नागार्जुन अप्रैल १९६७ मे प्रकाशित किये हैं तथा समय

श्री मायाराम उनियाल आयुर्वेदीय जगत के उदीयमान विचारक हैं। वनस्पतियों के सम्बन्ध में इनके शोध लेख बराबर निकलते रहते हैं। अष्टवर्ग का लेख उत्तम विचारों के साथ परिमार्जित रूप मे लिखा गया है। अष्टवर्ग के प्रतिनिधिस्वरूप मे जो द्रव्य दिये गये हैं, वह प्रतिनिधि रूप मे ही मानने योग्य हैं। श्री उनियाल जी ने जो विचार दिये हैं वह सब उपादेय मालूम होते हैं, किन्तु इनका सम्पूर्ण रूप से समता न होने के कारण वे अभी प्रतिनिधि रूप नहीं मानने योग्य हैं, जब तक इनका प्रयोग अच्छी प्रकार से करके निर्णय न कर लिया जाय।

श्री मायाराम जी का एक दूसरा लेख भी चण्डा और चोरक पर प्राप्त हुआ है। इन्होंने इस कार्य मे हार्दिक सहयोग किया है अत यह धन्यवाद के पात्र है। श्री मायाराम जी इस समय केन्द्रिय चिकित्सा परिषद की तरफ से सर्वे यूनिट मे रिसर्च आफीसर के पद पर कार्यरत हैं।

—विश्वनाथ द्विवेदी



समय पर अन्य पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहे है ? विशेष वर्णन पाठकगण उपर्युक्त पत्रिकाओ मे पढ सकते हैं ? इस प्रसङ्ग मे शास्त्रीय अष्टवर्ग क्या हो सकता है ? वनस्पति शास्त्र(Botany)के आधार पर लैटिन नाम क्या हो सकते है ? ये सभी जानकारी यहा पर दी गई है।

अष्टवर्ग के पर्यायवाची नाम

सस्कृत नाम — पर्यायवाची नाम

१ जीवक—कूर्चकाकार (कूची के आकार सदृश), मधुरक, (मधुर प्रधान द्रव्य)। ह्रस्वाग (क्षुपजाति का द्रव्य विशेष) जीवक (जीवन देने वाला)।

२. ऋषभक—वृषशृङ्गवत् (मूलकन्द बैल के शृगसदृश आकृति वाला), कन्द (भौमिक काण्ड कन्द प्रधान वाला), लशुनकन्द (लशुनकन्द सदृश कन्द वाला), नि सार. (कन्द सूखने पर साररहित), सूक्ष्मपत्रक (पर्ण बारीक छोटे आकार मे)

३ काकोली शीतपाकी (शीतगुण प्रधान द्रव्य विशेष), पयस्या (मूलकन्द दुग्धिल या दुग्ध सदृश वर्ण वाला) वायसोलिका (काकचचुसदृश कृष्ण वर्ण वाला) पीकरी (शतावरीकन्द सदृश)

४ क्षीरकाकोली—शुक्ला (श्वेतकन्द द्रव्य विशेष) क्षीरिणी (क्षीर प्रधान द्रव्य) वयस्या (आयु को बढाने वाला द्रव्य), वीरा (वृष्य प्रधान द्रव्य होने के कारण)

५ मेदा—शुभ्रकन्द (श्वेतकन्द प्रधान द्रव्य) नखच्छेदी (नखो से आसानी से कटने वाला) वसुच्छिद्रा (कन्द कुछ पोला) मेदा-(मेदोधातु सदृश गध एव आकृति वाला)

६ महामेदा—महामेदा (कन्द मेदो धातु के सदृश आकार वाला, पाण्डुरा (कन्द पाण्डु वर्ण वाला)।

७. ऋद्धि—वामावर्ता (पुष्प बायें ओर को मुडा हुआ) वृष्या (बल्य विशेष द्रव्य) तूलग्रन्थिसमाकन्द (कार्पास की ग्रन्थिसदृश आकृति एव वर्णवाला) प्राणदा (आयु को देने वाला)

८ वृद्धि—दक्षिणावर्ता, (पुष्प या फल दाहिने तरफ मुडा हुआ), तूल ग्रन्थिसमा, हिमाद्रिजा (हिमालय मे उत्पन्न होने वाले द्रव्य विशेष)

देहरादून, हरिद्वार की स्थानिक फार्मेसियो मे प्रचलित अष्ट वर्ग

सस्कृत नाम	एव नैसर्गिक कुल	फेमिली	लैटिन नाम
१—जीवक—	मुञ्जातकादि वर्ग	Orchidaceae	Microstulis wallichii lindl
२—ऋषभक—	,,	,,	Microstylis muscifera
३—काकोली—	आर्द्रककुल	Zingiberaceae	Roscoea Procera R Alpina
४—क्षीर काकोली—	रसोनकुल	Liliaceae	Lilium Polyphyllum
५—मेदा —	,,	,,	Polygonatum Vertecillatum
६—महामेदा—	,,	,,	Polygonatum cirricifolium
७—ऋद्दि—	मुञ्जातकदि वर्ग	Orchidaceae	Habenaria Intermedia
८—वृद्धि—	,,	,,	Habenaria Sp

जीवक—ऋषभक का स्वरूप

द्रव्यनाम सस्कृत जीवक, ऋषभक
हिन्दी जीवक
लैटिन Microstulis Wallichii

यह हिमालय मे उपलब्ध एकवर्षायु शाकीय वनस्पति है। लम्बाई मे यह क्षुप ६" से १०" तक होता है। पर्ण मसृण, अण्डाकार एव लम्बाग्र होते हैं। पर्ण प्राय मूलोद्भव २ से ४ तक की सख्या मे अवृन्त पाये जाते है। पुष्प एक दण्ड मे छोटे-छोटे पीताभ-नारगीवर्ण के होते हैं। भौमिककाण्ड वृष्यशृङ्ग सदृश, परतदार एव हरित वर्ण के होते है, जिनका कि औषधि मे प्रयोग होता है। लम्बाई मे ये भौमिककन्दसदृशकाण्ड २"-३" लम्बे होते हैं। चकरौता देहरादून के औषधि विक्रेता इसी मूल को जीवक ऋषभक के नाम से विक्रय करते हैं। वनस्पति शास्त्र के आधार पर इसके आकार सदृश कतिपय प्रजातियाँ हिमालय प्रदेश मे पाई जाती हैं।

प्राप्तिस्थान—यह उत्तराखण्ड हिमालय मे १,५०० मीटर की ऊँचाई से लेकर २,८०० मीटर की ऊचाई तक

←जीवक-ऋषभक
(Microstylis Wallichii)

जीवक →
(Micerostylis Muscifera
Ridley)

चकरौता, मसूरी, एव केदानाथघाटी आदि स्थानो पर सुलभ है।

पुष्पकाल—मई, जून। प्रयोज्य अश—भौमिक काण्ड (कन्द)। औषधि सग्रह काल—जुलाई, अगस्त,

भौमिक काण्ड की **बाह्य रचना अध्ययन**—(मैक्रो-स्कोपिकल स्टेडी)-जीवक-ऋषभक के मूलकन्द २-३" तक लम्बे मसृण होते हैं। मूल के निचले भाग मे पतली-पतली कूची सदृश जटे होती हैं। प्राकृत अवस्था मे यह हरित वर्ण का एव रेखाकार है। वाह्य परत कुछ श्वेताभ होती होती है। मूल का जड की तरफ वाला भाग मोटा एव ऊपरी भाग पतला होता है। सूखने पर यह सारहीन हो जाता है। मूल स्वादरहित एव कुछ लुवावदार एव चिकना होता हे। इस मूल का गहन अध्ययन चण्डीगढ मे प्रारम्भ किया गया है।

निघण्टु एव सहिता ग्रन्थो मे जीवक ऋषभक के सदर्भ स्थल—

१—जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ, हिमाद्रिशिखरोद्भवौ।
रसोन कन्दवत् कन्दौ, निस्सारौसूक्ष्मपत्रकौ॥
जीवक कूर्चकाकार ऋषभौवृषश्रृङ्गवत्।
जीवकर्षभकौबल्यौ, शीतौशुक्रकफप्रदौ॥
—भा० नि० हरीतक्यादि वर्ग

२—जीवन्ती सदृशै पत्रै, जीवकोगुल्मकोरमृत।
कटीक्षीरी तथानूपे, भवन्तीत्यब्रवीन्मुनि॥
—कैयदेव निघण्टु

चरक संहिता—वातरक्तजन्य पीडा को कम करने के लिये च० सू० अ० ३/२१, जीवनीयगण की औषधियो मे च० सू० अ. ४/१, शुक्रजननगण की औषधियो मे च० सू० अ० ४/१६, स्नेहोपग गण की औषधियो मे ब्राह्मरसायन के योग मे च० चि० अ० १/४२, च्यवनप्राश रसायन के योग मे च० चि० १/६२, इन्द्रोक्त रसायन मे च० चि० र० पा० १/१२, वृंहणीगुटिका च० चि० अ० २/२५, वाजीकरणघृत च० चि० अ० २/३३, वृष्यघृत च० चि० अ० २/२०, वृष्य-क्षीर प्रयोग च० चि० वाजीकरणपाद अ० २/५, चन्दना-दितैल योग मे चि० चि० ३/२५७, रक्तपित्तचिकित्सा मे च० चि० अ० ४/८४, उन्मादचिकित्सा महाकल्याण-घृत मे च० चि० अ० ६/४६, क्षत क्षीण चिकित्सा मे च० चि० ११/३५, अमृतप्राशघृत मे च० चि० अ० ११/४४, श्वदंष्ट्राघृत च० चि० ११/६६, ग्रहणी चिकित्सा के मूला-सव मे च० चि० अ० १५/१५, विष चिकित्सा मे ऋषभा-दियोग च० चि० अ० २३/६४, मण्डली सर्पदंश के मञ्जि-ष्ठादि योग मे च० चि० २३/१६५, पाण्डु–हलीमक चिकित्सा मे २६/८७, वलादितैल योग मे च० चि० अ० २६/१६०, हृद्रोग चिकित्सा के कशेरुकाद्यघृत योग मे च० चि० २६/६२, शिरोरोग चिकित्सा के महामायूर घृत योग मे च० चि० २६/१६७, इसके अतिरिक्त बला-तैल, अमृताद्य तैल, श्रावण्यादितैल, मधुयष्ट्यादितैल, जीव-न्त्याद्यनुवासन्, योनिव्यापत्, वस्तिशूल, मूत्रविकार, कुम्भी स्वेद आदि कतिपय स्थलो पर जीवक-ऋषभक के प्रयोग चरक संहिता में मिलते हैं।

अष्टाङ्गसंग्रह मे वर्णित आमयिक प्रयोज्यस्थलः

अ० सं०सू०अ० १२/६०, १५/६, २४, २६, २८/६, शारीरस्थान शा० अ० १/६१, ४/५१, चिकित्सास्थान—२/७६, ३/५६, ४/५३, ५/२१; ३८, १३६, ८/२६, २७, ३०, १२/१५, २१/१४८, २३/४१, ४२, ४५, ४६, ५२, २४/७, ८, २२, कल्पस्थानः—१/२२, ३२, ५/२५, ३०, उत्तरतन्त्रचिकित्सा १/३७, ६६, ६८, २/१३, ५०, ५८, ६/२६, १६/४, २०/४, २२/४, ७, १६, ४१, २४/१६, २६/१२, ५१, २८/४, ६०, ६२, ४२/२७, २८,४४/३२, ४५/१४, ४७/४, ४६/२६, १६३, ५०/१६, १७, २२, ३१, आदि स्थानो पर जीवक – ऋषभक का उल्लेख

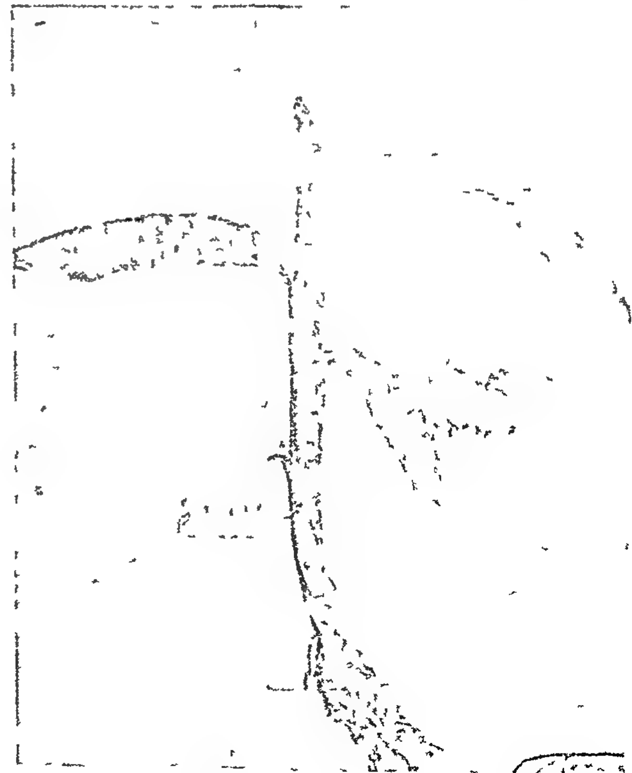
सारांश—यद्यपि आयुर्वेदिक संहिताओं मे जीवक–ऋषभक दोनो भिन्न द्रव्य स्वीकार किये गये है परन्तु बाजार में आजकल Microstylis Wallichii का भौमिक काण्ड ही जीवक-ऋषभक के नाम से मिलते है। शास्त्रों में वर्णित लक्षणो की रचनानुसार काफी साम्यता मिलती है। आधुनिक मेटेरिया मेडिका या ग्लोसरी आफ इन्डियन मेडिसिनल प्लान्टस में इन द्रव्यो का कही उल्लेख नही मिलता है। यह लेखक के पहले बार नामरूप परिचय का परिश्रम है तथा मेरी धारणा है कि हिमालय मे उपलब्ध इन कन्दो मे से ही अष्टवर्ग है। पहिचान के अभाव से शास्त्रकारो ने जीवक–ऋषभक का प्रतिनिधि विदारी कन्द माना है जो कि गुण धर्मों मे बल्य, स्तन्य एव रसायन है।

काकोली का स्वरूप

द्रव्यनाम—संस्कृत—काकोली, पयस्या, पीवरी, शीतपाकी

लैटिननाम—Roscoea Procera Royle
R Alpina Wall

यह हिमालय मे उपलब्ध एक वर्षीय शाकीय वनस्पति है। काण्ड ६ इन्च से १२ इन्च तक लम्बा मृदुरोमिल,



काकोली (Roscoea P...

पर्ण और ३ से ६ की संख्या मे आयताकार दीर्घायत, पुष्प गुलाबी श्वेत वर्ण के होते हैं।

मूल—शतावरी कन्द सदृश गुच्छों मे चार या पाच की संख्या में, मूल कन्द का बाह्यभाग कृष्णाभ तोड़ने पर श्वेत वर्ण का होता है।

प्राप्ति स्थान यह उत्तरी हिमालय के प्राय १५०० मी. की ऊँचाई से लेकर २७०० मी. की ऊँचाई तक उत्तराखण्ड गढवाल, शिमला, सोलन आदि नमदार स्थानों पर सर्वत्र सुलभ है।

पुष्पकाल—जुलाई, अगस्त। फलकाल—सितम्बर।

प्रयोज्याग—मूल। औषधि सग्रह काल—सितम्बर।

मूल की बाह्य रचना का अध्ययन—(मैक्रोस्कोपिकल स्टैडी)-मूलकन्द १.५ इंच से लेकर २ इंच तक लम्बे एव मूसली सदृश बेलनाकार होते हैं। बाह्य वर्ण कृष्णाभ वर्ण का, तोडने पर अन्दर का भाग कुछ पीताभ श्वेत एव भगुर होता है। कच्ची अवस्था मे ये कन्द गुच्छो मे एव सूखने पर अलग हो जाते है। स्वाद मे यह मधुर अनुरस वाला होता है। कभी-कभी स्थानिक व्यापारी इसी मूल को क्षीरकाकोली के नाम से भी विक्रय करते हैं।

क्षीरकाकोली का स्वरूप—

द्रव्य नाम—स.—पयस्या, क्षीर विदारी, लैटिन नाम—Lilium PolyphyllumD. Don.

यह हिमालय मे उपलब्ध एक वर्षायु शाकीय वनस्पति है। मूलकन्द बहुवर्षायु, काण्ड ८ इंच से लेकर १ फुट तक लम्बा होता है। पर्ण अवृन्त, दीर्घायत-भालाकार होते है। पुष्प गुलाबी पीताभ वर्ण के अलग-अलग खिलते है। मूल कन्द प्याज के कन्द सदृश रक्ताभ श्वेतवर्ण का छिलकेदार होता है। आग मे भूनने पर ये कन्द स्वादिष्ट एवं मधुर होते हैं। इन्ही कन्दो का औषधि मे प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी इन कन्दों के साथ Fritillaria Roylei Hook के मूलकन्द भी क्षीरकाकोली के नाम से विक्रय होते है।

पुष्पकाल—अगस्त, सितम्बर। प्रयोज्याग—मूलकन्द। औषधि सग्रह काल—अगस्त, सितम्बर।

औषधि सग्रह करने की विधि—वनौषधि सग्रहकर्ता मूलकन्दो को उष्णजल मे उबाल देते हैं, और फिर इन कन्दो को धूप मे सुखाकर रख लेते हैं। इस प्रकार इनका जलीयाश नष्ट हो जाता है तथा यह द्रव्य सड़ने से बच जाता है।



क्षीरकाकोली (Lilium Polyphyllum D. Don.)

प्राप्ति स्थान—उत्तराखण्ड हिमालय मे यह २७०० मीटर की ऊँचाई से लेकर ३६०० मीटर की ऊँचाई तक प्राय. भागीरथी घाटी, भिलगना घाटी, केदारनाथ घाटी आदि स्थानो पर घासदार ढलानो पर सुलभ है। आजकल क्षीरकाकोली का सग्रह नेपाल से किया जाता है।

मूलकन्द की बाह्य रचना व पहिचान—देखने पर ये कन्द छोटे-छोटे प्याज कन्द सदृश होते हैं। वर्ण श्वेत एव कुछ धूसर वर्ण का परतदार, अलग-अलग छिलके निकल जाते हैं। स्पर्श मे कठोर एव पानी मे उबाला हुआ कन्द कुछ पीताभ वर्ण का होता है। मुख में रखने पर कुछ चिपचिपा एव मधुर होता है। निघण्टु ग्रन्थो मे पत्र

[illegible]

[illegible]

मेदा-महामेदा का स्वरूप—

[illegible] Polyg[illegible]tum Verticillatum Alli, Polygonatum Cirrhifolium Royle

[illegible]

Cirrhifolium [illegible]

[illegible]



(Polygonatum Verticillatum)

मेदा-महामेदा

(Polygonatum Cirrhifolium)

प्राप्ति स्थान—यह उत्तराखण्ड हिमालय मे १५०० मीटर की ऊँचाई से लेकर ३६०० मीटर की ऊँचाई तक प्राय भिलगना घाटी (टिहरी गढवाल), भागीरथी घाटी (उत्तरकाशी), चमोली, जोशीमठ, चकरौता, देववन, मसूरी, शिमला आदि स्थानो पर सुलभ है।

मूलकंद की वाह्य रचना विवरण—(मैक्रोस्कोपिकल स्टेडी)-मेदा महामेदा के कन्द आर्द्रककन्द (सदृश Rhizomative) होता है। आर्द्र अवस्था मे ये कन्द श्वेत वर्ण के होते हैं तथा शुष्कावस्था मे पाण्डुवर्ण के चपटे कुछ चमकीले एव मसृण होते है।

शुष्क अवस्था मे ये कन्द स्वाद मे मधुर होते हैं। पानी मे छोडने पर यह चिपचिपा एव कुछ चिकना होता है। बाजार मे दोनो जातियाँ मिश्रित रूप मे मेदा एव महामेदा के नाम हरिद्वार, देहरादून की फार्मेसियों मे सुलभ है। व्यापारिक दृष्टि से इस मूलिका का काफी मात्रा मे इन घाटियो से सग्रह किया जाता है।

निघण्टु ग्रन्थो एव सहिताग्रन्थो के कतिपय स्थानो पर मेदा महामेदा का उल्लेख मिलता है। यथा—

महामेदोऽभिध. कन्दो, मोरगादौ प्रजायते।
शुक्लार्द्रकनिभः कदो, लताजात. सपाण्डुर ॥
महामेदाभिदः ज्ञेयो, मेदालक्षणमुच्यते।
शल्यपर्णी मणिच्छिद्रा मेदामेदाभवाधवरा ॥
मेदा युग्म गुरुस्वादुः वृष्यस्तन्य कफापहम् ॥
—भा०प्र०नि०

मेदा स्वनामख्यात. लताजातः शुक्लकद विशेष।
—अ० हृ० अरुणदत्त

महामेदा गौडदेशीय स्वनामख्यात कदविशेष
—अ०उ०त० २४

मेदा-महामेदा स्वनामख्याता। (डल्हण सु.सू.अ. ३८)

इस प्रकार कतिपय स्थल महामेदा एव मेदा के आमयिक प्रयोग के सहिताग्रन्थो मे उपलब्ध है, जो कि विस्तारभय से यहाँ पर देना सम्भव नही है। देखिये सचित्र आयुर्वेद मे १९६६ के अङ्को मे। लेखक के विचार से प्रचलित मेदा-महामेदा शास्त्रीय रचना के आधार पर काफी साम्यता रखती है। कुछ विद्वान शकाकुल के छोटे छोटे टुकडो को मेदा के नाम से विक्रय करते है। अत विद्वानो को इस दिशा मे विचार करना चाहिए। मेरा अपना अनुभव है कि शास्त्रीय मेदा एव महामेदा से इन्ही द्रव्यो का उपयोग होना चाहिए।

ऋद्धि-वृद्धि का स्वरूप—

द्रव्यनाम··· ··· सस्कृत·······ऋद्धि, वृद्धि
लैटिन नाम··· Habenaria Intermedia D. Don.
Habenaria Sp.

यह हिमालय मे उपलब्ध एक वर्षायु शाकीय पौधा है। कन्द द्विवर्षायु, काण्ड ८ इन्च से १॥ फुट तक लम्बा तलोत्थ होता है। पर्ण-अवृन्त क्रमानुसार एव दीर्घायत होते हैं। पुष्प खिलने पर श्वेत वर्ण एव कुछ हरिताभ होते हैं।

मूल—कन्दिल, द्विवर्षायु, अण्डाकार, मसृण एव मृदुरोमिल होता है। हिमालय की घाटियो मे इसकी कतिपय जाति एव प्रजातियाँ पाई जाती है जिन्हे कि बनौषधि सग्रहकर्ता एकत्रित करते है।

पुष्पकाल······ ····जुलाई, अगस्त
प्रयोज अङ्ग ······ ···मूलकन्द
औषध सग्रहकाल······सितम्बर, अक्टूबर

व्यापारी लोग आर्द्र मूलकन्दो को सर्वप्रथम पानी मे उबाल देते है और उसके बाद सुखाकर बाजारो मे विक्रय करते है। ऐसा करने पर इन कन्दो का जलीयाश शीघ्र नष्ट हो जाता है, एव सडने से बचाया जा सकता है।

प्राप्तिस्थान—यह उत्तरी हिमालय मे १,८०० मीटर की ऊँचाई से लेकर २,७०० मीटर की ऊँचाई तक प्राय घासदार ढलानो मे सर्वत्र सुलभ है। उत्तराखण्ड गढवाल मे भिलगनाघाटी (टिहरी गढवाल), जमुनोत्री, केदारनाथ, चकरौता, मसूरी, शिमला, चम्बा आदि स्थानो पर सुलभ है। इस समय नेपाल से इस द्रव्य का काफी मात्रा मे सग्रह किया जाता है।

मूलकद की बाह्य रचना (मैक्रोस्कोपिकल स्टेडी)—मूलकन्द कठोर एव विलायती कपास की गाठ के सदृश होता है। रग कुछ धूसर एव कृष्णाभ होता है। शुष्कावस्था में कठोर एव ठोस होते हैं। लम्बाई मे १ से १॥ इन्च लम्बे एव कुछ गाठदार होते है। प्राकृत अवस्था मे श्वेतवर्ण के एव गरम पानी मे डालने पर यह कुछ काले रग का हो जाता है। यही कारण है कि बाजार मे ये कन्द

कृष्णाभवर्ण के मिलते है। तोडने पर मूलकन्द का आभ्यन्तरिक भाग कुछ चमकीला एव श्वेताभवर्ण का होता है। स्वाद मे यह कुछ कषैला होता है।

निघण्टु एव संहिताग्रन्थो के कतिपय स्थलो पर ऋद्धि वृद्धि का वर्णन मिलता है। यथा—

ऋद्धि-वृद्धिश्च कन्दौ द्वौ, भवतः कोशले चले।
श्वेतलोमान्वित. कंदौ लताजात. सरन्ध्रकः॥
तूलग्रथि समा ऋद्धि, वामावर्त फला च सा।
वृद्धिस्तु दक्षिणावर्ता, फला प्रोक्तामहर्षिभिः॥
—भा०प्र०नि० हरीतक्यादि वर्ग

चरक ने ऋद्धि-वृद्धि का निर्देश जीवनीयगण, स्नेहोपग गण, जीवन्त्याद्यनुवासन, च्यवनप्राश आदि कतिपय स्थलो पर किया है। विस्तारभय से यहाँ पर सभी आमयिक प्रयोग देना सम्भव नही है।

आजकल अष्टवर्ग के द्रव्य आसानी से उपलब्ध नही होते हैं तथा शास्त्रीय निर्णय भी अभी तक पूर्णरूपेण स्वीकार नही किया है। यह तभी सम्भव है जबकि शोध करने के जो कतिपय आधार हैं उस पर उपर्युक्त द्रव्यो की पहिचान की जा सके।

निघण्टु ग्रन्थ मे अष्टवर्ग के प्रतिनिधि द्रव्यो की तालिका भी पाठको की सुविधा हेतु नीचे दी गई है—

अष्टवर्ग के प्रतिनिधि द्रव्य

सख्या	शास्त्रीय नाम	प्रतिनिधी द्रव्य	लैटिन नाम
१—	जीवक-ऋषभक	विदारीकन्द	Pueraria tuberosa Dc
२—	काकोली-क्षीरकाकोली	अश्वगन्धा	Withania somnifera Dunal.
३—	मेदा-महामेदा	शतावरी	Asparagus racemosus willd.
४—	ऋद्धि-वृद्धि	वाराहीकन्द	Dioscorea bulbifera Linn.

या

१—	जीवक	वहमन सफेद	Centaurea behen Lin
२—	ऋषभक	वहमन लाल	×
३—	मेदा	सालम मिश्री	Eulophia Campestris
४—	महामेदा	शकाकुल	Polygonatum Sp
५—	काकोली	काली मूसली	Curculigo orchiodes
६—	क्षीरकाकोली	श्वेत मूसली	Chlorophytum orundinaceum
७—	ऋद्धि	चिडियाकन्द	Asparagus
८—	वृद्धि	सालमपञ्जा	Orchis latifolia Linn

उपर्युक्त द्रव्यो का प्रयोग आजकल अष्ट वर्ग के अभाव मे फार्मेसियाँ करती हैं। प्रतिनिधि द्रव्यो का उल्लेख भी निघण्टु ग्रन्थो ने किया है। यथा—

मेदा महामेदा स्थाने शतावरी मूलम्, काकोली क्षीर काकोली स्थाने अश्वगन्धामूलम्, जीवक-ऋषभक स्थाने विदारी, ऋद्धि-वृद्धि-स्थाने वाराही, केचित् ऋद्ध्याभावे बलाग्राह्या, वृद्ध्याभावे महाबला, मेदाभावे चाश्वगन्धा, महामेदेनु सारिवा" जीवक-ऋषभकाभावे गुडूचीवशलोचने, काकोलीयुगलाभावे निक्षिपेच्चशतावरी"

अन्त में लेखक निदेशक केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसंधान परिषद (सी. सी आर. आई एम एच) भारत सरकार का हृदय से आभारी है। उपयोगी सुझावो के लिये मैं डा० पी० एन० चतुर्वेदी आफिसर इन्चार्ज रीजनल रिसर्च सेन्टर (आयुर्वेद) योगिन्द्रनगर का आभार मानता हूँ।

आधार ग्रंथ १—चरक संहिता-चक्रपाणिटीका
२—सुश्रुत संहिता-डल्हणटीका
३—अष्टाङ्ग हृदय-अरुणदत्तटीका
४—भाव प्रकाश निघण्टु
५—फ्लोरा सिमलेन्सिस
६—उपलब्ध अष्टवर्ग का वानस्पतिक अध्ययन वैद्य मायाराम उनियाल, सचित्र आयुर्वेद मार्च १९६६
७—बॉटेनिकल स्टेडी आफ अष्टवर्ग मायाराम उनियाल, नागार्जुन अप्रैल १९६७
८—स्टेडी आफ अष्टवर्ग क्रोमेटोग्राफिक एक्जामिजेशन—आयुर्वेद अनुसन्धान पत्रिका वाराणसी—वर्ष १९७० और १९७२

वैद्य मायाराम उनियाल

श्री वैद्य मायाराम उनियाल शास्त्री आयुर्वेद अनुसंधान अधिकारी
प्रभारी- क्षेत्रीय आयुर्वेद अनुसन्धान केन्द्र ग्वालियर रोड झाँसी

इस लेख के लेखक श्री मायाराम उनियाल शास्त्री आयुर्वेद अनुसधान अधिकारी क्षेत्रीय आयुर्वेदीय अनुसधान केन्द्र सी. सी आर. आई एम. एच ग्वालियर झाँसी है। ये एक नवयुवक अनुसंधानकर्त्ता और हिमालयीय जड़ी बूटियो के विशेष ज्ञाता है। समय समय पर इनका लेख जड़ी बूटियो पर प्रकाशित होता रहता है और हमारे विशेष आग्रह पर लेख लिखा गया है। इस निमित्त उनियाल जी धन्यवादाह है। चोरक और चण्डा के विषय मे इनका मत है कि ये दोनो दो द्रव्य हैं वृहत्रयी मे चोरक और चण्डा पृथक-पृथक सुगन्ध द्रव्यो के रूप मे व्यवहृत हुए है। इनका प्रकरण के अनुसार उचित अर्थ लगा लेना चाहिये। नि सदेह ये पृथक दो द्रव्य है। इनके विषय में दो द्रव्यो का उल्लेख नाम व वर्ग के सहित लेखक ने दिया है। इस पर विद्वान व वनस्पति शास्त्रज्ञ अपनी सम्मति दे सकते है।

--विश्वनाथ द्विवेदी

इस लेख मे चोरक एव चण्डा के सन्दर्भ मे शास्त्रीय तर्क स्पष्ट किया गया है तथा यह स्पष्ट किया गया है कि ये दोनो द्रव्य अभी तक सदिग्ध है। लेखक को बनौषधि सर्वेक्षण कार्य काल मे उन द्रव्यो के नमूने उत्तरी हिमालय मे मिले है जो कि शास्त्रीय चोरक एव चण्डा हो सकते हैं। बनौषधि विशेषज्ञ डा० बलवन्त सिंह जी ने भी ग्लौसरी आफ वेजिटेविल ड्रग्स इन वृहद्त्रयी मे अपने विचार चोरक के सम्वन्ध मे स्पष्ट किये हैं जोकि मेरे विचार से भी उपयुक्त हैं।

चरक सहिता एव सुश्रुत सहिता मे चोरक का पाठ प्राय कतिपय स्थलो पर आया है। सुश्रुत ने सूत्र स्थान ३८ के एलादिगण मे चोरक का पाठ दिया है। सुश्रुत सहिता के टीकाकार डल्हण ने कतिपय स्थलो पर ग्रन्थिपर्ण का भेद चोरक माना हे। यही कारण है कि निघण्टु-ग्रन्थो मे भी चोरक का पर्याय ग्रन्थिपर्ण आया है। सुश्रुतसहिता चिकित्सा स्थान अध्याय ३७ मे तस्कर शब्द भी चोरक के लिए आया हे जो कि सुगन्धि विशेष द्रव्य है।

अष्टाङ्ग संग्रह मे चण्डा एव चोरक इन दो द्रव्यो का उल्लेख मिलता है जिनका कि विवरण इस प्रकार से है—

चण्डा—अ० स० सू० १५/३७, १६/३७, चिकित्सा २/६०, ९६, ४/५२, ६/५२, ५७, १६/१८, २१/५१, उत्तर० ४०/७७, १५/३७ मे चण्डा, अम्लवेतस, भूमिआंवला, शटी, एला, अगुरु आदि श्वासघ्न द्रव्यो मे चण्डा का पाठ मिलता है। अष्टाङ्ग सग्रह सूत्रस्थान अध्याय

१६ के एलादिगण मे चण्डा एव चोरक का एक साथ पाठ दिया है। चिकित्सा स्थान अध्याय २ मे शीतनाशक द्रव्यो मे चोरक का पाठ मिलता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह उष्ण वीर्य प्रधान द्रव्य है। अष्टाङ्ग सग्रह उत्तर तन्त्र अध्याय ४० के बालसूर्य अगद मे चण्डा नामक द्रव्य का उल्लेख है। इस प्रकार उपर्युक्त कतिपय स्थलो पर चण्डा का वर्णन मिलता है।

चोरक—अष्टाङ्ग स० सू० १५/४७, १६/३७, १८/२४, चि० २/९०, ४/५३, ६/५४ ६३, क० १/३०, उ०२/५१, ६/४८, ९/२१, १०/३१, २८/५, ४७/४०, अष्टाङ्ग स० अध्याय १५ मे सज्ञास्थापन द्रव्यो मे एव अध्याय १६ मे एलादिगण मे चोरक चण्डा का पाठ आया है। उपर्युक्त कतिपय स्थलो के साथ साथ उत्तर तन्त्र अध्याय ४७ के महासुगन्धि नामक अगद मे ग्रन्थिपर्ण एव चोरक का पाठ मिलता है।

निघण्टु ग्रन्थो के कर्पूरादि वर्ग मे चोरक का पाठ मिलता है यथा-"तस्करश्चोरक, चण्डा कितव क्रोध मूर्च्छित ।" इस प्रकार निघण्टु ग्रन्थो मे तस्कर, चोरक, चण्डा, कितव, क्रोध मूर्च्छित, विरोध, कोटक, धनहरी, क्षेम, राक्षसी, गणहासक, शकित, दुष्पत्र, क्षेमक रिपु, चपल, धूर्त, निशाचर, फलचोरक, ग्रन्थिक, सुगन्धि, पर्ण चोरक, ग्रन्थि पर्ण आदि कतिपय पर्याय मिलते हैं। गुणो की दृष्टि से चोरक तीव्रगन्ध, उष्ण, मधुर तिक्त, लघुपाकी, हृद्य, वात, कण्डू नाशक, रुधिर विकार, कृमि, अजीर्ण, दुर्गन्धनाशक एव भूत बाधाहर है।

भावप्रकाश निघण्टुकार ने क्रमश ग्रन्थि पर्ण, स्थौणेयक एव चोरक (ग्रन्थि पर्ण भेद) का एक स्थल पर वर्णन किया है जिसमे यह स्पष्ट होता है कि ये तीनो भिन्न-भिन्न द्रव्य है जोकि अति सदिग्ध हैं। थुनेर (Taxus Baccata) ही शास्त्रीय स्थौणेयक है ऐसा आधुनिक विद्वान मानते हैं। जिसमे लेखक की भी सहमति है। विचारणीय प्रश्न यह है कि चोरक एव ग्रन्थि पर्ण तथा चण्डा वनस्पति शास्त्र के आधार पर क्या हो सकते हैं जिस पर विद्वानो को विचार करना है। क्या चोरक से भिन्न द्रव्य चण्डा है या ग्रन्थिपर्ण ही चण्डा है यह विचारणीय प्रश्न है।

लेखक के विचार से चोरक एव चण्डा दोनो भिन्न द्रव्य हैं जो कि अष्टाग सग्रहकार के सूत्रस्थान अध्याय १६ के एलादिगण मे चोरक एव चण्डा का एक साथ पाठ दिया है एव अष्टागसग्रह के कतिपय स्थलो से भी स्पष्ट होता है। वोपदेव विरचित हृदय दीपक के एकपाद वर्ग एव द्विनाम वर्ग मे भी चण्डा तथा चोरक का अलग-अलग वर्णन मिलता है। अत लेखक के विचार से चोरक सदृश सुगन्धित द्रव्य चण्डा है। कतिपय विद्वानो ने स्थौणेयक एव चोरक को एक ही द्रव्य मान लिया है जो मेरे विचार से भ्रामक है। चरक टीकाकार चक्रपाणि ने चोरक का परिचय चोर पुष्पिका स्वनाम प्रसिद्ध इन शब्दो मे किया है। डल्हण ने चोरक को ग्रन्थिपर्णानुकारी सदृश बतलाया है। यही कारण है कि कतिपय विद्वान ग्रन्थिपर्ण का भेद चोरक मानने लगे हैं।

यह सम्भव है कि ग्रन्थिपर्ण चोरक सदृश द्रव्य हो जिसके सदर्भ में स्पष्ट मत व्यक्त नही किया जा सकता है।

इस लेख मे उपर्युक्त तथ्यो से यह स्पष्ट किया गया है कि चोरक एव चण्डा दोनो भिन्न-भिन्न द्रव्य है जिन्हे वनस्पति शास्त्र के आधार पर Angelica Glouca Edgw (चोरक) एव Angelic. Archangelica linn (चण्डा) कहते है जिनका कि वानस्पतिक परिचय, प्राप्ति स्थान एव स्थानिक प्रयोग इस प्रकार से है—

द्रव्य नाम—सस्कृत—चोरक, तस्कर; स्थानिक—(गढवाल) चोरु, (हिमाचल) चोरा, लैटिन—Angelica Glouca Edgw।

वानस्पतिक परिचय—यह हिमालय मे उपलब्ध शतपुष्पा कुल का बहुवर्षायु क्षुप है। मूल—बहुवर्षायु, गाठदार एव नवीन जडे एकफुट तक लम्बी तथा उग्रसुगन्धित होती है। काड मृदु रोमिल एव ३ से ४ फुट तक लम्बा होता है। पत्र—एव पत्रक एक ६ से ९ इच तक लम्बा त्रिपत्रक एव दन्तुर होते हे। पुष्प प्रशाखो पर खिलते है। खिलने पर ये पुष्प गुच्छो मे एव श्वेताभ होते हैं। बीज सोया सदृश पतले एव चपटे होते है।

पुष्पकाल—अगस्त, फलकाल—सितम्बर अक्टूबर।

प्रयोज्य अङ्ग—मूल।

इसके अतिरिक्त इन घाटियो मे चोरक सदृश दूसरा क्षुप भी मिलता है जिसे कि ग्रामीण लोग रिखचोरा कहते है। यही शास्त्रीय चण्डा है जिसे कि Angelica Archa-

(शेपाश पृष्ठ २४९ पर)

डा० श्री राज नारायण सिंह
विभागाध्यक्ष- द्रव्यगुण विभाग
राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय
लखनऊ



आप अद्यतन द्रव्य गुण विज्ञान के ज्ञाताओं में अग्रणी, शांत कर्मठ व नई पीढ़ी के विद्वानों मे अग्रणी हैं। राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रिंसिपल श्री वीरेन्द्र कुमार शर्मा ने प्रेरणा करके अपने विद्यालय से ३ लेख भेजवाये हैं, एतदर्थ वे धन्यवाद के पात्र है। द्रव्य गुण विभाग के प्रोफेसर व अन्य कार्यकर्ताओं ने इसमे अपनी रुचि दिखलाई है एतदर्थ धन्यवादार्ह हैं। प्रस्तुत लेख मे प्रसारिणी के नाम पर चार द्रव्यों का नाम आता है। उनमे प्रसारिणी नाम से गंध करने वाली प्रसारिणी पिडेरिया फोयेरीडालिन को व्यवहार मे लाया जाता है। लेखक की सम्मति मे इसे प्रसारिणी भेद माना जाय और मेरीमिया हेस्टाटा को प्रसारिणी माना जाय। पाठक इस पर विचार करें।

चरक ने प्रसारिणी मारिणी—अवेहिवात पर्याय देकर वातशमन प्रयोग दिये हैं और वात प्रशमन के लिए प्रयोग किया है। सुश्रुत ने भी इसी प्रकार इसका प्रयोग किया है। इस प्रकार चिरकाल से प्रयुक्त होने वाली प्रसारिणी या गंध प्रसारिणी का प्रयोग होता आया है।

लेखक का यह कथन है कि Paedaria foetida Linn का प्रयोग सधि जाड्य व आमवात में अधिक उत्साहवर्द्धक नहीं सिद्ध हो रहा है। इसलिए गंध प्रसारिणी को पृथक द्रव्य या प्रसारिणी का एक भेद मानकर ग्रहण किया जाय, और Merremia Hastata को प्रसारिणी माना जाय। यह विचारणीय विषय है क्योंकि गंध प्रसारिणी तत्काल वात का शमन करती है और Merrimia मे ये गुण नही है। न तो उसका रस न गुण और न वीर्य Peadaria की तरह वात शामक हैं। इस पर अच्छी तरह विचार करके तब निर्णय लेना चाहिये क्योंकि कोई उद्धरण लेखक ने उपस्थित नहीं किया है।

प्रसारिणी के पचाग मे एक उड़नशील तैल, हींग की तरह गंध एवं अल्फा एव बीटा पिडेरिन नामक दो अल्फाईड्स भी पाये जाते है जिनका प्रभाव नाडी ततुओं पर तत्काल होता है। Mariemia मे कोई इस प्रकार का तत्व वातशामक नहीं पाया जाता और इस पर अभी पर्याप्त प्रयोग भी नहीं हुये है।

आजकल के वनस्पति शास्त्री श्री बलवन्तसिह जी, डा० बापालाल शाह आदि सब विद्वान अभी तक Peadaria को ही प्रसारिणी मानते है। श्री ठाकुर बलवन्त सिह जी का तो एक नया ही विचार है। उनका कथन है कि प्रसारिणी बला जाति की औषधि हो सकती है और श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य के अनुसार नागबला (Sidaveronicaefolia Linn) है। इसका कारण यह है कि राज निघण्टुकार ने इसके पर्यायो मे राजबला शब्द का प्रयोग किया है। नागबला शब्द का प्रयोग वहाँ नही है।

राजस्थान मे खींप को प्रसारिणी मानते है। यह लेप्टाडेनिया स्पार्टियम् व्हाइट है। अत पिडेरिया ओडरिया ही प्रसारिणी है, और उसकी जड को डा० चोपड़ा द्वारा वामक लिख देने से उसका महत्व नष्ट नही हो जाता। मेरी राय मे तो पिडेरिया फिटिडा और मेरिमिया हिस्टाटा का प्रयोग एक स्थान पर रोगी रखकर कर लेना चाहिए और जिसमे अधिक गुण हो उस पर विचार होना चाहिए। मैने दोनो का प्रयोग स्वय ही किया है और पिडेरिया के गुण अधिक उत्तम पाये है। —विश्वनाथ द्विवेदी

प्राचीन आयुर्वेदीय गन्थो मे प्रसारिणी के कई चिकित्सीय योगो का उल्लेख है। आजकल भी इस द्रव्य का प्रयोग कई व्याधियो मे किया जाता है, परन्तु प्रसारणी के नाम से देश के विभिन्न स्थानो पर पृथक्-पृथक् द्रव्यो का ग्रहण किया जाता है। अतः आज के चिकित्सक वर्ग के सामने यह समस्या है कि प्राचीन ग्रन्थो मे उल्लिखित प्रसारणी के नाम से किस निर्विवाद द्रव्य का ग्रहण किया जाय। सम्प्रति निम्नलिखित वनस्पतिया प्रसारणी के नाम से विभिन्न स्थानो पर ग्रहण की जा रही है—

(१) Paederia foetida Linn प्रसारिणी–पसरन
(२) Merremia hastáta Hallier f —पसरन
(३) Merremia tridentata Hallier f. दक्षिण-प्रदेश की प्रसारिणी
(४) Convolepvulus arvensis Linn हिरनपुट्टी-हिरनखुरी
(५) Leptadenia spartium wight–प्रसारिणी

उपरोक्त वनस्पतियो मे किसमे प्रसारणी के कथित गुण सर्वाधिक अंश मे उपलब्ध है इस दृष्टिकोण से यह विवेचन प्रस्तुत किया गया है और आयुर्वेदिक वाङ्मय मे प्राचीन काल से अब तक के ग्रन्थो मे प्रसारणी के परिचयात्मक एव गुणकर्मात्मक विषयक उपलब्ध तथ्यों के आधार पर प्रसारणी के सम्बन्ध मे प्रचलित संदिग्धता निवारण का प्रयत्न किया गया है।







परिचयात्मक विवेचन—

प्राचीन आचार्यों ने द्रव्यो का परिचय पृथक् न लिखकर उनके विभिन्न नामो के व्याज मे उनका परिचय दिया है। इसीलिए एक द्रव्य के अनेक विशेषण रूप पर्याय नाम दिये हैं, जिसमे से कुछ नाम उसके स्वरूप के बोधक तथा परिचय मे सहायक हैं। प्रसारिणी के निम्नांकित पर्याय● उसके स्वरूप बोधक है—

(१) प्रसारणी, प्रसारिणी, सरणी, सारणी, सरणा, सुप्रसरा, प्रसरा, सरा—ये सभी शब्द गत्यर्थक 'सृ' धातु से बने है, जिसका तात्पर्य है कि यह वनस्पति शीघ्रता से बढती है, प्रसरणशील तथा आरोहिणी होती है।

(२) प्रतानिनी, प्रताननी, प्रतानिका, "प्रतानोऽस्ति अस्या" अर्थात् प्रसारणी एक लता होती है जो प्रतान देकर फैलकर तथा आरोहण कर प्रतान बनाती है।

(३) चारुपर्णी, चन्द्रपर्णी, भद्रपर्णी, चन्द्रवल्ली-जिसकी लता तथा पत्र देखने मे सुन्दर हो। चमकीले-चिकने और रात्रि मे पुष्पित होने वाली हो।

इन पर्याय संज्ञाओ से प्रसारणी के स्वरूप का जो बोध होता है वह कहाँ तक आजकल ग्राह्य वनस्पतियो में पाया जाता है, इस दृष्टि से उन सभी द्रव्यो का वानस्पतिक परिचय दिया जा रहा है जो प्रसारणी के नाम से ग्रहण किये जाते हैं —

● (क) प्रसारणी सुप्रसरा सारणी सरणी च सा।
चारुपर्णी राजबला भद्रपर्णी प्रतानिका ॥
(धन्वन्तरि निघण्टु)

(ख) प्रसारिणी सुप्रसरा सारणी सरणी सरा।
चारुपर्णी राजबला भद्रपर्णी प्रतानिका ॥
प्रबला राजपर्णी च बल्या भद्रबला तथा।
चन्द्रवल्ली प्रभद्रा च ज्ञेया पचदशाह्वया ॥
(राज निघण्टु)

(ग) प्रसारणी राजबला चारुपर्णी प्रतानिका।
शारणी सारणी भद्रपर्णी सुप्रसरा सरा ॥
(मदनपाल निघण्टु)

(घ) प्रसारणी राजबला भद्रपर्णी प्रताननी।
सारणी सारणी भद्र बला चापि कटम्भरा ॥
(भावप्रकाश)

(ङ) प्रसारणी राजबला गंधाली च कटम्भरा।
गंधाढ्या गधभद्रा च सारिणी सरिणी तथा ॥
(शालिग्राम निघण्टु)

(क) Paederia foetida Linn (चित्रसख्या १)-यह Rubiaceae-मजिष्ठा कुल की लता जाति की वनस्पति है। इसकी लता बहुत विस्तार से फैलने वाली तथा आरोहणशील होती है। तना लम्बा, पतला, स्निग्ध और दृढ होता है। नवीन शाखायें कोमल होती है। पत्र अभिमुख, आकार मे ५–१५ सेमी० लम्बे, २–५ सेमी० चौडे लट्वाकार, नुकीले एव लम्बे पत्रदण्ड से युक्त होते है। दोनो पत्रो के बीच मे प्रति ग्रन्थि पर दो दो सयुक्त पुरवपत्र होते हैं। पुष्प गुलाबी रग के, नलिकाकार, मजरियो में होते है। फल चपटा, चिकना, पच रेखायुक्त तथा एक बीज वाला होता है। बीज भी चिकना, चपटा एव पतले आवरण से युक्त होता है। पुरानी लताओ की जड २–५ सेमी. चौडी होती है। इसके पौधे से एक प्रकार की दुर्गन्ध निकलती है जो इसकी पत्तियो के मसलने से और स्पष्ट हो जाती है। यह वनस्पति भारतवर्ष मे प्राय सभी प्रदेशो मे कही न कही प्राप्त होती है, परन्तु उत्तरी भारत मे अधिक मिलती है। मध्य तथा पूर्व हिमालय मे ५००० फीट की ऊँचाई तक इसकी लता प्राप्त होती है।

(ख) Merremia hastata Hallier f (चित्र सख्या २)-यह Convolvulaceae कुल की बहुवार्षिक प्रसरणशील लता है। शाखायें लम्बी, चिकनी, कोणयुक्त तथा आरोहणशील होती हैं। मूलवृन्त लघु तथा मोटा होता है। पत्र सरल, एकान्तर, अवृन्त तथा कुन्ताकार होता है। पत्र की लम्बाई २॥ से ७॥ सेमी० तथा चौडाई आधा सेमी० होती है। पुष्प छोटे, एकल कक्षस्थ तथा लम्बे वृन्तो पर लगे होते हैं। पुष्प हल्के पीत वर्ण के होते है। फल अण्डाकार या चपटा गोलाकार और द्विकोष्ठीय होता है। बीज चार होते हैं। मूल २५ सेमी. तक लम्बी, १ सेमी. चौडी, टेढी मेढी तथा गहरे भूरे रग की होती है। मूलत्वक् आसानी से पृथक् हो जाता है। ताजी मूल से एक क्षीर सदृश पदार्थ निकलता है जो सूखने पर हल्के भूरे रग का हो जाता है। इसकी लता दक्षिण भारत के पर्वतीय प्रदेशो मे ३००० फीट तक की ऊँचाई तक पायी जाती है। उत्तर मे बुंदेलखड तक तथा पूर्व मे असम की पहाडियो मे विभिन्न जलवायु वाले स्थानो पर यह मिलती है।

(ग) Merremia Tridentata, Hallier f (चित्र स. ३)—यह भी Convolvulaceae कुल की एकवार्षिक

या बहुवार्षिक लता है तथा प्रसरणशील और आरोही स्वभाव की है। पत्र सरल, छोटे, एकान्तर अनुपत्री तथा लघुपत्र वृन्त युक्त होते है। पत्ते १/२ से २॥ सेमी लम्बे, १॥ से ५ मिमी. चौडे तथा अग्रभाग पर त्रिदन्तुराकार होते है। पुष्प पीतवर्ण तथा एक साथ २-३ पुष्प निकलते है। फल द्विकोष्ठीय तथा चार बीज युक्त होते है। मूल पतली, हल्के भूरे रग की होती है। ताजी मूल मे अल्प मात्रा मे क्षीर तुल्य पदार्थ निकलता है।

इसकी लता भी दक्षिण भारत के पर्वतीय प्रदेश मे उत्पन्न होती है तथा उत्तर मे छोटा नागपुर तक मिलती है।

(घ) Convolvulus arvensis Linn—यह भी Convolvulaceae कुल की प्रसरणशील लता है। मूल-वृन्त से ही इसकी शाखायें चारो तरफ फैलती है। पत्र—२॥ से ६॥ सेमी. लम्बे तथा विभिन्न चौडाई वाले होते है। ऊपर के पत्र अण्डाकार तथा प्रारम्भिक पत्र प्राणिवृत् खण्डित होते है। पुष्प श्वेत या गुलाबी रग के, फल ६ मि मी लम्बे गोलाकार तथा बीज रक्ताभ कृष्ण वर्ण के होते है। यह लता प्राय सभी देशो मे उपलब्ध है।

(ङ) Leptadenia spartium wight–यह Asclepiadaceae कुल का एक क्षुप है जो लघु आकार का लगभग १ मीटर ऊँचा और सीधा होता है। शाखायें पतली तथा सरल होती है। पत्र–७-१० सेमी लम्बे, १/२ १ से मी चौडे तथा लघुवृन्त युक्त होते हे। पुष्प छोटे-छोटे, हरिताभ पीत और गुच्छ रूप मे निकलते हैं। फल एकसेवनी रूप के लम्बे, पतले तथा अग्रभाग पर चचुवत् रचनायुक्त होते है।

यह भारत के पश्चिमी खड मे राजस्थान, पजाब, गुजरात आदि प्रदेशो मे उत्पन्न होता है।

गुणकर्मात्मक विवेचन—प्रसारिणी की कुछ पर्याय सज्ञाये ऐसी भी है जो इसके गुणकर्म की बोधक हैं। इन पर्यायो को उनके निहित अर्थ के सहित प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) प्रसारणी—'प्रसार्यते अङ्गमनया' इसके प्रयोग से सन्धिजाड्य तथा अङ्गो का सङ्कोच दूर होकर उनका प्रसारण होता है अत इसे प्रसारणी सज्ञा दी गई है।

(२) राजबला –'बलाना बलप्रदाना राजा इव राजबला' अर्थात् बलदायक पदार्थों मे श्रेष्ठ होने से इसे राजबला कहा गया।

(३) भद्रबला—'भद्र बलमस्या' अर्थात् यह श्रेष्ठ बलदायक है।

(४) प्रबला—'प्रकृष्ट बलमस्या सा' इसका भी तात्पर्य श्रेष्ठ बलदायक होता है।

(५) प्रभद्रा—'प्रकर्षेण भद्र करोति इति प्रभद्रा' जो अपने गुणो के कारण कल्याणदायक है।

(६) बल्या—'बल ददाति इति बल्या' जो बलदायक हो।

(७) गन्धभद्रा—'भद्र गन्ध यस्या सा' जिसकी गन्ध कल्याणप्रद हो।

(८) कटम्भरा—'कट बिभर्ति इति कटम्भरा' जो कटि का धारण-पोषण करे या कटि रोगो को दूर करे।

(९) गन्धाढ्या—'गन्धेन आढ्या' जिसमे पर्याप्त गन्ध हो।

(१०) गन्धाली, गन्धोली—गन्धयुक्त होने से यह सज्ञा दी गई प्रतीत होती है।

उपरोक्त पर्यायो से प्रसारणी के मुख्य गुण कर्मो पर प्रकाश पडता है। चरक के चिकित्सा स्थान २८ वे अध्याय मे 'रास्ना तेल' की भाति 'प्रसारणी तेल' बनाकर प्रयोग करने का विधान है। चिकित्सा स्थान ९वे अध्याय मे 'महापैशाचिक घृत' के घटक द्रव्य के रूप मे कटम्भरा नाम से इसका समावेश है। इसी के विमान स्थान ८ वे अध्याय मे 'भद्रपर्णी' नाम से वमन द्रव्यो मे इसकी गणना है। भाव प्रकाश मे इसे तिक्तरस, उष्णवीर्य, गुरु, वृष्य, बल्य, सधानकारक, वात, वातरक्त तथा श्लेष्महर कहा है। इसी ग्रन्थ मे एक योग 'प्रसारणी लेह' दिया गया है जिसे आमवात मे प्रयोग करने का निर्देश हे चक्रदत्त मे 'कुब्जप्रसारिणी तेल' का उल्लेख किया है जिसे आमवात से उत्पन्न सधिजाड्य तथा अङ्गो के सकोच मे प्रयोग का विधान है। अन्य निघण्टुकारो ने भी प्रसारिणी के निम्न

रस, उष्णवीर्य, सर, बल्य, सधानकारी, शोथहर, वातशामक आदि गुणकर्मों का पोषण किया है।•

विमर्श—उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'प्रसारणी' एक प्रसरणशील तथा आरोही वनस्पति है, जिसकी लता तथा पत्र देखने मे भव्य लगते हैं। इसका रस तिक्त, गुण गुरु, वीर्य उष्ण तथा कर्म कफवात शामक, शोथहर, सधानकृत, बल्य, वृष्य, आमवात तथा तज्जन्य सधिजाड्य को दूर करने वाला होता है। इस आधार पर 'Leptadenium spartium' को प्रसारणी मानना निराधार है क्योकि इसका एक लघु क्षुप होता है तथा प्रसारणी मे कर्मसादृश्य भी नही है। इसे जीवन्ती सज्ञा देने पर विचार किया जा सकता है। Convolvulus arvensis, Linn को भी केवल प्रसरणशील लता होने से कुछ व्यक्तियो ने प्रसारणीय सज्ञा दी है। इस वनस्पति में प्रसारणी सदृश गुणकर्म तथा प्रयोग का उल्लेख किसी ग्रन्थ मे प्राप्त नही होता, अत इसे प्रसारणी नही माना जा सकता।

जो लोग 'Paederia foetida, Linn' को प्रसारणी मानते है उसमें अधिकांश ने इसके लिए 'गन्ध प्रसारणी' सज्ञा दी है क्योकि इस वनस्पति से एक प्रकार की दुर्गन्ध निकलती है जो इसके पत्तो के मसलने से और स्पष्ट ज्ञात होती है, इसीलिये इसके लैटिन नाम मे भी 'foetida' शब्द रखा गया है जिसका अर्थ है दुर्गन्ध युक्त। डा० चौपडा तथा डा० मुकर्जी ने इसे अतिसार तथा प्रवाहिका मे लाभप्रद तथा रोगोत्तर दौर्बल्य मे बल्य के रूप मे उपयोगी पाया है। राक्सवर्ग ने इसकी मूल को वामक बतलाया है। आजकल के परीक्षणो से इसका प्रयोग आमवात तथा सन्धिजाड्य मे अधिक उत्साहवर्धक नही सिद्ध हो रहा है। अतः सम्भव है 'गन्धप्रसारणी' प्रसारणी से भिन्न द्रव्य हो और प्रसारणी के मुख्य कर्म-अङ्ग प्रसारण का इसमे अभाव हो। केवल गन्धयुक्त होने या गन्ध-प्रसारण के कारण इसकी 'गन्धप्रसारणी' सज्ञा दी गई हो। इस सम्भावना की पुष्टि इससे भी होती है कि शालिग्राम निघण्टु को छोडकर किसी निघण्टु ग्रन्थ मे प्रसारणी की गन्ध पर आश्रित कोई सज्ञा नही दी गई है जबकि इसकी गन्ध सर्वाधिक ध्यानाकर्षक है।

दक्षिणी भारत मे 'प्रसारणी' के नाम से Merremia hastata तथा Merremia tridentata, Hallier f.' का ग्रहण किया जाता है। M. hastata एक शीघ्रता से फैलने वाली आरोही लता है। इसके पौधे मे कोई गन्ध नही होती। इसमे प्रसारणी के गुणकर्म भी मिलते हैं तथा केरल मे इसका प्रयोग विभिन्न वातव्याधि, आमवात, तथा तज्जन्य सधिजाड्य और अगो के सकोच मे सफलतापूर्वक किया जाता है। इस आधार पर प्रसारणी के नाम से M. hastata का ग्रहण समान रूप से सभी प्रदेशो मे होना चाहिए। M. hastata और M tridentata मे स्थानिक नाम, स्वरूप, स्वभाव, उत्पत्तिस्थल तथा गुणकर्म मे पर्याप्त सादृश्य है, परन्तु M. hastata की अपेक्षाकृत M tridentata हीनगुण वनस्पति है अत प्रथम के अभाव मे ही दूसरे का प्रयोग करना चाहिए।

उपसहार रूप मे यह कहना अधिक युक्तियुक्त है कि 'गन्धप्रसारणी' को पृथक द्रव्य या प्रसारणी का एक भेद मानकर इस नाम से Paedaria foetida का ग्रहण किया जाय और 'प्रसारणी' के नाम से Merremia hastata (चित्र २) का प्रयोग सर्वत्र किया जाय। M hastata के अभाव मे M tridentata चित्र ३) का ग्रहण 'प्रसारणी' से कर सकते हैं।

• (क) प्रसारणी गुरुस्तिक्ता सरा सधानकृन्मता।
त्रिदोषशमनी वृष्या तेजः–कान्तिबलप्रदा॥
(धन्वन्तरि निघण्टु)

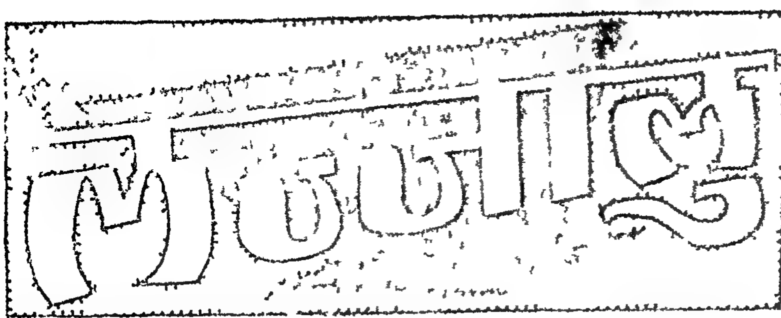
(ख) प्रसारणी गुरूष्णा च तिक्ता वातविनाशिनी।
अर्शः श्वयथुहन्त्री च मलविष्टम्भहारिणी॥
(राजनिघण्टु)

(ग) प्रसारणी गुरुर्वृष्या बलसधानकृत्सरा।
वीर्योष्णा वात-हृत्तिक्ता वातरक्तकफापहा॥
(भावप्रकाश)

(घ) वातपित्तहरा सोष्णा बल्या वृष्या प्रसारणी।
(राजवल्लभ निघण्टु)

(ङ) सारणी वातरक्तघ्नी सोष्णा वृष्या बलप्रदा।
कटुवी च लघु चक्षुष्या स्वर्या ज्वरनिशाध्यहृत्॥
(शोढ़ल निघण्टु)

(च) प्रसारणी गुरुश्चोष्णा तिक्ता बला सरा मता।
भग्नाऽस्थिसधानकरी कान्तिकृत धातुवर्धका॥
वातार्शशोकफहा मलस्तम्भकरी मता।
वातरक्तत्रिदोष च नाशयेदिति कीर्तिता॥
[निघण्टु रत्नाकर)



कु० शैलबाला वाले बी ए एम.एस
गृह चिकित्सक, राजकीय आयु
महाविद्यालय एवं चिकित्सालय
लखनऊ

इनका विचार है कि "लज्जालु" के लिए "माईमोसा-प्यूडिका लिन" को ग्रहण करना चाहिए। साथ ही 'नेप्चूनिया ओलिरेसिया लूर्क' को भी द्वितीय लज्जालु के स्थान पर ग्रहण करने में कठिनाई नही होगी।

लेखिका ने अपने विषय का विवेचन बहुत ही सारगर्भित रूप से किया है। मेरे विचार से शास्त्रीय लक्षण, गुण व कर्म के विचार से लज्जालु के स्थान पर माइमोसा की दोनो जातियां 'माईमोसा प्यूडिकालिन' तथा 'माईमोसा हमाटा विल्ड' इन दोनो के राज निघण्टुकार के बताये हुये द्विविध लज्जालु भेदो मे ग्रहण करना उचित है। इनमें ही सब लक्षण मिलते है।

—विश्वनाथ द्विवेदी

भारत के आर्द्र, समतल तथा उष्ण प्रदेशों की छायादार भूमि मे जन्म लेने वाली, यह वनौषधि, छूते ही मुरझाई सी प्रतीत होने के कारण छुई-मुई● के नाम से विख्यात है। रक्तपित्त, अतिसार, योनि-रोग, व्रण तथा कुष्ठ ¥ आदि की चिकित्सा मे इसे निघण्टु-काल से प्रयोग किया जा रहा है। ऐसी लाभप्रद औषधि के लिए देश के विभिन्न प्रान्तो मे निम्नांकित लैटिन नामो वाली वनौषधियो को ग्रहण किये जाने का उल्लेख मिलता है—

(१) माइमोसा प्युडिका लिन※(Mimosa Pudica Linn)

(२) वायोफाइटम सेन्सिसिटिवम, डी सी *(Biophytum Sensitivum D C)

(३) डेस्मोडियम गाइरेन्स, डी. सी β (Desmodium Gyrans D C.)

(४) केसिया माइमोसाइडिस, लिन★ (Cassia Mimosoides Linn).

निघण्टुओं मे वर्णित स्वरूप और स्वभाव—निघण्टुओं β

●—भण्डारी, चन्द्रराज (१९५७)

¥—लज्जालु शीतला तिक्ता कषायाकफपित्तजित्।
रक्तपित्तमतीसार योनिरोगान् विनाशयेत्॥
(भा० प्र० २७६)

रक्तपादी कटु शीता पित्तातीसार नाशनी।
शोफदाहश्रम श्वास व्रण कुष्ठ कफास्रनुत्॥
(ध० नि० ११०)

※—माइमोसा प्यूडिका लिन (लेग्यूमिनौसी-माइमोसाइडी) कीर्तिकर तथा बसु (१९३३)

*—बायोफाइटम सैन्सिसिटिवम डी सी (जिरैनियेसी-आक्सैलिडी) अय्यर तथा कोलामल (१९६३)।

0—केसिया माइमोसाइडिस लिन (लेग्युमिनोसी-सिसिलपीनियोयडी) पिल्लई (१९७४)।

★—डेस्मोडियम गाइरेन्स डी. सी. (लेग्युमिनौसी-पैपीलियोनेटी) अय्यर तथा कोलामल (१९६३)।

α—राज-निघण्टु सहितो धन्वन्तरीय निघण्टु, टीकाकार, विनायक गणेश आप्टे (१९२५) रक्तपादी शमीपत्रा स्पृक्का खदिर पत्रिका। सकोचनी समगा च नमस्कारी प्रसारिणी (रा नि १५९)।
लज्जालु सप्तपर्णी स्यात् खदिरी गण्डमालिका।
लज्जा च लज्जिका चैव स्पर्शलज्जाऽसरोधिनी॥
(रा० नि० १६०)

रक्तमूला ताम्रमूला स्वगुप्ताऽञ्जलिकारिका।
नाम्नां विंशतिरित्युक्ता लज्जायास्तुभिषग्वरैः॥
(रा० नि० १६१)

लज्जालुवैपरीत्यान्या अल्पक्षुप बृहद्दला।
वैपरीत्यादि लज्जालुर्ह्यभिधाने प्रयोजयेत्॥
(रा० नि० १६३)

लज्जालुवैपरीत्याह्वाकटूरूष्णाकफामनुत्।
रसैनियामिका चैव नाना विज्ञानकारिका॥
(रा० नि० १६५)

मे उपलब्ध वर्णन के अनुसार लज्जालु लाल रग की (रक्त के समान) मूल वाली (रक्तपादी), व शमी● तथा खदिर✗ (शमीपत्रा, खदिर पत्रिका) के समान पत्तियो वाली, लता सदृश (प्रसारिणी, स्पृक्का) स्वभाव, सकोचनशील (सकोचनी) प्रकृति वाली, सम्पूर्ण अङ्गो से युक्त (समगा), विनीत भाव मे स्पर्श (स्पर्श लज्जा) करने वाले को नमन (नमस्कारी) करने वाली वनौषधि है। इसमे सात पर्णक (सप्तपर्णी) तथा ग्रन्थि-सदृश सरचनायें (गण्डमालिका) उपस्थित होनी चाहिए। स्पर्श मात्र से लज्जा के कारण इसे 'लज्जा' और 'लज्जिका' सज्ञाओ से विभूषित किया जाता है। यह योनि रोगो मे रक्त प्रवाह को रोकती (अस्ररोधिनी) है। रक्त (रक्तमूला) तथा ताम्रवर्ण (ताम्रमूला) मूल वाली यह वनौषधि स्पर्श मात्र से स्वय को छुपाने (स्वगुप्ता) के उद्देश्य से, अजलि के समान (अजलिकारिका) पर्णको को बन्द कर लेती है। भिषगो द्वारा इसके लिए बीस नामो का प्रयोग किया गया है।

लज्जालु की एक अन्य जाति भी है जिसका क्षुप अल्प होता है तथा दल आकार मे बड़े होते हैं (वृहद्दला)। इसके लिए भी लज्जालु नाम ही प्रयुक्त करना चाहिये। यह जाति कटुरस वाली, उष्ण वीर्य तथा कफ और आम की नाशिनी है। यह रसो द्वारा नियन्त्रण करती है तथा अनेक चमत्कार (विज्ञान) दर्शाती है।

लज्जालु के प्रान्तीय भाषाओ मे पर्याय

भारत की विभिन्न प्रान्तीय भाषाओ मे यह वनौषधि अलग-अलग नामो द्वारा सम्बोधित की जाती है* जो निम्नाकित है—

सस्कृत–अजलिकारिका (अजलिकारक), अस्ररोधिनी, गण्डमालिका, खदिरपत्रिका, (खदिरक), खदिरी, लज्जा, लज्जालु, लज्जिका, नमस्कारी, प्रसारिणी, रक्तमूला, रक्तपादी, समगा, सकोचिनी, सप्तपर्णी, शमीपत्रा, स्पर्शलज्जा, स्पृक्का, स्वगुप्ता, ताम्रमूला आदि।



लज्जालु (माइमोसा प्युडिका)

हिन्दी—लजालू, लाजवन्ती, छुईमुई, लज्जावती, शर्मपत्ते। गुजराती–लजालू, रिसामणि। बगला–लजक, लजावेत। नैपाली–लजानिया, बोहोरिभर। पजाबी–लाजवन्ती। तमिल–तोतरसिनुंगी, कासीरोरतम, समगई, तोताचुरुगी, तातोलददी। तैलगू–पेदनिद्रकाति। उर्दू—लजालू। कन्नड–हदरगिट्ट लज्जा, मुदगुदवर, मुथामुरिक, नासिके। मलयालम–तितारमति, तोतोवती। उडिया—देवासुरोवासिनी, नाजूको। अंग्रेजी–अम्बलप्लान्ट, सैन्सिटिव प्लान्ट।

सदिग्धता के कारण—प्राचीन ग्रन्थो मे वनौषधियो के विस्तृत वर्णन का अभाव, भाषा-भेद, शताब्दियो की दासता, प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति, मुद्रण का अभाव आदि ऐसे अनेक राजनैतिक, सामाजिक, भौगोलिक आदि कारण है जिनके प्रभाव से द्रव्यो मे सदिग्धता उत्पन्न हुई। इन कारणो ने न केवल दुर्लभ द्रव्यो मे ही सदिग्धता उत्पन्न की, बल्कि लज्जालु जैसे सुलभ और सामान्य द्रव्य भी अछूते न रह सके। लज्जालु के रूप मे ग्रहण किये जाने

● प्रोसोपिस स्पाइसीजेरा लिन (लेग्युमिनोसी-माइमोसोइडी)।

✗ एकेसिया कैटेचु विल्ड (लेग्युमिनोसी-माइमोसाइडी)।

* कीर्तिकर तथा बसु (१९३३)

वाले द्रव्यो मे एक-दो समानताओ को छोडकर शेष सभी लक्षणो मे ये द्रव्य एक दूसरे से भिन्न होते है।[11]

उदाहरणार्थ सदिग्धता के निम्न कारण प्रस्तुत किये जा रहे है—

(१) सवेदन तथा सकोचनशील स्वाभाव, अधिक अथवा कम रूप मे, ग्रहण की जाने वाली सभी वनौषधियो मे दृष्टिगोचर होता है। डैस्मोडियम गाईरैन्स डी०सी० के निचले दो पर्णक, स्पर्श के विना भी, ऊपर नीचे गति किया करते है। कैसिया माइमोसाडिस लिन तथा वायोफाइटम सैनिसिटिवम डी०सी० मे सकोचनशीलता माइमोसा प्युडिकालिन की अपेक्षा मन्द होती है। इस प्रकार ये सभी वनौषधिया सवेदना द्वारा प्रभावित होती है।

(२) पुष्पो के रग का निघण्टुओ मे कही उल्लेख नही है, जिसके कारण पीले रग के पुष्पो वाली वायोफाइटम सेनिसिटिवम डी० सी० तथा कैसिया माइमोसाडिस लिन नामक वनौषधिया लाल पुष्प वाली माइमोसा प्युडिका लिन नामक वनौषधि के स्थान पर ग्रहण की जाने लगी हैं।

---

11 Hooker J. D –Flora of British India, Reprint 1973.

Mimosa Pudica Linn—Shrubby Bristly hairs of branchlet and petioles deflexed those of leaf rachis a scending Pinnae-3–4, nearly sessile, 2–3'' long, bipinnate, leaflets 24–40 glabrous, subcoriaceous, Flowers: small, ped uncled heads, all down the branches, 1–2 from each axil Pod 1/2'' long, 3–4 seeded with abundant straw coloured weak prickles from both sutures as long breadth of pod. Stem and rachises copiously bristly and prickly, leaves digitate, pod small with densly prickly sutures

Biophytum sensitivum D C.—Stem long or short, slender or robust, hispidly pubescent. Leaves 1'' to 5'' unipinnate, petiole hispidulous or ciliate Leaflets–variable in size 1/4 to 1/2'', sometimes arched a little upards, nearly equal at the hase except the terminal ane, which is obovatd and oblique at the contracted base, nerves few or many, rather oblique often waved Peduncles 1'' to 5', hispid, sometimes swollen at the tip, bractr rigid pedicles shorter than sepals, sometimes equal or longer Sepals rigid–subulate grooved, glandular and hisppid, petals twice as long as sepals, yellow Capsule elliptic, shining few seeded Seeds-minute with transverse, oblique acute or obtuse ridges. Leaflets 6–15 pairs oblique, nearly straight except the terminal tip, apiculate or not, peduncles long or short, not clubbed at the top Flowers shortly pedicelled, sepals usually much exceeding the capsule

Cassia mimosoidis Linn D C —Perennial, slender, shrubby with finely downy branches Leaves 1 to 3'' long, with solitary gland on rachis below leaflets Unipinnnate leaflets 60–100 linear, rigidly coriaceous 1/8–1/6'' long, obliquely mucronate with midrib close to upper border Stipules large, persistent Flowers 1–2 togather, axillary pedicellate, sepals 1/8–1/4'' lanceolate, bristly Corolla little exerted, stamens 10, alternately longer and shorter pod strap shaped, flatdehiscent 1 5–2'' long, 1/6'' broad nearly straight, septa more or less oblique.

Desmodium gyrans D C.- Undershrub, 3–4 ft high with glabrous branches, petiole 3/8 to 1/2'' long, leaflets 1–3, subcoriaceous, oblong, 3–4'' long, obtuse with a little inconspicuous pubescence beneath, sideones if present very small moving by jerks, unipinnate, inflorescence axillary and terminal raceme or panicle, flowers hidden by large ovate bracts, 3–6'' long, pedicel 1/4'' Calyx 1/12'', campanulate, teeth deltoid. Corolla 1/4'', pod 1–1 5'' by 1/6–1/5'' broad, falcate 6–10 jointed straight on upper slightly indented along lower suture.

(३) कुछ विद्वानो ने डेस्मोडियम गाइरेन्स डी० सी० को भी अजलिकारिका मानने का परामर्श दिया है● क्योंकि इसके निचले दो पर्णक बराबर ऊपर नीचे गति किया करते हैं, जबकि इनकी गति का स्पर्श सवेदन से कोई सम्बन्ध नहीं है। डेस्मोडियम गाईरेन्स डी० सी० के लिए अन्जलिकारिका पर्याय का प्रयोग कही भी नही किया गया है।ᵖ

(४) कुछ विद्वानो ने नमस्कारी और सकोच पर्णिका का विस्तृत अर्थ निकालकर लिखा है कि नमस्कारी भाव मे पर्णको को ऊपर की ओर मुडना चाहिए तथा सकोच के भाव मे शरीर को ढकने के लिए पर्णको को नीचे की ओर मुडना चाहिए। ऐसे विद्वानो से लज्जालु के रूप मे बायोफाइटम सेनिसिटिवम डी० सी० को ग्रहण किये जाने का निर्देश दिया है।ᵡ

(५) निघण्टुओ मे लज्जालु की दो जातियो का वर्णन मिलता है। अत विद्वानो ने समान स्वभाव वालीदो भिन्न वनौषधियो को ग्रहण करने का प्रयास किया। दूसरी जाति को वृहद्दला कहे जाने के कारण प्रयास यही किया कि बड़े दलो (पिटल्स) वाली समान स्वभाव की वनौषधि ग्रहण करली जाय, अत सामान्यत माइमोसा प्यूडिका लिन के साथ बायोफाइटम सेनिसिटिवम* डी० सी० अथवा कैसिया माइमोसोइडिस लिन° दूसरी जातियो के रूप मे ग्रहण की जाने लगी।❀

(६) निघण्टुओ मे वर्णित कुछ पर्यायो जैसे स्पृक्का, ममगा, प्रसारिणी, सप्तपर्णी, गण्डमालिका, वृहद्दला आदि ने भी वनौषधि की सदिग्धता मे वृद्धि की है, क्यो कि इनका प्रयोग अनेक द्रव्यो के लिए किया गया है तथा उनके द्वारा किसी एक वनौषधि का निर्णय करना सुगम नही है।

● Ayyer & Kolammal (1963) Desmodium gyrans, the telegraph plant is equated as Anjali-Karika in some books.

ᵖ Kirtikar & Basu (1933)

ᵡ Iyyer & Kolammal (1963) 'The term Lajjalu is more correctly applicable to Biophytum in the light of the term Sankocaptrika'

* भन्डारी, चन्द्रराज (१९५७)

° हिल्लर्ड, ए० पी० जी० (१९७४)

❀ अय्यर तथा कोलामल (१९६३)

सदिग्धता निवारण की विधि—किसी वनौषधि के सम्बन्ध मे प्रचलित सदिग्धता के निवारण के मुख्यत दो उपाय है—(क) ग्रहण की जाने वाली सभी वनौषधियो का विस्तृत सरचनात्मक अध्ययन और प्राचीन उपलब्ध साहित्य से उनमे से किसी एक का सरचनात्मक सामीप्य के आधार पर स्वीकार किया जाना तथा (ख) ग्रहण की जाने वाली सभी वनौषधियो के गुण-कर्मो का प्रयोग

(पृष्ठ २४० का शेषाश)

ngelica Linn कहते हैं। ग्रामीण लोग इन दोनो वनस्पतियो को चोरक के नाम से सगह करते है। देखिए—सचित्र आयुर्वेद सितम्बर १९६६।

प्राप्तिस्थान—उत्तराखण्ड हिमालय मे यह द्रव्य ३,००० मीटर ऊँचाई से लेकर ३,८०० मी० की ऊचाई तक प्रायः नमदार बर्फीले ढलानो पर सुलभ है। गढवाल मे यह बूटी भिलगना घाटी, भागीरथी घाटी, मन्दाकिनी घाटी जमुना घाटी, अलकन्दा घाटी आदि स्थानो पर सुलभ है। हिमाचल प्रदेश मे यह बडाभगाल (कागडा घाटी), चम्बा वनखड, कुल्लवनखण्ड, लाहुलस्पीली, रोहड् वनखड, भरमौर वनखड आदि स्थानो के ऊँचाई वाले भागो मे सुलभ है। जम्बु-काश्मीर के गुलमर्ग एव खिलनमर्ग आदि स्थानो पर पाया जाता है।

ग्रामीण प्रयोग—ग्रामीण लोग दाल शाक आदि मे दीपन पाचन एव सुगधित रूप मे प्रयोग करते है। गर्म मसाले के रूप मे यहा के लोग विशेषतया प्रयोग करते हैं।

(२) भोटिया लोग मूल को चोरा के नाम मे बेचते है। जिसका कि उपयोग उदरशूल आदि मे किया जाता है।

(३) कागडा घाटी हिमाचल प्रदेश के वैद्य २-३ माशे की मात्रा मे चोरक चूर्ण का उपयोग गुड एव उष्ण जल के साथ मक्कल शूल मे श्रेष्ठ मानते है। यह अनुभूत योग है।

(४) वृक्कशूल मे भी चोरक चूर्ण का उपयोग लाभदायक होता है।

(५) यदि घर मे साप चला जाय तो चोरक का धूपन करने से साप बाहर निकल आता है।

अत लेखक के विचार से शास्त्रीय चोरक यही द्रव्य है जिसकी मान्यता स्थानिक नामो एव गुणधर्मो मे भी मिलता है।

शालाओ तथा चिकित्सालयो मे विस्तृत अध्ययन और उनमे से सफलतम को स्वीकार किया जाना । उत्तम तो यही है कि सदिग्धता के निवारण हेतु दोनो ही विधियो द्वारा वनौषधियो का अध्ययन किया जाये और परिणामो की सफलता अथवा असफलता पर वनौषधि के सम्बन्ध मे निश्चय किया जाये । प्रस्तुत लेख मे मात्र प्रथम विधि ही अपनाई गई है, दूसरी विधि को अपनाने के लिए समय तथा पर्यावरण दोनो की अनुकूलता आवश्यक है ।

तुलनात्मक विवेचन तथा विमर्श

(१) रक्तपादी, रक्तमूला, ताम्र-मूला, आदि निघण्टुओ मे वर्णित लज्जालु के पर्याय हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि इस वनौषधि की मूल का रग लाल अथवा ताम्र वर्ण का होना चाहिए । भण्डारी (१९५७) ने वर्णन करते हुए केवल माइमोसा प्युडिका लिन की ही मूल को इस रग की अकित किया है ।

(२) शमीपत्रा, खदिर पत्रिका, खदिरक, खदिरी आदि निघण्टुओ मे वर्णित लज्जालु के पर्याय है, इनसे स्पष्ट होता है कि इस वनौषधि की पत्तिया शमी (प्रोसोपिस स्पाइसीजेरा लिन) अथवा खदिर (एकेशिया कैटेचु विल्ड) के समान द्वि–पक्षवत् (बाई–पिन्नेट) होनी चाहिए । इस लक्षण को केवल माइमोसा प्युडिका लिन ही पूर्ण करता है, माइमोसोइडी उपकुल (सब-फेमिली) की होने के कारण इसके पत्र (पर्णक) द्विपक्षवत होते है । वायोफाइटम सेनिसिटिवम डी० सी० तथा कैसिया माइमोसोइडिस लिन मे पत्र एक–पक्षवत (यूनी-पिन्नेट) होते है ।

(३) सकोचनी, नमस्कारी, स्पर्शलज्जा, स्वगुप्ता, अजलिकारिका, लज्जालु, लज्जा, लज्जिका आदि निघण्टुओ मे वर्णित लज्जालु के पर्याय हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि इस वनौषधि को स्पर्श सवेदन के प्राप्त करते ही लज्जाभाव से अपने शरीर को सकुचित कर छुपा लेना चाहिए तथा अपने पर्णको को अजलि की आकृति मे मोड कर नमन कर लेना चाहिये । चू कि नमन की क्रिया मे केवल दो हाथो का प्रयोग होता हे अत कुछ विद्वानो ने अजलिकारिका के रूप मे डेस्मोडियम गाइरेन्स डी० सी० को ग्रहण करने का निर्देश दिया है,* किन्तु इसमे केवल तीन पर्णक होते है जिनमे से निचले दो बिना स्पर्श सवेदन के भी ऊपर नीचे गति क्रिया करते है अतः इस वनौषधि को अजलिकारिका और लज्जिका के रूप मे ग्रहण करना किसी भी भाति न्याय-सगत प्रतीत नही होता । कुछ विद्वानो ने नमस्कारी और सकोच-पर्णिका का विस्तृत अर्थ करके नमस्कारी तथा सकोचनशील भावो मे पर्णको के ऊपर अथवा नीचे की ओर मुडने के आधार पर यह निर्देश दिया है, • कि लज्जालु के रूप मे बायोफाइटम सेनिसिटिवम डी० सी० अथवा बायोफाइटम रीनवार्डटी एज्व तथा हुक को ग्रहण करना चाहिए, किन्तु इन दोनों ही वनौषधियो मे पत्तिया एक–पक्षवत (यूनी-पिन्नेट) होती है, अत इस दृष्टि से ये वनौषधियाँ शमीपत्रा तथा खदिर पत्रिका पर्यायो के लक्षणो को पूर्ण नही करती । इस प्रकार इन विद्वानो का निर्देश भी न्यायसगत प्रतीत नही होता ।

(४) गण्डमालिका भी निघण्टुओ मे वर्णित लज्जालु का एक पर्याय है, इससे स्पष्ट होता है कि इस वनौषधि मे ग्रथि (गण्ड) सम सरचनायें उपस्थित होनी चाहिए । वैसे तो लेग्युमिनौसी के सिसलपीनियोइडी तथा माइमोसोइडी दोनों ही उपकुलो के अधिकाश सदस्यो मे पत्राधार फूल कर बडा हो जाता है और पीनाधार (पलवीनस) कहा जाने लगता है, किन्तु माइमोसा प्युडिका लिन मे पीनाधार इतना क्रियाशील होता है कि स्पर्श सवेदन को ग्रहण करते ही कोशिका-जल को शाखाओ तथा स्तम्भ मे बहा देता है, जिससे पर्णक सकुचित हो सके । मानव शरीर मे जिस प्रकार ग्रन्थियाँ शरीर पर पडे आघात को ग्रहण कर प्रभावित हो जाती हैं, वैसी ही क्रियाशीलता माइमोसा प्युडिका लिन मे भी देखने को मिलती है, अत सम्भव हे निघन्टुकारो ने इसी लक्षण के आधार पर लज्जालु को यह सम्बोधन प्रदान किया हो ।

(५) प्रसारिणी और स्पृक्का आदि निघण्टुओ मे वर्णित लज्जालु के अन्य पर्याय हैं, इनसे स्पष्ट होता है कि इस वनौषधि मे लता की भाति प्रसार की तीव्रता होनी

---

* अय्यर तथा कोलामल (१९६३)

• अय्यर तथा कोलामल (१९६३)

चाहिये। यह लक्षण भी माइमोसा प्युडिका लिन म उपस्थित होना है।●

(६) सप्तपर्णी भी निघण्टुओं मे वर्णित लज्जालु का एक अन्य पर्याय है। इससे स्पष्ट होता है कि इस वनौषधि मे सात पत्तिया उपस्थित होनी चाहिए। यह लक्षण लज्जालु के रूप मे ग्रहण की जाने वाली किसी भी वनौषधि मे दृष्टिगोचर नही होता, किन्तु माइमोसा की एक अन्य जाति माइमोसा हामाटा विल्ड✗ मे एक स्थान से उत्पन्न होने वाली पत्तियो की सख्या ६ से ८ तक होती है। माइमोसा प्युडिका लिन की भाँति माइमोसा हामाटा विल्ड भी देश के मध्य तथा दक्षिण पश्चिमी भाग मे प्राप्त होती है, अत यह सम्भव है कि इस वनौषधि को अध्ययन कर उपर्युक्त पर्याय प्रदान किया गया हो, क्योकि निघण्टुकाल मे आज की भाँति का अन्तर्राष्ट्रीय वर्गीकरण तो प्रचलित नही था।

(७) निघण्टुओ मे लज्जालु की जिस अन्य जाति का उल्लेख है उसके सम्बन्ध मे अ कित है कि वह अल्प क्षुप स्वभाव की होती है तथा उसके दल बडे होते हैं। विद्वानो ने इस दूसरी जाति के सम्बन्ध मे भी अनुमान लगाने का प्रयास किया है उदारणार्थ भण्डारी (१९५७) ने इस दूसरी जाति को बायोफाइटम सेनिसिटिवम डी. सी. स्वीकार किया है। शर्मा (१९५६) ने इस दूसरी जाति के रूप मे किसी वनौपधि को ग्रहण करने का निर्देश नही दिया है। मेरा विचार है कि इस दूसरी जाति के स्थान पर नेप्चुनिया ओलिरेसिया लूर★ को ग्रहण किया जाये तो वृहद्‌दला तथा अल्पक्षुप दोनो ही पर्यायो का अर्थ स्पष्ट हो जाता है क्यो कि माइमोसा प्युडिका लिन मे दल (पर्णक) ६-८ मि०मी०लम्बे तथा ४० मि०मी० चौडे होते हे, जब कि नेप्चुनिया औलिरेसिया लूर मे इनकी लम्बाई ८० से १३०० तथा चौडाई २.५ से ३० मिमी० होती है तथा माइमोसा प्युडिका लिन के दल (पेटल्स) २० से २५ मि०मी० लम्बे होते है तथा नेप्चुनिया औलिरेसिया लूर मे दलो (पेटल्स) की लम्बाई ३० मिमी० होती है अत पुष्पदलो तथा पत्र-दलो दोनो ही दृष्टियो से नेप्चुनिया औलिरेसिया लूर को बृहद्‌दला माना जा सकता हे। नेप्चुनिया औलिरेसिया लूर को बिहार मे लजालू कहा भी जाता है। इसलिये यह निष्कर्ष अधिक सत्य प्रतीत होता है। बगला मे इसे पानी लजक, पानी नजक, मराठी मे पानी लजक, मलयालम मे नितीतोदावादी, सिंहाली मे दियानिदिकुम्व, तमिल मे सुन्दै किराई, तैलगु मे निद्रायाम तथा निरूतालवापु कहते हैं।

निष्कर्ष

लज्जालु के स्थान पर ग्रहण की जाने वाली वनौपधियाँ और निघण्टुओ मे वर्णित लज्जालु के पर्यायो की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि माइमोसा की दो जातियाँ (माइमोसा प्युडिका लिन तथा माइमोसा हामाटा विल्ड) उन सभी पर्यायो का अर्थ स्पष्ट करती हे जिनका निघण्टुकारो ने उल्लेख किया है। अत. लज्जालु के स्थान पर माइमोसा की जातियो को ग्रहण किया जाना ही अधिक न्यायसगत प्रतीत होता है। अन्य वनौपधियो को ग्रहण करने से सदिग्धता की वृद्धि ही होती हैं और न ही वे पूर्ण रूप से निघण्टुकारो के विभिन्न पर्यायो का अर्थ स्वय मे समावेश कर पाती हैं। इस दृष्टि से पडित प्रियव्रत शर्मा (१९५६) ने भी केवल माइमोसा प्युडिका लिन को ग्रहण करने का निर्देश दिया है। सरचना की दृष्टि से उनका विचार अधिक न्यायसगत प्रतीत होता हे, किन्तु उनके द्वारा अ कित की गई लज्जालु की दूसरी जाति के स्थान पर नेप्चूनिया औलिरेंसिया लूर को, आकृति की दृष्टि से ग्रहण करने मे अधिक कठिनाई नही होनी चाहिए, क्योकि इसका क्षुप माइमोसा

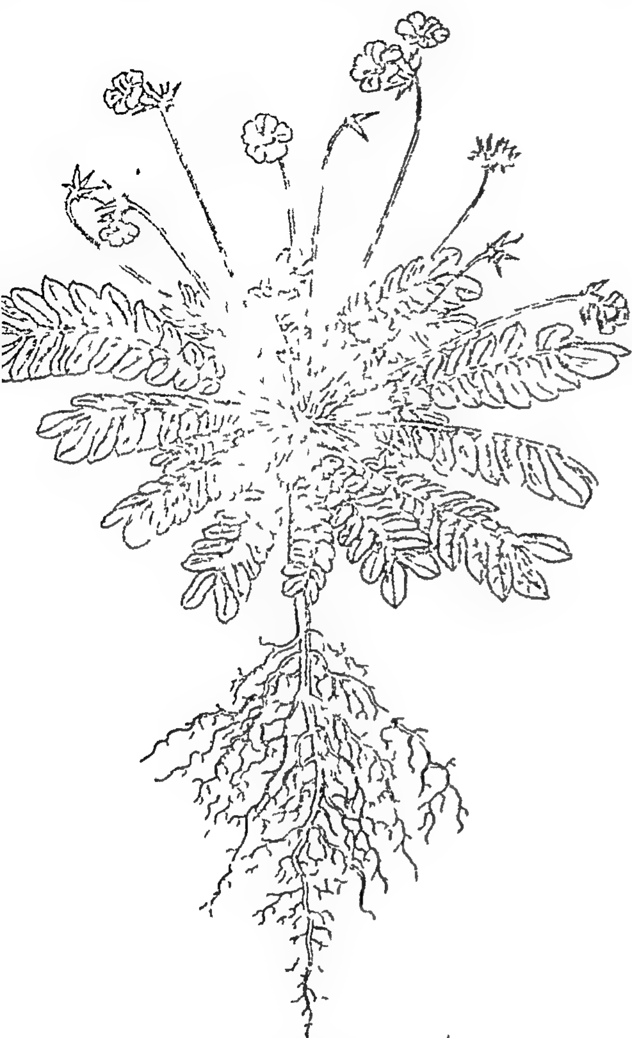
● शर्मा, प्रियव्रत (१९५६)

✗ Mimosa Ehamata willd D C. Rachises copiusly prickly not bristly, leaves bipinnate 6-8, pod ligulate-oblong with sutures armed with large hooked prickles.

★ Neptunia oleracea Lour–Stems stout, annual, wide creeping rarely throwing out subezect branches, producing copious fibrous rootlets from the same nodes that bear leaves and peduncles Pinnae 4-6,2 3'' long, rachis gland-less, leaflets glabrous, obtuse 1/3-1/2'' long Peduncles ascending, 1/4-1 ft, bracts small ovate, subobtuse, staminodes 1/4-1/3'', strapshaped yellow, corolla 1/2', pod 1/2-1'' long, rostrate dry, soon dehiscing by upper suture

* कीर्तिकर तथा बसु (१९३३)

Mimosa pudica Leaflets 6-8 by 4 0 mm, corolla 2.0-2.5 mm long (page 9,5) Neptunia oleracea Leaflets 8-13 by 2 5-3 0 mm corolla 3.0 mm, long (Page 904)



लज्जालु के रूप मे ग्रहण की जाने वाली अन्य वनौषधि–पक्ति पत्र (वायोफाइटम सेनिसिटिवम)

प्युडिका लिन से कुछ छोटा होता है तथा इसमे काटे नही होते तथा इसके दल बडे होते हैं । इस जाति के लिए कीर्तिकर तथा वसु (१९३३) ने भी किसी सस्कृत पर्याय का उल्लेख नही किया है। इसे बिहार मे लजालू कहते भी हैं, इस प्रकार इसे वृहद्दला के स्थान पर ग्रहण किया जा सकता है।

डा० रघुवीर (१९६०) ने भी सामान्य लज्जालु के रूप मे माइमोसा प्युडिका लिन को ही ग्रहण करने का निर्देश दिया है। माइमोसा हामाटा विल्ड को वक्रकण्ट लज्जालु कहा है तथा नेप्चुनिया ओलिरेसिया लूर को जल लज्जालु नाम से सबोधित किया है तथा वायोफाइटम से निसिटिवम को पक्ति-पत्र नाम प्रदान किया है। अत अन्तिम तो किसी भी भाँति लज्जालु के रूप मे ग्रहण किया ही नही जा सकता है।

आभार प्रदर्शनः—इस लघु रचना की समाप्ति के पूर्व प्रोफेसर राज नारायणसिंह विभागाध्यक्ष, द्रव्य गुण विभाग, डा० उमा शकर त्रिपाठी तथा द्रव्य परिचय के व्याख्याता श्री दिनेश चौहान के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझती हू, जिन्होंने अपने पाण्डित्य के अक्षयवट की शीतल छाया मे इस लघु रचना को दिशा ज्ञान प्रदान की तथा इसे प्रस्तुत आकार और स्वरूप ग्रहण करने मे योगदान दिया।

सन्दर्भ ग्रन्थ–१—पिल्लई, ए पी.जी. १९७४ बोटेनिकल आइडेन्टीफिकेसन आफ क्रूड ड्रग्स यूज्ड इन आयुर्वेदिक फार्मेसी, आयु, जनवरी, वाल्यूम २ न० १, गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जामनगर, पृ० १३-२८।

२—अय्यर, के० एन० तथा एम० कोलामल १९६३ फार्माकाग्नासीआफ आयुर्वेदिक ड्रग्स कैरल, सीरीज १, सख्या ६, फार्मग्नासी विभाग, कैरल विश्वविद्यालय त्रिवेन्द्रम, पृ० २७-३२।

३—सिंह, रामसुशील १९६९ वनौषधि निर्देशिका (आयुर्वेदीय फार्माकोपिया) हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।

४—भण्डारी, चन्द्रराज १९५७ वनौषधि चन्द्रोदय, भाग ६, चौखम्बा सस्कृत सीरीज आफिस बनारस, वाराणसी, पृ० २२-२४।

५—हुकर, जे० डी० १९७३ मैसर्स बिशनसिंह महेन्द्रपालसिंह न्यू कनाटप्लेस देहरादून एण्ड मैसर्स पीरियोडिकल्स एक्सपर्टस, ४२-डी०, विवेक बिहार, देहली-३२, पृ० ४३६, ४३७, १७४, २६६, २९१।

६—कीर्तिकर के० आर० एण्ड बी० डी० वसु १९३३ इण्डियन मैडिसिनलप्लान्ट्स, वाल्यूम १ एण्ड २, ललित मोहनवसु, ४९, लीडर रोड, इलाहाबाद, पृ० ४४०, ८७४, ९१५।

७—आपटे, विनायक गणेश १९२५ राजनिघण्टु सहितो धन्वन्तरीय निघण्टु, आनन्दाश्रम सस्कृतग्रन्थावलि ग्रन्थाक ३३, पचमावर्ग पृ० १५५–१५६।

८—शर्मा, प्रियव्रत १९५६ द्रव्य गुण विज्ञान, पृ० ५६८-५६९।

९—रघुवीर १९६० कम्प्रीहेन्सिव इगलिश हिन्दी डिक्शनरी, इण्टरनेशनल अकादमी आफ इण्डियन कल्चर, नई दिल्ली-१६।

१०—द्विवेदी, विश्वनाथ १९५४: टीकाकार भावप्रकाश निघण्टु तृतीय सस्करण, मोतीलाल- बनारसीदास, पो० ब०७५, बनारस, पृ० २६२।

कवि॰ श्री राजेन्द्र प्रकाश आ॰ भटनागर
एम॰ए॰, भिषगाचार्य, आयुर्वेदाचार्य, एच पी॰ए
प्राध्यापक– राजकीय आयु॰ कालेज, उदयपुर

इसके लेखक कविराज श्री राजेन्द्र प्रकाश भटनागर एम. ए. भिषगाचार्य है। मदयन्तिका का इन्होंने पूर्ण विवेचन करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मदयन्तिका मेंहदी है।

श्री भटनागर जी ने साहित्य संग्रह से अपने विषय की उपयोगिता का पूर्ण परिचय दिया है। ये नयी पीढी के अच्छे लेखक साहित्यकार और विचारक है। इनकी दो पुस्तके पहले निकल चुकी है, जो आयुर्वेद जगत मे सम्मान पद प्राप्त किया है।

श्री भटनागर का लेख विचारणीय है। इनकी उर्वरा लेखनी से और अनुपम साहित्य प्राप्त होने की आशा है।

— विश्वनाथ द्विवेदी

ऐतिहासिक समीक्षा—आयुर्वेद का वनस्पतिशास्त्र बहुत प्राचीन है। सुश्रुत संहिता मे "अनुत्पाद्यैव प्रजा."• कहकर ब्रह्मा द्वारा प्रजाजनो की उत्पत्ति से पूर्व ही आयुर्वेद और उसकी आधारभूत वनस्पतियो का उत्पन्न किया जाना बताया गया है। वस्तुतः यह मान्यता पाश्चात्य विज्ञान सम्मत डार्विन के सिद्धान्तानुरूप ही कही जा सकती है। अस्तु।

सभ्यता के इतिहास मे प्राचीनतम अनेक सभ्यताओ का आज पता लग चुका है, तथापि उनके सांस्कृतिक इतिहास को हम निश्चित और सही अर्थो मे नही समझ सके हैं। उस काल की लिपियो को अभी तक पढा नही जा सका है। एक मात्र प्राचीन भारतीय आर्य-सभ्यता को आज पूर्ण रूप से समझा और विश्लेषित किया जा सका है। इसे "वैदिककालीन आर्य सभ्यता" के नाम से पुकारा जाता है।

वेद हमारे प्राचीनतम ज्ञान और विज्ञान के संग्रह हैं। इनमे तत्कालीन समष्टि-विज्ञान को मंत्रो या ऋचाओ के रूप मे संकलित और निबन्धित किया गया है। वेद संख्या मे चार है—ऋग्, यजु, साम और अथर्व।

वैदिककालीन आर्यों का सामाजिक जीवन—'ग्राम्य" और "वन्य" इन दो रूपो मे संचलित था। अतएव वेदो मे हमे अनेको वनस्पतियो और वनौषधियो के नाम, उपयोग, रोगनाशन आदि कार्यों का परिचय और उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद के दशम मण्डल मे एक औषधि-सूक्त' है जिसके ऋषि "आथर्वण भिषक्" हैं। इसमे औष-

• सुश्रुत सूत्र अ० १/६

धियो के ७०० या एक नौ सात धाम अर्थात् उत्पत्ति स्थानो का उल्लेख है •

वेदो के उपरान्त उनकी व्याख्याए और विषयानुसार विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने के लिये ब्राह्मणो, उपनिषदो और आरण्यको की रचना हुई।

खेद का विषय है कि बहुत खोजने पर भी वेदो, ब्राह्मणो, आरण्यको और उपनिषदो तथा इसी काल मे निर्मित हुए विभिन्न सूत्रग्रन्थो मे कही पर भी 'मदयन्तिका' का उल्लेख प्राप्त नहीं हो सका। पश्चादवर्ती संहिताकाल मे इसके प्रचुर प्रमाण उपलब्ध हुए हैं।

संहिता-काल—यह काल आयुर्वेद के इतिहास मे 'आयुर्वेदावतरण काल[X]" के नाम से भी जाना जाता है। महर्षियो द्वारा परम्परा से प्राप्त एव गुरुपदेश से लब्ध ज्ञान के आधार पर आयुर्वेद के अष्टागो पर विविध संहिताओ की रचना की गई। यह काल ईसा से ६०० वर्ष पूर्व से पहले महाभारत काल तक प्राचीन-निर्धारित किया गया है।

चरक संहिता—सर्व प्रथम "मदयन्तिका" का उल्लेख आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध चरक संहिता नामक ग्रन्थ मे उपलब्ध होता है।

चरक का निर्माण—काल संदिग्ध और अनिश्चित सा है तथापि बाह्य और आभ्यन्तर प्रमाणो के आधार पर इसकी रचना "सूत्रकाल" "उपनिषत् काल" मे हुई होना ज्ञात होता है। आचार्य यादव जी त्रिकमजी ने ज्योतिषशास्त्र के प्रमाण के आधार पर ई० पू० ३०० के लगभग※ आत्रेय, अग्निवेश का और चरकसंहिता के निर्माण का काल निर्धारित किया है। यह कुछ अधिक न्यायसगत भी प्रतीत होता है।

चरक संहिता मे 'मदयन्तिका' का उल्लेख कुल पाच स्थानो पर मिलता है। यह सभी संदर्भ चिकित्सा स्थान मे पाये गये है।

१ साग्राहिक खण्ड्योग—चि० ८/१२९-३०
२. महापचगव्यघृत—चि० १०/१८-२४
३. महानील तैल—चि० २६/२६८-७९
(४) महापद्म तैल— चि. २९/११०-११०-११३
(५) योनिशूलहर योग— चि. ३०/५६-५७

प्रयोज्य अङ्ग—की दृष्टि मे केवल दो स्थानो पर मदयन्तिका के पल्लव या पत्रो का उल्लेख मिलता है। (चि ८/१२९-३० तथा चि. २९/११०-११३)।

भैषज्य-कल्पना—की दृष्टि से स्नेह कल्पनायें ६०% मिलती हैं यथा—महापचगव्यघृत, महानील तैल और महापद्म तैल।

रोग चिकित्सा (Therapeutics)—की दृष्टि से मदयन्तिका का प्रयोग उन्माद, अपस्मार, शोथ, उदररोग, गुल्म, अर्श, पाण्डु, कामला, हलीमक, श्रीहीनता, ग्रहदोष, चातुर्थक विषमज्वर, (महापचगव्यघृत) पलित नामक शिरोरोग (महानील तैल), यह तैल, पान, नस्य और शिरोऽभ्यग के रूप मे प्रयुक्त होता है। यह चक्षुष्य, आयुष्य है और सभी प्रकार के शिरोरोगो को नष्ट करता है। वातरक्त, ज्वर (महापद्म तेल), यक्ष्मा मे उपद्रव-स्वरूप होने वाले अतिसार (साग्राहिक खण्ड्योग)। इसे वस्तुत एकौषधि प्रयोग कहना चाहिये। मदयन्तिका के पत्रो के स्वरस अथवा क्वाथ मे स्नेह (घृत), अम्ल (खट्टे अनार का रस या कागजी नीबू का रस) और लवण (सैंधा नमक) मिलाकर देने का विधान बताया गया है। योनि के पार्श्व प्रदेश मे होने वाली पीडा, हृद्‌रोग, गुल्म और अर्श (योनिशूलहर योग), इसमे मदयन्तिका को लवण और मद्य के साथ सेवन करने को बताया है।

वक्तव्य—वातरक्त-चिकित्सित मे उल्लेखित पूर्वोक्त, "महापद्म तैल" के पाठ मे, मदयन्तीलतापत्र, लिखा है। यहा पर इन तीनो शब्दो को समस्त पद के रूप मे स्वीकार करने पर मदयन्तिका लताजातीय पौधा-वनस्पति होना ज्ञात होता है।

सास्थानिक दृष्टि—से विचार करने पर उक्त रोग-चिकित्सा के आधार से कहा जा सकता है कि चरक संहिता मे मदयन्तिका का प्रयोग निम्न सस्थानो या स्त्रोतसो पर देखा जाता है—

• या ओषधी पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामह शत धामानि सप्त च ॥
(ऋ० १०/९७/१)

X गणनाथसेन, प्रत्यक्ष शारीर प्र० ख०. संस्कृत उपोद्‌घात

※ चरक संहिता का उपोद्‌घात, पृ० ६

१. रसवह स्रोतस् शोधन, स्तम्भन।
२ रक्तवह ,, शोधन, स्तम्भन, प्रसादन।
३ मेदोवह ,, लेखन।
४. आर्त्तववह ,, गर्भाशयोत्तेजक,आर्तवजनन
५. मनोवह ,, मेध्य, इन्द्रिय, प्रसादन।

साथ ही यह चक्षुष्य, आयुष्य, वृष्य, बल्य, वर्ण्य, शोधन एवं व्रणरोपक के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है। एकौषधि का प्रयोग केवल स्थान पर मिलता है।

—च. नि. ८/१२९-३०

इस प्रकार चरक संहितान्तर्गत मदयन्तिका की स्थिति पर विचार समाप्त हुआ।

भेल संहिता—आत्रेय पुनर्वसु के ६ शिष्यों में अग्निवेश के बाद भेल (ड) का नाम आता है। "भेड" या "भेल" का साम्य है—'डलयोरभेद' इस संस्कृत सूत्र से 'ड' और 'ल' का परस्पर के स्थानों में प्रयोग प्रायः देखा जाता है। अग्निवेश का सतीर्थ्य और आत्रेय पुनर्वसु का शिष्य होने के कारण भेल का काल उनके समकालीन बैठता है।

भेल संहिता आज बहुत ही खण्डित और विशकलित रूप में उपलब्ध हुई है। इसके दो भिन्न स्थानों से दो संस्करण प्रकाशित हुए हैं। (कलकत्ता और बनारस)। हमने यहां प्रायः चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, बनारस से प्रकाशित (ई. १९५०) प्रति का ही प्रयोग किया है।

भेल संहिता में निम्न चार योगों में मदयन्तिका प्रयोग हुआ है—

१. महापद्म तैल चि अ २/२७-३३।
२ द्विपचमूल्यादि तैल चि. अ १६/१४।
३ रास्ना तैल चि. अ २६/२१७-१८।
४. प्रमेह नाशक प्रयोग चि अ ७/१५६।

प्रयोज्य अङ्ग -की दृष्टि से केवल एक स्थान पर मदयन्तिका के पत्रों का उल्लेख मिलता है-(चि ७/१५६) उपर्युक्त चार योगों में से ३ स्नेह कल्पनायें हैं। अतः भैषज्य कल्पना की दृष्टि से ७५%कल्पनायें स्नेहपाक विषयक है। एकौषधि प्रयोग के रूप में केवल एक योग प्राप्त होता है। (चि. अ ७।१५६)।

रोग चिकित्सा के विचार से मदयन्तिका का निम्न व्याधियों में प्रयोग मिलता है।

विषमज्वर, सर्वज्वर, वातपैत्तिकज्वर (महापद्मतैल, विषमज्वर चिकित्सित), इस तैल का प्रयोग अभ्यंग के रूप में होता है। उरुस्तम्भ (चिरोत्पन्न) श्लीपद, आढ्यवात, खुडवात वातरक्त (द्विपचमूल्यादि तैल-उरुस्तम्भचिकित्सित) इस तैल का प्रयोग पान, अभ्यंग आदि में किया जाता है। सभी वातव्याधियां, क्षतक्षीण, शिरोग्रह, स्वरक्षय, रक्तपित्त, हिक्का, श्वास, असृग्दर, पित्तयुक्तवात, रक्तयुक्तवात, विषमज्वर, हृदयरोग, गात्रकम्प, अपस्मार, रक्तगुल्म, शुक्रक्षय, (रास्नातैल, वातव्याधिचिकित्सित) इस तैल का प्रयोग भोजन, पान, अभ्यंग, वस्तिकर्म और नस्य में किये जाने का विधान है। यह बल और मांस के वर्धन करने में श्रेष्ठ है। शुक्रमेह (प्रमेह नाशक प्रयोग)। शुक्रमेह को शान्त करने के लिये मदयन्तिका के पत्तों का कल्क मधु मिलाकर सेवन किया जाता है।

हारीत संहिता—यद्यपि हारीत भी आत्रेय पुनर्वसु के छः शिष्यों में से एक थे, तथापि अद्यावधि उनके द्वारा रचित आर्षहारीत संहिता उपलब्ध नहीं हुई है। वर्तमान में जिस हारीत संहिता के प्रकाशित संस्करण मिलते हैं, वह परवर्ती-कालीन किसी अन्य व्यक्ति की ही कृति प्रतीत होती है। प्राचीन टीका ग्रन्थों में उल्लिखित हारीतसंहिता के संदर्भ एवं पाठ उपलब्ध ग्रन्थ में प्रायः देखने को नहीं मिलते।

वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित प्रति में निम्न दो स्थानों पर मदयन्तिका का उल्लेख मिलता है—

(१) तृतीय स्थान अ० ११/३१ (अर्श-चिकित्सा)
(२) तृतीय स्थान अ. १७/१६-१८(मदात्यय-चिकित्सा)

प्रयोज्य अङ्ग का कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

भैषज्य कल्पना की दृष्टि से प्रथम योग में कल्क और द्वितीय योग में वमनकारक योग के रूप में वर्णन है।

रोग चिकित्सा के विचार से मदयन्तिका का निम्न दो व्याधियों के लिये प्रयोग हुआ है।

(१) अर्श—उपर्युक्त प्रथम योग अर्शनाशक है सोंठ, पिप्पली, बेल, विडङ्ग शटी, हरड, त्रिवृता और मदयन्तिका के कल्क को गुड में मिलाकर सेवन करने से अर्श नष्ट होते हैं।

(२) मद-धतूरे के सेवन से उत्पन्न होने वाले मद में मदयन्तिका को शर्करा और दही के साथ मिलाकर वमन करवाया जाता है।

सुश्रुत संहिता चरक संहिता की भाँति इसके निर्माणकाल के विषय में भी विद्वानों में विवाद है। सुश्रुत ने अपने गुरु काशीराज दिवोदास धन्वन्तरि के, मुख्यतया शल्यतन्त्र को लक्ष्य कर दिये गये चिकित्सा विषयक उपदेशों को सुश्रुत संहिता के रूप में निबन्धित किया था। डल्हण ने नागार्जुन नामक किसी विद्वान को सुश्रुत संहिता का प्रतिसंस्कर्ता बताया है।* रचना की शैली और प्रौढता की दृष्टि से उपनिषत्काल की ही प्रतीत होती है।

विविधानि हि शास्त्राणि भिषजां प्रचरन्ति वाके ॥

—च वि. ८

इस चरकोक्त वचन से उस समय भी शल्यतन्त्र की सत्ता का बोध होता है। चरक संहिता को ईसा से ३०० वर्ष पूर्व की कृति मान लेने पर सुश्रुत संहिता का भी यही काल अथवा किंचित् परवर्ती काल मानना चाहिये।

सुश्रुत संहिता में 'मदयन्ती' अथवा 'मदयन्तिका' के कुल चार योग प्राप्त होते हैं। उनमें से तीन योग चिकित्सा स्थान में तथा एक योग कल्प स्थान में पाया जाता है।

(१) शोधन तैल या घृत	—चि. ३/८६–९२
(२) महानील घृत●	—चि. ९/३४–३८
(३) अङ्गराग योग	—चि २५/४३
(४) विष नाशक सर्पि	—कल्प. १/६३–६५

प्रयोज्य अङ्ग की दृष्टि से हमें केवल एक स्थान पर (अङ्गराग–योग में) इसके पत्रों के प्रयोग किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।

भैषज्य प्रयोग कल्पना की दृष्टि से ७५% उपयोग स्नेह-साधन में हुआ है—(महानील घृत, विषनाशक सर्पि शोधन तैल)।

रोग चिकित्सा (Therapeutics)—के रूप में "मदयन्तिका" या मदयन्ती का कुष्ठ (Leprosy or Skin Diseases), अङ्गश्यावता, श्वित्र (सफेद कोढ Leucoderma), भगन्दर, कृमि, अर्श (महानील घृत) रोगों में प्रयोग पाते हैं। नासिका द्वारा विषयुक्त शरीर शरीर में प्रवेश होने पर शरीर के नासादि छिद्रों में रक्तस्राव, शिर शूल या शिरोवेदना, मुख-नासा से कफ का अतिरिक्त स्राव तथा नेत्रादि इन्द्रियों के विकृत लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में गाय आदि के दूध, अतिविषा, श्वेता और मदयन्तिका के कल्क एवं स्वरस-क्वाथादि से पाचित घृत का पान एवं नस्य के रूप में प्रयोग किया जाता है। (विषनाशक सर्पि)। सद्योव्रण की चिकित्सा में व्रणशोधक तैल या घृत का निर्माण किया जाता है। (शोधन तैल या घृत) एकौषधि प्रयोग के रूप में उपयोग नहीं मिलता। सिचण्टु शास्त्र की दृष्टि से—सर्व प्रथम सुश्रुत संहिता में ही

* प्रतिसंस्कर्ताऽपीह नागार्जुन एव। —डल्हण

● (अ) इस सन्दर्भ पर (सु चि. ९/३४) की टीका में टीकाकार डल्हण ने वृद्धवाग्भट्ट का निम्न वचन उद्धृत किया है जिसमें मदयन्ती का उल्लेख हुआ है—

"जलापेक्षया क्वाथ्य द्रव्यस्यातिवाहुल्यमत्र योगे, तस्माद् वृद्धवाग्भटीय महानील घृत लिख्यते, यथा—मदयन्त्या सवायस्याः सुरभ्याः प्रग्रहस्य च। शतं पलानां प्रत्येकं वरायास्त्वढकत्रयम् ॥ इत्यादि (अ.सं.चि.३२)'

(आ) सुश्रुत संहिता चिकित्सा स्थान अ ११/१० पर टीका में डल्हण ने "त्रायन्तिका मदयन्तिका" यह स्पष्टीकरण किया है।

(इ) सुश्रुत चिकित्सा अ. २५/३३ पर डल्हण ने "मोदयन्ती मल्लिकेति लोकेख्याता" ऐसा लिखा है।

(ई) अ २५/४३ पर ही डल्हण ने 'मदयन्तिका मेदी' इति लोके यस्या पिष्टै पत्रैर्नखाना रागे स्त्रिय उत्पादयन्ति" ऐसा लिखा है।

इस प्रकार डल्हण के मतानुसार उपर्युक्त सन्दर्भों के आधार पर निम्न सादृश (समीकरण) प्राप्त होते हैं—

(१) मदयन्ती या मदयन्तिका = मेदी, मेहदी, महिन्दी (नखादि रागजननी)।

(२) मदयन्तिका = त्रायन्तिका (सुश्रुत) (३) मोदयन्ती = मल्लिका।

"अष्टांगहृदय कोष" में 'त्रायतिका' का 'त्रायमाण' अर्थ किया है। अब निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि 'त्रायतिका का मेहदी' अर्थ हो।

यह उल्लेखनीय है कि डल्हणने 'मोदयति' या 'मदयतिका' में अन्तर माना है। हेमाद्रि ने 'मदयंतिका' को यूथिका (जूही) लिखा है। धन्वन्तरि निघण्टु में भी 'मदयंती' से मल्लिका अर्थ लिया गया है।

मालतीका पर्याय से मदयन्तिका के गुणकर्मों का उल्लेख सूत्रस्थान के अ. ४६/२८६ पर इस प्रकार हुआ है—

'मालतीमल्लिके तिक्ते सौरभ्यात् विषनाशने ।'

इस प्रकार पुष्प वर्ग मे इसकी गणना की गई है। बाद के निघण्टुकारो ने भी मदयन्तिका को पुष्प वर्ग में ही प्राय वर्णित किया है।

काश्यपसंहिता—इसे 'वृद्धजीवक तन्त्र' भी कहते है। वृद्धजीवक ने महर्षि 'कश्यप' अथवा 'काश्यप' से आयुर्वेद के अष्ट अङ्गो मे मुख्यतया 'कौमारभृत्य' पर विशिष्ट उपदेश एव ज्ञान प्राप्त कर संहिता या तन्त्र के रूप मे इसका निर्माण किया था। बाद मे जीवक के वशज वात्स्य ने इसे 'अनायास' नामक यक्ष से प्राप्तकर प्रतिसस्कृत रूप मे प्रकाशित किया। यह ऐतिहासिक वर्णन उक्त ग्रन्थ के संहिताकल्पाध्याय मे, सम्भवत प्रतिसंस्कर्ता द्वारा दिये गये, विवरण से ज्ञात होता है। कश्यप अथवा काश्यप उपनिषत्कालीन महर्षि थे।* वे आयुर्वेद के विशेष ज्ञाता होने के कारण प्राय. आयुर्वेद की शास्त्र चर्चाओ और सम्मेलनो मे भाग लेकर वहाँ अपने विचार भी प्रस्तुत किया करते थे। चरक मे उनका कई स्थानो पर नामोल्लेख मिलता है। इस प्रकार उनके शिष्य जीवक का भी यही काल प्रमाणित होता है। यह संहित नेपाल मे खण्डित और त्रुटिताश-बहुल उपलब्ध हुई है। इसका सपादन यादव जी आचार्य महाराज ने कुछ वर्षो पूर्व किया था। प. हेमराज शर्मा ने इसकी विशेष जानकारी के लिये लगभग २०० पृष्ठो का उपोद्घात भी उक्त प्रकाशन के साथ सम्मिलित किया है।

काश्यप संहिता मे केवल दो स्थानो पर 'मदयन्ती' और 'मदयन्तिका' का उल्लेख पाया जाता है—

(१) त्रैवृत तैल—(चि. स्थान, दुष्प्रजातिचिकित्सित १३—२३)।

(२) तैल प्रयोग—(खिलस्थान। अन्तर्वत्नीचिकित्सित ३४—४३)।

प्रयोज्य अङ्ग की दृष्टि से कोई उल्लेख प्राप्त नही होता। भैषज्य कल्पना के आधार पर दोनो ही योग स्नेहकल्पना के है। इनमे से प्रथम योग त्रैवृततैल को सूतिकाओ मे होने वाले सभी प्रकार के वातिक विकारो मे श्रेष्ठ बताया है। इस तैल का प्रयोग अभ्यंग, पान और वस्तिकर्म के रूप मे किया जाता है। दूसरा योग अन्तर्वत्नी (सगर्भा स्त्री) की चिकित्सा के लिए प्रयुक्त हुआ है। गर्भ के स्थिरीकरण के लिए एव गर्भ के स्थिर हो जाने पर इस तैल का कवोष्ण रूप मे समस्त मात्रअवयवो मे मर्दन (मालिश) किया जाता है। इसके ३ बार मर्दन करने मात्र से ही गर्भिणी का वातिक-ज्वर शान्त हो जाता है।

संग्रह ग्रन्थकाल—ईसा के जन्म के आसपास से ही आर्यावर्त मे आयुर्वेद के संग्रह ग्रन्थो का निर्माण प्रारम्भ हो गया था। प्राचीन संहिता-ग्रन्थो से सामिग्री एकत्रित कर मूलरूप मे अथवा शब्दान्तर से अपने शब्दो मे—इन संग्रह ग्रन्थो का निर्माण किया गया था। अद्यावधि उपलब्ध संग्रह ग्रन्थो मे "नावनीतकम्" (Bower Manuscript) सबसे प्राचीन है। लाहौर से प्रकाशित 'नावनीतक' के संस्करण के सम्पादक कविराज बलवन्त सिंह मोहन वैद्य वाचस्पति के मतानुसार यह रचना ई० पू० ६०० के लगभग की है। परन्तु भाषा एव शैली की दृष्टि से यह ई० की २री शती की रचना प्रतीत होती है। इसके पश्चात् वाग्भट का काल चौथी शताब्दी ईसवीय माना जाता है।

वाग्भट और अष्टांगहृदय—वाग्भट नाम के दो आचार्य रसायन शास्त्र और आयुर्वेद के इतिहास मे प्रसिद्ध है। यहा पर चरक और सुश्रुत की परम्परा मे अष्टाग-संग्रह और अष्टांग हृदय नामक ग्रन्थो के रचयिता वाग्भट का ग्रहण अपेक्षित है। वाग्भट शको के समकालीन थे। वाग्भट को भट्टार हरिचन्द्र का समकालीन या ईषत् पूर्ववर्ती माना जाता है। और ऐसा मानने पर उनका काल ईसा की चौथी शताब्दी प्रमाणित होता है। वाग्भट वैदिक ब्राह्मण थे अथवा बौद्ध—इस सम्बन्ध मे थोडा—सा विवाद है। उनके ये दोनो ही ग्रन्थ अपने ही नाम से क्रमश "वृद्ध वाग्भट" और "वाग्भट" के रूप मे प्रसिद्ध है।

वाग्भट को वृद्धत्रयी मे स्थान प्राप्त हुआ है। चरक, सुश्रुत की परम्परा का वह अतिम आचार्य प्रतीत होता है। अष्टाग हृदय मे समस्त सामग्री वही है जिसका चरक और सुश्रुत ने उल्लेख किया है। वाग्भट ने सभी अध्यायो के प्रारम्भ मे यह वाक्य दुहराया है—"इति ह स्माहुरात्रयादयो महर्षय"।

मदयन्तिका द्रव्य के विषय मे भी यही बात है।

*विस्तार के लिए देखिये-काश्यप संहिता का उपोद्घात —पं. हेमराज शर्मा प्रणीत।

चरक के ही प्रयोग प्राय. उद्धृत मिलते है। निम्न चार योग गिनाते है—

मदयन्ती® १ महापचगव्यघृत—उत्तरतन्त्र, अपस्मार प्र अ ७/१६—२४
२. दन्तदृढीकरण गण्डूष ३० त., मुखरोग प्र.२२/१०७
मदयन्तिका[x] ३. योनिशूलचिकित्सा—उ० त० गुह्यरोग प्र० ३/०, ३४।३२
क्वाथ योग* ४. रक्तपित्त चि २।२७

प्रयोज्य अग की दृष्टि से अष्टांग हृदय मे कोई उल्लेखनीय निर्देश प्राप्त नही होता। भैषज्य कल्पनाओ मे एक घृत, दो क्वाथ और एक चूर्ण या कल्क का प्रयोग मिलता है, तथा धारण करने के लिए मल्लिका के फूलो का विधान बताया गया है।

वाग्भट मे मदयन्तिका के एकौषधिप्रयोग नही मिलते। रोग चिकित्सा की दृष्टि से महापचगव्यघृत का प्रयोग ज्वर, अपस्मार, उदर रोग, भगन्दर, शोथ, अर्श, कामला, पाण्डु, गुल्म, कास और ग्रहबाधा मे हितावह बताया गया है। मदयन्तिका का खदिर त्रिफला, अर्जुन और कनेर के साथ क्वाथ बनाकर गण्डूष धारण करने से हिलते हुए और कमजोर दात दृढ बनते हैं (दन्तदृढीकारक गण्डूष)। अडूसा, जम्बीरी नीबू की जड,मदयतिका, पीपली, और उपकुचिका के चूर्ण या कल्क को सेंधा नमक मिलाकर मद्यानुपान से पीने पर योनिशूल मे लाभ होता है। लोध,अडूसा, काली मिट्टी और मदयन्तिका के क्वाथ को शहद और शर्करा मिलाकर पीने से रक्तपित्त मे लाभ होता है (रक्तपित्तहर योग)। मल्लिका पुष्पों का माल्यधारण करने के रूप मे उपयोग दो स्थानों पर बताया गया है। प्रथम मदात्यय चिकित्सा (चि० अ० ७/८१—८५) में तथा द्वितीय तर्पणपुटपाक विधि के प्रसग (सू० अ० २४/२०—२२) मे। पदलालित्य और सुरुचि काव्य शैली के निदर्शन रचनाकार वाग्भट की उक्ति मदात्ययचिकित्सित मे मल्लिका धारण के सदर्भ मे अनूठी बन पड़ी है। पाठको के ज्ञानार्थ उनकी कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जा रही है—

तालवृन्तनलिनीः दलानिलै.
शीतलीकृतमतीव शीतरै. ।
दर्शनेऽपि विदधद्दशानुग
स्वादित किमुत चित्तजन्मन. ।।
धूतरसेन्दुमयू. कृतवासं
मल्लिकयोज्ज्वलया च सनाथम् ।
स्फाटिक शुक्तिगत नतरग
कान्तमनङ्गमिवोद्वहदङ्गम् ।।
तालीसाद्य चूर्णमेलादिकं वा
हृद्य प्राश्य प्राग्वय.स्थापन वा ।
तत्प्राधिम्यो भूमिभागे सुमृष्टे
तोयोन्मिश्र दावयित्वा ततश्च ।।
(अ०हृ० चि० मदात्ययचिकित्सितम् अ०७/८१-८३)

उत्तरकालीन संग्रह ग्रंथ—(ईसा की ७वीं शती से १६ वी शती तक) इस काल का प्रारम्भ माधवकर (७वी-शताब्दी ई०) द्वारा रचित 'रुग्विनिश्चय" या "माधव-निदान" से मानना चाहिये। क्योंकि निदानोक्त रोगक्रम

® अष्टाग सग्रह मे विष-शमन करने वाली औषधि के रूप मे निम्नलिखित वर्णन मिलता है—
"तत्रस्ति विषाश्वेताकाकमाची-मदयतिका कल्के क्षीर सिद्ध सर्पिर्नस्ये पाने च विदध्यात्" ।।३६।। (सूत्र स्थान अध्याय ८, अन्नरक्षाविधि, पृ.७८, चित्रशाला प्रेस पूना,संस्करण १६४०) इस पर इन्दुने 'मदयन्तिका'शब्द की व्याख्या नहीं की है। परन्तु सम्पादक प आर. डी. किजवडेकर ने इसे 'मल्लिका' (मोगरी, बेलमोगरा) ऐसा स्पष्ट किया है।

[x] श्री के.एस. वैद्य ने अपने 'अष्टागहृदयकोष' (त्रिचूर, १६३६) मे लिखा है—
मदयन्ती—नखरजक धातकी इति इन्दुः। काठ मल्लिका इति हाराण चंद्रः ।।
मदयन्तिका—नखरंजको नाम वृक्षविशेष। यस्या पिष्टैः पत्रैः नखाना रागं स्त्रिय उत्पादयन्ति ।।
मल्लिका-इति बहव। नवमल्लिका इति एके।"

* इस संदर्भ पर टीका मे हेमाद्रि ने 'मदयन्तिका' को 'यूथिका' कहा है, जिसे जूही' (जसमिन का एक भेद) कहते हैं।

के आधार पर पश्चात्कालीन चिकित्सा सम्बन्धी संग्रहग्रन्थो का निर्माण हुआ ।

चिकित्सासार–सग्रह या चक्रदत्त

चरक चतुराननचक्रपाणिदत्तकृत इस रचना का काल ११ वी शताब्दी माना जाता है । मदयन्तिका' के कुल चार योग इसमे मिलते हैं—

१. वृहत्पचगव्य घृत (अपस्मार चिकित्सित १७-२२)
२ महानील तैल (क्षुद्ररोग चिकित्सित १२६-१३३)
३ कुकुमाद्य तल („ „ ७२-७६)
४. रक्तपित्तहर प्रयोग (रक्त पित्तचिकित्सित १८)

इसमे से प्रथम दोनो योग चरक से उद्धृत है । शेष दो योग नवीन है । सम्भवत इन योगो का समावेश चक्रपाणि ने अपने ग्रन्थ मे अन्य सग्रहग्रन्थों को देखकर अथवा व्यवहार मे प्रचलित प्रयोगो का अवलोकन कर, किया हो, ऐसा प्रतीत होता है ।

इन चार योगो मे से तीन योग स्नेहकल्पना सम्बन्धी है, एक योग क्वाथ का है । एकौषधि प्रयोग के रूप मे रक्तपित्ताधिकार मे क्वाथ के रूप मे मदयन्तिका का मधु और शर्करा के साथ सेवन करना बताया गया है ।

क्षुद्ररोगाधिकार मे कुकुमाद्य तैल (तृतीय) का प्रयोग सर्वथा नवीन है । इसका अभ्यग करने पर शरीर सुवर्ण के समान लावण्य और काति से युक्त हो जाता है तथा इससे लक्ष्मी और सौभाग्य की प्राप्ति होती है । यह वशीकरण की दृष्टि से भी उत्तम योग है ।

इस प्रकार चक्रदत्त मे मदयन्तिका का मुख्यतया रक्तपित्त, अपस्मार, क्षुद्ररोग, कुष्ठ, वातरक्त, नासारोगो मे प्रयोगविधान देखने को मिलता है ।

गदनिग्रह—इस ग्रन्थ के रचयिता "शोढल या सोढल" बताये जाते हैं । इनका निघण्टुग्रन्थ भी आयुर्वेद मे बहुत प्रसिद्ध है । इनका समय बारहवी शती बताया जाता है । ये गुजरात के रहने वाले थे । ये रायकवाल ब्राह्मण जातीय जोशी थे । चिकित्सा मे से कल्प योगो को पृथक् करने की शैली का प्रारम्भ इस गुजराती वैद्य ने १२ वी शती मे किया, यह इसकी विशेषता है ।

गदनिग्रह मे हमे सबसे अधिक प्रयोग कल्पनाएँ–कुल १२ योग मदयन्तिका के मिलते है। प्रयोगाधिकार-सहित उनके नाम निम्न है–

१. हारीतात् रक्तपित्ते महावासाद्य घृतम्–प्रयोगखण्ड घृताधिकार ४३–४६
२. भेडात्कुण्ठे महानील घृतम्—प्रयोगखण्ड घृत ७७–८३
३ जतुकर्णात्कुष्ठे द्वितीय महातिक्तक घृतम्–वही १६९–७६
४. हरीतात् सर्वोदरे द्विपचमूलाद्य घृतम् –वही १८५—१८७
५. अपस्मारे पचगव्य घृतम्–वही–३१६–३२२
६. ज्वरे महापचगव्द घृतम्–वही ३२३–३३०
७ वातव्याधौ रास्नातैलम्—प्रयोगखण्ड, तैलाधिकार ८४–६४
८ वातरक्ते महापद्मक तैलम्—वही १३५-१३८
६. ज्वरे तृतीय महापद्मक तैलम्—वही १३६-१४६
१० महानील तैलम्—वही, ४८०-४८४
११. उरुस्तम्भे द्विपचमूलाद्य तैलम्—वही, ४८६-४६७
१२. शिरोरोगे महानील तैलम्—वही, ५१६-५२२

प्रयोज्य अङ्ग की दृष्टि से दो स्थानो पर मदयन्तिका के पत्तो का उल्लेख मिलता है (महावासाद्य घृत तथा महापद्मक तैल) ।

भैषज्य कल्पना की दृष्टि से ये सभी योग स्नेहपाक सम्बन्धी हैं । इनमे से ६ योग घृत के एव अवशिष्ट ६ योग तैल के हैं ।

एकौषधि प्रयोग नही मिलता । रोग चिकित्सा की दृष्टि से नीचे सक्षेप मे विचार किया जा रहा है—

रोग और प्रयोग विधान

(१) **महावासाद्य घृत**—इसका हारीत सहिता से पाठ उद्धृत किया गया है । यह पाठ वर्तमान उपलब्ध एव प्रकाशित हारीत सहिता मे देखने को नही मिलता । इस घृत का उपयोग मथकर रक्तपित्त, पित्तजकास, गुल्म, स्वरभेद, हलीमक तथा अन्य रक्तज पित्तज विकारो मे किया जाता है । इसे मिश्री और शहद मिलाकर लेने का विधान है ।

(२) **महानीलघृत भेडोक्त**—प्रकाशित भेड-सहिता मे यह योग नही मिलता । सम्भवत पाठ खण्डित होने से अप्राप्य हो गया हो । इसका प्रयोग कुष्ठरोग नाशनार्थ बताया गया है ।

(३) **द्वितीय महातिक्तक घृत**—जतूकर्ण संहिता से यह पाठ लिया गया है। यह संहिता आज अनुपलब्ध है। यह कुष्ठ रोग मे हितावह है। इसके प्रयोग से रक्तपित्त, वात रोग, सन्निपात, विस्फोट, कर्णपाली के रोग, विद्रधि, किलास, कास, ज्वर, गण्डमाला, ग्रन्थि, अर्बुद, वातरक्त, हृद्रोग, पाण्डुरोग, भगन्दर, शोथ का शमन होता है।

(४) **द्विपंचमूलाद्य घृत**—इसका पाठ भी हारीत संहिता से लिया गया है। इसका विधान सभी उदररोगो की शाति के लिए किया गया है।

(५) **पचगव्य घृत (अपस्मार)**—यह अपस्मार रोग की औषधि है। चतुर्थिक ज्वर, क्षय, श्वास, उन्माद का भी नाश करती है।

(६) **महापंचगव्य घृत** (ज्वर)—यह घृत ज्वर चिकित्सा मे बताया गया है। इससे प्लीहा रोग, अर्श, भगन्दर, उदर, गुल्म, कामला, चातुर्थिकज्वर, श्वयथु, पाण्डुरोग नष्ट होते हैं।

(७) **रास्ना तैल**—यह वातव्याधि के चिकित्साधिकार मे पढा गया है। इसका प्रयोग भोजन, अभ्यग, पान, वस्ति, नस्य के रूप मे होता है। यह सभी वातव्याधियो, क्षत-क्षीण, शिरोग्रह, अपस्मार, रक्तगुल्म, शुक्रक्षय मे उपयोगी है। इससे बल और मास की वृद्धि होती है। इस प्रकार यह वाह्य और आभ्यतर दोनो रूपो मे प्रयुक्त होता है।

(८) **महापद्मक तैल**—यह वातरक्त को नष्ट करने के लिए प्रयुक्त होता है।

(९) **महापद्मक तैल (ज्वर)**—इसका पाठ पूर्वोक्त महापद्मक तैल से सर्वथा भिन्न है। इसका उपयोग अभ्यग पान, वस्ति, नस्य के रूप मे किया जाता है। यह विषम ज्वर एव वात-पित्तजन्य ज्वर को नष्ट करता है। वर्ण-प्रसादन और सौकुमार्यजनन कार्य भी देखे जाते हैं।

(१०) **महानील तैल**—इसका प्रयोग पलित आदि ऊर्ध्वजत्रुगत रोगो मे किया जाता है।

(११) **द्विपचमूलाद्य तैल (उरुस्तम्भ)**—इसका प्रयोग अभ्यग, एव पान के रूप में होता है। इसके प्रयोग से चिरकालीन उरुस्तम्भ, श्लीपद, आढ्यवात, खुडवात का नाश होता है।

(१२) **महानील तैल** (शिरोरोग)—इसका प्रयोग शिर के विकारो मे किया जाता है।

वीरसिंहावलोक—लगभग इसी समय अर्थात् १२वी शती मे तोमर वश के राजा वीरसिंह ने इस ग्रन्थ की रचना की। ज्योतिष शास्त्र और आयुर्वेद के विचारो का समन्वय करते हुए कर्मविपाक' और तदनुसार विभिन्न रोगो की निदान-चिकित्सा का इस ग्रन्थ मे सुन्दर वर्णन किया गया है। अजीर्ण रोग की चिकित्सा मे कर्मविपाक की शान्ति के लिए बताये गये उपाय मे मदयन्तिका का उल्लेख है—

'तिलाज्याश्वत्थसमिद्भिर्होम । पीतवासोदान स्नान च मालतीकुसुम शुभ्र-सर्षपै ।

पल्लवैश्च मदयन्तिकोद्भवै ।
मिश्रमम्बु मधुकेन च स्फुट ॥
वैकृत गुरुकृत निकृन्तति ।

(वीरसिंहावलोक पृ. ४२-४३, अजीर्णाधिकार)

रसग्रथ—रसग्रन्थो का काल रससिद्ध नागार्जुन से अर्थात् ७वी शती से प्रारम्भ होकर धीरे-धीरे विकसित होता जाता है।

मदयन्तिका का उल्लेख रस ग्रन्थो मे बहुत कम स्थलो पर पाया जाता है। रसौषधियो के निर्माण मे इसका प्रयोग नगण्य सा हुआ है। पारद के रजनकर्म मे उपयोगी 'रक्तवर्ग' मे इसकी गणना की गई है। 'दिव्यौषधि' और 'महौषधि' के रूप मे भी इसका और इसके अन्य भेदो का उल्लेख कतिपय रसग्रन्थो मे प्राप्त होता है।

"रक्तवर्गस्तु देवेशि ! पीतवर्गमत शृणु ।
कुसुम्भ किंशुक रात्री पतङ्गो मदयन्तिका ॥"

(रसार्णव, पचमपटल १३९)•

'रसतत्वविवेचन' मे भी पीतवर्ग के अन्तर्गत मदयन्तिका को पढ़ा गया है। (पृ० ५३)।

• रसार्णव का रचनाकाल १२ वीं शती ई० है।—द्रष्टव्य P. C Ray, History of Hindu Chemistry, II इस ग्रंथ का सम्पादन सर प्रफुल्लचद्र राय और प० हरिश्चन्द्र शर्मा, बी बी इण्डिका, कलकत्ता से ई १९१० सन् मे किया था।

निर्दिष्ट संदर्भ मे वर्णित मदयन्तिका से सर राय ग्रंथ के अन्त मे दिये गए शब्दकोष मे "मदयन्तिका नवमल्लिका (एक प्रकार की जसमिन) बगाली मे काठमल्लिका" ऐसा अर्थ किया है।

वैद्यक निघण्टु साहित्य

वैद्यक निघण्टुओं का प्रारम्भ माधव के पर्यायरत्नमाला' (९वी शती ईसवीय) से होता है। परन्तु धन्वन्तरि निघण्टु (११वी शती) से निघण्टुओं की स्पष्ट रूपरेखा सामने आती है। यह परम्परा आधुनिक काल तक चल रही है।

वैद्यक शास्त्र के प्राय सभी प्रसिद्ध निघण्टुओं में मदयन्तिका का उल्लेख पुष्पवर्ग के अन्तर्गत मल्लिका के रूप में किया गया है। प्राचीनकाल में प्रचलित "मदयन्ती" संज्ञा का धीरे-धीरे प्रयोग सीमित होता गया है। विशेष उपयोगी एवं प्रयोज्य अंग की दृष्टि से पुष्प का व्यवहार सामान्य होने से इसकी पुष्पवर्ग में गणना किया जाना समीचीन प्रतीत होता है। निघण्टुओं का वर्णन नीचे सकलित किया जा रहा है—

पर्याय-१. भावप्रकाश—

मल्लिका मदयन्ती च शीतभीरुश्च भूपदी।

२ धन्वन्तरि निघण्टु—

मल्लिका शीतभीरुश्च मदयन्ती प्रमोदिनी।
मदनीया गवाक्षी च भूपद्यष्टपदी तथा॥

३ राजनिघण्टु—

(अ) मल्लिका मद्रवल्ली तु गौरी च वनचन्द्रिका।
शीतभीरु प्रिया सौम्या नारीष्टा गिरिजा सिता॥
मल्ली च मदयन्ती च चन्द्रिका मोदिनी मनु।

(ब) मल्लिको मोदिनी चान्या वटपत्रा कुमारिका।
सुगन्धाढ्या वृत्तपुष्पा मुक्ताभा वृत्तमल्लिका॥

४. मदन विनोद निघण्टु—

मल्लिका मोदकी मुक्तबधना मदयन्तिका।

५. कैयदेवनिघण्टु—

भूमण्डनी भूमिमण्डो भूमिदण्डा प्रबोधिका।
प्रमोदिनी विजयनी भूपदी मुक्तबधना॥
मल्लिका मदनीया स्याद्विपुटा शीतभीरुका।
अष्टापदी सुरूपा च तृणशून्य गवाक्षिका॥
मदयन्ती सुबर्पा स्यादन्या स्फीता वनोद्भवा॥

६ शालिग्राम निघण्टु भूषण—

वार्षिकी शीतभीरुश्च मदयन्ती प्रमोदनी।

गुणकर्म—

(१) मल्लिकोष्णा लघुर्वृष्या तिक्ता च कटुका हरेत्।
वातपित्तास्यदृग्व्याधिकुष्ठारुचिविषव्रणान्॥
(भावप्रकाश)

(२) मल्लिका कफजित्तिक्ता ज्वरस्तमन रोपिणी।
(राजवल्लभ निघण्टु)

(३) मल्लिकोष्णा कटु स्वादे दारयत्यास्यजान्गदान्।
सत्रासयति नेत्रोत्थरुज. पित्तसमीरजित्॥
(धन्वन्तरि निघण्टु)

(४) मल्लिका कटुतिक्ता स्याच्चक्षुष्या मुखपाकहृत्।
कुष्ठविस्फोट कण्डूति विषव्रणापहा परा॥
(राजनिघण्टुः)

(५) मल्लिका कटुका तिक्ता लघूष्णा शुक्रला हरेत्।
वातपित्तास्रहृद्रोग कुष्ठारुचि विषव्रणान्॥
(कैयदेव निघण्टु)

(६) मल्लिकासभव पुष्प तिक्त जयति मारुतम्।
(शोढलनिघण्टु)

(७) मल्लिकोष्णा गुरुर्वृष्या वातपित्तास्यरोगजित्।
(मदनविनोद निघण्टु)

इस प्रकार मल्लिका के अर्थ मे मदयन्तिका के पर्यायों और गुणकर्मों का निघण्टु ग्रन्थो मे वर्णन देखने को मिलता है।

आधुनिक काल—ई० की १९ वी शती से आयुर्वेद के इतिहास मे आधुनिक काल का प्रारम्भ होता है। इस काल मे अन्य द्रव्यो की भाँति मदयन्तिका के सम्बन्ध मे नामात्मक सदिग्धता प्रादुर्भूत हुई।

कतिपय विद्वानो द्वारा मदयन्तिका शब्द से नवीन अरबो द्वारा लाई गई 'मेहदी'* का ग्रहण किया जाना मान्य समझा गया। कतिपय विद्वान् प्राचीन निघण्टु साहित्य द्वारा सम्मत अर्थ का अनुसरण करते हुए मदयन्तिका से मल्लिका या मोतिया का ग्रहण किया जाना उचित समझते है। इस प्रकार नवीन आयुर्वेद शास्त्रियो ने मदयन्तिका शब्द से मल्लिका (Jasminum Sambac) और मेहदी (Lawsonia inermis) के रूप मे वर्णन किया है। प्राचीन पक्ष अधिक न्यायोचित है। अग्रिम पक्तियो

* मेन्धिका, स्त्री। (मा शोभामिन्धयति प्रकाशतीति इन्ध + णिच + ण्वुल। टापि अत इत्वम्) क्षुपविशेष, इति केचित्। मेहदी इति भाषा" "मेन्धी, स्त्री (मां शोभामिन्धयतीति। इन्ध + णिच् + अण्। गौरादित्वात् ङीप्। क्षुपविशेष। इति केचित्। मेहदी इति भाषा।"
(श्री राधाकान्त देव बहादुर द्वारा विरचित् "शब्दकल्पद्रुम" भाग ३, पृ० ७५२)

में मैं इस विवाद का विशद विवेचन करूंगा और अन्त मे निष्कर्ष रूप मे मल्लिका का निर्णय किया है।

संदिग्धता निवारण—

प्राचीन काल मे ही भारतीयो ने वनस्पतियो के सम्बन्ध मे पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वनस्पतियो के नाम और रूपात्मक ज्ञान की उपलब्धि वन मे गायो और भेड बकरियो को चराने वाले तथा वनो मे फिरने वाले, रहने वाले मनुष्यो को अधिक मात्रा मे थी। यद्यपि वे इनके गुणकर्मों से विशेष परिचित नही थे। अग्निवेश ने ऐसे व्यक्तियो से वनस्पति-विषयक परिचय-ज्ञान प्राप्त करने का उपदेश दिया है—

औषधीर्नामरूपाभ्या जानते ह्यजपा वने।
अविपाश्चैव गोपाश्च ये चान्ये वनवासिन ॥
(च०सू०अ० १)

परन्तु कालान्तर मे सामाजिक परिवर्तनो के कारण वनस्पतियो सम्बन्धी परिचयात्मक ज्ञान न्यून होता गया। यहाँ तक कि उनके विषय मे सन्दिग्धता एव सशय उत्पन्न होने लगा। हमारे समय तक सैकडो ज्ञातनामा वनस्पतिया सन्दिग्ध और अनिश्चित बन गई हैं। स्थूल रूप से विचार करें, तो वनस्पतियो के विषय मे पाई जाने वाली सन्दिग्धता को निम्न तीन वर्गो मे बाँट सकते है—

१ नामात्मक सन्दिग्धता—उदा० लोध तिल्वक के विषय मे।

२. रूपात्मक सन्दिग्धता—उदा० 'ब्राह्मी' के विषय मे

३ गुणकर्मात्मक सन्दिग्धता—यथा 'चेतकी' हरड के विषय मे।

वर्तमान मे 'मदयन्ती' अथवा 'मदयन्तिका' के विषय मे हम प्रथम प्रकार की सदिग्धता पाते हैं। इस विषय मे यह ध्यान मे रखना चाहिए कि नामात्मक सदिग्धता प्राय उन्ही द्रव्यो के सम्बन्ध म पायी जाती है, जिनके अनेकार्थवाची पर्याय पाये जाते हैं—अर्थात् एक ही शब्द से अनेक वस्तुओ का बोध होता है। 'मदयन्तिका' के विषय में भी कुछ ऐसी ही स्थिति है।

सत्रहवीं सदी में शिवदत्त मिश्र द्वारा विरचित 'शिवकोश' मे 'मदयन्तिका' शब्द का तीन अर्थों मे प्रयुक्त होने का उल्लेख मिलता है। यह प्रथम वैद्यक निघण्टु कोषग्रन्थ है, जिसमें इस प्रकार का वर्णन उपलब्ध होता है—

"मदयन्ती मदनीया प्रमोदनीबालपुष्पासु ॥" २०७ ॥

स्वय लेखक ने इस ग्रन्थ की टीका भी लिखी है। इस टीका मे 'मदयन्ती' शब्द से ग्रहीत तीनो द्रव्यो का इस प्रकार वर्णन है—

१. मदनीया—धातकी
२. प्रमोदनी—मल्लिका
३. बालपुष्पा—यूथी

इसके पूर्व के किसी भी कोषग्रन्थ या निघण्टुग्रन्थ मे हमे इस प्रकार का उल्लेख नही मिलता। सस्कृत-साहित्य के कोषो मे सर्वत्र 'मदयन्तिका' का 'मल्लिका' के पर्यायो मे उल्लेख किया गया है—

(१) मल्लिकाया शीतभीरुर्मदयन्ति प्रमोदनी।
अष्टापदी तृणशून्य, गवाक्षा भूपद्यपि ॥ २१२९ ॥
—हेमचन्द्राचार्य-अभिधानचिन्तामणिकोश

(२) मल्लिका शीतभीरुश्च गवाक्षी भद्रमल्लिका।
शीतभीरुर्मदयन्ती भूपदी तृणशून्यकम् ॥
(वाचस्पति)

अमरकोष मे मदयन्ती शब्द 'मल्लिका' के पर्यायो मे नही पाया जाता है। इसी प्रकार वैद्यक निघण्टु साहित्य मे भी प्राय सभी स्थानो पर मदयन्ती का मल्लिका के अर्थ मे प्रयोग हुआ है—

(१) मल्लिका शीतभीरुश्च, मदयन्ती प्रमोदनी।
मदनीया गवाक्षी च भूपद्यष्टपदी तथा ॥
(धन्वन्तरिनिघण्टु, आम्रादि पंचमोवर्ग ४५)

(२) मल्लिका मदयन्ती च शीतभीरुश्च भूपदी।
(भावप्रकाशनिघण्टु, पुष्पादिवर्ग १३५)

(३) मल्लिका मोदकी मुक्तबंधना मदयन्तिका।
(मदनविनोदनिघण्टु, पुष्पवर्ग)

(४) भूमण्डनी भूमिमण्डी भूमिदण्डा प्रबोधिका।
प्रमोदिनी विजयनी भूपदी मुक्तबधना ॥
मल्लिका मदनीयास्याद्विपुटा शीतभीरुका।
अष्टापदी सुरूपा च तृणशून्य गवाक्षिका ॥
मदयन्ती सुवर्पा स्यादन्या स्फीता वनोद्भवा।
(कैयदेवनिघण्टु, । १०५४-५५)

नवीन शालिग्राम वैश्य विरचित 'शालिग्राम निघण्टु भूषणम्' नामक निघण्टु ग्रन्थ मे मल्लिका के तीन भेद वार्षिकी, मल्लिका और मुद्गरक बताये गये है। वार्षिकी के पर्यायो मे मदयन्ती प्रयुक्त हुआ है—

"वार्षिकी शीतभीरुश्च मदयन्ती प्रमोदनी ।"
(शालिग्राम नि० भू० पु०)

आधुनिक संस्कृत कोषों में मदयन्ती अथवा मदयन्तिका का मल्लिका के पर्यायों में उल्लेख मिलता है।

(१) वाचस्पत्यम्-पृ० ४६६६
(२) शब्दकल्पद्रुम. (भाग तृतीय)—पृ० ६४७
(३) हलायुधकोशविवृति.—(पृ०५२०) इत्यादि

इस प्रकार प्राचीन वैद्यक एवं प्राचीन आधुनिक संस्कृत कोषों में मदयन्तिका को मल्लिका के पर्यायों में मानते हुए उसकी सदिग्धता एवं अनेकार्थता का परिचय प्राय. सर्वत्र उपलब्ध नहीं होता।

मेरे विचार से 'मदयन्तिका' शब्द की सदिग्धता का सूत्रपात उल्हणाचार्य की सुश्रुतसहिता पर लिखी गई 'निबन्ध सग्रह' नामक टीका से होता है। सुश्रुत चि० अ० ६ की टीका में 'मदयन्ती' शब्द पर डल्हण ने निम्न विचार प्रस्तुत किया है:—

"मदयन्तिका इति नरादिरागजननी 'महेन्द्री' इति प्रसिद्धा।"

अन्यत्र सभी स्थानों पर डल्हण ने मदयन्तिका से मल्लिका अर्थ ही ग्रहण किया है। स्पष्ट ही, उक्त प्रसग में डल्हण ने मदयन्तिका से मेहन्दी अर्थ किया है। शिवकोषकार ने मदयन्ती के अनेकार्थों में मेहन्दी का उल्लेख नहीं किया है। डल्हण का यह विचार सर्वथा नवीन और क्रांतिकारी रहा है इसमे कोई सन्देह नही।

इस प्रकार धाय, मोतिया, जूहि और मेहन्दी इन चार वनस्पतियों के लिये मदयन्ती या मदयन्तिका शब्द का प्रयोग हुआ है।

परन्तु आधुनिक निघण्टुकार, कोषकार एवं द्रव्य गुण के सभी विद्वानों ने मदयन्ती से प्राय दो अर्थों का मोतीया और मेहन्दी ग्रहण किया है।

उपर्युक्त चार वनस्पतियों में से धातकी और जूहि का उल्लेख हम केवल शिवकोष में ही पाते है। अन्य निघण्टुओं एवं वैद्य परम्पराओं में मदयन्ती के अर्थ में धातकी और जूही का प्रयोग कही देखने में नही आता। सहिताग्रन्थ की टीकाओं में भी मदयन्ती के अर्थ में इन द्रव्यों का उल्लेख किसी भी टीकाकार द्वारा किया हुआ प्राप्त नही होता। अत ऊहापोह की दृष्टि से केवल दो ही द्रव्य मोतीया और मेहन्दी अवशिष्ट रह जाते है।

मदयन्ती को मेहन्दी मानने की विचारधारा सर्वथा नवीन है। इस मन्तव्य को स्वीकार करने वालों ने प्राय: उपर्युक्त डल्हण के विचार को अपने सम्मुख रखा है। इन विद्वानों के विचार यहाँ प्रस्तुत करना विषय की सुगमता की दृष्टि से अपेक्षित होगा—

(१) मदयन्तिका (स्त्री)
मदयन्ती (स्त्री) मल्लिका
(संस्कृत शब्दार्थकौस्तुभ द्वारकाप्रसाद शर्मा चतुर्वेदी पृ० ६४८)

(२) मदयन्तिका (स्त्री)। स्त्री। नवमल्लिकाया। (काठमल्लिका) (र. मा.) त्रिपुरमल्लिकाया (प. मु.) (वैद्यकशब्द सिंधुः, कविरत्न उमेशचन्द्र, पृ० ७७२)

(३) मदयन्तिका चि० २ नखरजको नाम वृक्षविशेषः। यस्याः पिण्डैर्नखाना राग स्त्रिय उत्पादयन्ति। "पत्र च दद्यान् मदयन्तिकाया लेपोऽङ्गरागो नरदेवयोग्यः।" इति सुश्रुत। मदयन्तिका- मल्लिकेति वहव। नवमल्लिकेत्येके मदयन्ती उ० ७ नखरजक। धातकीतिन्दु। "काठमल्लिका' इति परिचीयते, इति हाराणच द्रः (अष्टागहृदयकोप, पृ० ४१७)

(४) मदयन्तिका-स्त्री, (मदयन्ती + तत कन्टाप। पूर्वे ह्रस्वश्च) मल्लिका। इति शब्दरत्नावली॥ मदयन्ती-स्त्री, (मद् + णिच् + ङीप्) वनमल्लिका। इतिरत्नमाला॥ काठमल्लिका इतिभाषा॥ मल्लिका इति राजनिघण्टु॥
(शब्दकल्पद्रुम तृतीयो भाग, पृ० ५८८)

(५) मदयन्ती स्त्री मद् + णिच् + गौरा० ङीप्। वनमल्लिकायाम् (काठमल्लिका) राजनि०। स्वार्थे क ह्रस्व। मदयन्तिका, तत्रैवार्थे शब्दरत्ना०। (वाचस्पत्यम्, पृ ४७२६)

(६) मदयन्तिका—१ मेन्दी, २. मोगरी
मदयन्ती—वेलमोगरी।
(निघण्टु रत्नाकर (मराठी) वैद्यकशास्त्रातील पारिभाषिक शब्दांचाकोष, पृ० १४१)

(७) दयन्तिका—स्त्री० मल्लिका ॥ मल्लिका ॥ मोतिया ॥ वेला ॥ (आयुर्वेदीय औषधिकोष, पृ० १२६)

इसी प्रकार हम देखते है कि आधुनिक वैद्य समाज मे 'मदयन्ती' से 'मेहन्दी' ग्रहण करने की मान्यता धीरे-धीरे दृढतर होती जा रही है। इसका स्पष्ट-प्रमाण हमे जामनगर की गुलाब कुवर-बा आयुर्वेदिक सोसाइटी की ओर से प्रकाशित चरक सहिता मे मिलता है। प्रत्येक सदर्भ मे इसमे मदयन्ती या मदयन्तिका का मेहन्दी यह अर्थ ही किया गया है। अन्तिम खण्ड (छठा) वनौषधियो की सूची मे मदयन्तिका के समस्त पर्याय मेहदी के पर्याय ही बताये गये हैं

"मदयन्तिका-तिमिर, कोकदन्ता, नखरजक, मेंदिका, रागगर्भा, रजका, नखरजिनी, सुगन्धपुष्पा, रागागी, यवनेष्टा।"

आचार्य यादव जी त्रिक्रमजी, प्रियव्रत शर्मा, अत्रिदेव विद्यालकार प्रभृति विद्वानो ने अपनी द्रव्यगुण आदि विषयक पुस्तको मे मेहदी मानने का स्वकीय मत प्रतिपादित किया है।

वैद्य—बापालाल गरवडदास शाह ने अपने वक्तव्य मे मदयन्तिका से मेहदी का अर्थ स्पष्टत ग्रहण किया है। मूल गुजराती का देवनागरी लिपि मे उनका अभिमत नीचे अविकल रूप मे उद्धृत किया जा रहा है—

वक्तव्य-निघण्टुकारोअे मोटे भागे 'मदयन्तिका' ने मल्लिका माने छे "माल्लिका" अेगले मोगरो 'Jasminum Sambac' अे मम्हारू मानवु छे, सुश्रुत टीकाकार श्री डल्हण 'मदयन्तिका' नो परिचय अेकाद प्रसगे "नखादिरागजननी 'मेहन्दी' इति प्रसिद्धा (चि० अ० ६)" आवो आपे छे, मोगरी, चवेली, जुई-विगेरेना अति सुगन्धी पुष्पो जेम 'मद' उत्पन्न करीशके तेम मेंदीनां फुलपण खरेखर 'मद' उत्पन्न करिशके अेवाज छे जेणे आना फुलोनी सुगन्धी लीधी हशे ते आवात कबुल करशे ज, त्याथी खसवानु मन ज नथी युतअेटाना ते मादक छे, अेटले 'मदयन्तिका अे नाम जो मेंदीने आपीअे तो खोटुं नथी, डल्हण बीजा प्रसगोमा 'मदयन्तिका' ने 'मल्लिका' ज गणावे छे,"

(निघण्टु आदर्श, पूर्वार्ध, पृ० ५३१)

इन समस्त प्रमाणो से हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि वैद्य समाज मे मदयन्ती या मदयन्तिका से विभिन्न वनस्पतियो का ग्रहण होता रहता है। अष्टागहृदय कोषकार ने 'धातकी तिन्दु' के अर्थ मे भी मदयन्तिका-शब्द बताया है। नामान्तरण इस सदिग्धता के कारण प्राचीन योगो मे प्रयुक्त मदयन्ती शब्द से किस द्रव्य का ग्रहण किया जाना अभीष्ट होगा, इस विषय मे प्राय मतवैभिन्य उठ खड़ा होता है। अत प्रमाणपुर सर इस पर अपना मत प्रस्तुत करेंगे।

ऊपर हम देख चुके हैं कि धाय, जूही, मल्लिका और मेहदी इन चार वनस्पतियो मे से प्रथम दो का विशेष व्यवहार वैद्यक शास्त्र मे मदयन्तिका शब्द से प्रचलित नही पाया जाता। अत अवशिष्ट दो द्रव्यों पर अपना विचार प्रकट करेंगे।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम अपने दृष्टिकोण को मुख्य ४ बिन्दुओ मे विभाजित कर सकते है—

(१) एतिहासिक प्रमाण, (२) टीकाकारो के मत,
(३) निघण्टुकारो के मत, (४) स्वानुभूत-निष्कर्ष।

(१) ऐतिहासिक प्रमाण—'मदयन्तिका' शब्द यद्यपि हमे वैदिक साहित्य मे प्राप्त नही होता, सहिता ग्रन्थो मे इसका अनेक स्थानो पर व्यवहार पाया जाता है। चरक सहिता मे ५ स्थानो पर, सुश्रुतसहिता मे ४ स्थानों पर, काश्यप—सहिता मे २ स्थानो पर तथा भेल-सहिता मे ४ स्थानो पर इसका उल्लेख मिलता है। अष्टाग-सग्रह और अष्टाग हृदय मे भी अनेक स्थानो पर इसका प्रयोग हुआ है। नवीन उपलब्ध परन्तु सदिग्ध एवं अनार्ष हारित—सहिता मे केवल १ स्थान पर इसका नाम प्राप्त होता है। यह एक आश्चर्य की बात है कि शार्ङ्गधर-सहिता मे एक भी स्थल पर इसका उपयोग नही मिलता। जब कि वैद्य-शोढल विरचित (१२ वीं शतो) "गद-निग्रह"—मे इसके सर्वाधिक योग उपलब्ध होते है। चक्रदत्त मे ४-५ स्थानो पर इसका उपयोग हुआ है। वगसेन आदि सग्रहग्रन्थो मे प्राचीन योगो का ही सकलन है।

भैषज्य कल्पना के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि तैल प्रयोगो मे मदयन्ती का सर्वाधिक उपयोग हुआ है। सभी स्थलो पर इसके पत्रो का व्यवहार किया गया है। एकाध स्थल पर इसके मूल का भी प्रयोग बताया गया है। पुष्प के प्रयोग का भी अच्छा प्रमाण मिलता है।

मेहदी के प्रमुख व्यावहारिक उपयोग नखादिरंजन का मदयन्तिका के रूप मे उल्लेख नही मिलता है। सुश्रुत ने 'अंगराग' मे इसका प्रयोग अवश्य बताया है। (सु० चि० अ० ६) । प्राचीन साहित्यक ग्रन्थो मे अङ्ग रगने के लिये प्राय. स्त्रियो द्वारा 'आलक्तक' का प्रयोग किये जाने का वर्णन उपलब्ध होता है, जो लाक्षारस से बनाया जाता है। नखरजनी (मेहदी) का नाम तक किसी भी प्राचीन ग्रन्थ मे पाया नही जाता है।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि मेहदी का प्रयोग भारतीय समाज मे प्राचीन काल मे प्रचलित नही था। यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि भारत मे उस समय मेहदी के पौधे थे या नही।* मेहदी का प्रचलन तुर्को और अरब वासियो के सम्पर्क से भारत मे प्रारम्भ हुआ। गुरुवर्य आचार्य प० विश्वनाथ जी द्विवेदी ने इसे अरब से आई हुई वस्तु बताया है—

"इसका प्रयोग आयुर्वेदिक पुस्तको मे नही मिलता। यह अरब से आई हुई वस्तु है।"

(भावप्रकाशनिघण्टु, भाषाटीका, परिशिष्ट, पृ० ५३५)

---

* (क) आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे, सम्भवत सम्पूर्ण भारतीय साहित्य मे, मेहदी का नाम और परिचय हमें सबसे पहले डल्हण की सुश्रुतटीका (निबन्धसग्रह) में मिलता है। उसके शब्दों मे—

(अ) सुश्रुतसहिता चिकित्सा स्थान अध्याय २, श्लोक ८१ की टीका में—'मदयन्ती मेन्दिका नखरजनी'।

(आ) सुश्रुत चिकित्सा अ. ६, श्लोक ४४ पर—"मदयन्तिका, नखादिरागजननी मेंहदी (महीन्द्री) इति प्रसिद्धा।"

(इ) सुश्रुत चिकित्सा अ० २५, श्लोक ४३ पर—"मदयन्तिका 'मेंदी' इति लोके यस्याः पिष्टै पत्रै. नखानां राग स्त्रिय उत्पादयन्ति।"

डल्हण काल ईसवीय ११ वी शती माना जाता है। श्री पी० के गोडे से उसे काश्मीरी टीकाकार माना है। वह मादावर क्षेत्र का निवासी था।

(ख) डल्हण के बाद नित्यनाथ सिद्ध द्वारा विरचित 'रसरत्नाकर' (वादिखण्ड, अध्याय ६, पृष्ठ ४९, राजवैद्य जे० के० शास्त्री गोडल द्वारा १९४० में प्रकाशित) मे ताम्रवेध के प्रसग में मेहदी के पत्तो के स्वरस का उल्लेख मिलता है।

भागा द्वादश तारस्य शुल्वस्य भाग षोडश। आवर्त्य कारयेत्पत्र लिप्त्वा रुध्वा पुटे पचेत् ॥६६॥

महिन्दीपत्रनिर्यासैरेव वाराणि षोडश। रसगन्धशिलाभागान् क्रमवृद्ध्याविमर्दयेत् ॥६७॥

यहाँ 'महिन्दीपत्रनिर्यास' अर्थात् महिन्दी मेहन्दी-हीना के पत्तो के रस का स्पष्ट उपयोग वर्णित है। रस रत्नाकर का रचनाकाल ईसवीय १३ वी शती प्रमाणित होता है (दुर्गाशकर केवलराम शास्त्री का आयुर्वेदनो इतिहास, पृ० २०२-३)। राजवैद्य जे के. शास्त्री द्वारा सपादित 'वादिखण्ड', जिससे उपर्युक्त पक्तियाँ उद्धृत की गई है, वि. सं. १६३२ (सन् १५७६) की एक हस्तलिखित प्रति पर आधारित है। (वादिखंड पृ० १८४)।

(ग) आइन-इ-अकबरी (ई०स०१५९०) में अबुल फजल ने पुष्पो की सूची में (ग्लेड्विन का अनुवाद, जिल्द पहली पृ० ७२, कलकत्ता सन् १८९७) हीना का उल्लेख किया है—"हीना का पुष्प चार पखुडियो वाला होता है और इसका प्रत्येक झाड भिन्न-भिन्न रग का फूल पैदा करता है।" अबुलफजल फिर लिखता है (पृ० ३२८ पर) "उच्चरग का उत्कृष्ट हीना भी यहाँ प्राप्त किया जा सकता है (आगरा सूबे में बयाना जिले में)"।

(घ) १८६७ ई० में प्रकाशित पडित विष्णु वासुदेव गोडबोले के "निघण्टुरत्नाकर" नामक ग्रन्थ मे ५० के लगभग नई वनस्पतियो का परिचय दिया है, जिनके लिए कि पहले के लेखको ने नही लिखा है। नए नामो में हम एलोय, अनन्नास, पेरूक, तम्बाकू, पुदिना, मेन्दीका, सीताफल आदि हैं। (गोंड के ठाकुर साहब द्वारा रचित "आर्य चिकित्सा विज्ञान का इतिहास" लदन,१८९६ के "भारतीय औषधियों में नई बढोतरी" नामक प्रकरण मे, पृ० १२२-१२३ पर)।

अरब मे इसका प्रयोग बहुत हुआ करता था। आज भी मुसलमानो मे इसे अधिक इस्तेमाल किया जाता है।*

इस प्रकार ऐतिहासिक-प्रमाणभाव मे मदयन्ती से मेहदी का लिया जाना उचित प्रतीत नही होता, अपितु मल्लिका अर्थात् 'मोतिया' (Jasminum Sambac) का लिया जाना अधिक न्यायसगत प्रतीत होता है। मल्लिका और इसके पर्यायो का उल्लेख हमे सभी सहिता-ग्रन्थो मे प्राप्त होता है। इस प्रकार मल्लिका से भारतीयो का परिचय सहिता-कालीन समाज से होना ज्ञात होता है। यद्यपि वैदिक काल मे इसके परिचय की सदिग्धता नि शक है। सुश्रुत ने मल्लिका को पुष्पवर्ग मे पढते हुये इसके गुणो और रस का भी उल्लेख किया है।

(२) टीकाकारों के मत—यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि आयुर्वेदीय ग्रन्थो के टीकाकारो की अपनी वैद्य परम्पराये थीं। वस्तुत. वैद्यक-व्यवसाय किसी काल के पश्चात परिवार-परम्पराओ अथवा शिष्य परम्पराओ से सम्मिलित हो गया। ये परम्पराये भारत के कतिपय प्रदेशो मे आज भी वर्तमान है। अत. टीकाकारो द्वारा अपनी टीकाओ मे प्रकट किये गये मन्तव्य उनकी अपनी और परम्पराओ की मान्यताओ के बोधक हैं। अत किसी द्रव्य की असदिग्धता प्रस्तुत करने के लिये इन पर भी विचार करना आवश्यक हो जाता है। टीकाकारो के मतो मे मदयन्ती अथवा मदयन्तिका शब्द मे मल्लिका या उसके एक भेद नवमल्लिका का ग्रहण किया जाना मान्य प्रतीत होता है।

प्राचीन टीकाकारो मे जेज्जट, चक्रपाणिदत्त, डल्हण, अरुणदत्त, हेमाद्रि, शिवदासमेन, श्री कण्ठदत्त आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आधुनिककाल मे प्राचीन सहिताओ आदि पर टीका लिखने वालो मे गगाधर, हारायण चन्द्र, योगीन्द्रनाथ सेन, ज्योतिषचन्द्र सरस्वती आदि प्रमुख हैं। हिन्दी, मराठी, बगाली, गुजराती आदि भारतीय प्रादेशिक एव अग्रेजी, लेटिन आदि वैदेशिक भाषाओ मे भी टीकाये अथवा अनुवाद लिखे गये हैं।

ग्रन्थानुसार टीकाकारो का मत निम्न तालिका मे प्रस्तुत किया जा रहा है—

चरक-सहिता

टीकाकार	चि० ८/१२९	चि० १२/२१	चि० २३/२७१	चि० २६/११२	चि० ३०/५७
१—चक्रपाणि	०	०	०	०	०
२—गगाधर	०	०	मल्लिका	०	०
३—योगीन्द्रनाथसेन	नवमल्लिकाया	नवमल्लिकाँच	०	०	०
४—शकरदाजी शास्त्री पदे (मराठी)	वेलमोगरी	मोगरी	मोगरी	वेलमोगरा	मोगरी
५—रामप्रसाद शर्मा	मल्लिका (मालती)	मल्लिका	मल्लिका	मदयन्तीलतापत्र —मालती के पत्र माधवी के पत्र	मालती के पत्र
६—मिहिरचन्द्र	मदयन्ती	मदयन्ती	वेला (मोतिया)	मदयन्तीलतापत्र	चमेली
७—जयदेव विद्यालकार	मदयन्ती (नवमल्लिका)	मल्लिका (मैनफल, धातकी)	मोतिया या मेहदी	नवमल्लिका	मदयन्तिका (नवमल्लिका)
८—अत्रिदेव	नवमल्लिका या मेहदी	नवमल्लिका	मेहदी	चमेली या मेहदी	मल्लिका या मेहदी
९—जामनगर प्रकाशन सटीक	मदयन्ती	मेदी, मेहदी	मेदी, मेहदी	मेहदी	मेहदी

* 'आइन—ए—अकबरी' (ई० स० १५९०) मे अबुलफजल इत्र—भडार के नियमो का उल्लेख करता है। (ग्लैडविन का अनुवाद, जिल्द पहली पृष्ठ ६५—७५ कलकत्ता ई० सन (१८९७, जिसमे पुष्पो की एक सूची मे (हीना पृ० ७२) का बखान इस प्रकार किया गया है।—हीना का पुष्प चार पखुडियो वाला होता है और इसका प्रत्येक झाड भिन्न भिन्न रग का फूल पैदा करता है।" (—श्री पी० के० गोडे, 'मेहदी का इतिहास')

सुश्रुत-संहिता

सदर्भ	कल्प	चि०	चि०	चि०
टीकाकार	१/६३-६४	२/८६-९२	६/३४-३८	२५/४२
१-डल्हण	मल्लिका	मेन्दिका नखरजनी	मेहदी नखादिराग जननी, महीन्दी	'मेदी' इति लोके
२-रविदत्त	वेलमोगरी	वेलमोगरी	वेलमोगरी	वेलमोगरी
३-अत्रिदवविद्यालकार	मेहदी	मेहदी	मेहदी	मेहदी
४-अम्बिकादत्त मिश्र	मेहदी	मेहदी	मेहदी	मेहदी

अष्टाग हृदय

सदर्भ	चि० २/२७	उ० ७/१-६-२४	उ० २२/१०७-१०	उ० ३४/२२
१-शिवदास सेन	—	मल्लिका भेद.	मल्लिका भेद	मल्लिका भेद
२-अरुणदत्त	०	०	०	०
३-अत्रिदेव	मेहदी	मेहदी	मेहदी	मेहदी

(३) निघण्टुकारो के मत-भारतीय चिकित्सा-विज्ञान मे निघण्टु-साहित्य का निर्माण बहुत बाद का है। इसके पूर्व प्राय सहिताग्रन्थो मे वर्गो के रूप मे औषधि और आहार द्रव्यो का वर्गीकरण कर, उनके गुणो एव उपयोगो का उल्लेख किया गया है। बाद मे सस्कृत कोष साहित्य के अनुकरण पर सग्रह ग्रन्थो के रूप मे वैद्यक-निघण्टु बनाये गये इनमे प्राय प्रत्येक द्रव्य के प्रयोगो को प्रथम देकर पश्चात् उनके गुणो और आमयिक प्रयोगो का सक्षेप मे वर्णन किया गया है।

प्राचीन वैद्यक-निघण्टुओ एव सस्कृत कोषग्रन्थो मे कही पर भी मेहदी या उसके नखरजनी आदि पर्यायो एव गुण-प्रयोगो का उल्लेख प्राप्त नही होता। यद्यपि डल्हण मे इसका उल्लेख किया है तथापि परवर्ती वैद्यक शास्त्र मे इसका कोई प्रमाण नही मिलता। निघण्टुकारो ने नवीन-नवीन वस्तुओ का उल्लेख किया है। फिर भी मेहदी के प्रति उन्होने सर्वथा उपेक्षावृत्ति ही प्रदर्शित की है।

निघण्टुकारो ने जैसा कि हम ऊपर देख आये हैं, मल्लिका के पर्यायो मे मदयन्तिका का सर्वथा उल्लेख किया है। अत वैद्यक शास्त्र मे गृहीत मदयन्ती शब्द से मल्लिका के ग्रहण किये जाने विषयक मत की पुष्टि निघण्टुकारो के प्रमाणो से हो जाती है। प्रमाणाभाव से मेंहदी का ग्रहण किया जाना अभीष्ट प्रतीत नही होता। प्राचीन वैद्यक मे (लगभग अठारहवी शताब्दी तक) मेंहदी से भारतीय वैद्यो द्वारा चिकित्सोपयोगी दृष्टि से उपयोग किया जाना प्रमाणित नही होता।

(४) स्वानुभूत निष्कर्ष—ऐसा प्रतीत होता है कि प्रयोगिक दृष्टि से मल्लिका और मेहदी के गुण व उपयोग समान मिलने की वजह से मदयन्ती को मेहदी के अर्थ मे स्वीकार कर लिया गया है।

निघण्टुकारो द्वारा बताये गये मल्लिका के तिक्त, कटु रसयुक्त, वृष्य तथा मुख व नेत्र के रोग, कुष्ठ (चर्मरोग), अरुचि, विष, व्रण को नष्ट करना आदि गुण मेहदी मे सर्वतोभावेन उपलब्ध होते हे, तथापि ध्यानपूर्वक विचार करने से दोनो के गुणो और व्यावहारिक प्रयोगो मे कुछ अन्तर स्पष्ट दिखाई देते है—

प्रथम—निघण्टुकारो ने मल्लिका को उष्णवीर्य वाली बताया है। मेहदी का वीर्य शीत होता है।

द्वितीय—मल्लिका के पुष्प बहुत सुगन्धित व मादक होते हैं। आचार्य-प्रवर प० विश्वनाथ जी द्विवेदी मादक गध के कारण ही उसके मदयन्ती-पर्याय की सार्थकता बताते हैं—"पुष्प-गुच्छ छत्राकार गोल-गोल मोती की तरह सफेद लगते हैं। डालियो के अन्त मे इसके गुच्छे रहते है जो देखते ही मन मोह लेते है। सुगन्ध से हृदय की कली खिल जाती है। दिल बाग-बाग हो जाता है। मतवाली बना देने मे इसका 'मदयन्ती' नाम है।" (भाव प्र० नि०, पृ० २८६)। मेहदी के पुष्पो एव अन्य अङ्गो मे इतनी सुगन्ध और मादकता नही पायी जाती

है। अतः मेहदी की अपेक्षा मल्लिका के अर्थ मे मदयन्ती शब्द का प्रयोग अधिक सार्थक प्रतीत• होता है।

तृतीय—व्यवहार मे प्राय मल्लिका के पुष्पो व पत्तो का प्रयोग प्रसूतावस्था मे स्तनशोथ मे आराम पहुचाने और स्तन्य की प्रवृति को कम करने के लिये किया जाता है। मेहदी का शोथनाशक एव स्तन्य पर प्रभाव-जनन रूपी कार्य प्राय देखा नही जाता। मेहदी चर्म रोगो मे विशेष लाभदायक सिद्ध हुई है। अत मल्लिका के स्थान पर मेहदी का ग्रहण किया जाना अभिप्रेत नही है।

इस प्रकार मैंने अपने इस शोध- निवन्ध मे मदयन्ती अथवा मदयन्तिका के विषय मे प्रचलित नामात्मक सदिग्धता का प्रमाणो सहित निराकरण करते हुए मल्लिका (Jasminum Sambac N. O Oleacae परिजात-कुल) का मदयन्ती के अर्थ में ग्रहण किये जाने के विषय मे अभिमत प्रस्तुत किया है।

श्रीयुत परशुराम कृष्ण गोडे एम. ए. ने अपने एक लेख "मेहदी का इतिहास (२००० ई० पू० से १८५० ई० तक)" (शोधपत्रिका, उदयपुर, भाग १ अक २ जून १९४७, पृ० ९१-१०३) मे मेहदी विषयक प्राचीन सदर्भो को सकलित करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि मेंहदी की कृषि प्रारम्भ मे मिश्र मे (ई० पू० २०००) होती थी वहाँ से वह अरबो द्वारा भारत मे ११ वी शती से पहले ही लायी गई थी। उनका लेख रोचक होने से उसकी कुछ पक्तिया उद्धृत की जा रही हैं—

"अपनी प्राचीन मिश्र देशीय पदार्थ और उद्योग" (द्वितीय सस्करण, एडवर्ड आरनोल्ड एण्ड क लदन १९३४) नामक पुस्तक मे 'ए. लुकास' उवटन, सुगधी और धूपद्रव्यो का उल्लेख करते हुए यह मत प्रकट करते हैं कि "हीना के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि उसकी पत्तिया सम्भवत. प्राचीन मिश्र मे आज से भी कही अधिक लेही के रूप मे हथेलियो, तलुवो, नाखूनो, और वालो को रगने के लिए काम मे आती थी। इसी प्रकार रोमनलोग अवश्य ही हीना नामक मिश्रीय झाड को केश रगने मे इस्तेमाल करते थे (प्लिनी, २३/४६), और सम्भवत. मिश्र वासी भी। और इलिअट स्मिथ, हेटावी (१८ वा राजवश, १५८० से १३५० ई०पू०) की ममी के वालो का वर्णन करता है कि वे चमकदार रक्त वर्ण के थे, जिसके लिए वह सुझाता है कि वह रग हीना से वना हुआ था। नेवीले वताता है कि उसके ग्याहरवें राजवश (२१६० और १७८८ ई० पू०) की ममी के नाखूनो का उसने परीक्षण किया जो हीना से हल्के रगे हुए थे और मेमपरी ने विचार किया कि रामेसस द्वितीय के हाथो पर "Jaune Clair parles Perfumes)" चिह्नित था। इलिअट स्मिथ इस प्रकार सुझाता है कि रामेसस के हाथ केवल सडने से-वचाने वाले पदार्थ से दागित थे और यही वात दूसरी ममियो के साथ भी हो सकती है, जिनका कि हवाला नेविले देता हैं, जैसाकि ग्रन्थकर्ता द्वारा परीक्षित कई ममियो के नाखूनो की रग क्रिया के वारे मे निश्चित है। न्यूवेरी ने हावरा के तालमाप कब्रिस्तान से हीना की शाखाओ की जाच की है (W M फ्लीडर्स पेट्रयू, पृ० ५०)।" (पृ० २४३)

बहुधा देखा गया है कि ममियो के हाथो-पैरो के नाखून कभी- कभी रगे जाते हैं। अत रोयेब कहता है कि "किन्ही-किन्ही ममियो की हथेलिया, तलुवे, और पैरो के नाखून हीना से लाल रँगे हुए थे।"

यद्यपि मिश्र मे हीना के पौधे की पैदावार का प्रयोग हाथो पैरो के नाखून रगने इत्यादि मे २००० ई० पू० मे प्रचलित था, जैसा कि लुकास द्वारा उद्धृत कई लेखको ने अधिकृत रूप से कहा है किन्तु हमे देखना है कि कब और कैसे यह मिश्रीय झाड भारतवर्ष मे लाया गया और मानवीय शरीर के विशेष भागो मे रचने के लिए इसका प्रयोग प्रचलित हुआ।

सुश्रुत सहिता (चिकित्सा, अध्याय २५ मिश्र चिकित्सित श्लोक ४३) मे निम्नलिखित श्लोक "मदयन्तिका"

• ई० सन् १६५० मे रचित रघुनाथ पडित के "राज्य व्यवहार कोष" मे उवटनो और सुगंधी द्रव्यो की सूची में 'मल्ली तैल का उल्लेख है।
मल्लीतैल मोगरेलं चमेलीजाति तैलकम्। तथा चम्पकतैल चापेलमिति कीर्तितम्॥
राज्यव्यवहार कोष, शिवाजी प्रेस, पूना १८८० पृ० ४, भोग्यवर्ग, श्लोक ९३.

नाम का झाड और उसके पत्र का परिचय देता है, जिसकी पत्तिया नरेशो के योग्य (नरदेवयोग्य.) सुगन्धित 'अगराग' बनाने मे काम आती हैं।

हरीतकी चूर्णमरिष्ट पत्र चूतत्वच दाडिमपुष्प वृन्तम्।
पत्रं च दद्यान्मदयन्तिकाया लेपोऽङ्गरागो नरदेवयोग्य ॥

'डल्हण' (ईस्वी सन ११००) 'सुश्रुत सहिता' के एक काश्मीरी टीकाकार उपरोक्त श्लोक की इस प्रकार व्याख्या करते है—

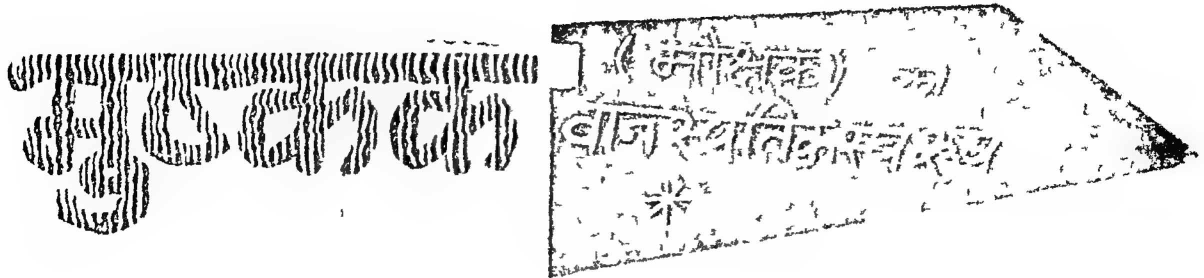
'हरितक्यादि। अरिष्टपत्र' निम्बपत्र फेनिलवृक्ष पत्र वा। चूतत्वक् आम्रत्वक्। मदयन्तिका 'मेदी' इति लोके यस्या. पिष्टै' पत्रै: नखाना रागं स्त्रिय उत्पादयन्ति ॥'

'डल्हण' बताता है कि 'सुश्रुत सहिता' मे वर्णित 'मदयन्तिका' मेदी के झाड के सदृश होता है और उसे उसके समय मे लोग जानते थे। वह आगे सावधानीपूर्वक हमे सूचित करता है कि मेदी के झाड का बुरादा और पत्तियाँ महिलाओ द्वारा अपने नाखून रचाने मे काम लाई जाती हैं। यह व्याख्या स्पष्ट रूप से सिद्ध करती है कि डल्हण के समय मे भारतवर्ष मेदी की खेती करता था। अगर डल्हण की 'मदयन्तिका' की 'मेदी' या 'हीना' के साथ इससे पूर्व की सादृश्यता प्राचीन प्रमाणो द्वारा प्रमाणित की जा सके तो हम निर्णय की इस स्थिति मे होगे कि इस मिश्र देशीय झाड ने ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियो मे भारत मे प्रवेश पाया, जबकि 'सुश्रुत सहिता' लिखी गई थी।

यह स्वीकार करते हुए कि हीना भारत मे नवीन आई हुई वस्तु है, मैं यह मत प्रकट करता हू कि यह इस देश मे ईस्वी सन ११०० के कुछ समय पहले लाया गया। इस प्रवास का निश्चित काल या तो ई० स० ७१२ मे सिंध की मुस्लिम विजय के पहले या इसके बाद मे था, यह मान लेने में लिखित प्रमाण की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध मे मैं यह सचेत कर सकता हू कि डल्हण 'सुश्रुत' की 'मदयन्तिका' मेदी या हीना के साथ सादृश्यता बताता है और भी 'सुश्रुत द्वारा वर्णित 'अश्ववला' के पौधे की तुरुष्क देशीय 'हिस्पिरथ' से सादृश्यता जनाता है और आगे बताता है कि 'अश्वबला' एक प्रकार की लम्बी पत्तियो वाली मेथिका है। 'अश्ववला' पर मेरे एक लेख मे मैंने प्रो० ए०के० शेख का मत उद्धृत किया है कि डल्हण द्वारा वर्णित 'हिस्पिरथ' फरसी शब्द 'इस्पिस्त' या 'अस्पिस्त का सादृश्य है, जिसका आशय है- भारत फरस और तुर्की घोडो का एक भोज्य पदार्थ और जो अग्रेजी के 'लुकेम ग्रास'—के नाम से पाया जाता है। क्या यह सोचना सम्भव है कि 'हिस्पिरथ' या मेथिका का एक प्रकार भारत ने फारसी घोडो के साथ आया, जो कि अति प्राचीनकाल से भारत मे लाया जाता रहा है।

यदि इस प्रकार का अनुमान इतिहास से समर्थनीय है तो यह माना जा सकता है कि डल्हण द्वारा मेदी या हीना और हिस्पिरथ या मेथिका एक प्रकार से क्रमश सादृशित शब्द 'मदयन्तिका' और 'अश्ववला' विदेशी पौधे के भारतीय नाम थे, जिसको कि ई० स० ७१२ मे सिंध की मुस्लिम विजय के बहुत पहले भारत मे लाया गया था। इस प्रकार हमको प्राचीन चिकित्सा ग्रन्थो जैसे 'चरक सहिता' 'सुश्रुत सहिता' इत्यादि से उपलब्ध औषध विज्ञान पर आधारित भाषातत्व राशि मे प्राचीन हिन्द ईरानी सम्बन्ध के चिह्नो से सम्बन्धित ज्ञातव्य का सकलन करना चाहिए। केवल इसी प्रकार से हम भारतीय औषध सामग्री मे प्रत्येक वस्तु की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि समझ सकते हैं, जो कि शताब्दियो की राजनैतिक एव सास्कृतिक परिवर्तनशीलता मे विदेशी सम्बन्ध से पूर्णत. प्रचलित पाई गई।





—डा ज्ञानेन्द्र पाण्डेय एच पी ए, पी. एच. डी, सहायक अनुसधान अधिकारी

—डा. विनय कुमारसिंह एम. एस-सी , पी. एच डी , सर्वेक्षण अधिकारी

—डा. लक्ष्मण स्वरूप भटनागर ए. पी. ए., परियोजना अधिकारी

सर्वे आफ मेडिसिनल प्लाण्टस्-सी सी आर.आई एम एच यूनिट, ग्वालियर—१, मध्यप्रदेश

प्रस्तुत लेख मुष्कक या मोखा के स्वरूप निर्णय के लिए लिखा हुआ विचार है, जिसको डा० लक्ष्मण स्वरूप भटनागर प्रोजेक्ट आफिसर तथा आचार्य राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय ग्वालियर के तत्वावधान मे लिखा गया है। इसके लेखक 'सर्वे ऑफ मेडिसिनल प्लान्ट्स के यूनिट जो केन्द्रीय चिकित्सा परिषद के आधीन ग्वालियर मे कार्यरत है, श्री डा० ज्ञानेन्द्र पाण्डेय एच०पी०ए०, पी०एच०डी० सहायक अनुसधान अधिकारी तथा डा० विनय कुमार एम०एस०सी०, पी०एच०डी० सर्वेक्षण अधिकारी द्वारा लिखा गया है।

इस लेख में मुष्कक के ऊपर परिमार्जित अन्वेक्षणीय विचार दिये गये है। पाटला और मोक्षक मे भेदाभेद का विचार भी दिया गया है। सर्वेक्षण यूनिट का यह कार्य सराहनीय है। इसके प्रकाशन के लिये केन्द्रिय परिषद के डायरेक्टर श्री पी०एन०वी० कुरुप तथा प्रोजेक्ट आफिसर श्री भट-नागर विशेष धन्यवादार्ह है।

पाटला और मुष्कक सहिताकालीन साहित्य मे दो पृथक द्रव्य रहे है और भाव मिश्र के काल तक इसमे कोई मतभेद नही था। भावमिश्र ने सक्षेप मे अपने निघण्टु भाग मे वृहत् पचमूल के प्रसग मे पाटला का वर्णन किया है और उसके साथ ही मुष्कक के भी पर्याय जोड दिये है तथा पर्यायो मे घण्टा पाटली और काष्ठ पाटला जोड दिये है, इससे कुछ भ्रम हो गया है।

पाटला से गाढे रक्त वर्ण के पुष्प वाले पाटला का अर्थ होता है और साहित्य मे पाढल वर्ण गहरे रक्त वर्ण के लिये निर्दिष्ट है। मुष्कक-स्क्रेवेरा स्वीटिनोयडिस है। पाटला-"स्टेरियो-स्पर्मन स्वावेओलन" है। इसके विषय मे कोई भ्रम होना नही चाहिए। चरक और सुश्रुत ने पाटल, पाटला-पाटली पर्यायो से स्पष्ट वर्णन किया है और मुष्कक को श्वेत और कृष्ण मुष्कक नाम से अलग ही वर्णन किया है।

लेखक का जो विचार है वह असदिग्ध रूप से मानने योग्य नही है। उनके मन मे भ्रम है कि मुष्कक और पाटला दो द्रव्य भी हो सकते है और एक भी हो सकते हैं। एतदर्थ वे प्रायोगिक परीक्षण का सहारा चाहते है जिसका उन्होने स्वय जिक्र किया है।

पाटला दशमूल व बृहद पचमल की प्रसिद्ध औषधि है जबकि मुष्कक क्षार श्रेष्ठ मानकर

क्षार वर्ग म ही पठित ह । इस नाम से वृहत्त्रयी मे स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता ह । पर्यायो मे—ताम्र पुष्पी- काच स्थाली-अलिवल्लभा—फलेहरा-मधुदूती पाटला के स्वरूप को स्पष्ट करते है, जबकि मुष्कक के पर्याय उसे स्पष्ट नही कर पाते ह ।

भाव मिश्र न सित ओर असित पाटला से पाटला के छोटे वडे भेदो को स्पष्ट कर दिया है, और मुष्कक का पाठ अलग ही किया है किन्तु एक साथ पाठ हो जाने से पाटला के भेदो के साथ उसका-पाठ लोग कर देते ह। मुष्कक के पर्याय मे—"मुष्कक. मुष्क , जटालः,गोलीढ, मोचक, सुतीक्ष्णक" ये पर्याय मुष्कक के स्वरूप को स्पष्ट करते ह । मुष्क और मुष्कक पर्याय मुष्कके (फलाकार) जो मुष्क या अण्डकोप के आकार और शोभा को एक सिरा रोग जो अण्डकोप के सिराओ मे शोथ के रूप मे होता ह द्योतक है ।

राजनिघण्टुकार ने श्वेत और कृष्ण भेद से स्पष्ट निर्देश और पृथक् पाठ किया है, जिससे भ्रम हाने का स्थान विच्छेद हो जाता ह, और उसका वर्णन आम्रादि वर्ग में किया है ।

नरहरि ने पाटला का वर्णन गुडूच्यादि वर्ग मे दशमूल के साथ किया है तथा सित और असित पाटला का वर्णन काष्ठ पाटला और पाटला के नाम से किया है । इसमे धन्वन्तरि निघण्टुकार ने पाटली शब्द का प्रयोग पर्याय मे नही किया है किन्तु राजनिघण्टुकार ने "पाटली" शब्द का प्रयोग किया है, जो शब्द भावमिश्र ने प्रयोग तथा एक साथ वर्णन करके सदिग्धता उत्पन्न कर दी है । इस विषय के विचार इसमे पठनीय हैं ।

—विश्वनाथ द्विवेदी

परिचय—भारतीय चिकित्सा पद्धति के प्राचीन ग्रन्थो मे वर्णित औपधियों का जो व्यवहार मे प्रचलन हो रहा है, उसमे अधुना कई समस्याये उत्पन्न हुई हैं, जिनमे वनौपधियो के नाम रूप ज्ञान● मे विवादग्रस्तता समस्या गम्भीरतापूर्वक अनुभव की जा रही है और इसका सैद्धान्तिक अध्ययन स्वय एक पृथक क्षेत्र है।ϕ अति सक्षेप मे, एक शास्त्रोक्त औपधि के लिए कई वानस्पतिक स्रोतो का विभिन्न प्रदेशो मे प्रयोग ही, प्रत्यक्षत मूल समस्या है। इस वर्ग मे समाविष्ट औपधियो मे मोक्षक का भी उल्लेख किया जाता है, जो प्राचीन चिकित्सा पद्धति की एक उपयोगी औपधि है ।

पूर्व कार्य—यद्यपि आयुर्वेदीय क्षेत्र मे होने वाले अध्ययन अनुसधानो की प्रामाणिक समीक्षा, क्रमवद्ध अङ्कन एव सम्पूर्णता के प्राय अभाववश कठिन है, तथापि उपलब्ध प्रकाशित सामग्री के अनुसार मोक्षक पर १९६९ तक उल्लेखनीय स्वतन्त्र कार्य हमारे दल को देखने को नही मिल सका✗ । इसमे द्रव्यगुण विज्ञान के विभिन्न लेखको के मत एव टिप्पणियो एव प्रवन्धो का समावेश नही है । अत शास्त्रोक्त प्रमाण सहित उपलब्ध सामग्री पर वैज्ञानिक दृष्टि से व्यवस्थित अविकल प्रकाशन के अभाव मे मोक्षक को प्रस्तुत अध्ययन हेतु चुना गया ।

समस्या—मोक्षक, उन औपधियो मे समाविष्ट है, जिन्हे सहिताकाल से ही आयुर्वेदीय वाङ्मय मे स्थान प्राप्त हुआ है, और कालक्रम मे विभिन्न कारणोवश अपने अभीष्ट वानस्पतिक स्रोत के सदर्भ मे विवादग्रस्त है।

व्यवहारत मोक्षक का उल्लेख करते ही पाटला का सन्दर्भ दिया जाता है,क्योकि ये दोनो वनौपधिया शास्त्रीय विवरण मे इस रीति से उल्लिखित तथा प्रयुक्त हैं, जिससे इनका परस्पर सम्बन्ध सहज ही देखने मे आता है । अत मोक्षक पर विचार करते समय, पाटला सम्बन्धी विषय की दृष्टि से निरीक्षण करना उचित है ।

पाटला एव मोक्षक—पाटला निश्चय ही मोक्षक की

—च.सू. १

● चरक द्वारा प्रयुक्त तकनीकी शब्द आइडेण्टी एण्ड नामवक्लेवर ।

ϕ विस्तृत अध्ययनार्थः पाण्डेय, ज्ञानेन्द्र "वनौषधियो के नाम—रूप ज्ञान मे प्रचलित सदिग्धता का अध्ययन" स्नातकोत्तर शोध प्रबध, हरिद्वार, १९६५ तथा कई शोध पत्रक ।

✗ चुनेकर क. च. वानस्पतिक अनुसधान दर्शिका, वाराणसी १९६९, कृष्ण मोक्षक (एलियोडेण्ड्रोन ग्लोकम्) की त्वक् विषयक एक सूचना मात्र का उल्लेख पृ. ६८ ।

अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध एव व्यवहृत औषधि है,जो सहिताकाल से ही प्रचलित है। साहित्यिक अध्ययन से प्रतीत होता है कि वृहद्त्रयी मे पाटला एव मोक्षक को पृथक-पृथक निर्दिष्ट कर, दोनो का न्यूनाधिक प्रयोग कई प्रसगो मे किया गया है। उदाहरणत, चरक ने पाटला• (पाटला, पाटलि एव पाटली तथा अमोघा के नाम से) तथा मुष्कक: का विभिन्न सदर्भो मे निर्देश किया है, जिससे सकेत मिलता है कि मोक्षक का उल्लेख सहिता के मूल अ श मे नही है। उपलब्ध साहित्यिक सामग्री के आधार पर ज्ञात होता है कि सुश्रुत ने मोक्षक* का सर्व प्रथम स्पष्ट उल्लेख किया है। साथ मे चरक निर्दिष्ट मुष्कक● नामोल्लेख की परम्परा को भी समर्थन प्रदान किया। पूर्ववर्ती सहिताकारो के अनुगामी, वाग्भट्ट ने मुष्कक! (तथा काल मुष्कक) का सहिता के मूल अ श मे उल्लेख किया है। इन दोनो सहिताकारो (सुश्रुत एव वाग्भट्ट) ने पाटला का, चरक की भाँति कई नामो से (पाटला, पाटलि एव पाटली) तथा पर्यायो द्वारा पृथक-पृथक उल्लेख किया है।

चूँकि द्रव्य गुण विज्ञान विषय का स्वतन्त्र विकास निघण्टु रचना काल से माना जाता है, मोक्षक के वानस्पतिक परिज्ञान के सन्दर्भ मे पाटला एव मोक्षक परस्पर सम्बन्ध पर समकालीन उपलब्ध साहित्य के आधार पर विचार करना उपयोगी जान पडता है। वर्तमानत उपलब्ध तथा व्यवहार मे अधिक प्रचलित निघण्टुओ+ की परम्परा मे प्राचीनतम धन्वन्तरि निघण्टु मे पाटला तथा काष्ठपाटला (पाटला विशेष) नामक दो जातियो (पाटला की) का उल्लेख है,ф तथा अन्य प्रसङ्ग मे काष्ठपाटला भी दिया गया है। नरहरि ने पाटला की दो जातियो (पाटली एव सितपाटलिका) का निर्देश किया है और इन दोनो जातियो के उल्लिखित पर्यायो मे (११ तथा ६ क्रमश) मे 'काष्ठपाटला✕' नाम की गणना दूसरी जाति (सितपाटलिका) के पर्यायो मे की है। इसी निघण्टुकार ने प्रथम प्रसग मे मुष्कक卐 का वर्णन किया है। प्राचीन निघण्टु परम्परा मे अधुना सर्वाधिक व्यवहृत निघण्टुकर्ता भावमिश्र‡ ने पाटला (एव घण्टापाटला) तथा उसके दो भेदो-पाटला एवं सितपाटला (या श्वेत पुष्प तथा रक्त पुष्प) का वर्णन किया है तथा अन्य प्रसग मे मोक्षक का (दो भेद श्वेत एव कृष्ण सहित) उल्लेख है।

यह भी द्रष्टव्य है कि कुछ निघण्टुकारो ने पाटला की एक पीत जाति का उल्लेख किया है।ᵾ शिवदत्त ने पाटला की दो जातियो पाटला एव काष्ठपाटला का निर्देश किया है। मदनपाल° ने मुष्क (या मोक्षक) की जातियो का स्पष्ट उल्लेख न करते हुए क्षुद्रपाटला नाम की पर्यायो मे गणना की है तथा पाटला का भी वर्णन पृथक से किया है।

इस प्रकार सहिता एव निघण्टुकालीन प्रमुख ग्रन्थो के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि पाटला एव मोक्षक का

• चरक सहिता, सू २-११, ४-१६/३८, वि. ८-१३५, चि. १-१/४३, ३-२६७ २३-२०१, २०२, २४३।

: वही, चि. १५-१८६, २६-१९२।

* सुश्रुत सहिता, क ३-९, उ ४४-२९

● वही, सू. ३८-२०, ४६-२८४, चि ४-३०, ९-४९, ११-८, १४-७, ३७-४१, क. १-०१।

! अष्टांग हृदय, सू. १५-७, ३२-२५०, ३०-१२, उ. ३५-४६।

+ ज्ञातव्य—प्रियवृत शर्मा द्वारा सम्पादित अष्टांग निघण्टु को नवीनतम निघण्टु सृजन परम्परा मे प्राचीनतम बताया जाने लगा है।

ф ध नि गुडूच्यादि वर्ग एव आम्रफलादि वर्ग।

✕ रा नि, करवीरादि वर्ग, ४९-५२।

卐 वही, आम्रादि वर्ग, २०४-२०६।

‡ भा. वि नि. गुडूच्यादि वर्ग १९-२२।

• वही, बटादि वर्ग, ६९-७०।

ᵾ शर्मा, प्रि. वृ. द्रव्यगुण (२-३ भाग) वाराणसी, पृ. ११७।

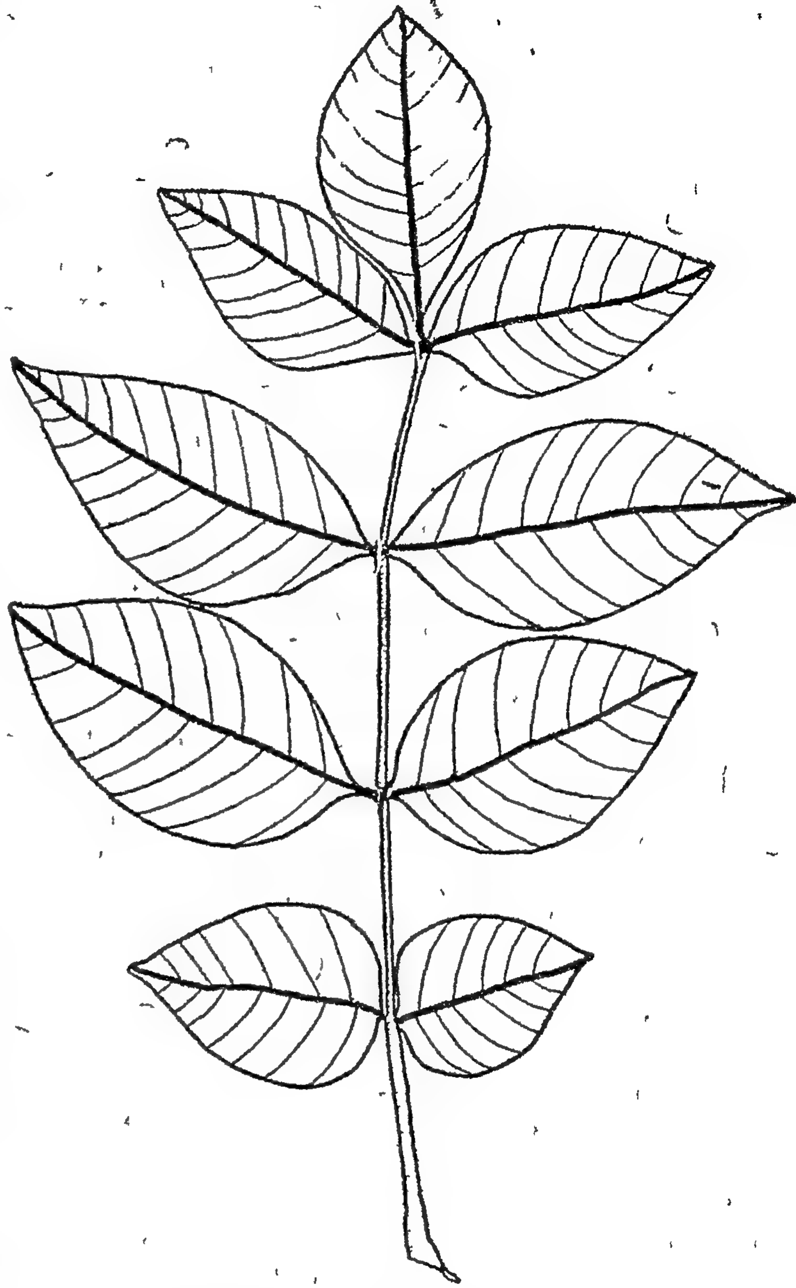
° वैद्य बा. ग. निघण्टु आदर्श उत्तरार्ध (गुजराती भाषा) द्वितीय संस्करण, सूरत, १९६५, पृ.७८-७८३ में उद्धृत।

स्वतत्र वर्णन करने की परम्परा को निरन्तर बल दिया गया। परन्तु फिर भी मोक्षक की शास्त्रीय व्याख्या तथा वानस्पतिक परिज्ञान मे मतभेद एवं तदुत्पन्न विवादग्रस्तता कालक्रम से बढती गई।[1]

विवादग्रस्तता का स्वरूप—पूर्व साहित्यिक सर्वेक्षण से आयुर्वेदीय वाड्मय (सहिता, संग्रह तथा निघण्टु ग्रंथो) मे मोक्षक एक स्वतत्र औषधि के रूप मे विभिन्न ऐतिहासिक कालो मे उपलब्ध हुआ है। मोक्षक के पर्यायो तथा गुण कर्मो का वर्णन विशेषतः निघण्टुओ मे स्वतत्र रूप से प्राप्त होता है। इस प्रकार सहिताकारों द्वारा सृजित मोक्षक की आमयिक उपयोगिता का कई व्याधियो मे प्रयोग की परम्परा को निघण्टुकारो ने इसे पृथक गुणकर्मो का वर्णन करके विकसित किया है।

वर्तमानत. मोक्षक का औषधियों में—भैषजकल्पना अथवा चिकित्सा में प्रयोग करते समय प्राय अनुभव किया जाता है कि यह औषधि अपने सही अर्थात् शास्त्रीय वर्णन सम्मत वानस्पतिक स्रोत की दृष्टि से विवादग्रस्त है। सदिग्धताओं के स्वरूप की उनकी उत्पत्ति तथा कारणो सहित, शास्त्रीय तथ्यो, आधुनिक काल की रचनाओ (निघण्टु परवर्ती काल) तथा प्रत्यक्ष प्रचलन के आधार पर विश्लेपण किया जा सकता है।

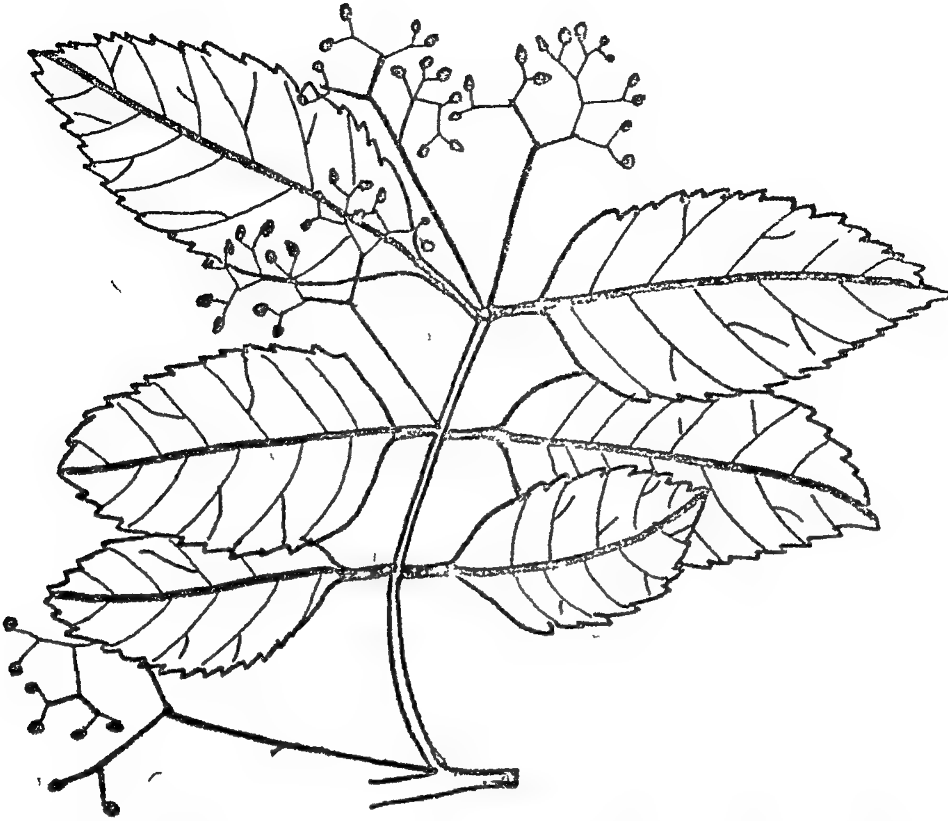
(क) नामगत विवाद—जैसाकि निर्देश किया जा चुका है, 'मोक्षक' (या मुष्कक) का सर्वप्रथम सुश्रुत (तथा चरक) ने उल्लेख किया। यह स्पष्ट है कि समकालीन परिस्थितियोवश इस औषधि का सागोपाग, विशेषत वानस्पतिक, परिचय देना सम्भव नही था, जैसाकि आधुनिक समय मे सरल तथा आवश्यक बन गया है। तत्पश्चात् वाग्भट्ट ने भी इसी परम्परा का अनुसरण किया-, यद्यपि इस ग्रथ की रचना तक एतिहासिक कालक्रम के अनुसार परिस्थितियो मे पर्याप्त परिवर्तन आ चुका है।



स्क्रेवेरा स्विटिनोयडिस का एक पत्र
(द्रष्टव्य पत्रको मे निम्नतमयुग्म अपेक्षाकृत लघु)

---

१ द्रष्टव्य विभिन्न निघण्टु ग्रन्थ, यथा—भ०प्र०नि०, वटापि० ७०, तथा सहिता ग्रन्थ। प्रस्तुत प्रसंग (वानस्पतिक परिज्ञान का होने से) में आमयिक प्रयोगो तथा गुण-कर्मो का स्वतत्र वर्णन नहीं किया गया है।



एलियोडेण्ड्रोन ग्लॉकम की द्विविभाजित शाखा दृष्टव्य—युग्म द्विभुजीय (फलित) पुष्प

नामगत विवाद के दो पक्ष हैं, जो शास्त्रीय टीकाओ तथा सस्कृत पर्यायो से सम्बन्धित हैं—

(ख) टीकाकार—सहिताकारो द्वारा मूल भाग में समाविष्ट मोक्षक सम्बन्धी अशो पर प्राचीन टीकाकारो (भाषा टीका के अतिरिक्त) की व्याख्याओ के कतिपय उद्धरणो का निरीक्षण, चरक आदि आचार्यों द्वारा मोक्षक वर्णन की परम्परा को समझने मे सहायक होगी। चरक सहिता के टीकाकार चक्रपाणि ने मुष्कक के दो प्रसगो मे से केवल एक❀ पर ही अपनी व्याख्या दी है, जिसके अनुसार मुष्कक का अर्थ घण्टापाटलक (घण्टापाटला) किया है।

सुश्रुत सहिता के टीकाकार डल्हण ने मुष्कक की व्याख्या की है,[x] जिसके अनुसार यह क्षारवृक्ष तथा लोक मे मोषक के नाम से ज्ञात है। अन्य महत्वपूर्ण सन्दर्भ[*],जो मोक्षक का उल्लेख करते हैं, डल्हण का व्याख्या हेतु ध्यान आकर्षित नही कर सके। इस प्रकार, डल्हण के मतानुसार मोक्षक एक क्षारवृक्ष है और जनता मे यह मोषक के नाम से प्रसिद्ध है।

❀ त्रिफलामितयादो मुष्ककं घण्टापाटलकम्,—चक्रपाणि टीका, च० स०, चि०१५-८९
दूसरा प्रसङ्ग कालक चर्ण मे मुष्कक के उपयोग का हे, च० सं० चि० २६-१९२ जिस पर चक्रपाणि ने (मुष्कक शब्द पर) टीका नहीं की है, सम्भवत पर्व प्रसग पचमूक्षार (ग्रहणी दोष चिकित्सा) मे (चिकित्सा स्थान) व्याख्या हो जाने के कारण ऐसा किया हो। पाटला (अमोघा आदि) के चरकोक्त प्रसङ्गो की टीका का विषय यही असमावैश्य है।

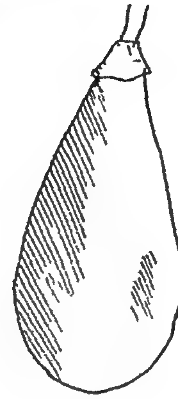
x' मुष्ककः क्षारवृक्षः मोषक इति लोके' डल्हण टीका, सु० स० सू० ३८-१० मुष्ककादिगण का प्रसङ्ग।

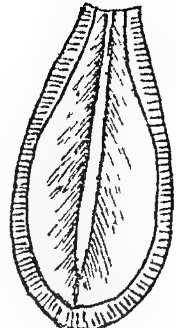
* यथा, सू० ३-११ तथा उ० ४४-२७

अष्टाङ्गहृदय के टीकाकारो ने मुष्कक सम्बन्धी, जो इस संहिता मे कई वार प्रयुक्त हुआ है, कुछ स्थलो मे व्याख्या की है। उदाहरणत:, अरुणदत्त (सर्वांगसुन्दर टीका) ने मुष्कक को स्पष्टत: मोक्षक बताया है, जिसकी पुष्टि एक परवर्ती व्याख्या (पदार्थचन्द्रिका) द्वारा भी की गई है।α मुष्कक से सम्बन्धित अन्य स्थलो का निरीक्षण करने से ज्ञात होता है कि हेमाद्रि तथा अरुणदत्त द्वारा की गई औषधि के वानस्पतिक परिज्ञान (गुण सम्बन्धी व्याख्याओ के अतिरिक्त) सम्बन्धी व्याख्यायें अनुपलब्ध हैं।β इस प्रकार मुष्कक शब्द का प्राधान्य इस संहिता मे है तथा काल मुष्कक एव कृष्ण पाटली नाम भी प्रयोग किये गये है।θ

आ–पर्यायावली—मोक्षक की संस्कृत नामावली मे परिगणित विभिन्न पर्यायो, जो कि मुख्यत. निघण्टु सृजन परम्परा के फलस्वरूप चिकित्सा क्षेत्र मे प्रचलित हुए, वे (प्रस्तुत प्रसग मे निर्दिष्ट ग्रन्थो मे उपलब्ध) प्रमुख नाम हैं—मुष्कक, गोलीढ, झाट, मोक्ष, मोक्षक, क्षारश्रेष्ठ, क्षार-वृक्ष, तथा पलाशवत् पर्वत वृक्ष। अमरसिंह ने कतिपय शब्दो की व्याख्या की है ●। इस सन्दर्भ मे द्रष्टव्य है कि मोक्षक का 'घण्टापाटला' एक अभिनव पर्याय अमरसिंह ने दिया है, ▸ जो वृहत्त्रयी मे प्राय इस औषधि के लिए अनुपलब्ध है। इस विचार का समर्थन वैद्यक शब्द सिन्धु से होता है, जिसमे मुष्कक की व्याख्या घण्टापाटल वृक्ष के रूप मे की गई है α। यहा उल्लेखनीय है कि भाव मिश्र ने इस शब्द का पाटला के प्रसग मे समावेश किया है, जिसका निर्देश यथास्थान किया जावेगा।

शास्त्रीय महत्व के साहित्य के सामान्य सर्वेक्षण द्वारा





(3) (4)





(5) (6)

३–स्क्रेवेरा का एक फल (दृष्टव्य घण्टाकृति)
४–स्क्रेवेरा के फल का व्यत्यस्त छेद द्विकोष्ठीय
५–एलियोडेण्ड्रोन का फल (वडी, दृष्टव्य दोनो फलो की आकृति मे तथा परिमाण का सापेक्ष अन्तर)
६–एलियोडेण्ड्रोन के फल का व्यत्यस्त छेद

मोक्षक की जो पर्यायावली उपलब्ध होती है, उसका दो दृष्टिकोणो से मूल्याकनात्मक विश्लेषण किया जा सकता है—(१) मोक्षक की प्राचीन नामावली, जिसमे ८-१० नाम प्राप्त होते हैं, इस औषधि के वानस्पतिक स्वरूप को

α "मुष्कको मोक्षक" अरुणदत्त, अ० हृ० स० १५-२५, तथा चन्द्रनन्दनकृत पदार्थ चन्द्रिका टीका मुष्कको मोक्ष, प्रथ संस्करण बम्बई, संवत् २०१३।

β यथा, सू० १५-८ (७), २५

θ सू० ३०-८ तथा उ० ५-४२

● गोलीढ 'गोलीति—गोभिर्लिह्यते स्म' मुष्कक –मुष्णाति हरतिरोगम् झाट,–झाट संघात, मोक्षक मोक्षयति रोगम् या रोगेभ्य इति वा, मुष्कक मुष्को मोक्षकवक्षस्या सघाते वयाणे पिच अमाकोप, भानुजी दीक्षित कृत व्याख्या सुधा, चतुर्थ सस्करण बम्बई, १६१५, द्वितीय कांड वनौषधि वर्ग—४, पृष्ठ १४२।

▸ वही, द्वितीय काड, वनो ४-३६ 'गोलीढो झाटलो घण्टापाटलि मोक्षमुष्क का' टीका पाटलाति। घण्टाचासौ पाटलिश्च।

α वैद्यक शब्द सिन्धु, लेखक–प्रकाश–तिथि अनुपलब्ध, पृ. ८३१. मुष्कक. घण्टापाटल वृक्ष। पलाशवृत्पर्वतवृक्षे, पृ ८४६. मोक्ष. (क.)—पाटल वृक्षे, मुष्कक वृक्षे।

किस प्रकार या क्या प्रस्तुत करती हैं अथवा वानस्पतिक स्रोत के सही परिज्ञान मे आज के परिवेश मे कहाँ तक सहायक है, विभिन्न आचार्यो द्वारा अपने ग्रन्थो मे प्रयुक्त सस्कृत नामावली, आलोच्य प्रमाणिक वानस्पतिक परिज्ञान सम्बन्धी विवादग्रस्तता को उत्पन्न करने मे उत्तरदायी अथवा समाधान करने मे कहा तक सहायक है।

विमर्श—(१) यद्यपि मुष्कक (जिसके दो अर्थ किए जा सकते हैं, प्रथम, रोगमात्र को हरण करने वाला, तथा दूसरा, मुष्क या अण्डकोष से किसी प्रकार का अन्त सम्बद्ध होना) घण्टापाटला या काष्ठपाटला ('घण्टा' की आकृति तथा काष्ठवत् काठिन्य का सम्बन्ध) तथा गोलीढ (गाये जिसे चाटती है) ही ऐसे पर्याय है, जो न्यूनाधिक प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष रूपेण वानस्पतिक परिज्ञान के कुछ पहलुओ का सकेत करते हैं। औषधि की रोगोपयोगिता पर प्रकाश डालने वाले नाम, यथा मोक्ष (क), क्षारश्रेष्ठ तथा क्षारवृक्ष, रोगो को नष्ट करने या (मोक्ष प्रदान करने मे) मोक्षक की क्षमता तथा क्षार के उत्तम स्रोत इन दो तथ्यो पर आधारित प्रतीत होते हैं।

निश्चय ही आधुनिक समय मे प्रचलित वानस्पतिक परिचय की सागोपाँग परम्परा की तुलना मे औषधि की प्राचीन सस्कृत पर्यायावली के दो या तीन नामो से प्रगट होने वाला मुष्कक का स्वरूप पर्याप्त स्पष्ट या पूर्ण तो नही हैं, परन्तु तत्कालीन सामयिक परिस्थितियो की दृष्टि से आदि मनीषियो की वानस्पतिक सरचना के मूल चिन्तन का प्रतीक अवश्य है। अत. मुष्कक की पर्यायावली के माध्यम से वानस्पतिक परिज्ञान सम्बन्धी स्वरूप की तुलना अपेक्षित है (जो यथास्थान की जायेगी), तथा रोगोपयोगिता से सम्बद्ध पक्ष चिकित्सीय परीक्षणो (आतुरालय के अधीन) से ही समीक्ष्य है।

(२) मुष्कक की पर्यायावली के वर्तमान सन्दर्भ मे सस्कृत नामावली की उपयोगिता का दूसरा पक्ष, सन्दिग्धता की समस्या से उसके सह सम्बन्ध का है। मोक्षक के प्रमुख पर्यायो, जिनका उल्लेख अभी किया जा चुका है, मे द्वयर्थकत्व (या इससे अधिक)* की स्थिति का प्राय: अभाव है, जबकि अनेक वनौषधियो की नामावली, एक पर्याय के कई अर्थ प्रगट करने वाली होने से, विवादग्रस्तता उत्पादक सन्दर्भो उदाहरणो से भरी पड़ी है। परन्तु दूसरी ओर यह भी ध्यानार्ह है कि मोक्षक तथा अन्य नाम कोई ऐसा निश्चित अर्थ प्रगट नही करते जो केवल इसी औषधि मे हो अर्थात् अन्य औषधि की तुलना मे किसी वानस्पतिक स्वरूप या रोगनाशक क्षमता को निश्चित रूप से इस भाँति प्रदर्शित करे जो सापेक्ष निरीक्षणो का (समान गुण या रूपवती अन्य औषधियो से तुलना हेतु) आधार बन सके।

(३) पर्यायो के परम्परात्मक प्रचलन से उत्पन्न औषधि परिज्ञान सम्बन्धी विवादग्रस्तता के प्रसंग मे पाटला का निरीक्षण अपेक्षित है। यह उल्लेखनीय है कि भावमिश्र ने पाटला के भेद, घण्टापाटला (पाटला की दो जातियाँ पाटला एव घण्टा पाटला) के पर्यायो मे मुष्कक तथा मोक्षक दोनो नामो का उल्लेख है ø तथा जैसाकि सकेत किया जा चुका है, इसी निघण्टु मे अन्य स्थल पर मोक्षक का पृथक से वर्णन किया है अर्थात् भावमिश्र के मत से पाटला तथा मोक्षक स्पष्टत. दो औषधियाँ हैं, परन्तु 'मोक्षक' शब्द का दोनो औषधियो की पर्यायावली मे प्रयोग निश्चय ही भ्रांतिजनक हो सकता है। इस सदर्भ विशेष मे यदि भावमिश्र से पूर्ववर्ती निघण्टुकारो के मतो का अध्ययन किया जाये तो ज्ञात होगा कि पडित नरहरि (तथा धन्वन्तरि निघण्टु भी) द्वारा पाटला की दो जातियो-पाटली तथा सितपालिका, मे मोक्षक का कही उल्लेख नही किया गया है, β केवल 'काष्ठपाटला' नाम दूसरी जाति (सितपाटलिका) के पर्यायों मे शब्द का प्रयोग हुआ है तथा इसी ग्रन्थ के अन्य स्थल θ पर मुष्कक का स्वतत्र वर्णन किया गया है। नरहरि तथा भावमिश्र

* भाव प्रकाश निघण्टूक्त अनेकार्थ वर्गी की सहायता से किए सामान्य निरीक्षण पर आधारित। अन्य सदर्भो या शास्त्रीय ग्रन्थो के विषय मे अध्ययन अपेक्षित है।

ø 'मुष्ककौ मोक्षको घण्टापाटलि. काष्ठ पाटला'—भा. प्र नि. गु॰.—२०
मोक्षस्तु मोक्षकोऽपि स्याद् गोलीढो गोलिहस्तथा—वही, वटादि ६९।

β देखिए रा० नि०, कर०, ४६–५२।

θ देखिये। वही, आम्रादि, २०४...

द्वारा मोक्षक सम्बन्धी वर्णन के प्रस्तुत सर्वेक्षण से सकेत मिलता है कि निघण्टुकाल के प्रारम्भिक काल मे मोक्षक के परिचय मे निहित संदिग्धता, प्रचलन मे अपेक्षाकृत न्यूनता रही होगी।

(४) इसी प्रसंग में 'काष्ठ पाटला' एव 'घण्टापाटला' जैसे शब्दो का उद्गम तथा व्यवहार में प्रचलन का, एतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से यदि निरीक्षण किया जावे तो ज्ञात होता है कि ये दोनो शब्द (जो चरक या सुश्रुत द्वारा प्रयुक्त नहीं हुए थे) और जो सित (श्वेत पुष्प) पाटला के लिए प्रयोज्य थे, निघण्टु काल के अन्तिम चरण में मुष्कक या मोक्षक के लिए ही प्रयोग कर दिये गये, जिससे वानस्पतिक परिज्ञान मार्ग मे सन्देह की वृद्धि होना स्वाभाविक थी।

(ख) रूपगतविवाद : वानस्पतिक स्रोत—औषधि निर्माण, चिकित्सा तथा अनुसंधान के क्षेत्र मे जब मोक्षक के उपयोग का प्रश्न उठता है या दूसरे शब्दो मे यह भी कहा जा सकता है कि गत समस्त शास्त्रीय पृष्ठभूमि को पृथक रखकर "मोक्षक" को औषधि निर्माण या चिकित्सा मे उपयोग करना है, तो किस वनस्पति के अभीष्ट उपादेय अङ्ग का प्रयोग करना चाहिये, यह प्रस्तुत समस्या का महत्वपूर्ण तथा अत्यन्त व्यवहारिक पक्ष है।

इस उद्देश्य को ध्यान मे रखकर, आधुनिक काल में रचित प्रमुख द्रव्यगुण विज्ञानीय साहित्य के अवलोकन से विभिन्न मतमतान्तर तथा उनमे निर्दिष्ट तथ्य सामने आते है।[१-८] साराशत, पाटला के वानस्पतिक स्रोत के रूप मे स्टिरिओस्पर्मम सुआविलेन्स (Stereospermum Suaveolens D. C) समस्त लेखको द्वारा एक मत से स्वीकार किया गया है, तथा इसी वनस्पति की एक अन्य प्रजाति स्टिरिओस्पर्मम् चेलोनायडिस S. Chelonoides D C) का कुछ प्रदेशो, विशेषत. दक्षिण भारत, मे पाटला के रूप मे प्रचलन बताया जाता है।

मोक्षक के वानस्पतिक स्रोत के रूप मे दो वनस्पतियो का प्राय उल्लेख किया जाता है। जिनके नाम हैं—स्क्रेवेरा स्विटिनोयडिस) Schrebera swietenioides Roxb) तथा ऐलियोडेण्ड्रोन रोक्सबर्घाई (Elaeodendron Roxburghii wt & Arn) चूंकि मोक्षक के लिए वनस्पतियो के व्यवहार मे प्रचलन का निर्देश अधिकतर ग्रन्थकारो ने किया है, अत शास्त्रसम्मत मोक्षक जातियो की उनसे यथाशक्य तुलना उपयोगी होगी।

(अ) जातियो का स्वरूप—जैसाकि पूर्व मे उल्लेख किया जा चुका है कि मोक्षक की दो जातियाँ, शास्त्रीय पक्ष से प्रमाणित[x] तथा अधिक व्यवहृत है। वैसे, विश्वामित्र[•] के मतानुसार मुष्कक की कई जातिया हैं। तथा शोढल[७] ने उत्पति स्थान के आधार पर दो जातिया शिखर तथा वन प्रदेश (सम धरातल पर) मे उत्पन्न होने वाली बतायी हैं।

साहित्यिक सर्वेक्षण तथा व्यवहार मे प्रचलित

---

१ शर्मा, प्रि० व्र०-पूर्व निर्दिष्ट, पृ २१७-२१९, भाग-प्रथम, पृ० ६१
२ सिंह, रा०सु०-वनौषधि निर्दशिका, लखनऊ, १९६९, पृ० २२१-२२२
३ वैद्य, बा०ग०, पूर्व निर्दिष्ट, पृ० ७८१-७८३
४ सिंह, ब०, वनौषधि निर्दशिका, पृ० ४२, ग्लोसरी आफ वेजीटेबिल ड्रग्स इन वृहत्त्रयी, वाराणसी, १९७२ पृ० २४२
५ द्विवेदी, वि०ना०, भावप्रकाश निघण्टु, ललितार्थकरी टीका, दिल्ली, १९६६, पृ० ३३७
६ पाण्डेय, गं० सं०, वही, हिन्दी टीका, वाराणसी, १९६९, पृ० २७९, ५४४, ५४५
७ स्वामी, भागीरथ, सदिग्ध निर्णय वनौषध शास्त्र, कलकत्ता, १९३६, अपूर्ण या खण्डित भाग उपलब्ध।
८ पाण्डेय, ज्ञानेन्द्र, पूर्व निर्दिष्ट पृ० ६३
x "क्षार श्रेष्ठ : क्षार वृक्षो द्विविध श्वेतकृष्णकः -" भा०प्र०नि० वटादि० ६९-७०
• श्वेतपुष्प कालपुष्पो, रक्तपुष्पस्तथैव च। पीतपुष्प वरस्तेषु कालपुष्प. प्रकीर्तित ॥ (भानुमती, सू०११ अ०)
७ 'मोक्षको द्विविधो ज्ञेय. श्वेतः कृष्णोविभेदत. तथा शोढल निघण्टु—शिखरी वनवासी च द्विविधः श्वेतकृष्णकः।

(या निर्दिष्ट) दो वानस्पतिक स्रोतो—रक्तवेग तथा एलियोडेड्रोन को क्रमश श्वेत एव कृष्ण मोक्षक माना जाता है ।* मोक्षक की निर्दिष्ट दो जातियो के विस्तृत लक्षणो आदि के अभाव मे (वर्ण भेद को छोडकर) इनकी वर्तमानत प्रचलित दो वानस्पतिक स्रोतो से तुलना करने का आधार खोजना तथा साम्यता स्थापित करना, पर्याप्त प्रमाणो के अभाव मे कठिन प्रतीत होता है, इस सन्दर्भ मे केवल वर्ण प्रभेद श्वेत एव कृष्ण त्वक् या पुष्प की दृष्टि से विचार किया जा सकता है । सामान्यत प्रथम वनस्पति के पुष्प श्वेताभ तथा द्वितीय के-हरित श्वेत या भूरे होते है ।

यह भी उल्लेखनीय है कि सहिता काल मे मोक्षक की जातियो एव आमयिक प्रयोगो मे उनकी क्षमता का मूल्याकनात्मक विचार किया गया होगा । उदाहरण के लिए सुश्रुत ने क्षारपाक काल मे कृष्ण मुष्कक को ही उत्तम बताया है और इस रीति से असित मुष्कक तथा श्वेत मोक्षक का पृथक्–पृथक् उल्लेख किया है ।[0] वाग्भट द्वारा कृष्ण पाटली का पृथक प्रयोग किया गया है ।● इस प्रसङ्ग मे यह विचारणीय है कि वाग्भटोक्त कृष्ण-पाटली ने पाटली एव मुष्कक के वानस्पतिक परिज्ञान को सहज बनाने की बजाय सदिग्धता वृद्धि का ही कार्य किया है, क्योकि पाटली दो प्रकार की श्वेत एव कृष्ण होनी चाहिये और इसका सम्बन्ध पाटला से होगा । वस्तुत. "कृष्णपाटली" कृष्ण मोक्षक प्रतीत होती है ।

आ—वन्य सर्वेक्षण (Forest survey)—

चूंकि मध्य प्रदेश के वनो मे सर्वेक्षण कार्यक्रम को सचालित करते समय आयुर्वेदीय औषधियो के विभिन्न वानस्पतिक स्रोतो के प्रचलन तथा निहित विवादग्रस्तता का भी ध्यान रखा जाता है, अत. प्रस्तुत विषय पर उपयोगी तथ्य प्राप्त हुए है जिनका वानस्पतिक सर्वेक्षण की दृष्टि से उल्लेख सूचनाप्रद है ।

सर्वेक्षण हेतु चुने गये क्षेत्र[x] में भ्रमण करते समय स्टिरियोस्पर्मम स्वावियोलेन्स (Stereospermum suaveolens Dc., Bignoniaceae) के वृक्ष ग्वालियर तथा शिवपुरी वन मण्डल मे उपलब्ध हुए । स्थानीय जनता इसे पाटला तथा पाडर के नाम से जानती है, आदिवासी भी यही नाम प्राय प्रयोग करते हैं । यह पूर्व निर्दिष्ट पाटला है (जिसका मोक्षक के साथ उल्लेख स्वाभाविक है) और इसका सग्रह उद्भिदालय तथा सग्रहालय मे किया गया है (ए०सी०डे० एण्ड जी० पाण्डेय १३५५, भीमवाडा, आरोन सब रैन्ज, घाटीगाव फारेस्ट रैंज, ग्वालियर फा० डि०, म०प्र०), जिसका विषयान्तर की दृष्टि से अधिक वर्णन अनापेक्षित है ।

इन्ही वन क्षेत्रो मे सर्वेक्षण करते समय दो प्रकार के अन्य वृक्ष प्राप्त हुए§, जिन्हे ग्रामीण जनता मोरवा (या मोका) तथा जमरासी के नामो से जानती है, ग्वालियर तथा शिवपुरी के वन प्रदेशो (निकटस्थ ग्रामो मे) के आदिवासी भी इन दोनो वनस्पतियो से परिचित हैं । मध्यप्रदेश के अन्य स्थानो मे दोनो वनस्पतिया, प्राय इन्ही नामो से जानी जाती है,β परन्तु स्थानीय भाषा; क्षेत्रीय तथा ग्रामीण भाषा की दृष्टि से कुछ अन्तर स्वाभाविक है । मुख्य रूप से आदिवासियो की अधिक जनसंख्या

---

* पूर्वनिर्दिष्ट द्रव्यगुणविज्ञान सम्बधी प्रमुख ग्रथ ।

0 सुश्रुत सहिता, सू०११-११, तथा चि० ४-३२

● अष्टांग हृदय- उ० ५-४२

x ग्वालियर वन वृक्ष (ग्वालियर फारेस्ट सर्किल) जिसमें छह जिले—ग्वालियर, भिण्ड, दतिया, मुरैना, शिवपुरी तथा गुना सम्मिलित हैं, और वर्तमान निरीक्षण यूनिट द्वारा ग्वालियर वन मण्डल (ग्वालियर, भिण्ड तथा दतिया जिले) में सम्पन्न तथा शिवपुरी वन मण्डल (शिवपुरी जिला) में क्रियान्वित वानस्पतिक सर्वेक्षण पर आधारित हैं ।

§ पाण्डेय, ज्ञानेन्द्र, सिंह, वी० के० तथा भटनागर, एल० एस०, मैडीसिनल फ्लोरा ऑफ ग्वालियर फारेस्ट डिवीजन, मध्यप्रदेश (सी० सी० आर० आई० एम० एच०, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशनाधीन), १९७४, भाग–प्रथम, वेंहट तथा घाटीगाव फारेस्ट रेंजूस से सम्बद्ध भाग आदि ।
सिंह, वी० के०, पाण्डेय, ज्ञानेन्द्र तथा भटनागर, एल० एस०, वही, भाग—२ पृ० ७०, १४४ तथा १५३ ।

β वहीदंगान, एम० ए०, मध्यप्रदेश प्लान्ट्स, वन विभाग, म०प्र०, रीवा, १९७, पृ० ५२ तथा ५४

वाले वन क्षेत्रो मे कुछ अन्य नाम भी सर्वेक्षण के दौरान अङ्कित किए गये हैं।

वानस्पतिक स्रोत न० १—

स्क्रैवेरा स्विटिनोयडिस को सामान्यत लोकभाषा मे (या हिन्दी भाषी जनता मे) मोरवा या मोका नाम से जानते हैं, परन्तु स्थान विशेष (छिन्दवाडा जिला, म०प्र० जो भारिया तथा गौड नामक आदिवासी समूहो के वानस्पतिक ज्ञान तथा अद्भुत रोगोपयोग के लिए प्रसिद्ध हैं) मे इसी वनस्पति को पाडेर करंडी※ कहते हैं और स्थानीय जनता इसकी मूल के कुष्ठ रोग मे लाभकारी प्रयोग से न्यूनाधिक परिचित भी है।

साथ ही यह क्षार बनाने तथा उपयोग करने के लिए प्रसिद्ध है। इसके प्रयोज्य अङ्गो मे क्षार सर्वाधिक उपयोगी भी है। सर्वेक्षण के प्रसग मे, विशेषत शिवपुरी वन मण्डल मे इसके वृक्ष मध्यमाकार के, न बहुत बड़े और न बहुत छोटे देखने को मिले। इसमे लटके हुए फलो से यह वनो मे शीघ्र पहिचान लिया जाता है तथा पीताभ आसमानी रग के पुष्पो मे रात के समय सुगन्ध विशेष आती है। जैसाकि उल्लेख किया जा चुका है, शास्त्रीय दृष्टि से भी इसकी क्षार निर्माणार्थ उपयोगिता प्रमाणित है। यथा, सुश्रुत ने इसके काष्ठ को जलाकर क्षार निर्माण विधि का निर्देश किया हैα, तथा चरक ने मुख रोग चिकित्सा मे प्रयोग हेतु प्रमुख क्षारो के साथ मुष्कक का भी समावेश किया हैβ।

यह वृक्ष कई हिन्दी भाषा प्रदेशो मे घण्ट, एक सिरा तथा हाड़पाडेर, विशेषत आदिवासी जन जातियो, के नामो से भी जाना जाता है।● स्वाभावत "घण्ट" नाम शास्त्रोक्त घण्टापाटला नाम का ही अपभ्रश या अ श रूप है, जो फलो की घण्टा के समान सरचना तथा उनके वृक्ष पर उत्पन्न होने की स्थिति को सूचित करता है, और इस प्रकार ग्रामीण जनता भी इस वानस्पतिक रचना विशेष से सुपरिचित है। दूसरा नाम "हाड़पाडेर", शास्त्रीय नाम काष्ठ पाटला से सम्बद्ध प्रतीत होता है। अन्त मे एक सिरा नाम, स्थानीय जनता मे इसके फलो का शोथ युक्त वृपणो मे प्रयोग के कारण पडा हो, ऐसी सम्भावना व्यक्त की जाती है। मध्यप्रदेश के वनो मे सर्वेक्षण करते समय यह जानकारी भी मिलती है कि वृषण ग्रन्थि शोथ मे इसके फलो को रोगी की कमर मे बाधा जाता है। चिकित्सोपयोगी पौधो के आधुनिक साहित्य:–* मे फूलो के इस प्रयोग की पुष्टि की भी गयी है तथा अन्य रोगो मे प्रयोग भी दिए गये है।

वानस्पतिक स्रोत नं० २—

मध्यप्रदेश के प्रख्यात वन क्षेत्रो मे उल्लेखनीय अमरकण्टक की पर्वत शृखलाओ (दक्षिण शहडौल वन मण्डल, अमरकण्टक फारेस्ट रैंज▪) पर एलियोडेण्ड्रोन राक्सवर्घाई (ज्योतिष्मती कुल) उत्पन्न होता है। इसकी छाल का सग्रह औषधि प्रयोग के लिये किया जाता है।X

यह वृक्ष वहाँ के आदिवासियो मे भयानक या आतककारी समझा जाता है, क्योकि ये लोग इसकी छाल का प्रयोग हानि पहुंचने के उद्देश्य से भी करते हैं। यही कारण है,

---

※ सक्सैना, एच० ओ० मैडीसिनल प्लाण्ट्स आफ पाटलकोट (छिन्दवाडा), मध्यप्रदेश, वन विभाग, म०प्र० रीवां, १९७१, पृ० २७–२८ वनस्पति सग्रहण सदर्भ . शुक्ला, एस० ओ० १०५६३, पाटलकोट (हर्बेरियम, स्टेट एफ० आर० आई० जबलपुर)

α सुश्रुत सू० ११–११

β पलाश मुष्कक यवक्षाराश्च चूर्णिता । इत्यादि, चरक, चि० २६–१८०, १८१।

● सिंह, ब०, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ० ५२३।

: चौपड़ा, आर० एन० तथा अन्य ग्लोसरी आफ इण्डियन मैडीसिनल प्लाण्टस, नई दिल्ली, १९५६, पृ० १०५, २२३।

* कीर्तिकर, के० आर० तथा बसु, बी० डी०, पूर्वनिर्दिष्ट, भाग १ ५७९–६१, भाग २ १५३०–३२।

▪ कार्यालय वन मण्डलाधिकारी, दक्षिण शहडोल वन मण्डल, क्रमाक मा० वि० २०३६, दिनाङ्क २४–६–६३ : 'सर्वे आफ मैडीसिनल फ्लोरा इन अमरकण्टक फारेस्ट्स" विषयक पत्राचार।

X सिंह, बी०, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ० ३१२–३१३।

सम्भवत कुछ लेखको* ने इसकी त्वक मे क्षार का अधिकतम मात्रा का अ श होने से ग्रामीण प्रयोग की क्षमता तथा मोक्षक के शास्त्र सम्मत नाम 'क्षारश्रेष्ठ' की सार्थकता सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। इसकी पत्तियो के चूर्ण को सुधाकर, हिस्टीरिया का वेग शान्त करने या चेतनाहीन मनुष्य को चेतना प्रदान करने के लिए भी कई स्थानो की जनता को यह प्रयोग ज्ञात भी है तथा साथ ही इसकी त्वक का शोथ मे लेप भी करते हैं। मध्य प्रदेश के कुछ भागो मे इसे भूतकेशी ● भी कहा जाता है। वनो मे सर्वेक्षण करते हुए प्राय नोट किया गया कि जमरासी के गोद का जङ्गलो से ग्रामीण या आदिवासी जनता सग्रह किया जाता है, वन विभाग, मध्य प्रदेश के लिए लाभकारी वनोपज मे से एक है। इसे वाकरा (ला)※ भी कहा जाता है। सेण्ट्रल प्रोविन्स जिसमे मध्यप्रदेश भी सम्मिलित है, कालामोरवा, रस्सी, जुम तथा रोही नाम भी इसके लिए विभिन्न स्थानो मे प्रयोग किये जाते है। ■

इन दोनो वानस्पतिक स्रोतो (स्क्रेबेरा तथा एलियोडेण्ड्रोन का वानस्पतिक परिचय वन्य सर्वेक्षण तथा साहित्यिक वर्णन के आधार पर सग्रहण सन्दर्भों सहित दिया जा रहा है।

(१) स्क्रेबेरा स्विटिनोयडिस—

(Schrebera swietenioides Roxb Obaceae)

मध्यमाकार वृक्ष, २०-२५ फीट ऊंचा, त्वक् मसृण भस्म वर्ण, पत्र विपरीत विषय पक्षवत्, पत्रक विपरीत ७-९, निम्न युग्म प्राय अन्य युग्मो की अपेक्षा लघु पुष्प पीताभ वभ्रु (भूरा) (त्रिभुजीय) वहुवर्ध्यक्ष, पुंकेसर दलचक्र नलिका के अग्रभाग मे निविष्ट, वर्तिका मे दो भागो मे विभाजित। स्फोट नाशपाती के आकार वाले, लाल (लटके हुए), २ इन्च लम्बे, काष्ठवत् कठोर बीज, ३-४ प्रत्येक कोष्ठ मे सपक्ष। पुष्पकाल अप्रैल-मई।

सग्रहण संदर्भ●—जी० पाण्डेय ३२२०, वैहर खाँ (वैहट वन परिक्षेत्र, ग्वालियर वन मण्डल)

वी. के. सिंह एण्ड जी पाण्डेय ४३८१, ४४२१ ऊमरी वीट (पौहरी वन परिक्षेत्र, शिवपुरी वन मटल)

२—एलियोडेण्ड्रोन रावसवघाई (Elaeodendron roxburghii wt. & Arn., Celastraceae)

दीर्घ गुल्म या वृक्षक, शाखायें रक्ताभ पत्र विपरीत तथा एकान्तर, प्राय पत्र शीर्ष न्यावृत, दन्तुर। पुष्प, वहुसख्यक, अत्यपसारी कक्षीय (कक्षस्थ) या अतिरिक्त कक्षीय, पुष्पगुच्छी युग्म भुजीय, शाखीय वहुवर्ध्यक्ष मे, पुंकेसर, दल की अपेक्षा अत्यल्प, अष्टिफल, औवओवोइड, तीक्ष्णाग्र।

पुष्पकाल—मार्च—जुलाई

संग्रहण संदर्भ● : जी पाण्डेय १०११, १०६८, २२९१, २४७२, ककैटो डेम, इमली खाँ, हसी डेका (घाटी गाव वन परिक्षेत्र, ग्वालियर वन मण्डल), काकेर (खनियावाना, पिछोर वनपरिक्षेत्र, शिवपुरी वन मण्डल)। वी के. सिंह एण्ड जी. पाण्डेय, २२५१, गडरोली वीट, (पिछोर वन परिक्षेत्र, शिवपुरी वन मण्डल)

इन दोनो वृक्षो मे, सामान्य वाह्य रूप से देखने से जो अन्तर सर्वेक्षण के प्रसग मे प्रत्यक्षत प्राप्त हुआ है (अथवा इन दोनो मे जो अन्तर वनो मे औषधि सग्रहण के समय करना चाहिये) उसके आधारभूत अङ्ग, प्रत्यग की प्रमुख रचनायें इस प्रकार हैं—

(की टू दी आइडेण्टीफिकेशन) :

१—वृक्ष, भस्म वर्ण की त्वक्, पत्र समुख, विषम पक्षवत् तथा एकान्तर, दन्तुर, पुष्प पीताभ कत्थई, त्रिभुजीय वहुवर्ध्यक्ष मे, फल (स्फोट श्रेणी—कैपसूल) नाशपाती के समान, लटके हुए .... स्क्रेबेरा।

२—दीर्घगुल्म या वृक्षक, शाखायें रक्ताभ, पत्र

* सदर्भ पूर्व उल्लिखित।

● यह नाम सर्वेक्षण के प्रसंग में अभी अंकित नहीं किया जा सका, बल्कि, वा० ग वैद्य, पूर्व निर्दिष्ट, भाग १, पृ० २९१ से उद्धृत।

※ चोपड़ा, आर० एन० तथा अन्य, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ० १०५।

■ कीर्तिकर के० आर० तथा वसु० वी० डी०, इण्डियन मैडीसिनल प्लाट्स, इलाहाबाद, १९३९, भाग१ ५७९-६१

● सग्रहण सदर्भ संग्रहकर्ता नाम, क्षेत्र पंजिका (फील्ड बुक) क्रमाक तथा सग्रह स्थान, अर्थात् इन वानस्पतिक नमूनो का अध्ययन मे क्रियात्मक रूपेण प्रयोग हुआ (हर्वेरियम शीट्स एग्जामिण्ड)।

सम्मुख, एकान्तर, दन्तुर तथा अग्रभाग व्यावृत, पुष्प बहुसख्यक युग्ममुजीय (शाखीय) बहुवर्ष्यक्ष मे, फल (अष्टिफल श्रेणी–ड्रूप्स), अण्डाकार ·········एलियोडेण्ड्रोन

उपसहारात्मक समीक्षा—भारतीय चिकित्सा पद्धति मे प्रयुक्त औपधि द्रव्यो मे वानस्पतिक स्रोत मे प्राप्त औपधियाँ, जो सर्वमान्य एव सही वानस्पतिक परिज्ञान के अभाव मे विवादग्रस्त हैं, की बहुपक्षीय समस्यायें हैं, तदनुरूप मोक्षक के वास्तविक वानस्पतिक परिज्ञान मे विभिन्न समस्याओ का सम्मिलन, प्रकट हुआ है। एतिहासिक काल क्रम की दृष्टि से सहिताकाल के पश्चात् ही सदिग्धता का प्रादुर्भाव मानना अधिक सगत होगा। निघण्टु सृजन की परम्परा मे, भावमिश्र के काल तक, पर्यायात्मक नामकरण की पद्धति से सम्बन्धित विवाद का किसी भी अवस्था तक सूत्रपात मात्र कहा जा सकता है, क्योकि सहिताओ मे पाटला तथा मुष्कक (या मोक्षक) सर्वथा पृथक रूप से वर्णित हैं तथा मुष्कक की दोनों जातियो का यथास्थान औपधियो मे प्रयोग भी किया गया है। ऐसे स्थलो पर टीकाकारो ने यथासम्भव स्पष्ट व्याख्याये की हैं (केवल 'घण्टापाटलक' शब्द को मुष्कक की व्याख्या मे लाना, चक्रपाणि द्वारा एक अभिनव उल्लेख है, जो आगे चलकर निघण्टुकर्ताओ द्वारा औपधि की पर्यायावली मे समाविष्ट हुआ)।

वानस्पतिक स्रोतो की दृष्टि से उपलब्ध साहित्य के सर्वेक्षण द्वारा मुष्कक के लिए प्रयुक्त दो वनस्पतियो स्क्रैबेरा स्विटिनोयडिस तथा एलियोडेण्ड्रोन रावसवर्धाई का निर्देश प्राय पाया गया है। फलो की आकृति तथा उनके रोगोपयोग की दृष्टि से प्रथम वनस्पति मे साम्यता अधिक है। क्षार श्रेष्ठता का गुण दोनों वृक्षो मे न्यूनाधिक बताया जाता है। स्थानीय नामावली की दृष्टि से वनस्पति को मोरवा कहा जाता है और दूसरी को काला मोरवा। प्राथमिक रूप से दोनो वृक्षो को श्वेत तथा कृष्ण जातियो के मानने मे कुछ आपत्ति भी हो तो, प्रथम वनस्पति को मोक्षक के वानस्पतिक स्रोत के रूप मे वनो के प्रत्यक्ष अनुभव, सीमित शास्त्रीय सूचनाओ तथा वनस्पति शास्त्रीय सरचना के आधार पर मानना चाहिये। सर्वांगीण निर्णय के लिए, चिकित्सीय अनुसधान तथा पण्य अध्ययन (क्लीनिकल ट्राइल्स एण्ड मार्केट स्टडी) करना अपेक्षित है। प्रस्तुत अध्ययन विषय की पृष्ठभूमि, रूपरेखा तथा प्रारम्भिक शोध मात्र है, जो आगामी प्रयोगात्मक अनुसधान मे सहायक होगा।

आभार प्रदर्शन—मध्य प्रदेश के वनो मे क्रियान्वित वनौषधि सर्वेक्षण के उत्साहवर्धक सचालन तथा प्रस्तुत अध्ययन की प्रकाशन अनुमति हेतु, निर्देशक भारतीय चिकित्सा पद्धतियो की केन्द्रीय अनुसधान परिषद, नई दिल्ली के प्रति लेखक आभार प्रदर्शित करते है।

ग्वालियर वन वृत्त, विशेषत ग्वालियर तथा शिवपुरी वन मण्डलो के आधीन कार्यरत वन विभाग, मध्य प्रदेश के विभिन्न अधिकारी गणो एव उनके कर्मचारी वर्ग के प्रति कृतज्ञ है जो वन्य सर्वेक्षण के प्रसग मे विविध प्रकार से सहायक रहे।

प्रस्तुत कार्य मे उदधृत पादप नमूनो (हर्बेरियम-स्पेसिमन्स) मे से कुछ वनस्पतियो के परिचय के प्रमाणीकरण हेतु, विशेषत राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान (फ्लोरिस्टिक वाटनी डिवीजन), लखनऊ, के प्रति कृतज्ञता प्रगट की जाती है।

श्री वैद्य बनवारी लाल मिश्रा
प्राध्यापक-स्नातकोत्तर प्रशिक्षण केन्द्र
राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, जयपुर (राज)

इस लेख के लेखक—श्री बनवारीलाल मिश्र आयुर्वेदाचार्य हैं। आपने जयपुर विश्वविद्यालय से आयुर्वेदाचार्य की डिग्री प्राप्त की है। आपकी स्नातकोत्तर शिक्षा जामनगर के स्नातकोत्तर शिक्षण सस्थान में हुई है। श्री मिश्र राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय जयपुर में द्रव्य गुण विषय के प्राध्यापक हैं।

द्रव्य-गुण के विषय में इनका ग्रंथ औषधि परीक्षा नामक निकल चुका है। ये बडे उत्साही और औषधि सबन्धी विचारो के पोषक हैं। इनके विचार से जीवन्ती कोई सदिग्ध द्रव्य नही हे। यह अर्क कुल की लता जाति या वनस्पति है जिसको लैटिन भाषा में लेप्टाडिनिया रेटिकुलाटा कहते हैं। विशेष विवरण लेख मे पढ़ें। —विश्वनाथ द्विवेदी

सम्प्रति अनेक सदिग्ध द्रव्यो मे एक महत्वपूर्ण वानस्पतिक द्रव्य जीवन्ती भी है। प्रस्तुत द्रव्य की सदिग्धता निवारण की दृष्टि से इसका सहिताकालीन, निघण्टु कालीन तथा अर्वाचीन द्रव्यगुण साहित्य का इसके नाम उत्पत्ति स्थान परिचय जाति गुणधर्म एव आमयिक प्रयोग परक बिन्दुओ से सिंहावलोकन नितान्त अपेक्षित है।

चरक संहिता—

चरक सहिता मे जीवन्ती के कुल ५६ प्रयोग गुल्म, राजयक्ष्मा,अपस्मार,क्षतक्षीण, अर्श,श्वास,कास, तृषा, विष, व्रण, शिरोरोग, सूर्यावर्त्त, खालित्य, वातव्याधि, वातरक्त, योनि व्यापदो मे कल्क, चूर्ण, अवलेह, क्षीर, तैल, घृत, गुटिका कल्पनाओ के रूप मे मिलते हैं। जीवन्ती के सभी प्रयोग जीवन्ती के नाम से तथा जीवनीयगण में एक घटक द्रव्यत्वेन ही मिलते हैं।

जीवन्ती नाम से प्रयोग—

सूत्र स्थान—(१) अध्याय ३-२५ (२) अ० ४-१३ (३) अ० ४-१६ (४) अ० ४-१८ (५) अ० ५-६५ (६) अ० २५-३८

विमान स्थान—(७) अध्याय ८-१३७

चिकित्सा स्थान—(८) अध्याय १ प्रथम पाद—४४ (९) अ० १, १ पाद-५८ (१०) अ० १,१ पाद-६३ (११) अ० १, २ पाद-४ (१२) अ० १, ४ पाद-६ (१३) अ० २, १ पाद-२५ (१४) अ० २, २ पाद-५ (१५) अ० २, २ पाद-२६ (१६) अ० २, ३ पाद-८ (१७) अ० ३-२५० (१८) अ० ५-११९ (१९) अ० ७-१२० (२०) अ० ८-७५ (२१) अ० ८-१११ (२२) अ० ८-१७१ (२३) अ० ८-१७५ (२४) अ० ११-३५ (२५) अ० ११-४५ (२६) अ० १२-६० (२७) अ० १४-१२४ (२८) अ० १४-२३५ (२९) अ० १७-१२३ (३०) अ० १७-१४३ (३१) अ० १८-१७६ (३२) अ० २३-२२५ (३३) अ० २५-७६ (३४) अ० २५ ८९ (३५) अ० २६-१६७ (३६) अ० २८-१६० (३७) अ० २९-७७ (३८) अ० २९-९३ (३९) अ० २९-१३९ (४०) अ० ३०-५०

सिद्धि स्थान (४१) अध्याय—३-४९ (४२) अ० ४-९ (४३) अ० १०-३०

जीवनीय गण नाम से प्रयोग—

सूत्र स्थान—(४४) अध्याय ४-९

चिकित्सा स्थान—(४५) अध्याय २, ३ पाद-६ (४६) अ० २, ३ पाद-१५ (४७) अ०१०-२८, २९ (४८) अ० १८-४४ (४९) अ० १८-१०३ (५०) अ० १८-१३४ (५१) अ० २२-३२ (५२) अ० २२-४० (५३) अ० २६-२७८ (५४) अ० २८-१२६ (५५) अ० २९-१३२ (५६) अ० ३०-६५

सिद्धि स्थान (५७) अध्याय ४-६ (५८) अ० ६-८३ (५६) अ० ११-४०

इस प्रकार चरक सहितान्तर्गत जीवन्ती के उपर्युक्त प्रयोग अध्ययन से विदित होता है कि इस काल तक जीवन्ती एक सुलभ एव असदिग्ध रूपेण प्रयुक्त हुआ है।

चरक सहिता के प्रसिद्ध टीकाकार चक्रपाणि के काल तक भी (१०वी शताब्दी के मध्य तक) जीवन्ती एक सुपरिचित असदिग्धरूपेण प्रयुक्त होती रही। आचार्य चक्रपाणि को विविध वानस्पतिक जाङ्गम भौमद्रव्यो के नाम परिचय की विभिन्न प्रासगिक स्थलो पर विवेचन करने की आवश्यकता पडी वहा जीवन्ती द्रव्य इसका अपवाद रहा। चक्रपाणि को एक भी प्रसङ्ग मे इसके नाम परिचय गुण कर्मों को स्पष्ट करने की आवश्यकता नही पडी। चक्रपाणि ने केवल च० सू० अ० ४-६ जीवनीयगण के सदर्भ मे जीवन्ती के वर्ण का उल्लेख किया है "जीवन्ती स्वनामाख्याता सुवर्णवर्णाभा"।

सुश्रुत-संहिता

सुश्रुत सहिता मे जीवन्ती के ३६ प्रयोग व्रण, भग्न, वातरक्त, पक्षाघात, अर्दित वातोदर विद्रधि ग्रन्थि मुखरोग दन्तवेष्ट वाताभिष्यन्द, दृष्टिगत रोग, स्कन्दापस्मार ज्वर अतिसार गुल्म, मूर्च्छा, श्वास, क्षतजकास, पैत्तिकापस्मार मे चरक की अपेक्षा सीमित कल्पनाओ घृत तैल के रूप मे ही मिलते हैं। इन व्याधियो मे जीवन्ती का उपयोग उपनाह, प्रलेप, परिषेचन, नस्य, एव वस्ति द्वारा किया गया है।

स्मरणीय है कि सुश्रुत सहिता मे भी चरक के समान ही जीवन्ती के विभिन्न प्रयोग जीवन्ती नाम से तथा जीवनीय, काकोल्यादिगण के घटकत्वेन ही मिलते है।

जीवन्ती नाम से प्रयोग

सूत्रस्थान—(१) अध्याय २०-५ (२) अ० ४६-२४६ (३) अ० ४६-२५८ (४) अ० ४६-३३५

चिकित्सा स्थान—(५) अध्याय ५-१२ (६) अ० ३७-१२ (७) अ० ३७-२३ (८) अ० ३८-५७

उत्तरतन्त्र—(९) अध्याय २७-५० (१०) अ० ४०-८४

जीवनीय गण नाम से प्रयोग

उत्तरतन्त्र—(११) अध्याय ४२-३६ (१२) अ० ४६-१६

काकोल्यादि गण नाम से प्रयोग

सूत्रस्थान—(१३) अध्याय ३८-३६ (१४) अ० ४३-११

चिकित्सा स्थान—(१५) अध्याय २-५२ (१६) अ० २-७८ (१७) अ० ३-४७ (१८) अ. ४-१४ (१६) अ० ५-७ (२०) अ० ५-८ (२१) अ० ५-१६ (२२) अ० ५-२२ (२३) अ० १४-५ (२४) अ० १४-५ (२४) अ० १६-५ (२५) अ० १८-८ (२६) अ० २०-४१ (२७) अ० २१-४ (२८) अ० २१-१६ (२६) अ० २६-३८ (३०) अ० ३७-१२ (३१) अ० ३८-७८

उत्तरतन्त्र-(३२) अध्याय ६-६ (३३) अ० १८-६४ (३४) अ० २६-४ (३५) अ० ३१-५ (३६) अ० ३६-२८८ (३७) अ० ४२-१७ (३८) अ० ५२-३३ (३६) अ० ६०-२६

जीवन्ती की सदिग्धता की दृष्टि से सुश्रुत सहिता का अध्ययन करने पर यह तथ्य सामने आता है कि चरक के समान ही सुश्रुत सहिता काल तक भी यह द्रव्य सुपरिचित एव असदिग्धावस्था मे प्रयुक्त हुआ है किन्तु सुश्रुत के प्रसिद्ध टीकाकार आचार्य डल्हण के काल मे जीवन्ती के व्यावहारिक नाम तथा परिचय के सम्बन्ध में कुछ सदेहास्पद स्थिति उत्पन्न हो गई थी, जिसके निराकरण के लिए डल्हण ने जीवन्ती के लिए व्यावहारिक नाम के रूप मे प्रादेशिक भाषा मे डोडिका, डोडी सज्ञा प्रदान की। जीवन्ती के वानस्पतिक परिचय को स्पष्ट करते हुए डल्हण ने लिखा है कि "जीवन्ती ..... लताऽर्कफलाकारसक्षीरफरा (सु. सू. ३८-३६-डल्हण) जीवन्ती लता जातीय वनस्पति होती है, इसका फल अर्कफल के समान होता है तथा फल क्षीर युक्त होता है।

डल्हण ने जीवन्ती का परिचय लिखते हुए अन्य आचार्य का अभिमत उद्धृत करते हुए इसे स्वर्णजीवन्ती भी माना है। "अन्ये सुवर्णजीवन्तीमाहु।"

डल्हण ने ही शाकवर्ग मे जीवन्ती की श्रेष्ठता के सुश्रुताचार्य के अभिमत सदर्भ मे ही अन्य आचार्य का मत प्रतिपादित करते हुए जीवन्ती का परिचय तण्डुलीयक सदृश भी लिखा है—

'जीवन्ती जीवा तण्डुलीयकसदृशी इत्यन्ये डोडिका इत्यपरे'
(सु. सू. अ ४६-२४६, डल्हण)

आचार्य डल्हण द्वारा उद्धृत अन्य आचार्यो के मतो से स्पष्ट होता है कि डल्हण के काल में (१० वी शताब्दी

के अन्त) जीवन्ती द्रव्य के बारे मे संदिग्धता उत्पन्न हो गई थी।

अष्टाङ्ग हृदय—

इस संहिता ग्रन्थ मे जीवन्ती के कुल ५२ प्रयोग ज्वर क्षतज कास राजयक्ष्मा छर्दि अतिसार विद्रधि उदर शोथ क्षुद्र रोग वातरक्त उन्माद अपस्मार तिमिर शुष्काक्षिपाक, पैं. शिरोरोग खालित्य पालित्य जत्रूर्ध्वगतरोग योनि व्यापदो मे अवलेह घृत क्षीर चूर्ण पेया तैल कल्पनाओं के रूप मे मिलते है।

स्मरणीय है कि चरक के समान ही अष्टाङ्गहृदय मे भी सभी प्रयोग जीवन्ती नाम से या जीवनीय गण के घटक द्रव्यत्वेन मिलते है। जिससे यह निष्कर्ष लेखन मे कोई आपत्ति प्रतीत नही होती कि आचार्य वाग्भट्ट के काल मे जीवन्ती के विषय मे कोई संदेहास्पद स्थिति नही थी।

चरक एव सुश्रुत संहिता ग्रन्थो के मूल पाठ मे जीवन्ती के किसी भी भेद का प्रतिपादन नही मिलता है जब कि अष्टाग सग्रह मे इसके एक भेद सुवर्ण जीवन्ती का भी उल्लेख किया गया है।

"जीवन्ती चक्षुष्यादि गुणायुक्ता। या मधुरा सा शीत वीर्या। एभिर्गुणै किंचिदूना। यथोक्त च सग्रहे-चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी जीवन्ती मधुराहिमा।

शाकाना प्रवरा स्यूना द्वितीया किंचिदेव तु"

(अ० हृ० सू० अ० ६८-९, हेमाद्रि)

निघण्टु काल—

संहिता ग्रन्थो मे जीवन्ती एक सुपरिचित एव असन्दिग्ध द्रव्य के रूप मे मिलती है। इसके विपरीत निघण्टु शास्त्रो मे जीवन्ती का परिचय एक संदिग्ध एव अपुष्ट वानस्पतिक स्वरूप मे मिलता है। अधिकाश निघण्टुकारो द्वारा जीवन्ती के वानस्पतिक परिचयवाची पर्यायो का उल्लेख नही करना एक विचारणीय प्रश्न है जबकि निघण्टुकर्त्ताओ की अपनी लेखन शैली की परम्परा के अनुसार द्रव्य के पर्यायो मे ही उसके नाम, उत्पत्तिस्थान, वानस्पतिक परिचय (मूल, काण्ड, शाखा, पत्र, पुष्प, फल, बीज, निर्यास त्वक्) जाति भेद प्रभेद गुण कर्म एव आमायिक प्रयोगो का विशद एव स्पष्ट विवेचन किया है।

निघण्टु काल मे जीवन्ती की संदिग्धता के लिए निम्न कारण उत्तरदायी प्रतीत होते है—

१—निघण्टुकारों द्वारा जीवन्ती के वानस्पतिक स्वरूप पर विशद एव स्पष्ट विचार प्रतिपादन न करना।

२—संहिता ग्रन्थो मे जीवन्ती के प्रयोग जीवन्ती या जीवनीय गण के नाम से मिलते है तथा विभिन्न निघण्टुकारो ने जीवन्ती के लिए अनेक विभिन्न पर्यायों का उल्लेख किया है तथा जीवन्ती के विभिन्न पर्याय इतर अनेक द्रव्यों पर भी घटित होते है जिससे मूल द्रव्य जीवन्ती के लिए किसी निश्चित द्रव्य का प्रयोग करना एक जटिल प्रश्न बन गया।

३—विभिन्न निघण्टुकर्त्ताओ ने जीवन्ती के लिए जिन अनेक पर्यायो का उल्लेख किया है उनमे इसके गुण कर्म विषयक बिन्दु ही स्पष्ट होते है। द्रव्य का वानस्पतिक परिचय पक्ष सुस्पष्ट नहीं होता है।

४—संहिता काल से निघण्टु काल के पूर्व तक जीवन्ती एक सुलभ एवं असंदिग्ध द्रव्यत्वेन प्रयुक्त होती रही। सम्भवतः भौगोलिक परिस्थितियों से द्रव्य गत परिवर्तन मात्राल्पता से या प्रादेशिक भाषाओं के नाम पार्थक्य से निघण्टुकार किसी एक द्रव्य को जीवन्ती स्वीकार करने मे सहमत नही हुए हो।

आगे कुछेक निघण्टु ग्रन्थो मे जीवन्ती के बारें में उपलब्ध वर्णन को प्रस्तुत किया गया है।

धन्वन्तरि निघण्टु—

जीवन्ती जीवनीया च जीवन्ती जीववर्धिनी।
मांगल्यनामधेया च शाक श्रेष्ठा यशस्करी॥
चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी जीवन्ती मधुराहिमा।
शाकाना प्रवरायूना द्वितीया किंचिदेव तु॥

प्रथम वर्ग—१४०

मदनपाल निघण्टु—

जीवन्ती जीवनी जीवा जीवनीया यशस्करी।
शाक श्रेष्ठा जीवभद्रा मागल्या जीववर्द्धिनी॥
जीवन्ती शीतला स्वादु स्निग्धा दोषत्रयापहा।
रसायनी बलकारी चक्षुष्या ग्राहिणी लघु॥

वर्ग—१-८५-८६

भाव प्रकाश निघण्टु—

जीवन्ती जीवनी जीवा जीवनीया मधुस्रवा।
माङ्गल्यनामधेया च शाकश्रेष्ठा पयस्विनी॥

जीवन्ती शीतला स्वादुः स्निग्धा दोषमयापहा ।
रसायनी बलकरी चक्षुष्या ग्राहिणी लघु ॥

राजनिघण्टु—

जीवन्ति स्याज्जीवनी जीवनीया ।
जीवा जीव्या जीवदा जीवदात्री ॥
शाकश्रेष्ठा जीवभद्रा च भद्रा ।
मगल्या च क्षुद्रजीवा यशस्या ॥
भृंगारी जीवपृष्ठा च काञ्जिका शशशिम्बिका ।
सुपिङ्गलेति जीवन्ती ज्ञेया चाष्टदशाभिधा ॥
जीवन्ती मधुरा शीता रक्तपित्तानिलापहा ।
क्षयदाहज्वरान् हन्ति कफवीर्यं विवर्द्धिनी ॥
गुडूच्यादि वर्ग, ३७, ३८

अन्या बृहज्जीवन्ती—

जीवन्त्यन्या बृहत्पूर्वा पुत्रभद्रा प्रियंकरी ।
मधुरा जीवपृष्ठा च बृहज्जीवा यशस्करी ॥
एवमेव बृहत्पूर्वा रसवीर्यं बलान्विता ॥

स्वर्ण जीवन्ती—

हेमा हेमवती सौम्या तृणग्रंथिर्हिमाश्रया ।
स्वर्णपर्णी सुजीवन्ती स्वर्णजीवा सुवर्णिका ॥
स्वर्णपुष्पी स्वर्णलता स्वर्ण जीवन्तिका च सा ।
हेमवल्ली हेमलता नामान्यस्याश्चतुर्दश ॥
स्वर्ण जीवन्तिका वृष्या चक्षुष्या मधुरा तथा ।
शिशिरा वातार्तपासृग्दाह जिव्दलवर्द्धनी ॥

शालिग्राम निघण्टुभूषण—

जीवन्ती जीवनी जीवा जीवदा च सुखंकरी ।
रक्तांगी प्राणदा भद्रा मगल्या मृगराटिका ॥
गुडूच्यादिवर्ग

जीवन्ती पर्याय संग्रह—

अर्कपुष्पी, केशपुष्पी, काञ्जिका, जीवनी, जीवा, जीवदा, जीवनीया, जीवपुष्पी, जीवपृष्ठा, जीवपत्री, जीवपुष्पा, जीववर्धिनी, जीवदात्री, डोडीक्षुप, तिक्त जीवन्ती, तिक्तजीवन्तिका, तिक्तभद्रा, तिक्तप्रियकरी, नृपग्रन्थि, पयस्विनी, प्राणदा, पुत्रभद्रा, प्रियकरी, बृहज्जीवन्ती, बृहज्जीवा, भद्रा, मगल्या, मेघराटिका, मधुस्रवा, मृगराटिका, मधुश्वासा, मधुरा, यशस्या, यशस्विनी, रक्तमुष्टि, रक्तांगी, विषमुष्टि, स्वर्ण जीवन्तिका, स्वर्णलता, स्वर्णजीवा, सुजीवन्ती सुपर्णिका, स्वर्णपर्णा, सौम्या, सुखकरी, स्वाभृंगारी, सुपिंगला, सुमुष्टि, स्वर्णजीवन्ती, सुमंगल्या, शाकश्रेष्ठा, शशशम्बिका, हेमा, हेमपूर्णा, हेमवल्ली, हेमाह्वा, हिमाश्रया, हेमपुष्पी, हेमवती, हेमजीवन्ती, हेमक्षीरी, हेमलता, क्षुद्रजीवा ।

आगे के प्रसग में जीवन्ती के उन नामो का उल्लेख किया गया है जो अन्य द्रव्यो के लिए भी गृहीत किए जाते हैं—

जीवन्ती नाम	इतर द्रव्यो के लिए सार्थक द्रव्य नाम
जीवदात्री	ऋद्धि
जीवनी	मेदा, अन्यादोडी, फञ्जिका
जीवन्ती	गुडूची, वहुला, अन्यादोडी, हरीतकी
जीवभद्रा	ऋद्धि
जीव्या	हरीतकी
पयस्विनी	क्षीरकाकोली, क्षीर तुम्बी, क्षीर विदारी, छागला, दुग्धफेनी, बलीवर्द
प्रियंकरी	कासघ्न, लक्ष्मणा
भद्रा	कट्फल, काश्मर्य, दन्ती, मूर्वा, नीलिनी, बला, वहुला, मुस्ता, बचा, शमी,
मगल्या	ऋद्धि, प्रियगु, मापपर्णी, बचा, रोचना, हरीतकी,
मधुरा	काकोली, खर्जूरी, दीप्या, पालक्यम्, शतावरी, व्रीहि, मेदा, मसूरिका,
मधुस्रवा	मधुयष्टी, मूर्वा, दीप्या, क्षीरमूर्वा, हसपदी, पिण्डखर्जूर, रक्तलज्जालुका,
यशस्करी	यवतिक्ता, ऋद्धि
यशस्या	ऋद्धि
शाकश्रेष्ठा	अन्यादोडी, वृन्ताकी
हेमवती	रेणुका, क्षीरिणी, श्वेतवचा, हरीतकी, स्वर्णक्षीरी, हरिद्रा
रक्तांगी	मजिष्ठा ।

आधुनिक काल – वर्तमान कालीन द्रव्यगुण शास्त्रियो ने अपनी-अपनी रचनाओ मे निम्न द्रव्यो को जीवन्ती मानकर वर्णित किया है तथा विभिन्न प्रान्तो मे भिन्न- भिन्न द्रव्य विशेष भी जीवन्ती के नाम से प्रयुक्त होते हैं—

1—Dregia Volubilis भावप्रकाश निघण्टु टीका श्री विश्वनाथ द्विवेदी।

2 – Leptadenia Reticulata द्रव्यगुण विज्ञान श्री यादव जी, त्रिकम जी आचार्य, औषधि दर्शिका श्री ठा० बलवन्त सिंह, द्रव्यगुण विज्ञान श्री प्रियव्रत शर्मा, वनौषधि निदेशिका, श्री रामसुशील शास्त्री चरक संहिता सम्पादक मण्डल जामनगर प्रकाशित।

3 - Celtis Orientalis द्रव्य गुण शिक्षा कवि. नगेन्द्र नाथ सेन।

4—Holostemma Rheedii औषधि संग्रह डा० वा० ग० देसाई।

5—Dendrobium macraei बंगाल बिहार उत्तर प्रदेश राजस्थान मे जीवन्ती के नाम से व्यवहृत होता है।

6—Cimifuga Foetida पंजाब मे जीवन्ती के नाम से प्रयुक्त होता है।

उपर्युक्त द्रव्य जो जीवन्ती के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं आगे प्रत्येक द्रव्य का वानस्पतिक परिचय प्रस्तुत किया है।

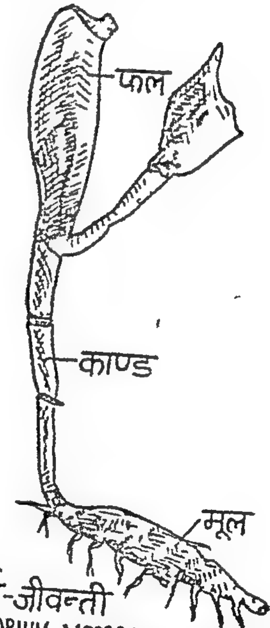
1 Dendrobium Macraei

Family Orchidaceae

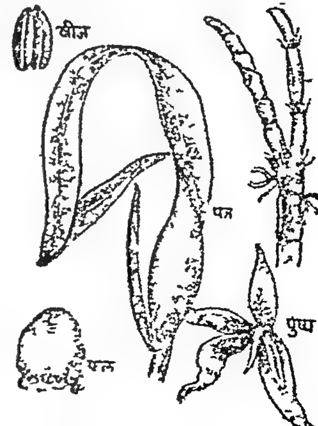
उत्पत्तिस्थान—हिमालय एवं आसाम मे खासिया कि पार्वत्य क्षेत्र सिक्किम तथा दक्षिण मे नीलगिरि पर्वत मे उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय—इसकी लता बांदे के स्वरूप मे वृक्षो पर विशेषतः जामुन के वृक्षो पर पाई जाती है। भौमिक काण्ड वलययुक्त प्रसरी जिससे अनेक काण्ड बांस के समान, कोमल पीतवर्ण चमकीले नीचे की ओर लटके हुए ० से १ मीटर तक लम्बे होते हैं। काण्ड पर अनियत दूरी पर ३ से० मी० से ६ से० मी० तक चमकदार कूटकण्द (Pseudobulbs) होते हैं। पत्र शाखाओं या कूटकन्दो मे उद्भूत कोमल रक्तवर्ण के आयताकार, रेखाकार (Liner) आगे कुण्ठिताग्र समानान्तर सिरायुक्त होते हैं।

पुष्पवृन्त २ से २.५ सेमी० दीर्घ, पुष्प पत्रकोणोद्भूत १ से ३ की संख्या तक श्वेतवर्ण के लगभग २.५ सेमी० दीर्घ होते हैं। पुष्प दलो के ओष्ठ पीतवर्ण के होते हैं। पुष्प वर्षा ऋतु में आते हैं तथा कुछ ही घण्टे विकसित रहते हैं। शिम्बी शरदऋतु मे बहुबीजी होती है। प्रयोज्याग–पचाङ्ग



स्वर्ण-जीवन्ती
DENDROBIUM MECROCI NO ORCHIDACE



जीवन्ती
DENDROBIUM MACRAEI LINDL

2 Cimifuga Foetida

वत्सनाभकुल Ranunculaceae

उत्पत्तिस्थान—इसके क्षुप हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशो मे काश्मीर से भूटान तक ७ से १२ हजार फीट की ऊँचाई पर उत्पन्न होते हैं।

वानस्पतिक परिचय—बहुवर्षायु क्षुप सरल ०.५ से २ मीटर तक ऊँचे तथा दुर्गन्धित होते हैं। काण्ड का ऊर्ध्व भाग रोमश होता है। पत्र ५ सेमी० से ७.५ सेमी० तक लम्बे, सयुक्त दतुरित (Dentate) होते हैं। पुष्प



पुष्पक्रम बहुवर्ध्यक्षीय या एकल पुष्प पीताभ श्वेतवर्ण के परिपुष्प (Perianth) वत् होते है। परिपुष्प पत्र पृथक् एव दलाभ (Petaloid) वाह्यदल पुज एव दलपुंज ५-५ पृथक्-पृथक होते है। पुकेशर असंख्य एव स्वतत्र फल डोडी सदृश १ ३ सेमी० तक दीर्घ तथा ६-८ बीजयुक्त।

3. Holostemma Rheedii (छिरवेल)

अर्ककुल (Asclepiadaceae)

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण भारत, गुजरात तथा हिमालय के निम्नवर्ती क्षेत्र।

वानस्पतिक परिचय—आरोही जाति की लता प्रसरी। स्निग्ध धूसर श्यामवर्ण की होती है। पत्र—पत्रवृन्त २.५ सेमी० से ७.५ सेमी० दीर्घ, पत्र अभिमुख हृदयाकार (Cordiate) मासल (Fleshy) ७ ५ सेमी० से १२.५ सेमी० दीर्घ तथा ५ सेमी० से ७ ५ सेमी० विस्तृत होते



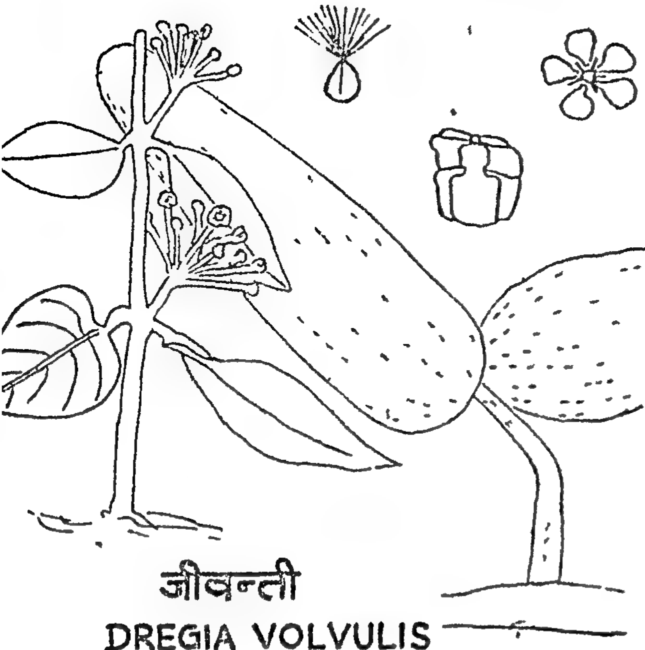
हैं। पत्रोर्ध्वपृष्ठ स्निग्ध निम्न पृष्ठ सुक्ष्म रोमश होता है। पुष्प छत्रकाकार (Umbrella) श्वेत वैगनी हल्के गुलाबी वर्ण के होते हैं। वाह्यदल एव दल सख्या मे ५-५ होते पुकेशर भी ५ होते है। फल युग्म एक सेवनीक (Pair of Folicles) अर्क सदृश। १० सेमी० से १२.५ सेमी० दीर्घ होते है। अपक्व फलो का शाक बनाया जाता है। दक्षिण भारत मे विशेषतया शाक कल्पना मे प्रयुक्त होता है।

4. Dregia Volubilis

अर्क कुल (Asclepiadaceae)

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण भारत महाबलेश्वर, पूना के पास मावल, बंगाल तथा आसाम मे मुख्यत लतायें उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचय—इसकी विस्तृत चक्राकार आरोही लता होती हे। पुरानी शाखाये बहुत लम्बी भस्म वर्ण की तथा कृष्ण चिह्नाङ्कित (Black doted) होती हैं। नवीन शाखायें स्निग्ध एव हरित वर्ण पत्र, पत्रवृन्त १.३-३ सेमी. लम्बा होता है। पत्र ३ ९ से १५ सेमी० दीर्घ ३ ५ से ११.५ सेमी विस्तृत अण्डाकार (Broadly Ovate) आयताकार स्निग्ध जालकीय सिरायुक्त (Reticulately Veined) होते है। पुष्प-पत्रकोणोद्भूत पुष्पवृन्त ०.७ सेमी से २ ५ सेमी दीर्घ, पुष्प-असख्य हरित वर्ण



जीवन्ती
DREGIA VOLVULIS

के पीताभ हरित वर्ण के छत्राकार Umbellate Cymes पुष्प दल आधार भाग से विभक्त ०.७ सेमी. दीर्घ होते है।

फल—एक सेवनीक (Folicle) ७.५ सेमी से १० सेमी. दीर्घ अर्क फल के समान होते है।

5 Celtis orientalis Trema orientalis

उत्पत्तिस्थान—देश के सभी प्रान्तो मे विशेषतः दक्षिण भारत, कोकण, दक्षिण खाण्डला मे वृक्ष पाये जाते हैं।

वानस्पतिक परिचय—वृक्ष अल्पायु शीघ्र वृद्धिशील ८ से ९ मीटर ऊँचे एव सरल होते हैं। शाखायें चतुर्दिक प्रसरी। पत्र ६.०० सेमी १२.५ सेमी दीर्घ तथा ३ सेमी. से ४ ५ सेमी विस्तृत अण्डाकार नोकदार (Acuminate) होते है। पुष्प—एकलिंगी होते हैं। पुपुष्प के बाह्यदल ० २५ सेमी दीर्घ भालाकार पुंकेशर ५। स्त्रीपुष्प वाह्य-दल ० १५ सेमी. दीर्घ अण्डाकृति (Elliptic) होते हैं। फल—अष्ठिफल (Drupe) १.५ सेमी. व्यास के पकने पर कृष्णधूसर वर्ण के होते हैं।

जीवन्ती विनिश्चय के लिए आवश्यक बिन्दु—

(क) वानस्पतिक परिचय दृष्ट्या जीवन्ती निर्णय—

आचार्य डल्हण ने जीवन्ती परिचय के संदर्भ मे जो विचार प्रकट किये हैं तदनुसार जीवन्ती के लिए जो भी द्रव्य लिया जावे उसमे निम्न वानस्पतिक विशेषताये होनी चाहिए।

१—वह लता जातीय वनस्पति होनी चाहिए।

२—उसका फल अर्क के समान होना चाहिए।

३—अपक्वावस्था मे फल सक्षीर होना चाहिए।

४—वैद्यक शब्द सिन्धु के अनुसार 'शर्करावन्मधुर पुष्पा' अर्थात् पुष्प शर्करा के समान होना चाहिए।

(ख) गुणकर्म दृष्ट्या जीवन्ती विनिश्चय—

(१) संहिता काल से लेकर निघण्टु साहित्य निर्माण तक जीवन्ती को शाको मे सर्वश्रेष्ठ माना गया है अतः निर्णित जीवन्ती का फल गुण एव उपयोग की दृष्टि से श्रेष्ठ होना चाहिए।

(२) संहिता काल से लेकर अद्यावधि जीवन्ती को मधुर रस स्निग्ध लघु गुण, शीतवीर्य त्रिदोषहर बल्य रसायन चक्षुष्य ग्राही वर्णित किया है तथा आमयिक प्रयोग दृष्ट्या रक्तपित्त क्षय दाह ज्वरादि आमयों मे उपयोगी माना है।

स्वाभिमत सम्मत जीवन्ती—

LEPTADENIA RETICULATA

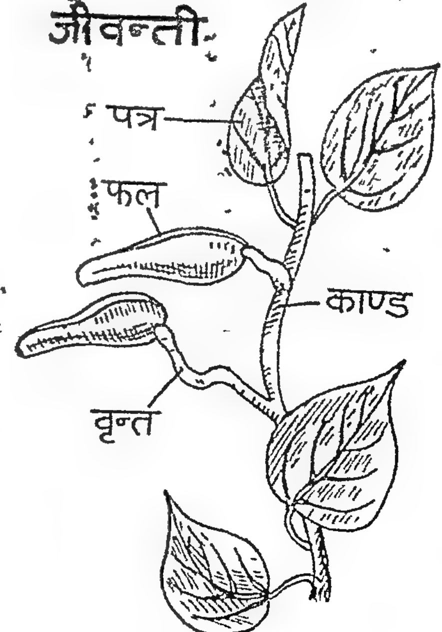
अर्क कुल (Asclepiadaceae)

उत्पत्ति स्थान—इसकी लतायें पजाब, सहारनपुर, शिवालिक के नीचे तथा वरकाला रानीपुर देहरादून के मैदानो मे, दक्षिण भारत मे उत्पन्न होती है।

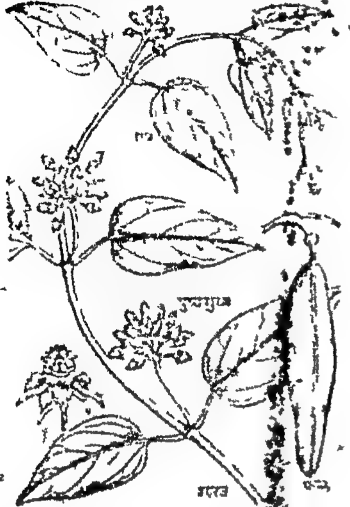
वानस्पतिक परिचय—इसकी चक्रारोही लता होती

(LEPTA DENIA RETICULATA)

जीवन्ती



डोडी शाक (जीवन्ती)
LEPTADENIA RETICULATA WER.



है। पत्र पत्रवृन्त ० ६ से०मी० से ? ७ से० मी० दीर्घ, पत्र कर्म सहश लट्वाकार आयताकार या अण्डाकार ५'० से० मी० से ७ ५ सेमी० लम्बे तथा २.५ से. मी. ३'७ से मी. विस्तृत होते हैं। पत्राधार गोल, हृदयाकार होता है। पत्र का निम्न पृष्ठ नीलाभ श्वेत रंग से आवृत रहता है। पुष्प पत्रकोणोद्भूत छत्रकाकार गुच्छो मे हरितपीताभ या कुछ मटमैले वर्ण के होते है। बाह्यदल तथा दल संख्या मे ५-५ होते हैं। फल एक सेवनीक फल (Folicle) प्राय एकाकी ५ से. मी.—७ ५ से. मी दीर्घ १ २ मे २ से. मी. स्थूल स्निग्ध कठोर आगे से चचुयुक्त या स्थूल होते हैं। फल को तोडने पर दुग्धवत् श्वेत् स्राव निकलता है। अपक्व फलो (फलियो) का मधुर रुचिकारक शाक बनता है।

जीवन्ती निर्णय मे शास्त्रानुमोदन—

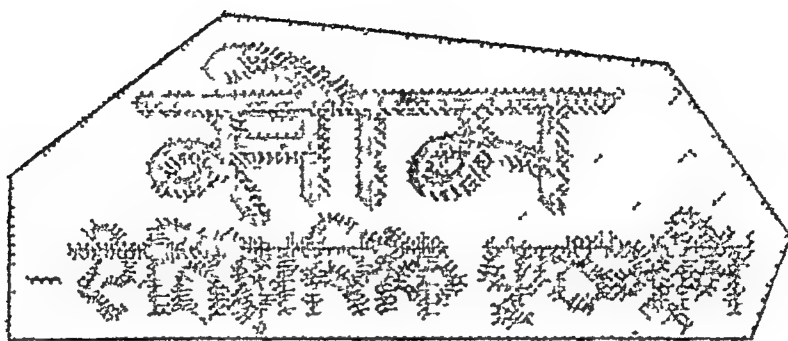
जैसाकि पूर्व मे जीवन्ती विनिश्चय के लिए आवश्यक बिन्दु प्रसग मे लिखा गया है कि जिस भी द्रव्य को जीवन्ती के लिए निर्णीत किया जावे उसमे मदर्माङ्कित वानस्पतिक एव गुण कर्म दृष्ट्या वैशिष्टया होना चाहिए। वे सभी निर्णायक लक्षण स्वाभिमत जीवन्ती (Leptadenia Reticulata) मे इतर ५ द्रव्यो (जो विभिन्न आचाय मानते हैं तथा प्रान्त विशेष मे जीवन्त्यर्थ प्रयुक्त होते ह) की अपेक्षा परिपुष्टरूपेण चरितार्थ होते है।

यह लता जातीय वनस्पति है। इसका फल अर्क के समान होता है। अपक्वावस्था मे फल सक्षीर होता है। इसके पुष्प कलिकावस्था मे सुमधुर होते है।

उत्पत्ति स्थान बहुल प्रान्तो मे इसके फलो का शाक रुचिपूर्वक प्रयुक्त होता है। गुणकर्म की दृष्टि से अन्य शाको की अपेक्षा उत्तम माना जाता है। शास्त्रोक्त जीवन्ती के समान मधुर रस स्निग्ध लघु, गुण शीतवीर्य चक्षुष्य बल्य रसायन कर्म एवं आमयिक प्रयोग दृष्ट्या रक्तपित्त क्षय क्षतक्षीण दाह ज्वरादि विकारो मे इसका चिकित्सा मे बहुलश प्रयोग होता है।

स्मरणीय है कि वर्तमान कालीन अधिकांश द्रव्य गुण शास्त्रियों ने भी इसी द्रव्य (Leptadenia Reticulata) को जीवन्ती माना है।

उत्तर प्रदेश पजाब बगाल राजस्थान के बाजारो मे जीवन्ती के लिए एक पीतवर्ण चमकीला पुआल जैसा पचाग द्रव्य (Dendrobium macraei) मिलता है जिसे जीवन्ती के एक भेद सुवर्ण जीवन्ती के रूप मे प्रारम्भिक विचार दृष्ट्या स्वीकार कर सकते है।



वैदिक साहित्य मे सोम का जो वर्णन मिलता है उससे विस्तृत वर्णन सहिता कालीन साहित्य में मिलता है। यज्ञो मे सोमरस पान का विधान है। अत यजुर्वेद-ऋग्वेद और अथर्ववेद मे सोम का बहुत ही सुन्दर वर्णन है। यज्ञ काल मे ऋत्विक लोग एक प्रकार के सोमरस का पान करते थे जो हृद्य वल्य होने के साथ साथ स्फूर्तिदायक भी होता था। अत. सोम और उसके कई प्रकार के भेद अथवा उसकी प्रकृति का वर्णन वैदिक साहित्य मे विशिष्ट रूप मे मिलता ह। वैदिक काल में सोम का क्रय विक्रय होता या और उससे हिरण्य का अर्जन किया जाता या। शतपथ ब्राह्मण मे इस विषय का वर्णन मिलता है। यथा—

चद्र हेतत् चद्रेणक्रणाति यत् सोम हिरण्येन।
शुक्र हेतत् शुक्रेण क्रिणाति यत् सोम हिरण्येन ना॥
शत० ब्रा० ३-३-६

जिसका भावार्थ यह है कि सोम तथा उसके भेदो को चादी और सोनो से विक्रय किया जाता था। और बने-बनाये सोम रस पेय को भी विक्रय किया जाता था। और वैदिक काल मे समय के साहित्य के अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि सोम वैदिक काल मे ही महर्घ हो चुका था और इसका क्रय विक्रय सोने चादी मे हुआ करता था। यही नही ब्राह्मण काल से ही इसकी दुष्प्राप्यता और महर्घता का भान होता है। ताण्डव ब्राह्मण लिखने के समय सोम की प्राप्ति कठिनाई मे होती थी। इसमे लिखा है कि यदि सोम न मिले तो पूतीक का ग्रहण करना चाहिये। यदि पूतीक भी न मिले तो अर्जुन का ग्रहण करना चाहिए। यथा—

—यदि "सोम न विन्देयु पूतिकानभिषुणुर्यूपपि न पूतिनर्जुनानी। —तन्ड्यम्ब्रा ६।५।३।

जिदा वेस्ता मे जो कि पारसियो का धर्म ग्रन्थ है उसमे भी सोमरस पान का वर्णन आता है। वहा पर सोम को होम करके लिखा है।

वैदिक काल मे जो सोम मिलता था उसकी शाखाओ को कूटकर सोमरस बनाया जाता था और यह सोमरस स्वाद मे मधुर, मधुगन्धि और मदकारी होता था।

देश भेद से वैदिक सोम कई नामो से प्रचलित ज्ञात होता है। यथा—तिब्बती सोम-पारसी सोम (हूमुह्य) बलूची सोम (उमान्) चीनी सोम (सुम यासिम) नाम से साहित्यो मे पाया जाता है। सोम के अन्वेषण करने वाले कुछ लोगो ने जिनका नाम सबका लिखना सम्भव नहीं है। सोम का लैं० नाम सार्कोस्टेमा वेवीसिटिम्मा यह नाम डा० एचिन्सम के अनुसार लिया गया है। कुछ लोग एफिड्रा पेचिक्लाडा को भी सोम की सज्ञा देते है। इसी प्रकार कुछ लोग अनुमान से यहाँ तक कहने की धृष्टता करने लगते हैं कि भोग-सम-दूर्वा-न्ठफूल्ला-अस्थि शृङ्खला ये सब सोम हैं। इस विषय के साहित्य को देखा जाय तो यह सबके सब अनुपान से ही गढे हुए नाम हैं।

वैदिक सोम का स्वरूप निम्नलिखित है जो सुश्रुत कालीन सोम के स्वरूपो से कुछ भिन्न ज्ञात होता है—

स्थान—यह निर्विवाद है कि सोम की प्राप्ति ऊची पर्वत चोटियो से होती थी। ऋग्वेद मे लिखा है कि—

"शृगे शिशानो अर्यति। ऋग्वेद ९।५।२
(सोम अद्री) " ५।८५।२

सोम के स्थानो मे मूंजव.न पर्वत का विशेष नाम दिया गया है। सहिता ग्रन्थो मे सोम के बहुत से स्थान दिए हैं। यथा—हिमालय अरबुम पर्वत या आबू सह्यगिरी

महेन्द्रगिरी मलयगिरी श्री पर्वत देवगिरी और देवसह्य, विन्ध्यगिरि, देवशन्य तथा उत्तर पश्चिम हिमालय के पर्वतो मे जहां से सिन्धु नदी निकलती है। वहाँ के पर्वतो मे ये सोम पाये जाते है। इनके अतिरिक्त मूंजवान अ शु-वान काश्मीर की ये झीलें मानसरोवर इन स्थानो में भी सुश्रुत मे सोम के स्थान का निर्देश किया है। इन स्थानो मे से सोम की खोज के लिए हिमालय मे गगोत्री त र काश्मीर के उत्तरी भागो मे सिंधु नदी के उद्गम प्रदेश और डल और वुलर की झीलों के साथ साथ सतलज, व्यास, रावी, चनाव के उद्गम प्रदेशो मे खोज किया गया अर्बुद गिरि या आबू की झीलो मे भी इसकी तलास की गई किन्तु कहीं भी सहिताक्त सोम नही मिला। यथा -

हिमवत्यर्बुदे सह्ये महेन्द्रे मलये तथा।
श्री पर्वते देवगिरौ गिरौदेव सहे तथा ॥
उत्तरेण वितस्तायाः प्रवृद्धा ये महिधरा॥
पञ्च तेषां - अधोमध्ये सिन्धुनामा महानद ॥
हृठवत्-प्लवते तत्र चन्द्रमा सोम सत्तमः॥
तस्यो देशेषु चाप्यस्ति मूंजवानशवानपि।
काश्मीरेषु सरोदिव्य नाम्ना क्षुद्रक मानसम् ॥
गायत्रस्त्रैष्टुभ पाक्तो जागत शाक्वरस्तथा।
अत्र सन्त्यपरे चापि सोमा सोम समुत्प्रभा ॥
—सु०चि २९।२७-३१

सोम का स्वरूप

सोम शब्द से दो अर्थ लिए जाते है—

(१) सोम नाम की औषधि।

(२) सोम से बनने वाला सोमरस।

जैसा कि ऋग्वेद के दूसरे तीसरे और पांचवें मण्डल के सूक्तो मे सोम के नाम से सोमरस का ग्रहण किया गया है। यहा पर हमारा अभिप्राय सोम नामक वनस्पति का ग्रहण करना है। सुश्रुत ने भी—

"औषधीनां पति सोमः"

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि सोम ऊँचे पर्वत शृगो पर होता है, और इनकी प्राप्ति पर्वत शृगो से होती है। यह भी ज्ञात होता है कि सोम एक लता है। यह ऊँचे स्थानो मे पर्वत शिखरो पर होती है, और हरी भरी हरी लता है। इसकी शाखा प्रशाखायें बहुत सी निकलती है, और वेद के मत्रो से यह स्पष्ट है कि यह वहां की जगली जातियो से खरीदा जाता था। पैसा के द्वारा लेने का विवरण कई मत्रों मे है।

सोम के पर्यायो मे सोम, सोमलता, सोमवल्ली, सोमवल्लिका, चन्द्रवलरी, गुल्मवल्ली, यज्ञवल्ली, इन्दुलेखा, महागुल्म यज्ञश्रेष्ठा, धनुर्लता, सोमाह्वा, द्विजप्रिया, सोमा, सोमक्षीर च गोमाच यज्ञङ्गा।

यह पर्याय राजनिघण्टुकार ने करवीरादि आदि वर्ग मे किया है। ऊपर के पर्यायो से पता चलता है कि सोमवल्ली कोई बडी लता है जो श्वेत वर्ण की होती है, और इसका क्षीर भी सफेद होता है। और इसका पान द्विज लोग बडे आनन्द से किया करते थे। इसकी पत्तिया चन्द्रमा की तरह सफेद-सफेद गोल होती थी।

राजनिघण्टु के इस वर्णन के अतिरिक्त सुश्रुत मे इसके स्वरूप का वर्णन निम्न रूप मे दिया गया है। यथा—

सर्वेषामेव सोमानां पत्राणि दशपच च।
तानि शुक्ले च कृष्णे च जायन्ते नियसान्ति च ॥
एकैक जायते पत्र सोमस्याहरहस्तदा ।
शुक्लस्य पौर्णमास्यां तु भवेत पञ्चदशच्छदः ॥
शीर्यते पत्र मेकैकं दिवसे-दिवसे पुन ।
कृष्ण पक्षक्षये चापि लता भवति केवला ॥

ऐसा ज्ञात होता है कि १५ पत्र की कोई लता सोम नाम की लता से थी और शुक्ल पक्ष मे एक-एक पत्र से बढ कर पूर्णमासी को १५ हो जाते थे। तथा कृष्ण पक्ष मे एक एक पत्र गिर जाते थे और लता शेष रह जाती थी इस सोम के कई भेद है। जैसे—

१. अंशुमान, २ मूंजमान, ३. चन्द्रमा, ४. रजतप्रभ, ५ दूर्वासोम, ६. कनीय सोम, ७. श्वेताक्ष, ८ कनक प्रभ, ९ प्रतानवान, १० तारा वृन्त, ११ करवीर, १२. अ श-वान, १३. स्वयप्रभ, १४. महा सोम, १५. गरुणाहृत सोम, १६. गायत्र्य सोम, १७. त्र्यष्टुभ सोम, १८ पाक्त सोम, १९ जागत सोम, २० शाक्वर सोम, २१ आग्निष्टोम, २२ रैवत, २३ गायत्र्य, २४. त्रिपद सोम।

निघण्टुकारो ने जो वर्णन सोम का किया है वह तो एक वल्ली मात्र है। उसमे कन्द आदि का उल्लेख नही है, किन्तु सुश्रुत सहिता के जितने सोम हैं। उन सबो मे कन्द होता है। यथा—

१—अंशुमान—यह भी कन्दवान होता है, और उसमे से घृत का गंध निकलता है।

२—रजत प्रभ—यह भी कन्द वाला होता है। इसके कन्द का आकार कदली के कन्द के आकार का होता है।

३—मूंजमान—लहसुन के पत्र की तरह उस का पत्र होता है।

४—चन्द्रप्रभा—यह जल मे फैलता हुआ तैरता है, और स्वर्ण की तरह पीले वर्ण का होता है।

५—गरुणाहृत और श्वेताक्ष—ये पाण्डुर वर्ण के होते हैं, और सांप की काचली की तरह वृक्षो के अग्र भाग पर लटके होते हैं। और उनके पत्तो पर गोल-गोल चित्तियाँ पड़ी रहती है। शेष जो सोम है, वे भी क्षीर, कन्द और लतावान् है। किन्तु इनके पत्र भिन्न २ प्रकार के होते है। ऐसा वर्णन सुश्रुत मे मिलता है—

सर्वेषामेव सोमानां पत्राणि दशपञ्च च।
तानि शुक्ले च कृष्णे च जायन्ते निपतन्ति च॥
एकैकं जायते पत्रं सोमस्याहरहस्तदा।
शुक्लस्य पौर्णमास्यां तु भवेत् पचदशच्छद॥
शीर्यते पत्रमेकैकं दिवसे-दिवसे पुन।
कृष्णपक्ष क्षयेचापि लताभवति केवला॥
अंशुमान् आज्यगन्धस्तु कन्द वान रजत प्रभ।
कदल्याकार कन्दस्तु मुंजवानलशुनच्छद॥
चन्द्रमा कनकाभासो जले चरति सर्वदा।
गरुणाहृत नामा च श्वेताक्षश्चापि पाण्डुरौ॥
सर्पनिर्मोक सदृशौ तौ वृक्षाग्राव लम्बिनौ।
तथाऽन्ये मण्डलैश्चित्रै श्चित्रिता इव भाति ते॥
सर्वे एव तु विज्ञेया. सोमा. पञ्चदशच्छदा।
क्षीर कन्द लतावन्त पत्रैर्नानाविधै स्मृता॥
हिमवत्यर्बुदे सह्ये महेन्द्रे मलये तथा।

चरक संहिता मे भी इसी पचदश पत्र वाले सोम का वर्णन मिलता है।

यथा—"सोमो नाम ओषधि राज पचदश पर्वा सोम इव हीयते वर्धते च।"

इसी प्रकार सोम (चन्द्रमा) के जितने नाम हैं, उतने ही नाम सोम इस औषधि के नाम है। सोम वल्ली और सोम लता ये नाम से भावमिश्र, राज निघण्टु इनमे वर्णन है। भाव प्रकाश जैसे—

सोमवल्ली सोमलता सोमक्षीरी द्विजप्रिय।
सोमवल्ली त्रिदोषघ्नी कटुस्तिक्ता रसायनी॥

भावमिश्र।

राजनिघण्टुकार ने जो सोम के पर्याय दिये हैं। उसमे एक पर्याय धनुर्लता भी लिखा है। इससे मालूम होता है कि इस लता के रेशो से धनुष की डोरी भी वनती होगी। जैसे—

सोमवल्ली महागुल्मा यज्ञश्रेष्ठा धनुर्लता।
सोमार्हा गुल्म वल्ली च यज्ञ वल्ली द्विज प्रिया॥
सोम क्षीराच्च सोमाच्च यज्ञाङ्गा रुद्र सख्यका॥

इससे आकार प्रकार का भी ज्ञान होता है। ये महा गुल्मा है। अर्थात एक मूल से कई शाखा-प्रशाखा देकर वल्ली के रूप मे फैलने वाली लता है। और इसमे से सफेद रंग का दूध भी निकलता था। यह यज्ञ वल्ली है, द्विज वल्ली है। इससे ज्ञात होता है कि यह वही सोमलता है जिसका वर्णन ऊपर किया गया है।

सोम नाम से ग्रहण होने वाली अन्य औषधिया अमर कोश मे अमरसिंह ने सोम के पर्याय मे ब्राह्मणी मत्स्याक्षी—वैस्या और सोमलता। इसके अतिरिक्त सोम राजी (वाकुची) गुडूची—सोमवल्क—श्वेत खदिर इत्यादि का नाम भी सोम के आधार पर है। सोम वृक्ष कट्फल का भी नाम है। एसे ही कर्पूर की भी सोम संज्ञा है। किन्तु इन सवका ग्रहण उर्पयुक्त सोम से नही किया जा सकता।

सोम कल्प—सुश्रुत मे इस कल्प का वर्णन किया गया है। इसमे सोमकन्द का वर्णन दिया है। जिसमे स्पष्ट वर्णन है कि सोम कन्द को सोने की सूची से विदारण कर उसके दुग्ध को सोने या चादी के वर्तन मे एक (प्रसृत) अञ्जली लेना चाहिये। इससे स्पष्ट है कि सोम के कन्द मे प्रचुर क्षीर भी निकलता था।—सु॰चि॰२९।

इसी मे सोम के और भी आकार प्रकार लिखे हैं। यथा—

"विशेषतस्तु वल्ली प्रतानक्षुपकादय सोमा ब्राह्मण क्षत्रीय वैश्यैर्भक्षयितव्या। इससे स्पष्ट है कि सोम के और भी भेद थे। वल्ली के आकार का सोम प्रतान के आकार का सोम या क्षुप के रूप मे उगने वाला सोम इसी प्रकार से अंशुमान् चन्द्रमस सोम को सोने के पात्र

मे, चन्द्रमा को चादी के पात्र मे वाकी मोम को चादी के पात्र मे ग्रहण करना चाहिये । अन्त मे स्पष्ट यही रूप वताया है कि कन्द वल्ली और प्रतान वाला प्रत्येक सोम होता है ।

वैदिक सोम—वेदकालीन सोम के स्वरूप को जानने की चेष्टा करें तो यह ज्ञात होता है कि यह एक लता की जाति का है । जिससे सोमरस निर्माण मे कूटने पीसने छानने के लिये यन्त्रो का प्रयोग किया जाता था । और इस सोम रस निर्माण मे यव-दही—गोदुग्ध और सत्त का प्रयोग अलग-अलग किया जाता था । वेदो के अन्दर प्राप्त वर्णन के अनुसार यह एक प्रकार की लता है, जिसकी मोटाई गोस्तन के समान होती है , जिसमे से क्षीर निकलता है । इसमे से दुग्ध-श्वेत अरुण वभ्रू एव पीगल वर्ण का निकलता है ।

उपकरण—सोमरस निर्माण मे अधिपवण (वाज संहिता १८/२१ अथर्व वेद ५/२०/१०) अभिपवणी अमत्र (ऋग्वेद २/२४/१/५१/४) उपलप्रक्षिणी (ऋग्वेद ६/११२/३) कारोतर (ऋग्वेद १/११६/७ श० ब्रा० १२/६/१/२) कोश (ऋग्वेद ६/७५/३ अथर्व १८/४/३०) खारी (ऋग्वेद (४/३२/१७) चर्म (ऋग्वेद १/२०/६,१/११०/३) चूम (ऋग्वेद ३/४८/५,८/२/८) वर्मन (ऋग्वेद १०/६४/६,१०/ तितउ (ऋग्वेद १०/७१/२) त्रिकदक (ऋग्वेद १/३२/ ३,२/११/१७) पवि (ऋग्वेद १/१६६/१०, वा. स ४/३०) वाण (ऋग्वेद १/५६/६) कलक (ऐतरेय ब्रा ७/३०/श ब्रा. ३/३/४/६) खारी ऋग्वेद ४/३२/१७) पवित्र (ऋग्वेद १/२८/६) महावीर (ब्रा० स० १६/१४, श० ब्रा० १४/१/ २/६/१७),आदि महत्व के है, मोम का यज्ञो से भी अभिन्न सम्बन्ध था । वैदिकधर्म की विशेषता ही यज्ञ है । ऋग्वेद काल मे यज्ञ शब्द भजन-पूजन या उपासना के अर्थ मे आया है, किन्तु बाद मे यज्ञ शब्द अग्नि आहुति के साथ साथ विविध क्रियाओ युक्त अनुष्ठानो के अर्थ मे प्रयुक्त होने लगा । इन अनुष्ठानों के तीन प्रमुख भेद है ।

उदाहरणार्थ—(१) पाक यज्ञ । (२) हविर्यज्ञ ।

(३) सोम यज्ञ ।

१—पाक यज्ञ[1]—मे साय प्रात होम वली वैश्वदेव और पितृयज्ञ की विधि होती थी ।

२—**हविर्यज्ञ**[2]—मे अग्निहोत्र-पूर्णमासी और अमावस्या को पूजन व यज्ञ 'नवेष्टि' चातुर्मास्य इत्यादि का समावेश है ।

३—**सोमयज्ञ**[3]—मे अग्निष्टोम वाजपेय अतिरात्र और सोम की आहुति और इन तीनो यज्ञो मे पशु मेध का भी सम्बन्ध वताया गया है और इनमे सोम और सुरा का होना आवश्यक है ।

इस सोम निर्माण प्रक्रिया मे पत्रो मे रखकर सोमरस पात्र को अग्नि पर चढाते थे और उसका परिश्रवण कराकर सुरा की तैयारी की जाती थी । यह साधारण सोम से तीक्ष्ण होता था । इनको हविकाल के सयोग के आधार पर प्रातः काल, मध्यान्ह और साय काल को सोमार्पण होता था, इसमे सोमरस और परिश्रुत सोम का हवन होता था ।

प्रतिनिधि—सोम की प्राप्ति वन्य जाति व गन्धर्वो द्वारा होती थी । इसके न मिलने पर पूतीक[4], फाल्गुनीलता[5], अरुण दूर्वा[6], कुसना[7], नैचाशाख[8], शश[9] प्रयोग[10] और श्योनकृत[11]पूतीक का ग्रहण किया जाता था । सोमरस के साथ जल, मधु, पृश्निपर्णी[12] कुवल[13] कर्कन्धु, वदर व्रीही व श्यामाक के तण्डुल मिलाये जाते थे ।

---

१ सायं प्रातर्होमौ स्थाली पाको नवश्च य. । वलिश्चपितृयज्ञश्चाष्टका सप्तम' पशु. । इत्येते पाकयज्ञा । गो० ब्रा० १।५।२३, पशव्यो हि पाक यज्ञः । —श ब्रा २।३।१।२१

२ 'अग्न्याध्येय मग्निहोत्र पौर्णमास्यमावास्ये । नवेष्टिश्चातुर्मास्यानि पशुबन्धोऽत्र सप्तमः इत्येते हविर्यज्ञा— गो० ब्रा० १/५/२३ ।

३ प्रजायते वा एते अन्धसीयत सोमश्च सुरा । —श० ब्रा० ५/१/२/१०
एतद् वै देवानां परमन्न यत् सोमः ॥ —तै० ब्रा० २/३/३/२८

४ से १० तक—कास० ३४/३ से. पी. व को पणव स्थ० श० ब्रा० १४/१/२/१२ प० ब्रा० ४/१/६।५३ तै० स० २/५/३/५ वेदिशेमाइयालाजी १/२/४/ नोट ३ ।

११ श० ब्रा० ४/५/१०/२

१२ श० ब्रा० ३/४/३/१३, ४/२/५/१५ ऐ० ब्रा० २/२० तै० स० ६/४/२/१, श० ब्रा० ३/६/१/२६, ३/६/२/७/१६ का० श्रो० सू० ८/९/७,९/३/१२ ।

भारत में सोम के समान कुछ द्रव्यों का विवेचन था जिनसे रोग से मोक्षण, जरा नाश, [illegible] [illegible] का निर्माण किया जाता था।

सोम रसायन

इतिहास—महर्षि सुश्रुत ने 'स्वभावव्याधि प्रतिषेधनीयम्' अध्याय में इस रसायन का विवरण दिया है। जिसमें ब्रह्मा आदि देवताओं ने जरा और मृत्यु के विनाश के लिये अमृत स्वरूप सोम रसायन की रचना की। जिसके सेवन से ऋषियों की आयु दीर्घ होती थी और वे जरा मृत्यु से रहित रह सकते थे।

विधि-विधान—शुभ तिथि करण नक्षत्र मुहूर्त में प्रशस्त देश में [illegible] आगार का निर्माण कर उपकरण परिचारक चिकित्सक औषधि आदि का संग्रह करके शोधन विधि द्वारा शरीर का शोधन करवाकर उत्तम तिथि करण मुहूर्त और नक्षत्र में 'अंशुमान' विधान से मंगल और स्वस्तिवाचन करवाकर [illegible] में [illegible] कर सुवर्ण पात्र में सोम का सेवन करना चाहिये।

सोम रस निर्माण—अंशुमान के [illegible] कन्द को [illegible] सोने के [illegible] या चांदी के बर्तन में लेकर सोम कन्द को सुई से विद्ध कर [illegible] एक अंजली दूध का ग्रहण करना चाहिये और इसको [illegible] में निवृत्त होकर बिना स्वाद लिये ही एक बार में ही पी जाना चाहिये। और फिर यथा स्थान में रहकर [illegible] नियम से युक्त होकर [illegible] होकर सुहृद मित्रों में बैठकर रसायन का सेवन करना चाहिये। सेवन करने के उपरान्त [illegible] निद्रा नहीं लेनी चाहिये [illegible] वायु आदि रहित [illegible] में बैठे रहना चाहिये। सायंकाल शक्ति अनुसार घूम कर [illegible] पर [illegible] बैठकर सोना चाहिये। प्यास लगने पर शीतोदक का पान भी थोड़ी मात्रा में करना चाहिये। यदि तृषा रहे तो अल्प मात्रा में ही क्षीर का पान करना चाहिये। प्रातः काल उठकर स्नान और शान्ति वचन करवाकर उसी प्रकार से सोम रस का पान करना चाहिये। सोम के जीर्ण होने पर वमन उत्पन्न होती है। और वमन से [illegible] [illegible] कृमि निकलते है। वमन के बाद ही [illegible] शीत [illegible] क्षीर देना चाहिये। तीसरे दिन इसी प्रकार वमन होता है और फिर शरीर शुद्ध होता है। [illegible] सायं काल पूर्ववत् क्षीर देना चाहिये। [illegible] की शय्या [illegible] की शय्या

पर सुलाना चाहिये। चौथे दिन शरीर की सूजन होनी चाहिये। उसके शरीर के अन्दर से कृमि निकलते हैं और [illegible] के अन्दर [illegible] जाते हैं। [illegible] और [illegible] चाहिये, और प्रातः सायं [illegible] दूध देते रहना चाहिये। पांचवें-छठवें दिन भी इसी प्रकार रखना चाहिये। सातवें दिन सोम पान वाले के [illegible] केवल अस्थि और स्नायु शेष रह जाते हैं। आठवें दिन सबेरे [illegible] दूध से उसके सारे शरीर पर सेचन करके तिल-मधुक और चन्दन का लेप करना चाहिये। दूसरे दिन पुनः प्रातः काल दूध से स्नान करवाकर [illegible] पर चन्दन का लेप [illegible] सुलाना चाहिये। उसके बाद उसके शरीर में मांस आने लगता है। [illegible] और नख गिर जाते हैं। [illegible] के तुरन्त [illegible] तैल से अभ्यङ्ग करनी चाहिये। [illegible] दिन भी ऐसा ही करना चाहिये। इसी प्रकार से १३ वें से १६ वें दिन की [illegible] करना चाहिये। वहीं [illegible] १६ वें दिन तक करना चाहिये। तब उसके दांत निकलने लगते हैं [illegible] स्थिर तथा दृढ़ होने लगते हैं। तब उसको [illegible] का [illegible] मधु [illegible] हुआ [illegible] देना चाहिये। यही विधि २५ वें दिन तक चालू रखनी चाहिये। उसके पश्चात् दोनों काल शालि ओदन दूध के साथ दें।

इसके बाद उसके नख [illegible] हो जाते हैं और उसके केश [illegible] स्निग्ध और [illegible] होते हैं। [illegible] लगते तथा [illegible] त्वचा [illegible] जाते हैं। [illegible] मास तक यही विधि चलते रह चंदन उशीर और कृष्ण तिल का कल्क सिर पर लगाना चाहिये। इससे उसके शरीर की त्वचा स्थिर हो जाती है। इस अवस्था में [illegible] का [illegible] करना चाहिये। और [illegible] परिषेचन के लिये देना चाहिये। [illegible] स्नान के लिये देना चाहिये। और शरीर पर [illegible] देना चाहिये। चन्दन का लेप लगाना चाहिये। [illegible] का [illegible] दूध व मधु की [illegible] द्वारा [illegible] देना चाहिये। और [illegible] मधुयष्टि [illegible] और [illegible] को देना चाहिये। [illegible] मिला हुआ अन्न वस्तु का उपयोग भी करना चाहिये। इस प्रकार से १० रात्रि और रहना चाहिये। और पुनः [illegible] रात्रि इसी प्रकार रहना चाहिये। पुनः [illegible] पूर्वक [illegible] और रात्रियों को [illegible] रहना

चाहिए । इस काल मे क्रोध नही करना चाहिए । इसके बाद एक प्रशस्त तिथि नक्षत्र मे मगल व शाति पाठ करा कर बाहर निकल जाना चाहिये । इससे पूर्वापेक्ष दृढ शरीर वाला बल वर्ण युक्त होकर दीर्घायु होती थी । यही कल्प की विधि सब प्रकार के सोम के क्षीर का सेवन करके रसायन विधि का अनुष्ठान करना चाहिए ।

फल[४]—इस सोम रसायन का सेवन करने से आयु दीर्घ होती है । अग्नि-जल विष और शस्त्र का प्रभाव उसके शरीर पर नही होता, और शरीर मे पूर्ण बल आ जाता है । उसकी स्मरण शक्ति तीव्र हो जाती है । वेदो का अध्ययन कर लेता है और अप्रतिहत गति से चारो तरफ भ्रमण करता है ।

—सु०चि० स्थान न० २६/१३-१८ (सोम रसायनकल्प)

सोम के विकल्प—कुछ लोगो का विचार है कि सोम कल्प या एफिड्रा की जाति के जो पौधे है, उनको आज-कल सोमकल्प कहकर जिस औषधि का ग्रहण किया जाता है उसे ही सोम मानना चाहिये । ये क्षुप जातीय पौधे है और १।। से ३ फीट तक ऊचे होते हैं । इनके काण्ड पतले और कई पर्वो से जुडे होते हैं । इनके मूल से कई काण्ड निकलते है और उनमे शाखाए फूटती है । लम्बी-लम्बी सीक की तरह प्रशाखाओ से पतली-पतली शाखाए निकलती हैं । इनमे पत्र कम दिखाई पडते है । पतले पतले काण्ड ही दृष्टिगोचर होते हैं । इनकी चार मुख्य जातिया होती हैं—

१. एफेड्रा सिनिका—Ephedra Sinica Staff.

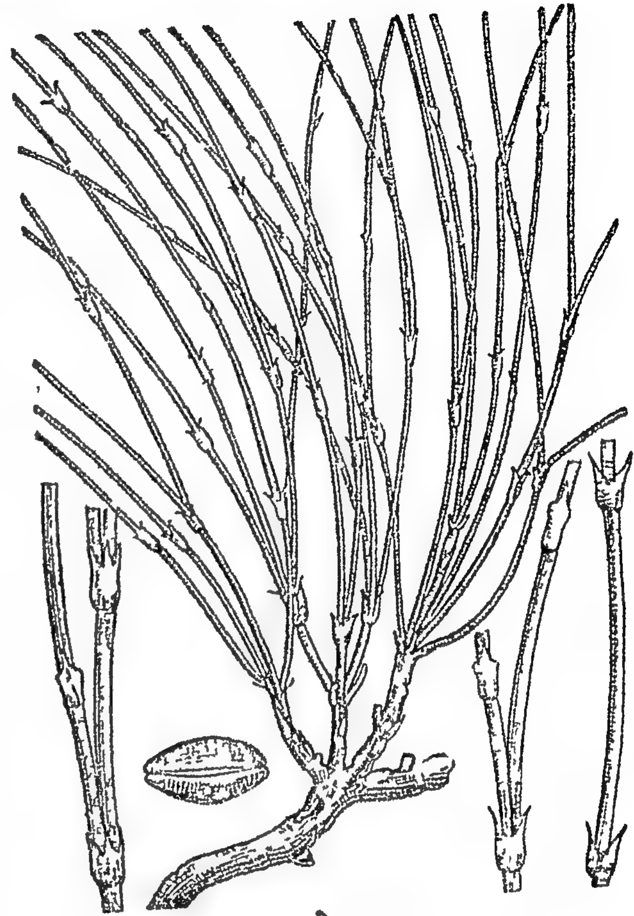
२ एफेड्रा एक्विसेटिना—Ephedra equisetine

३. एफेड्रा जिरेर्डियाना—Ephedra Gerardiana wall staff)

४ एफेड्रा नब्रोडेंसिस्—Ephedra Nebrodensis Tineo staff .)

इनमे से प्रारम्भिक दो चीन मे अधिक मिलती हैं । शेष दो भारतवर्ष मे उत्पन्न होती हैं । इनमें एफेड्रीन नामक तत्व मिलता है जो श्वास की अमोघ औषधि है ।

स्थान—यह हिमालय प्रदेश मे काश्मीर से सिक्किम तक ५००० फीट की ऊचाई पर पाया जाता है । यह



सोमकल्पलता
EPHEDRA SINICA STAPF.

चम्बाकुल लद्दाख व शहर चकरौता मे पाये जाते है । इनका पचाग बाजारो मे आता है । यह बलूचिस्तान, अफगानिस्तान और ईरान मे भी पाये जाते हैं । वहाँ से सगृहीत होकर यूरोपीय देशो मे भेजे जाते हैं । और वहाँ से निकल कर बाजारो मे आता है । इसमे का सत्व एफेड्रीन निकाल कर बाजारो मे प्राप्त करते हैं । उत्तम पौधो मे १४४% एफेड्रीन निकलता है ।

मात्रा—सोमचूर्ण २ ग्राम । क्वाथ—२—२।। तोला । सोम सत्व १—२ ग्रेन । रस—कषैला । विपाक—कटु । वीर्य—उष्ण । गुण- रूक्ष—लघु—उष्ण । वीर्यकालावधि—काण्ठ—१ वर्ष । गत्व—६ मास । प्रभाव—श्वासहर । ★

---

४ "औषधीना पति सोममुपयुज्य विचक्षण । दश वर्ष सहस्राणि नवा धारयते तनुम् ।।
नाग्निर्न तोय न विष न शस्त्र नास्त्रमेव च । तस्यालमायु क्षपणे समर्थानि भवन्ति हि ।।
भद्राणा षष्ठि वर्षाणा प्रसूतानामनेकधा । कुञ्जराणा सहस्रस्य बल समधिगच्छति ।।
क्षीरोदक शक्रसदनमुत्तराश्च कुरुनपि । यत्रेच्छति स गन्तु वा तत्राप्रतिहतागति ।।
कन्दर्प इव रूपेण कान्त्या चन्द्र इवापर. । प्रह्लादयति भूताना मनोस्ति च महाद्युति ।। —सु.चि अ. २९/१३-१८

सोमलता और सोमरस

-श्री ओम प्रकाश वर्मा
प्रकाश आयुर्वेदिक फार्मेसी गुनिया (मुजफ्फर नगर)

इस लेख के लेखक श्री ओमप्रकाश वर्मा प्रकाश आयुर्वेदिक फार्मेसी, गुनिया मुजफ्फर नगर के रहने वाले हैं। 'सोमरतता' के विषय मे इनकी बड़ी रुचि है। चिरकाल से ये सोमज्ञान के पीछे पडे हुए हैं ऐसा लगता है कि इसकी खोज मे देहरादून और इसके आस-पास के क्षेत्रो मे भ्रमण किए हैं। और वहां के पर्वतीय लोगों में जो पेय विवाह शादी उत्सव आदि के सबन्ध मे प्रयोग होता है या जो धनी लोग या आदिवासियो मे जो पेय श्यामाक और कोद्रव के साथ प्रयुक्त होता है उस पेय को सोमरस मानते हैं और इनकी सोमलता पाठा है।

इस लेख मे जो वर्णन दिया गया है वह समय-समय पर होने वाली सोमलता सम्बन्धी विभिन्न व्यक्तियो की विज्ञप्तियाँ हैं। मु जवान सोम से यह मूंज, और दूर्वा सोम से दूब का ग्रहण करना विचार रखते हैं। किन्तु अ शुमान, मु जमान, दूर्वासोम इत्यादि २५ प्रकार के सोम की आकार प्रकार लता कन्द और उन कद से दूध निकलने का वर्णन जो सुश्रुत ने किया है, उस पर ध्यान नहीं देते हैं। अत· वर्मा जी का सोमरस वैदिक सोमरस वैदिक सोमरस और सोम से पृथक है। यह सही है कि ऋग्वेद और यजुर्वेद मे जहां सोम शब्द आया है उनमें अधिकाश मत्र सोमरस के गुण-अवगुण का दिग्दर्शन कराते है।

जहाँ पर यह लिखा है कि ये सब सोम कंद लता प्रतान वाले हैं, वहाँ श्री वर्मा जी के कथन का मूल्य क्या हैं, पाठक स्वय विचार करें। यथा—

'सर्व एव तु विज्ञेया सोमाः पञ्चदशच्छया।
क्षीर कन्द लतावन्त· पत्रैर्नानाविधैस्मृता.॥" —सु० चि० २९

ऐसी दशा मे कुक्कुरमुत्ता गेंठो गुच्छी और एफिड्रा इस प्रकार के द्रव्यों को सविष या निर्विष भेद से उनका अपने ऊपर प्रयोग करना और सोमलता का अनुभव लिखना उपादेय नहीं हे। पुन· अत पाठक इनके विचारो का स्वय अध्ययन करें और देखें कि जहाँ सोमलता का क्षीर सीधे पीने का कल्प लिखा है वहाँ पर सांवा और कोदो धान्य की पिट्ठी या मण्ड से युक्त मण्ड, श्वेत पेय मे कितना अतर है। पाठक स्वय निर्णय करलें।

वैदिक सोम और सहिताकालीन सोम पाठा नही हे। सोमवल्ली से गुडूची, बाकुची, खदिर, कट्फल, अरिष्टक, ब्राह्मी इनका पर्याय मानकर यदि कहा जाता कि यह सोम हैं तो एक विचारणीय स्थिति भी आती है, किंतु पाठा जिसके पर्याय मे किसी कोशकार ने सोम या चद्रमा के पर्याय तक नही लिखे है उसे सोम मान लेना मेरी सम्मति मे समुचित विचार नहीं है। पाठा के गुणो मे वृष्या, विषघ्नी, त्रिदोष शमनि, अतिसार, शूलघ्नी गुण लिखे हैं। अत जिन पेयो का वर्णन वर्मा जी करते हैं उनमे उससे निर्मित रसों के सेवन करने से तत्काल कुछ स्फूर्ति मिलती हो तो कोई आश्चर्य नहीं हे।

अत वर्मा जी का सोमरस पर्वतीय जातियो का गृहपेय हे और उनकी सोमलता पाठा (अम्बष्ठा) है। सोमलता और सोमरस इस विषय मे अन्वेषण की आवश्यकता हे।

—विश्वनाथ द्विवेदी

सोमलता और सोमरस

सोमलता और सोमरस के विषय मे अनेक ग्रन्थों, पत्र-पत्रिकाओ मे चर्चा चलती रहती है। समय-समय पर विद्वान अपने-अपने मत व्यक्त करते रहते हैं। विषय की जानकारी के लिए कुछ विद्वानो के मत यहा भी लिखे जाते हैं। प्राय: इस विषय मे दो प्रकार की विचार-धारायें मिलती है, दोनो पर ही विचार कर लेना उत्तम है। प्रथम विचारधारा के विद्वान इस प्रकार लिखते हैं—

(१) प्रो० मैक्स मूलर—२५ अक्टूबर १८८४ के "एकेडेमी" मे लिखते हैं कि "सूत्रो और ब्राह्मणो मे यह बात मानी गई है कि सोमलता का मिलना बहुत कठिन है—"

(२) महाशय डाइमेस्टेटर महाशय—जन्दावस्था भाग १ पृष्ठ ६६ पर लिखते हैं कि "सोम या होम के अन्तर्गत समस्त प्रकार की वनस्पतियो की जीवनी शक्ति का समावेश होता है।"

(३) आचार्य श्री प० रघुनन्दन जी शर्मा "वैदिक सम्पत्ति" मे लिखते है कि—ऋग्वेद १०/३४/१, ६/४७/१ और १/६१/६, मे मोजवत, मधु, मदकारी और वनस्पति आदि शब्द जो सोमरस के लिए है, वे असमजस्य मे डालने वाले हैं। सोम समस्त वनस्पतियो की जीवनी शक्ति का नाम है। वनस्पति की जीवन शक्ति चन्द्रमा के आधीन है, उसका ही नाम सोम है। वह औषधिराज है व लता रूप है। १५ दिन तक उसमे १-१ पत्ता बढता है और १५ दिन तक १-१ पत्ता घटता है, यह शान्त चित्त वालो के लिए मधुर-विरहयियो के लिए कटु, युवावस्था के लिए मदकारी है। आकाश मे जिस स्थान मे रहता है, उस स्थान को मौजवन कहते है। ऋ० १/२२/२० मे सोम समस्त औषधियो के अन्दर व्याप्त बताया है। इस सोम को ऐतरेय ब्राह्मण ७/११/८ मे स्पष्ट कह दिया है कि "एतद् द्वै-देव सोम च चन्द्रमा" अर्थात् यही देवताओ का सोम है जो चन्द्रमा है।

गरुड और स्पेन किरणो का नाम है ये किरणे सोम (चन्द्रमा) का गुण पृथ्वी पर औषधियो, वनस्पतियो तक लाती हैं, यही सोम का पृथ्वी पर लाना है, याज्ञिक काल मे जिस प्रकार यज्ञो मे पशुओ का वध होने लगा उसी तरह से सोमरस नाम से किसी नशीली वस्तु का उपयोग होने लगा। सुश्रुत में सोम लाकर अध्वर-कल्प के अनुसार आहुति देना यह सब सिद्ध करता है आदि।

(४) श्री अम्बुभाई पुराणी, "सोम क्या है" नाम के अपने लेख मे लिखते है कि सोम औषधियो और वनस्पतियो मे बहने वाला रस है। छान्दोग्य उपनिषद में मानव के समग्र जीवन का वर्णन सोम भाग के रूप में किया गया है। इसे देवानाम अन्नय भी कहा गया है। मुण्डक उपनिषद मे "सोमो यत्र पवते यत्र सूर्य" कहा गया है।

ग्रीक मे अमृतत्व के पदार्थों का नाम है। "अम्ब्रोसिया" तथा केल्टिक मे इसका उल्लेख दिव्य जल के रूप मे आया है। सागर मन्थन की कथा मे सोम और वारुणी का अन्तर भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि करता है। वेद के अनुसार सोम घृत की तरह का कोई हुत द्रव्य था। यह वैदिक देवता और यज्ञ का नाम भी था। यह आनन्द का प्रतीक है। सोम शब्द "सु" धातु से बना है, जिसका अर्थ जन्म देना है। सोम सर्वज्ञ और सर्वभूमिकाओ मे प्रवेशकारी है। ऋ० ६।५६।१ मे तेजस्वी, ज्ञान रश्मि, सामर्थ्ययुक्त, शक्तिप्रवाह, और समस्त पदार्थो को जीतने वाला कहा गया है।

सकलित ऋचाओ के प्रमाणो से यह सिद्ध है कि सोम को मद्य या सुरा कभी नही कहा जा सकता। सोम को यज्ञ की सनातन काल से स्थापित आत्मा कहा गया है। ऋ० ८।८६।१० मे ज्योतिर्यज्ञस्य और देवानाम पिता कहा गया है आदि।

इस प्रथम विचारधारा मे बहुत से विद्वानो की इसी प्रकार की अपनी अपनी राय है, लेकिन सभी का समावेश उपरोक्त मे ही हो जाता है अत: इस विचारधारा को यही समाप्त करते हैं।

द्वितीय पक्ष की सम्मतियां

(१) महाशय पावगी "सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो" ऋ० १०।३४।१ का उदाहरण देकर सोम की उत्पत्ति मूजवान पर्वत पर बताते है। निरुक्ति मे भी "मूजवान पर्वतो पाठ है। सुश्रुत मे मुन्जवान सोम का पर्याय लिखा है। तो वेद के मौजवत, निरुक्त के मूजवान और सुश्रुत के मुन्जवान शब्द विचारणीय हैं।

महाशय पावगी "आर्चा वर्तातील-आर्यांची जन्म भूमि" के पृष्ठ २१४ पर ब्राह्मण का वाक्य "दिवि वै सोम

आसीत्" अर्थात् दिवि ही सोम था, कहते हैं। आगे लिखते हैं कि "ह्यावारुन असें दिसतें, कि सोम हा प्रथमत स्वर्गानि होता, परन्तु ते थून त्याला भूतला वर आणिले" अर्थात ऐसा ज्ञात होता है कि यह सोम पहले स्वर्ग मे से था परन्तु वहा से उसको पृथ्वी पर लाये। (मेरी राय से यहाँ स्वर्ग हिमालय के लिए और पृथ्वी शेष देश के लिए परिलक्षित होता है)।

(२) उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्य मन्त्री स्व० डा० सम्पूर्णानन्द जी अपने एक लेख "सोमसुधा" मे लिखते है कि वैदिक वाङ्मय मे सोम की चर्चा बराबर मिलती है। इतना तो स्पष्ट है। है कि यह लता थी, इससे बनने वाला रस छान कर पीते थे। इसमे किसी न किसी प्रकार का नशा होता था। यो उन दिनो मे सुरा का भी प्रचलन था, परन्तु सुरा और सोम मे यह बहुत बडा अन्तर था कि सोम को छान कर पिया जाता था और सुरा जौ या चावल से उसी प्रकार बनाई जाती थी जिस प्रकार आजकल बनाई जाती है।

आर्य ही नहीं प्रत्युत आर्यो की दूसरी शाखाओ मे भी सोम रस पीने का रिवाज था, पारसियो की गाथाओ से ऐसा विदित होता है। जरथुश्त्र ने सोम (होम) को बन्द करना चाहा था परन्तु यह बात मानी न जा सकी और उसको अपना आदेश वापिस लेना पडा।

सोम की महिमा देखकर कई पाश्चात्य विद्वानो ने यह मत स्थिर किया है कि आर्य नशे के लालची थे और उनको नशा इतना प्यारा था कि उन्होने सोम को उपासना का पात्र बना डाला।

मेरा विश्वास है कि सोम का सग्रह जिस मादकता के लिये होता था वह उस प्रकार का नहीं था जैसाकि मद्य या [illegible] जैसी चीजो से प्राप्त होती है। सोमरस का [illegible] पर तथा चित्त पर इस प्रकार का कोई हानि [illegible] नहीं छोडता जैसाकि शराब व मद्य के फल [illegible] है।

(३) [illegible] श्री वेद प्रकाश जी विद्यार्थी 'वैदिक कालीन [illegible]" नामक अपने एक लेख मे लिखते है कि [illegible] अध्ययन से ऐसा पता चलता है कि [illegible] अनेक दिव्य औषधियाँ थी, जिनके सेवन से [illegible] प्राप्त होता था। उसी प्रकार [illegible] सोम है। यज्ञ आदि मे सोम की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। आज तक सोमरस से सुरा (मद्य) का बोध किया जाता रहा है, जो भ्रमात्मक प्रतीत होता है। सोमरस बनाने का तरीका व अनुमान से सिद्ध होता है कि यह सुरा नही है। मनुस्मृति मे सुरापान करने वाला पापी समझा जाता था।

सोम रस को तैयार करने के लिये जल, पाषाण, का उपयोग होता था, सोमरस रखने के लिये ३२ सेर वाला कलश का उपयोग किया जाता था और अगुलियो से मसल, छानकर शुद्ध बर्तन मे रखा जाता था।

सोमरस पीने से स्फूर्ति बढती है, प्रातः काल सोम रस का सेवन अधिक गुणकारी समझा जाता था। यह बलदायक, कल्याणकारी है। इससे जीवनीय शक्ति बढकर मनुष्य पराक्रमी बनता है।

चरक, सुश्रुत, भाव प्रकाश, राजनिघण्टु, शालिग्राम निघण्टु, मदनपाल निघण्टु आदि ग्रन्थो मे सोम को लता रूप मे माना है। सोम की लता हरे वर्ण की होती है।

(४) श्री डा० त्रयम्बक नाथ शर्मा शास्त्री जी अपने एक लेख "वैदिक कालीन सन्धानीय पेय" मे लिखते हैं कि सुश्रुत सहिता मे सोम के अनेक भेद होने से उनके पर्यायो मे सदिग्धता है। सोम शब्द चन्द्रमा, अमृत, किरण, कपूर, जल, वायु आदि अर्थों मे पुल्लिग है। रक्त चन्दन, काञ्जी अर्थो मे नपुन्सक लिंग है। ब्राह्मी, सोमराजी आदि मे स्त्रीलिंग है।

दुग्ध के वर्णन मे इसके रस का दुग्ध जैसा होना हो सकता है। सोम और सुरा मे भिन्नता करने के लिये सोम को पुरुष और सुरा को स्त्री कहा गया है, पुमान वै सोम, स्त्री सुरा–तैत्तरीय ब्राह्मण १।३।३।४ कुशादि के छानने के बाद और पीने से पहले–कुवल, कर्कन्धु, बदर चूर्ण स्वाद के लिये मिलाया जाता था, कात्यायन स्रोत सूत्र १४/१ मे सोम के सन्धान रक्षण का उल्लेख है। सोम रस बनाते समय अलग से जल व श्यामक के आटे का प्रक्षेप किया जाता था। वेदों मे अनेक सन्धानीय पेयो का वर्णन मिलता है उनमे सोमरस भी एक सन्धानीय पेय है। इसकी सन्धान क्रिया प्रकाशरहित स्थान मे महावीर नामक विशाल घटक मे की जाती थी। सन्धान काल मे वैदिक ऋचाओ का उच्चारण किया जाता था जिससे उसकी लोकप्रियता तथा पवित्रता लक्षित होती है।

(५) श्री एन-सी शाह अपने एक लेख 'क्या सोम मिल गया है" मे लिखते है कि सोम की खोज अनादि काल से चली आ रही है। सोम के लिए आज तक सौ से अधिक वनस्पतियो के नाम लिए जा चुके हैं, फिर भी इन्हे सर्व सम्मति से सोम नही माना गया। सोम का वर्णन ऋग्वेद मे १४४ से भी अधिक मन्त्रो मे किया गया है। इसका आकार, रूप, सम्बन्ध ऋग्वेद में नही मिलता परन्तु इसके गुण, स्तुति, बनाने की विधि, प्राप्त स्थानो का वर्णन मिलता है।

(६) डा० एट किन्सन ने "एफेड्रा पेचीक्लाडा" को जिसे हरीरूद घटी से हूम या पहूमा कहते हैं को सोम माना है।

(७) डा० वोर्न मूलर "एफेड्रा डिस्टाच्चा" को सोम मानते ह।

(८) डा० वाट ने "सरकोस्टेमा विमिनेलिस" को सोम कहा है।

(९) डा० श्री नाना भाई जी ने "सारकोस्टेमा एसिडियम" को सोम माना है।

(१०) डा० रुस्तम जी भी "सारकोस्टेमा एसिडियम" को ही सोम मानते हैं।

(११) डा० चोपडा ने "गिलोय" को सोम स्वीकार किया है। गिलोय को अन्य भी कितने ही विद्वान सोम मानते हैं।

(१२) डा० मायर्स "एफिड्रा वोल्गा" को सोम मानते है।

(१३) डा० चुनेकर भी "एफिड्रा वोल्गा' को ही सोम मानते हैं।

(१४) डा० श्री जे० एस० श्रीवास्तव भी "एफिड्रा वोल्गा" को ही सोम मानते हैं।

(१५) कुछ विद्वानो की राय में "भाग" (विजया) ही सोम है जिसे नशे के लिए घोट छानकर पिया जाता है।

(१६) कुछ विद्वान "हरमल" को सोम मानने का आग्रह करते हैं।

(१७) डा० नारायण स्वामी "सिरोपिजिया" जाति की वनस्पतियो को सोम स्वीकार करते है।

(१८) डा० उस्मान अली भी "सिरोपिजिया" जाति की वनस्पतियो को सोम कहते है।

(१९) भारत के वअन्य बहुत से विद्वानो ने "एफिड्रा पेचीक्लाडा" व इससे सम्बन्धित जिनसे "इफेड्रीन" नामक सत्व प्राप्त किया जाता है की जातियो की वनस्पतियो को सोम स्वीकार किया है।

(२०) पोरबन्दर के प्रसिद्ध विद्वान श्री जयकृष्ण इन्दु जी कच्छ प्रदेश मे उत्पन्न आक (मदार) के वर्ण की २ वनस्पतियो "सारकोस्टेमा ब्रावस्टिग्मा" व दुधाची सीप "पेरीप्लो काफेल्ल" की तरफ सोम होने का सन्देह करते हैं।

(२१) कुछ यूनानी विद्वान रसोन (लहसुन) को भी सोम मानते है ऐसा श्री विश्वेश्वर दयालु जी का मत है। जो उन्होने अनुभूत योग माला के वनौषधि विशेषाक मे व्यक्त किया है।

(२२) अमेरिका निवासी डा० रिचर्ड गार्डन वासन ने "कुक्कुरमुत्ता" को सोम कहा है, यह कुक्करमुत्ता ६ या ७ इन्च के घेरे वाली लाल रग की सफेद व लाल धब्बे वाली चीड व देवदारु के वनो मे प्राप्त होती हैं। इसके टुकडे खाने से १५ या २० मिनट वाद नीद आने लगती है, रगीन दिवा स्वप्न आने लगते है। कभी-कभी इसके खाने वाले अद्भुत शारीरिक कार्यों का प्रदर्शन करते हैं आदि आदि।

कुक्कुरमुत्ता (छत्री) पर टिप्पणी— गत वर्ष अगस्त सितम्बर मे इस कुक्कुरमुत्ता की छान बीन के लिए भकरोता व हैनोडी के देवदार व चीड के जगलो में मैं स्वय घूमा हू। वहाँ अनेक किस्म की कुक्कुरमुत्ता मुझे देखने को मिली। इसी बीच घूमता हुआ मैलाड पट्टी मे निकल गया। वहा भागडे का प्रसिद्ध मेला जो प्रति १२ वर्ष बाद होता है चल रहा था। इसमे अपने इष्ट देवता को जमुना नदी मे स्नान कराने ले जाया जाता है और बहुत सख्या मे आदमी इकट्ठे होकर धूम-धाम से चलते है। मैं भी इसमे सम्मलित हो गया जिससे विसोईया, छोटा बडा खुन्ना, क्वासा, दूह्ना, कान्डोइय्या, उवौका, क्यारियाँ आदि गाव मे घूमने के साथ-साथ वहाँ के काफी

लोगो मे कुक्कुरमुत्ता के विषय मे पूछताछ करने का मौका अच्छा लग गया।

वहा डाक्टर वासन के लक्षणो वाली कुक्कुरमुत्ता जगलो मे खूब मिल जाती है। इसके ३ प्रकार हैं–विल्कुल सफेद, विल्कुल लाल, व सफेद जिस पर लाल निशान होते हैं। तीनो ही की दो किस्म होती हैं एक जहरीली दूसरी विना जहरीली। विना जहरीली को स्थानीय निवासी उवालकर आलू के साथ सब्जी वनाकर खाने के काम लाते हैं। इसे वहाँ के निवासी "कुरेड" कहते हैं।

प्रकार की कुक्कुरमुत्ता और होती है जो चीड और देवदार के पुराने पेड की मूल (जड) पर ही उत्पन्न होती है। इसकी शक्ल हाथ के पजे जैसी अगुलियो सह होती है। यह ऊपर से सफेद, मूल लाल होती है। यह भी जहरीली और विना जहरीली होती है। विना जहरीली की सब्जी भी उपरोक्त के अनुसार वनाई खाई जाती है लेकिन इस किस्म की सब्जी सबसे उत्तम समझी जाती है। वहाँ के निवासी इसे "चियाँऊ मियाँऊ" के नाम से पुकारते हैं।

एक और प्रकार की वहुत वडे आकार की कुक्कुर मुत्ता इन देवदार चीड, के जगलो मे कही-कही मिलती हैं टोकरी जैसी यह भी लाल, सफेद व सफेद लाल धब्वो वाली, इसमे लाल व लाल धब्वो वाली अधिकतर जहरीली होती है। विना जहरीली विशेषत सफेद कुक्कुर मुत्ता की सब्जी वही आलू के साथ वनाकर खाने के काम मे लाया जाता है। इसे वहाँ स्थानीय निवासी "पिटा छत्री" के नाम से पुकारते है।

किसी भी प्रकार की कुक्कुर मुत्ता सब्जी के लिये लाने, उखाडने से पहले छोटा टुकडा तोडकर चख लिया जाता है, जहरीली को छोडकर शेष को तोड कर घर मे लाया जाता है। घर मे भी सब्जी वनाने से पहले हर एक का छोटा टुकडा फिर दोवारा चख कर देख लिया जाता है तव सब्जी वनाई जाती है।

सभी किस्मो मे जहरीली पहचानने के लिये चखा जाना वहुत जरूरी है। जो जहरीली होती है उसका स्वाद कडवाहट लिये हुए मिर्च जैसा तीखा होता है यही जहरीली की पहचान है।

तीनो ही प्रकार की सब्जी मेरे आग्रह पर मेरे लिये वनाई गई, मैंने खाई जो उत्तम-स्वादिष्ट लगी। वर्षा ऋतु मे वहाँ वहुत उत्पन्न हो जाती है।

एक जगह यह भी सुनने मे आया कि एक वार किसी गाव के एक घर मे भूल से जहरीली कुक्कुर मुत्ता की सब्जी वन गई। जिस जिसने वह सब्जी खाई वे स्वर्गवासी हो गये और उस घर का सव सामान देवता के मन्दिर मे अर्पण किया गया। यह किवदन्ती वहुत पुरानी वताई गई।

आप वीती—पर्वतीय पर्यटन के वाद जहरीली किस्म की थोडी थोडी मैं अपने साथ लेकर घर आया लेकिन रास्ते मे कई दिन लग गये जिससे वहुत सा हिस्सा गला सडा सा होकर विगड गई, एक का मुर्झाया सा कुछ हिस्सा वीच मे ठीक निकला। उसीको अपने वचाव की पूरी सावधानी के साथ तैयारी करके इस प्रकार प्रयोग अनुभव के लिये किया—

प्रथम लगभग ३ माशे का टुकडा चवा चवा कर खाया, खाने मे वही कडवी मामूली सी, तीखी कुछ तेज चरपराहटदार लगी, फिर निगल गया। निगलने के वाद मे जिह्वा व गले में चुनचुनाहट सी लगती रही, करीव आध घन्टे के वाद आखे चढी चढी सी भारी मालूम दीं, इसके वाद करीव ६ माशा फिर चवाई और निगल गया। वही कडवी वहुत कम, चरपरी सी तीक्ष्णता, अवकी वार निगलने के वाद जिह्वा ऐसी हो गई जैसी कच्चा आलु चवाने से हो जाती है फटी फटी सी, थोडी देर वाद गला रून्धने सा लगा जैसे काटो की चुभन होती है, थोडी देर वाद मामूली सा जी मिचलाया, उल्टी नही हुई, होठ भारी-भारी से लगने लगे मानो सूज गये हो जवकि सूजे नही थे, होठो के किनारे फटे फटे से लगने लगे, एक दम वहुत तेज चक्कर सा क्षण भर के लिये आया। फिर ठीक मुझे ऐसा लगा मानो मेरा मुंह, होट, आखे सव सूज गई हो भारी-भारी, माथा और होट, सवसे भारी लगे, देह हल्की मामूली सुस्त सी हुई, मजे से वोलता चालता रहा, फिर एक घूट देशी घी की पी गई, थोडी देर वाद १ घूंट घी की और पी। दूसरी घूंट घी की पीने के वाद, कलेजे मे जलन के साथ चक्कर सा आया और जी

मिचलाकर एक उल्टी झागदार हुई, अब मेरी आंखें लाल सुर्ख हो गई थी। शरीर मे थोडी बैचेनी सी मालूम दी। मैंने एक घूंट घी की और पी। इस बार घी के साथ शिवावटी (हरड़ ४ भाग+जमालघोटा १ भाग की बनी गोली) की एक गोली पीसकर ली ही थी कि एकदम झागदार हरे पानी की उल्टी हो गई थोडी देर बाद फिर उल्टी हुई, इनके बाद पेट मे तेज दर्द के साथ एक और उल्टी हुई। इन उल्टियो मे देह में बहुत कमजोरी सी मालूम दी और जो पहले बिल्कुल नही थी। प्यास भी बहुत लगने लगी, तब मैंने ४ या ५ पत्ते गिलोय के हरे घुटवाकर चीनी मिलवा कर एक गिलास शर्बत बनवाकर पिया, इससे मुझे बडी शान्ति मिली, शाम हो चली थी। भूख न होने पर भी एक गिलास चावलो के माढ मे थोडा नमक और १ छटाक घी मिलाकर पीया गले की जिह्वा की दाह शान्ति निमित्त पिया। फिर रात को १ गोली उपरोक्त शिवा वटी पीस+ग्लूकोज मिला ताजे पानी के एक घूंट के साथ ली, मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि मैंने अपने बचाव की पूरी तैयारी कर ली थी, अतः मेरी देख रेख के लिए वैद्य शोभाराम जी व डा०जयसिंह जी व वैद्या विमला देवी आदि मेरे पास थे ही, देह में जरूर कमजोरी सी थी लेकिन मन मेरा आरम्भ से ही स्वस्थ रहा, फिर भी बिना जरूरत के २ मि लि. का एक सूचि-वेध कोरामीन का रात के १० बजे किया गया, मेरे पास रहने वालो को हिदायत थी कि नीद आने पर मुझे सोने न दिया जाये अत समय पास करने के लिये कभी इधर की कभी उधर की बाते, गप-शप और कभी-कभी श्री गजाराम जी मिस्त्री द्वारा भजन बीच-बीच मे हो जाते, रात मे ४ दस्त पतले खूब हुए रात भी बीत गई फिर कोई दस्त नही हुआ। अगले प्रात घी खिचडी और करीब एक सप्ताह तक मूँग की दाल की खिचडी, मूँग की दाल, फुलका, घी आदि खाता पीता रहा। वैसे सब ठीक रहा लेकिन पहाडी चढाई उतराई के सफर की थकावट से, या शिवावटी (जयपाल युक्त होने के कारण) अथवा कुक्कुरमुत्ता के विषैले होने से उल्टी, दस्तो के कारण एक तो शरीर मे कमजोरी बहुत आगई थी, दूसरे पेट मे दुःखन रहने लगी, कभी-कभी हल्का २ ज्वर भी रहने लगा था, करीब १ सप्ताह बाद मक्का के भुने दाने चबा लिये गये, तो पेचिस लग गई थी जिसने भी ३ या ४ दिन खूब ही सताया। कुल मिलाकर लगभग डेढ़ महीना अस्वस्थ और बीमार सा ही बना रहा फिर धीरे-धीरे स्वस्थ हो गया।

मैंने कुक्कुरमुत्ता का अपने शरीर पर प्रयोग करके महसूस किया कि जिस प्रकार अन्य विष, उपविष ज्यादा या थोडी मात्रा मे सेवन करने से अपने लक्षण, प्रभाव प्रकट करते हैं। यह भी उसी प्रकार अपना प्रभाव करता है। यह कुक्कुर मुत्ता का क्षुप भी एक प्रकार का विष ही है।

ऐसी जहरीली औषधि को आर्य रात-दिन के प्रयोग मे लाते रहे हो यह एक विडम्बना मात्र है। दिवास्वप्न की कल्पना मृत्युद्वार खट-खटाने का रास्ता है। अद्भुत शारीरिक कार्यों का प्रदर्शन तो भाग के नशे मे क्या कम है जो कभी हँसाता कभी रुलाता भी है। क्या यही अद्भुत प्रदर्शन है। क्या भारतीय आर्य दिवास्वप्न और अद्भुत प्रदर्शनो के लिए सोमरस पीते थे? अद्भुत प्रदर्शनो के लिए क्या योग की क्रियाये कम हैं? देखिये तो सही बाजीगर गली-गली कैसे-कैसे तमाशो का अद्भुत प्रदर्शन करते हैं? मैस्मेरिज्म और हिप्नोटिज्म वाले क्या कम अद्भुत प्रदर्शन करते हैं? क्या सब कुक्कुरमुत्ता पीते हैं। नीद लाने के लिए भांग, धतूरा, जैसी हजारो वनस्पतियाँ देश के कोने-कोने मे बिछी पडी है। क्या कुक्कुरमुत्ता पर ही आर्य अपने जीवन को निछावर देते थे।

कहाँ कुक्कुरमुत्ता कहाँ दैनिक जीवन मे नित्य प्रयोग होने वाला सोम, इतना निर्विष कि एक दिन का बच्चा भी पिये कोई हानि नही, मा के दूध के समान निर्मल, बच्चा जवान, बूढा, औरत, मर्द, रोगी, स्वस्थ सबके लिए महान उपयोगी पेय, सहस्रो जीवन तत्वो से युक्त, देवता तुल्य, यज्ञ की आत्मा है सोम। आयुवर्द्धक, शक्तिवर्द्धक, रक्त शोधक, रक्तवर्द्धक, काम करने का उत्साह, हौसला बढाने वाला है सोम। मेरी राय मे डाक्टर वासन की कुक्कुर मुत्ता मात्र वासन की कल्पना और सोम की खोज का ढोंग है। यदि यह खोज स्वीकार करली जाये तो अनुचित और अन्यायपूर्ण होगा।

वासन की कुक्कुरमुत्ता सोम का स्थान कभी नही ले सकती, इसमे एक भी सोम का लक्षण, प्रभाव, गुण,

आकार,प्रकार नही है। सोम लता रूप मे होती है, शास्त्रो मे लता रूप लिखा गया हे। उन्हे हमारे शास्त्रो का अध्ययन करके देखना चाहिए, मेरी सोम के अन्वेषक विद्वानो से प्रार्थना है कि कुक्कुर मुत्ता को सोम मानकर दिवास्वप्न के लालच मे जीवन के स्वप्न ही नही गवा देना क्योकि वासन की कुक्कुरमुत्ता एक विषयुक्त क्षुप है, भले ही किसी रोग विशेष मे औषधि रूप मे इसका उपयोग होता हो, या हो सकता हो,परन्तु सोम जैसी निर्विष नही। यह सोम का स्थान कभी नही ले सकता। सोम का इसमे न कोई लक्षण है न कोई गुण।

सुश्रुत और सोम पर एक दृष्टि

सुश्रुत सहिता, चिकित्सा स्थान के स्वभाव व्याधि प्रतिषेधनीय नामक अध्याय २६ मे सोम का वर्णन किया गया है। श्री सुश्रुताचार्य लिखते हैं कि सोम वास्तव मे एक है परन्तु स्थान, नाम, आकार, वीर्य की भिन्नता से चौबीस प्रकार का हो जाता है। सब सोमो के सेवन की विधि और गुण भी समान ही है। २४ प्रकार ये हैं—

अंशुमान मुञ्जवांश्चैव चन्द्रमा रजत प्रभ।
दूर्वा सोम' कनीयाश्चश्वेताक्ष कनक प्रभ॥
प्रतानवास्तालवृन्त• कर वीरोऽशवानपि।
स्वय प्रभो, महासोमो यश्चापि गरुडा हृत॥
गायत्र स्त्रैष्टुभ पाङ्क्तो जागत शास्वरस्तथा।
अग्निष्टोमो रैवतश्च यथोक्त इति सज्ञित॥
गायत्र्या त्रिपदा युक्तो यश्चोडुपति रुच्यते।
एते सोमा समाख्याता वेदोक्तैर्नामभि शुभैः॥

१ अंशुमान, २ मुञ्जवान, ३. चन्द्रमा, ४. रजत प्रभ, ५ दूर्वासोम, ६ कनीयान, ७ श्वेताक्ष, ८ कनक प्रभ, ९ प्रतान वान, १० ताल वृन्त, ११ करवीर, १२. अंशमान, १३ स्वय प्रभ, १४ महासोम, १५. गरुडाहृत, १६ गायत्र, १७ त्रैष्टुभ, १८ पाङ्क्त, १९ जागत, २०. शाम्वर, २१. अग्निष्टोम, २२. रैवत, २३ गायत्र्या, २४ त्रिपदा, २५ उडुपति।

नोट—सुश्रुत सहिता, अनुवादक श्री अत्रिदेव जी गुप्त ने उपरोक्त श्लोको का अर्थ करते हुए जो नाम लिखे हैं वे सख्या मे २५ हैं जैसा कि हमने ऊपर सख्या मे दिया है। मेरे विचार मे गायत्र्या + त्रिपदा मिलकर एक नाम होगा तब ही सख्या मे २४ होते हैं या फिर अगर गायत्र्या + त्रिपदा को अलग-अलग माना जाय तो गायत्र और गायत्र्या को एक अर्थ मे माना जाय तब २४ होते हैं।

विशेष मन्तव्य—सुश्रुताचार्य सोम एक है कहते हैं लेकिन फिर २४ प्रकार का बताते है इसको बहुत से विद्वान सन्देह की दृष्टि से देखते है और बहुत से विद्वान २४ प्रकार की सख्या को सोम या चन्द्रमा का पर्याय मानते हैं प्रकार नहीं मानते। प्रकार और पर्याय मे अन्तर है।

सन्देह का कारण

(१) आचार्य ने जो २४ प्रकार लिखे हैं उन्हे वेदोक्त कहा है। वेदो मे इस प्रकार २४ नाम के प्रकार किसी द्रव्य स्थल पर नही आये।

(२) वेदो और आयुर्वेद के ग्रन्थो, स्वय सुश्रुत भी सोम को लता होना बताते है परन्तु इन २४ प्रकार मे से कई औषधियां क्षुप के रूप की और कुछ तो बड़े पौधो के रूप की हैं जैसे'कनक प्रभ' नाम की औषधि बड़े बड़े पेडो के रूप की है जिसे दारू हल्दी कहते हैं। इसका सोम रस बनाने मे आदि काल से उपयोग हुआ है।

(३) सोमलता का नामकरण चन्द्रमा के शीतल गुणो के कारण हुआ होगा ऐसी हमारी मान्यता है। चन्द्रमा के पर्यायो मे सोम और सोम के पर्यायो मे चन्द्रमा वेदो मे स्थान स्थान पर आया है। उडुपति भी चन्द्रमा का ही एक पर्याय है। सुश्रुत के २४ प्रकारो मे चन्द्रमा और उडुपति दोनो सख्या मे सम्मलित है। अगर चन्द्रमा और उडुपति को एक सोम का पर्याय मानले तो २४ प्रकार की सख्या मे कमी आकर २३ प्रकार ही रह जावेंगे। फिर उडुपति और चन्द्रमा नाम की वनस्पति होना किसी अन्य अथवा सुश्रुत मे ही अन्य स्थान पर देखने मे नही आती। अंशुमान भी चन्द्रमा का पर्याय ही है।

(४) सुश्रुत के २४ प्रकारो मे गायत्र, गायत्र्या, त्रिपदा, ये तीन प्रकार ऐसे है जो सोम के प्रकार या पर्याय के रूपमे अन्य किसी ग्रन्थमे देखने को नही मिलते। हमारी सम्मति मैं ये तीनो प्रकार त्रिपदा गायत्री के अलावा कुछ नही। अगर इन तीनो को २४ प्रकार मे से निकाल दे तो २१ प्रकार के ही रह जावेंगे।

लोक मे सोम रस बनाते समय, पीते समय मन्त्रो-

च्चारण किया जाता था। जिससे इसकी पवित्रता, लोकप्रियता लक्षित होती है। वैसे भी सोम को यज्ञ की आत्मा कहा गया है। यज्ञो मे सोम की उपासना की जाती थी, उपासना मे अन्य ऋचाओ के साथ त्रिपदा गायत्री का उच्चारण विशेष महत्व का है। स्वय सुश्रुताचार्य चिकित्सा स्थान के अध्याय २८ के श्लोक २५ मे लिखते हैं कि जहाँ अन्य मन्त्रो का विधान नहीं किया वहा सब स्थानो मे तीन पद वाली गायत्री का पाठ करना चाहिए— लिखा है। आचार्य प्रवर ने यहाँ २४ प्रकार मे भी खीच तान कर सोम प्रकार में ले लिया है, इन नामो की कोई वनस्पति नही होती। गायत्र, गायत्र्या, त्रिपदा, गायत्री मन्त्र के अर्थ मे है सोम प्रकार मे नही।

(५) महासोम भी तीव्र सोम का पर्याय मात्र है। तीव्र सोमरस बनाने का विधान शास्त्रो मे है जिसका वर्णन हम भी आगे प्रकरण अनुसार करेंगे। महा सोम नाम की वनौषधि कोई नही होती। आचार्य ने भ्रमवश लिखा है। महा सोम भी प्रकार नहीं पर्याय मात्र है। उसे तीव्र सोम की सज्ञा मे मानना चाहिए।

(६) २४ प्रकार मे एक प्रकार अग्निष्टोम भी लिखा गया है। सोमरस को भी हुत द्रव्य माना जाता है, यज्ञ मे सोमरस की आहुति देना वेदोक्त है, यज्ञ को 'अग्नि होम" भी कहा जाता है, सुश्रुत कथित अग्निष्टोम, अग्नि होम के सिवाय अन्य कुछ नही।

शेष जो सोम के प्रकार आचार्य ने लिखे है वे सोमरस बनाने के काम मे आने वाली औषधिया है।

प्रकार नहीं, पर्याय भी नहीं, योग है—स्थानभेद से नाम चाहे जितने हो परन्तु सोम एक है, सोमरस भी एक है। सोमरस बनाने के लिए कई औषधियो को सयुक्त कर प्रयोग मे लाया जाता है। उन्ही औषधियो को आचार्य ने लिखा है, तो मेरी सम्मति मे आचार्य ने सोम के जो २४ प्रकार लिखे हैं, जिन्हे कई विद्वान पर्याय मात्र मानते हैं वे न तो पर्याय हैं और न प्रकार बल्कि सोमरस बनाने का योग है। वैसे ही जैसे शास्त्रो मे अनेक प्रकार के आसव,अरिष्ट, चूर्ण, वटी आदि के योग है। यह भी सोम रस बनाने का योग मात्र है। इस योग को सोमकल्प या सोमरस कल्प भी कह सकते हैं।

सोमकल्प—सोमकल्प यह शब्द बगाल की ओर अधिकतर प्रयोग मे होता है। हमारे विचार से सोमरस कल्प ही कालान्तर मे सोमकल्प रह गया होगा। आजकल सोमकल्प नाम से एक वनस्पति जिसका क्षुप होता है। ग्रहण किया जाता है जिससे इफेड्रीन नामक सत्व प्राप्त किया जाता है और इसकी अनेको जातियाँ होती हैं। औषधि प्रयोग के लिए यह क्षुप बहुत महत्व का है या हो सकता है। परन्तु किसी पेय के रूप मे ससार के किसी हिस्से मे इसका उपयोग नही होता। आर्य रात-दिन के प्रयोग मे लाने के लिए इसका कोई रस बनाकर प्रयोग मे लाते रहे हो यह असम्भव ही है। आजकल प्राय सोम का नाम आते ही विद्वान इस सोमकल्प की ओर ही अपनी दृष्टि दौडाते हैं। यहाँ तक प्रथम वर्णन वेदोक्त सोम का करते हैं परन्तु बाद मे परिचय इस सोमकल्प का देते हैं जो वेदोक्त सोम के साथ अन्यायपूर्ण और असगत है।

त्रिवृतमागार—आचार्य सुश्रुत ने सोम रस को ३ खण्ड वाले मकान मे सेवन के लिये लिखा है, हमने स्वय ऐसे मकान बडी तादाद मे देखे है, जो लोग और जो जातियाँ आज भी रात दिन के उपयोग मे सोम रस का उपयोग करती है उनके प्राय तीन खण्ड वाले ही मकान होते है। वैसे भी पूरे भारत मे प्राचीन समय से ही तीन खण्ड वाले मकान बनाने की प्रथा है, पीछे की कोठरी थोडी चौडाई (बाम्बे) की और आगे की कोठरी भी थोडे बावे की होती हैं। लेकिन बीच का मकान काफी लम्बा चौडा होता है जिसे दुकडिया भी कहते हैं, प्राय. अधिक मात्रा मे इस बीच के मकान मे ही सामूहिक रूप मे सोम रस का प्रयोग नित्य होते हमने स्वय देखा है।

पात्र—सोम रस को आचार्य जी ने सोने या चादी के पात्रो मे पीने को लिखा है। अधुना कुछ बडे घरानो मे चादी की कटोरियो का उपयोग सोम रस पीने के लिये आजकल भी होता है, परन्तु शादी, त्यौहार आदि उत्सवो मे जब सामूहिक सोम का सेवन किया जाता है तो बडे-बडे कासी के बेलो का उपयोग होता हमने स्वय कई बार देखा है, वैसे भी महमानो आदि के लिये तो कासी पात्र को अच्छा माना जाता है। कासी के बर्तन भी चादी की तरह चमकदार और चादी से मजबूत, कम घिसने वाले, टिकाऊ होते है अत. सम्भव है कालान्तर मे चादी पात्रो के स्थान पर कासी के पात्र उपयोगी मान

कर प्रयोग मे लाये जाने लगे है। वैसे आजकल चीनी काच के पात्र भी उपयोग मे आते है। आचार्य ने सोम रस को एकदम पी जाने अर्थात् घूंट-घूंट करके न पिया जाने को लिखा है, तो अधिकतर इसके पीने वाले इच्छानुसार एकदम ही पी जाते हैं लेकिन यह कोई नियम नही। बहुत से जिन्हे कटु, मधुर स्वाद लेना होता है वे घूंट-घूंट करके भी पीते है।

आचार्य ने पीने से बचे हुए को जल मे डालने को लिखा हे, किसलिये, मात्र इसलिये कि इसे शूद्र लोग इकट्ठा करके सुरा बनाने के काम मे लाते होगे, सुरा बनाने मे भूठन का शोधन शूद्र लोग मानते होगे। क्योकि इस अध्याय २९ मे ही श्लोक १३ मे शूद्र को छोडकर शेष तीनो वर्णों को सोम पीने की आज्ञा दी है शूद्र को नही। तो शूद्र सोम की जगह सुरा का उपयोग सम्भवत करते हो।

आगे श्लोक १४, १५, १६, १७, १८, १९ मे १० हजार वर्ष युवा रहने और हजारो हाथियो का वल आने और इच्छित स्थानो मे भ्रमण करने वाला आदि लिखा है। हमारी राय मे यह या तो लोगो के हृदय मे इसकी उत्तमता की धाक जमाने के लिये लिखा है या अतिशयोक्ति से काम लिया है।

विशेष मन्तव्य— सुश्रुत सहिता, चिकित्सा स्थान के अध्याय २९ तथा ३० मे सोम प्रकार की जिन २४ औषधियो तथा अजगरी आदि १८ औषधियो का वर्णन किया गया है उन्हे पहिचाना नही जाता और न इन नामो से प्राप्त होती है और न इनका प्रचार ही है जबकि जिन स्थानो पर आचार्यों ने इनका होना वताया है उन स्थानो पर मानव पहले से ही आता, जाता रहा है, और निवास करता है।

वडे खेद की वात है आदि ग्रन्थ वेदो तक की-ऋचाओ को इन्सान अपने हृदयो मे छुपा-छुपाकर अब तक साथ लाता रहा कही भुला न सका लेकिन सुश्रुत की इन औषधियो को भुला बैठा। हमारी राय मे इन औषधियो को भूल जाने का कारण स्वय आचार्य ही है जैसा कि हमने सोम के २४ प्रकार के वर्णन मे कहा है। स्वय आचार्य एक सोम मान कर २४ प्रकार वताते हैं जो कि सोमरस कल्पना का एक योग मात्र है। दूसरे कुछ औषधियो के नाम उपमा से लिये है। जैसे २४ प्रकार के सोम मे कनकप्रभ भी एक प्रकार है—आचार्य मे सोने की प्रभायुक्त, ऐसी स्वर्ण जैसी आभायुक्त बहुत सी औषधियां है। हमारी लिखी आगे की सोमलता का मूल भी स्वर्ण आभायुक्त है जो रस बनाने के काम आता है। दूसरे दारुहल्दी तो एक दम स्वर्ण आभायुक्त है कई आयुर्वेद के ग्रन्थो के पर्यायो मे दारुहल्दी का पर्याय स्वर्ण द्युति, स्वर्णप्रभा आया भी है योग और प्रत्यक्ष रूप मे सोमरस बनाने मे दारुहल्दी का उपयोग हुआ भी है तो कनक प्रभ दारुहल्दी के सिवाय कुछ नहीं।

२४ प्रकारो मे एक प्रकार "कनीयान" है। सोमरस बनाने मे एक औषधि कारणोई प्रयुक्त होती है जो बडी तिक्त होती है। हमारी राय मे सुश्रुत की कनीयान कारणोई ही है।

एक प्रकार दूर्वा सोम है। दूर्वा आमभाषा का दुवडा अथवा दूब घास ही है। सोमरस बनाने की प्रक्रिया मे इसका उपयोग होता भी है और पूजा पाठ मे तो दूवडा उपासना का भागीदार है। कोई भी हिन्दू पूजापाठ हो देवी देवताओ के मस्तक पर दूवडा सबसे पहले चढाया जाता है।

मुञ्जवान मे भी इसी प्रकार है। सोमरस के बनाने मे, छानने मे मून्ज (भावड, दाभ) का विशेष उपयोग होता है। एक स्थान पर लिखा भी है—

कुश., काशा, वल्वजाश्च तथान्ये, तीक्ष्ण रोमशा.।
मोञ्जाश्च- शाद्वलश्चैव-षड् दर्भा सप्रकीर्तिता.॥

दूसरे मून्जी (धान) शब्द भी आमभाषा का प्रचलित शब्द है जिसका कि सोमरस बनाने मे उपयोग होता है तो हमारी राय मे सुश्रुत का मुञ्जवान, मून्ज और मून्जी से अलग कुछ नही। इसी प्रकार अन्य औषधियो के विषय मे भी जानना चाहिये।

प्राचीनकालीन पेयो की एक झलक

प्राचीनतम वैदिक साहित्य मे सोमरस आदि अनेक प्रकार के पेयो का वर्णन मिलता हे और इन पेयो का किसी न किसी रूप मे आदि से आज तक समाज मे प्रयोग परम्परागत होता चला आ रहा है, उसी को ग्रन्थ निर्देश के साथ यहाँ प्रकरणवश सक्षेप मे लिखा जाता है—

पेय का नाम	ग्रन्थ निर्देश
१ सोमरस	ऋ० ९/६१/१३, ८/२/२ सोम के गुणो का वर्णन ऋग्वेद के सम्पूर्ण नवम मण्डल मे, ब्राह्मण ग्रन्थो मे, आयुर्वेद के ग्रन्थोमे मिलता है।

पेय का नाम	ग्रन्थ निर्देश
२. तीव्र सोम	ताण्डव सहिता १८/५/८, ६, १०, ११
३. सोम सुरा अथवा सुरा	ऋ० ७/८६/६
४ मद्य	छान्दोग्य उपनिषद ३/५/११
५. मद	ऋ० १/२०/५
६. परिस्रुत	अथर्ववेद ३/१२/७
७. कीलाल परिस्रुत	काठक सहिता

विशेष मन्तव्य—सोमरस और तीव्र सोम मे औषधि योगो की समान योजना रहने पर भी बनाने का ढग भिन्न होने के कारण गुणो मे कुछ अन्तर आ जाना है।

सोमरस और सोमसुरा की भी औषधि योजना थोडे फर्क के साथ समान ही है परन्तु निर्माण का ढग एकदम भिन्न है। अत यह सोमरस से एकदम भिन्न है। सोमरस और सोमसुरा में भिन्नता प्रकट करने के लिए सोम को पुरुष और सुरा को स्त्री कहा गया है। यथा—पुमान वै सोम, स्त्री सुरा। —तैत्तिरीय ब्राह्मण १/३/३/४

शेष साधारण सुरा, मद्य, परिस्रुत, कीलाल परिस्रुत आदि पेय सम्भवत सुरा के पर्यायवाची ही हो। आयुर्वेदोक्त सजीवनी सुरा को जनसाधारण मे दवाई की सुरा कहते हैं।

सोमरस आदि पेयों के निर्माण मे काम आने वाले प्राचीनतम उपकरणो की एक झलक

सोमरस आदि अनेक प्रकार के पेयो के निर्माण करने के लिए प्राचीन वैदिक साहित्य मे अनेक प्रकार के उपकरणो का वर्णन मिलता है। उसे सक्षेप मे यहाँ लिखा जाता है—

उपकरण का नाम	ग्रन्थ निर्देश
१ अभिषवण, अभिषवणी, अभिषण, फलक	वाजसहिता १८/२१, अथर्व० ५/२०/१०
२ अमत्र (पीसने का उपकरण)(पीसने का पात्र)	ऋ० २/२४/१, ५१/४
३ उपलप्रक्षिणी	ऋ० ९/११२/३
४. कारोतर	ऋ० १/११६/७, शतपथ ब्राह्मण १२/९/१/२
५ कोश	ऋ० ९/७५/३, अथर्व० १८/४/३०
६ खारी	ऋ० ४/३२/१८
७. चर्म	ऋ० १/२०/६, १/११०/३
८ चूम्र	ऋ० ३/४८/५, ८/२/८
९. चर्मन	ऋ० १०/९४/९, १०/११६/४
१० तितऊ (छानने का उपकरण)	ऋ० १०/७१/२
११. त्रिकदक	ऋ० १/३२/३, २/११/१७
१२. पवि	ऋ० १/१६६/१०, वाज सहिता ४/३०
१३ पाज्य	ऋ० १/५६/६
१४. फलक	एतरेय ब्राह्मण ७/३०, शत० ब्रा० ३/३/४/९
१५ पवित्र (झरना, भेड के चर्म या ऊन से बनने वाली छलनी)	ऋ० १/२८/९
१६. महावीर (मण्डकी, मटका, बड़ा घड़ा)	वाज० स० १९/१४, शतपथ ब्राह्मण १४/१/२/९/१७
१७. अद्रि	ऋ० १/५१/३
१८. दृषद	ऋ० ३/३१/१
१९. ग्रावा	भज० २३/८
२० उलूखल (ओखल)	ऋ० १/२८/६, शत० ब्रा० १/१/४/६

२१ द्रोण कलश—घटक—घडे।

२२. मुञ्जघास (छानने का पात्र)।

२३ दशा (छानने के काम आने वाला कपडा, छलना)।

इस प्रकार बहुत से उपकरणो का वर्णन शास्त्रो मे आया है।

सोमलता के पर्याय

वेदोक्त नाम—सोमलता, सोमवल्ली, सोमवल्लिका, चन्द्र वल्लरी, यज्ञ वल्ली, इन्दु लेखा, धनुर्लता, गुल्म वल्ली, महागुल्मा आदि।

आयुर्वेदिक नाम अम्बष्ठा, अम्बष्टकी वरतिक्ता, प्राचीना, पाठा, पापचोलिका, एकाष्ठीला, रसा, पाठिका, पापचेली, कुचेली, कुचेला, छिन्न-वेधिका, अम्बष्टिका, स्थापनी, श्रेयसी, विद्ध कर्णिका, वृहत्तिका, शिशिरा, वृकीमालती, वरा, देवी, तिक्ता, विद्धकर्णा, अविद्धकर्णा, सुस्थिरा, प्रताविनो, वत्सादिनी, मालवी, त्रिशिरा, त्रिवृत्तपर्णी,

रक्तघ्नी, विषहन्त्री, वतपर्णी, महोजसी, रुपिष्या, दीपिनी, वरितका आदि ।

हिन्दी के नाम---पाढ, पाठा, पाढी, कालीपहाड, हड-जोरी, पारी, पाटकी, पाठनी, आदि ।

कालसी मैया, चकरौता आदि स्थानो के आस-पास जौनसार मे व इसके पास के अन्य पर्वतीय स्थानो मे इसे पाड कहा जाता है।

मेरठ, विजनौर, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, हरिद्वार व देहरादून के निचले भागो मे, हरियाणा मे दिल्ली के आस-पास के गाव मे इसे निर्बसी, निर्विसी, निर्वसी आदि कहा जाता है। (यह जदवार नही है)

वगाल मे – एकलेजा, पाठा आदि । वगाल मे इससे मिलती-जुलती एक लता, जिसे वडी पाठा, आकनादि पाठा, को भी पाठा कहा जाता है। इसके पत्ते सख्त मोटे होते हैं और इनमे से दूध निकलता है। वह इससे भिन्न है। इसीसे मिलती जुलती एक लता सोनलता नाम की भी होती है जो कि इससे भिन्न है।

मध्यप्रदेश मे–पहाड, पहाड मूल, पहाट वेल, पाडावल

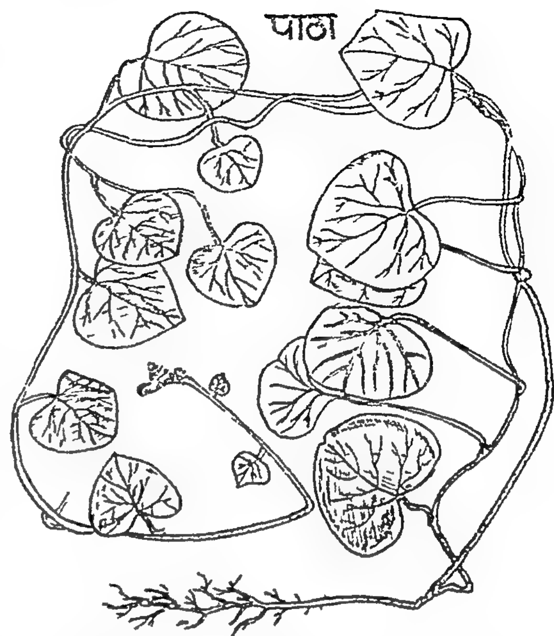
गुजरात मे–कालीपाट, कराडियु, वेणिवेल आदि

अग्रेजी मे – वह्ल वेटलीक, व्हलवेट, परासर आदि

लेटिन मे – सिसेम्पेलस परेरा कहते है। पठानकोट से आगे शाहपुर जिला कागडा के आस-पास इसे "भटिन्हू" नाम से जाना जाता है।

गोमन्तना गुडूची कुल की वेल है। यह वेल वृक्षो और झुण्डो के सहारे ऊपर चढने वाली और पृथ्वी पर फैलने वाली, हरे रग की होती है। इस वेल की शाखायें पतली, हरे रग की, चिकनी और मजवूत होती हैं। पत्र गिलोय के पत्र जैसे परन्तु छोटे एकान्तर हृदयाकृति के गोल १ से ५ इन्च व्यास के लम्बाई से चौडाई मे कुछ अधिक होते है। पत्रवृन्त (डण्ठल) लगभग १ से ४ इच तक लम्बा पत्र की पीठ की ओर लगा हुआ होता है।

यह वेल वर्ष भर अर्थात्, वारह महीने मिलती है, परन्तु वर्षा ऋतु मे खूब फैलती, फूलती, फलती है। वर्षा ऋतु मे ही हल्के ग्रीन वर्ण के छोटे छोटे गुच्छो मे मञ्जरियो पर फूल आते है। वर्षान्त मे छोटे-छोटे मटर जैसे गोल कच्ची दशा मे पीताभ हरे पकने पर पीलाई लिए हुए सुर्ख रग के सूक्ष्म गोलाई लिए हुए चपटे होते



है। वीज मुडे हुए सूक्ष्म होते है। मूल सूतली से लेकर १ इन्च या इससे भी मोटी जमीन मे वहुत गहरी गई हुई होती है। (महागुल्मा) (गुल्मवल्ली) जो फीके खाकी रग जैसी, पिलाई लिए हुए होती है। मूल को घिसकर छाल उतारने पर पीले रग की स्वर्ण आभा युक्त होती है।

चिकित्सा मे सम्पूर्ण वेल-पत्रो का और विशेषत मूल का अधिक उपयोग होता है। इसकी मूल को काटकर आधा से ४ इन्च तक के टुकडे कर सुखा दिये जाते हैं। सूखे टुकडे वाहर से भूरे वादामी रग के लम्वाई मे झुर्रीदार अन्दर से गिलोयवत् चक्राकार काष्ठमय पीलाई लिए भूरे रग के स्वाद मे प्रथम कुछ मधुर से वाद मे अत्यन्त कडवे होते हैं।

इस वेल का भिन्न-भिन्न नाम से चरक के स्तन्य शोधन, ज्वर-हर, सन्धानीय, तिक्त स्कन्ध, वमनोपग, तथा सुश्रुत के आरग्वधादि, पिप्पल्यादि, वृहत्यादि, पटोलादि, अम्वष्ठादि, मुस्तादि गणो मे उपयोग किया गया किया गया है। चरक सुश्रुत ही नही वल्कि आयुर्वेद के सभी ग्रन्थो मे अनेक रोगो के प्रयोगो मे विपद रूप से इनकी योजना की गई है।

रासायनिक सगठन के रूप मे इसकी मूल मे मेपीरीन, वेवीरीन, पैलोसीन, टेमोट्टीन, राल आदि सत्व पाये जाते है।

गुण—सोमलता (पाठा) लघु, तीक्ष्ण, तिक्त, कटु विपाक उष्ण वीर्य, त्रिदोष शामक, दीपन, पाचन, अनुलोमक, ग्राही, स्तन्य शोधन, दाह प्रशमन, बल्य, कटु, पौष्टिक, मूत्रल, व्रण रोपक, विषघ्न, निर्विसी, सगनसधानकारक, रक्तशोधक, कुष्ठघ्न, शोथहर है।

सोमलता अग्निमांद्य, अजीर्ण, अतिसार, उदरशूल, प्रवाहिका रक्तविकार, हृदय रोग, कास, श्वास, स्तन्यदोष, वस्ति शोथ, मूत्रकृच्छ्रता, अधोगत रक्तपित्त, शीत ज्वर, ज्वरातिसार, कण्डू, वमन, प्रसव पीडा, प्लीहावृद्धि, गर्भाशय विकृति आदि रोगो मे लाभदायक है।

प्राप्ति—सोमलता भारत मे प्रायः सभी प्राँतो मे, पथरीले जङ्गलो मे, पुराने खण्डहरो मे, रास्तो, सडको के किनारे के झाड झुण्डो मे विशेषत जहा मूंज (झावड विशेष) कास दाम होते है ऐसे स्थानो मे मिल जाती हैं।

सोमलता (पाठा) राजस्थान, सिंध, पजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि प्रदेशो मे, सिक्किम, भूटान, तिब्बत, नैपाल आदि समीपस्थ देशो के पर्वतीय खडो मे खूब होती है। सहारनपुर के शिवालिक पर्वत के वन खण्डो मे जैसे रानीपुर, धौल खण्ड, मोहन्ड, वादशाही वाग, शाकुम्भरा देवी आदि के स्थानो में उपलब्ध है। देहरादून के डाक पत्थर, कट्टा पत्थर, देव थल (देव स्थल), कालसी आदि के समीपस्थ जगलो, पर्वतो व कालसी से सैय्या, चकरौता की सड़क के किनारे के पर्वतीय जगलो मे खूब होती है। कालसी से वडकोट उत्तर काशी जाने वाली सडक के किनारे के पर्वतीय जगलों व यमुना के किनारे के वनो मे यमनोत्री तक मिलती है। देहरादून+मसूरी+चकरौता रोड के जंगलो मे पैदा होती है। हरद्वार+ऋषिकेश के पास के वनो—पर्वतो मे, टिहरी, गढवाल, उत्तर काशी, मनेरी, क्वारी, व अन्य गगा के किनारे के पर्वतो मे व हिमालय के क्षेत्रो मे उत्पन्न होती है। कालका, सोलन सिमला की सडक व छोटी रेलवे लाइन के पर्वतीय क्षेत्रो मे, सिमला-तिअनी मार्ग पर के जगलो, वनो से देखने मे खूब आती है। मुजफ्फर नगर के शुक्रताल के आस पास के जगलो मे गङ्गा के किनारे के जगलो मे देखी जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि यह प्राय. सभी स्थानो पर सुगमता से प्राप्त हो जाती है। नाम अवश्य हर स्थान के भिन्न भिन्न हैं।

कुछ उपयोगी-शास्त्रोक्त व परम्परागत योग

(१) **अतिसारहर योग**—सोमलता* मूल १०० ग्राम, मोचरस १०० ग्राम, नागरमोथा १०० ग्राम, धाय के फूल १०० ग्राम, विल्वमज्जा १०० ग्राम, सौठ १०० ग्राम, मिश्री या चीनी ६०० ग्राम। सबको कूट कर कपड छान कर चूर्ण बना कर सुरक्षित रखे। मात्रा—३-३ ग्राम, दिन मे तीन बार छाछ या जल के साथ। यह हर प्रकार के अतिसार व प्रवाहिका मे लाभदायक है।

(२) **विषम ज्वर हर योग**—सोमलता* मूल—१००ग्राम, कालीमिर्च ५० ग्राम, मिश्री या चीनी १०० ग्राम सबको कूटकर कपडछान कर चूर्ण बना कर रख ले।

मात्रा—३-३ ग्राम दिन मे ३ बार गर्म पानी के साथ। हर प्रकार के मलेरिया (विषम ज्वर) पर लाभप्रद है।

(३) **शोथहर योग**—सोमलता* मूल १०० ग्राम, पुनर्नवा मूल १०० ग्राम, दोनो को कूट कपड छान कर रखलें। मात्रा—३-३ ग्राम दिन मे ३ बार गर्म पानी के साथ। यह योग यकृत प्लीहा व वृक्क विकृति जन्य शोथ पर उत्तम मूत्रल योग है।

(४) **प्रमेहहर योग**—सोमलता* मूल १०० ग्राम, गोक्षुर १०० ग्राम दोनो को कूट कपड छान कर रखले।

मात्रा—३-३ ग्राम प्रात साय जल या दूध के साथ। यह योग प्रमेह—मूत्रकृच्छ्रता-मूत्र आते समय की टीस—चसक या मूत्र को लग कर आने मे लाभदायक है।

(५) **कासहर योग**—सोमलता* मूल १०० ग्राम, सोठ १०० ग्राम, मूर्वा मूल १०० ग्राम, इन्द्रायण मूल १०० ग्राम, नागरमोथा १०० ग्राम, पिप्पल १०० ग्राम, सेन्धानमक १५० ग्राम सबको कूट कपडछान कर रखलें।

मात्रा—१-१ ग्राम दिन मे तीन बार गर्म पानी के साथ। यह कफज कास मे लाभदायक है।

(६) **स्त्री रोग हर योग**—सोमलता* मूल १०० ग्राम, सौठ १०० ग्राम, पीपल १०० ग्राम, काली मिर्च १०० ग्राम, पुनर्नवा १०० ग्राम सबको कूट कपडछान कर रखलें। मात्रा—१-१ ग्राम दिन मे ३ बार गर्म पानी के साथ। यह योग स्त्रियो के बहुत से रोगों पर गुणकारी है। इसके प्रयोग से रज कृच्छ्रता, पेडू, कमर-कटि का दर्द आदि रज की विकृतियो पर लाभदायक है।

---

*इस लेख के यहाँ तथा इससे आगे सोमलता से लेखक का तात्पर्य पाठा से है। —सम्पादक

(७) **सुख प्रसवकर योग**—सोमलता मूल को पानी के साथ पीस घोट कर लेप सा बना कर कुछ गर्म करके सद्य प्रसूता स्त्री के नाभि-पेडू-जघाओ पर लेप करने से सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है।

(८) **सुखप्रसवकर योग**-सोमलता की कनिष्ठ अ गुली जितनी मोटी और लगभग ४ अ गुल लम्बी मूल को लाकर हाथ से रगड छीलकर कन्या के हाथ सेकते हुए सूत सख्या मे ७ लेकर एक जगह बाँटकर बाध देने से सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है। बाद मे इसे खोल देना चाहिए। जब बच्चा होने मे देर हो जाती है दर्द ठण्डी पड जाती हैं तो इधर ग्रामीण भाषा मे "अ गुलेटा पडना" कहते है। ऐसी अवस्था मे प्राय ग्रामीण वृद्ध इस मूल का इस प्रकार प्रयोग करते हैं। वे गुप्त रखते है किसी को बताते नही, स्वयं मूल को उखाड-काट छीलकर इसलिए देते हैं कि कोई अन्य इसको पहचान न सके। हमने स्वय कई वृद्धो को देते देखा और सफल होते देखा। तब किसी भी तरह जान कर यहाँ लिखा है।

विशेष नोट—कई वृद्ध अनुभवी "अपामार्ग" की मूल को भी इसी प्रकार प्रयोग मे लाते हैं और सफलता प्राप्त करते है। ये योग परम्परागत देहात मे खूब चलते हैं और लोग बडे विश्वास के साथ प्रयोग मे लाते हैं।

(९) **अर्शहर योग**—सोमलता मूल, देशी अजवायन, सोठ, अनारदाना, गुड या चीनी प्रत्येक १०० ग्राम। सब कूट छान कर चीनी या गुड मिला कर रख ले।

माता—३-३ ग्राम प्रात छाछ के साथ शाम को पानी के साथ। यह अर्श (बवासीर) विशेषत बादी बवासीर के लिए उत्तम है।

(१०) **दुग्ध शोधक योग**—सोमलता मूल, मूर्वा मूल, चिरायता, देवदारु, सोठ, इन्द्र जौ, सारिवा, गिलोय, कुटकी प्रत्येक १००-१०० ग्राम। सबको कूट कपड छान कर रख लें।

मात्रा—३-३ ग्राम प्रात साय जल या दूध के साथ।

इसे कुछ दिनो तक नियमित प्रयोग करते रहने से स्त्रियो के दूध की शुद्धि हो जाती है। जिसके पीने से बच्चा स्वस्थ-निरोग, हृष्ट-पुष्ट रहता है। यह दूध को शुद्ध करने के साथ-साथ दुग्ध वृद्धिकर भी है। जिन स्त्रियो की दुग्धियो मे दूध कम उतरता हो उनके लिये भी लाभदायक है। इसके अलावा यह स्त्रियो के लिये रक्तशोधक भी है इससे खून साफ हो जाता है। इससे मूत्र कृच्छ्रता, हाथ पैरो मे दाह, जलन का होना, योनि प्रदाह, योनि कण्डू मिटते हैं। यह योग उत्तम अण्टि एलर्जिक भी है। इससे शीत्त पित्त, उदर्द-कोठ पर भी उत्तम लाभ होता है।

(११) **शूलहर योग**—सोमलता मूल ६० ग्राम, सौठ ४० ग्राम, पीपल ४० ग्राम, पीपलामूल २० ग्राम, शुद्ध गुग्गुल ५० ग्राम, काली मिर्च १० ग्राम, लौह भस्म १० ग्राम, उत्तम गुड २३० ग्राम।

गुग्गुल व गुड को छोडकर शेप औषधियो की कूट कपड छानकर फिर उसमे गुग्गुल मिला खूब कुटाई करें। फिर गुड मिलाकर कुटाई-घुटाई पानी के छीटे दे-दे कर नर्मकर ले फिर आधा-आधा ग्राम की गोली बनाकर सुरक्षित रखे।

मात्रा—१ से २ गोली प्रात साय दूध या गर्म पानी के साथ। यह योग बहुत प्रभावशाली है। इसके प्रयोग से वायु विकार, शरीर की पीडायें दूर होती हैं। उदरशूल, पीठ, कटि का बराबर रहने वाला दर्द, हाथ-पैरो की हड-फूटन, ऐठन पर लाभप्रद है। यह क्षुधावर्द्धक, रक्तवर्द्धक योग है। पित्त वृद्धि व तज्जन्य रोगो में इसका प्रयोग नही करना चाहिए, इसमे हानि होने की सम्भावना है। वात और कफ दोपो मे ही यह हितकर है। यह 'दायमी रहने वाले नजले-जुकाम-श्वास कास मे भी हितकर है।

(१२) **अजीर्णहरवटी**—सोमलता मूल ४० ग्राम, काली मिर्च ५० ग्राम, भुनी हीग ३० ग्राम, सौठ ६० ग्राम। सब को कूट छानकर आवश्यकतानुसार उत्तम शहद मिलाकर खरल करके आधा-आधा ग्राम की गोली बनाकर सुरक्षित रखे। मात्रा—१ से २ गोली गर्म पानी के साथ दिन मे २ बार या तीन बार।

यह अजीर्ण—पेट दर्द—आध्मान—वायु का गोला—बद-हजमी आदि रोगो मे परम गुणकारी हैं।

(१३) **निनाई हर योग**—सोमलता की ताजी मूल ५ से १० ग्राम तक लेकर उसमे ७ दाने सफेद या काली मिर्च मिला कर ताजे पानी के साथ घोट छानकर प्रात साय पिलावे। यह योग "निनाई" जो ग्रामीण भाषा मे कही जाती है के लिये बहुत ही श्रेष्ठ योग है। निनाई चेहरे की दलदार फुन्सियो, व्रणो को कहा जाता है। बड़ा दुःखदायी विकार है। यह प्राय नाक की बराबर

में, नाक पर, आख के ऊपर, होठो के ऊपर, ठोड़ी पर, गाल पर हो जाती है। यह एक वार मे १ या २ से ऊपर निकल सकती हैं। यह गले से ऊपर ही प्राय निकला करती हैं। इन फुन्सियो पर इसकी मूल को जल के साथ घिसकर लगाया भी जाता है। यह योग परम्परा गत देहात मे खूब चलता है और प्राय सभी छोटे वडे इसको जानते हैं।

(१४) **अजनपारीहर योग**—सोमलता की ताजी मूल को जल के साथ घिसकर अजनपारी पर लगाया जाता है और काली मिर्च मिलाकर घोट कर प्रात साय पिया भी जाता है, वडी लाभदायक है। अजनचारी आँखो की पलक पर होने वाली फुन्सी (व्रण) होती है जो वडी दु खदायी होती है। किसी-किसी को तो ऐसी होती है कि एक आख मे निकली वह ठीक हो गई तो दूसरी आख मे निकल आई। यह ठीक हुई तो पहली मे निकल आई। इस प्रकार तान्ता सा वन जाता है। किसी को एक निकल कर ठीक हो जाती है तो किसी को ३ तो किसी किसी को ७-७ और किसी किसी को वर्षो तक निकलते हमने देखा है। रोगी वडा परेशान हो जाता है। इस पर यह योग वडा प्रभावशाली है जो परम्परागत देहात मे चला आता है।

(१५) **अभिष्यन्वहर योग**—सोमलता के ताजे पत्ते अन्दाज से एक मुट्ठी भर लेकर थोडे से पानी ताजे के साथ एक वर्तन में डालकर हाथ से खूब मसल कर कुछ देर के लिये रख छोड दे। करीब आधा घण्टे मे मसले हुए पानी का हरा जमावदार गलमरा वन जावेगा जैसाकि वर्फ से जम जाता है एकदम ठण्डा वर्फ जैसा। इस लता के इस शीतल गुण के कारण ही तो सोम नामकरण किया गया होगा, चान्द जैसा ठण्डा। इस गलमरे को दु खती आखो या आई हुई आखो पर वाध दिया जाता है। पहली वार वाँधने से ही आखो मे आराम पडने लगता है। एक या दो दिन वाँधते रहने से आख ठीक हो जाती है। यह योग प्राय ग्रीष्म ऋतु मे अधिक गर्मी पडने, या लू लगने के कारण या चूल्हे भट्टी आदि के तापने के कारण आई हुई आखो के लिये वहुत ही लाभदायक है। आखो की लाली, सूजन, श्राव, टीस, चसक सव ठीक हो जाते हैं। यह योग परम्परागत देहात मे चला आता है। वडा लाभप्रद योग है। गत वर्ष गर्मियो मे आखे आने का वडा प्रकोप हुआ था और इसे आँखो का फ्लूरोग होने की सज्ञा दी गई थी। देहात मे वहुत लोगो ने इसका प्रयोग किया और लाभ उठाया था।

(१६) **मूत्रकृच्छ्ताहर योग**—सोमलता की ताजी मूल ५ से १० ग्राम खाण्ड या चीनी, मिश्री जो भी सुलभ हो ३० ग्राम लेकर २ या ३ घूंट पानी के साथ घोट छानकर दिन मे २ या ३ वार पिलाई जाती है। इससे पेशाव की जलन तो प्राय पहली मात्रा मे ही घटने लगती है। यह पेशाव की जलन —कडक बूंद-बूंद मूत्र का आना, ग्रीष्म ऋतु मे लू चलते सफर करना, गर्म पदार्थो के सेवन उत्पन्न अथवा भट्टी के पास अधिक समय तक वैठे रहने से या ताप सेवन से उत्पन्न मूत्र का वन्धा पड जाना आदि विकारों पर यह लाभदायक है। यह योग शीतपित्त, उदर्द उद कोठ पर भी उत्तम है। और देहात मे पपम्परागत उपयोग मे आता है।

(१७) **एर्लजिहर योग**—सोमलता मूल १०० ग्राम लेकर कूट कपडछान, कर इसके पत्तो के अर्क मे घोट खरल कर झडवेरी के समान गोली वना सुखा कर रखले।

मात्रा—१-१ गोली दिन मे ३ वार ताजा पानी के साथ।

प्रभाव—ये गोलिया शीत-पित्त आदि एर्लजिक कन्डीशन मे वहुत उत्तम हैं। एलोपैथि चिकित्सा मे एक रोग जिसको एर्लजिक कण्डीशन या एर्लजि डिसिज कहते हैं। का आजकल वहुत प्रचलन है। इस असहिष्णु का इतना व्यापक प्रचार हो चला है कि चिकित्सक को रोग समझ नही आया तो रोगी को कह दिया जाता है कि एर्लजि का रोग है। वस

इस एर्लजि को आयुर्वेद दृष्टिकोण पर परख कर इस औषधि का प्रयोग करके लाभ उठाया जा सकता है, ऐसा मेरा स्वय का अनुभव है। एर्लजि की चिकित्सा मे जितने शास्त्रीय प्रयोगो का उपयोग किया जाता है उनमे अधिकतर इसकी योजना की गई है।

(१८) **नजलाहर तमाखू**—सोमलता मूल १० ग्राम, सूंघना उत्तम काला तमाखू १०० ग्रा, जायफल ३ ग्रा, पिपरमेन्ट १ ग्रा., छोटी इलायची ३ ग्रा। सवको घोट कर महीन कर कपडछानकर सुरक्षित रखें।

उपयोग—आवश्यकतानुसार चुटकी-चुटकी नाक मे सूंघा जाता है।

विशेष मन्तव्य—इधर गाँव की वूढी औरतो मे तमाखू सूंघने का वहुत रिवाज है। वे उपरोक्त योग को अन्दाज से लेकर घोट छानकर वेल (सूखे वेलपत्र के खोल) मे भरकर जेव मे हर समय अपने साथ रखती हैं और नित्य सूंघती है, वे इसे नजले के लिए उत्तम मानती है। यह दिमागी कृमि के लिए भी उत्तम समझा जाता है।

कई औरते इसमे ५ या ७ दाने सफेद मिर्च मिलाकर प्रयोग करती है। कई औरते अन्दाज मे ४ या ५ अ गुल सोमलता मूल और सूंघना तमाखू मात्र ये दो ही मिलाकर प्रयोग करती है।

(१६) आमाशयशूलहर योग—सोमलता मूल आवश्यकतानुसार लेकर सुखाकर कूट कपड छानकर सुरक्षित रखे। मात्रा १-१ ग्राम गर्म पानी के साथ आवश्यकतानुसार।

प्रभाव—यह पेट दर्द के लिए उत्तम है।

अभी गत जौलाई के महीने मे हिमालय प्रदेश के पावटा के आस-पास के ग्रामीण हल्के मे, मैं इसके प्रयोग व अन्य जानकारी के लिए पूछ-ताछ करता हुआ घूम रहा था, एक रास्ते मे गाँव दुगाना निवासी ठा० धनीराम मुझे मिले और उन्होने मुझे वताया कि इसकी मूल को सुखाकर कूटकर फकी (चूर्ण) वना लिया जाता है। यह फकी गर्म पानी से लेने से पेट दर्द मे बहुत लाभदायक है। गाँव के लोग पेट दर्द पर इसका वहुत सफलता के साथ प्रयोग करते हैं। यह हानिरहित है। वहाँ की जन-भाषा मे इसका जो नाम लिया जाता है वह मैं भूल गया हू।

(२०) बाल शोषहर योग—सोमलता की मूल आवश्यकतानुसार लेकर घोटकर जल के साथ, ससरी के दाने जैसी गोली वना सुखाकर रख लें। मात्रा-१-१ गोली प्रात साय जल अथवा मातृदुग्ध के साथ। इससे वाल शोष (देहात में सुखिया मसान कहते हैं) दूर होकर वच्चे स्वस्थ हो जाते हैं। गाँव मे वूढे लोग इसका वहुत प्रयोग करते हैं। कई लोग इसके साथ धान के चावल मिलाकर गोली वनाते हैं। कई वृद्ध लोग इसकी मूल के साथ धान के चावल, आम की गुठली, जामुन की कोपल, ववूल की लौंग या फूल समभाग लेकर घोटकर गोली वना सुखाकर अपनी थैली मे रखते हैं और सुखिया मसान से सिद्ध माने जाते हैं।

इधर एक जोगी नाम की जाति है जो अपने कोयोगी उपाध्याय आदि भी कहते है, लेकिन गाँव मे इनको जोगी ही कहते है। ये अपने को गुरु गोरखनाथ के सिद्ध सम्प्रदाय मे सम्मिलित मानते है, खेती, वाडी, सर्विस सव करते हैं, परन्तु इनका अधिकतर पेशा भिक्षा माँग कर जीवन निर्वाह करना है। इनके वूढे लोग गोरखपान, और इस लता की अनेक प्रकार की गोली वनाकर भिन्न रोगो मे प्रयोग करते रहते है। जो इनके सिद्ध योग हैं और परम्परागत चले आते हैं, वैसे ये गुप्त रखते हैं आसानी से किसी को नही वताते। इन योगो को ये पैतृक सम्पत्ति के समान गुप्त रखते हैं और देहातो मे जिस गाँव मे माँगने-खाने जाते हैं वहाँ वीमार औरतो-वच्चो के रोगो मे इनकी अच्छी पूँछ रहती है।

(२१) विहारी की हट गोली—सोमलता की मूल आवश्यकतानुसार लेकर कूट छानकर और अन्दाज से थोडी गेरू मिट्टी मिलाकर जल के साथ घोटकर झडवेरी के वरावर गोली वना सुखाकर सुरक्षित रखे कुछ गोली ज्वार के दाने के वरावर वनाकर अलग रखें। यह योग पिपल शाह ग्राम निवासी, स्व० विहारी लाल जोगी का है। प्रयोग उसका इस प्रकार होता था कि जिन औरतो के वच्चे होकर मर जाते हैं उन्हें वह पहने तो झाडू, मोरध्वज के मुट्ठे अथवा चाकू, दाती, आदि जो भी समय पर सुलभ हो झाडता था। उसके वाद कहता हट हट तीन वार कहता था। फिर ये गेरु मिट्टी गोली खाने के लिये काफी मात्रा मे दे देता था। जो प्रात साय ताजा पानी के साथ खायी जाती थी प्राय वच्चा होने तक पूरे ९ माह तक। वच्चा होने के वाद ज्वार के दाने जैसी गोली वच्चो को खिलानी शुरू कर दी जाती थी। वच्चो के अजीर्ण आदि के लिये अलग से रेवन्दचीनी भुना सोहागा से वनी गोली देता था, जिसे जरूरत पर काम लाया जा सके—हर माह—२माह वाद स्वय खवर लेता था। इस योग से उसने वडी ख्याति प्राप्त कर रखी थी। वहुत घरो मे आज भी वडे आदर के साथ उसका नाम लिया जाता है। वह गर्म कालीन गर्मी के रोगो मे उपरोक्त गोली मुलतानी मिट्टी के पानी के साथ दिलवाता था।

इस प्रकार इस सोमलता को ग्रामीण देहातो में अपने अलग-अलग अनुभवो के साथ अलग अलग नामो से बहु तायत के साथ प्रयोग मे लाया जाता है। वे इस लता को हानिरहित और निर्विष मानते है। और कहते है कि कोई रोग ऐसा नही जिस पर इसका प्रयोग न हो सकता हो।

हमारा देश गाव प्रधान देश है और गांव मे चिकित्सको की पहुच कितनी थी, और है। यह सब जानते है परन्तु फिर भी गाव के लोग अपनी देशी जडी बूटियो के सहारे स्वास्थ्य लाभ परम्परा गत उठाते आये हैं।

सोमलता और शास्त्र सम्मत योग

आयुर्वेद शास्त्र योगो का बहुत बडा भण्डार है, और हजारो योगो मे, इस सोमलता का उपयोग किया गया है, यह कहने मे अत्युक्ति नही कि जितनी निर्भीकता से और अधिक से अधिक हानिरहित मान कर शास्त्रीय उपयोगो मे इस औषधि को अपने भिन्न-भिन्न नामो से उपयोग हुआ है, इतना सम्भवत ही अन्य औषधि का उपयोग हुआ हो। इसीलिए तो ऋचाओ मे इसे उपास्य देवता माना गया है। यो तो योग बहुत है, परन्तु बहु प्रचलित शास्त्रीय योगो के नाम की झलक यहा भी देते हैं। जिनमे इस लता का उपयोग हुआ है।

योग का नाम—	ग्रन्थ निर्देश
अमृतार्णव रस	भैषज्य रत्नावली
गुल्म कालानल रस	,,
नित्यानन्द रस	,,
सोमनाथ रस	,, व रस रत्नाकर
जयन्ती वटी	रसेन्द्र सार सग्रह
तेजो वलादि वटी	वृहद् निघण्टु रत्नाकर
चित्रकादि वटी	,,
वृद्धि वाटिका वटी	भावप्रकाश, भैषज्य रत्नावली
मरिचादि वटी	गद निग्रह
चन्दनादि लोह (ज्वर)	भैषज्य रत्नावली
प्रदरान्तक लोह	रसेन्द्र सार सग्रह
प्रदरारि लोह	भैषज्य रत्नावली
यकृद् अरि लोह (वृहद्)	,,
सर्व ज्वर हर लोह	रसेन्द्र सार सग्रह

योग का नाम	ग्रन्थ निर्देश
वृहद योग राज गुग्गुल	शाङ्गधर सहिता
योगराज गुग्गुल	आयुर्वेद निवन्ध माला
ब्राह्म रसायन	चरक सहिता
गङ्गाधर चूर्ण (वृहद)	शाङ्गधर सहिता
चन्दनादि चूर्ण	भैषज्य रत्नावली
पुनर्नवा चूर्ण	योग रत्नाकर व भैषज्य रत्नावली
पुष्यानुग चूर्ण	भैषज्य रत्नावली
व्योषादि चूर्ण	,,
रक्तचन्दनादि चूर्ण	गद निग्रह
हिग्वादि चूर्ण	शाङ्गधर सहिता
पाठादि चूर्ण	चक्रदत्त
तालीसादि चूर्ण	रस तन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग सग्रह
उशीरासव	भैषज्य रत्नावली
चन्दनासव	,,
दशमूलारिष्ट	,,
पुनर्नवारिष्ट	,,
फलारिष्ट	चरक सहिता
लोध्रासव	गद निग्रह
श्रीखण्डासव	भैषज्य रत्नावली
सारस्वतारिष्ट	सिद्ध योग सग्रह
सारिवाद्यासव	भैषज्य रत्नावली
एरण्ड पाक	आर्य भिषक
कुमार कल्याण घृत	सिद्ध योग सग्रह
पचगव्य घृत	गद निग्रह
महातिक्त घृत	सिद्ध योग सग्रह
अभयादि क्वाथ	शाङ्गधर सहिता
तगरादि क्वाथ	सिद्ध योग सग्रह
भार्ग्यादि क्वाथ	,,
महामजिष्ठादि क्वाथ	शाङ्गधर सहिता
देव दार्वादि क्वाथ	वैद्य सार सग्रह
कटफलादि क्वाथ	वृन्द
पिपल्यादि क्वाथ	भाव प्रकाश
नागरादि क्वाथ	हारीत सहिता

आदि बहुत से योग शास्त्रो मे भरे पड़े हैं।

सोमरस कल्पना

भाग १

सोमरस का निर्माण करने के लिए सोम कीम की आवश्यकता होती है इसलिए सोम कीम बनाने की विधि लिखी जाती है।

सोम कीम बनाने की विधि—

(अ) सोमलता की मूल, तिमूर की मूल, काशमोकी मूल, आडू की मूल, वेसन की मूल, सेन्दारे की मूल, छामूर की मूल, धारमो की मूल प्रत्येक २० किलो। इन सब औषधियो के छोटे-छोटे टुकडे करके खूब सुखाले। अच्छी प्रकार सूख जाने पर घर्राट (चक्की) मे पिसवा कर आटा जैसा बनाले अथवा कूट कपड छानकर चूर्ण बारीक बनाकर रखले।

(ब) सूखे जौ ४० किलो लेकर इन्हे भी चक्की मे पिसवाकर आटा (चूर्ण) बनवाकर उपरोक्त औषधियो मे मिलाकर हाथ से मथ दें जिससे अच्छी प्रकार मिल जावे।

(स) मिमूर की ताजी कोम्पल (मुलायम पत्ते) २०कि.
आडू की ताजी कोम्पल („) „
धारमो की ताजी कोम्पल („) „
कारणोई के ताजे पत्ते („) „

इन सबको इकट्ठा करके थोडी-थोडी मात्रा में पत्थर की शिला पर डालकर, लम्बे व गोल, मोटे पत्थर के वट्टे से चटनी के समान पीसे। थोडा-थोडा पानी भी डालते रहे। जब अच्छी प्रकार चटनी के समान कल्क बन जावे एक तरफ बडे बर्तन मे रखते जावे। इस प्रकार सबकी चटनी जैसी बनालें। यह कल्क कुछ पतली रहनी चाहिए।

(द) यह कल्क तैयार होने पर इसमे (अ) (ब) की औषधियो का चूर्ण मिलाकर मजबूत हाथो से मसलते मिलाते रहे और आवश्यकता हो तो थोडा-थोड़ा पानी भी मिलाते रहे, मसल-मसल कर रोटी बनाने के आटे के समान हो जाने पर पिण्ड जैसा बनाकर रख दे।

(ध) **सान्थरा बनाना**—सान्थरा बनाने के लिए साफ सुथरी चौडी जगह पर पहले लकडी के तख्ते बिछावें। उन तख्तो पर धान (मून्जी) की पुराल या मून्ज (भावड विशेष) को बिछावे, जिस तरह बिस्तरा लगाते हैं ठीक उसी तरह बिस्तरा सा बनालें। अब इसके ऊपर चीड के पत्ते, या देवदार के पत्ते मोटे-मोटे सूखे की तरह बटे हुए या दूबडा घास (दुर्वा) कटा हुआ, जो भी सुलभ हो बिछा दें। जिससे बिस्तरा गुदगुदा सा हो जावे यह सान्थरा या बिस्तरा बन गया। इस साठो (धान) का बिस्तरा या सान्थरा और कहीं-कहीं मून्जी या मून्ज का बिस्तरा या सान्थरा भी कहा जाता है।

(न) अब उस पहले तैयार किये औषधि पिण्डे मे से अन्दाज मे ३०० या ५०० ग्राम के आटे के पेडे की शक्ल मे गोल-गोल गोले से बनाते जावें और एक तरफ रखते जावें। सब पिन्ड के गोले से तैयार हो जाने पर एक तरफ रखदे।

(प) जमीन पर लोहे के बडे तवे (जो इसी काम के लिए पहले से बनवाये हुये होते हैं) रखकर उस तवे पर पर एक-एक गोला रखकर मजबूत हाथो से दबाते जावें और गोल करते जावें जिससे उनका आकार ठीक मोटी रोटी जैसा बन जावे। इन रोटियो को तह की तह करके उस सान्थरे या बिस्तरे पर जमाते जावें। ऊपर से मून्ज या मून्जी अथवा चीड, देवदारु, दुर्वा कटा हुआ जो भी सुलभ हो तह की तह रखते जावे। ऊपर फिर रोटी रखें फिर दुर्वा आदि रखें इस प्रकार की तहें जमाकर सब रोटियो को सान्थरे पर लगावें। ऊपर वही दुर्वा, देवदार चीड आदि के पत्तो से ढक दें और मून्जी या पुराल से खूब ढककर कोई बोरी की पल्ली या टाट या कपडे से ढक दें ऊपर लकडी के तख्ते या चौडी-पतली पत्थर की शिला से दबादें जिससे रोटियो मे हवा न जा सके और वे स्वतः उत्पन्न हुई गर्मी (उष्णता) मे पक जावें।

अंदाज से ३ या ४ दिन बाद मूंज बिस्तरे का थोडा हिस्सा हटा खोलकर देख लें कि रोटी बिस्तरे की स्वतः स्वत उत्पन्न अग्नि (उष्णाता) मे पक गई है या नही। अगर पक गई हो तो बिस्तरे के ऊपर का हिस्सा हल्का करदें। १ या ३ दिन बाद फिर देख लें। इस प्रकार जबतक पूर्णत न पक जावे देखते रहे। गर्मी सर्दी के मौसम के अनुसार रोटियो के पकने मे ६ या ८ या १२ या १५ दिन लग जाते हैं। पकने की पहचान यह है कि रोटी हल्की सुगंधयुक्त, सूखी-सूखी सी हो जाती है। पूर्णत पक जाने पर बिस्तरे (साथरे) मे से निकाल २ या ४ दिन की धूप मे सुखाकर पहले से बनी हुई लकडी

की कोठरियो मे भर दे। यही सोम की कीम या सोम कीम है।

इन रोटियो को आम जनता कीम के नाम से पुकारती है। अर्थात् वर्ताव मे मात्र कीम कहा जाता है। शास्त्र के आसव प्रकरण मे किण्व शब्द का प्रयोग सभी जानते है। शब्द निर्माण मे कीम से किण्व बना या किण्व से कीम की उत्पत्ति हुई यह विचारणीय है। यहा तो कीम वह भी सोम कीम से तात्पर्य है।

विशेष नोट—(१) (अ+व) की औषधियो को कल्क मे मिलाने से पहले अंदाज से कुछ चूर्ण सूखा ही अलग रख दिया जाता है जो रोटी वनाते समय गोलो के नीचे ऊपर बुरक दिया जाता है पलेथन की तरह।

(२) सूखी कीम (रोटियो) को कोठरियो मे भरने से पहले मक्का की छूछ जिसे आम भाषा मे गुल्ली या टेंटथाठे भी कहते हैं, से रगड दी जाती है। जिससे रोटी विस्तरे मे रखने, पकने के समय घास-पत्ते आदि लग जाते हैं वे रोटी पर से हट जावें।

वेदो मे, निरुक्त मे, ब्राह्मण ग्रथो मे, सुश्रुत आदि मे मूंजवान, मूजवान, मोजवत आदि शब्द आये हैं। यहा कीम के बनाने मे मूंजी (धान या साठी) की पुराल व मूंज (भावड विशेष) ग्रामीण भाषा के प्रचलित शब्द मैंने दिये है जो विचारणीय हैं।

आवश्यक उपकरण—वेद शास्त्रो मे सोमरस वनाने के लिए अनेक प्रकार के उपकरण लिखे गये है। वे तो हमने अलग से दिये हैं। यहाँ पर सोम कीम बनाने के लिए जिन विशेष औजारो, उपकरणो की आवश्यकता होती है इस पर विचार करते है—

(अ) सबसे पहले औषधियाँ आवश्यकतानुसार एकत्रित की जाती हैं। औषधियों के मूल आदि निकालने के लिए फावडा जिसे फावला भी कहते है का उपयोग किया जाता है, कभी वेलचा की भी जरूरत पड जाती है। मूलें निकालने के लिए गोलनी, जिसे गोड़नी भी कहा जाता है का उपयोग सबसे अधिक होता है। बाद मे कुहाड़ी, कुवाडी, कुराडी जिसे कुल्हाडी भी कहते है से काटी-छाटी जाती है, कभी-कभी खुरपे— तुराने की भी आवश्यकता होती है।

औषधिया एकत्रित करने के बाद थोडी-थोडी लेकर लकडी के गोल गट्ठे पर जो इसी काम के लिए बना होता है जिसे जनभाषा मे 'उटकण" और कही-कही 'ने' या 'नेह' भी कहते हैं रखकर 'वासी' से मोटा-मोटा काटते है। वासी भी एक प्रकार की कुल्हाडी होती है जो कुल्हाडी से भिन्न आकार की कुछ-कुछ बढई के लकडी काटने के वसूला के आकार जैसी, लेकिन वसूला से भिन्न होती है। कही-कही इसे 'वास' कही 'कसीली' कही 'कसोला' भी कहते है। परन्तु अधिकतर यह वासी नाम से ही पुकारी जाती है।

(आ) इसके पश्चात् 'टेकरो' मे रखकर उक्त 'वासी' से काटते हैं, जिससे और वारीक हो जावे और छोटे-छोटे टुकडे वन जावे। 'टेकरो' की बनावट कुछ-कुछ नाव नुमा पत्थरके खरल जैसी इससे भी भिन्न आकार की पतनाले जैसी लम्बी लकडी मे खुदी हुई किनारेदार होती है।

(इ) इसके वाद "गूत्तू" मे डालकर कूटते हैं। "गूत्तू" मजबूत काले पत्थर की वनी हुई वडे आकार की ओखल होती है, जिसमे मुञ्जी, धान आदि भी कूटते है। कूटने के लिये मजबूत लकडी का 'मूसो" होता है। मूसो को मूसल भी कहते है। यह बहुत सुन्दर लम्बाई मे षट कोण वाला होता है। वीच मे पकडने के लिये मूठ गोल वनी होती है।

(ई) इस प्रकार कूट काट कर वारीक वनाकर "चवनो" से छाना जाता है। "चवने" अपने अलग आकार के एक प्रकार के झरने होते है। जो कही पर चमडे के वने होते हैं तो कही पर सरकन्डो के तिलुओ के, कहीं मात्र लकडी के तो कही कही लोहे के तारो से वने चौडे छेद वाले प्रयोग मे लाये जाते हैं। इस प्रकार सब औषधि वारीक कर ली जाती है या वारीक करने के लिए घराट अर्थात् पानी से चलने वाली चक्की मे पिसवा ली जाती है।

विशेष विवरण—सोम कीम दो प्रकार की बनाई जाती है "एकप्ती" और "दोप्ती' अर्थात् कीम की रोटी बनाते समय दो रोटियो को मिला कर विस्तरे मे पकने के लिए रख दिया जाता है तो वे आपस मे जुड जाती है और सूखने पर भी जुडी रहती है, इस जुडवा रोटी को 'दोप्ती' कहते हैं। जो जुडवा नही होती अलग-अलग एक-एक होती है उसे एकप्ती कहते है। गुण धर्म तो दोनो का एक ही रहता है, परन्तु उधार लेन-देन मे भार की सहूलियत हो सकता है। एकप्ती कहने से एक कीम दी जाती

है और 'दोप्ती' कहने पर जुडवा दी जाती है कुछ भी हो दोनो प्रकार की बनाने का रिवाज चला आ रहा है।

सोम कीम बनाने का समय सर्दी समाप्त होने के बाद और वर्षा ऋतु आरम्भ होने से पूर्व का होता है। प्राय ज्येष्ठ (जेठ) बैसाख के ये दो महिने ही अच्छे माने गये है क्योकि एक तो जौ आदि अन्न नये आ जाते है। दूसरे इन महिनो मे गर्मी अच्छी होती है। जिससे कीम के पकाने सुखाने मे समय भी कम लगता है और कीम भी अच्छी उत्तम गुणयुक्त बनती है।

सोम कीम बनाने के लिए वनौषधियो को वर्ष भर अपने कृषि आदि कार्य करते हुए जब भी–जहाँ भी मिलती जाती है समयानुसार संग्रह करते रहते है क्योकि इनका बडी मात्रा मे इकट्ठा करना बडा कठिन होता है। कभी कोई कही मिलती है तो कभी कही कोई, फिर किसी ऋतु मे कोई अच्छी मिलती है तो दूसरी भिन्न ऋतु मे अच्छी श्रेष्ठ गुणयुक्त मिलती है इसलिए समय और आवश्यकतानुसार एकत्रित करने का समय वर्ष भर चलता रहता हे।

सोम कीम अपने परिवार मे वर्ष भर के खर्च, त्योहार शादी-आदि उत्सवो के खर्च को ध्यान मे रख कर अन्दाज से आवश्यकतानुसार एक बार ही बना ली जाती है। और अच्छी प्रकार सुखा कर लकडी की बनी कोठरियो मे बन्द करके सुरक्षित रख दी जाती है, और वर्ष भर आवश्यकतानुसार खर्च मे लेते रहते हैं। अगर बीच मे ही समाप्त हो गई तो फिर उधार लेन-देन करना पडता है। यह मूल्य से प्राप्त नही होती। हाँ पहले समय मे चीज के बदले चीज के आधार पर प्राप्त हो जाती थी जो अब नही मिलती।

कीम किसी परिवार मे १ मन तो किसी मे ४ मन तो किसी मे १० या २० मन या इससे भी अधिक मात्रा मे बनाई जाती है। जैसा किसी का खर्च उसी के अनुसार ज्यादा या कम मात्रा मे बनाई जाती है।

कीम बनाने के लिए बडे कठोर परिश्रम की जरूरत होती है, उटपटाग ढाडस का काम है परन्तु परम्परागत रिवाज चला आता है जो भारी व कठिन महसूस नही होता। इसके बनाने के लिए खूब लोग इकट्ठे हो जाते हैं। अडौसी-पडौसी, अपने गाव के दूसरे गाव के मेली, जोली स्नेही-मित्र-रिश्तेदार तक सहयोग देने के लिए एकत्रित हो जाते है। इस प्रकार के सहयोग से सभी का जल्दी मे काम निपट जाता है। आज इस घर पर नहीं है तो कल किसी दूसरे घर, आज किसी के यहाँ कटाई पर नहीं है, तो दूसरे घर कुटाई, छटाई, आदि कई बार मजदूरों को भी मजदूरी देकर काम मे लगा लिया जाता है। अर्थात् जैसे भी सहूलियत हो, वैसे ही किया जाता है।

कोई काट रहा है, कोई कूट रहा है, तो कोई छान रहा है, तो कोई फटक पीस रहा है। कोई गोले से पेडे बना रहा है तो कोई गोलों को लोहे के बडे बडे तवों पर दवा दवा कर रोटी की शक्ल बना रहा है, बच्चे जवान, बूढे, स्त्री, पुरुष सभी इस काम पर लग जाते हैं। जो जिनके सामर्थ्य का काम है वो वही करता जाता है, तब कही जा कर कीम तैयार होती है। यह परिश्रम देखते ही बनता है। कितना कठिन काम है। तभी तो इधर सोम रस बहुत पूर्व से दुर्लभ ही नहीं स्वर्ग की वस्तु बन गई।

सोमरस नहीं मिला तो भाग, धतूरे व जहरीली कुकरमुत्ता को ही सोम कहने लगे। कई अंग्रेज विद्वान तो दिवा स्वप्न के लालच मे विषयुक्त कुकुरमुत्ता जैसी जहरीली औषधि खाकर अपना जीवन ही गवा बैठे। अस्तु हम यहाँ इस विषय मे अधिक कुछ नहीं कहते।

सोमरस कल्पना भाग २

सोमरस निर्माण विधि—सोमरस निर्माण के लिये पहले से तैयार किए हुए एक ऐसे घड़े को ले, जिनमे १२ से १५ लीटर तक पानी आ सके, उसमे गर्म करके ठण्डा किया हुआ पानी ५ लिटर डाल दे। और सोम कीम सख्या मे २ अथवा दोप्ती कीम हो तो एक, मोटे मोटे टुकडे करके उसी घडे मे डालकर स्वच्छ अन्धेरे मकान मे रख दे। और घड़े को स्वच्छ कपडे से ढक दें।

सर्दी की ऋतु हो तो २ दिन बाद और ग्रीष्म ऋतु हो तो एक ही दिन बाद झिगुरा (श्यामक) का आटा १ किलो लेकर और पानी से गून्द कर इसकी मोटी-मोटी ३ या ४ रोटियाँ बनाकर, तवे पर रोटी की ही तरह सेक ले। तवे पर श्यामक की रोटी डालकर हाथ की खडी अंगुलियो से दबाते रहें जिसमे रोटियो मे अंगुलियो की गहराई के गड्ढो के निशान से बन जावे। तवे पर अलट

पलट कर सेकने के बाद आग के अगारो पर सेक ले। जिससे रोटी कच्ची न रह सकें। सबके बाद रोटी तैयार हो जाने पर एक बडी परात या नाद में डालकर ऊपर से ठण्डा पानी डाल दें। जिससे सब रोटिया अच्छी प्रकार भीग जावे और करीब २ घण्टे उसी नाद मे पडी रहने दें।

२ घण्टे बाद इन श्यामक की रोटियो को पानी मे से निकाल कर टुकडे-टुकडे करके उस कीम वाले घडे मे डाल दें और रोटी डालने के साथ ही अलग से गर्म करके ठण्डा किया हुआ पानी करीब ५ लिटर और डाल दें। और घडे पर स्वच्छ कपडा बांधकर रहने दें। इस श्यामक की रोटी और गर्म करके ठण्डे किये हुए पानी के "प्रक्षेप" को बम तिवरी या बसी तिवरी के नाम से पुकारते हे। और श्यामक की इन रोटियो को "कोदवे" भी कहते हैं।

श्यामक की रोटी अर्थात "कोदवें" डालने के समय अगर मौसम खूब गर्म हो तो एक दिन बाद और हल्का गर्म हो तो २ दिन बाद सोमरस पक जाता है अर्थात पीने लायक हो जाना है। परन्तु अगर सर्दी अधिक हो तो ३ या ४ या अधिक भी दिन लग सकते हैं। लेकिन ज्यादा से ज्यादा ७ दिन कुल मिलाकर ३ से ८ दिन तक लग सकते है। यह मौसम और रखने के स्थान पर निर्भर है।

सोमरस पक जाने अर्थात तैयार हो जाने पर उसका रग दूधिया मायल, प्रगाढ मट्ठे जैसा, उत्तम, सुगन्धित, स्वाद मे प्रथम हल्का कटुता लिये हुए मधुर हो जाता है।

देख रेख की असावधानता, अस्वच्छता, मौसम की खराबी आदि हो गई तो विगड भी जाता है तब अप्रिय गन्ध स्वाद मे खट्टास लिये हुए बद रग, और फटा-फटा सा पतला हो जाता है जो सेवन के योग्य नही होता, फैंक दिया जाता है।

उत्तम तैयार होने पर, आवश्यकतानुसार छोटे दूने, अर्थात वर्तन मे निकाल कर हाथ की अगुलियो से हल्का हल्का मसलकर छानकर सेवन किया जाता है।

छानने के लिये लोहे की छलनी, लकडी के रेते वाली चमडे की छलनी, और कही कही बास की बारीक फचको से बनी छलनी, और कही कही लकडी से बनी छलनी का उपयोग होता है।

कभी-कभी करवे की बेकू (करवा मिट्टी का घड़े की शक्ल का छोटा बतन होता है जिसमे गर्दन से नीचे नलकी जैसी शक्ल मे सुराख बना होता है, इस सुराख को बेकू कहते है) मे कुशा, मूज्ज, या दाम की कुञ्जी सी बनाकर इस प्रकार डालते है कि मूल करवे मे अन्दर की तरफ रहती है बाकि बाहर रहती है मे से छानकर भी प्रयोग मे लाया जाता है।

सोमरस पीने के लिये चादी की कटोरियो का भी कही-कही बडे घरो मे उपयोग होता है। परन्तु अधिक तर चादी जैसे चमकदार 'कासी" धातु के बने बेल्लो (बडे कटोरे) का उपयोग होता है। वैसे आजकल काच के गिलास, चीनी पत्थर की कटोरिया, व कपो का उपयोग भी होने लगा है परन्तु फिर भी त्योहार, शादी उत्सवो आदि मे तो कांसी बेल्लो का ही अधिक उपयोग होता है।

सोमरस का सेवन प्रात. काल मे करना अधिक श्रेष्ठ है और अधिकतर रिवाज भी प्रात. काल पीने का ही है। सुबह नास्ते के रूप मे (स्वल्पाहार के समय) अकेले ही अथवा अन्य रोटी भोजन के साथ-साथ इसका उपयोग किया जाता है परन्तु कई लोग दोपहर के भोजन के साथ या पहले भी प्रयोग करते है। वैसे कई लोग दोपहर बाद ४ या ५ बजे के करीब भी सेवन करते हैं। या फिर जिसकी जैसी इच्छा हो पिया जा सकता है। मेहमानो के आदर सत्कार के लिये कई स्थानो मे इसे महत्व दिया जाता है।

सोमरस की मात्रा प्राय अपनी इच्छा और शक्ति पर निर्भर है। कोई १ अञ्जली भर तो कोई २ अञ्जली भर तो कोई कोई बेल्ले भर-भर कर पी जाते हैं।

सोमरस प्राय: हानिरहित है छोटे से छोटे बच्चे मे लेकर वृद्ध तक औरत-मर्द सभी इसका प्रयोग करते हैं। कभी किसी को कोई हानि नही होती है मात्रा मे अगर हृद् से ज्यादा पी लिया जाता है तो उल्टी हो जाती हैं। अन्य कोई नुकसान नही होता। छोटे-बडे कमजोर और तन्दुरुस्त सभी इसका उपयोग करते है या कर सकते हैं। किसी भी बीमारी मे इसका प्रयोग हानि नही करता।

सोमरस पीने से स्फूर्ति बढ़ती है, यह बलदायक व कल्याणकारी है। इससे जीवनीय शक्ति बढकर मनुष्य पराक्रमी बनता है। यह पाप कर्म करने से बचाता है। शरीर को सुदृढ और पुष्ट बनाता है। इसके पीने वाले

शान्त स्वभाव के होते है। यह हर्षदायक है। यह रुचिकर क्षुधावर्द्धक, उत्साहवर्द्धक, थकावट दूर करने वाला दीर्घ आयुदाता, बलदायक व कटु पौष्टिक है। अनेक प्रकार के रोगो से बचाता है। शेष वे सब गुण जो सोमलता प्रकरण मे लिख आये है वे सब इसमे हैं। इसके अलावा वेद-शास्त्रो मे जो गुण सोमरस के लिखे है वे सब इसमे मौजूद है। यह कटु है। यह मधुर है। यह मदकारी है। मदकारी, शराब, भाग, धतूरे की तरह नशीला नही, एक प्रकार का शकर सा इसमे है जो महसूस नही होता। इससे काम करने का उत्साह बढता है। मनुष्य अपने को प्रफुल्लित महसूस करता है। कितना भी काम कठिन किया जावे थकावट महसूस नही होती, भूल नही होती, विचलितता नही आती, दूसरो को महसूस नही होता कि इस व्यक्ति ने कुछ पिया है। दूसरो का आदर सत्कार करने मे उत्साह बढाता है धार्मिक प्रवृति बढती है। इसके पीने वाले डरपोक नही होते लेकिन व्यर्थ की लडाई, झगडे मोल लेने वाले भी नही होते। यह एक सर्वश्रेष्ठ पेय है जो सब मौसम मे सबके लिये सदा हितकारी है।

पात्र

सोमरस बनाने के लिये तीन प्रकार के वर्तनो का उपयोग होता है।

(१) मण्टकी, इसे मटका भी कहते हैं। यह मिट्टी का बना बहुत बडा बर्तन है। शास्त्र मे इस वर्तन को 'महावीर' कहा गया है। छोटे से छोटा ३२ सेर पानी जिसमे आ जावे इतना बडा तो होता ही है। आम भाषा मे इसे भण्डकी और मटका ही कहा जाता है।

(२) घुंगरा—इसे घडा या घटक भी कहते हैं। यह मध्यमाकार का होता है इसमे १० सेर से २० सेर तक पानी समा जाता है। यह भी मिट्टी का बना होता है। इसे कलशा भी कहते है।

(३) घुंगटी—यह छोटे आकार का दूना सा होता है जो कि घडे की शक्ल का होता है, और मिट्टी का बना होता है।

इन तीनो वर्तनो को उपयोग लायक बनाने के लिये पहले अन्दर बाहर तेल की खूब मालिश सी की जाती है, और धूप मे सुखाते रहते है जिससे बनाते समय रिसने का दोष समाप्त हो जाता है ठीक आसव पात्र की ही तरह।

सोमरस भी एक प्रकार का सन्धानीय पेय है। और इसे आम भाषा मे 'गेन्गठी' और लद्दाखी भाषा मे 'छग' कहते है। और वेदो मे ब्राह्मणो मे इसे सोमरस कहा गया है। जो परमपवित्र है। यज्ञ मे इसकी आहुति दी जाती रही हो तो कोई अनुचित नही, क्योकि सामग्री मे अन्न मिलाकर आहुति देना शास्त्रोक्त तथ्य है। इसमे तो उत्तम वनौषधिया और अन्न का ही सयोग है।

यह सोमरस ताजा बनाकर ही उपयोग मे लाया जाता है। बनने के करीब ८ दिन बाद तक ही इसका उपयोग होता है। सर्दियो मे कुछ दिन अधिक भी ठहर जाता है लेकिन गर्मियो मे तो बहुत जल्दी खराब हो जाता है।

पुरानी दिवाली (दीपावली) से एक महीना बाद कई पर्वतीय स्थानो मे बडे धूमधाम से मनाया जाने वाला त्यौहार है। जिसे पुरानी दिवाली कहा जाता है। यह करीब कही ८ दिन, कही ४ दिन, कही ६ दिन तक मनाया जाता है। जिसमे नृत्य गाने आदि खूब चलते हैं और विजयदशमी की तरह विगडी अवस्था मे नाटक आदि भी किये जाते हैं। उस समय मे सोमरस हर घर में बने लकडी के देवता जिसे काला देवता, कहीं-कही देवी भी कहते हैं, पर चढाया जाता है और सामूहिक रूप मे खूब पिया भी जाता है। साथ मे अन्य पेयो का भी उपयोग होता है लेकिन पवित्रता के नाते सोमरस का बडा महत्व है। वैसे माघ के त्यौहार जो प्राय पूरे महीने चलता है, बिस्सू जो प्राय चैत के महीने मे होता है, चैत्र की ही 'आठ' 'नौ' त्यौहार और हैं जिनमें सोमरस पूजा के रूप मे व सामूहिक रूप मे पीने के काम आता है। इसी प्रकार अन्य और भी त्यौहार है।

शादी मे भी इसका उपयोग महत्व के साथ किया जाता है और सामूहिक रूप मे इसको सेवन करते है।

वैसे सोमरस बारह महीने बनाया पिया जाता है और इसके बनाने का क्रम बराबर चलता रहता है।

बनाने का काम आवश्यकतानुसार होता है। त्यौहार व शादी आदि उत्सवो मे तो बहुत बडी मात्रा मे बडे-बडे मटको मे जिन्हे भण्डकी कहते हैं, बनाया जाता है। तब तो वह बडे व घेरे मकान मे मूंजी (धान) की पुराल जमीन पर नीचे बिछाकर उसके ऊपर इन्ढवे जिसे 'किनोठे' कहते हैं रखकर उसके ऊपर भण्डकीया रख की

बहुत बडी मात्रा मे बनाया जाता है। रोजाना सेवन के लिए प्राय घडो का उपयोग होता है, परिवार का खर्च अधिक है तो भण्डकी ही उपयोग में लाई जाती हैं।

यह भण्डकी एक गाँव मे तावे की बडी सुन्दर कलई की हुई बहुत बडी देखने मे आई है जिसमे बराबर सोमरस का निर्माण होते देखा है।

कई स्थानो पर ये बर्तन शीशम लकडी के मजबूत तीनो ही आकार के बने देखे गये हैं। जिनमे सोमरस बनाया जाता है। इनकी बनावट भी बडी ही सुन्दर होती है और रोजाना के प्रयोग के लिए सोमरस बनाया जाता है।

सोमरस पीने के बाद अगर कुछ शेष बच जाता है तो उसे अलग पानी की बाल्टी मे डाल देते हैं, जो मद्य बनाने के काम आ जाता है और छानते समय जो छानस शेष रहता है उसे या तो सोमरस के साथ ही पात्र मे डालते जाते हैं या उसे मद्य बनाने के उद्देश्य से मद्य बनाने के पात्र में डालते जाते हैं, जिसका वर्णन अलग से करेंगे। इस वर्णन को यहां ही समाप्त करते हैं।

महासोमरस अथवा तीव्र सोमरस कल्पना (भाग-३)

तीव्र सोमरस बनाने के लिए बडी भण्डकी अर्थात् मटके मे गर्म करके ठण्डा किया हुआ पानी करीब २० या २५ किलो पानी डालकर इसमे ही सोम कीम करीब सख्या मे ५ डालकर बर्तन को स्वच्छ अधेरे स्थान मे रख दिया जाता है। गर्मी हो तो अगले ही दिन और सर्दी हो तो २-३ दिन बाद करीब ४ किलो श्यामक के आटे की रोटी और १० या १२ किलो गर्म करके ठण्डा किया हुआ पानी डालकर सधान कर दिया जाता है। ठीक आसव या अरिष्ट की तरह ही, इसके बनने मे गर्मी हुई तो १ माह और सर्दी हुई तो २ या ३ माह लग जाते हैं। कभी-कभी ४ या ५ माह का समय भी लग सकता है। यह प्रक्रिया आसव की ही है। जब यह तैयार हो जाता है तो इसका रग खूब सुर्ख लाल हो जाता है। तीव्र सुगन्धी उत्पन्न हो जाती है। स्वाद तीव्रता लिए हुए मधुर + कटु होता है और इसमे तीव्र नशा भी होता है। लेकिन शराब जैसा नहीं। यह हर किसी को माफिक नही पटता, ठण्डी तासीर का होता है। उत्सवो त्यौहारो पर काम मे लाया जाता है। सोमरस की तरह रोजाना काम मे नही लाया जाता, अधिक पीने से अजीर्ण हो जाता है। कलेजे मे भारीपन व दर्द भी पैदा कर देता है, लेकिन औषधि रूप मे इसका कभी-कभी रोग विशेष मे उपयोग किया जाता है। सामूहिक रूप मे तो त्यौहारो, उत्सवो व शादी आदि मे ही थोडी-थोडी मात्रा मे पिया जाता है। सामूहिक उपयोग के लिए ही बडी मात्रा मे बनाया जाता है और त्यौहार पर देवी, देवताओ पर पूजा के उद्देश्य से चढाया भी जाता है। शास्त्र मे इसे तीव्र सोम कहा गया है। आम भाषा मे इसे 'पाखोई' कहा जाता है। मेरी राय मे इसे सोमासव भी कह सकते है। सुश्रुत मे इसे महासोम कहा गया है।

इसके भी सभी गुण सोमरस के समान ही हैं। जब यह बिगड जाता है तो खट्टा सिरके जैसा हो जाता है। लेकिन ठीक से अच्छा बन जाता है तो २ या ३ वर्ष तक भी नही बिगडता ऐसा सुना गया है। यह बहुत तीव्र होता है इसलिए इसकी मात्रा बहुत थोडी ही ली जाती है। श्यामक की रोटी आदि के प्रक्षेप की क्रिया सोमरस के समान करनी चाहिये। कई जगह इसमे श्यामक के अभाव मे बाजरे का उपयोग भी प्रक्षेप मे रोटी बनाकर उपयोग किया जाता है।

स्वाद के लिए पीने के समय खट्टे बेरो (बद्रीफल) का चूर्ण बुरक लिया जाता है। इससे स्वाद अच्छा बन जाता है। तीव्रता कम हो जाती है और हानि भी कम होती है।

कभी-कभी बेर चूर्ण के स्थान पर एक वनस्पति की सब्जी बनाकर खाई जाती है जो कि बहुत खट्टी सी होती है। कई स्थानो पर खट्टी चटनी बनाकर इसके साथ उपयोग मे लाई जाती है।

जहा सोमरस (गेन्गठी) बनाया जाता है उन्ही स्थानो पर तीव्र सोमरस (महासोम) अर्थात् 'पाखोई' बनाने का प्रचलन भी है।

कभी-कभी तीव्र सोमरस (पाखोई) पीने के समय अलमोरा (अलमोडा) की कोमल पत्तियो, कोम्पलो की चटनी नमक, मिर्च, पोदीना मिलाकर बनाकर भी प्रयोग की जाती है। इस वनस्पति के क्षुप की कोपले जब नई निकलती है तब दूर से ही चमकने लगती हैं जो लाल रग की होती हैं। तीव्र सोमरस के साथ दूसरी खट्टी कषायली चटनी का रिवाज परम्परागत चला आता है। यह सब स्वाद की दृष्टि से किया जाता है। सुश्रुत की स्वयंप्रभ नाम की यही वनस्पति मेरे विचार से इफेड्रा बोलता है इसका क्षुप

इफेड्रा वोल्गा (सोमकल्प) नामक वनस्पति की जाति का होता है। मुलायम पत्ते और कोपले, चमकदार लाल रग के खट्टे और कषायले होते हैं। मूल अत्यन्त कडवी, पेट दर्द व श्वास मे उपयोगी होती है।

सोमसुरा

आर्यों को नशा करना प्रिय नही था, सुरा अथवा मद्य पीने का निषेध स्वय वेदो और मनुस्मृति आदि वैदिक ग्रन्थो मे किया गया है, मद्य पीने वालो को पापी समझा जाता था, सोमरस स्वय कोई नशीला पेय नही, मदकारी का अभिप्राय महज सरूर के लिए हो सकता है, सरूर और नशे मे महान अन्तर है। फिर भी कालान्तर मे हीन व्यक्तियो मे सुरा का प्रचलन हो गया था जो आज भी है।

प्रथम पीने से बचे हुए सोमरस को जल मे डाल दिया जाता था। उस जलयुक्त झूठे सोमरस को भगी आदि हीन व्यक्ति अपने घर उठा ले जाते थे और उसमे गुड़ आदि का प्रक्षेप देकर वारुणी यन्त्र से सुरा निकाल ली जाती थी। जो अत्यन्त नशीली होती थी जिसे आर्यों से इतर व्यक्ति सेवन करते रहे होगे। यह तो हुई पुरानी बात।

प्राचीन वैदिक साहित्य मे सोमरस, तीव्र सोम (महा सोम) के साथ सोमसुरा का वर्णन भी मिलता ही है। अतः इस विषय मे सक्षेप मे कुछ विचार कर लेना उत्तम है।

सोम सुरा बनाने के लिए सोम कीम को बड़े वर्तन (मटके) मे डाल दिया जाता है और वर्तन को पानी से भर दिया जाता है। साथ मे गुड भी प्रक्षेप मे डाल दिया जाता है। २ या ४ दिन बाद मण्डवे, भिगुरा आदि की रोटी सी बनाकर प्रक्षेप दिया जाता है और अगले दिन वारुणी यन्त्र (श्रावणी यन्त्र) मे डालकर अर्क की तरह खीच ली जाती है। जिसमे मण्डवा, श्यामक आदि का प्रक्षेप नही दिया जाता उसे दवाई की सुरा कहा जाता है जिसका औषधि के रूप मे उपयोग होता है। शेष अन्न की मद्य नशे के लिए पीते हैं। जिस अन्न का प्रक्षेप दिया जाता है उसी की शराव मानी जाती है। जैसे—जौ की शराव, मण्डवे की शराव, चावलो की शराव आदि। इसकी बहुत सी किस्मे प्रचलित हैं। इस विषय मे अधिक कुछ लिखना हम उत्तम नही मानते व्यर्थ पृष्ठपेषण होता है। आर्य लोगो को तो सोमरस से ही स्नेह रहा है। प्रकरणवश यहा लिख दिया। कालान्तर मे सोमरस के अभाव मे सोमसुरा का प्रयोग आर्यों ने किया हो कह नही सकते।

सोमरस कल्पना मे प्रयुक्त अन्य औषधियां

सोमलता—इसका वर्णन इससे पहले किया गया है।

तिमूर—तोमर, नेपाली धनिया, तुम्बरू, सौरभ, तुम्बुल, मुँह फटा आदि नामो से पुकारा जाता है। इसकी जड व कोम्पलें काम मे आती है।

काशमो—काशमो, काशमोई, दारु हल्दी, दारु-हरिद्रा, दार्वी, पजन्या, पीत दारू, किगोरा, दारू हलदार, स्वर्णद्युति, स्वर्णप्रभा, कनक प्रभ, चतरोई, काशमल, चित्रा, किलोमोरा, झिरीसी, चौहार, आयुडाण्डा, चिरोर, चत्री, मिलकिसी, चौतरा आदि।

आड़—आड, आरुक, वीर सेन, वीर वीरानक, अरू यह प्रसिद्ध फल है। इसकी मूल व कोम्पलें काम मे आती हैं।

वेसन—यह १ या १॥ फीट का कटु व सुगन्धित क्षुप है जिसे कालसी, सैंय्या, चकरौता व जौन सार आदि स्थानो मे वेसन जडी के नाम से पुकारा जाता है। इसकी मूल का ही अधिकतर उपयोग होता है।

सेन्दारा—चकरौता व जौन सार मे इसी नाम से जाना जाता है। इसकी मूल काम मे आती है।

छामूर—यह तीव्र सुगन्धित कटु क्षुप है। जौनसार मे इसी नाम से पहचाना जाता है। यह अफसन्तीन अथवा किरमाणी अजवायन, या जगली अजवायन जैसा ही है। इसकी मूल व पचांग काम मे आते हैं। गडवीनी भी कहते हैं।

धारमो—धारमो, धारमोई, अनार, दाड़िम, दाडमी दन्त वीजक, तालवृन्त गरुडाहृत, यह प्रसिद्ध फल है। इसकी मूल व कोमल पत्ते सोमरस वनाने के काम मे आते हैं।

कारणोई—कारनोई, कारणोई, सुश्रुतोक्त कनियान, तितपाती, यह वासाँकुल की, वाँसे जैसी लम्बे, चौडे मुलायम इसके पत्ते होते है। यह रोमश और तीव्र कटु होती हैं। पत्ते अत्यन्त कडवे होते हैं। कालसी, सैंय्या, चकरौता, नागथात आदि स्थानो मे खूब होती है। इन्ही स्थानो व

जौनसार मे कारणोई अथवा करानीई नाम से जानी जाती है। इसके पत्ते काम में लिए जाते है।

यव—यव, जौ, जव, धान्यराज, दिव्य, पवित्र धान्य, दिव्य धान्य, सित शूक, सातु नाम का यह प्रसिद्ध अन्न है। यह भारत का सबसे प्राचीन अन्न है। वेदो मे इसकी बडी महिमा का उल्लेख है और यज्ञ मे हवन सामग्री मे इसका प्रयोग होता है। इसका आटा (चून-चूर्ण) बना कर सोम कीम बनाने के काम आता है।

मूञ्ज—वाण, मूञ्ज, मुञ्ज (मार्वड विशेष), भद्र मुञ्ज, यह तृण जाति की प्रसिद्ध दाह, तृषा, रक्त विकार हर औषधि है। इधर इसको चारपाई बुनने के लिए, वाण बनाने के काम मे भी लिया जाता है। सोमकीम बनाते समय विस्तरा बनानेके काम, सोमरस छानने के काम, सोमके वर्तन रखने के लिए इन्डवे बनाने के काम आती है।

मुञ्जी—मूञ्जी, धान, साठी आदि इधर धान की पुराली को मुञ्जी की पुराली कहते हैं। सोम कीम बनाते समय इसका सान्थरा, विस्तरा लगाते है तथा त्यौहार उत्सव आदि मे बडी मात्रा मे सोमरस बनाते समय वर्तनो के नीचे भी विछा कर मोटा गुदगुदा विस्तरा सा लगाया जाता है।

दूब—दूव, अमर दूव, सितालता दूर्वा सोम, शत वीर्या, सहस्रवीर्य, दूर्वा, शत पर्वा, अनन्त, भार्गवी, शत वल्ली, गोलोमी, हरी दूव, दुवडा, आदि इसके नाम हैं, पूजा मे देवताओ पर चढाया जाता है। वेदो मे इसकी बडी महिमा कही गई है। यह सोम कीम बनाते समय, सोम पूजा मे यज्ञ मे काम आती है। यह शीत वीर्य, चन्द्रमा के गुणयुक्त प्रभावशाली औषधि है इसीलिए तो सुश्रुत ने इसे दूर्वा सोम नाम से पुकारा है।

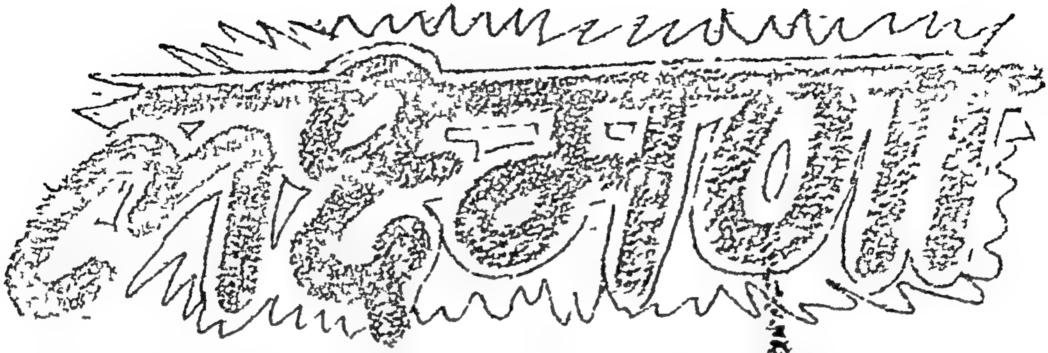
देवदार—देवदार, दारु, भद्र दारु, सुरभूरुह, केलोन केलु, दियार आदि नामो से प्रसिद्ध वृक्ष है। इसके पत्ते सोम कीम बनाते समय काम मे लाये जाते हैं।

बेर—वेर, बद्रिफल, यह प्रसिद्ध फल हैं। ये दो प्रकार के होते हैं बागी व जगली, इनका कोई विशेष महत्व सोम रस मे नही, परन्तु जगली खट्टे बेरो का चूर्ण बनाकर कभी कभी स्वाद के लिए तीव्र सोम पीने के वक्त प्रयोग मे किया जाता है जिससे स्वाद मे सुधार हो जाता है।

अलमोरा—यह इफेड्रा वोल्गा जाति का क्षुप है। जौनसार मे इसे अलमोरा, अलमोडा कहते हैं। इसकी मुलायम कोम्पलें स्वाद के लिए चटनी बनाने के काम आती हैं, बेर के चूर्ण के स्थान पर इसका प्रयोग अधिक होता है। इसकी कोम्पले कषायली, खट्टे स्वाद की होती है, पोदीना, नमक, मिर्च डाल कर चटनी बनाई जाती है। सोमरस पीते समय इसका उपयोग स्वाद के लिए परम्परागत होता आया है। इसकी मूल बडी कडवी होती है, स्थानीय लोग मूल को पका कर काढा बना कर ज्वर व पेट दर्द पर बहुतायत से प्रयोग करते है। पेट दर्द पर तो यह बहुत उत्तम औषधि मानी जाती है। सुश्रुतोक्त 'स्वय प्रभ' नाम की कही वनौषधि है।

श्यामक—यह सोम रस बनाने के काम आने वाली विशेष औषधि है, सोमरस बनाते समय इसकी रोटी जिसे जन भाषा मे 'कोदवें' कहते है बना कर उपयोग मे लाया जाता है वेद शास्त्रो मे इसे उपास्य अन्न माना गया है, जव और श्यामक को बहुत महत्व का अन्न माना जाता है। सोमरस बनाने के अलावा गरीब लोग इसकी रोटी भी बना कर खाते है, इसकी खीर बनाकर खाना तो बहुत उत्तम है, इसकी दूध से बनी खीर की यज्ञ मे आहुति देना श्रेष्ठ माना गया है। इसे जन भाषा मे झिगुरा, और श्यामक कहते है। झिगुरा, श्यामक, श्यामा, सुखमारा, अविक्रिया, राजधान्य, त्रिविज, तृणवीत्तम, समाधास, समाक, सावा, सामुला, श्यामधान आदि इसके प्रसिद्ध नाम है।

नोट—वेदो मे खाद्यान्नो मे जितनी प्रशसा जौं और श्यामक की की गई है उतनी किसी अन्य की नही की गई, सृष्टि के आदि से इन दो अन्नो की ओर आर्यों का विशेष ध्यान रहा है। ये दोनो अन्न स्वय जात पैदा होते थे, कही कही अब भी होते है। लेकिन कृषि इनकी बहुत प्राचीन समय से होती आई है।



श्री डा० रमेश शर्मा, बी०आई०एम०एस०, पी०जी०एस०, डी०एवाई०एम० (प्रसूति), इन्स्टीट्यूट आफ मैडीकल साइन्सेज बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी तथा अध्यक्ष राजकीय आयु० चिकि०जस्सल (तत्तापानी) शिमला हिल्ज (हि०प्र०)

लक्ष्मणा पर दो निबंध आए हैं इसमे से एक लेख पटियाला आयुर्वेदिक कालेज के स्नातकोत्तर विभाग से वहाँ के असिस्टेन्ट प्रोफेसर श्री वाई० एस० घमी की देख रेख मे श्रीमती सरितासूद वैद्याचार्या ने लिखा है। तथा

दूसरा लेख श्री डा० रमेशचन्द शर्मा बी० आई० एम० एस० डी० ए वाई० एम० प्रसूति तथा अध्यक्ष राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय जस्सल तत्ता पानी शिमला हिल हिमाचल प्रदेश द्वारा लिखा गया है। दोनो के लेख भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण के हैं। अतः दोनो का प्रकाशन किया जा रहा है। दोनो के विचार एक वस्तु के लिए विभिन्न दृष्टिकोण से है। विशेष तर्क-वितर्क न कर पाठको के विचारार्थ रखा जा रहा है। लक्ष्मणा जो शास्त्रीय विचार की है वह इनसे पृथक द्रव्य है। श्री शर्मा का लक्ष्मणा संबन्धी विचार वैद्या जी की अपेक्षा अधिक परिमार्जित है।

—विश्वनाथ द्विवेदी

देवभूमि भारत शताब्दियो से असख्य गुणकारी वनस्पतिओ का अक्षय भडार रही है। सजीवनी जैसी अचूक वनस्पतिया यहाँ युगो से अमृतवत मुर्दो मे जीवन फूंकती रही है। कालक्रम से अव्यवस्थित शिक्षा, राजनीतिक अस्थिरता, राज्यद्वेष, अल्पज्ञता तथा कपटी वनस्पति व्यापारियो की कृपा से यह सब लुप्त प्राय हो गई, परिणामस्वरूप औषधियाँ सन्दिग्ध सज्ञा प्राप्त करने लगी और आज इनकी सूची बहुत विस्तृत है। इन सबमे से एक लक्ष्मणा भी है जो अत्यन्त विवाद का विषय है।

विभिन्न आर्ष ग्रन्थो मे लक्ष्मणा का अत्यन्त सक्षिप्त वर्णन मिलता है। भावप्रकाश निघण्टु के अनुसार लक्ष्मणा का परिचय निम्न प्रकार से है—

पुत्रकाकार रक्तालपविन्दुभिर्लाञ्छितच्छदा।
लक्ष्मणा पुत्रजननी वस्तगन्धाकृतिर्भवेत।
कथिता पुत्रदाऽवश्या लक्ष्मणा मुनिपुङ्गवै॥

अर्थात लक्ष्मणा के पत्तों पर लाल रग के छोटे छोटे विन्दुओ पुरुप का आकार बना होता है तथा इनकी आकृति से वस्तगन्धा के समान होती है। यहाँ दोनो रेखाकित शब्द "पुत्रकाकार" तथा "वस्तगन्धा" का विवेचन आवश्यक है।

यदि "पुत्रकाकार" से मानवाकृति कद अर्थ लें, क्योकि लक्ष्मणा के मूल का प्रयोग करने का ही निर्देश है, तो इसकी तुलना चीन मे प्राप्य वनस्पति 'अॅरॅलिया क्विन्क्वीफोलिया" (Aralia quinquefolia, Fam Araliaceae) से की जा सकती है। इसे चीनी भाषा मे जिन्सेग (Ginsèng) कहते ह। इसकी जड को वहाँ बहुत प्रभावशाली माना जाता है। शायद इसका कारण इसका मानवाकृति से सादृश्य हो सकता हे। इसका पौधा छोटा तथा पत्ते करतलाकार होते हैं। इसकी जड का स्वाद कुछ तिक्त तथा सुगन्धित होता है। वहाँ इसे रसा-

यन मानते हैं। और जितना महत्व यहाँ लक्ष्मणा को दिया जाता है लगभग वैसा ही जिन्सेग को चीन मे देते हैं। लक्ष्मणा के रसायन गुणो के कारण ही सुश्रुत ने इसे नवजात शिशु को लक्ष्मणा सिद्ध घृतपान कराने का आदेश दिया है।

.. ·····द्वितीये लक्ष्मणा सिद्ध सर्पि ।

—सु० शा० अ० १०-१४

वस्तगन्धा से कुछ विद्वान "वन अजवायन" मानते हैं तथा कुछ इसका अर्थ "बकरे की गन्ध सादृश्य गन्ध वाला" करते हैं। इसका अर्थ "वन अजवायन" करना ही ठीक है क्योकि Thymus Serpyllum linn, Fam: Labiatae (थाईमस सर्पाईलम फै० लेबिएटी) के पत्ते अवृन्त, ईन्च के अष्टमाम से चतुर्थांश के घेरे मे किञ्चित आयताकार अण्डाकार होते हैं, और उन पर तैलीय धब्बे होते हैं। यहाँ तैलीय धब्बो को लाल रग के छोटे-छोटे बिन्दुओ से मिलाया जा सकता है अर्थात लक्ष्मणा के पत्ते वन अजवायन के पत्तो से साम्य रखते हैं।

मदनपाल निघण्टु मे लक्ष्मणा के विषय मे निम्न वर्णन मिलता है।

गोक्षीर सदृशं पुष्प रोमवल्लिसमन्वितम् ।
रक्त बिन्दु युक्त पत्र लक्ष्मणाऽऽकार उच्यते ॥

यहाँ लक्ष्मणा के पुष्पो का वर्णन "गोक्षीर सदृश" किया है अर्थात इसके पुष्प सफेद होते हैं परन्तु बिलकुल सफेद न होकर पीली झाँई से युक्त होते हैं क्योंकि गाय क्षीर पीली झाई वाला होता है। इसके साथ-साथ पुष्प रोमयुक्त होते है। यह वर्णन भावप्रकाश मे उपलब्ध नही हैं। मदनपाल निघण्टु का यह वर्णन कुछ हनुमान बेल (श्वेत गति) Ipomea Sepiaria Koen, Fam Convolvulaceae (आईपोमिया सेपिएरिआ कोएन फै० कावोल्व्युलेसी) से साम्य रखता है।

धन्वन्तरि तथा राजनिघण्टु मे श्वेत कण्टकारी को लक्ष्मणा कहा है परन्तु राजनिघण्टु मे मूलिकादि वर्ग मे फिर से लक्ष्मणा का उल्लेख है और इसके गुणो मे स्त्री वन्ध्यत्व विनाशिनी दिया है। इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि उस समय भी श्वेत कण्टकारी को लक्ष्मणा मानते थे, भावप्रकाश मे श्वेत कण्टकारी का निम्न वर्णन है—

श्वेता क्षुद्रा चन्द्रहासा लक्ष्मणा क्षेत्र दूतिका ।
गर्भदा चन्द्रमा चन्द्री चन्द्रपुष्पा प्रियङ्करी ॥

तथा इसके गुणो का वर्णन इस प्रकार दिया है—

तद्वत्प्रोक्ता सिता क्षुद्रा विशेषाद्गर्भकारिणी ।

इसमे सन्देह नही कि श्वेत कण्टकारी मे गर्भकारक गुण हो फिर भी लक्ष्मणा उससे भिन्न है। कारण विभिन्न ग्रन्थो मे दोनो वनस्पतियो का वर्णन एक साथ मिलता है। यथा— अष्टाग सग्रह, शारीर १-६१ मे पुसवन विधि मे लक्ष्मणा तथा श्वेत कण्टकारी का वर्णन एक साथ मिलता है—

तद्यथा—लक्ष्मणा वटशुङ्ग सहदेवी विश्वदेवा—नामन्यतमां क्षीरेऽभिपुत्यत्रीश्चतुरो··········। तथा पुष्योद्धृताया: श्वेत वृहत्या मूलकल्काद्रस नावयेत ।

अत स्पष्ट है कि यह दोनो अलग-२ वनस्पतिया हैं।

कोष मे लक्ष्मणा का अर्थ हस जाति का पक्षी किया है। इससे कुछ सकेत ऐसा मिलता है कि इसका क्षुप हंसाकृति का होता है। इसी आधार पर मध्य प्रदेश मे जबलपुर के पास के जंगलो में वन विभाग ने कुछ ऐसी वनस्पति पाई है जिसे लोग वहां पुंसवन कार्य के लिए प्रयोग करते हैं। इस क्षुप की आकृति कुछ हस से साम्य रखती है।

चरक सहिता सूत्र स्थान ४-४९ मे अमोघा नाम की वनस्पति का वर्णन है। जिसका अर्थ टीकाकार ने (चक्रदत्त मतानुसार) लक्ष्मणा किया है, परन्तु भावप्रकाश नि० के अनेकार्थनाम वर्ग मे अमोघा का अर्थ विडङ्ग और पाटला किया है।

डा० गङ्गासहाय पाण्डेय व श्रीकृष्णचन्द्र चुनेकर ने भावप्रकाश निघण्टु की टीका में परिशिष्ट भाग मे पृष्ठ ८४१ पर सूची इण्डियन वेलाडोना (Atropa Acuminata Royle ex Lindley Fam : Solanaceae) के वर्णन मे इसका नाम लक्ष्मणा ? करके दिया है जोकि इसका विदेशी भेद है।

इण्डियन मेडीसनल प्लाट्स के रचियता लेफ्ट० कीर्तिकर और मेजर बसु तथा श्री जयकृष्ण इन्द्र ने हनुमान बेल अथवा बनकलमी (Ipomea Sepiaria Koen) को लक्ष्मणा माना है। सभवतः इसका आधार मदनपाल निघण्टु है। हनुमान बेल प्राय. वर्ष भर होती है विशेषत चौमासा मे। इसका तना रोयेदार तथा पत्ते गिलोय के समान होते हैं। कुछ पत्तो मे ऊपर की ओर

बीच की नस के पास जामुनी रंग के छोटे होते हैं। पुष्प बहुधा फीके जामुनी रंग के और सिरे पीताभ होते हैं। पुष्प की गन्ध कनेर के फलों जैसी होती है। फल भूरे रंग के गोल तथा सिरे पर नुकीले होते हैं। बीज तिकोने हल्के भूरे तथा संख्या में दो होते हैं जिन पर सूक्ष्म बालों की रोमवल्ली होती है। इसकी एक सफेद फूल जाति भी होती है।

लाला रूपलाल वैश्य ने सं. १९७२ (सन् १९३६) में किसी साधु की सहायता से 'लक्ष्मणा' ऋषिकेश लक्ष्मण झूला के समीप एक झरने के किनारे प्राप्त की। इसका क्षुप लगभग १०" लम्बा पाया गया तथा पत्ते ब्राह्मी के पत्तों जैसे, पर कुछ बड़े थे। किन्हीं पत्तों पर लाल और कईयों पर श्वेत-श्वेत चिन्ह थे। किसी भी प्रकार का फूल या कन्द उसमें नहीं था। साधु ने उन्हें बताया कि श्वेत चिन्ह के पत्तों के प्रयोग से कन्या तथा रक्त चिन्ह वाले पत्तों से पुत्र पैदा होता है। इसी क्षुप का पचाग प्रयोग करने पर उन्हें उत्साहवर्धक परिणाम भी मिले।

अब तक के वर्णन से इतना स्पष्ट हो गया है कि आर्षग्रन्थों में यह वर्णन नहीं कि लक्ष्मणा का क्षुप होता है या लता। विभिन्न ग्रन्थों में निम्नलिखित वनस्पतियों को लक्ष्मणी नाम दिया गया है—

१—Biophytum Sensitivum Linn. DC; Fam. Geraniaceae (बायोफाईटम सेन्सिटिवम डी. सी० फै० जिरेनिएसी)।

२—Ipomoea Sepiaria Koen, Fam Convolvulaceae (आईपोमिया सेपिएरिया कोएन फै० कन्वोल्व्युलेसी)।

३—Mandragora Automnalis Spreng, Fam Solenaceae (मैन्ड्रागोरा आटम्नेलिस स्प्रे, फै० सोलेनेसी)।

४—Atropa Mandragora; Fam: Atropaceae (एट्रोपा मैन्ड्रागोरा, फै० एट्रोपेसी)।

५—Smithia Geminiflora Roth, Fam. Leguminoceae (स्मिथिया जैमिनिफ्लोरा रोथ फै. लेग्यू-मिनोसी)।

परन्तु इन सब के लक्ष्मणा होने में सन्देह है।

क्योंकि अनेक वर्णन लक्ष्मणा के बारे में मिलते हैं परन्तु कुछ आधार ऐसे स्थापित किए जा सकते हैं जिनसे किसी निश्चय पर पहुंचा जा सकता है। अतः निम्न लक्षणों या चिह्नों वाली वनस्पति लक्ष्मणा कही जा सकती है।

१—वह वनस्पति जिसके पत्तों पर लाल चिन्ह हों।

२—जिसकी मूल मानवाकृति की हो—

३—पुत्रदाता गुण—सबसे महत्वपूर्ण आधार जो लक्ष्मणा के लिए होना चाहिए वह है इसका पुत्रदाता गुण। अन्य वनस्पतियों जैसे श्वेत कंटकारी में गर्भकारक गुण तो अवश्य हैं परन्तु पुत्रदाता गुण नहीं। ग्रन्थों में इसका वर्णन विशेषतः पुंसवन कर्म में आया है। सुश्रुत शरीर अ० २ के अनुसार—

लब्धगर्भायाश्चैतेष्वहःसु लक्ष्मणा वटशुङ्ग सहदेवा विश्वदेवानामन्यतम क्षीरेणाभिषुत्य त्रींश्चतुरो वा विन्दून दद्याद्दक्षिणनासापुटे पुत्रकामायै न च तान्निष्ठीवेत।

काश्यप संहिता के जाती सूत्रीयाध्याय में पुत्रेष्टि के लिए लक्ष्मणा के नस्य का वर्णन है—

लक्ष्मणामद्भिर्मलोड्य 'सोमः पवत" इत्येतेन शतजप्तेन सावित्र्या व्याहृतिभिः अपांदेविरूपसृज इति मन्त्रेण नस्यं दत्वा वामदेव्यं जपित्वा दक्षिणेन पार्श्वेन स्त्रियं शाययीत वामपार्श्वेन पुमानूर्ध्वोत्तरेणोपशयति। शनैः प्रजार्थं चाचरेत

(काश्यप ने लक्ष्मणा का प्रयोग गर्भ धारण से पहले करने को कहा है।)

भैषज्यरत्नावली में योनिव्यापद चिकित्सा में पुत्रप्रद योग निम्न प्रकार से वर्णित है—

पुष्योद्धृतं लक्ष्मणायाश्चक्राङ्कायास्तु कन्यया।
पिष्टं मूलं दुग्धघृतपीतं भूतौ तु पुत्रदम्॥
अथ— पुष्यार्के योगोद्धृत लक्ष्मणाया,
मूलं तथा श्वेत बलान्तु पिष्ट्वा।
अप्येकवर्णा पयसा निपीतं,
स्त्रियः स्मृतं पुत्रकरं मुनीन्द्रैः॥

अष्टांग संग्रह शारीर १-६१ में निम्न वर्णन उपलब्ध है।

"...पुष्योद्धृताया लक्ष्मणाया मूलमल्पमुदुम्बर मात्रं पयसा पिबेत्पुत्रस्योत्पादाय स्थितये च—

इस प्रकार स्पष्ट है कि पुत्रदाता गुण लक्ष्मणा का विशिष्ट गुण है जो श्वेत कटकारी या अन्य में नहीं है। अतः भावप्रकाश निघण्टु में वर्णित लक्ष्मणा को ही लक्ष्मणा समझना चाहिए, अन्य नहीं और किसी निर्णय पर पहु-

चने से पहले इन सब तथ्यों को समक्ष रखना आवश्यक है। सतत परिश्रम व सहयोग निश्चय ही लक्ष्मणा को प्रकाश मे लाने मे सहायक होगा ऐसा विश्वास है।

संदर्भ ग्रंथ –

१—अष्टांग सग्रह—अत्रिदेव गुप्त निर्णय सागर, बम्बई।

२—अष्टांग हृदय भागीरथी टिप्पणी चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी १९५६।

३—काश्यप संहिता टीका श्री सत्यपाल। चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी १९५३।

४—चक्रदत्त टीका श्री जगदीश्वर त्रिपाठी चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी १९४९।

५—चरक संहिता टीका प० काशीनाथ शास्त्री तथा डा० गोरखनाथ चतुर्वेदी चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी।

६—भैषज्य रत्नावली श्री अम्बिकादत्त शास्त्री चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी १९६९।

७—भावप्रकाश निघण्टु डा० गंगासहाय पाण्डेय व श्रीकृष्ण चन्द्र चुनेकर चौखम्बा प्रकाशन १९६९।

८—मदनपाल निघण्टु श्री गंगा विष्णु लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १९५४।

९—राजनिघण्टु सहितो धन्वन्तरीय निघण्टु टीका नारायण विट्ठल आनन्दाश्रम प्रेस पूना १८९६।

१०—संदिग्ध निर्णय वनौषधि शास्त्र प० भगीरथी स्वामी १४३ हरीसन रोड कलकत्ता १९३६।

११—सुश्रुत संहिता डल्हण निर्णयसागर प्रेस बम्बई।

१२—धन्वन्तरि वनौषधि विशेषांक छठा भाग।

१३—धन्वन्तरि बूटी चित्रांक भाग ११ लाला रूपलाल जी वैश्य १९३५।

१४—Chopra, R. N., Chopra, I.C , Handa, K. L., Kapoor, L D. Chopra's Indigenous Drugs of India 2nd Ed. U. N. Dhar & Sons Pr. Ltd. Calcutta 1958

१५—Kirtikar, K. R., Basu, B. D., Indian Medicinal Plants 2nd Ed. L. M. Basu Allahabad 1933.

लक्ष्मणा

— श्रीमती सरितासूद वैद्याचार्या एम ए- बाइ.एम (प्रथम)
राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, पटियाला

लक्ष्मणा—लक्ष्मणा नाम की औषधि आयुर्वेदोक्त संदिग्धौषधियो मे एक है न केवल संदिग्ध ही बल्कि अप्राप्य भी। वैसे तो इसके नामार्थ मे ही भिन्नता है। यथा कोष मे हस जाति का पक्षी और शब्दकल्पद्रुम मे महाभारत तथा भागवतोक्त राजा दुर्योधन की कन्या परन्तु आयुर्वेद मे लक्ष्मणा का अर्थ औषधि लिया है।

परिचय—सर्व प्रथम निघण्टु भावप्रकाशोक्त लक्षणो से इसका स्पष्टीकरण किया जा सकता है। यथा पुत्राकार रक्तबिन्दु .... लक्ष्मणा मुनिपुङ्गवैः। कैयदेव निघण्टु मे लिखा है कि भारत के भिन्न-२ शैलवनो मे पाई जाती है। वस्तुतः यह विभिन्नता तो इसके न मिलने से है असली लक्ष्मणा एक है। अत. इसकी विभिन्नता अस्वीकार्य है। शालिग्राम तथा मदनपाल निघण्टुओ में और द्रव्यगुण विज्ञान मे लक्ष्मणा नाम से कण्टकारी का ही ग्रहण किया जाता है जबकि लक्ष्मणा तथा कण्टकारी के रस गुण वीर्य विपाकादि मे भिन्नता है। लक्ष्मणा मधुर रस, शीत, गुरु, सर, रुक्षादि गुण युक्त, शीतवीर्य, मधुर विपाकी और कण्टकारी कटु-तिक्त रस वाली, लघु-रूक्ष उष्ण गुणयुक्त, उष्णवीर्य तथा कटु विपाकी होती है। कण्टकारी क्षुद्रा तथा बृहती भेद से दो प्रकार की पुनः श्वेत फूल वाली होने से श्वेत क्षुद्रा तथा श्वेत बृहती दो प्रकार की होती है। इस प्रकार चार प्रकार की कण्टकारी मे से कौन सी लक्ष्मणा है यह विनिश्चय भी तो होना चाहिए।

आजकल चार द्रव्यो को कण्टकारी माना जारहा है। परन्तु उनके लक्ष्मणा होने मे संदेह है। क्योकि आधुनिक वनस्पति शास्त्रो को देखने से किसी मे भी शास्त्रोक्त लक्षण नही मिलते। वे द्रव्य निम्न हैं—

1–Ipomoea Sepiaria
2–Atropa Mandragora
3–Smithia Geminiflora
4–Biophytum Sensitivum

तृतीय तथा चतुर्थ के स्वरूपमे भिन्नता है। लक्ष्मणा के पत्ते एकान्तर होते हैं जबकि इनके संयुक्त (Compound)

तथा एक वीच मे उसके चारो ओर घेरे के रूप मे (Worted) होते हैं। यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान मे तो इसे धत्तूरादि वर्ग मे उल्लिखित किया है शायद पत्तो की आकृति धतूरे के पत्रो से मिलती हो, परन्तु एक ही नाम वहुत से द्रव्यो को दिया जा सकता है। इसलिए जहा जिसका प्रसग हो वहा उसे ही ग्रहण करना चाहिये। इसके गुण कर्मों मे लिखा है कि स्वेद तथा दूध की उत्पत्ति वन्द करती है तथा विशेषकर मूत्रजनन और हृद्य है। जबकि प्रथम कार्य दुग्धोत्पत्ति को बन्द करना नही कर सकती। रसायन होने से, रसायन तो दुग्धवर्द्धक हुआ करते हैं। रसायन कहते ही उसे हैं जो रसादि-धातुओ की पुष्टि करे यथा—

लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम्।

सुप्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्रज्ञ जयकृष्ण इन्द्र जी तथा इण्डियन मेडिसिन प्लाण्ट्स के रचियता L K S. M B ने Ipomoea Sepiaria को लक्ष्मणा माना है। इसे गुजराती मे हनुमान वेल, हिन्दी तथा वंगाली ने वनकलमी कहते हैं। इण्डियन मैटेरिया मैडिका में भी इसी का सक्षिप्त वर्णन है। इसका रस तीक्ष्ण एसिड तथा सखिया का प्रतिविष है। इसकी उत्पत्ति पौवो पर वताई है। वाद मे लिखा है कि सफेद फूल जाति ही लक्ष्मणा है। अतः लक्ष्मणा इससे भी भिन्न हुई।

वास्तविक लक्ष्मणा की आकृति मे भी भिन्नता है। कोई तो इसे क्षुप मानते हैं, कोई लता। वगाल के कविराज हरलाल गुप्त एक जाति का कन्द मानते है जो कि हिमालय जैसे दुर्गम स्थानो में होता है। पत्र रात्रि को दीपक के समान चमकते हैं। प्रात. झड जाते है। रात्रि को पुन. नए आते हैं। अत' दिव्यौषधि कही जा सकती है।

क्षुपाकार लक्ष्मणा के पत्ते कुशपत्राकार तथा लता के ताम्बूलपत्राकार होते हैं। क्षुप का कन्द खूब श्वेत तथा अधिक लुआवदार होता है जवकि लता का कद कम श्वेत तथा कम लुआवदार होता है। इसलिए प्रथम उत्तम तथा द्वितीय मध्यम होता है। गर्मियो में पौधे जल जाते हैं जबकि कन्द जीवित रहते हैं और वर्षा ऋतु मे पौधे के साथ-२ वृद्धि को प्राप्त होते हैं। आश्विन तथा कार्तिक में प्रौढावस्था मे होता है, इसी समय सेवन करना हितावह है। इससे पूर्णतया कन्द सिद्ध होता है परन्तु पत्र, फल, फूल होते ही नही ऐसा नही है क्योकि कन्द जाति हस्तिकन्द तथा कूष्माण्डादि पर पत्र, फल, फूल होते हैं। कन्द होने के कारण भी इसमे भ्रान्ति हो जाती है क्योकि इसके प्रयोग मे जड या पचाँग लिखा है। कन्द भूस्थित काण्ड है और इसी कारण इसे मूल लिख दिया गया है। यह भी हो सकता है जो कन्दरहित अन्य मानते हो वो इससे भिन्न कहते हैं।

वस्तुत लक्ष्मणा भावप्रकाशोक्त लक्ष्मणा ही है। यथा—"पुत्राकार-रक्ताल्पविन्दुभिलाञ्छिता सदा लक्ष्मणा पुत्रजननी वस्तगन्धाकृतिर्भवेत् शरत्काले भवति सा कथिता पुत्रदाऽवश्य लक्ष्मणा मुनिपुङ्गवैः।" वस्तगन्धा का अर्थ कही वकरे की गन्ध सदृश, कही वन अजवायन, कही तुलसी करते है। शालिग्राम ने वेल पुत्रक सदृश लिखी है। पुत्रक के दो अर्थ किये हैं— दवना और पुत्र। दवना का अर्थ है वन अजवायन (आकृति समान होने से) वस्तगन्धा का अर्थ इसमे छोड दिया है। अत क्षुप वन अजवायन के समान, पत्ते तुलसी की तरह, कन्द पुत्राकार तथा पत्तो पर भी पुत्राकार लाल रग के छीटे होते हैं।

विभिन्न भाषाओ मे नाम—हिन्दी–वनकलमी, लक्ष्मणा, वगाली–वनकलमी, मराठी–आमटी, गुजराती–हनुमानवेल; कच्छ–रात्ती गूमड वेल, तेलगू–मेटातूती, अंग्रेजी–Spotted Leaved Ipomoea, लेटिन-Ipomoea Sepiaria

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारत, सीलोन, मलाया, फारमोसा मे रास्ते के दोनो ओर खेतो, वगीचो, वाढ़ो पानी के छोरो पर पाई जाती है।

रस—मधुर, गुण—सर-शीत-गुरु-शीत, वीर्य—शीत, विपाक—मधुर, प्रभाव—वल्य, वात-पित्तनाशक, गर्भ तथा कफ, शुक्रोत्पादक।

गुण-कर्म—रस तीक्ष्ण दाहक होने से मूत्रल है। गर्भ तथा पुत्रदात्री है। गर्भ स्थापन कार्य भी करती है।

सोमल की प्रतिविष है।

रसायन, वलदायक, त्रिदोषनाशक, स्त्रीवन्ध्यत्व विनाशक है।

प्रयोज्याङ्ग—कन्द (अथवा मूल) तथा पचाङ्ग।

प्रयोग—वेदो मे गर्भाधान को वहुत महत्व प्राप्त है। अथर्ववेद मे वीर्य की पुष्टि तथा गर्भाशय की निरोगिता वनाये रखने के लिए कहा है।

गर्भिणी के गर्भ मे रहता हुआ गर्भ सुखपूर्वक उत्पन्न हो तथा पुंसवन कर्म का भी उल्लेख किया है। इसके लिये औषधि का विधान है। अत. वैदिक काल मे भी इसका प्रयोग होता होगा।

चरक संहिता मे शरीर स्थान के अन्तर्गत जातिसूत्रीमाध्याय मे तथा सूत्रस्थान चतुर्थाध्याय मे प्रजास्थापनौषधियो मे लक्ष्मणा का प्रयोग धारण, पान (दूध तथा घृत सिद्ध करके) पुष्यनक्षत्र मे जलस्नान तथा सदैव स्पर्शनार्थ प्रयोग का विधान है।

सुश्रुत संहिता मे शरीरस्थान के शुक्रशोणिताध्याय के अन्तर्गत दूध मे पीसकर पुत्र की कामना के लिए दक्षिणी नासापुट मे तथा कन्या की इच्छा के लिए वाम नासापुट में ३-४ बूंद डालें। परन्तु थूकना नही चाहिए।

उत्तरतन्त्र शकुनि प्रतिषेधाध्याय मे धारणार्थ प्रयोग है। अष्टाग हृदय मे गर्भावक्रान्तिअध्याय मे पुसवनकर्म के लिए लक्ष्मणा की जड दूध में पीसकर मुख मे या नासा द्वारा पान करने से पुत्र गर्भ की उत्पत्ति होती है, पुत्र दीर्घायु होता है। मृतगर्भा दोष नष्ट होता है।

काश्यप संहिता मे भी जातीसूत्रीयाध्याय मे पुत्रेष्टि कर्म के लिए जल मे घोल कर नस्य लें।

भैषज्यरत्नावलि मे योनिव्यापत चिकित्सा मे पुत्रप्रद तथा पुंसवन योग में लक्ष्मणा का प्रयोग है। लक्ष्मणा को पुष्य नक्षत्र मे उखाड़कर कन्या के हाथो पिसवाकर ऋतु स्नान के बाद ३ दिन तक दूध और घी के साथ पीने से अवश्य पुत्र प्राप्ति होती है।

यदि बन्ध्या का पति पुष्य नक्षत्र मे लक्ष्मणा को जड़ से उखाडकर पीसकर घृत से मिलाकर स्त्री को चटावे और भोजनार्थ दुग्धान्न देवे तो सेवन के बाद निश्चय ही गर्भ धारण होता है।

योग तरङ्गिणी मे शिवलिङ्गी और लक्ष्मणा की जड को पुष्य नक्षत्रादि शुभ योग मे पीस घृत से नस्य ले तो बलवान पुत्र तथा बाद में कन्याओ की उत्पत्ति होती है।

मूत्रल होने से अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र तथा पूयमेह मे दी जाती है। बीज रजोरोधनाशक, कष्टप्रसव तथा क्लैब्य रोग मे दिये जाते है। इस तरह अन्य पुस्तको मे भिन्न-२ प्रयोग गर्भ अथवा पुत्र की प्राप्ती के लिए ही होते हैं।

वर्गीकरण—चरक मे प्रजास्थापन गुडूच्यादि वर्ग, शतावर्यादि वर्ग, मूलकादि वर्ग, आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावलि त्रिवृत्तादि कुल में लक्ष्मणा की गणना है।

संदिग्धता—चीन मे Arlia Quinquefolia Famous Arliaceae नामक एक पौधा पाया जाता है, जिसे जिन्सिंग कहते हैं। इसकी जड़ को वहा प्रभावशाली औषध मानते हैं। शायद इसका कारण मानवाकृति से सादृश्य हो। वहां के चिकित्सक इसे रोग तथा जराव्याधिनाशक मानते हैं। लक्ष्मणा के वर्णन मे पुत्राकार का अर्थ यदि मानवाकृति वन्द करें तो दोनो में साम्यता मालूम होती है। क्योकि जितना महत्व अपने यहाँ लक्ष्मणा का है उतना ही चीन मे जिन्सेंग का है। इसका पौधा छोटा, पत्ते करतलाकार, जड का स्वाद किंचित् कडवा तथा जड़ सुगंधित होती हैं। निम्नोक्त चारों लक्ष्मणा के नाम से हैं—

1. Ipomoca Sepiaria Koen Family–Convolvulaccae

2. Atropa Mandragora Family-Atropaceae

3. Smithia Gemniflora Roth Family Leguminoseae.

4. Biophytum Sensitivum D.C Family–Geraniaccae.

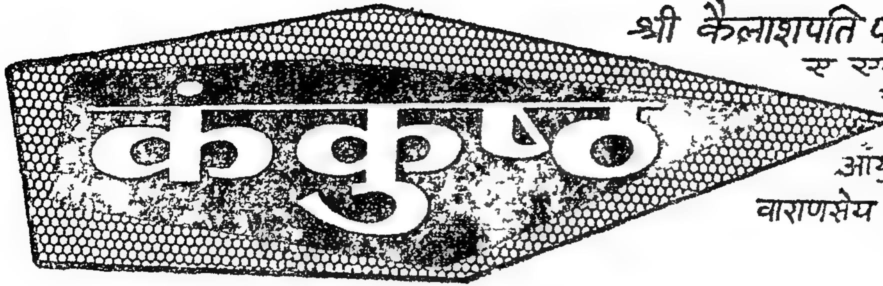
अत जहाँ-जहाँ अनुसन्धान केन्द्र (Research Centres) हो वहाँ-२ इसके ऊपर अनुसंधान होना आवश्यक है।

प्रसिद्ध तथा अनुभूत योग-प्रदरादियोनिरोग फलघृत मे शार्ङ्गधर प्रदररोग चि० मे 'लक्ष्मणा लोह' मात्रा २ रत्ती बाजीकरण लक्ष्मणा लोह, लक्ष्मणारिष्ट २ तो० प्रातः साय एक मास तक।

अनुपलब्ध होने से इसके प्रयोग मे प्रतिनिधि स्वरूप श्वेत कण्टकारी को लेते हैं। यह भी अपने उष्ण तथा कफ वातनुतादि गुणो से हनुमानवेल की तरह गर्भाशय का शोधन करके गर्भ की उत्पत्ति करती है। परन्तु कण्टकारी ही लक्ष्मणा है ऐसा नही, क्योकि कण्टकारी की तरह न तो इस पर काटे होते हैं, न ही फूल, पत्ते। मुख्य बात यह है कि कण्टकारी के गुणो मे केवल गर्भप्रद है ऐसा लिखा है जबकि लक्ष्मणा के परिचय तथा वर्णन मे अवश्य ही पुत्रदा है ऐसा वर्णन है। अत लक्ष्मणा इससे भिन्न है।

इसलिए वर्तमान समय मे अनुपलब्ध तथा उपलब्ध मे उचित परिचय न मिलने से कुछ भी कहना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है।

Written under the guidence of Shri Y.S Ghei,
Asstt Professor-Govt. Ayurvedic College,
Patiala.



श्री कैलाशपति पाण्डेय आयुर्वेदाचार्य
ए एम एस बी०
साहित्याचार्य, काव्यतीर्थ
रीडर द्रव्यगुण :-
आयुर्वेद महाविद्यालय,
वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी-२

इसके लेखक आयुर्वेदाचार्य श्री कैलाशपति पाण्डेय रीडर द्रव्यगुण आयुर्वेद महाविद्यालय वा० स० वि० वि० वाराणसी के है। इन्होने वानस्पतिक ककुष्ठ की सिद्धि के लिए जितने सभव विकल्प हो सकते है, उनको सामने रखकर सिद्ध किये हैं कि ककुष्ठ गार्सिनियाँ मौटेला नामक लघु वृक्ष का परिष्कृत निर्यास है और मृद्दारशृ ग को ककुष्ठ के नाम से ग्रहण नही करना चाहिए।

विद्वान लेखक ने तर्क वितर्क के द्वारा अपने विचार की परिपुष्टि करने मे कोई कसर नही रखी किन्तु सत्य यह है कि रस शास्त्रियो का वर्णित ककुष्ठ मृद्दारशृङ्ग है जो कि नाग का उपधातु लेथार्ज (Letharge) है और जो वर्णन दिये गये है तदनुसार सही अर्थ मे मृद्दारशृ ग ही है और वनस्पति शास्त्रियो का ककुष्ठ सुवर्णक्षीरी का निर्यास या गैम्बोज का निर्यास ककुष्ठ है। किन्तु लेखक को वानस्पतिक कंकुष्ठ के नाम से भ्रम फैलाकर मुर्दासिग को लेना स्वीकार नही है। उन्होने इस पक्ष मे ही तर्क दिये हैं कि ककुष्ठ से केवल गार्सिनियाँ मेटेला का निर्यास ही लेना चाहिए।

—विश्वनाथ द्विवेदी

वैद्य समुदाय मे ककुष्ठ के सम्बन्ध मे अर्से से भ्रान्ति चल रही है। यद्यपि सहिता काल में यह निर्विवाद था लेकिन प्रयोग अत्यन्त विरल मिलता है। चरक सहिता मे इसका उल्लेख नही है। सुश्रुत सहिता मे केवल एक स्थल पर उल्लेख मिलता है। अष्टाग सग्रह एव हृदय मे भी उल्लेख नही मिलता है।

इसकी गणना रसशास्त्रीय ग्रन्थो मे उपरस के अन्तर्गत भी की गई है और प्राय मध्यकालीन रसशास्त्र के ग्रथो से यह भ्रमविशेष पल्लवित हुआ है, जहाँ कतिपय प्राणिज[१] द्रव्यो मे भी ककुष्ठ की परिकल्पना दृष्टिगोचर होती है।

इस प्रकार देश भेद से, काल भेद से ककुष्ठ के स्थान पर निम्न द्रव्य प्रयोग मे आते रहे हैं—

---

१ केचिद्वदन्ति कङ्कुष्ठ सद्योजातस्य दन्तिनः। वर्चश्च श्यामपीतामरेचन परिकथ्यते ।।
कतिचिन्तेजिवाहाना नालं कङ्कुष्ठसंसकम्। वदन्ति श्वेत पीताभ तदतीव्र विरेचनम् ।।

—र० र० स० ३/११५

××× वर्चस्तद्यद्गजोद्भवम् । क्वचिदन्यत्र सप्रोक्त तेजिवाहस्यनालजम् ।। —रस कामधेनु

वदन्ति ककुष्ठमथापरे हि सद्य प्रसूतस्य हि दन्तिन. शकृत्।
चतुर्थ कंकुष्ठमिहैव वाजिनाम् नाल हि केचित् प्रवदन्तितज्ज्ञो ।। —रस प्रकाश सुधाकरः

१—सद्योजातदन्तिमल※

२—सद्योजात अश्व का नाभिनाल●

३—सद्योजात अश्वमल

४—मृद्दार श्रृंग (मुर्दा सग) Litharge Pb O plumbimonoxidum (Lead oxide)

५—उसारे रेवन्द

६—रेवन्द चीनी मूल (Rheum emodi)

७—हिमावती निर्यास (स्वर्णक्षीरी निर्यास) Euphorbia Thompsomia

८—ककुष्ठ (Gamboge)

इस भ्रांति का कारण एक मात्र इतना ही प्रतीत होता है कि यह दुर्लभ वनौषधि थी और भारतीय भू भाग के पश्चिमोत्तर प्रदेश मे इसके कुछ वृक्ष उपलब्ध होते थे। विशेषत' इसका आयात बाहर श्याम (Combodia) से होता था इसलिए इसके स्वरूप एव आकृति को देख कर भिन्न लोगो ने विभिन्न परिकल्पना कर डाली थी। उसी प्रकार की भ्रांतियाँ परवर्ती टीकाकारो ने भी लिख डाली है जिससे यह और सदिग्ध हो गया है। सम्प्रति इसके शास्त्रीय स्वरूप एव प्रकृति का विचार कर भ्रांति के निराकरण का प्रयास अपेक्षित है।

प्रथम तीन मान्यतायें तो नितांत भ्रममूलक हैं जो कि ककुष्ठ के वाह्य आकार एव वर्ण को ध्यान मे रख कर गर्भगत मल यदि शुष्क हो जायेगा तो प्राय. श्याम पीताभ होगा और उसके स्थूलता के आधार पर वृहदाकार पशु के गर्भमल की परिकल्पना साकार हुई होगी। तीसरी परिकल्पना भी अश्व के नाभिनाल की भ्रमवश परिचलित हो गयी होगी, जो कि मात्र भ्रान्ति होने से किञ्चिद भी विचारार्ह नही है।

अत: विशेष रूप से मृद्दारश्रृग (मुर्दासङ्ग) तथा उसारे रेवन्द किंवा ककुष्ठ के सम्बन्ध मे सदिग्धता विचारणीय है। इसी प्रसङ्ग मे रेवन्दचीनी मूल तथा स्वर्णक्षीरी (हिमावती) निर्यास भी स्पष्ट हो जाना चाहिए।

अधिकाश प्राचीन निघण्टुओ मे-प्रायश वनौषधि श्रेणी मे ही यह वर्णित है जैसे—

आचार्य हेमचन्द्र के निघण्टु शेष मे—वृक्षकाण्ड,
मदन पाल निघण्टु मे—अभयादि वर्ग,
धन्वन्तरि निघण्टु मे—चदनादि वर्ग,
शोढल मे—चदनादि वर्ग

मदन विनोद मे तो ककुष्ठ और स्वर्णक्षीरी का एक साथ ही ऊपर नीचे पाठ है।

कतिपय निघण्टुओ मे जैसे—
राज निघण्टु मे स्वर्णादि वर्ग
भावप्रकाश निघण्टु मे धात्वादि वर्ग

शालिग्राम निघण्टु मे धातुपधातु वर्ग मे उल्लेख

इसके गुणाधिक्य के कारण तथा रस (पारद) का उपकारक※ या सहायक होने से उपरस मे गणना हो जाने से उस उपरस के वर्णन-अनुरोध से उन वर्गो मे उल्लेख हो गया है—प्रतीत होता है।

कंकुष्ठ के शास्त्रीय पर्याय

ककुष्ठम्—कुष्ठरोग मे कम्-सुखदायक होने से।

※ सद्योजातस्य करिण शकृत् कंकुष्ठमुच्यते। यद्वासद्यः प्रसूतस्य वाजिवालस्य विदुस्मृतम्॥
नालम्वा वाजिवालस्य इत्येव ककुष्ठके भ्रम'। —आयुर्वेद प्रकाश

● सद्योजातस्य करिण शकृत ककुष्ठमुच्यते। यद्वासद्यः प्रसूतस्य वाजिवालस्य विदुस्मृतम्॥
नाल वा वाजिवालस्येत्येवम् नानाविधमतम्, आप्तवाक्यात्प्रमाण तु सर्वेषा वचनं जगु.॥ —रसेन्द्र पुराण २४३

※ गधाश्मगैरिकासीसकाक्षीताल शिलाञ्जनम्। ककुष्ठ चेत्युपरसश्चाष्टौ पारद कर्मणि॥ —र. र. समु.

ककुष्ठ कालकुष्ठ च विरङ्ग रङ्गदायकम्। रेचकं पुलक ह्रास शोधन कालपालकम्॥ —धन्वन्तरि
कंकुष्ठं कालकुष्ठं च विरग रगदायकम्। —शालिग्राम
रेचक पुलक चैव शोधक कालपालकम्। —राजनिघण्टु
ककुष्ठ काककुष्ठ च विरग कोलकाकुलम्। —भावप्रकाश
ककुष्ठे स्यात्काककुष्ठ पुलक काकपालक.। रेचन शोधनो ह्रासो विरगो रगदायक॥ —निघण्टु शेष
कङ्कालकुष्ठ ककुष्ठ रेचन रगनायकम्। शोधन पुलह ह्रास वराग कुज्जवालुकम्॥ —मदनपाल नि०
ककुष्ठे मलसम्भूत पुलक कालवालुकम्। ह्रासाख्य काककुष्ठ च वराग रगनायकम्॥ —रसकामधेनु
ककुष्ठं काककुष्ठ च वरांग कोलवालुकम्। —आयु० प्रकाश
स्वर्णक्षीरी हिमवती ककुष्ठस्तीक्ष्णदुग्धिका। —अष्टाग निघण्टु

कालकुष्ठम्—कुष्ठरोग निवारण मे काल (अन्तक) के समान उपयोगी।

काककुष्ठम्—काश्मीरज औषधि विशेष कुष्ठ के स्थान पर मिश्रित कर बेचने से।

विरङ्गम्—विशिष्ट रङ्ग (रञ्जक) होने से।

रङ्गदायकम्—विशिष्ट राग प्रदायक होने से।

रेचकम्—विरेचन कारक होने से।

पुलकम्, पुलहम्—हलका फुलका होने से।

ह्रासम्—अपेक्षाकृत भार मे अल्प होने से।

शोधनम्—वमन-विरेचन द्वारा दोष शोधक होने से।

कालपालकम्—काल निश्चित अवधि १० वर्ष की कालमर्यादा के बाद ही वृक्ष से सग्रहीत होने से, अथवा १० वर्ष तक वीर्य निर्विकार रहने से।

काकपालकम्—नीलवर्ण का वृक्ष होने से काक पक्षि विशेष का रक्षक होने से। तथा काक अपना घोसला बनाता है।

कोलकाकुलम्—कोल जाति विशेष के लिये कावुल वर्ण विन्यास मे रञ्जक द्रव्य होने से उपयोगी।

कङ्कालकुष्ठम्—ककि गतौ धातु से औणादिक कालन प्रत्यय करके कङ्काल शब्द निष्पन्न होता है, अत. शोधक होने से गति विशेष प्रदायक कुष्ठ द्रव्य के मूलवत् स्थूल खण्ड विशेष होने से।

वराङ्गम्—स्वर्णवत् श्रेष्ठ पीतवर्ण का होने से।

कालवालुकम्—उचित काल (१० वर्ष) पर परिपक्व होने से वालुका के समान निर्यास कण उपलब्ध होने से, उससे कम या अधिक काल मे उत्कृष्ट कर्ण न उपलब्ध होने से।

मलसम्भूतम्—मल धारणे (भ्वादि) धातु से पचापच ३/१/१३४) करके मल शब्द निष्पन्न होता है, अत. वास के खोखला मे कुछ काल धारण करने से यह बनता है—यह प्रकट करता है।

कोलवालुकम्—कोलोभेलक उत्सङ्गोऽङ्कपाल्या चित्रकेकिरौ, इस हेमकोष के आधार पर चित्रकारी मे उपयोगी वालुकावत् सूक्ष्मकण विशेष रूप चूर्ण होने से।

कुञ्जवालुकम्—कुजि अव्यक्ते शब्दे (भ्वादि)धातु से बाहुलकात् निष्पन्न कुञ्ज शब्द। इसके भगुर होने से भङ्ग काल में कुछ शब्द विरोध होकर वालुका (चूर्ण) रूप में परिणत होने से—प्रकट करता है।

स्वर्णक्षीरी, हेमवती, तीक्ष्णदुग्धिका—अष्टाग निघण्टु मे स्वर्णक्षीरी के पर्याय मे कंकुष्ठ का उल्लेख है, अत. इसकी प्रकृति का आभास मिलता है।

प्राय सभी प्रदर्शित पर्यायो का स्पष्टीकरण कंकुष्ठ (Gambage) के विषय में सार्थक है। के विषय मे सार्थक है। यद्यपि कुछ पर्याय जो नाटकीय वर्ण विन्यास की उपयोगिता प्रदर्शित करते हैं, के आधार पर मुर्दासिंग को नाटकीय वर्ण विन्यास के उपयोगी होने से,उसमे भी सार्थक हो सकते हैं, तथापि ककुष्ठ के भी रञ्जक द्रव्य विशेष होने से इससे भी वह कार्य सम्भव होने तथा इसके गुण कर्म मे भी वर्णकारक होने से ककुष्ठ के अर्थ में विशेष सार्थक है।

रस हृदयतन्त्र के नवम, द्वादश तथा अष्टादश अध्यायो मे पारद संस्कार प्रकरण में कंकुष्ठ का उपयोग वर्णित है। टीकाकार ने उसका अर्थ विरग किया है। यद्यपि विरग का अर्थ वि = विकृत, रग = वग या रांगा किया जाता है और मुरदासग[✕] को वग का विकृत रूप (Oxide) मानकर ककुष्ठ का पर्याय किया जाना माना जा सकता है। वस्तुत मुरदासग नाग का यौगिक है, फिर भी त्रिवग के अन्तर्गत वग, यशद और नाग का समावेश होने से एक वग के सदृश गुण कर्म वाला होने से एक दूसरे के स्थान पर नाम चल सकता है। इसे उत्कृष्ट रसबन्धकारक● कहा गया है तथा पारद बन्धन मे मुरदासग के उपयोगी होने से उसे ककुष्ठ मानना चाहिए। इसके समर्थन मे वृहद्रसराजसुन्दर में एक प्राचीन रससिद्ध ? भालुकि का नामोल्लेख कर विरग को वग के उपधातु: का उल्लेख, जिसका समर्थन कविराज भूदेव मुखोपाध्याय# ने अपने रस जलनिधि नामक ग्रन्थ में किया है, उपन्यस्त होता है। इसी आधारपर अनेक बगीय कोषकारो ने अपने कोषβ ग्रन्थो मे पर्वतीय मृत्तिका विशेष उल्लेख किया है।

✕ जसदं रङ्ग सदृश रीतिहेतुश्च तन्मतम्। सीसं रङ्ग गुण ज्ञेय विशेषान्मेहनाशनम्॥ —आयु प्रकाश १६/१७८

● रस बन्धनमुत्कृष्टम्। — रसहृदयतंत्र

: उपधातुस्तु वगस्य इति भालुकिभाषितम्। —बृ. रसराज/रसेन्द्र पुराण

रस जलनिधि-द्वितीय भाग-पृष्ठ २०७।

β वाचस्पत्यम्, शब्दकल्प द्रुमः, शब्दस्तोत्र महानिधिः आदि।

लेकिन इसमे वग का अस्तित्व न होने से यह वग का विकृत रूप नही है। अत साहचर्य कल्पना के आधार पर नामकरण का ठोस आधार न होने से एव भालुकि के प्रसिद्ध रस सिद्ध न होकर शल्यविद होने से, तथा अनेक वनौषधिया भी उत्कृष्ट रसवन्धकारक होती हे, एव ककुष्ठ (Gamboge) मे भी रसवन्धन की क्षमता है जिसके आधार पर ही इसका उपरस मे परिगणन हुआ है। (रसोपकल्पना मे सहायक द्रव्यो को उपरस कहते हैं एव इसमे प्राणिज (अम्बर) एव वानस्पतिक कम्पिल्लक आदि का भी समावेश है। अनेक दिव्यौषधियो का तो उसी के लिए विशेष उल्लेख है।) अत इस युक्ति से ककुष्ठ के वानस्पतिक (Gamboge) होने का निराकरण सम्भव नही है।

उत्पत्ति स्थान—प्रायश. सभी आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे हिमालय● वतलाया गया है। सम्प्रति इस जाति के कुछ वृक्ष पश्चिमोत्तर हिमालय, सिक्किम, नेपाल मे ११,००० से १३,००० फीट की ऊचाई पर उपलब्ध होते हैं। यह Garcinia Marella प्रजाति है।

विशेषत यह श्याम के कम्बोज प्रदेश मे इसकी विशेष प्रजाति Garcinia Hanburyi से प्राप्त किया जाता है और इसके वृक्ष जब १० वर्ष के हो जाते है तब उनके स्कन्द भाग मे चीरा लगाकर वाँस का फीफा काट कर लगा दिया जाता है जिसमे उसका राल मिश्रित निर्यास सग्रहीत होता है जिसे कुछ काल तक उसी मे रहने देते हैं। सूख जाने पर आच पर गर्म करते हे जिससे वास चटख कर अलग हो जाता है और ककुष्ठ प्रथक कर निर्यात किया जाता है और वही से भारत आता है। कम्बोज से आने के कारण ही इसका नाम कम्बोजिया या अपभ्र श गम्बोजिया रूप हुआ है।

उत्पत्ति स्थान की दृष्टि से भी मुर्दासग✠ ककुष्ठ नही हो सकता है क्योकि रसग्रन्थो मे भी जहा ककुष्ठ की उत्पत्ति हिमालय पर वर्णित हे वही मुर्दासिग की उत्पत्ति गुर्जरदेश एव आबू की पर्वतश्रेणियो मे वर्णित है।

प्रकार—भावप्रकाश मे—रक्तकाल और अण्डव* दो भेद प्रदर्शित किये गये हैं। इनमे प्रथम पीताभ, गुरु और स्निग्ध प्रतीत होता है, दूसरा श्यामाभपीत और लघु होता है। रस ग्रन्थो मे नलिकाकार और रेणुक भेद दिया हे। राजनिघण्टु मे तो तार° रजतवर्ण का भी उल्लेख है। अन्यत्र नलिका∷ द्रेष्काण और रेणुक तीन भेद दिये है। क्रमश ये पीतवर्ण, श्यामाभपीत और श्याम वर्ण के होते हैं। एक जगह इसके रक्तवर्णβ होने का निर्देश है। लेकिन वहाँ पर मूँगा के वर्ण का उल्लेख है एव मूँगा इषद् रक्तवर्ण या रक्ताभपीत भी उपलब्ध होता हे।

इसके प्रकारो के आधार पर प्राय ककुष्ठ को मुर्दासग मानने वाले युक्ति देते है कि ककुष्ठ प्राय एक ही वर्ण का होता है लेकिन मुर्दासिग मे नाग (Lead) के यौगिक होने से प्राय निर्दिष्ट सभी वर्ण सभव हैं। भार की दृष्टि से गुरु एव लघु तथा मृदु एव कठोर भेद ककुष्ठ

● हिमवत् पाद शिखरे ककुष्ठमुपजायते —भावप्रकाश रसकामधेनु र. र. समु. टीका
हिमवत्पाद शिखरे हिमवत. प्रत्यत पर्वतानां शिखरे।
हिमाचल प्रदेशोत्पस ×× । —रसकामधेनु.।
हिमाचलैक देशेतु ककुष्ठमुपजायते —आयुर्वेद प्रकाश रसेन्द्र पुराण

✠ सदलम पीतवर्णं च भवेदर्गुजमण्डले। अर्वुदस्य गिरे पार्श्वे जाते मृद्दार शृङ्गकम्॥ —र.र.समु ३/१४५

* तत्रैकं रक्तकाल स्यात्तदन्य दण्डकम् स्मृतम्। पीतप्रभ गुरु स्निग्ध श्रेष्ठ ककुष्ठमादिमम्।
श्यामं पीत लघुत्पक्तसत्व तथाण्डकम्॥ —भाव प्रकाश
तत्रैव नलिकाख्य हि तदन्यद्रेणुकम् मतम्। —र. र समुच्चय

° ककुष्ठ च द्विधा प्रोक्त तारहेमाभ्रकं तया। —राजनिघण्टु

∷ गुरु स्निग्ध वर त्रिधा। नलिकाख्य पीतवर्णं द्रेष्काण श्यामपीतकम्। रेणुकम् श्यामलम् × —रस कामधेनु

β ककुष्ठ विद्रुमाच्छयम्। —रसार्णव

से स्पष्टत प्रतीत नही होते लेकिन मुर्दासग मे पीला वाला चिकना और भारी होता हे तथा श्यामाभ कठोर और हल्का होता है। स्वरूप की दृष्टि से नलिकाकार नली के आकार का एव रेणुक धूलि के समान होना चाहिये। समव है ककुष्ठ को बाँस के खोखले मे सग्रहीत होने से उसकी नली के आकार का हो जाता हे इसलिए नलिक भेद हो सकता हे। किन्तु रेणुक भेद, धूलि के समान उसके निर्यास के मिश्रित रूप होने से पिण्डाकार हो सकता हे। रेणुक धूलि के आकार का सम्भव नही है, अपितु मुर्दासिग मे उसके चूर्ण रूप मे धूलि का आकार समव है।

नलिकाकार भेद भी—वाह्य रचना नलिकाकार न होकर उसके तोडने पर सभवत शलाकाये सी प्रतीत होती हैं, वातावरण मे अधिक देर तक रखने परवह प्राय· विलुप्त हो जाता है। लेकिन सद्य. टूटे हुए परत मे वह स्पष्ट प्रतीत होती है। और उन्ही आन्तरिक शलाका सदृश (Crystal) मणिभीय रचना सादृश्य के आधार पर नलिकाकार भेद भी मुर्दासिग मे सगत होता है। आयुर्वेद प्रकाश※ मे यह सजीव वर्णन मिलता है क्योकि मुर्दासंग मे सूक्ष्म नलिकाओ के साथ लम्बी नालिया सी दीखती हैं जोकि लम्बे छिद्रो के समान प्रतीत होती हैं।

परन्तु यह कष्ट कल्पना मात्र है। वस्तुत ककुष्ठ के सग्रह के आधार पर और अग्नि सम्पर्क से निष्कासन मे अग्नि के तस्तम सयोग से एव सग्रह काल की मर्यादा के आधार पर वर्ण मे भेद मिलना समव है तथा सूखने पर वीच के वातकोषो के कारण उनमे सच्छिद्रता भी मिल सकती है। रह गयी रेणुकाकार की वात—वह भी यदि उपेक्षित रूप से जमीन पर गिर जायगा तव उसके निर्यास अश का भूमि मे शोषण होने से अधिकाँश राल भाग ही रह जायगा जो धूलि के समान ही होगा और गुणो मे भी न्यून होगा।

सप्रति यह गोल, लम्बा, २.५ सेमी० व्यास का वेलनाकार ठोस या खोखला भगुर टुकडा मिलता है। वर्ण रक्ताभपीत या भूरापन लिए हुए नारग वर्ण का होना है। चूर्ण हरिद्रा वर्ण का होता है। इसके ऊपरी सतह पर बाँस के अन्दर की धारियो के निशान दिखाई पडते हैं। प्राय दश वर्ष तक इसमे वीर्य रहता हे। इसे Pipe Gamboge कहते हैं।

दूसरा भेद जो पिण्डाकार होता है उसे Cake Gamboge कहते हैं। रस के सवन्ध मे भी इसे तिक्त कहा गया है जो कि ककुष्ठ में स्पष्टत· प्रतीयमान है परन्तु मुरदासग मे किसी भी रस की प्रतीति स्पष्टत न होने से इसे ककुष्ठ मानना ठीक नही हे। परन्तु कुछ लोग रस परिज्ञान को अनुमान गम्य मानकर जिस प्रकार स्वर्ण आदि कठिन धातुओ मे परीक्षण एव गुणकर्म के आधार पर अनुमेय-रस की परिकल्पना होती हे, ठीक उसी प्रकार मुरदासग मे कटु-तिक्त रस की परिकल्पना मानते हैं। लेकिन यह समीचीन नही हे क्योकि मुरदासग सीस का यौगिक है, और आचार्य वाग्भट्ट ने सीस का लवण स्कन्ध* मे वर्णन किया है, एव लवण स्कन्ध मे वर्णित गुणकर्म स्तम्भ*, सघात और वध आदि नितान्त कटु-तिक्त° रस के कर्म के विपरीत है, जो मुरदासग मे मिलते है, परन्तु ककुष्ठ (Gamboge) मे नही मिलते है। अत रस के आधार पर मुरदासग को ककुष्ठ मानना युक्ति सगत नही है। सत्त्वाकर्षण के सम्वन्ध मे भी प्रायः सर्वत्र इसके सत्त्वरूप होने से सत्त्वाकर्षण का निषेधϕ मिलना

※ पीतप्रभ गुरु स्निग्ध ककुष्ठं शिलयासमम्। मृद्वतीव शलाकाभम् सच्छिद्रम् नलिकाभिधम्।
रेणुकाख्यम् तु ककुष्ठ श्याम पीत समन्वितम्। व्यक्तसत्वं लघु प्राय पूर्वस्माद्हीन वीर्यकम्।
—आयुर्वेद प्रकाश तथा रसेन्द्र पुराण

* वर सौवर्चल कृष्ण विड सामुद्रमौद्भिदम्। रोमकं पाशुज सीस क्षारञ्चलवणो गण·॥

* लवण स्तम्भसघातवधविध्मापनोऽग्निकृत्। स्नेहनः स्वेदनस्तीक्ष्णो रोचनाच्छेदभेदकृत्॥

° तिक्त स्वयमरोचिष्णुररुचिकृमितृड्विषम्। कुष्ठ मूर्च्छा ज्वरो क्लेश दाह पित्त कफान् जयेत्॥- अ०हृ०सू० १०

ϕ सत्त्वाकर्षोऽस्य न प्रोक्तो यस्मात्सत्त्वमय हितत्। र०र०समु०, रसेंद्रचूडामणि।
× × × तच्च सत्त्वमयं प्रिये। —रसार्णव

है। परन्तु रस कामधेनु मे रस के सत्त्वपातन* का भी उल्लेख है। मुरदासग का सत्त्वपातन सम्भव होने से इस उल्लेख के आधार पर मुरदासग ही ककुष्ठ है—युक्ति दी जाती है। लेकिन यह उल्लेख रसकामधेनु का है, जो कि एक सग्रह ग्रन्थ है। सम्भव है सग्रहकर्ता ने यह विधि विना स्वय किये - गैरिक के समान वर्ण साम्य के आधार पर तद्वत् सत्त्वपातन का भी उल्लेख कर दिया हो, अत भ्रामक है।

वस्तुत यह सत्त्वरूप अर्थात राल एवं निर्यास का शुष्करूप है, और इसका प्रचलित नाम उसारे-रेवन्द-रेवन्द का उसारा (मद्) है। इसलिए इसके सत्त्वरूप होने से इसका सत्त्वपातन नही सम्भव है। यद्यपि उपरस मे गणना होने मे कतिपय उपरसो के समान इसके भी सत्त्वपातन की शङ्का स्वाभाविक है। तथापि इसके वानस्पतिक एव सत्त्वस्वरूप का होने से सत्त्वपातन एवं वानस्पतिक दृष्टि से भी सत्त्व निष्कासन नही सम्भव है, अत यह शाका निर्मूल है। सहिता ग्रन्थो मे केवल सुश्रुतसहिता के सूत्र स्थान २८ वे अध्याय मे वर्जनीय व्रणो का वर्ण निर्देश करते हुये ककुष्ठ का वर्णन उपलब्ध होता है—

श्यामकुङ्कुमकङ्कुष्ठसवर्णाः पित्तकोपत.।

—सु० सू० २८/१२

यहाँ पर ककुष्ठ की व्याख्या मे "ककुष्ठ स्वर्णक्षीरी निर्यास." लिखकर डल्हण ने पीतवर्ण सादृश्य के आधार पर ककुष्ठ को वानस्पतिक होने का उल्लेख किया है। लेकिन कुछ वैद्य उक्त उक्ति को डल्हण की उक्ति न मानते हुये, तत्कालीन प्रचलित मत विशेष का उल्लेख मानते है, एव तर्क देते है कि डल्हण इसे अन्यो का मत मानते है, अत उनका अभीष्ट नही है यत सम्पूर्ण डल्हण का मूलपाठ इस प्रकार है—

केचित्—

श्यामाकुंकुमककुष्ठसवर्णाः पित्तकोपतः।

न दह्यन्ते न चूर्ण्यन्ते भिषक् तान् परिवर्जयेत्॥

इति पाठ पठन्ति, व्याख्यानयन्ति च श्यामा प्रियङ्गु, कङ्कुष्ठ स्वर्णक्षीरी निर्यास ×××× स च निबन्धेपु न दृश्यते, यत्र तु दृश्यते तत्र गड्डलिका प्रवाह, तस्मात्पूर्व पाठो न्याय्य.।"

—सु०सू० २८/१२ पर डल्हण

यहाँ पर केचित् से अन्य मत के उद्धरणमात्र से डल्हण का अभिमत ककुष्ठ को स्वर्णक्षीरी निर्यास मानना युक्तिसगत नही है।

कतिपय अन्य स्थलो पर भी ककुष्ठ को स्वर्णक्षीरी मानने मे डल्हण की अरुचि प्रतीत होती है—

१-'कनकक्षीरीहिङ्गुवचातिविषा ××× सु०सू० ११/१०
"कनकक्षीरी सुवर्णक्षीरी, कङ्कुष्ठमित्यन्ये" —डल्हण

२—××× सुवर्णक्षीरी चेति ××× सु०सू० ३८/२६
"सुवर्णक्षीरी-अनन्तासदृशपत्रा, कङ्कुष्ठमित्यपरे।
—डल्हण

३—त्रिवृदादिविरेचनगण मे—सु० सू० ३६।
"सुवर्णक्षीरी-अनन्तासदृशपत्रा, 'हियावलि" इति लोके, कङ्कुष्ठमित्यपरे"।

उपर्युक्त स्थलो पर यदि सुवर्णक्षीरी का निर्यास ही ककुष्ठ डल्हण को अभीष्ट होता तो अन्ये या अपरे पद से ककुष्ठ का उल्लेख कर अपनी अरुचि न प्रदर्शित करते।

परन्तु इससे इतना स्पष्ट है कि डल्हण काल मे भी एक समुदाय था जो कि ककुष्ठ को स्वर्णक्षीरी का निर्यास मानता था। स्वर्णक्षीरी भी प्रचलित भडभाड (Argemona maxicana) न होकर अनन्तमूल के सदृश पत्रवाली हिमावती (हिमालवी या हिरवी Euphorbia Thompsonia) उस काल मे ग्राह्य थी। तथा कतिपय अन्य स्थलो पर डल्हण ने भी स्वर्णक्षीरी का अर्थ ककुष्ठ बिना किसी विप्रतिपत्ति के ग्रहण किया है। जैसे—

१—'कासीस काञ्चनक्षीर्यौ वर्ग शोधन इष्यते"
—सु० चि० ४०।

××× काञ्चनक्षीर्यौ द्वे—एक ककुष्ठम् अन्या पीतदुग्धा यवतिक्ता च ×××। —डल्हण

२—'हेमक्षीरी व्याधिघात शिरीष। —सु० चि०
××× हेमक्षीरी ककुष्ठम् ××× उल्हण

---

* गैरिकवच्चास्य सत्त्वनिर्गमः। —रस कामधेनु उपरसाधिकार।

३–दन्तीद्रवन्तीमरिचकनकाह्वयवासकं × × ×
—सु० सू० ४४/४६

× × ×कनकाह्वय ककुष्ठम् × × डल्हण

इन उल्लेखो से डल्हण की एकान्तत विप्रतिपत्ति सुवर्णक्षीरी निर्यास मानने में नही प्रतीत होती। इतना अवश्य है कि स्वर्णक्षीरी दो प्रकार की होती है—एक अनन्तमूल सदृशपत्रवाली हिमावती और दूसरी ककुष्ठ, इसलिए जहाँ अन्ये या अपरे पद से व्यावृत्ति किए है–वहा पर उनको स्वर्णक्षीरी का प्रथम प्रकार हिमावती अभीष्ट है, लेकिन दूसरी स्वर्णक्षीरी ककुष्ठ ही है, यह डल्हण को अभीष्ट प्रतीत होता है।

सुश्रुत सहिता मे त्रिवृदादि विरेचनगण मे × × × तिल्वकपूर्वाणाँ मूलानि × × ×सु० सू० ३९।४ उल्लेख है। यहाँ पर स्वर्णक्षीरी तिल्वक से पूर्व मे पठित है, इस लिए इसका मूल लेने का प्राविधान सुश्रुत को अभीष्ट है, एव मूलगाह्य होने से ककुष्ठ वानस्पतिक द्रव्य ही है।

पैत्तिक व्रणो के वर्णनिर्देश प्रकरण की व्याख्या प्रसङ्ग मे केचित् पद से व्याम के स्थान पर श्यामा पाठ करने वालो के प्रति डल्हण की अरुचि प्रदर्शित होती है, न कि ककुष्ठ के स्वर्णक्षीरी निर्यास अर्थ के प्रति, यदि ऐसा होता तो अन्यत्र स्वय उसका वही अर्थ न करते।

अष्टाङ्ग हृदय के प्राचीन व्याख्याता हेमाद्रि ने अपनी व्याख्या मे हेमदुग्धा का अत्यन्त सजीव विवरण दिया है–

'हेमदुग्धा हिमावती, ककुष्ट प्रकृति × ×
—अ०हृ०सू० १५। पर हेमाद्रि

इससे ककुष्ठ की उत्पत्ति हिमावती (स्वर्णक्षीरी विशेष) से सिद्ध होती है।

अरुणदत्त ने भी स्वर्णक्षीरी को ककुष्ठ माना है। शार्ङ्गधर सहिता के मध्यम खण्ड ११।७२ मे ककुष्ठ का उल्लेख है, इसकी व्याख्या मे आढमल्ल ने दीपिका टीका मे "ककुष्ठ स्वर्णक्षीरी अस्य भेद चोक इति प्रसिद्ध।" लिखा है। तथा काशीराम वैद्य ने गूढार्थदीपिका टीका मे 'ककुष्ठ चोक निर्यास' लिखा है। अमरकोष के व्याख्याकार श्री भानुजी दीक्षित ने अपनी सुधा व्याख्या मे स्वर्णक्षीरी* के पर्यायो की व्याख्या करते हुए एक तन्त्रान्तर का वचन उद्धृत किया है—

स्वर्णं वर्णं पयस्तस्या हिमवद्भूमिसम्भवा।
सा नागजिह्विकाकारा*¹ तन्मूल वणिजोपधम्॥

इसमे स्वर्ण वर्ण दुग्ध, हिमालय प्रदेश मे उत्पत्ति, नागजिह्विका=मन.शिला के समान आकार एव इसका मूल व्यावसायिक दृष्टि से उपयोगी वर्णित है। इन सब आधार पर दुग्ध एव मूल युक्त हिमालय प्रदेश मे उपलब्ध होने वाली वानस्पतिक औषधि ही सिद्ध होती है। व्यावसायिक दृष्टि से मूल की उपयोगिता मे सम्भव है—हिमावती मूल सुदूर काश्मीर मे उत्पन्न होने के कारण विक्रय होता रहा होगा। आज भी उसका व्यवसाय काश्मीर सरकार करती है। अथवा उस काल में यूनानी औषधियो का पदार्पण हो जाने से रेवन्द चीनी मूल के लिए जो कि कुछ अश मे समान गुण कर्म युक्त है, का व्यवसाय बाहर से आकर होता रहा होगा। सम्प्रति इसका मूल भी काश्मीरी सरकार विक्रय करती है।

शास्त्रीय गुण कर्म

धन्वन्तरि निघण्टु –

ककुष्ठ तिक्तकटुक वीर्ये चोष्ण प्रकीर्तितम्।
गुल्मोदावर्त शूलघ्न रसरञ्ज व्रणापहम्॥

राजनिघण्टु—

कटुक कफवातघ्न रेचक व्रणशूलहृत्।

कैयदेव निघण्टु—

ककुष्ठ रेचन तिक्तमुष्ण वर्णविशोधनम्।
कफशोफोदरानाहगुल्माध्मानकृमिप्रणुत्॥

भावप्रकाश—

ककुष्ठ रेचन तिक्त कटूष्ण वर्णकारकम्।
कृमिशोथोदराध्मानगुल्मानाहकफापहृत्॥

गदनिग्रह (शोढल निघण्टु)

ककुष्ठ पित्तकृद् भेदि विबन्धकफगुल्मनुत्।
ककुष्ठो भेदनस्तीक्ष्ण कुष्ठगुल्मोदरादिजित्॥
ककुष्ठको विरेकीस्यात् कटुरुष्णश्च भेदक।
गुल्मोदावर्तहरस्तिक्तो जन्तुव्रणापह॥

शालिग्राम निघण्टु—

ककुष्ठ तिक्तकटुक वीर्ये चोष्ण प्रकीर्तितम्।
गुल्मोदावर्तशूलघ्न रसजन्तु व्रणापहम्॥

---

* पटुपर्णी हैमवती स्वर्णक्षीरी हिमावती। अमरः
*¹ नागजिह्वा मन शिला। अमर

मदनपाल निघण्टु—

ककुष्ठ रेचन तिक्त कटूष्ण वर्णकारकम्।
कृमिशोफोदराध्मानगुल्मानाहकफापहम् ॥

रसरत्नसमुच्चय—

रसे रसायने श्रेष्ठ निःसत्व बहुवैकृतम्।
ककुष्ठ तिक्तकटुक वीर्योष्ण चातिरेचनम्॥
व्रणोदावर्तशूलार्तिगुल्मप्लीहगुदार्तिनुत्॥

रसेन्द्र चूड़ामणि—

ककुष्ठ तिक्तकटुक वीर्योष्ण चातिरेचनम्।
व्रणोदावर्तशूलार्तिगुल्मप्लीहगुदार्तिनुत्॥

रसप्रकाश सुधाकर—

कंकुष्ठक तिक्तकटूष्णवीर्य विशेषतो रेचनक करोति।
गुदार्तिगुल्मव्रणशूलहृत्पर प्रचक्षते शास्त्रविद पुराणाः॥

आयुर्वेद प्रकाश—

ककुष्ठ रेचन तिक्त कटूष्ण वर्णकारकम्।
कृमिदोषोदराध्मानगुल्मानाह कफापहम्॥

रसकामधेनु—

ककुष्ठककुष्ठकफोध्न जयेदुदावर्तकजन्तुगुल्मान्।
कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविभेदि शोथानाहव्रणघ्न कुरुते च वर्णम्॥

रसेन्द्रपुराण—

ककुष्ठ तिक्तकटुक वीर्योष्ण चातिरेचनम्।
नाशयेदामवातञ्च रेचयेत् क्षणमात्रत॥
व्रणोदावर्त शूलार्तिगुल्मप्लीहगुदार्तिनुत्।
ककुष्ठ नाशयेच्छीघ्र कठोदरजलोदरम्॥

प्रयोग

रसेन्द्रचूणामणि—

भजेदेन विरेकार्थं वद्धविल्यवमात्रया।
नाशयेदामपूर्ति च विरेच्य क्षणमात्रत॥
भक्षित सह ताम्बूलैर्विरेच्याम विनाशयेत्॥

अन्यत्र—

सुभक्षित च ताम्बूले विरेच्य त विनाशयेत्।

रसेन्द्र पुराण—

भजेदेन विरेकार्थं ग्राहिभिर्यवमात्रया।

वैद्यवर्ग में मान्यता—

स्व० स्वामी लक्ष्मीरामजी जयपुर—सिद्धभेषजमणि माला मे उसारे रेवन्द को ककुष्ठ मानते हैं।

स्व० यादवजी त्रिकमजी आचार्य बम्बई—वैद्य सम्मेलन पत्रिका, अगस्त ३२ मे वानस्पतिक Gambogia को ककुष्ठ मानते है।

स्व० गोवर्धन शर्मा छागाणी नागपुर—वैद्य सम्मेलन पत्रिका, सितम्बर ३२ मे यादव जी का समर्थन किये है।

स्व० शालिग्रामजी शास्त्री लखनऊ—आयुर्वेद महा सम्मेलन के २३ वें बीकानेर अधिवेशन मे मुरदासग को कंकुष्ठ मानकर लेख वितरण किए (लेकिन बाद मे स्व० यादवजी के तर्क से उनके अनुयायी हो गये)।

स्व० हरिप्रपन्न शर्मा—रसयोग सागर मे—उसारे-रेवन्द को ककुष्ठ मानते है।

स्व० घनानन्द पन्त दिल्ली—सदिग्ध द्रव्य वनौषधि शास्त्र मे उसारे रेवन्द को ककुष्ठ मानते हैं।

श्री हरदत्त शास्त्री दिल्ली—रसतरङ्गिणी सस्कृत व्याख्या मे Gamboge को ककुष्ठ मानते है।

श्री कविराज विश्वनाथ द्विवेदी वाराणसी—Gamboge को ककुष्ठ मानते हैं।

श्री ठा० बलवन्तसिंह जी वाराणसी—Glossary of Vegetable Drugs used in Brihattraye मे—Gamboge को ककुष्ठ मानते है।

श्री प्रियव्रत शर्मा—प्राध्यापक द्रव्यविज्ञान, चिकित्सा विज्ञान सस्थान का० हि० वि० वि० वाराणसी—सचित्र आयुर्वेद अगस्त ७२ मे Gamboge विशेषतः Garcinia Marella को ककुष्ठ मानते है।

विवेचन—मृद्दारश्रृंग उपर्युक्त शास्त्रीय दृष्टिकोण के आधार पर विशेष रूप से यह पीतवर्ण का तीव्र विरेचक द्रव्य है, जिसकी यव प्रमाण (४० मि ग्रा.) मात्रा से विरेचन होता है, एव अन्य कफवातजन्य व्याधियो मे बहुलता से अन्त प्रयुक्त होता है। मुरदासग का गुणकर्म स्तम्भन होने से इससे नितान्त भिन्न है, इसका अन्त प्रयोग प्राचीन• एव अर्वाचीन* दृष्टिकोण से प्राय निषिद्ध है। कतिपय

• मृद्दारश्रृङ्ग शिशिरं पर वातकफापहम्। फिरंगव्रणहृत् केश्यं व्रणरोपणमुत्तमम्॥
भग्नसंधानजनन पामाकण्डूतिकादिनुत्। सङ्कोचकं विशेषेण त्वग्दोषशमन मतम्॥ रसतरंगिणी २१/१७०-१७

* Taken internally the same action of protien coagulation takes place. It acts a local astringent causing constipation and is also a heamostatic, but no lead preparation is now used therapeutically, either for, diarrhoea or gestro intestinal hoemorrahge.

रसग्रन्थो मे ककुष्ठ एव मृद्दारश्रृग दोनो का प्रयोग मिलता है, जिसमे इनकी उत्पत्ति गुजरात और आबू की पर्वत श्रेणियो मे बतलायी गयी है, सम्प्रति यह कृत्रिम विधि से भी बनाया जाता है। इन सभी दृष्टियो से विचार करने पर मुरदासग को ककुष्ठ मानना कथमपि युक्तिसगत नही है।

उसारे रेवन्द—रेवन्द (रेवन्द चीनी —Rhum Emodi)का उसारा(सत्)यह अर्थ प्रगट करता है। आज कल इस प्रकार का कोई सत् व्यावसायिक रूप मे नही उपलब्ध होता है। रेवन्दचीनी मूल मे रेचक गुण है,लेकिन ककुष्ठ की अपेक्षा कम है। सम्भव है उस काल में इससे भी सत निकाला जाता रहा हो, और ककुष्ठ (Gamboge) के समान गुण होने से बाहर से आयात होने के कारण प्रकृति का सही ज्ञान न होने के कारण इस Gamboge को भी उसारे रेवन्द कहा जाने लगा हो। रेवन्दचीनी मे पीत वर्ण दुग्ध नही होता है। इसलिए शास्त्रीय उद्धरणो के आधार पर इसे ककुष्ठ नही माना जा सकता है। जिन विद्वान वैद्यो ने उसका उल्लेख किया है—वह लोक प्रचलन और ककुष्ठ (Gamboge) का बाजारू नाम उसारे रेवन्द होने के कारण भ्रमवश कर दिया है, वस्तुत उनका तात्पर्य इसी Gamboge से ही है।

रेवन्दचीनी मूल—यह भी रेचक होती है, लेकिन Gamboge के समान तीव्ररेचक नही होती है। इसका स्वरूप भी इषत्पीताभ सूखने पर होता हे। यह बाहर से यूनानी चिकित्सको के साथ भारत मे आयी है। निघण्टुओ मे अन्यत्र कही इसका उल्लेख भी नही है। न इसमे स्वर्ण वर्ण का दुग्ध ही होता है। जहा पर मूल के वाणिज्य व्यवसाय का उल्लेख है—सम्भव है बाहर से व्यवसायिक तौर पर आने के कारण और गुण कर्म मे कुछ साम्य होने से भ्रमवश उल्लेख कर दिया गया होगा। अत यह ककुष्ठ (Gamboge) का प्रतिनिधि हो सकता है, वस्तुत ककुष्ठ नही है।

स्वर्णक्षीरी (हिमावती) निर्यास

स्वर्णक्षीरी मे रेचक गुण वर्णित है, और डल्हण की ग्राह्य स्वर्णक्षीरी—अनन्तमूलसदृशपत्रवाली हिमावती (हिमावली या हिरवी—Euphorbia Thompsonia-Euphoarbiaccae) भी रेचक होती है, एव इसके मूल का रस भी जमने पर पीत वर्ण का होता है, बाहर भी निकलने पर कुछ काल हवा लगने पर पीत हो जाता है। इसको सुखाकर ककुष्ठ बनाया जाता रहा होगा। हेमाद्रि ने इसी को ककुष्ठ प्रकृति कहा है। भावप्रकाश ने स्वर्णक्षीरी मूल को चोक* सज्ञा से कहा है, तथा शार्ङ्गधर के व्याख्याता काशीराम वैद्य ने चोक निर्यास कंकुष्ठ को लिखा है। डल्हण ने भी अपरेत्या अन्ये पद से जिन लोगो के मत का उल्लेख किया है, वे लोग भी इसी स्वर्णक्षीरी निर्यास को कंकुष्ठ मानते रहे होगे। अत. इस विवेचन और गुण साम्य के आधार पर यह भी उस काल मे ककुष्ठ रहा होगा। परन्तु आजकल इस तरह इसका निर्यास व्यावसायिक रूप मे उपलब्ध नही होता है, एवं डल्हण ने इसका अन्ये पद से व्यावर्तन किया है, इसलिए इसके मूल का व्यावसायिक महत्व एवं सम्प्रति भी काश्मीर सरकार द्वारा व्यवसाय प्रयुक्त वणिजौपध मूल तथा चोक हो सकती है, वस्तुत कंकुष्ठ नही है।

निष्कर्ष—स्वर्णक्षीरी दो प्रकार की होती हे, क्योकि सुश्रुत ने 'काञ्चनक्षीर्यौ' द्विवचनान्त प्रयोग किया है। डल्हण ने उसका एक प्रकार 'कंकुष्ठ', दूसरा—पीतवर्णदुग्ध, यवाकार फल एवं तिक्त रस वाली हिमावती (हिमालवी, हिरवी) को स्वीकार किया है। शार्ङ्गधर के व्याख्याता आढमल्ल ने भी कंकुष्ठ को स्वर्णक्षीरी माना हे, तथा उसका भेद (प्रकारान्तर) चोक लिखा है—सम्भवत यही चोक हिमावती का मूल है, जिसे भावप्रकाश ने स्वर्णक्षीरी मूल बतलाया है इसलिए उपर्युक्त शास्त्रीय उद्धरणो का सामञ्जस्य स्थापित करते हुए सिद्धान्तरूप मे पीत वर्ण दुग्ध होने से स्वर्णक्षीरी वृक्ष विशेष तमाल या तापिच्छ (Garcinia Morella Jesruss) को ही भारतीय ककुष्ठ मानना चाहिए।

वानस्पतिक वर्णन—

भारतीय ककुष्ठ (Gamboge) Guttiferae के वर्ग Garcinia morella (Dessuss) नामक प्रजाति से

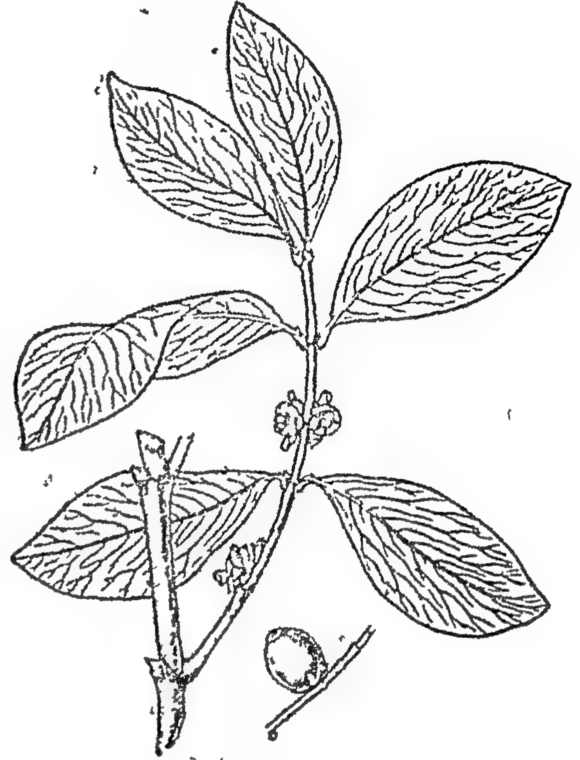
+ Prepared by roasting melton lead in air, it contains not less then 99% PbO.
—Pharmacology by A. R Majumdar 10th editon

* तम्मूलं चोकमुच्यते। —भावप्रकाश

प्राप्त होता है। जिसे हिन्दी, महाराष्ट्री एवं गुजराती मे तमाल-तमाल-वृक्ष, बगला-तमालगाछ, तेलुगु-पसुवुवर्ण, तामिल-पुमवळी, कर्नाटक-जार्दिगेहुलि और इंग्लिश मे Indian Gamboge tree कहा जाता है। इसके वृक्ष बंगाल के पूर्वी भाग, खासिया पहाड़ एवं पश्चिमी घाट मे उत्तर कनारा से दक्षिण मे ट्रावन्कोर तक लगभग २२,०० से ३,००० फीट की ऊँचाई तक पाये जाते है। विदेशो मे—लका, मलक्का, सिंगापुर, श्याम देश मे भी मिलते हैं।

आकार मे वृक्ष छोटा एवं सदा हरित रहता है,• शाखाए फैली हुई एवं नवीन शाखाए कुछ चतुष्कोण सी होती हैं। पत्र दण्ड ६ मिमी. लम्बा होता है, पत्ते ८ सेमी. से १३ सेमी. लम्बे, ४ सेमी से ७ सेमी० चौडे, एवं दोनों सिरो पर क्रमश सकुचित होते हैं। पुष्प एकलिङ्गी पत्र कोणो मे आते है पुंम् पुष्प है पुष्प वाह्य कोष के चार दल स्थाई, पुष्पा-भ्यन्तर कोष के चार दल, पुकेशर २५ से ४० एवं ही गुच्छे मे; पुकेशर के सभी तन्तु एक मे मिल चतुष्कोण स्तम्भाकार रूप मे हो जाते हैं।

इनमे स्त्री पुष्प अपेक्षाकृत पुपुष्प से बडा होता है। यह एकाकी पत्र कोणोदभूत, पुष्प दण्ड से रहित (अवृन्त) इसमे १८ से ३० पण्ढ पुकेशर गर्भाशय के चारो तरफ घेरे रहते हैं। गर्भाशय चार कोष्ठ वाला होता है। पुष्प वाह्य कोष के दल पुष्प के साथ नित्य सयुक्त रहते हैं। फल—गोलाकार लगभग २ सेमी० व्यास मे एवं चार खण्डो से युक्त होता है। बीज भी प्राय सख्या मे ४ गहरे भूरे या काले रग के अण्डाकार या कुछ वृक्काकार होते हैं।



भारतीय कंकुष्ठ (Gamboge) इसी तमाल वृक्ष की छाल मे घाव करने से एक पीले रग का तरल राल सदृश पदार्थ होता है। जो सूखने पर भूरे पीले रङ्ग के टुकडो मे प्राप्त होता है, तथा इसका स्वाद कुछ कटु सा होता है।

भारत मे यह अपने यहाँ के वृक्षो से अत्यल्प मात्रा मे सग्रहीत होता है। यहाँ के बाजारो मे उपलब्ध होने वाला कंकुष्ठ (Gamboge) श्याम देश के कम्बोडिया नामक प्रान्त से आयात होता है।

• A middling sized tree, with spreading branches, quite glabrous, young branches quadrangular, smooth, leaves 7 5-12.5 by 3 8-6.3 cm elliptic ovale to ovate lenceolate, subacute or shortly and bluntly acuminate, narrowed at the base. Peteoles 6 mm long, male flowers axillary in fascicles of 2 5, subsessile, or on pedicles 4-6 smallar. Petals 4, a little larger then the sepals. Stamens-25-40, monodelphous The filaments combined into a subquadrngular central column, but free at the apex, the free portion very short, anthers orbicular, flattened dehiscing transversely Rudimentary ovary o. Female flowers larger then the male, solitary, axillary, usually sessile, sepels and petels as in the male flower the former persistent, the latter deciduous, steminoides 18-30 in a ring round the ovary, connate at the base. Ovary globular, smoth 4 celled, stigma pellate, irregularly lobed and tubercled Fruit 2 cm diam subglobose, surrounded at the base by the persistant sepals, glabrous Seeds 4, ovoid remifrm slightly, compressed, testa muriculate dark brown

—Kirtikar and Basu Vol. I Page 264

यह उस देश मे होने वाली इसकी प्रजाति (Garcinia hanburyi (Hook) मे सग्रह किया जाता है। सग्रह के लिए प्राय दश वर्ष पुराने वृक्ष की छाल मे वर्षा ऋतु में कुन्तल (Spiral) चीरा लगाते है एव नीचे उसी के साथ (जिससे उसका स्राव वास मे एकत्रित होता रहे) वास के नीचे की तरफ गाठदार एव ऊपर से गाठ कटे हुए वास के खोखले मे पलट कर एक मास तक रखते है जिससे यह जम जाता है। बाद मे इन खोखलो को गर्म करते है। जिससे वास चटक कर अलग हो जाता है। भीतर से लगभग २ सेमी० से ४ सेमी० का लम्बा वेलनाकार रक्ताभपीत या धूसराभ नारगी वर्ण का टुकड़ा प्राप्त होता है जिसकी ऊपरी सतह पर वास के अन्दर की धारियो के निशान स्पष्ट दिखाई देते है। कभी-कभी सूखने की विशेष स्थिति के कारण यह अन्दर से पोला भी मिलता है। इसके गोल, लम्बे, ठोस या खोखले मगुर टुकडे मिलते है। इसे ग्रोरगनवा भी कहते हैं।

यद्यपि भारत के वाजार मे इसे उसारेरेवन्द कहा जाता है। लेकिन वस्तुत. यह रेवन्द (रेवन्दचीनी Rheum emodi) का उसारा (सत्) नही है—इसी भ्रांतिवश कतिपय वैद्यो ने भी इसे उसारे रेवन्द लिखा है जिसका अब निराकरण होना अपेक्षित है।

सम्मिश्रण—यद्यपि भारतीय ककुष्ठ (Gamboge) श्यामदेश के आयातित ककुष्ठ से स्वरूप घटक एव गुण कर्म मे समान होता है और एक दूसरे के स्थान पर विना किसी हिचकिचाहट० के प्रयोग किया जा सकता है फिर भी आजकल इस (Garcinia)ᵡ की अन्य प्रजाति से भी इसी तरह के राल मिश्रित स्राव निकलते है जिनमे कुछ का वर्ण उत्कृष्ट पीला भी होता है। कुछ का इसकी अपेक्षा हीन होता हे तथा कुछ का वर्ण श्वेताभ भूरा होता है, उनमे अन्य रञ्जक द्रव्य का योग कर वर्णसामञ्जस्य स्थापित कर देते हैं और इसके साथ सम्मिश्रित कर व्यवसाय करते है।

प्रकृत असली ककुष्ठ (Gamboge) मे भी भार वृद्धि के लिए गेहू या चावल का मैदा, वालूक और अन्य वानस्पतिक द्रव्यो के चूर्ण मिला देते हे। इसलिए इनके घटको का विशेष अध्ययन एव परीक्षण अपेक्षित है।

रासायनिक परीक्षण—मुख्यरूप से इसमे राल या ककुष्ठाम्ल (Gamboge acid) ७० % एव गोद और जल ३० % रहता है। इसकी राल जल मे अविलेय होती है लेकिन अल्कोहल (सुरासार) मे आसानी से घुल जाती है, और उत्कृष्ट नारङ्गी वर्ण का घोल वन जाता है, जो कि प्रतिक्रिया रहित होता हे या अल्प अम्लीय प्रतिक्रिया का होता है। ककुष्ठ अपने भार के १०,००० गुने पानी को रञ्जित कर सकता है।

ककुष्ठ (Gamboge) का जल के साथ पीला घोल (Emulsion) वनता है, जिसमे तनु अमोनिया मिलाने

० Indian gamboge is identical in composition with Siamese gamboge and is used in place of the latter —W of India, IV 106

ᵡ Besides this species there is probably another (Garcenia Pictoria) the exudation of which is used as a substitute for either the ceylon or Siam kind and according to Dr. Roxbargh, is superior in colour even in its crude state, G. travencoria according to its descorverer Lieut Beddom also yeilds an abundence of bright yellow gamboge. Gamboge is also obtained from G elleptica (wall)— —The Plants and Drugs of Sind, by J. A Murran

The chief adulterants employed are starches, particularly of wheat and rice, sand and vegetable fregments W. of India–IV, 106

* It consists principally of resin or gambogic aeid 70% and gum and water 30%. The acid is not soluble in water but freely in alcohal, forming a liquid of a fine yellwish red, and of neutral or very slightly acid reaction, and will inpart its colour to 10,000 turnes of its weight of water. The plants and Drugs of Sind by J. A, Murray

It forms a yellow emulsion with water and a clear deep orange solution in dilute ammonia It is almost completely desolved by successive additons of alcohol and water

The resin is precipitated from alkaline solutions by acids ($C_{23}H_{28}O_6$. $C_{28}H_{32}O_6$ and

से स्वच्छ नारङ्गी वर्ण का हो जाता है। जल एव सुरासार (Alcohal) के अपेक्षित यथाक्रम सम्मिश्रण से यह पूर्ण रूप से विलेय हो जाता है।

इसके क्षारीय घोल पर अम्ल के योग से राल (Resin) अवक्षिप्त हो जाती है, और उसमे निम्न तत्व हो जाते हैं–


I. $C_{23}H_{28}O_{6}$


II. $C_{25}H_{32}O_{6}$


III $C_{28}H_{28}O_{5}$

राल (Resin) का विश्लेषण करने पर–

फ्लोरोग्लुसीन
ब्यूटरिक अम्ल
वेलेरिक अम्ल
एसेटिक अम्ल
आइसू नाइट्रिक अम्ल

आदि तत्व उपलब्ध होते हैं।

व्यावसायिक ककुष्ठ (Gamboge) मे सापेक्षसार १·२२१, वेलेरिक अम्ल ६५ से ९० इस्टर वेलेरिक ४५ से ६५, सेप वेलेरिक १२५ से १४५ भस्म १ प्रतिशत तथा आर्द्रता ३% से ५%तक होती है। इसके राल(Resin) के सुरासारीय (Alcohalic) विलयन मे - वेलेरिक अम्ल ८५ से १०५ इस्टर वेलेरिक ५५ से ७५, और सेप वेलेरिक १५० से १७५ तक प्राप्त होता है।

ककुष्ठ (Gamboge) मे लगभग ६५% जल मे अविलेय एव सुरासार (Alcohol) मे विलेय तत्व होते है तथा १% अम्ल में अविलेय भस्म (Ash) और लगभग १% ही विजातीय वानस्पतिक तत्व होते है। इसके बीजो मे गाढा स्नेह (Fat) लगभग ३० प्रतिशत* धूसरामपीत वर्ण का होता है, एव खाद्य के रूप मे भी व्यवहृत होता है।

इसके बीजावरण, काण्डत्वक पत्र और फल आदि मे एक पीत वर्ण का रञ्जक द्रव्य मोरलिन⁰ (Morllin- $C_{33}H_{38}O_{1}$) मिलता है, यह नारङ्गी वर्ण के पूयोत्पादक दण्डाणु विशेष Micrococcus Pyogenes-Var-aureus) का नाशक है।

ककुष्ठ (Gamboge) का चमकीला–पीला रग होवे से जालीय रंजक (Water colour) मे एव धातुओ पर चित्रकारी के लिए स्वर्णिम सुरासार (Golden Spirit) बनाने में इसका प्रयोग होता है। बर्मा में बौद्ध साधुओ के रेशम के चोले रंगने के काम में आता है।

थाइलैण्ड मे काले कागज पर सुनहले अक्षर लिखने की स्याही विशेष बनाने के लिए भी उपयोग में आता है।

गुण—तीक्ष्ण, रूक्ष
रस—कटु तिक्त (ईषदम्ल)
विपाक—कटु
वीर्य—उष्ण।

कर्म एव प्रयोग—

दीपन कर्म—कटु तिक्त* उष्ण और तीक्ष्ण होने से कफ का, उष्ण वीर्य होने के कारण वात का,

($C_{23}H_{28}O_{8}$) have been seperated from it On decomposition, the resin gives phloroglucin and butric, Valeric, Acetic an isunitinic acids Commercial gamboge has the following characteristcs sp. gr. 1.221, acid vol, 65-90, easter val. 45-65, sap vol 125-145, Ash 17 and moisture 3-5% Alcohol solutions of the resin have the following characterlstics-Acid vol 85-105 easter vol 55-75 and sap vol. 150-175.

Gamboge yields not less then 65% of anhydrous alcohol soluble extractive, not more than 1%of acid insoluble ash and not more than 1% of foriegn organic matter

W. of India IV. 106

* The seeds contains 3% of fat, is components, fatty acids and glycerides were determind by Dhingra and seth (1933)

o Madyar G Rao has isolated from the husk an orange crystalline colouring matter Morellen (1915) Kirtikar and Basu J. sec uols

* Gamboge is acrid and sweetish, tonic, aphordisics, Cholegogue, removes burning inflammations due to kapha and pitta,

The gamboge is considered a valuable hydrogogue cathartic. It also possesses anthelmintic properties. It is used in dropsical affections amenorrhoea obstinate constipation and as a vermifuge.

Kirtikar and Basu I vol.

शमन करता है, तथा पित्तविरेचक है।

पाचन संस्थान—तीव्र विरेचक है अत इसके प्रयोग से पतले पानी के समान दस्त आते है। यह क्रिया सम्भवत इसके घटक राल मे स्थित ⊠ अम्ल के कारण होती है जो कि क्षार के साथ मिलकर शीघ्र विलयनशील यौगिक के रूप मे परिणित हो जाता है, एव आन्त्र मे भी विशेष क्रियाशील होता है। जिसमे आन्त्र की ग्रन्थिया उत्तेजित होती है एव प्रतिहारिणी शिरा का अवरोध दूर होकर पित्त का स्राव बढता है एव तीक्ष्णता के कारण पतला दस्त होता है।

इसकी क्रिया इन्द्रायण Colocynth (Citrullus Colocynthis Shard) के समान होती है।

इसके अतिरिक्त यह उत्तम कृमिघ्न⁰ एव कृमि नि.सारक उदरशूल गुल्म अनाह एव आध्मान नाशक है जीर्ण विबन्ध मे भी लाभ होता है। जलोदर मे भी इसका प्रयोग लाभप्रद है। इसके प्रयोग से उदर मे मरोड अधिक होता है, इसलिए अन्य विरेचक औषधियो के योग एव कुछ वातानुलोमक सुगन्धित द्रव्यो के साथ प्रयोग करना चाहिए। अतिसार मे भी अहिफेन एव खत्मी या गुलाब के फूल के साथ प्रयोग करने से दूषित मल निकल जाता है। बाद मे रोगी को लाभ होता है।

रक्तवहन संस्थान—हृदय एव यकृत की विकृति के कारण होने वाले सर्वाङ्ग शोथ एव जलोदर● मे लाभ होता है। इसके प्रयोग से हृदय को बल मिलता है, एक विरेचन से जलीयाश का नि सरण होकर रोगी को आराम मिलता है। इससे यकृत की क्रिया मे सुधार होता है, एव पित्त विरेचक होने से यकृत के विष का भी निर्हरण हो जाता है। जिससे उत्कृष्ट रक्त निर्माण मे सहयोग मिलता है।

रक्त भाराधिक्य—मे यदि शीघ्र विरेचन कराने की आवश्यकता प्रतीत हो तो इसका प्रयोग लाभप्रद होता है।

वातनाडी संस्थान—मस्तिष्कावरण शोथ मे (Cerobrospinal fluid का तनाव कम कर करने के लिए यह विरेचक होने से लाभप्रद होता है। अन्य वातव्याधि जैसे आमवात, गृध्रसी, अर्दित, आक्षेप, अपस्मार, पक्षवध आदि चिरकालीन व्याधियों मे इसके प्रयोग से कोष्ठ शुद्धि होकर वातिक शूल की भी शान्ति होती है।

श्वसन संस्थान—कफघ्न एव कफनि.सारक है, इसलिए श्वास-कास आदि कफज विकारो में इसके प्रयोग से कफ मल के साथ बाहर निकल जाता है, जिससे लाभ होता है। विशेष रूप से बालको के श्वास प्रधान ज्वर (हब्बा-डब्बा Broncho-Pneumonia मे इसकी बडी मात्रा देने से वमन के साथ बहुत सा कफ निकल जाता है और स्थिति मे सुधार होता है। बालको के ज्वर, श्वास-कास एवं मलाष्टम्भ मे एलुआ, डिकामाली और सौवर्चल लवण मिलाकर अल्पमात्रा मे देने से शीघ्र लाभ होता है।

प्रजनन संस्थान—तीव्र गर्भाशय सकोचक है। अत. रजोरोध, कष्टार्तव तथा गर्भपात कराने के लिए प्रयुक्त होता है।

मूत्रवह संस्थान—मूत्रजनन है। लेकिन तीव्रविरेचक तथा मरोड पैदा करने वाला होने से इस कर्म के लिए प्राय. प्रयुक्त नही होता है। ज्वरघ्न है।

(शेषाश पृष्ठ ३४६ पर)

⊠ Gamboge is a powerful hydragogue cathartie causing, × × It is generally used in combination with other cathartics. The action is attributed to the presence of resinic acids which form readily soluble compounds with alkalies and become active in the intestines Its effects resemble those of colocynth (Citrorllus clocynthis schard). It is used in dropsical conditions for obstinate constipation and in cerebral congestion, when it is desired to lower the blood pressure repidly. In admixture with other drugs it is used as an anthelmintic It is used also as abortifacient and in the treatment of ulcers, W of India vol IV 106

o Uses–A native prescription for Diarrhoea is gamboge, opium and syrup of (gool kheira) खत्मी mallow flowers or of roses.

The plants and drugs of Sind by J. A. Murray.

● The stem rubbed with water is a house hold remedy as a local application so rising pimples and boils and often cuts them short.

Kirtikar and Basu, I Vol,

रसाञ्जन

डा॰ राजेन्द्र पाल शर्मा
जी ए एम एस आयुर्वेदाचार्य
स्नातकोत्तर प्रशिक्षण एव अनुसन्धान
विभाग
राजकीय आयर्वेद महाविद्यालय,
पटियाला

मानव समाज और व्याधियो का सम्बन्ध अनादिकाल से माना गया है। भारतीय विज्ञान का मूलाधार वेद हैं। वेदो मे जहाँ सृष्टि की रचना का वर्णन मिलता है, वहाँ रोगोको दूर करने की औषधियो का भी वर्णन मिलता है। वैदिक काल मे रोग निवारण थ विभिन्न औषधियो का प्रयोग किया जाता था। ऐसा वैदिक कालीन ऋचाओ से ज्ञात होता है। इन ऋचाओ मे विभिन्न औषधियो की स्तुतिया विभिन्न रोगो के निवारणार्थ उनके गुणो को दर्शाते हुए की गई है। यथा, "अथर्व वेद" मे पृश्निपर्णी (पिठवन) का वर्णन करते हुए लिखा है कि, "हे पृश्निपर्णी तू न दीखने वाली, खून को पीने, उन्नति को रोकने वाले, गर्भ को खाने या ग्रहण करने वाले रोग को दूर कर, सहन कर। (अथर्व २/२५/३)। इसी प्रकार अन्य औषधियो के विषय मे भी वर्णन मिलता है।

समय के परिवर्तन के परिणामस्वरूप सहिताकाल मे वैदिक काल की अपेक्षा औषधियो का प्रचुर मात्रा मे रोग निवारणार्थ प्रयोग किया गया। कई ऐसी औषधियाँ जो सहिता काल मे पूर्वाचार्यों द्वारा अनुवेशित की गई थी वे आधुनिक युग मे सदिग्धता का विपय वनी हुई है, जिनका आयुर्वेदज्ञो द्वारा पूर्णरूप से निश्चय नही किया जा सका है। इसका कारण यह भी सम्भव है कि उस द्रव्य विशेष के गुण, कर्म आदि सहिता काल एव आधुनिक काल मे समय के अन्तराल के कारण परिवर्तित हो गये हो जिससे हम यह समझने लगे हो कि वह द्रव्य पूर्वोक्त गुण आदि को धारण ही नहीं करता या फिर हम उसके गुण, कर्म सज्ञा आदि को भली भाति समझ न सके। इसी के परिणाम स्वरूप बहुत से द्रव्यो को संदिग्धता की स्थिति मे आना पडा—रसाञ्जन भी उन सदिग्ध द्रव्यो मे से एक है।

रसाञ्जन नाम का लेख श्री राजेन्द्रपाल शर्मा जी० ए० एम० एस० आयुर्वेदाचार्य ने जो, स्नातकोत्तर प्रशिक्षण एव अनुसधान विभाग राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय पटियाला के है, लिखा है। यह लेख असिस्टेण्ट प्रो० द्रव्यगुण श्री वाई०एस० घई गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक कॉलेज पटियाला के निर्देशानुसार लिखा है। जिसे प्रिसिपल गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक महाविद्यालय पटियाला ने भेजा है। इस निमित्त प्रिंसिपल महोदय धन्यवादार्ह है। लेखक ने रसाञ्जन सम्बन्धी साहित्य का सकलन अच्छा किया है। पाठको के ज्ञानार्थ इसे प्रकाशित किया जा रहा है। इस निमित्त लेखक और उसके निर्देशक दोनो धन्यवाद के पात्र है। —विश्वनाथ द्विवेदी

रसाञ्जन के विषय मे चरक, सुश्रुत आदि आर्ष संहिताओ के टीकाकारो के समय से ही मतभेद है। सम्प्रति वैद्य समाज मे रसाजन के नाम से 'रसौत' का ही प्रायश व्यवहार किया जाता है। रसौत दारुहरिद्रा के घनसत्व का नाम है। रसाजन निर्माणविधि शास्त्रो मे इस प्रकार वर्णि है—

'दार्वी क्वाथ समक्षीर पादपक्वा यथा घनम्,
तदा रसाञ्जनाख्य तन्नेत्रयो परम हित' अथवा
दार्वीक्वाथमजा क्षीरं पादपक्वा यदाघनम्
रसाँजनमिति प्राहु नेत्रयो परम हितम्"॥
"खर्पर दार्वीसम्भूत तु रसाजनम् ।
दार्वीक्वाथ मजाक्षीरे पक्व सांद्र रसाञ्जनम्॥ (आ.प्र.)

अञ्जनादि गण की व्याख्या मे डल्हण लिखते हैं कि —

रसाञ्जन दारुहरिद्रा क्वाथेन कृत्रिमम् । अन्यत्वेव वदन्ति रसाजनम्, द्विविध स्रोतोञ्जन कृष्ण पाषाकृति धातु द्रव्यम् । अन्य दारुहरिद्रा क्वाथेन कृत्रिमम् ।।

अर्थात् डल्हण आचार्य के समय से ही कई वैद्य रसौत को और कई वैद्य कृष्ण पाषाण सदृश धातुद्रव्य स्रोतोजन को और कई दोनो को ही रसाजन के नाम से प्रयुक्त करते थे और रसौत को स्रोतोजन का पर्याय मानते थे ।

रसाजन के पर्यायो जैसा कि रसगर्भम्, रसोद्भव, रसोद्भूत, रसाग्रजम् आदि को देखते हुए कुछ आचार्य रसाजन को पारद का कोई यौगिक मानते हैं या रसाजन किसी ऐसे द्रव्य का नाम है जिसमे पारद का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे अवश्य सम्बन्ध होगा । रसशास्त्र के ग्रन्थो मे इसका वर्णन होने का कारण भी वह उपरोक्त ही मानते हैं । स्व० डा० वामन गणेश देसाई ने अपनी पुस्तक "भारतीय रसशास्त्र" मे पृष्ठ २३० पर पारद की पीत भस्म (Yellow Oxide of Mercury) को रस शास्त्रोक्त रसाजन माना है ।

इस प्रकार आयुर्वेद के भिन्न-भिन्न ग्रन्थो मे रसाजन के विषय मे भिन्न-भिन्न वर्णन होने के कारण आयुर्वेद अध्ययन करने वाला छात्र यह निश्चय नही कर पाता कि रसाजन—दारुहरिद्रा के घनसत्व को, कृष्ण पाषाण सदृश धातु द्रव्य स्रोतोजन (काला सुरमा) को, पारद की पीत भस्म (Yellow Oxide of Mercury) को—किसको रसाजन के नाम से ग्रहण किया जाय ।

विभिन्न भाषाओ मे नाम

ग्रन्थ नाम	संस्कृत	हिन्दी	मराठी, बगाली	कर्नाटकी	गुजराती	मारवाडी, पजाबी	तेलगु	फारसी	अरबी	अंग्रेजी	लेटिन
भावप्रकाश	—	I रसोत II रसौत III रसवत	रसाजन रसवत	रसाञ्जन	I रसवन्ति	रसौन	रसाजनुमु	फिलजहर	हुलजे हिन्द	Ext India-n Be-rberi	Extra-ctum Berb-eri
शालिग्राम नि०	रसाञ्जन	I +	II + व I	+	+	—	+	—	हुजुजे	+	+
भावप्रकाश नि०	—	II, III +	+ I +	—	II घनीभूत दार्वीक्वाथ	— —	—	—	—	—	—
यूनानी द्रव्य गुण विज्ञान	+	II, III +	I +, II +	—	I +	— —	—	—	+	+	+
आयुर्वेदीय द्रव्य गुण	—	II +	— —	—	—	— —	—	—	+	—	—
आयुर्वेद चिन्तामणि	—	II +	I + —	—	—	— —	—	—	—	—	+
गावो मे औषधरत्न	+	—	— रसौंत	+	+	— —	+	+	—	—	—
द्रव्य गुण मजूषा	+	II +	I + —	—	+	— —	—	—	—	—	—

पर्याय तालिका

ग्रन्थ नाम	रसवति	रसाञ्जन	तार्क्ष्य शैल	रसगर्भ	तार्क्ष्यज	वर्यञ्जन	दार्वीक्वाथोद्भव	रसनाम	बाल भैषज	कृतिमद्रव्य	रसोद्भूत
Materi Madica Nadkarni	+	+	—	—	—	—	—	—	—	—	—
भावप्रकाश	—	+	+	+	+	—	—	—	—	—	—
धन्वन्तरि नि०	—	+	+	—	—	+	+	+	+	—	+
राजनिघण्टु	—	+	+	+	—	+	+	+	+	—	+
मदनपाल नि०	—	+	+	—	+	—	+	—	—	+	+
शालिग्राम नि०	—	+	+	+	+	—	+	—	+	—	+
आनन्दकन्द	—	+	+	—	—	+	+	—	+	—	+
आयुर्वेद चिन्तामणि	—	+	+	+	+	—	—	—	—	—	—
आयुर्वेद प्रकाश	—	+	+	+	+	—	—	—	—	—	—
द्रव्य गुण मजूषा	—	+	+	+	+	—	—	—	—	—	—
भावकुतूहलम	—	+	+	+	—	—	+	+	+	+	+

पर्याय तालिका

ग्रन्थ नाम	रसजात	रसाग्रज	कृतक	अग्निसार	रसराज	रसौत	दार्वीरसोद्भव	वच्चाञ्जनम्	दार्वीक्वाथ समुद्भवम्
Materia Medica Nadkarni	—	—	—	—	—	—	—	—	—
भाव प्रकाश	—	—	—	—	—	—	—	—	—
धन्वन्तरि निघण्टु	—	+	+	+	—	—	—	—	+
राज निघण्टु	+	+	+	+	—	—	—	—	+
मदनपाल निघण्टु	—	+	—	—	—	—	+	—	—
शालिग्राम निघण्टु	—	+	+	+	—	—	—	—	—
आनन्दकन्द	—	+	+	+	—	—		—	+
आयुर्वेद चिन्तामणि	—	—	—	—	—	—	—	—	—
आयुर्वेद प्रकाश	—	—	—	—	—	—	—	—	—
द्रव्यगुण मंजूषा	—	—	—	—	—	—	—	—	—
शब्दकल्प द्रुम	+	+	+	+	+	—	—	+	—

परिचय—

(१) कालापन लिए भूरे रग की गोद के समान मुलायम तथा पानी और मदिरा मे घुलने वाली, दारुहल्दी के क्वाथ तथा बकरी के दूध से बनी औषधि है। इसका स्वाद कडुवा तथा कसैला होता है। इसको बनाने के लिए वर्षा के आखिर मे दारुहरिद्रा के क्षुपो को काट कर उसके पचाग का क्वाथ बनाकर बाद मे उसे गाढ़ा बनाते हैं। कुछ लोग क्वाथ मे बराबर मात्रा में बकरी का दूध मिला कर फिर गाढा करते हैं। इस बात मे मतभेद है कि रसौत केवल बे. आईसीयम के मूल एव काष्ठ से ही बनता है या बे. एशियाटिका से, या दोनों से बनता है। बाजार मे बिकने वाला रसौत प्राय दोनो के मिश्रण से बनाया जाता है। इसमे लकडी मिट्टी आदि पदार्थ मिले रहते हैं, इसलिए इसे दस गुने गर्म जल में मिलाकर छानकर सुखाते है एव बचे हुए भाग मे मद्यसार मिलाकर छान कर उस मद्यसार को ऊर्ध्वपातन यन्त्र द्वारा अलग कर गाढ़े भाग को उपयुक्त जल से सुखाये गाढ़े भाग मे मिला कर बन्द शीशी में रखकर काम मे लाते हैं। —भा० प्र०

(२) अथ दार्वीक्वाथजात रसाञ्जनम्, तस्यनिर्माण विधि नामानि गुणाश्चाह—

दार्वीक्वाथसम क्षीर पादपक्त्वा यदा घनम्।
तदा रसाञ्जनाख्यां तन्नेत्रयो परम हितम्॥

अर्थ—दारुहल्दी के क्वाथ से तैयार होने वाले रसौत को बनाने की विधि, नाम तथा गुण—

दारुहल्दी का काढा बनाकर उसी के बराबर उसमे दूध डालकर औटावें, बाद मे जब चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतार लें और उसमें से जो गाढ़ा भाग है उसे अलग कर ले। उसी को रसौत कहते हैं यह नेत्रो के लिए परम हितकर है। —शा० नि०

रसाञ्जन को "श्री कैयदेव" ने यद्यपि आगे धातु वर्ग मे अजनो के साथ वर्णन किया है तथापि उसकी समाधीनता को देखकर भाव मिश्रित श्लोक उद्धृत किए गये हैं जिनमे रसाजन की रचना स्पष्ट हो जाती है। दार्वी की मूल तथा आधार काण्ड को खण्डित करके १६ गुण जल मे उबाला जाता है। जब चतुर्थांश जल शेष रहता है तो क्वाथ छानकर पुन मन्द अग्नि पर घन किया जाता है। दुग्ध डालने का विधान यद्यपि शास्त्र में दिया गया है तथापि पहाडी लोग जो रसाञ्जन बनाते हैं दुग्ध नही डालते अथवा अत्यल्प डालते है। जब क्वाथ गुडवत् घन हो जाये उसे पत्रो के छोटे २ कोपो मे भर देते हैं। शीत होने पर रसाजन जमकर दृढ हो जाता है तब इसे अमृतसर आदि नगरो को विक्रयार्थ भेजा जाता है। एव निर्मित रसाजन मे बालू, पत्र, मृत्कादि अपद्रव होते हैं। अत. बाजारी रसाजन को शुद्ध करके व्यवहार मे लाना चाहिये।

शोधन विधि—

तोयेऽत्युष्णे परिक्षिप्य द्रवी कुर्याद्रसाञ्जनम्।
वाससा स्रावयित्वा च शोषण भानुरश्मिना॥

एव विशोधित सर्वकर्मसु परियोज्येत ।
विशुद्धि नाशयेद्व्याधीन्ना विशुद्ध कदाचन ॥

रसाजन को जल मे घोलने और वस्त्र से छानने से मृतिका आदि स्थूल द्रव्य पृथक होकर शेष शुद्ध रसाजन क्वाथ रह जाता है जो धूप मे सुखाने से घन हो जावेगा । इस शुद्ध रसाजन को सत्व (सत रसौत) भी कहते है जो कही वाजार मे मिल जाता है। —के० दे० नि०

(३) रसाञ्जन लक्षणम्—
पीत चन्दन निर्यास रसाञ्जनमितीरितम् ।
तत्क्वाथ ज वा भवति पीताभ वक्त्ररोगनुत् ॥

रसाजन जिसको रसौत भी कहते है वह पीले चन्दन का गोद या काढा है जिसका रग पीला होता है।
—र० पु०

(४) रीत्यानुध्मायमानाया तत्किट्टन्तु रसाञ्जनम् ।
तदभावे तु कर्तव्य दार्वीक्वाथ समुद्भवम् ॥
—रा नि.

(५) कृष्णाञ्जनम्, पुष्पाञ्जनम्, रसाञ्जन च ।
—रा नि. सहितो ध. नि

(६) पीताभ विषरक्त दोष शमन सश्वासहिध्मापहं ।
वर्ण्य वात विनाशन कृमिहर दार्व्यूद्भव शोभनम् ॥
—र. प्र. सु

(७) रसौत बनाने की विधि—वर्षा के अन्त मे दारु हरिद्रा के झाड को काटकर उसके पचांग को कूटकर उसका घनक्वाथ वना लिया जाता है उसको रसौत कहते हैं। कही कही इसकी जड को ४ तोला लेकर उसके टुकडे करके उनको आधा सेर पानी मे उवालते हैं और जव आठ तोला पानी रह जाता है तव इसमे आठ तोला वकरी का दूध मिलाकर फिर उवालते है और गाढा होने पर ठण्डा कर लेते हैं यही रसौत कहलाता है। वाजारु रसौंत मे लकडी, पानी, लाल मिट्टी वगैरह कचरा मिला होता है। इसलिए इसे शुद्ध किये विना नहीं लेना चाहिये। इस रसौत को दसगुने पानी मे मिलाकर छानना चाहिये और फिर इसे सुखाकर काम मे लाना चाहिये। —वनौ. चन्द्र

(८) रसाञ्जन बनाने की विधि—दारू हल्दी की मूल और छोटे २ टुकडो को मोटा २ कूटकर १६ गुणा जल मे उवालकर चतुर्थांश क्वाथ करे, फिर क्वाथ को छानकर मन्दाग्नि पर गुड के समान पाक कर लें, इसे पान पत्रो के दोनो मे भर दें जिससे शीतल होने पर रसौत जमकर दृढ हो जाती है। यद्यपि शास्त्रकारो ने उस क्वाथ के समान भाग दूध (अजा दुग्ध) मिलाने का विधान दिया है तथापि वर्तमान मे रसौत वनाने वाले दूध नही मिलाते। यदि दूध मिलाकर तैयार करते हैं। तो वह दीर्घ काल तक अच्छी नही रहती, उसमे कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं। (गा० मे औ० र०) भा

(९) रसाञ्जन निर्माण विधि—वर्षा के अन्त मे इसके (दारू हरिद्रा के) क्षुपो को काटकर कोई २ पचाग के तथा कोई मूल भाग एव निचले काण्ड भाग के छोटे २ टुकडो को कूटकर १६ गुणा जल मे चतुर्थांश क्वाथ छानकर मन्द आच पर गुड जैसा घन क्वाथ कर पत्तो मे भर देते हैं, जो ठंडा होने पर दृढ हो जाता है। यही वाजारू रसौत है जिसमे छोटी २ लकडी मिट्टी आदि मिली होती हैं।

शास्त्रो मे औषधि कार्यार्थ उक्त छने हुए क्वाथ मे सम भाग गौ दुग्ध या अजा दुग्ध मिलाकर घन क्वाथ कर रसाञ्जन निर्माण का विधान है किन्तु व्यापारी लोग वाजारू विक्रयार्थ रसाञ्जन को दुग्ध मिलाकर नही बनाते, इसमे उनके हित की हानि होती है तथा दुग्ध मिलाकर वनाया गया वाजारू रसौत अधिक टिकाऊ भी नही होता, शीघ्र ही विकृत हो जाता है एव उसमें कीटाणु पैदा हो जाते हैं। अत वाजारू रसौत को कूटकर ४ गुणा गर्म जल में घोलकर कपडे से छानकर उसे कुछ देर स्थिर रखे जिससे मिट्टी आदि नीचे बैठ जावे। फिर धीरे २ ऊपरी जल को निथार कर शुद्ध कलईदार पात्र मे भर कर ऊपर पतला कपडा वाँधकर सूर्य की धूप मे रख दें। कुछ दिनो मे यह घन वन जावेगा और इस विशुद्ध रसाञ्जन को चिकित्सा कार्यो मे लावे। अच्छी विशुद्ध रसौत अफीम के समान काले रग की नर्म होती है, पानी मे सव घुल जाती है एव पानी को एकदम पीला कर देती है।

शास्त्र विधान के रक्षार्थ उक्त चार गुना गर्म जल में घोलकर छने हुए, निथरे हुए जल मे दुग्ध मिला कर मन्द आच पर घन क्वाथ कर ले या उक्त प्रकार से धूप मे सुखा ले। —ध व वि

(१०) रसवत—दारुहल्दी के काटे मे उसी के वरावर दूध मिलाकर औटाने से रसवत तैयार हो जाता है।
—नि. क द्रु.

(11) Rasaut—

A crude extract known as Rasaut (in Hindi), Rasvanti or Rasanjana and prepared from the root bark is used as local application in affection of the eye lids and in chronic opthalmia in which it is painted over the eye lids occasionally combined with opium, rock salt and Alum This is a common house hold remedy in India in form of decoction, also Rasaut which contain large quantity of crud alkaloid, tried in the treatment of oriental sore, has given some good results. In bleeding piles it is administerd in the dose of 5 to 15 grs with butter Its solution (one in thirty two parts of water) is used as a wash for piles Its Ointment made with camphor and butter is applied to pimples, and boils A simple decoction of it with honey is given in jaundice with the addition of Emblic Myroblans, the decoction is useful in painful micturition from bilious or acidic urine

Externally—The decoction of the root bark is used as a wash for unhealing ulcers to improve their appearance and promote cicatrization. Rasaut mixed with honey is useful application to apathus sores, abrasions and ulceration of the skin (M M Nad)

(12) Extractum Berberidis—Rasaut—

'Rasaut" is a semisolid watery extract-a dark brown or yellow mass

(Modern Pharm & Ther.)

(13) Rasaut (Berberine Sulphate), Berberine Sulph I P. It is the acidic sulphate of and Alkaloid Berberine obtained chiefly from Berberis Aristata and coptis, Bright yellow accular crystals or dark yellow powder, taste-bitter, sparingly soluble in water and alcohal (90%)

M.M Phar & Ther)

(14) Rasanjana—

Rasanjana is the extract of wood of Berberis Asiatica.

(History of Chem ancie & Med Ind)

प्राकृतिक वर्गीकरण

१. हरीतक्यादि वर्ग ।	(भा० प्र०)
२ हरिद्रादि, मुस्तादि, लाक्षादि गण ।	(सु०)
३. अष्ट वर्ग—जीवकनामानि	(शा० नि०)
४. दारुहरिद्रादि वर्ग No. Berberidaceae	(गु०द्र०गु०वि०)
५. दारुहरिद्रादि वर्ग Family-Berberidaceae	(आ०द्र०गु०वि०)
६. दार्वीकुल	(द्र०गु०म०)
७ दारुहरिद्रादि वर्ग No Berberidaceae.	(द्र०गु०वि०या०)
८. अर्शोघ्न, कण्डूघ्न, लेखनीय गण	(च०)
९ दारुहरिद्रा कुल Berberidaceae	(द्र०गु०वि०प्रि)

रसाञ्जन संगठन

An alkaloid Berberine is found in Rasanjana

—आ० द्र० गु०

सक्रिय तत्व—इसमे मुख्य रूप से एक एल्कलायड बैर्बरीन (Berberene) पाया जाता है। इसकी विभिन्न जातियो मे यह सत्व विभिन्न मात्रा मे पाया जाता है। दार्वीकुल के अतिरिक्त अन्य जातियो की वनस्पतियों मे भी इसकी प्राप्ति होती है।

गुण-कर्म

१ रस—कडुवा (कटु-तिक्त) वीर्य—उष्ण

गुण—पौष्टिक, ज्वरहर, पर्यायिक ज्वर हर, स्वेदल अर्शोघ्न, शोथघ्न, रक्त शोधक, श्लेष्मघ्न, व्रणरोपक एवं नेत्र विकार हर है, कफ विष हर है, छेदक (पिण्डी भाव

को प्राप्त हुए कफादि दोषो को काट काट कर अलग करने वाला है) एव व्रण सम्बन्धी रोगो को दूर करने वाला है।

२ रसाञ्जन कटु श्लेष्म विपनेत्रविकारनुत ।
ऊष्ण रसायनतिक्त छेदन व्रणदोषहृत ॥

अर्थ—रसौत चरपरा, गर्म, रसायन, कडुवा, छेदक तथा कफ, विष, नेत्र विकार, और व्रण को दूर करता हैं।

अन्यच्चः—
दार्वीक्वाथोद्भवती तीक्ष्णकटुकच रसायनम् ।
छेदन चरसेचोष्णा चक्षुष्य कफनाशनम् ॥
वृष्य विष रक्तपित्तच्छर्दी हिक्का विनाशनम् ।
श्वासघ्न मुखरोगघ्न पूर्वाचोर्य निरुपितम् ॥

अर्थ—रसौत तीक्ष्ण, कटु, रसायन, छेदक, रस में गर्म, नेत्रो को हितकारी, कफ नाशक, वीर्यजनक तथा रक्तपित्त में, वमन, हुचकी, श्वास और मुख्य रोगों का नाश करता है। —(शा नि. भू.)

रसाञ्जन हिम तिक्त हिक्कार्शो विष नाशनम् ।
कर्ण नेत्र भवान्जो गान्योजितच्साधुसाधयेत ॥

अर्थ—रसौत शीतल, कडुआ तथा हुचकी, ववासीर, विष, कर्ण रोग और नेत्र रोगो को दूर करता है।

३. रसवत—

१. पीला कलौछ लिए, २. कडुवा, ३ मातदिल है, मगर किसी किसी का मत है कि गर्म और सर्द है, ४. वरखट को, ५. अनीसून और मस्तगी, ६ चन्दन, ७. ३ माशा, ८. काविज है, मुवाद को पचाती है, सर्दी से होने वाले वाहरी तथा भीतरी सूजनो को पचाती है, दस्तो और पसीनो को रोकती है। मुह से खून वहने को और पेशाव के मार्ग के घावो को आराम करती है काली कावर और वरखट के लिए हितकर है जिगर के लिए लाभदायक है, इसका लेप सूजनो को पचाता है और आंखो की पीडा का नाश करता है। (नि० कल्प)

४ रसाञ्जन कटु श्लेष्मविषनेत्र विकारनुत ।
ऊर्ष्ण रसायन तिक्त छेदन व्रणदोषजित ॥
(नि० रत्ना०)

५. रसाञ्जन कटु श्लेष्ममुख नेत्र विकारजित ।
ऊष्ण रसायन तिक्त छेदन व्रण दोषजित ।४०।

अर्थ—रसौत चर्परा है, कफ,मुखरोग और नेत्र रोगों को जीतता है गर्म है, बुढापे को दूर करता है कडुवा है, छेदन है और घाव दोष को जीतता है। (म पा नि.)

६. रसाञ्जन हिम तिक्त रक्तपित्त कफापहम् ।
हिध्माश्वासहर वर्णाय मुख रोग विषापहम् ॥
(ध० नि०)

७. रसौत के गुण—रसौत तिक्त, शीत वीर्य, आखो के लिए हितकर, रक्तपित्त, कफ, व्रण, शोथहर, तथा विषम ज्वर को दूर करती है। (नि० आ०)

८. रसाञ्जन रसेचोष्ण चक्षुकतिक्त कटु । रक्तपित्त विषहिक्काघ्न हृत्प्रसादनम् अन्यच्च रसाञ्जन च पीताम विपरक्तगदापहम् । श्वाहिध्माहर वर्ण्य वात पित्तास्त्र नाशनम् ।
(रा० नि० सहितो ध० नि०)

९. रसौत—इसका आन्तरिक उपयोग ज्वर, यकृत, प्लीहा वृद्धि, कामला अर्श एव आमाशय तथा पक्वाशय के व्रण (Gastric & duodinal ulcers) मे लाभदायक है। इसका वाह्य प्रयोग अर्श, प्राच्य व्रण, कटे हुए भाग, फोड़े, फुन्सियाँ एन पुराने व्रण आदि का नाश करता है। (भा० नि०)

१० रसवत (उसराए दार हल्द)—

प्रकृति—दूसरे दर्जे मे शीत एव रूक्ष (खुश्क)

गुण कर्म—बाहरी प्रयोग से यह दोष विलोमजनन, सशमन और सग्राही कर्म करती है। आन्तरिक रूप मे खिलाने से यह सन्ताप को शमन करती है और आन्त्र पर सग्रहण कर्म करती है। (यु०द्र०गु०वि०)

११. रसाञ्जन—

रस—कटु, तिक्त — गुण-रूक्ष
वीर्य—ऊष्ण — विपाक-कटु

कर्म—यह नेत्र रोग, कर्ण रोग, एव मुख रोगो को दूर करने वाला होता है। यह प्रमेह, विसर्प, विष विकार, गर्भाशय के रोग एव ज्वर के लिए हितकर है। रसौंत का प्रयोग ज्वर के लिए बहुत किया जाता है। यह मलेरिया और प्लीहा को ठीक करता है।

मात्रा—इसकी मात्रा (पूरी मात्रा) १५ रत्ती की देने पर कभी कभी रोगी को पसीना आने के बाद प्यास, जी घबराना, कमजोरी आने लगती है, रक्तार्श के लिए बहुत लाभदायक है। रसौत का लेप सूजन मिटाता है।

(आ० द्र० गु० वि०)

१२ श्वासहिक्काहर वर्ण्यं वातपित्तास्यनाशनम् ।
नेत्र्य सिध्मविषच्छर्दिकफ पित्तास्रकोपनुत् ॥

अर्थ—इसका विधिपूर्वक सेवन करने से मुख के सब रोग, श्वास तथा वात पित्तज रक्त विकार, नेत्र रोग, सिध्म विष, वमन तथा कफ पित्तज रक्त विकार दूर होते है और शरीर का वर्ण उत्तम कान्तियुक्त होता है।

(र० पु०)

१३—रसाञ्जनाच गुण—

रसाञ्जन च पीताभ विषवक्त्रगदापहम् ।
श्वासहिक्कापहं वर्ण्यं वात पित्तास्र नाशनम् ॥

(र० र० स०)

रसाजन पीला, विष, मुख रोग,श्वास, हुचकी यांचे नाशक, वर्ण कारक, आणिवात व रक्त पित्त या चा नाश करणेर आहे।

(र० धा० प्र०)

१४ दार्वीक्वाथसमं कण्ठ (ण्ठ्य) विकासी क्षिप्तमक्षिणयत।
तद्रसाञ्जनमुद्दिष्ट कषाय कटु तिक्तकम् ॥२७६॥
किञ्चिदुष्ण कफहर छेदन लघु ।
रक्तपित्त प्रशमन नेत्ररोग विनाशनम् ॥२७७॥

(आ०क०)

१५ रसाञ्जनम् गुण—

रसाञ्जन कटु श्लेष्मविष नेत्र विकारनुत ।
ऊष्ण रसायन तिक्त छेदनं व्रण दोष हृत ॥७८॥

नेत्रो को परम हितकारी कटु गर्म रसायन, तिक्त छेदन और व्रण दोष हर है।

आमयिक प्रयोग—श्लेष्मा, विषदोष और नेत्र विकार निवारक है। मात्रा—२ माशा। (आ.चि) (आ प्र)

१६ रसाञ्जन—

शीतल, कडुवा, वर्णकारक तथा रक्त विकार, पित्त प्रकोप, कफ वृद्धि, हिक्का, श्वास, मुखरोग और विष प्रकोप नाशक है। यह रस मे ऊष्ण, चक्षुष्य, चरपरा और कडुवा है तथा विष छर्दी, हिक्का नाशक और हृदय को हितकर है।

रसाञ्जन अभिष्यन्दि, कुकुणक (कुकरे, रोहे) नेत्रो से पूय स्राव, नेत्र दाह और नेत्र शूलादि नेत्र रोगो में बालक और बडे सबको अञ्जन करने मे निर्भय और उत्तम लाभ करता है। रसाञ्जन बालको के लिए अतिहितवह औषधि है। इसके कडुवे और चरपरे रस के हेतु से दूध का सम्यक पाचन, होता है शौचशुद्धि रहती है और उदर कृमि नष्ट होते है, नये कृमियो की उत्पत्ति बन्द हो जाती है और स्वास्थ्य बना रहता है।

मात्रा—४-८ रत्ती। (गा०औ०र०)

१७ रसाञ्जनम् अस्य गुणः—

हिमत्वम्। तिक्तत्वम्। चाक्षुष्यत्वम्। मधुरत्वम्। कटुत्वम्।
रक्तपित्तविषच्छर्दिहिक्कापस्मार नाशित्वञ्च ॥

(श०क०द्रु०)

१८. रसाञ्जन—साम्यानिक प्रभाव

बाह्य—दार्वी एव रसौत बाह्य त्वचा पर सकोचक प्रभाव करता है। रसौत मे पाए जाने वाले रजक तत्व का विशेष प्रभाव नेत्रो पर पडता है। (द्र० गु० म०)

19 Actions and uses—

Extractum Berberides—

Locally—The extract is mild astringent.

Internally—Given internally it is bitter tonic and is belived to be antiperiodic and one time given in chronic malaria with cinchona alkaloids Berberine sulphate in 1 to 2% sol. as infiltrated round the effected areas of oriental sore by means of a fined hypodermic needle once a week.

(M Pharm. & Ther)

20 Externally—

Being a mild astringent, Rasaut is employed with benifits as a pigment around the eyes in acute and chronic ophthalmia Berberine in dilution of 1 in 80,000 is tonic to leishmania tropica and it has been used successfully in oriental sore either in the form of

extract or berberine sulphate, 1 ml of 1 to 2% sol may be infiltrated into the margin of sore by means of a fine hypodermic syringe once a week.

(Pharm M. M & Ther)

21 The Extract of Indian Berberis—

The extract is an anodyne tonic and febrifuge, internally used like a bark Externally "Rasot" mixed with alum, rock salt, chebulic myrobalans and opium is applied around the orbit of the painful affections of the eye, as in the black eye etc Mixed with honey it is applied to the ulcers of the mouth It is also used to relieve pain of cancer and neuralgia

(M. M. of Ind. & Ther)

22. Berberine in dilution of 1 in 80.000 is toxic to Leishmania tropica. It has been used successfully in oriental sore as berberine sulphate injections. One ml of a one to two percents solution to be infiltrated into the margin of the sore once a week usually 2 to 5 injections will effect a cure. Given orally the drug is bitter and acts as a stomachic in small doses

(R. Gh. Pharm M. M & Ther.)

प्रयोग-कल्पना

१ वाह्य प्रयोग नेत्र अभिष्यन्द आदि नेत्र रोगो मे—

(द्र०गु०म)

अभ्यन्तर प्रयोग—पाण्डु, कामला, आमाशय एव ग्रहणी व्रणो मे तथा वच्चो मे रेचनार्थ। (द्र०गु०म०)

२ पित्त विदग्ध दृष्टि मे—

श्लोक नं०—१२, १३, १४, १५, (१७)

पित्तज तिमिर मे—

श्लोक नं०—३६, ४३, (१७)

नेत्र वर्ती—श्लोक ६० (१८)

(सु०उ०त० अ० १७, १८, १९)

नाडी व्रण और व्रण शोधन के लिए—

श्लोक नं० ४१, ४२, (सु चि अ. ८)

श्लोक न० ३३, ३४, ३५, ३६ खलित, पलित चि. (सु० चि० अ० २५)

रक्त पित्त चि० श्लोक ४१, ४२, (सु सू अ ३८)

३ चरक चिकित्सा स्थान मे श्लोक न ११५ मे वर्णन किया है। (च०चि०अ०१६)

नेत्र रोगो मे—श्लोक न० १२। (च०सू०अ०५)

४. नेत्र रोगाधिकार—

श्लोक न० ७, १०, ३३, (भै०र०नेत्ररोगाधिकारे)

५ प्रदर रोग चिकित्सा (वृन्द वैद्यक)

६ विषम ज्वर चिकित्सा, नेत्राभिष्यन्द, रक्तार्श, व्रण शोधन और रोपण के लिए। (आ०प्र०)

७ वेदना स्थापन, कर्ण स्राव, कण्ठ शोथ, नेत्राभिष्यन्द, अर्शोजात रक्तस्राव, आन्त्र व्रण, वाल विसर्प मे रक्त प्रसादन द्रव्यो के साथ हितकर है।

(यू०द्र०गु०वि०)

८. रक्तार्श, रक्त प्रदर, उदर कृमि, प्रवाहिका, कामला, विषम ज्वर मे रसाञ्जन खिलाया जाता है।

नेत्र रोग, कर्ण रोग मे तथा योनि, लिंग, गुदा, व्रण आदि का प्रक्षालन इसके तनु विलयन से किया जाता है। (कै० दे०नि०)

९. नेत्र रोग, उपदंश, नक्ताध्य, आदि रोगो मे। रक्तार्श, रक्त प्रदर मे लाभदायक है।

(नि० आ०)

१०. ज्वर मे, व्रणो पर मलहम, नेत्र रोगो मे, रक्तार्श मे उपयोगी है। (वनौ० च०)

११ गुदपाक चिकित्सा, मुखपाक चिकित्सा

(रसे० सा० स०)

१२. वृष्य, विष, रक्तपित्त, छर्दी, हिचकी, दमा, आणि, मुख रोग या चा नाश करिते असे पूर्वाचार्य सागात।

(नि० र०)

१३ शर्करा, आर्द्रक, दुग्ध, गोपित्त (गोरोचन) तथा रसाञ्जन आदि को मधु मे मिला आश्च्योतन करें।

(का० स०)

१४. विषम ज्वर, पौर्वात्य व्रण (Oriental sore)
(द्र० गु० म)

१५ In leucorrhoes & Menorrhagia.
Bilioua diarrhoea & indigestion
Bleeding Piles (Ind. M.M.)

१६ आश्च्योतन और लेप।
(योग० ति० पृष्ठ २७२-२७४)

१७ सन्निपात तिमिर चिकित्सा, मुख पाक चिकित्सा,
(यो० र०)

१८. Oriental sore & Stomachic orally. In small doses
(R Gh Phum & M.M. & thera)

मुख्य योग—

मृद्विकादि चूर्ण १६७, १६८ श्लोक न० च.चि अ. १५
यवान्यादि चूर्ण श्लोक ११५,११६,११७, अ.हृ.चि अ ८
आठ कषाय श्लोक न० ६६,६७,६८, च० चि० अ० ७
पाठाद्य चूर्ण श्लोक न० १६५ च०चि०अ०८
पित्तातिसार नाशक योग श्लोक ५६ च. चि अ. १६
पुष्यानुग चूर्ण श्लोक ८६,६० च० चि० अ० ३०
अञ्जनादि गण श्लोक १४. अ० हृ० सू० अ० १५
रसाञ्जनादि अजन श्लोक ५१, ५२. अ० हृ० उ०अ० १६
रोमसंजनन् लेप श्लोक ६२ अ०हृ०उ०अ० १६
त्रिफलाञ्जनम् का० स०
कल्याणिका रस क्रिया का० सं०
रसाञ्जनवर्त्ति शा० स०
दार्व्यादि क्वाथ श्लोक १०५ शा०स०द्वि०ख०अ० २
रोमसजनन लेप (इन्द्रलुप्त चि०) श्लोक ११
शा० स० तृ० ख० अ० ११
उपदशहर लेप (उपदश चि०) श्लोक १०६ " " "
चन्द्रप्रभावर्ति श्लोक न० २०३, २०४, २०५, भै० र०
शिराहर्ष चिकित्सा श्लोक न० ६३ भै० र०
बृहत् चन्द्रोदय वर्ती " १०८,१०६, भै०र० नेत्ररोग
व्योषद्य वर्ति " १२२ भै० र० "
रसक्रिया नेत्ररोगाधिकारे " "
सुखावर्ति श्लोक न० १०३, १०४ " "
नागार्जुनाञ्जनम् श्लोक न० १२३, १२४ " "
मिष्यादि लेह श्लोक न० २६ च०द० वात रोग चि.
प्रियङ्ग्वादि कल्क श्लोक ३६ च० द० "
रसाञ्जनाद्यञ्जनम् श्लोक २११, २१२ च०द० "
सिन्दूरादि तैल श्लोक १५ यो० ति० पृ० २४७
धत्तूरस्य आमायिक प्रयोग श्लोक २६६, २७० र० ति०
नयनशाणनामाञ्जनम् यो र०
रसाँजनादि चूर्ण मि० मं० स०
रसाजनाद्यञ्जनम् भा० भै० र० ४ भाग
रोध्राजनम् भा० भै० र० ४ भाग
पुष्कर लेह भा० भै० र० ३ भाग
नेत्र रोग हर लेप यो० चि०
Tincture Berberdis M pharm & thera. guide
Berberine sulphate injections I. P I P.

विनिश्चय (Conclusion)—

रसाञ्जन के विषय में आचार्यो का मत इस लेख मे सकलित किया गया है। अब हमको निश्चय यह करना है कि वास्तव मे रसाञ्जन के नाम से किस द्रव्य को ग्रहण करना चाहिए?

जो आचार्य यह मानते है कि रसाञ्जन कृष्ण पाषाण सदृश खनिज है जैसाकि राजनिघण्टु मे इसका वर्णन "कृष्णाञ्जनम्, पुष्पाञ्जनम्, रसाञ्जनम् च (राजनिघण्टु-सहितो धन्वन्तरीय निघण्टु) किया है। आचार्य कुलकर्णी जी का भी यही मत है कि रसाञ्जन या तो खनिज है या कोई पारद मिश्रित यौगिक है इसीलिए ही रसाञ्जन को रस ग्रन्थो मे वर्णन किया गया है

आचार्य कुलकर्णी जी का यह मत युक्तिसगत प्रतीत नही होता क्योकि रस शास्त्र के ग्रन्थो मे खनिज, पारद के यौगिक, धातु, उपधातुओ के अतिरिक्त कंकुष्ठ, अम्बर कम्पिल्लक आदि का भी बहुत वर्णन मिलता है न कि सिर्फ रस, उपरस आदि का ही। राजनिघण्टु मे वर्णित रसाञ्जन का सिर्फ नेत्र रोगो मे ही प्रयोग बताया गया है तथा बाह्य प्रयोग का ही वर्णन किया गया है जब कि रसाञ्जन (रसौत) का बाह्य तथा अन्त दोनो प्रकार से भिन्न २ व्याधियो के लिए प्रयोग करने को कहा है। अञ्जनादि गण मे सुश्रुत मे लिखा है कि—अञ्जनरसाञ्जन नागपुष्प प्रियङ्गु नीलोत्पलनलदनलिनकेशराणि मधुक चेति ॥ ४१ ॥ अञ्जनादिर्गणेह्येष रक्तपित्तनिबर्हण

विषोपशमनो दाहनिहन्त्याभ्यन्तर मृशम् ॥ ४२ ॥ सु० सू० अ० ३८

'स्व डा० वामन गणेश देशाई" ने अपनी पुस्तक "भारतीय रस शास्त्र" के पृष्ठ २३० मे पारद की पीत भस्म (Yellow oxide of mercury) को रसशास्त्रोक्त रसाञ्जन माना है, क्योंकि रसाञ्जन नेत्रो के लिए हितकर है और Yellow oxide of mercury भी, इस लिए रसाञ्जन के नाम से इसका ग्रहण करना चाहिए।

डा० वामन गणेश देशाई का भी मत नहीं माना जा सकता क्योंकि यद्यपि Yellow oxide of mercury नेत्रो के लिए हितकर है तथापि रसाञ्जन नही हो सकता क्योंकि रसाञ्जन का प्रयोग खाने के लिए भी किया जाता है (It is also used Orally) यथा--दार्व्या-रसाञ्जनस्य च निम्बपटोलस्य खदिरसारस्य। आरग्वव वृक्षकयोस्त्रिफलाय सप्तपर्णस्य ॥ इति षटकषाय योगा. कुष्ठघ्ना सप्तमश्चातिनिशस्य । स्नानपानेचहिता ॥

(च०चि०अ०७)

अन्तः और बाह्य दोनो प्रकार से प्रयोग किया जाता है। परन्तु Yellow oxide of Mercury का कहीं भी अन्त प्रयोग का वर्णन नही मिलता, उसका प्रयोग सिर्फ मरहम के रूप मे या जीवाणु नाशक घोल के रूप मे बाह्य प्रयोग ही किया जाता है। अत. Yellow Oxide of Mercury रसाञ्जन नहीं माना जा सकता।

आचार्य जो कि रसाञ्जन के पर्यायों, रसोद्भूत, रसाग्रज, रसगर्भ, तार्क्ष्यशैल आदि को ध्यान मे रखते हुए यह मानते हैं कि रसाञ्जन पारद का यौगिक है, उनका भी मत ठीक नही, क्योंकि चरक, सुश्रुत संहिता ग्रन्थो मे "तार्क्ष्य शैल" पर्याय के सिवाय अन्य किसी नाम से उल्लेख नही मिलता। रसोद्भूत से यह भी मान सकते हैं कि यह दार्वीरस से उत्पन्न हुआ है। इनके अतिरिक्त दार्वीक्वाथोद्भव, कृत्रिम दार्व्य, दार्वीक्वाथ समुद्भव, आदि नामो का भी वर्णन मिलता है। अत पर्यायो से रसाञ्जन को पारद का यौगिक नही कहा जा सकता।

आचार्य डल्हण के समय से कई चिकित्सक रसाञ्जन (रसौत) को कृष्णपाषाण सदृश खनिज स्रोतोञ्जन को रसाञ्जन का पर्याय मानते हैं। किन्तु यह मान्यता इस लिए संगत नही क्योंकि "सुश्रुत" मे प्रियङ्ग्वादिगण मे प्रियङ्गु समङ्गा धातकी पुन्नाग नागपुष्प, चन्दन, कुचन्दन, मोचरस, रसाञ्जन कुम्भीक स्रोतोञ्जन पद्मकेशर योजन वल्यो दीर्घमूला चेति। —सु सू अ. ३४,४५

रसाञ्जन और स्रोतोञ्जन का [illegible] अलग-अलग वर्णन किया गया है। इसलिए ही स्रोतोञ्जन और रसाञ्जन एक दूसरे के पर्याय न होकर अलग-अलग द्रव्य हैं।

चरक, सुश्रुत, भावप्रकाश, शालिग्राम निघण्टु, रसरत्न समुच्चय आदि ग्रन्थो मे रसाञ्जन को दारु हरिद्रा के क्वाथ की घन क्रिया माना है। जहा कहीं भी रसाञ्जन का वर्णन मिलता है वहा रसौत को ही रसाञ्जन के नाम से प्रयोग करने को कहा गया है। कहीं-कहीं तो स्पष्ट लिखा गया है कि—

दार्वीरसाञ्जन मुस्तभल्लात श्रीफल वृष ।
केरातश्च-पिबेदेषा क्वाथ शीत समाक्षिकम् ।
जयेत सशूल प्रदर पीतश्वेतासिताऽरुणम् ॥
१०५/(शा स. द्वि. ख अ २)

दार्वीक्वाथ से बनाया रसाञ्जन और अन्य द्रव्य लेकर अमुक औषध बनावें। इसी प्रकार ही "शालिग्राम निघण्टु मे रसाञ्जन निर्माण का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

अथ दार्वीक्वाथ जात रसाञ्जनम् तस्य निर्माण विधि गुणाश्चाह. दार्वीक्वाथ समक्षीरं पादपक्त्वा यदाघनम्। तदारसाञ्जनाख्या तन्नेत्रयो परमहितम्।

अर्थात् अब दार्वीक्वाथ से निर्मित रसाञ्जन की निर्माण विधि तथा गुणो का वर्णन किया जाता है। इस प्रकार का वर्णन मिलता है। रसाञ्जन निर्माण के लिए कहा है कि दारुहल्दी का काढ़ा बनाकर उसी के बराबर उसमें दूध डालकर इतना औटाया जाता है कि वह चतुर्थांश रह जाये तथा घन हो जाय। तब इसे छानकर जो गाढा भाग है उसे अलग कर लिया जाता है। इसे और घन कर लिया जाता है तथा इसी को रसाञ्जन या रसौत के नाम से प्रयोग किया जाता है। इस रसाञ्जन का प्रयोग नेत्र रोगो मे लेप के रूप मे तथा व्रणो आदि को धोने के लिए इसके तनु विलयन का प्रयोग किया जाता है। अन्त. प्रयोग के लिए भी इसका वर्णन बहुत से ग्रन्थो मे मिलता है जैसा कि चरक संहिता मे रक्तार्श के लिए इसका वर्णन करते हुआ लिखा है—पाठावत्सक बीज रसाञ्जन नागर यवान्यश्च। बिल्वमिति चार्शेश्चूर्णितानि पेयानि सशूलेषु।

(च. चि. अ. ८ श्लोक १९३)

आधुनिक चिकित्सा में भी 'दारु हरिद्रा' में पाये जाने वाले Alkaloid Berberine Sulphate से निर्मित Berberine Tab (Berberal Tablets & Capsules) विषूचिका, अतिसार, अमीबिक प्रवाहिका तथा अन्य कई Gastro intestinal Troubles मे प्रयोग की जाती हैं। अत मेरे विचार से दारु हरिद्रा के क्वाथ से निर्मित घन सार को ही रसाञ्जन के नाम से ग्रहण करना चाहिए और इसीको ही औषधियो में नि सकोच प्रयोग करना चाहिए।

रसाञ्जन की सदिग्धता को देखते हुए तथा इसको एक महत्वपूर्ण औषधि समझ कर मैंने भिन्न ग्रन्थो से इस विषय का सकलन किया है और रसाञ्जन की सदिग्धता को दूर करने का जो तुच्छ प्रयास किया है, यदि इससे आयुर्वेद के प्रेमियो के ज्ञान में कुछ वृद्धि हो सकी तो मैं अपना सौभाग्य समझू गा। इस लेख के लिए मैं डा० रामतीर्थ गोयल, रीडर, रसशास्त्र, भैपज्यकल्पना, स्नातकोत्तर प्रशिक्षण एव अनुसधान विभाग तथा डा० वाई० एस० घई सहायक प्रोफेसर द्रव्य गुण विभाग, का आभारी हू जिन्होंने मुझे इस लेख के लिए प्रेरित किया तथा पथ प्रदर्शन किया।

—डा० श्री राजेन्द्रपाल शर्मा
द्वितीय वर्ष, अनुसधान वेत्ता
स्नातकोत्तर प्रशिक्षण एव अनुसधान विभाग
राजकीय आयुर्वेदिक कालिज, पटियाला

(पृष्ठ ३३८ का शेषांश)

बाह्य प्रयोग—यह व्रणशोथहर, व्रणशोधन एव रोपण है। सम्भव है इसमे कुछ एन्टिबायोटिक गुण भी हो। कुष्ठ के व्रणो पर भी उपयोगी है। इसके उपनाह से फोड़ा जल्दी फट जाता है। इसकी छाल कल्क का लेप स्फोटोत्पादन के लिए किया जाता है। इसका लेप वर्ण्य भी है।

प्रयोज्य अंग—रालमिश्रित निर्यास एव छाल

मात्रा—३० मि०ग्रा० से ६० मि०ग्रा० तक

शोधन—शुण्ठीक्वाथ की तीन● भावना देने से इसका शोधन होता है।

विष प्रभाव—अधिक मात्रा से पाचन सस्थान के अङ्गो पर तीव्र प्रक्षोभक क्रिया होती है, जिससे मरोड, जलन, वमन आदि होकर✕ मृत्यु भी हो सकती है। इसकी ४ ग्राम की मात्रा से मृत्यु हुई है।

विष निवारणोपाय—बब्बूल की जड का क्वाथ या अङ्कोलमूलक्वाथ, जीरा सुहागा का लावा σ आदि सुगन्धित वातानुलोमक द्रव्यों से युक्त प्रयोग करने से शान्ति मिलती है। गुलकन्द का प्रयोग भी लाभप्रद होता है।

प्रयोग निषेध—पित्तप्रकृति में, गर्भिणी स्त्रियो मे दुर्बल रोगियो मे तथा ग्रहणी आदि जीर्ण व्याधियो मे इसका प्रयोग नही करना चाहिए।

—श्री कैलाशपति पाण्डेय आयुर्वेदाचार्य ए.एम.एस , बी.ए.
साहित्याचार्य, काव्यतीर्थ, रीडर-द्रव्यगुण
आयुर्वेद महाविद्यालय, वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी-२

● ककुष्ठ शुद्धिमायाति त्रिधाशुण्ठ्यम्बुभावितम्। —र र. समु., रसेन्द्र चूड़ामणि
शुण्ठ्यम्बुभावितं शुद्ध ककुष्ठ शुचि रेचनम्। रसेन्द्रप्राण
काञ्जिकस्वेदेन वा तस्य शुद्धि.। —रसकामधेनु

✕ Causing in large doses nausia, vomitting and griping W of india. IV Vol 106

σ बब्बूलमूलिकाक्वाथं जीरसौभाग्यसंयुतम्।
ककुष्ठविषनाशाय भूयोभूय: पिबेन्नर. ॥ —रसेन्द्रचूणामणि
बब्बूलाङ्कोलकक्वाथं जीरसौभाग्यटंकणै:।
ककुष्ठविषनाशाय भूयोभूय पिबेन्नर ॥ —रसकामधेनु
बब्बुरी मूलिकाक्वाथं जीरसौभाग्यटकणै: × ×। —रसेन्द्र पुराण

आकारकरभ

श्री डा॰ सत्य[illegible] प्रकाश जायसवाल
अध्यापक-
वाराणसेय स[illegible] विश्वविद्यालय
आयुर्वेद महाविद्यालय वाराणसी

इस लेख के लेखक डा० एस० पी० जायसवाल, अध्यापक वाराणसेय स वि विद्यालय आयुर्वेद महाविद्यालय वाराणसी के है । श्री जायसवाल जी एक उत्तम श्रणी के लेखक तथा विचारक है । आकारकरभ के स्वरूप प्रतिपादन के लिए यह लेख सरस एव पठनीय है । —विश्वनाथ द्विवेदी

आजकल कानपुर के ग्लूकोज काण्ड ने सारे भारतवर्ष में तहलका मचा दिया है। उत्तर प्रदेश विधानसभा मे हगामा मच गया है। कलकत्ता के लेवोरेटरी टेकनिशियन जिसे कोई चेलेन्ज नही कर सकता लखनऊ के विशेषज्ञो ने झूठा वतला दिया। उन सव विशेषज्ञो को झूठा वतलाने वाले हमारे नेता जो कह देंगे वही होगा। चाहे जज लोग कुछ भी कहते रहे। हमारे जज यदि ऐसे ही पावर वाले रहते जैसे अमेरिकी राष्ट्रपति निक्सन को अमेरिका के जजो ने लाकर सही वात को स्वीकार करने के लिए वाध्य कर दिया तो हमारे देश का कल्याण हो जाता।

ग्लूकोज तो है ही परन्तु घटिया किस्म का जो आत्ययिक सकट के समय कार्य नही कर सका, जिससे रोगियो की यह हालत हुई अर्थात् पचतत्व को प्राप्त हुए—और जहां वह वस्तु ही नही कोई दूसरी वस्तु ही है वहा रोगी सही सलामत रह जाता है इसे भूत भावन भगवान शकर की कृपा ही मानी जायगी जिनकी चमत्कारिक कृपा से आज आयुर्वेद टिका हुआ है नही तो इतनी गुलामी और विदेशी प्रहार के वाद इसका नाम लेता भी कौन ? जबकि अपनी सरकार होने पर भी यह ऐलोपैथिक महल का एक कोना वना हुआ है।

कहने का मतलव कि हम सदिग्ध द्रव्य विशेपाक के लिए लेख लिखने जा रहे हैं और एक द्रव्य को हम निश्चित नही कर पा रहे हैं कि जो द्रव्य रोगी को दिया जा रहा है वह वही द्रव्य है या कोई और ? अरे वावा इस रसातल मे गये हुए आयुर्वेदिक को जो कि ठीक-ठीक औषधियो के देने के वावजूद भी दुनिया उसके पीछे वदनामी का वीडा उठाये हुए है तो क्यो सदिग्ध द्रव्यो को प्रयोग करते हो ? क्यो नहीं उसके मोह को छोडते ? स्थान पर भले ही अन्य द्रव्य न्यून गुण वाला हो



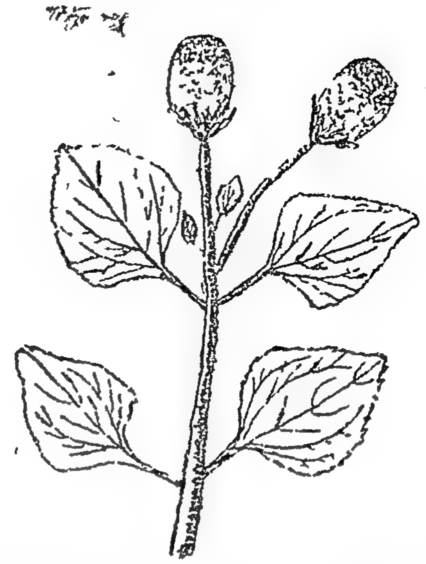
क्यो नही प्रयोग करते ? परन्तु यही तो रोना है हमारे विद्वानो का। 'कि नही अमुक द्रव्य का शास्त्रो मे बहुत गुण लिखा गया है उसे ही देना चाहिये चाहे मिया जी उस द्रव्य को स्वयं ही न कभी देखे हो और न कभी प्रयोग किये हो और ऊलजलूल वस्तु दे देंगे चाहे रोगी जाय सुरधाम।

मुझे तो आश्चर्य होता है उन सव महारथी विद्वानो के दु साहस पर जो कि यह मार करते है कि अमुक द्रव्य सदिग्ध है फिर भी वे उसका प्रयोग करते हैं और वतलाते हैं क्या उनमे यह हिम्मत नही कि वे सीनातान कर और खरे शब्दो मे इस कटु सत्य को स्वीकार करें और कह दें कि जो द्रव्य सन्दिग्ध है उनका प्रयोगविलकुल वन्दकर दें, जब तक कि वह द्रव्य पूर्णरूपेण हमारे आयुर्वेदिक कौंसिल से (यदि बुरा न माने या भ्रष्टता के डर से शकित न हो तो आधुनिक कसौटी पर भी कसकर तव घोषणा करें) पास न हो जाय कि अमुक द्रव्य का सदेह समाप्त हो गया, वास्तव मे अमुक द्रव्य ही वास्तविक द्रव्य है।

इसके पहले कि किसी द्रव्य के विषय मे लिखे यह जान लेना आवश्यक है कि वे कौन-कौन से द्रव्य हैं जो आज सन्दिग्ध माने जाते है।

इसके पहले कि हम शुरु से ही झंझट मोल ले और बेकार का विवेचन करें सन्दिग्ध द्रव्यो मे से एक द्रव्य अकरकरा का सामान्य परिचय जानले। उसके बाद जो शकाये होगी और अन्य द्रव्य उसके समकक्ष या उसके स्थान पर विभिन्न विद्वानो द्वारा विभिन्न प्रकार से सिद्ध किये गये है। और उसके बाद मे एक समीक्षा कर वह द्रव्य क्यो हो सकता है और पुन. (उसके बाद) क्या है, वर्णन किया जायगा।

विवरण—सप्तवर्ष वीर्याय, मुखगह्वर सज्ञा हारक, गुल्म जातीय, वर्षाऋतुज, भृगराजकुलीय मुण्डीकुल (Compositae family) अकरकरा के क्षुप की ऊंचाई एक हाथ के करीब होती है। इसमे काण्ड से अनेक शाखाये निकलकर बहुत सी शाखायें हो जाती है। काण्ड पर ग्रथिया दूर-दूर पर होती हैं। काण्ड एवम् शाखाओ पर छोटे-छोटे रोये पाये जाते हैं। डालियाँ ऊपर कुछ उठी सी रहती हैं तथा ये कुछ पतले विषमवर्ती एक दो इञ्च लम्बे, तीन नसो वाले होते हैं। पत्तो का स्वाद कपित्थ के समान होता है। पुष्प आश्विन से माघ फागुन मास तक मिलते हैं। देखने मे बडे सुन्दर पीले रग के बीच मे करवई गुच्छेदार लम्बे गोल घुण्डीदार आधा इञ्च व्यास के। सामान्यजन को एक घुण्डी एव पुष्प ही मालूम पडता है जबकि उसमे वास्तविकता यह है कि उस एक घुण्डी मे सैकडो स्वतन्त्र पुष्प होते हैं। पुष्प सुगन्धित होते हैं। जबान पर इसके २-४ पुष्पो को रखने से चुनचुनाहट होती है और लार निकलने लगती है, मुँह भी सुवासित होता है, अधिक से दाहकता मालूम पडती है। मूल हाथी के सूड के समान ऊपर मोटा और क्रमश पतला होता है जिसकी वजह से इसकी व्युत्पत्ति आकार करभ (आकार=आकार, करभ=हाथी यानी हाथी के सूंड के समान यह है—मतलब मूल का ही विशेष गुण और प्रयोग है)। मूल के शिखर पर रोये होते हैं। यह दो से चार इञ्च लम्बे गावा से तीन चौथाई १/२ से ३/४) इञ्च मोटे धूसरवर्ण, झुर्रीदार, तोडने पर मोटा दल, बाहर श्याम उसके बाद थोडा सा श्यामपीत या हल्का भूरा सा और केन्द्र मे अधिक भाग श्वेतवर्ण का



होता है। यह सुगन्धित होता है। अकरकरा का वीर्य इसके मूल मे ही सात वर्ष तक सुरक्षित रहता है।

भारतवर्ष मे होने वाला अकरकरा का क्षुप २ से ४ फीट की ऊँचाई वाला होता है। इसकी डालियाँ भूमि पर भी फैली हुई सी होती हैं जबकि अरब के अकरकरा की डालिया ऊपर उठी होती हैं। पुष्प अपेक्षाकृत कम चरपरे, जड़े उतनी सुगन्धित नही होती। इसी को मिला कर बाजारो मे बेचते हैं।

पर्याय—इसका विशेष गुण मूल मे ही होता है अत इसके विशेष पर्याय इसके मूल के ही अनुसार रखे गए है। कुछ पर्याय गुण और आकार के कारण रखे गये हैं।

अकरकरा यूनानी द्रव्य है और इसका अर्थ अकर=व्रण, करा=करने वाला यानी घाव करने वाला द्रव्य चूँकि इसकी अधिक मात्रा चमडी पर रखने पर घाव करता है अत इसे अकरकरा कहते हैं।

इसी प्रकार से इसका नामकरण कई प्रकार से किया गया है। विभिन्न भाषाओ मे नामकरण निम्न है।

सस्कृत—आकार करभ, आकल्लक, अकल्लक, आकार कलभ, आकर करा, तीक्ष्ण मूल, लक्षण कीलकादि, करहाट, करहाट शिफाकन्द।

हिन्दी - अकरकरा, अकलकरहा,
देहाती नाम—चुनचुनहवाँ

बगाली— अकोरकोरा, आकरकरा

मराठी—अक्कलकरा, अक्कल कारा, आक्कलकारा, अक्कल काला।

गुजरानी—अक्कलगरो, अकोरकरो, अक्कल करे, अक्कल करो।

तेलगू—अक्कर करम, अकरकरम, अकल करा।

तामिल—अक्किर करम, अक्किर कारम

अरबी—आकिर किही, आकर करहा

अंग्रेजी—पेलीटरी रूट (Pellitory Root)

वैज्ञानिक नाम—लैटिन—एनासाइक्लस पाइरेथ्रम Anacyclus Pyrethrun पाइरेथ्रम रैडिक्स Pyrethrum Radix, ऐंजेइल्कस Angeyclous

आयुर्वेदीय वर्ग—यो तो इस द्रव्य का उल्लेख बृहद् त्रयी मे न होने की वजह से यह किस गण या वर्ग का है कोई वर्णन नही मिलता। फिर भी मध्यकालीन ग्रन्थ भावप्रकाश मे गुडूच्यादि वर्ग के द्रव्यो मे इसकी गणना की गई हैं।

आधुनिक आयुर्वेदीय ग्रन्थ प० प्रियव्रत जी शर्मा जिन्होने द्रव्यो का सस्थानिक क्रिया के अनुसार वर्गीकरण किया ह इसे ("रस्य" माना है)। ज्ञानेन्द्रियो पर कर्म करने वाले द्रव्यो में जिह्वा पर कर्म करने वाला होने से 'रस्य' लिखे हे।

वैज्ञानिक वर्ग—यह Compositae भृंगराज कुल या मुण्डी कुल

प्राप्ति स्थान—वैसे तो यह द्रव्य यूनानी हकीमो के द्वारा भारतवर्ष मे लाया गया है और मुख्यतया इसकी प्राप्ति अरब एव मिश्र मे होती है। अन्य स्थानो पर मिलने पर भी अब भी अरब का ही अकरकरा असली है यही श्रेष्ठ माना जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य स्थान है वे ये हैं—

उत्तरी अफ्रीका, सीरिया, अल्जीरिया, लीवाण्ट, भारतवर्ष मे बगाल के कुछ भाग, आबू, गिरनार, महाराष्ट्र, गुजरात, यू० पी० के कुछ भागो मे (थोड़ा बहुत तो भारत के हर प्रान्तो मे पाया जाता है।)

कश्मीर में श्रीनगर से ५०-६० मील दूर पर……… बहुत बड़ा फार्म हे जिसमे एक विशेष प्रकार का अकरकरा मिलता है जिसको एक बार लगा देने के बाद प्रत्येक वर्ष उसके मूल को निकाल लिया जाता है और वह पुन दूसरे साल मूल हो जाता है और निकाल लिया जाता है। इस प्रकार ७-८ वर्ष तक उसका मूल निकाला जाता

रासायनिक सगठन—१—इसका मुख्य अल्कलायड एक क्षार तत्व है जिसे अकर्मीन कहते है। २—दूसरा अल्कलायड जो क्षारीयतत्व है जो स्फटिक के समान होता है पाइरेथ्रीन कहा जाता है। ३—इसमे एक सत्व जिसे रेजीन कहते है जो राल के सदृश होता है जो मद्य मे घुल जाता है। ४—इसमे स्थायी एवम उडनशील तैल होता है।

भारतीय इतिहास—इसका आयुर्वेद मे पदार्पण मध्यकालीन इतिहास की झलक देता है। आयुर्वेद इतिहास के लिए वृहदत्रयी कसौटी माना जाता है कि इसमे वर्णित द्रव्य पूर्णरूपेण भारतीय हैं और बाद मे जोडी जाने वाली चीजें बहुधा बाहरी या विदेशी वस्तुये हें—जैसाकि सामान्यतया शार्ङ्गधर सहिता काल जो कि १४ वी शती का ग्रन्थ है अनेक वर्णन मिलते हैं। अकरकरा के विषय मे भी कुछ ऐसा ही है कि इसका वर्णन बृहदत्रयी मे नही मिलता अत. इस वस्तु का समावेश अन्य ग्रन्थो मे मिलता है, उसमे शार्ङ्गधर सहिता जो १४ वी शताब्दी का ग्रन्थ है जो मुगल काल मे ही लिखा गया है मिलता है। इससे यह बात और भी स्पष्ट होती है कि यह ग्रन्थ मुगलो के साथ उसी काल मे यूनानी हकीमो द्वारा भारत मे लाया गया और उस काल के प्रसिद्ध आयुर्वेद विद्वान ने केवल शुद्धाशुद्ध आयुर्वेद की राजनीतिक दकियानूसी मे न पडकर इस वस्तु को अपने आयुर्वेद मे प्रगतिवादी की तरह आत्मसात किया और आज यह आयुर्वेद के प्रमुख द्रव्यों मे गिना जाता है। शार्ङ्गधर सहिता के बाद के ग्रन्थो पर फिर दृष्टिपात करते हैं तो इसका वर्णन १६वी शती में भावमिश्र ने भावप्रकाश मे किया है जहा इसके ३-४ योग मिलते है जिनमे से कि शार्ङ्गधर सहिता का एकमेव योग भी मिलता है।

यहा एक शङ्का होती है कि शार्ङ्गधर संहिता एवम् भावप्रकाश सग्रह ग्रन्थ हैं। इनमे वर्णित चीजे कही पूर्व वर्णित होनी चाहिए। फिर भी यदि हम माने कि उन लोगो ने अपने समय के प्रचलित चीजो को अलग से जोडा है तब भी यह भारतवर्ष मे १४वी शती मे या उसके कुछ समय ही पूर्व यह द्रव्य हुआ था। एक बात यह भी हो सकती है कि यह भारतवर्ष में पहले होता रहा हो परन्तु उसके गुणो के बारे मे विशेष उल्लेखनीय बात उस समय तक न मालूम हुई हो और बाद मे प्रगति क्रम मे कुछ

विशेषता मालूम होने पर वर्णन किये हो। (कारण एक सरसरी निगाह से देखने पर यह मालूम होता है कि यह भारतवर्ष के प्रत्येक स्थानो मे पाया जाता है और छोटे-छोटे बच्चो के लिए यह एक कौतूहल एवम् मजाक का द्रव्य है जिसका नामकरण चुनचुनहवा करके बच्चे कहते है। इसके कुछ फूलो २-४ को लेकर बच्चे जीभ पर रखते हैं तो पहले जिह्वा (जीभ) मे कुछ चुनचुनाहट एव मुह मे कुछ ठण्डा सा मालूम होता है। इस स्थिति मे वे कुछ विशेष आनन्द सा महसूस करते हैं) बाद में जडो के विशेष गुण मालूम होने पर इसका वर्णन किया गया है।

इसका वर्णन चरक सुश्रुत वाग्भट्ट मे तो नही ही है उसके बाद के धन्वन्तरि, राज, वल्लभ आदि निघण्टुओ मे भी नही मिलता। इसका वर्णन शार्ङ्गधर सहिता, भावप्रकाश, योगरत्नाकर, मदनपाल निघण्टु, वनस्पति कुशादर्श, वनौषधि चन्द्रोदय आदि ग्रन्थों मे मिलता है।

वैसे कही-कही पर लोगो ने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि प्रसिद्ध यूनानी हकीम डीओसकरीदस (Dioscorides) ने इसका वर्णन पाइरीथ्रान नाम से किया है और बाद में इसी शब्द से लैटिन नामकरण पाइरीथ्रम हुआ ठीक जचता नही—कारण पाईरीथान कोई यूनानी नाम तो है नही यह तो लैटिन नाम ही मालूम पडता है।

असली एव अच्छे अकरकरा के लक्षण—असली अकरकरा भूरा, झुर्रीदार, वजनदार, कुछ सुगन्धित, तोडने पर बीच मे सफेद (बाहर छिलका वाला स्थान श्याम, उसके बाद कुछ हल्का श्याम-पीत, एव बीच मे सफेद) होता है। इसकी लम्बाई २ से ४ इच, मोटाई १/२ से ३/४ इंच (ताजा रहने पर १ इच)। छाल मोटा, जबान पर रखने पर पहले कुछ अच्छा सा स्वाद, हल्का-हल्का चुनचुनाहट के साथ जीभ मे हल्का सा लार, फिर कुछ जलन एव तेजी, फिर हल्का चरपराहट के बाद मुंह साफ एव सुगन्धित सा इसके बाद कुछ चीज खाये तो थोडी देर तक उसका स्वाद नही मिलता।

नकली अकरकरा का लक्षण—वजन मे हल्का, तोडने पर अन्दर कुछ पीला या भूरापन, चुनचुनाहट थोडा एव थोडी देर तक ही।

प्रयोज्य अंग—इसके पहले कि इसके गुण के विषय मे कुछ लिखे यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि आखिर द्रव्य के किस भाग के गुणों का वर्णन किया जाय तो हम पाते हैं कि कुछ विद्वान अकरकरा के फूल के गुणो का वर्णन करते है और कुछ विद्वान उसके मूल के प्रयोग का वर्णन किये है—परन्तु आज के माने जाने प्रतिष्ठित द्रव्यगुण विशेषज्ञ यह मानते है कि इसके मूल का ही प्रयोग उत्तम है। कारण यह देखा जाता है कि इसके मूल मे ही सात वर्ष तक वीर्य का रहना स्वीकार किया गया है, और देखा भी जाता है अल्पगुण तो कुछ हद तक पुष्प मे भी मिलते है परन्तु जैसा इसका नाम अकर=व्रण+करा=करने वाला, यानी घाव करने वाला द्रव्य—तो यह गुण तो केवल मूल मे ही होता है पुष्प मे कथमपि नही। आकारकरम=हाथी के सूंड के समान ही आकृति भी है।

अत हमे यह मानकर चलना है कि जो भी गुण इसके वर्णन किये जावेंगे वे मूल के ही होंगे। यदि गुण फल का होगा तो उस स्थान पर फल का निर्देश साथ ही साथ होगा।

जहाँ श्री बापालाल जी, हकीम श्री दलजीत सिंह जी, वैद्य पं विश्वनाथ प्रसाद जी द्विवेदी, वैद्य प्रियव्रत जी शर्मा, डा० रामसुशील सिंह जी आदि ने मूल प्रयोग पर ही (जोर) बल दिया है। वहाँ वनौषधि विशेषांक, धन्वन्तरि मे इसके पुष्प का भी गुणगान किया है इसमें इसके टिंचर एव आसव का भी प्रयोग लिखा है वैसे सामान्यतया इसके लेखक ने भी मूल की ही प्रधानता स्वीकार किया है जैसा आगे उन्ही के वर्णन से पता लगता है जहा पर उन्होने असली-नकली अकरकरा के भेद का वर्णन किया है फूल का नाम भी नही लिया है।

सामान्य गुण—

आयुर्वेद मत—रस-कटु, गुण-रूक्ष तथा तीक्ष्ण, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, प्रभाव-कटुपौष्टिक।

यूनानी मत--दूसरे दर्जे का खुश्क और गरम। किसी के मत से तीसरे दर्जे के अन्त से चौथे दर्जे तक खुश्क। किसी के मत से तीसरे एव चौथे दर्जे मे हानिकर।

पाश्चात्य मत—लाला स्रावक, प्रदाह जनक, कामोत्तेजक।

सामान्य कर्म-

आयुर्वेदीय मत—वात शामक—उष्णता की वजह से कफ शामक—रूक्षता, तीक्ष्णता एव कटुता से।

यूनानी मत—फेफड़ों को मुलायम बनाने वाला।

पाश्चात्य मत—मज्जा तन्तुओं को बल देने वाला, श्लेष्मकलाओं में दाह उत्पन्न करने वाला।

सामान्य प्रयोग-

अकरकरा का प्रयोग वीर्य एवं स्तम्भन कार्यों के लिए प्रयोग किया जाता है। इसका अन्य प्रयोग दन्तशूल शान्त करने के लिए, बच्चों में वाक् शक्ति तीव्र करने, न बोलने वाले बच्चों में वाक् शक्ति पैदा करने के लिए, [illegible] (निनवां) जिह्वा स्तम्भ, वातव्याधि, कम्पवात, पक्षाघात, यकृत एव आन्त्र आदि रोगों में प्रयोग किया जाता है।

संदिग्धता-

जब हम अकरकरा को पहचानने की कोशिश करें तो विभिन्न विद्वानों के मत मिलते हैं। कोई विद्वान यह मानते हैं कि जो अकरकरा अरब देश से आता है वही असली अकरकरा है और सबमें कोई न कोई मिलावट होता है अन्य नकली है और उनमें उस प्रकार के गुण नहीं है। कुछ लोग यह मानते हैं कि वह अरब और मिश्र से ही आता है। कुछ लोग कहते हैं कि यह भारतवर्ष में बहुत कम पाया जाता है। और कुछ कहते हैं कि इस जाति का भारतवर्ष में होता ही नहीं।

जैसा कि कुछ विद्वानों ने आबू एवम् गिरनार आदि देशों की गिनती कराई है वहीं अनेक विद्वान कहते हैं कि वे द्रव्य अकरकरा है ही नहीं, वे अन्य द्रव्य है कारण कि वे द्रव्य Umbelifery family के हैं जब कि अकरकरा Compositae family का है। जब जाति-वर्ग भेद ही है तो द्रव्य एक सा कैसे हो सकता है।

यूनानी ग्रन्थों में बाबुना वर्ग की चार औषधियां साथ मिलती है—ये चारों एक दूसरे से बहुत मिलती-जुलती हैं—वे ये है—

बाबुना जरमी, बाबूना बदबू

बाबुना गावचश्म, बाबुना स्पेनिश

यूनानी में बाबुना एवम् लैटिन में Pyrethrum इसमें से बाबूना स्पेनिश जिसे Anacyclus Pyrethrum कहते हैं सबसे अच्छा होता है। यही अकरकरा असली वास्तविक अकरकरा है।

जहाँ तक भारतवर्ष के अकरकरा के विषय में है यहां दो प्रकार की जातियाँ पाई जाती है—

७. छोटा अकरकरा [illegible] Spilanthes Acmella [illegible]—मधुर

८. बड़ा अकरकरा [illegible] Spilanthes Oleracea [illegible] में मरेठी कहते हैं—कुछ [illegible] है। इसे [illegible] गोरखपुर, [illegible] में मरेठी कहते हैं। [illegible] होता है [illegible] कहा जाता है। और बाजार में यही [illegible] बिकता भी है।

९। इन्हीं का नाम [illegible] में [illegible] कहते हैं [illegible] कोटि में भी [illegible] [illegible] है। जैसे कुछ [illegible] अकरकरा [illegible] [illegible] है। इसकी जड़ों को मुख में रखने पर दाह भी नहीं होता। [illegible] भेद से गुण भेद [illegible] अकरकरा [illegible] सकते है।

सामान्यतया बाजारों में जो अकरकरा मिलता है उसमें सामान्यतया निम्न चीजें मिलती है।

बाबुना स्पेनिश, बाबूना जर्मन, बाबूना बदबू।

बाबूना गावचश्म दोनीदाना मधुर (छोटा अकरकरा) मरेठी (बड़ा बाबूना)

सत्य को छिपाया नहीं जा सकता—अन्य देश का हो अकरकरा बाबूना स्पेनिश Anacyclus Pyrethrum में जैसा ऊपर अच्छे अकरकरा के गुण लिए गए हैं गुण मिलते हैं। अत यही बाबूना स्पेनिश अकरकरा ही जिसे लैटिन भाषा में Anacyclus Pyrethrum कहते हैं ही असली अकरकरा है।

अविधि प्रयोग से हानियां—नाड़ी वेगवती, ज्वाला, श्लेष्मावरण में प्रदाह, तन्द्रा, मूर्च्छा बारबार मलत्याग की प्रवृत्ति, खूनी दस्त।

अधिक देर तक लेप से हानियाँ—स्फोट उत्पादन

दर्पनाशक द्रव्य—मुनका, कतीरा

प्रतिनिधि द्रव्य—यकृत सम्बन्धी रोगों में इसके अभाव में पिप्पली एवम् शहद का प्रयोग करना चाहिए।

आमाशय के रोगों में इसके अभाव में रास्ना एवम् अगर का प्रयोग करना चाहिए।

अरुचि नाशन—पाचक एवम् रेचक द्रव्य (किसी

प्रकार के अरुचिकर द्रव्य) जो प्राय अरुचिकर होते है उनको खाने या पीने के पहले इसके २-४ फूलो को मुह मे थोडी देर चबा लेने से मुंह मे थोड़ी देर के लिए हल्की शून्यता हो जाने से अरुचिकर द्रव्य का प्रभाव बिल्कुल ही नही पता लगता है।

(कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि इसे मुंह मे चबा लेने के बाद आग रख लेने पर भी पता नही लगता—परन्तु मुझे ऐसा अनुभव नही हुआ कारण हो सकता है वह ठीक अकरकरा न रहा हो।)

प्रसिद्ध योग—वैसे तो अकरकरा के अनेको योग मिलते है परन्तु यहां कुछ प्रसिद्ध योगो का वर्णन किया जा रहा है —

(१) **आकारकरभादि चूर्ण**—यह बहुत प्रसिद्ध योग है और साथ ही इसकी यह विशेषता है कि यह आकारकरभ के योगो मे सर्व प्रथम योग भी है जो अपने गुणो के कारण आज भी अपनी प्राथमिकता को स्थिर रक्खे है। अत इसका पाठ भी यहा देना आवश्यक मालूम पडता है।

आकार करभ. शुण्ठी ककोल कुकुम कणा ।
जातिफल लवङ्ग च चन्दन चेति कार्षिकान् ॥
चूर्णानि मानत कुर्यादहिफेन पलोन्मित ।
सर्वमेकी कृत चूर्ण माषैक मधुनालिहेत् ॥
शुक्र स्तम्भकर चूर्ण पुंसामानन्दकारकम् ।
नारीणा प्रीतिजनन सेवेत निशि कामुक ॥
—शा. स. म ६

अकरकरा, सोंठ, ककोल केशर, पीपर, जायफल, लौग, सफेदचन्दन प्रत्येक १-१ तोला, सब मिलाकर ८ तोला, शुद्ध अफीम ४ तोला।

मात्रा १ माशा, अनुपान-शहद, शुरू के ८ द्रव्यो को चूर्ण कर अन्त मे अफीम मिला चूर्ण रख ले।

जब हम इस योग पर ध्यान देते हैं तो पाते हैं कि यह अफीम-मादक द्रव्य प्रधान योग है-इसमे इसकी (अफीम) मात्रा भी एक खुराक मे २॥—२॥ रत्ती के करीब बैठता है जो कि अनभ्यासी व्यक्ति के लिए बहुत बडी मात्रा है। और उतनी बडी मात्रा मे अफीम का प्रयोग चाहे सद्य कुछ फायदेमन्द दिखलाई पडे परन्तु अधिक दिनो तक उसका प्रयोग अवश्य ही हानिकारक होगा। (हो सकता है उस जमाने मे लोग दृढ शक्ति वाले रहे हो और बरदास्त कर लेते हो, परन्तु आज डालडा मे भी डालडा के जमाने मे इतनी मात्रा मे अफीम का प्रयोग सामान्य व्यक्ति क्या अच्छे साधन सपन्न व्यक्ति के लिए भी सरासर अनुचित है। अत इसमे अफीम की मात्रा कम करना आवश्यक है। साथ ही उसका प्रयोग भी सीमित मात्रा मे ही करना चाहिए)

दूसरी चीज हम पाते है कि केशर की मात्रा भी आज के युग मे इतना बरदास्त करना सबके लिए सम्भव नही कारण इसमे एक खुराक मे करीब पौन रत्ती केशर हो जाता है। आज ५-७ पत्ती केशर ही काफी हो जाता है अतः इसकी मात्रा भी विवेक के अनुसार प्रयोग करनी चाहिए।

तीसरी बात १ माशा चूर्ण को फाकना उसमे भी जिसमे इतनी मात्रा मे अफीम हो अरुचि पैदा करेगा अत इसकी गोली शहद या जल मे ही बनाकर प्रयोग करने मे अच्छा होगा।

चौथी बात इसका प्रयोग रात मे ही करना चाहिए।

इसी प्रकार अन्य रोगो पर भी ध्यान देना चाहिए। और समय के अनुसार विवेक से काम लेना ज्यादा श्रेयस्कर होगा।

उदाहरण स्वरूप-अकरकरा को हम मानते है कि इससे चमड़े पर स्फोट होता है अत इसका प्रयोग बडी ही सावधानी से सीमित मात्रा मे एवम् सीमित समय तक ही करना चाहिए, परन्तु हम पाते हैं कि विद्वत् वृन्द इसका प्रयोग शिश्न पर लेप करने के लिए मात्रा २तोला लिखते है—२ तोला अकरकरा का प्रयोग इतने कोमल अग को स्तम्भन तो बाद मे करेगा, परन्तु स्फोट पहले कर देगा।

अत प्रसङ्गानुसार हम यहा कुछ योगो का नाम लिख देते है। परन्तु प्रयोग विवेक के अनुसार ही की सलाह दूंगा-(कभी आगे प्रत्येक योगो का विवेचन करते हुए अलग लेख ही लिखूंगा।)

(२) कुछ विद्वान (बापालालजी)—लिखते हैं कि भाव प्रकाश मे केवल एक ही योग लिखा है वह है फिरग रोगे आकारकरभ —जो निम्न है—

पारदष्टङ्क मान. स्यात् खदिरष्टक सम्मितः ।
आकार करभश्चापि ग्राह्यष्टक द्वयोन्मित ॥
टंकत्रयोन्मित क्षौद्र खल्वे सर्व विनिक्षिपेत् ।
सम्मद्य तस्य सर्वस्य कुर्यात् सप्तवटी भिषक् ॥
स रोगी भक्षयेत्पात. एकैकामम्बुना वटीम् ।
वर्जयेदम्ल लवण फिरंगस्तस्य नश्यति ॥

इस योग मे पारद की मात्रा अधिक है ।

परन्तु जब हम शास्त्र को देखते हैं तो पाते हैं कि भावप्रकाश मे इसी श्लोक को लिखा गया है और वहा पर इसका नाम "सप्तशालि वटी" करके लिखा है। साथ ही इसके अतिरिक्त और भी ३-४ योग मिलते हैं जो निम्न हैं—

भावप्रकाश उत्तर खण्ड वाजीकरण प्रकरण मे निम्न योग मिलते हैं—

अकरकरादि वटी, कामेश्वर वटी, आवकलकादि वटी ।

भैषज्य रत्नावली मे इसके योगो का वर्णन निम्न प्रकार है—

प्रकरण—ध्वजभग, फिरङ्ग रोग, वीर्यस्तम्भ ।

योग—सौगत गुटिका, सप्तशालिवटी, कामिनी विद्रावण रस तथा वाजीकरण प्रकरण मे भी इसके योग मिलते है। धन्वन्तरि वनौषधि विशेषांक मे इसके अनेक योग अनेक रोगो पर लिखे गये हैं परन्तु वे पाठ मात्र अधिक मालूम पडते है प्रत्यक्ष परिणाम कम ।

यहा मैं सक्षेप मे कुछ कषाय कल्पनाओ का वर्णन जो अनेक रोगो मे किये जाते हैं लिख रहा हू जो निम्न हैं—

आभ्यान्तरिक प्रयोग—

स्वरस पिलाने से—कम बोलने वाले बच्चे, देर से बोलने वाले बच्चे, न बोलने वाले बच्चो मे लाभ होता है। इससे वाणी स्वच्छ एव बुद्धि तीव्र होती है ।

नस्य—अपस्मार, पीनस, प्रतिश्याय ।

कल्क कल्पना—

चबाने से— अल्प मात्रा मे चबाने से जडता समाप्त होती है ।

रूमीमस्तगी+अकरकरा—इसे मुह मे चबाने से मृगी नष्ट होती है एव दन्तशूल ठीक होता है ।

क्वाथ कल्पना—

पीने से—खांसी ठीक होती है । आर्द्रक स्वरस के साथ पीने से—बेचैनी, मुख का पक्षाघात, अधिक उन्माद, जिह्वा स्तम्भ, तन्द्रा एवम् जडता नष्ट होती है ।

गण्डूष धारण से—गद्गद, मिन-मिन, स्वरभग, कण्ठ-शालूक, दन्तशूल, दन्त कृमि ठीक होता है ।

शिर पर लेप या मलना—या तालु पर मलने से सर्दी जुकाम ठीक होता है ।

हिम कल्पना—गलक्षत, मूत्रकृच्छ्र ठीक होता है ।

फाण्ट कल्पना—मासिक धर्म की रुकावट, सन्निपातज ज्वर ।

चूर्ण—

खिलाना—अकरकरा को बालवच के साथ खिलाने से बोलना जल्दी आता है । देर से बोलने वाले या न बोलने वाले बच्चे जल्दी बोलते हैं ।

इससे बालातिसार, दात निकलने का उपद्रव, बच्चों को कण्ठ सूखना एव अपस्मार ठीक होता है ।

रगड़ने से मसूढ़े का दुखना एव दाढ़ का दर्द ठीक होता है ।

मुख मे लेप—लार की कमी, जिह्वा की रूक्षता, टासिलाइटिस, कण्ठशालूक ठीक होता है ।

शिर्का मे पीसकर लगाने से—दन्तशूल ठीक होता है ।

सूंघने से—श्वासावरोध ठीक होता है ।

मोदक—आकारकरभ खण्ड मोदक—ध्वजभङ्ग, शुक्रक्षय-जन्य दौर्बल्य, मूत्रकृच्छ्र ठीक होता है ।

अर्क (टिंचर)—अर्द्धावभेदक (Neuralgic Headache) लगाने एव पिलाने से एव कृमिदन्त मे लगाने से ठीक होता है ।

बाह्य प्रयोग

लेप—विद्रधि पाचन, शीघ्रदारण, (लेप अधिक देर तक न करे) ।

मालिश—पक्षाघात, नाडी दौर्बल्य ।

जैतून के तेल के साथ मालिश—जोडो का दर्द, गृध्रसी, कुबडापन, गर्दन का अकडना एव मस्तक रोग ठीक होता है । ज्वर एव जुकाम मे पसीना लाकर इन्हे लाभ पहुँचाता है ।

तिला—वाजीकरणार्थ ध्वजभग मे प्रयोग किया जाता है ।

उपसहार—जहा हमारे आयुर्वेद ने इस शरीर का

(शेष पृष्ठ ३६३ पर)

● ब्राह्मी का ऐतिहासिक विवरण—

ब्राह्मी मण्डूकपर्णी

इस पर चार लेख आये हैं। श्री राजकुमार जैन, श्री सुरेश आनंद, श्री युधिष्ठिरसिंह जी-इनकेउ पावेय अंश इसमे सबके एकत्र कर दिये हैं। श्री राजकुमार जी का लेख औरो से प्रशस्त है। ऐतिहासिक विवरण श्री सुरेश आनन्द का अच्छा है। कुछ योग श्री युधिष्ठिरसिंह वैद्य के हैं।

आचार्य श्री राजकुमार जैन, टेक्निकल आफीसर—आयुर्वेद चिकित्सा केन्द्रीय परिषद, नई दिल्ली ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी पर दोनों का पृथक अस्तित्व सिद्ध करते हुये अपना लेख लिखा है। लेखक के विचार मे ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी पृथक-पृथक औषधि द्रव्य हैं। वास्तव मे यह दोनो दो द्रव्य है किन्तु भाव मिश्र ने एक साथ ही दोनो के पर्याय पाठ करके एक सदेह उत्पन्न कर दिया है। पाठक इसे पढ़कर स्वय निर्णय करें।

विश्वनाथ द्विवेदी

लेखक—श्री सुरेश आनन्द, स्नातकोत्तर शिक्षण सस्थान, पटियाला

ब्राह्मी अनेक रोगो पर प्रयुक्त होने वाली अमोघ औषधि है। इसका वैदिक, सहिता काल मे प्रचुरता से प्रयोग होता रहा और आधुनिक काल मे हो रहा है। यह नाडी व्यूह और प्रजनन सस्थान कर प्रभावकारी है, वेदो मे ब्राह्मी की महिमा सन्तानोत्पादक गुण के लिये इस प्रकार उपलब्ध होती है। यथा—

तनूसा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती।
मध्वा रजासीन्द्रियमिन्द्रायपोषभिर्वहान ॥
—यजुर्वेद अध्याय २० मन्त्र ५६

अर्थात विद्वान वैद्य सन्तानोत्पत्ति के लिये सरस्वती को मधु के साथ सेवन करावे। इसके सेवन से वीर्य और रज ठीक स्थान मे जाकर स्थिर होकर गर्भ धारण करताहै।

अन्य—अश्विना भेषज मधु भेषजं न सरस्वती
इन्द्रेत्वष्टायश श्रियरूप मधु सुते ॥
—यजुर्वेद अ० २० मन्त्र ६४

अर्थात—प्रजोत्पत्ति के लिये ब्राह्मी और मधु देते है, इससे सारे ससार का रचियताउत्पन्न हुये पुत्र को यशश्री एव रूप देता है।

अन्य—गोभिर्न सोममश्विना मासेरण परिसुता
समधातसरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुत मधु।
—यजुर्वेद अ० २० मन्त्र ६६

अर्थात ब्राह्मी को ताजे मधु के साथ बलवान पुत्र के लिये श्रेष्ठ-क्रिया द्वारा दो। इससे जैसे सूर्य की किरणो से चन्द्र प्रकाशित होता है तथा शीतल स्वभाव का होता है, वैसे ही ब्राह्मी के गुणो से मधु दीप्त होकर श्रेष्ठ पुत्रोत्पत्ति होती है।

परन्तु इस प्रकार का कोई उल्लेख वेदो मे मण्डूकपर्णी के लिये उपलब्ध ही नही होता। न तो स्वतन्त्र रूप में ही और न पर्याय के रूप मे।

देवी पुराण मे ब्राह्मी को देवी नाम से पुकारा है यह शरीर मे अश्वो के समान बलदायिनी शक्ति रूप है।

बृहदश्व शरीर चन्द्र प्रमेय प्रमाणत।
बृहदहिस्तीर्णमित्युक्त ब्राह्मी देवी तत स्मृत ॥
—देवी पुराण अध्याय ४५

मनुस्मृति मे भी ब्राह्मी की प्रशसा करते हुये "ब्रह्म" प्राप्ति योग्य कहा है।

ब्राह्मी का अनुपम चित्रण गीता मे भी उपलब्ध होता है मण्डूकपर्णी का यहाँ कही वर्णन नही मिलता। मन्डूकपर्णी सहिता काल मे प्रसिद्ध हुई। परन्तु सहिता काल के आगे के कुछ निघण्टुकारो ने इन दोनों को एक

मानकर ही इनको एक साथ मिला दिया। परिणाम स्वरूप भिन्न-भिन्न जडी बूटियाँ ब्राह्मी मानी जाने लगी। बगाल के विद्वान जलब्राह्मी (जलनीम) को ही ब्राह्मी मानने लगे। कुछ मण्डूकपर्णी को और कुछ ब्राह्मी "मूसाकानी" को मानने लगे। यद्यपि इनका स्वरुप और गुण कर्म भिन्न हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान के अभाव मे अप्रमाणिक ग्रन्थो का आश्रय ही ऐसी परिस्थिति को उत्पन्न करता है, जिससे द्रव्यो मे ऐसी सदिग्धता उत्पन्न हो जाती है।

सहिता काल मे चरक और सुश्रुत ने मण्डूकपर्णी व ब्राह्मी को भिन्न-भिन्न दर्शाया है, चरक चिकित्सा अध्याय १० मे अपस्मार पर ब्राह्मी की योजना ब्राह्मी घृत मे ब्राह्मी रसायन मे तथा सूत्र स्थान के शाकवर्ग मे मण्डूक पर्णी का उल्लेख है। उदर रोग मे शाक रूप मे वय स्थापन तिक्त स्कन्ध मे वर्णन मिलता है।

सुश्रुत मे भी शाक वर्ग तथा तिक्त स्कन्ध मे लिया है तथा सुश्रुत चिकित्सा अध्याय २८ मे ब्राह्मी, मण्डूकपर्णी के भिन्न-भिन्न योग दिये है, तथा इस तथ्य को सकेत किया गया है कि ब्राह्मी मे वामक गुण होने से उसका पचन हो जाने पर दोपहर को दुग्धादि सेवन करना चाहिए। उसके साथ दूध नही देना चाहिये। जबकि इसके विपरीत मण्डूकपर्णी मे उग्र मादक, दाहक, गुण होने से इसका सेवन दूध मे मिलाकर करना चहिये।

प्रमाणिक ग्रन्थ सुश्रुत मण्डूकपर्णी को अति लघु एव रक्तविकार, पित्त प्रकोप, हृदय दौर्बल्य, प्रमेह, कुष्ठ मे मुख्य रूप से, श्वास, अरुचि नाशक रस व विपाक मे मधुर शीतल कहा हे। —सूत्र स्थान अध्याय ४६

इस उपरोक्त रोग निवारण सूची मे मस्तिष्क विकार का उल्लेख नही है, अत समझना चाहिये कि ब्राह्मी का उपयोग विशेषतः मस्तिष्क विकार, वात नाडी विकृति, अपस्मार, उन्माद, स्मृतिनाश आदि पर होता है, अर्थात समष्टि रूप से यह नाडी व्यूह पर विशेष कार्यकर है।

ब्राह्मी-मण्डूक पर्णी

श्री आचार्य राजकुमार जैन एम०ए० (हिन्दी, सस्कृत)
एच०पी०ए०, दर्शनायुर्वेदाचार्य

ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी के विषय मे विद्वानो मे मत भेद एव विवाद की स्थिति रही है। अनेक विद्वान ब्राह्मी और मण्डूक पर्णी को समान आकार प्रकार वाली भिन्न भिन्न वनस्पति मानते हैं तो कुछ विद्वान इसके विपरीत दोनो मे अभेद स्वीकार करते हुये दोनो को एक ही वनस्पति का अपर पर्याय मानते हैं। वस्तु स्थिति क्या है? इसके लिये पर्याप्त शास्त्रीय आधार, शास्त्रोक्त प्रमाण एव लोक जीवन में प्रचलित इसके प्रयोग एव व्यवहार को ध्यान मे रखना तथा उसके आधार पर विचार करना समीचीन होगा।

सबसे पहले मैं मदनपाल निघण्टु का ब्राह्मी व मण्डूक पर्णी के पर्याय सम्बन्धी निम्न उद्धरण की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हू—

ब्राह्मी सरस्वती सोमा सत्याह्वा ब्रह्मचारिणी।
मण्डूकपर्णी माण्डूकी त्वष्टी दिव्या महौषधिः॥
कपोतविटका मुनिका लावण्या सोमवल्लरी।
—मदनपाल निघण्टु वर्ग-१, श्लोक २८५

अर्थात् ब्राह्मी, सरस्वती, सोमा, सत्याह्वा, ब्रह्मचारिणी ये ब्राह्मी के पर्याय हैं और मण्डूकपर्णी, माण्डूकी, त्वष्ठी, दिव्या, महौषधि, कपोटविटका, मुनिका, लावण्या, सोमवल्लरी ये नाम ब्रह्म मण्डूकी या मण्डूकपर्णी के हैं।

मदनपाल निघण्टु के उपर्युक्त पर्याय कथन से ज्ञात होता है कि उनकी दृष्टि मे ब्राह्मी और मण्डूक पर्णी सर्वथा दो भिन्न वनस्पतिया हैं। इसी ग्रन्थ मे आगे चलकर ब्राह्मी के गुण कर्म विवेचन के अन्तर्गत मण्डूक पर्णी को ब्राह्मी के समान ही गुण धर्म वाला बतलाया है।

यथा—ब्राह्मी हिमा सरा स्वादुर्लघुमेध्या रसायनी।
स्वर्यास्मृतिप्रदा कुष्ठपाण्डुमेहास्रकासजित्॥
विषशोफज्वरहरा तद्वन्मण्डूकपर्णिनी॥

अर्थात ब्राह्मी शीतल, सर, मधुररसवाली, मेध्य (बुद्धिवर्धक रसा, रसायन, स्वर को अच्छा बनाने वाली, स्मृति देने वाली, कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह, रक्तपित्त, और कास को जीतने (ठीक करने) वाली होती है। यह विष, शोफ और ज्वर को भी दूर करती है। इसीके समान गुण धर्म वाली मण्डूक पर्णी होती है।

यह कथन स्पष्ट ही दोनो वनस्पतियो की भिन्नता की ओर सकेत करता है। इससे यह आभास मिलता है कि दोनो वनस्पतियो में गुण-धर्म मे अत्यधिक समानता

है, आकार-प्रकार, उत्पत्ति स्थान आदि मे भी अद्भुत साम्य है, किन्तु दोनो वनस्पतियाँ एक नही है । दोनो के नाम पर्याय भी भिन्न हैं ।

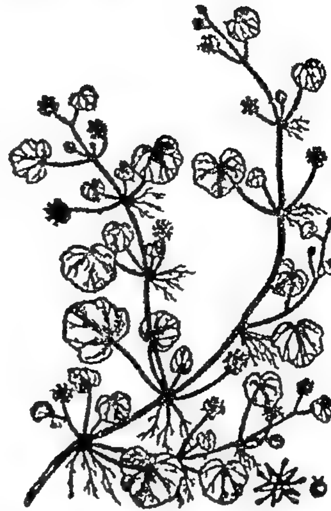
आचार्य भाव मिश्र भी इसी मत से सहमत प्रतीत होते हैं । ब्राह्मी के गुण-धर्म विवेचन के प्रसङ्ग मे उनका यह कथन द्रष्टव्य है—

ब्राह्मी हिमासरा तिक्ता लघु मेध्या च शीतला ।
कषाया मधुरा स्वादुपाकायुष्या रसायनी ॥
स्वर्या स्मृतिप्रदाकुष्ठ पाण्डुमेहास्रकासजित् ।
विषशोथ ज्वरहरी तद्वन्मण्डूकपर्णिनी ॥
—भावप्रकाश

अर्थात ब्राह्मी शीतल, सर, तिक्त, लघु, मेध्य (बुद्धि बढाने वाली) ठडी, कषाय और मधुर रसवाली, मधुर विपाक वाली, आयु बढाने वाली, रसायनी, स्वर को अच्छा करने वाली, स्मृति प्रदान करने वाली, पाण्डु, प्रमेह, कामला, रक्तपित्त, और कास को जीतने वाली, विष, शोथ, और ज्वर का शमन करने वाली होती है। इसी के समान गुण-धर्म वाली मण्डूकपर्णी होती है।

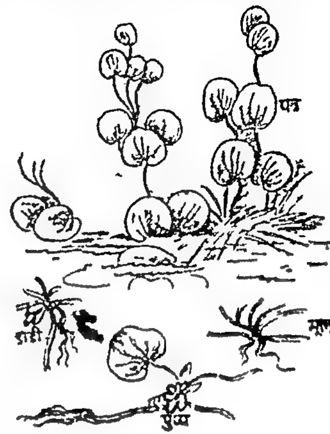
इस कथन से भी स्पष्ट है कि ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी एक ही नही हैं अपितु ब्राह्मी के समान ही मण्डूकपर्णी होती है।

वर्तमान मे यह विवाद यथावत् है कि ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी दोनो एक हैं अथवा भिन्न है। आधुनिक आयुर्वेदीय द्रव्य गुण विज्ञान के मूर्धन्य आचार्यों मे सर्व श्री प्रियव्रत शर्मा के द्रव्य गुण विज्ञान (उत्तरार्ध) को देखने से ऐसा लगता है कि वे सम्भवत दोनो वनस्पतियो मे अभेद ही मानते हैं। यद्यपि ग्रन्थ मे यह विवाद नही उठाया गया है, किन्तु ग्रन्थ मे केवल 'मण्डूक पर्णी' के नाम से विवरण दिया गया है। सम्पूर्ण वर्णन मण्डूक पर्णी के नाम से ही है। किन्तु पर्याय कथन मे कही भी ब्राह्मी पर्याय देखने को नही मिला। विवरण के अन्त मे "विशिष्ट योग" शीर्षक के अन्तर्गत मण्डूक पर्णी के नाम से एक भी योग उद्धृत नही हैं। समस्त योग ब्राह्मी के नाम से ही उद्धृत है। यथा ब्राह्मीपाक, ब्राह्मी पानक, ब्राह्मी तैल, ब्राह्मी सत्व, ब्राह्मी मलहर आदि । इस ग्रन्थ मे मण्डूक पर्णी के नाम पर्याय कथन मे ब्राह्मी पर्याय का न होना तथा विशिष्ट योग मे मण्डूकपर्णी का कोई



मण्डूक पर्णी
HYDROCOTYLE ROTUNDIFOLIA ROXB

ब्राह्मी (मंडूकपर्णी)
HYDROCOTYLE ASIATICA LINN.



योग न होना दोनो के भिन्नत्व का प्रतिपादक है। उक्त सम्पूर्ण ग्रन्थ मे ब्राह्मी का वर्णन न होना विद्वान लेखक के इस मत की पुष्टि करता है कि दोनो वनस्पति एक ही हैं। इस ग्रन्थ मे मण्डूक पर्णी के नाम पर्याय के अन्तर्गत ब्राह्मी के पूर्वोक्त पर्यायो मे से किसी पर्याय को नहीं लिया गया है जबकि ब्राह्मी के अनेक पर्याय हैं। अतः इससे दोनो वनस्पतियो मे भेद ही माना जायगा।

श्री डा० रामसुशील सिंह ने अपने सन्दर्भ ग्रन्थ 'वनौषधि निर्दशिका" (आयुर्वेदिक फार्माकोपिया) मे ब्राह्मी के नाम से ही वनस्पति का विवरण दिया है। ब्राह्मी के पर्याय मे मण्डूक पर्णी, मण्डूकी, ब्राह्मी आदि पर्याय दिए गये हैं। इससे प्रतीत होता है कि डा. सा भी ब्राह्मी और मण्डूक पर्णी को अभिन्न ही मानते है। दोनो वनस्पति सम्बन्धी विवाद को यहा भी नही उठाया गया है। ऐसा लगता है कि डा० सा० के अनुसार इस विषय मे विवाद या मतभेद है ही नही कि ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी ये दोनो वनस्पतिया एक ही हैं अथवा भिन्न ? ब्राह्मी विवरण मे ही सक्षिप्त परिचय के अन्तर्गत ग्रन्थ मे मण्डूक शीर्षक से वनस्पति का परिचय दिया है ब्राह्मी शीर्षक से नही। इसका अभिप्राय यही है कि दोनो वनस्पतिया सर्वथा अभिन्न, एक एव निर्विवाद हैं। ब्राह्मी के मुख्य योगो मे वे ही योग उद्धृत किये गये हैं जो द्रव्य गुण विज्ञान मे उद्धृत हैं—

चरक संहिता सूत्रस्थान अध्याय ४ मे वय स्थापन महाकषाय एव तिक्तस्कन्ध (विमान स्थान अध्याय ८) के द्रव्यो मे मण्डूकपर्णी का उल्लेख है। सुश्रुत संहिता सूत्र स्थान अध्याय ४२) तिक्त वर्ग मे भी मण्डूकपर्णी उल्लिखित है।

महर्षि चरक ने मेध्य रसायन की दृष्टि से मण्डूकपर्णी को ही अभिहित किया है यथा—

मण्डूक पर्ण्या स्वरस. प्रयोज्य. ....।
आयुप्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्धनानि ॥
मेध्यानि चैतानि रसायनानि ....।

—चरक संहिता चि १

महर्षि सुश्रुत ने सुश्रुत संहिता के चिकित्सा स्थान के 'मेघायुष्कामीय रसायन चिकित्सित' नामक अठ्ठाइसवें अध्याय ४, ५ तथा ६ सूत्र मे पृथक-पृथक मण्डूकपर्णी एव ब्राह्मी के विधिवत् सेवन का निर्देश किया है। अत दोनो वनस्पतिया मेध्य रसायन हैं किन्तु परस्पर भिन्न हैं यह सुस्पष्ट है।

ब्राह्मी एव मण्डूकपर्णी के सम्बन्ध से 'वनौषधि शतक' मे वैद्य श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा लिखते है—"ब्राह्मी और मण्डूक पर्णी दोनो ही पृथक-पृथक वनस्पतिया है। एक नही है और न दोनो के गुण ही समान है। ब्राह्मी से मण्डूकपर्णी हीनगुणी होकर रक्त और चर्म पर विशेष प्रभावकारी है जबकि ब्राह्मी मस्तिष्क पर, ब्राह्मी की आकृति एव मण्डूक पर्णी की आकृति मे भी काफी भिन्नता है। ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी दोनो हमारे समक्ष प्राप्य और सुलभ है। फिर दोनो को एक मानना कितनी बडी भूल है।"

सामान्य परिचय—वैद्य समाज मे बुद्धि-स्मृतिवर्द्धक रसायन के रूप मे ब्राह्मी एक सुप्रचलित वनस्पति है। सामान्य वैद्य समुदाय इस तथ्य से अवगत नही है कि ब्राह्मी के विषय मे शास्त्रीय स्तर पर कुछ विवाद अथवा मतभेद है और वह मतभेद मण्डूकपर्णी के कारण है। वैद्य समाज मे सामान्यत ब्राह्मी के नाम से जो वनस्पति व्यवहृत होती है उसका विवरण निम्न प्रकार है—ब्राह्मी के क्षुप सामान्यत गीली और तर जमीन मे पैदा होते हैं। वैसे तो यह वनस्पति सम्पूर्ण भारतवर्ष मे मुख्यतया जलाशयो के किनारे पर (आस-पास) उत्पन्न होती है, किन्तु हरिद्वार से लेकर बद्रीनारायण के मार्ग पर यह प्रभूत मात्रा में उत्पन्न होती है। वहा उत्पन्न होने वाली ब्राह्मी अन्य स्थानो की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ उत्तम एव प्रशस्त होती है।

(१) ब्राह्मी—असली ब्राह्मी के पत्रो का अग्रभाग गोलाकार होता है जिसका परिमाण सामान्यत. अठन्नी के बराबर होता है। कोई पत्र अठन्नी से बडा नही होता। किनारो की तरफ से पत्ते जरा नोकदार हरे जरदी मायल दलदार होते है। पत्तो के डण्ठल की तरफ का भाग क्रमश. क्षीण होता जाता है और जिस तरफ डण्ठल लगा हुआ होता है पत्ते का उधर का हिस्सा खुला हुआ होता है। एक-एक शाखा मे कई पत्ते होते है। इन पत्तो के ऊपर कई छोटे-छोटे चिह्न भी रहते हैं। इस वनस्पति की डालिया जमीन पर फैलती है जिससे यह जमीन पर छत्तादार छाई रहती है। इसकी गाठो से जडें निकलकर भूमि मे चली जाती हैं और फिर उन्ही से पत्ते व शाखायें निकलती रहती हैं।

वसन्त ऋतु से लेकर ग्रीष्म ऋतु तक इसके फूल और फल आते हैं। ये फूल कुछ नीली झांई लिए हुए श्वेत रग के मछली के नेत्र के समान छोटे-छोटे होते है। इसलिए इसका एक पर्याय 'मत्स्याक्षी' भी कहा गया है। इसके बीज नन्हे-नन्हे से गोलाकार, मोटाई के भाग मे चपटे, गुच्छादार, २-२ बीजो के ३-४ गुच्छ एक मे रहते है। एक गुच्छ के दो भागो मे प्रत्येक भाग के अन्दर २-२ नुकीले, चपटे, लम्बे-लम्बे गोल बीज होते है।

(२) मडूकपर्णी—मण्डूकपर्णी का पत्र असली ब्राह्मी से थोडा बडा होता है। कोई-कोई पत्र इतना बडा होता है कि वह एक चादी के रुपया के बराबर दिखाई देता है। इसकी लता प्राय लाल होती है और लता के अग्रभाग के पत्र क्रमश छोटे पतले और लाल आभा वाले होते हैं। शाखाये रक्ताभ पर्वयुक्त होती हैं। यह राजस्थान मे काली और चिकनी मिट्टी वाले खेतो मे, जहा पानी की आर्द्रता रहती है तथा तालाबो के किनारे बहुत मिलती है। इसके पुष्प विनाल या वृन्त रहित तथा लाल रग के होते हैं जो ३-६ के गुच्छो मे स्थित रहते हैं। इसके फल लगभग ८ ३ मिमी या १/३ इच बड़े होते हैं जिन पर ८ ९ उन्नत धारिया होती है। फलो मे चपटे बीज होते हैं।

(३) जलनीम (बाम)—ब्राह्मी के विषय मे भ्रमोत्पादक तीसरी वनस्पति जलनीम है जिसे राजस्थान मे

बाम के नाम से जाना जाता है। इसके द्वारा ब्राह्मी का भ्रम उत्पन्न किए जाने का कारण यह है कि जहाँ पानी भरा रहता है ऐसे स्थान में यह वनस्पति प्राय उत्पन्न होती है। इस तृण जातीय वनौषधि का प्रसर १ से डेढ वालिश्त लम्बा छत्ता सा कीच के ऊपर बारहो मास हरा-भरा पसरा हुआ दिखाई देता है। इसके चिक्कण एव मांसल काडयुक्त प्रसरण स्वभाव के छोटे छोटे पौधे होते है। इसकी शाखाये ४ से १० इच तक लम्बी होती हैं। और उनकी गाठो से शोरिया निकलकर कीच का आश्रय लेती हैं। इनके पत्ते ६ २५ मिमी से २.५ सेमी. या १/४ से १ इच तक लम्बे तथा २.५ मिमी. से १० मिमी या १/१० से २/५ इच तक चौडे विनाल (Sessile) चतुर्पंक्तिक क्रम से स्थित, कुण्ठिताग्र किंचित् अण्डाकार, मोटे, गूदेदार सरल तट वाले काली विन्दुकित तथा शाखाओं पर समवर्ती रहते हैं।

इनके छोटे-छोटे फूल हल्के नीले रग के १/३ इच लम्बे होते हैं जो ग्रीष्म एव वर्षा ऋतु मे दृष्टिगोचर होते हैं। फल लम्बगोल किन्तु अग्र पर नुकीले तथा १/५ इच लम्बे होते है जिनमे छोटे-छोटे लम्ब गोल बीज निकलते है जिनका तल सूक्ष्म रेखांकित होता है। जलनीम का स्वाद अत्यन्त तिक्त रसयुक्त कडवा और किंचित कपैला होता है।

भिन्नता—उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ब्राह्मी, मण्डूकपर्णी तथा जलनीम मे कुछ आकृति साम्य होने के कारण भ्रमवश वैद्यो के द्वारा ब्राह्मी के स्थान पर अन्य वनस्पतियो का प्रयोग कर लिया जाता हैं। ब्राह्मी की पहचान करते समय प्राय कई वार वैद्यगण भ्रम के शिकार हो जाते है। साधारणत ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी मे भेद करना वडा कठिन हो जाता है। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर इन दोनो वनस्पतियो का भेद समझ मे आ जाता है। दोनो मे मुख्य अन्तर यह है कि ब्राह्मी के पत्ते मण्डूकपर्णी के पत्तो की अपेक्षा पतले होते है और उनका अग्रभाग गोलाकार होता हैं। ब्राह्मी की अपेक्षा मण्डूकपर्णी के पत्ते अधिक गोल तथा आकार में भी कुछ वड़े होते हैं। दूसरा मुख्य अन्तर यह है कि ब्राह्मी के फूल कुछ नीली झाँई लिये हुए श्वेत होते है जबकि मण्डूकपर्णी के फूलो का रग रक्त के समान लाल होता है। मण्डूकपर्णी के पत्तो को चबाने से उसमे एक विशेष प्रकार की गंध आती है जो ब्राह्मी के पत्तो मे नही आती। आशा है इस आधार पर वैद्यो को ब्राह्मी का निर्णय करने मे सुविधा होगी।

गुण धर्म एवं प्रभाव

ब्राह्मी के गुण धर्म के सम्बन्ध मे कुछ विशिष्ट निघण्टुकारो के मतो का उल्लेख पूर्व मे ही किया जा चुका है। किन्तु फिर भी इस विषय मे कुछ अधिक प्रकाश डालना अधिक अच्छा होगा। यह तो सुस्पष्ट है कि ब्राह्मी एक सर्वश्रेष्ठ मेध्य रसायन है, साथ ही यह आयुवर्धक, स्मरणशक्ति को बढाने वाली, स्वर को उत्तम करने वाली तथा हृदय के लिए हितकारी एक श्रेष्ठ रसायन हे।

निघण्टु रत्नाकर के मतानुसार ब्राह्मी शीतल, कपैली, कड़वी, बुद्धि दायक, मेधाजनक, आयुवर्धक, अग्निदीपक, सारक, स्वादिष्ट, हल्की, कण्ठशोधक, हृदय के लिए हितकारी, स्मरण शक्ति को बढाने वाली, रसायन तथा प्रमेह, विष, कोढ, पाण्डुरोग, खासी, ज्वर, सूजन, कण्डु, प्लीहा, वातरक्त, पित्त, अरुचि, श्वास, शोष, कफ और वात को दूर करने वाली होती है।

ब्राह्मी के द्वारा निर्मित होने वाले योगो मे ब्राह्म रसायन, ब्राह्मीपाक, ब्राह्मीघृत, ब्राह्मीपानक, ब्राह्मीतैल, ब्राह्मीसत्व, सारस्वतारिष्ट, सारस्वत घृत, हब्ब बरहमी (ब्राह्मी गुटिका) आदि विशिष्ट योग है। यूनानी चिकित्सा के अनुसार इसका माजून भी बनाया जाता है।

ब्राह्मी के कुछ प्रयोग

—श्री युधिष्ठिर सिंह वैद्यराज, भैसवार (सतना) म. प्र.

शास्त्रीय प्रयोग

१. द्रव्य—साफ मण्डूक पर्णी २०० ग्राम ले।

विधि—कूट कपडछानकर कार्कदार शीशी मे रखलें।

मात्रा - ६ ग्रा से १० ग्रा तक दोनो समय दूध से दें।

उपयोग—इसके कुछ काल सेवन करने से मनुष्य दीर्घजीवी होता है तथा शास्त्र विजयी होता है। यौवन और सुन्दरता प्राप्त होती है।

२. द्रव्य—सुरसा या मण्डूक पर्णी का स्वरस दो

ग्राम मुलहठी का कपडछान चूर्ण १/२ ग्राम लें।

विधि—ताजी सुरसा को कूटकर रस निकाल लें। फिर मुलहठी का चूर्ण मिलाकर लेह बनालें।

मात्रा—दिन मे दो बार चाटकर ऊपर से ताजा दूध पिये।

उपयोग—इसके सेवन से रोगो का नाश होता है तथा आयु की वृद्धि होती है। बल वीर्य की वृद्धि होकर वाणी शुद्धि होती है।

३. द्रव्य—सुरसा, गोरख मुण्डी, मीठी बच, सोंठ और पीपल ये सब १००–१०० ग्राम लें।

विधि—सबको कूट कपड छानकर बोतल मे कार्क लगाकर रख लें।

मात्रा—३ से ६ ग्राम तक दोनो समय शहद में मिला कर खाये।

उपयोग—इसके सेवन करने से एक ही सप्ताह मे वाणी मधुर हो जाती है।

४ द्रव्य—ब्राह्मी स्वरस ३० ग्राम लें।

विधि—ब्राह्मी सुरसा को कूटकर रस निकाल लें। फिर वमन, विरेचन से निवृत होकर वायु रहित निश्चित स्थान मे प्रविष्ट होकर स्वरस को सहस्र आहुत हवन कर बलावलानुसार दूध के साथ प्रयोग करें।

मात्रा—३ से ६ ग्राम दोनों समय पियें।

उपयोग—जब पच जावे तो तीसरे पहर बिना नमक के यवाग पीवें। तथा दूध के अभ्यासी दुधपान करें। इस प्रकार रस सेवन करने वाला १ सप्ताह के बाद दिव्य तेज वाला बुद्धिमान हो जाता है। दूसरे सप्ताह मे मनवाछित ग्रन्थ रचने वाला तथा गुप्त बाते जानने वाला ज्ञानी हो जाता है। तीसरे सप्ताह के बाद दो बार उच्चारण करने से १०० श्लोक कठ हो जाते है। साक्षात सरस्वती उसके शरीर मे प्रविष्ट हो जाती हैं।

५ द्रव्य—सुरसा (ब्राह्मी) स्वरस २ किलो गोघृत २०० ग्राम, वायविडग चूर्ण २०० ग्राम, मीठी वच चूर्ण ८० ग्राम, त्रिफला चूर्ण ८० ग्राम लें।

विधि—सबको मिलाकर घोट लें फिर बोतल मे भरकर कार्क लगाकर सुरक्षित रखें।

मात्रा—३ से ६ ग्राम तक बलाबल अनुसार दोनो समय खाये।

उपयोग—इससे कै, दस्त तथा पसीना आता है। जिससे कीड़े निकल जाते हैं पचने पर दूध घृत युक्त पथ्य करें तो अलक्ष्मी दूर होती है और कमल के समान होकर युवा स्थित हो जाती है। व वेद वक्ता हो जाता है, आयु ३०० वर्ष का बढ जाना लिखा है। कुष्ट, ज्वर, अपस्मार, विष, भूत बाधा आदि का नाश होते है। (गु० श्रु०)

६ द्रव्य—कूट, असगन्ध, काला नमक, अजमोद, काला जीरा, श्वेत जीरा, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, पाठा और शखपुष्पी ये सब २५–२५ ग्राम और इन सब के बराबर मीठी वच लें।

विधि—प्रथम सबको कूट कपड छानकर ले। फिर सुरसा रस की ७ भावना देकर सुखा कूट कपड छान कर लें।

मात्रा—३ से ६ ग्राम तक दोनो समय खाकर ऊपर से दूध पियें।

उपयोग—इसके प्रयोग से धैर्य, ऐश्वर्य, बलवीर्य और आयु की वृद्धि होती है।

७. द्रव्य—सुरसा स्वरस १ किलो, गोघृत २ किलो हर्रे १०० ग्राम, बीज रहित मीठी वच १०० ग्राम, शुद्ध गूगुल, कूठ, विष्णु कान्ता गिलोय, जवासा मूल ये सब २५-२५ ग्राम, त्राय माण, अरणी, कंकोल, ज्योतिष्मती विदारीकन्द, वाराहिकन्द, आकाश बेल, शालपर्णी, असगन्ध, पीपल, पाढ सखोली, बाकुची बीज, अदरक, सोंठ हल्दी ये ५०–५० ग्राम लें।

विधि—प्रथम हर्रे से लेकर हल्दी तक की औषधियां यवकुट कर ६ किलो जल मे क्वाथ करें १½ किलो शेष रहने पर छानकर रख ले फिर वालछड ५० ग्राम, खश २५ ग्राम, असली नागकेशर १०० ग्राम, छोटी इलायची, जायपत्री २५ लेकर जल मे पीसकर कल्क करें। फिर सबको एक कड़ाही मे छोडकर मन्दी आंच से पकाकर छान लें। और साफ बोतल मे भर ले।

मात्रा—६ से ६ ग्राम तक दोनो समय खाकर ऊपर से आधा किलो ताजा गौ का दूध पिये।

उपयोग—विशेष तारीफ करना सूर्य को दीपक दिखाना है पाठकगण इसे बनाकर इसके चमत्कार देख लो। विद्यार्थियो के लिये अमोघ औषधि है। यही ब्राह्मी घृत है।

(८) द्रव्य—गिलोय, अपामार्ग, वायविडग, सखौली सुरसा, मीठी वच, सोंठ, शतावर ये सब १००-१०० ग्रा. ले।

विधि—प्रथम सबको कूट कपड छान चूर्ण कर ले।

मात्रा—६ से १० ग्राम तक घी के साथ दोनो समय लें।

उपयोग—इसके प्रयोग से स्मरण शक्ति अति तीव्र होती है। विद्यार्थियों के लिये योग अति हितकारी है।

(९) द्रव्य—सुरसा शंखपुष्पी, मुण्डी, पीपल, नागकेशर, कूठ सफेद, वच, मक्खन ये सब ५०-५० ग्राम लो।

विधि—मक्खन को छोड़कर शेष सब औषधियां कूट कपड़ छानकर शीशी में रख लें। या मक्खन मिलाकर खायें।

मात्रा—६ से १० ग्राम तक दोनों समय खाकर ऊपर से दूध पिये।

उपयोग—दूध के प्रयोग से मनुष्य जासा घवीश्वर हो जाता है।

(१०) द्रव्य—अदरख, सोंठ, हल्दी, मीठी वच, वाकची बीज सुरसा ये सब ३-३ ग्राम ले गोघृत ५० ग्राम ले।

विधि—घी के अलावा सबको कूट कपड छान कर लें फिर घी में मिलालें।

मात्रा—१० ग्राम प्रात शौचादि से निवृत्त होकर नदी या तालाब मे गले तक जल मे माघ कृष्ण १४ को स्नान कर एक घण्टे श्री सरस्वती जी का मन्त्र जप कर औषधि खा लें। फिर दुग्ध पान करें।

उपयोग—इसके प्रयोग से बुद्धि बढ़ती है। विद्यार्थियो को इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

—श्री वैद्य राज० युधिष्ठरसिंह
ग्राम वैवहाउर मैसवाद
पो० मैसवाद जि० सतना म.प्र.

(पृष्ठ ३५६ का शेषांश)

उपस्तम्भ आहार-स्वप्न एवम् ब्रह्मचर्य को बतलाया है वहीं हम यह भी पाते हैं कि आयुर्वेद के आठ अङ्गो मे से एक अंग वाजीकरण प्रकरण है-एक ओर ब्रह्मचर्य दूसरी ओर वाजीकरण—का मतलब (क्या इसको मुसलमानी छाप मानी जाय) परतु नही, कारण मुसलमान हमारे यहाँ के इतिहास के बहुत बाद के हैं—फिर भी हमें एक बार सोचना पडता है कि जहा की परम्परा रही है "एक नारी ब्रह्मचारी" या "सपने हू परनारी न देखी" वहा ऐसे योग हमारे महर्षि क्यो लिखेंगे कि अमुक योग खावे से हजारो स्त्रियो को तृप्ति प्रदान करता है?

अकरकरा Anacyclus Pyrethrum जो यूनान का बाबूना स्पेनिश है वही असली अकरकरा है।

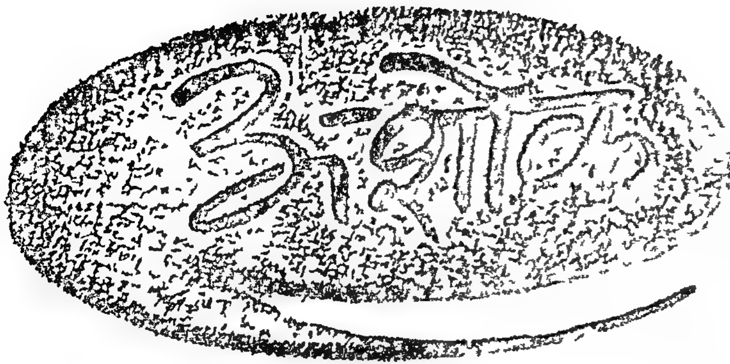
चूंकि यह उष्ण वीर्य एवम् साथ ही तीक्ष्ण वस्तु है अत इस द्रव्य का फायदा ठडी प्रकृति के मनुष्य ही अधिक उठा सकते हैं। खासकर ऐसे लोग जो इस वस्तु को कामोत्तेजना के लिए प्रयोग करना चाहते हैं, परन्तु विरुद्ध (उष्ण) प्रकृति के व्यक्ति इससे फायदा नही उठा सकते बल्कि नुकसान ही उठा लेते हैं।

दूसरी बात यह है कि इसके योगो का शास्त्रो मे जैसा वर्णन है उसके अनुसार अतिशयोक्ति अधिक मालूम पड़ता है, कारण योग के बाद सैकडो एवं हजारों स्त्रियो को तृप्ति प्रदान करना बहुलातिशयोक्ति है। जबकि प्रयोग मे देखा जाता है कि रोग रास्ते पर आ जाय यही बहुत है।

उदाहरणार्थ—नाम तो कामिनी विद्रावण रस है परन्तु परिणाम उत्साह वर्द्धक नही परन्तु अग्निमांद्य जरूर कर देता है।

इसी प्रकार हमारे विचार से तो यह समझ मे आता है कि शास्त्रीय विवेचन या योगो को लिखने के लिए चाहे लिख दें, परन्तु अब जोर उन्ही योगो पर देना चाहिए और उसके विषय मे साफ साफ लिखना चाहिए जिसका प्रयोग इस समय स्वयं किए हो या किसी विशिष्ट वैद्य से सम्पर्क करने पर पता लगे।

योगो के विवेकपूर्वक समय का ख्याल करके ही बनाना चाहिये जैसा शार्ङ्गधर का सप्तशालि वटी अफीम का योग है परन्तु उसमे अफीम की मात्रा बहुत है जिससे रोगी को सामान्यतया नुकसान हो सकता है। उसी प्रकार धन्वन्तरि विशेषांक मे शिश्न की त्वचा मे लगाते के लिए २ तोला अकर करा का प्रयोग। ऐसे स्थानो पर बहुत आवश्यक है कि कुछ अपनी बुद्धि का प्रयोग कर कुछ विशेष खतरे से बचा जा सकता है।



श्रीमती कुसुम शर्मा वैद्या आयु॰ रत्न
एवम्
वैद्य श्री चन्द्रमणि शर्मा आयु॰ वाच
श्री पाराशर आयु॰ महाविद्यालय,
स्याना (बुलन्दशहर) उ॰प्र॰

इस लेख की लेखिका श्रीमती कुसुम शर्मा वैद्या आयुर्वेद रत्न तथा आयुर्वेद वाचस्पति एवं वैद्य श्री चन्द्रमणि शर्मा है। अशोक पर इनका लेख अच्छा सकलित हुआ है। इन्होंने दो प्रकार के अशोक का वर्णन किया है—१-रक्ताशोक २-आशु पल्लव।

इसके अतिरिक्त बाजारो मे जो अशोक के छाल के बदले मे प्राप्त होते है, उन मिलावटों का वर्णन इसमे नही है। पाठक गण इसका विवरण बाजारू औषधियो के वर्णन मे पृष्ठ १०८ पर देखें।

—विश्वनाथ द्विवेदी

यह भारतीय वनौषधि मे एक दिव्य वृक्ष, चिकित्सा तथा साहित्यिक दृष्टिकोण से रामायण, विष्णुसहिता, नैषध, कुमारसंभव, साहित्यदर्पण आदि ग्रन्थरत्नो मे लेखको द्वारा भिन्न-भिन्न रूप से वर्णित है। इसका व्यवहार प्राचीन काल से ही चिकित्सार्थ होता चला आ रहा है, प्राच्य चिकित्सा विज्ञान ही नही अपितु इसकी उपयोगिता पर मुग्ध होकर पाश्चात्य चिकित्सक Modern medical Science भी प्रशसा करते है।

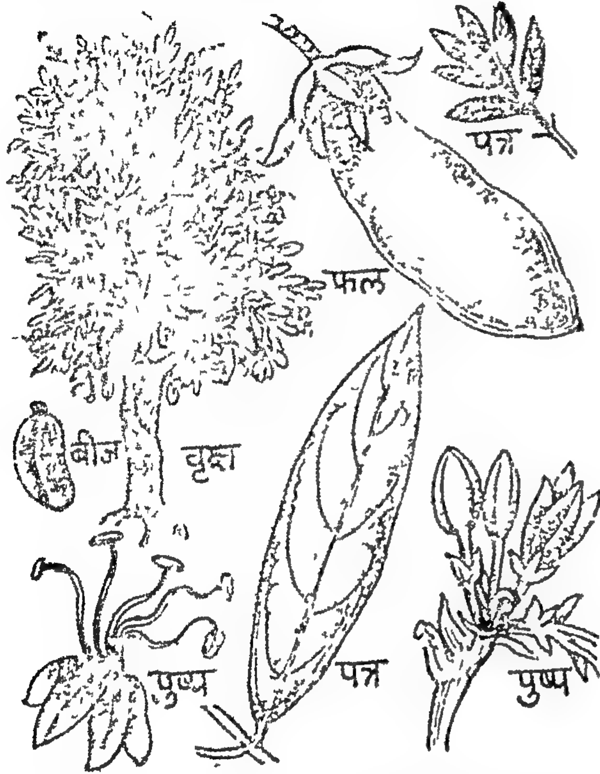
आयुर्वेद ग्रन्थरत्न सुश्रुत सहिता, चरकसहिता, भावप्रकाश, धन्वन्तरिनिघण्टु, कैयदेव निघण्टु, राजनिघण्टु आदि मे इसका वर्णन मिलता है। नरहरि पण्डित (बारहवीशती) ने २२ नाम, कैयदेव (१४५० सम्) ने पन्द्रह, भावमिश्र (१५५० सम्) ने आठ तथा धन्वन्तरि निघण्टु मे इसके पर्यायवाची नौ शब्द हैं।

इस पुष्प वृक्ष की विशेषता है कि कोई भी साधारण या शोक मग्न पुरुष या स्त्री इसकी छाया मे विश्राम करे और देखे तथा इसके पुष्प व पल्लवो का स्पर्श करे तो उसका शोक शान्त हो जाता है। जैसा तुलसीकृत ग्रन्थ में लिखा है—

सुनहु विनय मम् विटप अशोका।
सत्य नाम करु हरु मम शोका॥ (रामायण)

वैदिक सनातनी वर्ग तो इस वृक्ष को पवित्र एव श्रद्धास्पद मानते ही हैं परन्तु बौद्ध भी इसे विशेष आदर की दृष्टि से, भगवान बुद्ध का जन्म इस वृक्ष के नीचे होने के कारण, देखते हैं। पुष्पधन्वा (कामदेव) के पंच-पुष्प बाणो मे इसके पुष्प (स्मराधिवास) की गणना की गई है। आख्यायिका है कि तरुण स्त्रियो को तो यह विशेष प्यारा है इसीलिए "अगना प्रिय, स्त्रीपादहति दोहद, कातांघ्रि दोहद (अर्थात् रमणी के पाद प्रहार से जिसमे पुष्प धारण करने की इच्छा होती है) इत्यादि नाम रखे गये हैं। यह वृक्ष अपने अङ्ग-प्रत्यङ्ग से स्त्रियो के दुःख शोकादि शमनार्थ सदैव तत्पर रहता है। "यह वृक्ष छोटे से छोटा बडे से बडा क्यो न हो तब तक फूले फलेगा नही जब तक किसी तरुणी के बाये चरण तल का इसे स्पर्श न हो।" कवियो की इस अनोखी सूझ मे भी विशेष तथ्य है जिसे भावुक हृदय ही समझ सकता है।

परन्तु बडे कष्ट के साथ विचार करना पडता है कि ऐसे प्राचीन सर्वमान्य कीर्तिमय ... रोग निवारणोप-



योगी वस्तु के विषय मे भी आजकल चिकित्सा शास्त्रियो मे कुछ भ्रम पैदा होकर सदिग्धता आ गई है अतः यह एक मुख्य विचारणीय विषय बन गया है। कितने ही चिकित्सक बंगाली अशोक ॥ आशोमाला ॥ (आशुपल्लव) को ही असली अशोक स्वीकार कर उसी की त्वक्-पत्र-पुष्प, फलादि का प्रयोग करते हैं। परन्तु यह शास्त्रीय वास्तविक अशोक के समान उपादेय नहीं है।

इसका कोई अन्य उचित नाम न प्राप्त होने पर हम इसे नकली अशोक (Polyalthia Longifolia) नाम से बोलते हैं। यह वृक्ष है तो नकली परन्तु इसने असली को भी मात कर दिया है। अशोक छाल नाम मे प्राय इसी की छाल पसारियो से प्राप्त होती है। सडको के किनारे तथा बागो मे लगे हुए इस पेड को देखकर अनजानकार ही नही अपितु जानकार भी औषधि प्रयोग के लिए इसी को ग्रहण करते हुए पाये जाते हैं। इसका मुख्य जन्म स्थान उत्तर व पश्चिम बगाल है। वहाँ के निवासी इसे देवदारु नाम से पुकारते हैं किन्तु वास्तविक देवदारु से यह पूर्णतः भिन्न है, गुजरात मे आसोपालव नाम से पुकारा जाता है। असली अशोक को भी वहाँ के निवासी भूल से यही नाम देते है। आयुर्वेदीय निघण्टुओ व यूनानी द्रव्य गुण पुस्तको मे इसका उल्लेख कही नही प्राप्त होता।

उत्पत्तिस्थान- उत्तर-पश्चिम बगाल—पश्चिम प्रायः द्वीप, तजोर, सीलोन, बम्बई आदि भारत के सभी प्रान्तो मे देखा जाता है। इसको दक्षिण मे माली लोग "नर अशोक" कहते है। लैटिन मे इसे बोकागी भेल्ली (Bocagea Dalzelli) कहते हैं।

विवरण—यह वृक्ष सीधा लम्बा कुछ घनी व शीतल छाया वाला होता है, पत्र ६ से ९ इन्च लम्बे, लहरदार किनारे युक्त चमकीले, पुष्प काफी बडा वृक्ष हो जाने पर कई वर्षो बाद प्राय वर्षाकाल मे आम्र मजरी जैसे हरिताभ, पीताभ श्वेतवर्ण, फल छोटे-छोटे गोलाकार कच्ची अवस्था मे हरे, पकने पर कालापन लेकर जामुन जैसे होते हैं।

त्वक् (छाल)—अन्दर से पीताभ श्वेत, ऊपर से लम्बी परत मे होती है जो आसानी से खिच आती है। कषाय रसयुक्त, तिक्त, सकोचक, प्रदरनाशक है, क्वाथ का गण्डूष (कुल्ला) करने से मुखपाक नाशक है। रक्त प्रदर का विशेषतया विनाशक है तथा रक्तातिसार पर इसके फलो का गूदा बलानुसार देने से उत्तम फलप्रद है।

परन्तु असली अशोक का भारत मे पूर्व बगाल, आसाम आदि स्थान माना गया है। बर्मा के नीचे अराकान व टेनासरिम पहाडो पर मध्य व पूर्व हिमालय पर दक्षिण भारत के मलाबार पहाड व कोकण मे एव उत्तर प्रदेश मे कुमायूँ के समीपस्थ प्रदेशो मे २००० फुट की ऊँचाई पर अधिकतया प्राप्त होता है।

विवरण—यह बहुशाखायुक्त, सघन छायायुक्त, बकुल (मौलसिरी) वृक्ष जैसा, १०–१५ फीट तक ऊँचा गोल तना युक्त, सुन्दर सम त्वक् युक्त सदैव हरा भरा, राम फल के पत्र जैसे पत्तो से युक्त, जो ३ से ९ इञ्च लम्बे, सामान्यत लम्ब गोल व नोकदार होते हैं, अखडित लहरदार, श्वेताभ रक्त वर्ण (कोमलावस्था मे) पुन. गहरे हरे रग के तथा सूखने पर रक्त वर्ण के हो जाते है।

पुष्प—वसन्त ऋतु मे 'गुच्छाकार' अधोमुख,

नारगी वर्ण के, तथा क्रमश रक्तवर्ण व सुगन्धयुक्त तथा मनोहर दर्शनीय होते हैं। पुष्प गुच्छ दर्शनीय व भावोद्दीपक होते हैं। फल—४ से १० इन्च लम्बी, १—२ इन्च चौडी, सिरस की फलो जैसी वैशाख ज्येष्ठ मे लगती हैं जिसमे वीज सख्या ४ से १० तक होती है, कोमलावस्था मे गहरे जामुनी रग की व पकने पर काले वर्ण की हो जाती हैं।

बीज—१ से १॥ इन्च लम्बे व कुछ चपटे होते हैं। इसकी वाह्यत्वचा व चर्मदत्ता समान रक्ताभ वर्ण की होती है,

वृक्ष मे गोदने से श्वेत निर्यास निकलकर सूखने पर रक्त वर्ण हो जाता है।

त्वक—शुभ्र, धूसर, स्पर्श करने से खुरदरी, तथा अन्दर से समवर्ण होती है। औषधि प्रयोगार्थ तने की छाल ही ग्राह्य है। जिसे पौष या माघ मे लेकर शुष्क शीत वायु मे सुरक्षित रखने से अच्छा फल होता है विशेषतया मलावार से प्राप्त होने वाली छाल श्रेष्ठ व गुणोत्कर्षता लिए हुए होती है तथा मिलावट रहित होती है जवकि वगाल से प्राप्त होने वाली छाल मे अक्सर मिलावट होती है ऐसा हमारा प्रत्यक्ष अनुभव रहा है। देहरादून निवासकाल मे मेरी पत्नी, जो एक सफल स्त्री रोग चिकित्सिका है, ने इसके प्रत्यक्ष अनुभव मेरे सम्मुख रखकर आगे अनुसधान करने के लिए मार्ग प्रशस्त किया "अशोक वरकल क्वाथश्रृत क्षीर सुशीतलम्। यथा वल पिवेत् प्रातः तीव्रासृग्दर नाशनम्" का प्रयोग रक्तप्रदर के लिए वहुमूल्यवान सिद्ध हुआ है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति द्वारा अचिकित्स्य रक्तप्रदर रोगिणी उपरोक्त योग द्वारा साध्य हुई। यह वात अवश्य है कि क्षीर (दुग्ध) गौ तथा गौ का न मिलने पर वकरी का होना चाहिये। भैंस का दूध इतना उपयोगी सिद्ध नही हो सका है। मधु मीठा करने के लिए दिया जाता है परन्तु इसका भी शुद्ध प्राप्त होना आज वडा कठिन हो गया है। अत इसके स्थान पर हम शर्वत अनार का प्रयोग प्रयोग करते हैं जो उत्तम फलप्रद रहता है।

साधारत शास्त्रो मे इसको वेदना स्थापन, तृष्णा शामक, कफपित्तशामक, विषघ्न, कृमिघ्न, शोथहर, स्तम्भक, गुल्मशूलोदर व आध्मानानाशक, मूत्रकृच्छ्र नाशक, हृद्य, मधुर, सन्धानीय तथा सुगन्धित व वर्णनाशक वताया है।

पाश्चात्य मतानुसार प्रो. नन्दकर्णी ने अपनी इण्डियन मेटेरिया मेडिका मे लिखा है—"Bark is strongly astringent & uterine sedative It acts directly on the muscular fibres of the uterus. It has a stimulating effect on the endometrium & the ovarian tissue. "Bark is usefull in internal Bleeding, Haemorrhoides & also haemorrhagic Dysentery. The drug is also used in Scorpian sting."

अतः तीव्र स्तम्भक एव गर्भाशय सशामक है, इसके अतिरिक्त इसका प्रभाव गर्भाशय पेशी व स्वतन्त्र नाडियों पर होता है। रक्तप्रदर, प्रसवोपरान्त रक्तस्राव तथा गर्भाशय मे होने वाली सभी प्रकार की रक्तस्रावी व्याधियों मे अत्यन्त लाभप्रद है। यह एक उत्तम गर्भाशय रसायन है। गर्भाशय उत्तेजक होने के कारण कुमारियो एवं गर्भवती स्त्रियो दोनो मे यह अपना प्रभाव समान रूप से दिखाता है।

औषधार्थ मात्रा—त्वक १-२ तोला (क्वाथ के लिए), वीज चूर्ण १-३ माशा, पुष्प चूर्ण १-३ माशा।

योग—अशोकारिष्ट, अशोकक्वाथ, अशोक अर्क, अशोकावलेह, अशोक शर्वत, अशोक घृत, सिद्ध साधित हैं तथा अशोकाकार्डियल, अशोकाविन आदि इसीलिए "तिथ्यादितत्व" मे लिखा हुआ प्राप्त होता है—

त्वमशोकहराभीष्ट मधुमाससमुद्भवः।
पिवामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरुः॥

अत. हमारा विनम्र निवेदन है कि असली अशोक ही प्रयोग कर अपना चिकित्सा मार्ग प्रशस्त करें।

कलिहारी  चमत्कार

श्री डा० एस० डी० सेवडे
एम बी बी एस
भालदारपुरा, जबलपुर (म० प्र०)

इस लेख द्वारा एक दुर्लभ जडी कलिहारी की उपादेयता का वर्णन किया जा रहा है। जो स्त्री जगत मे गर्भ भ्रंश या योनि भ्रंश की पीडा से पीडित है। शास्त्रो मे इसका प्रयोग विशल्य करणी के रूप मे गर्भ स्राव के लिये किया गया है।

गर्भ भ्रंश की चिकित्सा आधुनिक विज्ञान में शल्य कर्म के द्वारा ही होना सम्भव है। भारतीय जडी बूटियो द्वारा इस रोग को दूर करने के लिए यह प्रथम अवसर है। जिस मात्रा में भ्रंश होता है उसी मात्रा मे ये लक्षण भी रोगी को कठिनाई मे डालते जाते हैं।

इस लेख द्वारा साधारण भ्रंश विशेष भ्रंश पेशियो की शिथिलता, ढीलापन का लक्षण व निदान करना अभिप्राय नही है। न तो विभिन्न प्रकार की प्रेसरी इत्यादि का प्रयोग व उनसे होने वाली हानि का वर्णन करना तथा शल्य चिकित्सा का वर्णन देना ही अभिप्राय है किन्तु एक जडी बूटियो के उपयोग से और केवल इस

डा० शंकर गोविन्द शेवडे ने जबलपुर से गर्भाशय विच्युति (Prolapsof uterus) तथा योनिविच्युति (स्थान भ्रंश होने) पर कलिहारी का प्रयोग किया है और सफलता मिली है। उन्होने कई विद्वानो व सरकारी हाकिमो व कमेटियो में भेज कर इसके प्रयोग को करने की सम्मति दी किन्तु उन्हे ज्ञात हुआ कि किसी ने ध्यान नहीं दिया। निराश होकर उन्होने यह लेख हमे भेजा। मैं इसे स्वयं भी योनि भ्रंश के रोगियो मे प्रयोग करता हू। और लाभ होता है अत उनके विचार आप सबोके समक्ष हिन्दी भाषा मे उपस्थित कर रहा हू आशा है स्त्रीरोग चिकित्सक धात्री विज्ञानज्ञ व चिकित्सक लाभ उठावेंगे। हिन्दी भाषा भाषी जनता के लिए हिन्दी मे सारांश उपस्थित है। डा० शेवडे एम० बी बी. एस है और उनकी आयु ८३ वर्ष की है फिर भी इस बूटी के अमूल्य गुण को जानकर सबको सूचना देने व लाभ उठाने के लिए यह लेख भेजा है। —विश्वनाथ द्विवेदी

है जब कि किसी औषधि के विना मुख द्वारा खिलाये ही केवल स्थानीय सामयिक प्रयोग द्वारा दूर किया जा सकता है।

वार-वार प्रसव होने के बाद श्रोणी गुहा के भीतर और उसके परिपार्श्विक मासपेशियो मे जो क्षति हो जाती है, उनके लक्षणो का पूरा वर्णन करना स्थानाभाव से सभव नही है। यह हरेक चिकित्सक जानता है कि श्रोणि की मासपेशिया वान्धनिया धीरे-धीरे ढीली होने लगती हैं और गर्भाशय योनि या उसके प्रभाविक अगों का ढीलापन होकर वाहर की तरफ लटकने लगते हैं, तथा इसके साथ ही साथ रसौली का वनना (Strysteria) नाडी दौर्वल्य सम्वन्धी लक्षणो का उत्पन्न होना, योनि स्राव, प्रदर, योनि कन्द, दौर्बल्य, अरति, और अनिद्रा के साथ उत्पन्न होकर रोगी को वेचैन बना देता बूटी के सम्पर्क से वैकृतिक अङ्गो को अपने स्थान पर पुन स्थापित करने का लाभ होता है और इसके द्वारा विस्थापित अग अपने उचित स्थान पर आ जाता है, और वैकृतिक अवस्था तिरोहित हो जाती है। इसका यहा पर समुचित विवेचन उपस्थित कर रहे है।

यह प्रयोग केवल स्थान भ्रंश हुए गर्भाशय, योनि, उनकी पेशियां और श्रोणि के ऊपर प्रभाव डालती है। किन्तु किसी अर्वुद की स्थिति से हुए भ्रंश मे अथवा शस्त्र क्रिया की अनुपयुक्तता मे हुई भ्रंश की स्थिति मे लाभप्रद नही होती।

कलिहारी का सामान्य वर्णन

कलिहारी तु हलिनी लांगली शक्र पुष्पपि।
विशल्यकर्म शिखानन्ता वह्निवक्त्राच गर्भनुत्॥
कलिहारी सरा कुष्ठ शोफार्शो व्रण शूलजित्।

यह लेख लिख वैद्य श्री विश्वम्भरदयाल गोयल ने 'वत्सनाभ व कलिहारी का भ्रम" मिटाने के लिये यह सत्प्रयत्न किया है। गोयल जी बड़े उत्साही व यशस्वी चिकित्सक हैं। इनके विचार मननीय है। यद्यपि इन दो भिन्न द्रव्यों में कोई भ्रम नहीं है। फिर भी देहात में कलिहारी को भी बछनाभ कहकर बहुत से ग्राम्य वैद्य मानते हैं अतः यह लेख उसके समाधानार्थ उत्तम रहेगा। बाजारू औषधियो के शीर्षक मे इन दोनो का विवरण भ्रम का उन्मूलन करने मे सहायक है उसे वहाँ पर भी पढ़े। हम श्री गोयल के विचारो का स्वागत करते हैं—विश्वनाथ द्विवेदी

वत्सनाभ व कलिहारी

श्री विश्वम्भर दयाल गोयल वैद्य, १३६ नादान महल रोड लखनऊ-४

वत्सनाभ और कलिहारी का भ्रम

वत्सनाभ के बारे मे आयुर्वेद शास्त्र मे कहा है—

य कन्दो गोस्तनाकारो न दीर्घः पञ्चमागुलात् ।
न स्थूलो गोस्तनावूर्ध्वं, द्विविधो वत्सनाभकः ॥
सिन्धुवार सदृक् पत्रो, वासनाभ्याकृतिस्तदा ।
यत्पार्श्वे न तरोर्वृद्धिर्वत्सनाभ सभाषितः ॥

अर्थात् जिस पौधे का कन्द गौ के स्तन के समान तथा पाच अगुल से लम्बा नही है और मुटाई भी गौ के स्तन के समान हो वही वत्सनाभ है। जिसके पत्ते सभालू के समान और जिसके समीप और जिसके नीचे कुछ भी उगता नही हो वही वत्सनाभि की आकृति और इस वत्सनाभि नाम से पुकारा जाता है।

यह परिभाषा जिस काले वत्सनाभि (Aconite Ferox) के बारे मे दी गई है वह अब या तो मिलता ही नही है या बहुत ही दुर्लभ दूर कही कोई एक दो पौधे दिखाई दे जाते है। दूसरे जो अन्य दूसरे प्रकार के वत्सनाभ दिखाई देते है उनमे से चार प्रकार के (१ मोहरा-मीराविष-Aconite Deinorrhizum जो बगदाद, बसरा की ओर से आता है। २ गोवारी नेपाली Aconite Balfouli-जो नेपाल उत्तराखण्ड से मिलता है। ३. विश्व कालोविखोमा डोघी Aconite Spicatum और ४. कालोविसमो-Aconite Laciniatum हैं। ये दोनो Aconite Napplee के रूप हैं भूटान और सिक्किम के आस-पास मिलते हैं।) जो भी उपलब्ध है उनके रासायनिक सगठन एव प्रभाव या कार्य तो प्राय समान ही काले वत्सनाभि (Aconite Ferox) के तुल्य होते हुये भी जो विषैला तत्व Pseudo Conitive पहले प्रकार बगदाद से आने वाले मे पाया जाता है वह अन्य मे नही होता है।

दूसरे मीठा तेलिया नाम से मिलने वाला वत्सनाभ कुछ कृत्रिम रूप मे गोमूत्र, कसीस एव तैल द्वारा तीसरे और चौथे प्रकार के वत्सनाभ द्वारा तैयार कर काला वत्सनाभ बना दिया जाता है। वैसे कही-कही पीला व लाल वत्सनाभ का उल्लेख है पर उनमे भी भ्रम हो सकता है।

इस शुद्ध काला वत्सनाभ न मिलने पर कुछ कन्द की आकृति कलिहारी के समता रूप मे मिलने से कुछ ज्ञान होने या अल्प ज्ञानी वैद्य लोग भ्रमवश दोनो को एक ही समझने लगे हैं पर जब विश्लेषण किया जाता है तो दोनो मे महान अन्तर मालूम हो जाता है। कारण स्पष्ट है, दोनो के अपने-अपने गुण और प्रभाव है जिनमे समानता का रूप नही देखा जाता है।

इस प्रकार ऊपर दिये हुए वत्सनाभ के कन्द के लक्षणो और कलिहारी के कन्द की आकृति को मिलाने पर

समानता मिलने पर भी गुणो मे भेद स्पष्ट करना साधारण वैद्य के लिये एक दुष्कर कार्य है, आयुर्वेद शास्त्र वत्सनाभि को महाविष और कलिहारी को उपविष ही मानता आया है। कलिहारी के संस्कृत मे अनेको ऐसे नाम हैं जो किसी भी रूप मे वत्सनाभ के अन्तर्गत नहीं आ पाते जैसे विशल्या, गर्भपातिनी, अग्निशिखा, स्वर्ण पुष्पी, सारिणी, लागुली आदि अपनी रूप-रेखा अलग ही बताती है। वत्सनाभ को तो अधिकांश मे विष ही कहा गया है जो किसी प्रकार समता का बोध नहीं देता है।

कलिहारी के दो रूप देखने मे आये हैं एक को पुरुष जाति का और दूसरे को स्त्री जाति का मान लिया गया है। पुरुष जाति वाला लागुली स्त्री जाति वाले की अपेक्षाकृत लम्बा होता है। कन्द भी उसमे उसके दो भाग समकोण बनाते हैं। स्त्री जाति वाले का कन्द प्रायः गोलाकार सा होता है। दोनों के ऊपर कुछ अंकुर से तथा नीचे की ओर कुछ सूक्ष्म जटायें लगी होती हैं। इस कन्द का छिलका पतला, ढीला और हल्के बादामी रंग का होता है पर कन्द का आन्तरिक भाग श्वेत ही होता है। स्वाद मे कडुआ और गन्ध कुछ तेज खींसी सी होती है। पत्ते लाल कन्नेर की आकृति के किनारेदार और नरम मुड़े हुये हरे पीले रग के होते हैं।

फूल वर्षा ऋतु मे लम्बे-लम्बे लाल या पीले या नीचे पीले तथा अन्दर लाल रग के सुन्दर होते है।

गुण के बारे मे निम्नलिखित श्लोकबद्ध रूप स्पष्ट ही है—

लांगली कटुरूष्णा च कफवात विनाशिनी।
तिक्ता सारा च श्वयथु गर्भ शल्य व्रणापहा॥

अर्थात् कलिहारी विपाक मे कटु-कडवी, वीर्य मे उष्ण (स्वभाव गर्म), कफ और वात का नाश करने वाली, स्वाद मे तिक्त (कडवी), दस्तावर, गर्भाशय सकोचक, गर्भ एव शल्य (कील काटा या काच के टुकडे) और घाव का नाश करने वाली है।

कलिहारी कटुष्णा च कफ वात निवृतनी।
गर्भान्त शल्य निस्कास कारणी सारणी परा॥

अर्थात् कलिहारी कडई, उष्ण, कफवात नाशक, गर्भ प्रसव पर अपरा और शल्य को निकालने वाली होती है।

इन्द्र लुप्त-सिर के बाल उड जाने पर—

तथा लांगलीयाम् मूलं इन्द्रलुप्ते प्रलेपयेत।

अर्थात बाल उडने पर लागली (कलिहारी) का लेप करना।

कुष्ट पर—

लांगली करवीरश्च कुष्ट दुष्ट व्रणापहौ।

अर्थात् कलिहारी और कन्नेर कुष्ठ और दुष्ट फोडो का नाश करता है।

रसायन रूप मे—

लांगली त्रिफला लोह पल पंच शतो कृतम्।
मार्कव स्वरसे पिष्ट्वा गुटियाम् शतत्रयम्॥
छायाविशुष्क गुटिकार्द्ध यद्यात्।
पूर्व समस्तामपितां क्रमेण॥
भेजोविरिक्तः क्रमशश्च मंडम्।
पूर्वा विलेपी रस औदनश्च॥
सर्पिः स्निग्धं मासमेकं यतात्मा।
मासद्वं सर्वथा स्वैरवृत्तिः॥
वर्ज्यं यत्नात् सर्व कालत्वजीर्णं।
वर्षेणैव योगमेवोपयुञ्ज्यात्॥
भवति विगत रोगोऽप्य साध्य मयार्त्तः।
प्रबल पुरुषकार शोभते योऽपि वृद्ध॥
उपचित पृथुगात्र श्रोत्र नेत्रादि युक्तम्।
तरुणा इव समाना पत्रजीवेच्छतानि॥
— वागभट्ट (उ. ३९ अ०)।

अर्थात् कलिहारी (शुद्ध), हरड, बहेडा, आवला, लोह भस्म (कोई त्रिफला जारित लोह भस्म उचित मानते है), लगभग ४०-४० तोला लेकर महीन चूर्ण कर भ्रंगराज के रस मे घोट कर तीन सौ साठ (तोलो मे लेने से) गोलिया बना कर छाया में सुखा ले। पहिले दिन आधी गोली से प्रारम्भ कर क्रमशः एक रोज सेवन करना। इससे विरेचन होने पर मण्ड, पेया विलेपी और मास रस (यूष) के साथ चावल का सेवन पथ्य है। इस प्रकार सयम से एक महीना घृत सहित स्निग्ध भोजन ग्रहण करे। सतर्क रहे किसी विधि भी अजीर्ण न होने पावे। एक वर्ष तक सेवन करने पर असाध्य रोगी भी ठीक हो। वृद्ध पुरुष भी प्रबल पौरुषयुक्त होकर दीर्घायु होते हैं।

अन्य योगो मे अनुपान भेद से(१) प्रमेह मे गोदूध या मधु से, आत्र कृमि मे गुड से, अग्निमाद्य में सोठ,



कुष्ठ मे छोटी दुद्धी से, अर्श में मक्खन से, शूल पर हींग के पानी के साथ, चूर्ण या सत्व (कन्द को शोध कर कूट कर जल मे विलोकर जो नीचे बैठ जाय, चूर्णवत् सफेद अंश सुखाने पर सत्व बन जाता है) को व्रण पर छिड़कना कृमिनाशक है; नहरूआ या नारु पर जल मे पीस कर लेप करना; शोथ एवं पके फोडे पर या कांख विलाई (बगल की गांठ) पर लेप करना, बिठाता या फोड कर ठीक करें; कामला पर पत्ते पीस तक्र (छाछ) से सेवन करना, गंज में कन्द गोमूत्र मे पीस लेप करना, बिच्छू और कनखजूरा के विष पर कन्द जल मे पीस लेप करना और आग से सेंकना, विषहरी (अंगुली का विशाक्त शोथपूर्ण फोड़ा) पर जल में पीस मोटा लेप करना, गर्भ प्रसव में देर होने पर या ऊपर न निकलने पर कांजी (चावल, राई और जल द्वारा निर्मित पेया) या गरम जल से पीस हाथ की हथेली पैर के तलवो, पेडू और योनिद्वार पर लेप करना शीघ्र प्रसवकारक है (इस कार्य मे उटकंटक, लाल पुनर्नवा, अपामार्गवत् कार्य करती है। ध्यान रखना चाहिए कि प्रसवोपरान्त, बालक एव अपरा जेर के निकलते ही कपडा भिगो-भिगो कर लेप को पूर्णतया पोंछ कर साफ कर लेना चाहिए, अन्यथा योनि की नस नाड़िया बाहर आ जाने का खतरा रहता है।) (कोई कोई लेप के अलावा भी कन्द के एक इन्च टुकडो को चोटी और कमर में बंधवाने से भी सुख प्रसव में सफलता पाते हैं); मासिक रक्त स्राव की कमी या न होने में कन्द पीस वर्ती बना रखते है या कलिहारी कन्द अपामार्ग, इन्द्रायण मूल का कल्क बना तैल सिद्ध कर रुई या कपड़ा भिगो वर्ती बना उपयोग करते है। कण्डमाला पर कन्द का कल्क २० तोला। निर्गुंडी का स्वरस ४ सेर और तैल सरसो २ सेर मे तैल सिद्ध कर यही योग बाधना या कलिहारी चूर्ण मधु मे मिला लेप करना लाभकारी है। इस प्रकार वात, गठिया वात, श्वेत कुष्ठ आदि और भी रोग इसके द्वारा दूर होते हैं।

कलिहारी यद्यपि उपविष ही माना गया है पर शुद्ध कलिहारी का अधिक मात्रा मे उपयोग भी प्रायः वत्सनाभिवत् विषाक्त प्रभाव दिखाता है—उदर में जोर की ऐंठन, मरोड, अतिसार, वमन एव आक्षेप भी होता है जो रह रह कर जोर पकडता है। कभी कभी पीडा और विरेचन बेहोशी छाकर मृत्युकारक बन जाता है।

उपचार—मक्खनयुक्त (मक्खन न निकाला) दही मिण्डी या पानी निचुडा श्रीखण्ड दही (शिखरन) मधु और मिश्री मिलाकर या शुद्ध ताजा घृत ये सब बार बार विष दूर होने तक पिलाया जाय।

कलिहारी (Gloriosa superba) का शोधन—कलिहारी के कन्द को पृथ्वी से खोदकर निकाल कर स्वच्छ कर (मिट्टी, कूडा, अन्य घास-पात निकाल कर) चाकू या सरौते से छोटे-छोटे टुकडे कर खट्टी छाछ (एक दिन की वासी तक्र) के बीच भिगोकर पात्र सूर्य ताप मे रख दें तथा दिन मे ४-५ बार किसी लकडी, बांस या कांच की डण्डी से चलाकर उलट-पलट करें। दूसरे दिन नवीन दूसरी खट्टी छाछ बदल दें और इस प्रकार ७ दिन तक खट्टी छाछ बदल-बदल कर तथा सूर्य ताप मे पात्र रख ४-५ बार नित्य उलट-पलट करें। आठवें दिन जल से धोकर

साफ कर एक कपडे की पोटली मे बाध कर "दोला यन्त्र विधि" (एक बटुला-डेगची आधा भाग दूध से भर कर पोटली ऐसी लटकावे कि दूध मे डूबी रहे पर बटुआ का तला न छुवे) एक पहर (तीन घण्टे तक) मध्यम आग पर पकावें। फिर उतार कर जल से साफ कर सुखा ले, यही शुद्ध कलिहारी है।

वत्सनाभ के गुण व प्रयोग

वत्सनाभ वीर्य मे रूक्ष, उष्ण, विपाक मे मधुर, तीक्ष्ण कसैला, मादक, योगवाही है। रूक्ष होने से वात, उष्ण होने से पित्त व रक्त को कुपित करता है। तीक्ष्ण गुण से बुद्धि को भ्रमित एव मर्म बन्धन को छिन्न-भिन्न करने मे समर्थ है। विशद गुण से अत्यन्त दस्तो को लाता है।

शुद्ध वत्सनाभ विधिपूर्वक सेवन से रसायन, रक्तवह सस्थान, श्वसन सस्थान पर अच्छा प्रभाव करता है। अल्प मात्रा म देने से भी नाडी की गति एव रक्त का दवाव बढा देता है। हृदय की वात नाडियो को उत्तेजना देता है। इस औषधि की यह क्रिया स्थाई नही होती है। यह क्षणिक रूप से रक्ताभिसरण कर गति प्रवल करता है।

नाडी दुर्बलता के कारण होने वाले बहुमूत्र या शय्या मूत्र पर भी अपना प्रभाव रखता है।

ज्वर, शोथ, वेदनायुक्त ज्वर की वेदना और प्रदाह को कम करने मे सक्षम है।

मोती ज्वर पर वत्सनाभ (लक्ष्मीनारायण रस, सजीवनी वटी के रूप मे) अति उपकारक है। सविराम ज्वर मे वत्सनाभ की प्रधान औषधि 'शीतभजी रस' देते हैं। इसके द्वारा मूत्र बढकर एव पसीना आकर ज्वर उतर जाता है।

सूतिका ज्वर मे वछनाग (प्रताप लंकेश्वर रस)उत्कृष्ट औषधि है। योग्य मात्रा मे ही देना चाहिये। नाडी क्षीण या सविराम हो तो इसका उपयोग वद कर देना चाहिए।

मस्तिष्क मे विष सग्रह होकर होने वाले सन्यास रोग (Apoplexy) मे नाडी प्रवल होने पर "सूतराज रस" का उपयोग लाभकारी है। रक्त सचय कम होकर इसमे लाभ होता है।

सन्निपात के आरम्भ मे नागगुटिका, आनन्द भैरव, आदि अमोघकारी करते हैं।

अर्द्धावभेदक पर त्रिभुवनकीर्ति या सूतराज का प्रयोग क्षण लाभकारी है।

धनुर्वात मे वछनाभ को बार २ देने से मांसपेशियो की उग्रता का दमन होकर वे शिथिल होकर रोगशमन होता है।

अन्य ज्वरो पर शुद्ध वच्छनाग, सुहागे की खील, जवाखार, सज्जीखार, वङ्गभस्म और कालीमिर्च समान भाग चूर्ण कर नीबू रस मे घोटकर काली मिर्च सम गोली बनाकर १-३ रत्ती की मात्रा मे सेवन करने से ज्वर सहार करता है।

आठो शूलो पर—शुद्ध वच्छनाग, त्रिकटु (सौठ, पीपल कालीमिर्च), पीपलामूल, वच, चित्रक, हीग, जीरा, काला जीरा का समान भाग चर्ण नींबू रस में और अदक रस मे १-१ भावना देकर कालीमिर्च सम गोली बना गुनगुने जल से लेना। (यो. र) या अशुद्ध वत्सनाभ दो तोला का टुकडा लेकर कढाई मे डाल १० सेर जल मे आक के पत्ते फूल, जड के छोटे-छोटे टुकड़े कर डाल पकावें। ६-७ सेर जल जल जाय तब उतार वत्सनाभि को निकाल छोटे-छोटे टुकडे करें। (वत्सनाभ मोमवत् मुलायम हो जाता है और सुई आसानी से पार चली जाती है) और सुखाकर पीसकर सुरक्षित रखलें। १ रत्ती गरम जल मे लेने पर कैसा ही उदरशूल हो एक मात्रा से ही नष्ट होता है।

—एकौषधि गुणविधान से साभार

वच्छनाग, सोंठ और पुनर्नवा गोमूत्र मे पीस लेप करने से शोथ पर लाभ होता है।

काख बिलाई पर जल मे घिसकर लेप करने से लाभ करता है।

खांसी, श्वास पर कफान्तक रस या कफकेतु रस, हुताशन रस (वत्सनाभ १ भाग, सुहागा खील २ भाग, और कालीमिर्च १२ भाग-खरल कर १ से ४ रत्ती मधु से सेवन) अच्छा कार्य करते है।

इस प्रकार हम देखते है कि कलिहारी और वत्सनाभ के कार्यक्षेत्र भी एक से नही हैं जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है कि आकृति भी पूर्णतः एक नही है। गुण तो एक से हैं नही। विपाक मे कलिहारी कटु है तो वत्सनाभ मधुर है। कलिहारी रस मे भी कटु तिक्त है तो वत्सनाभ मधुर है। वत्सनाभ जितना विकासी और रूक्ष है वैसा कलिहारी नही है। गर्भपातन रूप मे कलिहारी की समता किसी हद तक अपामार्ग ही कर सकता है। वत्सनाभ मे तो लेशमात्र भी यह गुण है ही नही। कलिहारी जैसा ऊपर बताया जा चुका है एक उपविष ही है पर वत्सनाभ एक महाविष है। अत एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग खतरे से खाली नही कहा जा सकता।

श्योनाक अरलु

मतभेद का कारण क्या है ?

(१) राजनिघण्टुकार ने "श्योनाक युगल" लिखा है वहा पर पर्याय मे 'अरलु' शब्द प्रयुक्त नही है।

(२) निघण्टु संग्रहकार ने एक नया विचार प्रकट किया है उसने अरडुसो पर एक श्लोक लिखा है। गुजराती मे वकायन के सदृश बडे-बडे पत्रो वाला एक पेड है इसे 'अरडुसो' गुजराती मे कहते हैं और उसका लैटिन नामकरण Ailanthus Excelsa Roxb कहते हैं। ठीक नीम के पत्र की तरह पत्र वाला यह वृक्ष है। अत पत्तिया बडी-बडी होने व निम्ब सदृश होने से इसे कुछ लोग महानिम्ब, कुछ पर्वत निम्ब कहते हैं। यद्यपि इसका विवरण इससे मेल नही खाता—

निम्बाकार दलो विरबक मल्लूक. पत्ति पत्रकः ।
प्रसिद्धो भंगरोऽसारोऽरडूसो देशभाषया ॥
— नि स

इसमे अरलु शब्द नही आया है। फिर भी 'अरडुसो' शब्द से अरलु का साम्य होने से इसे अरलु मानना चाहिये अत श्री बापा लाल जी ने अरलु को पृथक मानकर निघंटु आदर्श मे माना है।

(३) 'अरलु' को डल्हण ने कैडर्य कहकर टीका किया है। निघटु आदर्श में मीठा नीम को कैडर्य कहा है और सस्कृत नाम दिया है। किन्तु अरलु शब्द से इलेंथस इक्सेल्सा को माना है। बडी विचित्र बात है कि डल्हण के अरलु के टीका करने 'कट्वग' के लिए प्रयोग करने और कैडर्य लिखने पर अरलु को पृथक माना है किन्तु कैडर्य डल्हण ने लिखा उसे पर्वत निम्ब न मानकर मीठा निम्ब को कैडर्य पाठ करते है और अरलु को पृथक पाठ मानकर अरडुसो को अरलु मानने का विचार रखते है। यह विचार वैमत्य है जो उनके ही विचार से खण्डन हो जाता है।

(४) पुन. कट्वग के लिए अरलु को मानकर डल्हण अपनी टीका मे वर्णन करते है। श्योनाक को नही कहते अतः अरलु पृथक द्रव्य है यह मानने की सम्मति आती है।

(५) अष्टाग निघटु मे—

'दीर्घवृन्तो महानिम्बः कट्वगोऽरलु तिक्तक."

यह अरलुक के लिए प्रयुक्त महानिम्ब ने भी यही भ्रम पैदा किया है जो बहुत ही बाद का संग्रहीत निघटु है।

(६) अष्टाग हृदय मे वत्सकादि गण मे (अ. सू. अ १५ श्लोक ३३-३४ पर टीकाकार पदार्थ चन्द्रिका लेखक चन्द्र चन्दन) महानिम्ब कलम, कट्वग फल को डल्हण ने लिखा है उसे अरलुकफलम् इन्होने लिखा हे।

आज के विचारकों का ध्यान अरडूसो के पर्याय "मल्लूक" पर नही गया है अन्यथा मल्लूक भी अरलूक का पर्याय है लिखने लगते। दीर्घवृन्त नीम भी है-वकायन भी है। महानिम्ब व कैडर्य भी है। इतना होने पर भी अरलु या श्योनाक के दीर्घवृन्त की समता निम्ब, महानिम्ब व कैडर्य मे नही है अत यह विचार नितान्त मननीय है कि अरलु को पर्वत निम्ब क्यो माना जाय ?

एतदर्थ शास्त्रीय विवरण उपस्थित करके उसके सम्बन्ध के साहित्य जानकर विद्वान वैद्य सम्मति दे सकते हैं।

श्योनाक और अरलु

श्योनाक दशमूल का प्रसिद्ध द्रव्य है। इसके पर्यायो मे अरलुक शब्द भी आता है। अत. कुछ विद्वानो का यह विचार है कि श्योनाक अलग द्रव्य है तथा अरलु पृथक द्रव्य है। कुछ विद्वान् अरलु से महानिम्ब और श्योनाक से सोनापाठा लेने का विचार करते है और दृढ शब्दो मे सलाह भी देते हैं। अत यह विचार करना आवश्यक है कि यह प्रश्न ही क्यो उठा, इसके निर्णय के लिये शास्त्रीय पत्र उपस्थित करना आवश्यक जान पड़ता है।

संहिता ग्रन्थ और निघण्टुओ मे श्योनाक के पर्याय—

राजनिघण्टु, भावप्रकाश निघण्टु, अमरकोश, भरत, शब्द रत्नावली इनमे श्योनाक के निम्न पर्याय दिये है—

(१) मण्डूकपर्ण, पत्रोर्ण, नट, कट्वङ्ग, टुण्टुक, शुकनाश, ऋक्ष, दीर्घवृन्त, कुटन्नट, सोणक, अरलु, (अमरकोश)

(२) श्योना, (इति भरत)

(३) शोण, अवटु, दीर्घवृन्तक, दीर्घवृन्दक, (शब्द रत्नावली)

(४) पृथुशिम्बि, शल्लक, (जटाधर)

(५) कटम्भर, मयूरजङ्घ, अरलुक, प्रियजीवः,

(६) राजनिघण्टुकार ने २२ पर्याय दिये है यथा —

श्योनाक. पृथुशिम्बोऽन्यो भल्लूक दीर्घवृन्तक. ।
टेन्टक. पीत वृक्षश्च भूतसारोमुनिद्रुम ॥
निःसार फलवन्ताकं पूतिपत्रो वसन्तक ।
मण्डूकपर्ण पीताङ्गो जम्बूक पीतपादप ॥
वातारि. पीतकः शोणः कुलटश्च विरोचन ।
भ्रमरेष्टो वह्निजङ्घो नेत्र-नेत्रमिताभिध. ॥
श्योनाक युगल तिक्त शीतलं च त्रिदोषजित् ।
पित श्लेष्मातिसारघ्नं सन्निपात ज्वरापहम् ॥
(राजनिघण्टु)

श्योनाकः शोषणश्चस्यात् नटकट्वङ्ग टुटुक ।
मण्डूकपर्ण पत्रोर्ण शुकनाश कुटन्नटा ॥
दीर्घवृन्तोरेलुश्चापि पृथुसिम्ब कटम्भर. ।
श्योनाको दीपन. पाके कटुकस्तुवरो हिमः ॥
ग्राही तिक्तोऽनिलश्लेष्म पित्तकासामनाशनः ।
कटुकस्य फलं बाल रूक्ष वात कफापहम् ॥
हृद्यं कषायं मधुरं रोचन लघु दीपनम् ।
गुल्मार्शः कृमिहृत् प्रोक्त गुरुवात प्रकोपणम् ॥
(भावप्रकाश निघण्टु)

ऊपर के पर्यायो का वर्गीकरण करें तो निम्न बाते श्योनाक के सम्बन्ध मे मिलेंगी—

जाति—मुनिद्रुम, पीतवृक्षक, नि.सार., पिताङ्ग, पीतपादप। अर्थात् यह वृक्ष या द्रुम जाति का है जिसकी लकडी और छाल पीले होते है। पूरे द्रुम का मूल, त्वचा, काण्ड, पत्र पीले होते हैं। (पीताङ्ग) (पीतक) (पीतपादयः) (पीतवृक्ष)

इससे वृक्ष का मूल, कांड, काष्ठ और त्वक्सव यह पीले रग के होते हैं स्पष्ट है।

वर्ण— मण्डूक वर्णं पीताङ्ग ।

पत्र—मण्डूक पर्ण, पत्रोर्ण, पूतिपत्र अर्थात् इसके पत्र की आकृति वर्षाकालीन मण्डूक की आकृति का पीले रग का होता है। पत्रवृन्त—दीर्घवृन्तक, दीर्घवृन्त, मयूरजघ, [illegible], अर्थात् इसका पत्र वृन्त और होता है। लम्बा होना है और उसमे जो पत्र [illegible] के अन्त होते है, वे भी दीर्घवृन्त ही होते हैं।

स्थिति—कुटन्नट, कटम्भर, ऋक्ष, विरोचन, अर्थात् छोटे पर्वतों पर होने वाला कुट (अर्थात् कुटे नटति इति कुटन्नट)।

कटम्भर—कट भर्ती-इति कटम्भर.। अर्थात् जिस स्थान पर होता है, वहां पर इसकी मूलो मे अर्थात् मूल विस्तार से स्थान को भर देता है। मूल से नये पौधे बन जाते है।



अरलु—अर लाति-इति अरलु। (ला + कु, आतु, अरु+रसल) अर्थात् अर शीघ्र, गति लाति इति-अरलु अर्थात् एक पेड से बहुत से पेडो मे जल्दी अधिक फैल जाते हैं। इसकी क्रिया शीघ्र होती है।

ऋक्षम्—पर्वत विशेष, पर्वतीय प्रदेशे जायते स ऋक्ष। अर्थात् यह पर्वत पर अधिक पाया जाता है। इन पर्यायो से स्पष्ट है कि पर्वत की अधित्यका मे पैदा होता है।

विरोचन—विरोचन की तरह अधिक सख्यक सतान को देने वाला।

पुष्प—शोण., शुकनाश, वसन्तक, जम्बूक, पीनकः अर्थात् इसका पुष्प पीत और रक्त वर्ण जामुनीवर्ण का होता है। और उसका आकार प्रस्फुटित होने से पूर्व, (शखक शखवद् आकार करोति)। मोटा वृन्त होता है और उसके अन्त का रग हरा होता है। इसमे शख की ग्रीवा की तरह आकार बनता है और लाल रग का होता है।

अरलु—Dalhaua in his comments on कट्वङ्ग (U. 61-23) identifies it with Aralu and not with श्योनाक as others do. It indicates that the two are differant from each other, Yet, at another place he adds पर्वत निम्ब as Aralu. The tree populerly known as Arua अरुआ in Mirzapur forest and looking like a Neem tree is Alanthus excelsa Roxb. This seems to be the Aralu of Dalhana. It has been used as a substibety of श्योनाक (Glossary of Vegitable Drugs in Brihadtrayi) Peri 21-22

पृथुशिम्ब, पृथुसिम्बि, शुकनासः, टुण्टुक, अर्थात् इसकी शिम्बि बडी तलवार की तरह चपटी लम्बी होती है। पुष्प के झड जाने के बाद जब शिम्बि लगना प्रारम्भ होती है तो उसका आकार शुक की नासिका की तरह मुड़ा हुआ नोकदार होता है। जब यह पककर सूख जाता है तो उसमे से बीज का टुन्टुन आवाज होता है। बच्चे इसके फल को बजाते हैं। और इसका नाम टुन्टुका कहते हैं।

रस—कटु (सर्वाङ्ग कट्वङ्गः), तिक्त, कषायः

संहिताओं मे श्योनाक

चरक के कट्वङ्ग-कुटन्नस और श्योनाक नाम से वर्णन किया है।

सुश्रुत ने अरलु-अरलुक कट्वङ्ग-टिन्टुक और श्योनाक इस नाम से वर्णन किया है।

वाग्भट ने अष्टागहृदय मे अरलु, अरलुक, कट्वग, कट्वगफल, टिंटुक, टुन्टुक-श्योनाक इन नामो से श्योनाक का वर्णन किया है।

भेद राजनिघण्टुकार ने इसके दो भेद बताये है। भावमिश्र ने भेद तो नही कहा किन्तु पर्याय मे श्योनाक का पर्याय वर्णन करते समय लिखा है कि "दीर्घवृन्तोऽरलुश्चापि" अर्थात् जो पर्याय श्योनाक के है वही अरलु के भी हैं। इससे श्योनाक व अरलु दोनो के वर्णन एक साथ आ गये हैं। और किसी ने श्योनाक का भेद नही किया है। गुण का वर्णन करते हुये उन्होने लिखा है—

"श्योनाक युगल तिक्त शीतल च त्रिदोषजित्।
पित्त श्लेष्मातिसारघ्नं सान्निपात ज्वरापहम्॥"

इससे श्योनाक के दो भेदो का पता चलता है किन्तु राजनिघण्टुकार ने अरलु शब्द का प्रयोग नहीं किया है। अमरकोश, भावमिश्र इन दोनो ने 'अरलु' शब्द का प्रयोग किया है। वनस्पति शास्त्रियोके मूर्धन्य वापालाल शाह और श्री बलवन्तसिंह जी ने अरलुक शब्द को श्योनाक से पृथक द्रव्य पर्वत निम्ब इस आधार पर मानने को कहा है कि यह डल्हण ने ऐसा लिखा है। तथा श्री बलवन्तसिंह जी का यह कहना है कि डल्हण ने अपनी टीका मे कट्वङ्ग शब्द से अरलु माना है, श्योनाक नही।

दूसरा तर्क यह है कि मिर्जापुर के पास अरुवा शब्द से पर्वत निम्ब (आईलेन्थस एक्सेलसा राक्सवर्ग) को ही मानते हैं और इसको 'अरुवा' कहते हैं। इसलिये अरलु शब्द से अरुवा मानना चाहिये। श्री वापालाल जी का कथन है कि पर्वत निम्ब को अडुसो-अडुसी कहते हैं। इसलिये अरलु अडुसो ही हो सकता है। यह दोनो तर्क कि अरलु अडुसो के करीब है। अरलु-अरुवा के निकट है तो यह सामञ्जस्य ढूढना पडेगा कि भावमिश्र और अमरसिंह ने जो और पर्याय दिये हैं, उनके पर्याय इनसे मेल खाते है कि नहीं और अतिसार में अगर अरलु शब्द लिखकर पर्वतनिम्ब ही मानना है तो श्योनाक के गुणो में भी अतिसारघ्न गुण है। उससे संदिग्ध अर्थात पर्वतनीम्ब क्यो माना जाय?

भाव मिश्र ने भी लिखा है कि 'ग्राही तिक्त कटुकः तुवर' ये गुण क्या पर्वत निम्ब मे है? श्योनाक शोषश्च स्यात्' अतिसारघ्न आम्र के शोषण क्रिया को बढ़ाता है तथा ये दीर्घ वृन्त पृथुसिम्ब-मण्डूक पर्ण-पत्रोर्ण शुकनाश कट्वग ये गुण भी इस पर्वत निम्ब मे हैं कि नहीं।

पर्वत निम्ब कैडर्य के गुण

कैडर्य कटुक तिक्त कषायः शीतलो लघुः।
संताप शोष कुष्ठाश्र क्रिमीभूत विषापहः॥

इसमें ग्राही शोषण गुण नही है। और इसका पाठ निम्ब विशेश मे महानिम्ब और गिरिनिम्ब का पाठ किया है। निम्ब के गुणो मे अतिसारघ्न नही लिखा है। अतः डल्हण के केवल वाक्य विशेष से और कट्वंग को पर्वत निम्ब मान लेने से अरलुक श्योनाक के भेद से पृथक कैसे हो सकेगा? वास्तव मे अरलुक के गुण श्योनाक के समान हैं। और साथ ही पाठ किया गया है। और राजनिघण्टु के विचार के अनुसार श्योनाक द्वय का दो भेद मानना और पर्याय सब एक समान रखना। एक ही के दो भेद हो सकते हैं—वृहद् वृक्ष श्योनाक और लघु वृक्ष अरलुक।

मूर्वा

श्री कवि गिरधारीलाल मिश्र
M Sc (A), A M B S.
प्रान्तीय सचिव–अखिल भारतीय
आयुर्वेद महासम्मेलन,
प्रधान चिकि.-असम आयुर्वेद भवन,
शिवसागर (असम)



इसके लेखक श्री गिरधारी लाल मिश्र साहित्यायुर्वेद रत्न आयुर्वेद वाचस्पति है। इनका विचार मूर्वा के सम्बन्ध मे नागदमन को मूर्वा मानने का है। इनका आधार केवल टीकाकार डल्हण का मूर्वा चोरस स्नायु के विचार पर ही बना हुआ है। इस विषय पर विशेष लेख निर्णय मे इनके विचारो का खण्डन प्राप्त होगा।

इसमे न तो मधुर रस है और न यह गोकर्ण की तरह है क्योकि उसके पत्र का अग्रभाग नोकीला होता है। और यह ४-६ फीट तक ऊँचे इसके २-२॥ इंच चौडे पत्र होते हैं। और जिसने गौ का कर्ण देखा है इसे गौ कर्ण नही मान सकता।

श्री मिश्र के विशेष आग्रह पर इसे प्रकाशित किया जा रहा है ताकि पाठक इनके विचारो से अवगत हो सकें।

—विश्वनाथ द्विवेदी

यह प्रसन्नता का विषय है कि आयुर्वेद वाङ्मय की ख्याति प्राप्त पत्रिका "धन्वन्तरि" अपने छः विशेषाको के रूप मे "वनौषधि-विश्वकोष" का प्रकाशन कर, अब उसकी परिपूर्णता के रूप मे आयुर्वेद-जगत के सुप्रसिद्ध द्रव्यगुण-मर्मज्ञ आचार्य श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी के सम्पादकत्व मे "सदिग्ध बनौषधि विशेषाक" का सम्पादन कर, भारत की प्राचीनतम बनौषधि सम्पदा के कतिपय पक्षो पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार प्रस्तुत करते हुए देशी वनौषधियो की सदिग्धता की समस्या का समाधान प्रस्तुत कर रहा है, नि सन्देह यह प्रयास श्लाघनीय है।

बनौषधियो की सदिग्धता—आज एक ही औषधि के नाम से विभिन्न प्रदेशो में विभिन्न वनस्पतियो का प्रयोग किया जा रहा है, निघण्टुकाल के पश्चात ही सदिग्धता की समस्या सामने आयी तथा (१) विभिन्न टीकाकारो की टिप्पणियो मे असमन्वय तथा शब्दो के पर्यायो द्वारा अभिप्रेत अनेकार्थों के प्रयुक्त होने के कारण, (२) कारणो को दृष्टि से, (३) अध्ययन-पद्धति मे परिवर्तन, (४) सभ्यता का नवीनीकरण, (५) भौगोलिक अन्तर एव (६) क्षेत्रीय नामावलियो के प्रयोगो के कारण, तथा (७) अनेक औषधियो के अनिर्णीत एव दुर्लभ हो जाने के कारण उनके स्थान पर प्रतिनिधि द्रव्यो के प्रयोग का प्रचलन होने के कारण तथा (८) व्यवहार मे कुछ समानताओ के आधार पर ही व्यवसायिक लाभ की दृष्टि से अनेक बनस्पतियो के प्रतिनिधि तथा अपमिश्रण की हानिकारण व्यवस्था के कारण बनौषधियाँ सदिग्ध होती गयीं एव आज तो ऐसी स्थिति उपस्थित हो गयी है कि वैद्यो

को पसारियो पर ही निर्भर रहना पडता है, वे जिस औषधि के लिए जो औषधि देदे उसीको सही मान लिया जाता है या मान लेना पडता है।

मूर्वा—एक सदिग्ध द्रव्य है जिसका अनेक स्थानो पर विभिन्न प्रयोगो मे उल्लेख मिलता है। सुश्रुत के सुप्रसिद्ध टीकाकार आचार्य डल्हण ने अपनी टीका मे, मूर्वा के परिचय के सन्दर्भ मे, निम्न तीन प्रकार के मतो का विभिन्न स्थानो मे वर्णन प्रस्तुत किया है, जिससे उसकी सदिग्धता स्पष्ट हो रही है—

(१) **मूर्वा चोरस्नायुः, मया पूर्वदेशे गुणान् कुर्वन्ति धनुषाम्**
(सु. सू अ २२)
मूर्वाकन्दली सदृशः स्वल्पविटप "हगौड" इति लोके
(सु. सू. अ. २९)

(२) **मूर्वा धनुर्गुणोपयोग्या 'दुधऊ' इति लोके।**

(३) **अन्ये कोविदारयुग्मपत्रा लताविशेषा मूर्वामाचक्षते।**

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रथम—द्वितीय मत उन्हे कुछ मान्य थे और तृतीय मत स्वीकार्य नही था। इसी प्रकार श्रीकण्ठ (सन् १२००–१२५०) ने "मूर्वा स्वनामख्याता तदभावे जिलल मूलम्" लिखा है जिससे यह स्पष्ट होता है कि उनके समय मे भी यह सदिग्ध द्रव्य रहा है।

भावप्रकाश निघण्टु के अनुसार–

मूर्वा मधुरसा देवी मोरटा तेजनी स्रुवा।
मधूलिका मधुश्रेणी गोकर्णी पीलुपर्ण्यपि॥
मूरा सरा गुरु स्वादुस्तिक्ता पित्तास्रमेहनुत्।
त्रिदोषतृष्णाहृद्रोग कण्डू कुष्ठ ज्वरापहा॥

विभिन्न निघण्टुकारो के अनुसार मूर्वा मधुर, तिक्त, सर, गुरु, त्रिदोष शामक एव ज्वर, प्रमेह, हृद्रोग, कुष्ठ, वमन, पाण्डुरोग मे लाभदायक है। सुश्रुत-आरग्वधादिगण, पटोलादिगण एव विरेचन विकल्प अध्याय मे, चरक–तृप्तिघ्न, स्तन्य शोधन, दशेमानि एव वमनोपग द्रव्य के रूप मे इसका उल्लेख है।

मूर्वा स्वरूप—बहुत बडी आरोहणशील, मजबूत काण्ड की, दुग्धयुक्त, चक्रारोही लता होती है। नवीन भाग रोमश-शाखाओ, पत्रनालो एव पत्तो के अध पृष्ठो पर रक्ताभ या मखमली रोमावरण होता है। नवीन शाखाओ की त्वचा से सफेद रेशम जैसे रेशे निकलते हैं जिससे मौर्वी (धनुष की डोरी) या रस्सी बनायी जाती है। इस लता की कई उपजातिया भौगोलिक अन्तर के कारण दृष्टिगोचर होती हैं जिनमे विभिन्न निघण्टुओ ने इसके रूप परिचयात्मक जो नाम दिये है वे सम्भवत' एक ही वनस्पति के लिए नही है। आज मूर्वा नाम से ली जाने वाली वनस्पतियो मे से किसी मे एक तो दूसरी में दूसरा नाम सार्थक मालूम पडता है।

मूर्वा पर्याय शब्द

सस्कृत–मूर्वा, कोविदार, युग्मपत्रा, चोरस्नायु, पृथक्पर्णी

हिन्दी–मालफन, माहुल, महुलाइन, मरोडफली, गोमठी, ऐठनी, चुरनहार,

बगाली–चेहुर, गोराचक्र, घणरूप, मूर्वा।

तेलगु–अड्डा, आड्डामति, मारिनिका। तामिल–भूमि चक्करे, वलुवरि

गुजराती–विका, मोरवेल, मरउासिगी। उडिया–गोलरङ्ग। मराठी–रानजाई। सथाली–कोगा, मिटकी। थारु–मारवी, मरुआवेल, देहरादून–बेलकगु, बेलकम। मिर्जापुर–जरतोर, चिन्हार। चित्रकूट–मुरहरी।




मूर्वा (नागदमन)

लेटिन–विभिन्न जातियाँ—

(१) Mareua arenarıa Hook (मेरुआ एरेनेरिया हुक)
(२) Clımatıs Gourıana Roxb (क्लेमैटिस गोरियाना राक्स)
(३) Helıcteres ısoralınn (हेलिक्टेरीज-आईसोरालिन)
(४) Marsdenıa tenacıssıma (मार्सडेनिया टेनासीस्सिमा)

प्राप्ति स्थान—हिमालय के निम्न मार्गो मे ३००० से ५००० फीट तक, देहरादून के खैर के जगलो, मध्य प्रदेश बिहार की शुष्क पर्वतमालाओ मे नम एव छायादार भाडीदार जगलो मे पाया जाता है। तथा आसाम मे

भी कही-कही पर्वतीय स्थानो मे अल्प प्राप्य है। बगाल, पजाब, सिन्धु, उडीसा, गुजरात, दक्षिण भारत, जम्मू, पेनिनसुला, कारोमडल तट व बगीचो मे गमलो मे भी इसकी विभिन्न उपजातियाँ पायी जाती हैं।

मूर्वा–आकार–लता—मोटी-मजबूत काण्ड की, दुग्ध-युक्त, चक्रारोही, आरोहणशील होती है। नवीन भाग रोमश एव काण्डत्वक धूसर या रक्ताभ मखमली रोमावरणयुक्त नलीदार होता है। शाखाओ के अग्र पर प्राय २-२ सूत्र होते हैं।

पत्ते—४-६ इन्चसे १ फीट तक लम्बे, ५-६ इच चौडे, कभी-कभी चौडाई मे अधिक नही तो लम्बाई-चौडाई बराबर, द्विखण्डित, लट्वाकार, लम्बाग्र एव खण्ड गहराई तक कटे हुए एव फलमूलक यकायक बहुत गहरा फटा हुआ हृद्वत होता है।

पत्रनाल—२-५ इन्च लम्बा होता है, पुष्प—हरिताभ श्वेत, प्राय दुर्गन्धयुक्त एव गुच्छो मे आते हैं। फली-कठोर ६ से १२ इन्च लम्बी रोमश होती है।

अधोलिखित द्रव्यो का मूर्वा नाम से प्रयोग

(१) **मरुआ वेल–चिन्हार**—सम्भवतः डल्हण ने इसे ही—"धनुर्गुणोपयोग्या "दुधरू', इतिलोके कहा है, अतिरसा, गोकर्णी, श्रवा आदि पर्याय इसके लिये उपयुक्त मालूम पड़ते हैं। इसके स्थानिक धारू नाम मारवी या मरुआ वेल, मूर्वा से मिलते जुलते मालूम पडते हैं।

(२) **वगीय मूर्वा**—कन्दली सदृश. स्वल्प विटप हगौड" इति लोके —तथा चोरस्नायु डल्हणोक्त प्रथम द्रव्य को वगाल के वैद्य मूर्वा मानते हैं।

(३) **मालझल-मालुआ वेल**—सम्भवतः यही डल्हणोक्त कोविदारयुग्मपत्रा या पृथक पर्णी है जिसकी बटी विस्तृत लतायें होती हैं, पत्ते कचनार जैसे द्विविभक्त होते हैं।

(४) **मोरवेल–रानजाई**—वम्बई की तरफ इसको मूर्वा मानते हे जिसके लिए त्रिपर्णी नाम सार्थक मालूम पड़ता है।

(५) **मुरहरी–मोरहरी**—चित्रकूट मे यह मोरहरी नाम से प्रसिद्ध है। मधुरसा, पीलुपर्णी, तेजनी आदि पर्याय इसके लिए उपयुक्त हैं, सम्भवत डल्हण निर्मित मोरटा यह हो।

(६) देहरादून के व्यापारी उक्त लता की जड को मूर्वा नाम से बेचते है डल्हण ने इसका मालू नाम से उल्लेख किया है एव इसे कोविदार सदृश पर्ण वाला कहा है जो सार्थक है।

(७) उत्तर प्रदेश मे मरोडफली के ऐठें हुए फलो को मूर्वा नाम से लिया जाता है।

गुण और प्रयोग—सामान्य प्रयोग–इसके पत्तो से पत्तल आदि बनाये जाते है, छाल के रेशो से रस्सिया, धनुष की डोरी, मछली मारने की रस्सी आदि बनायी जाती हैं।

औषध रूप मे—यह शीतल, कषाय, त्रिदोषघ्न, कृमि नाशक, स्र सन, कुष्ठघ्न, स्वेदजनन है। उपदश, गडमाला, रक्तपित्त, कुष्ठ, एव खुजली मे इसके पचाग का फाण्ट देते हैं। इसकी मूल की छाल का क्वाथ–मधुमेह, अतिसार, विषमज्वर, उदर शूल मे देते हैं। इसकी जड रसायन, बल्य, उत्तेजक, बीज बल्य माने जाते है। खुजली मे इसके फल को घिसकर लेप करने से लाभ होता है। पत्ते या ताजे काण्ड को पीसकर चर्म पर लेप करने से छाले पडते है। इसकी छाल या फल अतिसार- प्रवाहिका मे लाभदायक है। पेट की बीमारियो मे इसका चूर्ण भूनकर २-३ माशे की मात्रा मे घृत एव शर्करा के साथ दिया जाता है। इसके फल स्नेहन एव ग्राही हैं, बच्चो के मरोड एव आनाह मे लाभदायक है।

मूर्वा निर्णय

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि मूर्वा विभिन्न प्रदेशो मे विभिन्न नामो से प्रयुक्त सन्दिग्ध बनौषधि है। हमारे विचार से पूर्वी भारत मे आसाम वगाल के कविराज "मूर्वा" नाम से जिस वनौषधि का प्रयोग



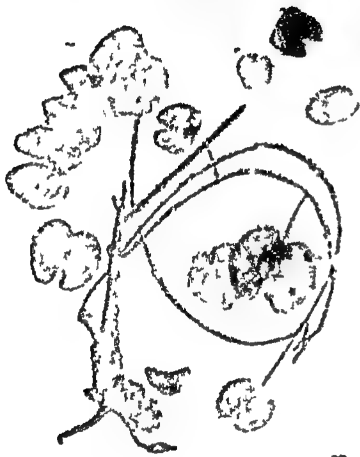
मरोडफली

करते हैं उसका चित्र (फोटो) प्रेषित कर रहे हैं, यही सही मूर्वा है

(१) मूर्वा चोरस्नायु—यथा, पूर्वदेशे गुणाम् कुर्वन्ति धनुषाम् (सु० सू० अ० २२) में जो आचार्य डल्हण ने अपना प्रथम मत दिया है यही सही मूर्वा है।

पत्ते—गाढ़े १२-१८" लम्बे, १-१ ३" चौड़े, अधर-तल पर उन्नतोदर बीच में सबसे अधिक मोटे, दोनों तटों पर श्वेताभ पट्टियों से युक्त होने के कारण चित्रित एवं इनका अग्रभाग तीक्ष्ण, कठोर एवं १ इन्च लम्बा होता है। पत्तों के बीच में पुष्पध्वज निकलता है (शरद

मालभन







(२) भावप्रकाशकार ने मूर्वा के नामों में जो गोकर्णी और पीलुपर्णी विशेषण दिया है यहाँ प्रस्तुत मूर्वा में युक्ति-संगत लगता है तथा मधुरसा शब्द भी इसकी स्वादिष्टता (मधुरस) का प्रतीक है। धनुष की डोरी के लिए इसके रेशों का प्रयोग आदिवासी करते हैं।

ऋतु में)। व्यूह सवृन्त, काण्डज, घना १२"×२ बड़ा एवं पुष्प २-३ एक साथ उन्नत स्थानों में निकलते हैं। जमीन के नीचे दिगन्तसम फैला हुआ अन्तर्भूमिशायी





नागदमन मुहुरसि

स्वरूप—बगीचों व गमलों में सजाया हुआ मिलता है। पूर्वी भारत में पाया जाता है।



लाखन



चिन्हारू

काण्ड होता है जिससे जगह-जगह पत्रगुच्छ ऊपर निकलते रहते हैं।

पर्याय—सं. चोरस्नायु, मधुरसा, गोकर्णी, आदि। व., म.—गोराचक्र मूर्वा घणरूप, उ. प्र.—नागदमन, ले० Sanseviern Roxburghiana Schult

गुण-उपयोग—बच्चों की पुरानी खासी और कृमि मे इसके रस का प्रयोग मधु के साथ किया जाता है, कफ को पतला करके निकाल देने में यह अच्छा कार्य करता है। यह स्वादिष्ट, तिक्तरस युक्त, सारक, गुरु, पित्तरक्त, प्रमेह, त्रिदोष, तृषा, हृदरोग, कण्डू (खुजली), कुष्ठ तथा ज्वर को दूर करने वाली मानी गयी है।

लोग घरो में गमलो मे सजाकर इसलिए रखते है कि यह जहा लगी रहती है वहाँ सर्प नही आते है, उत्तर प्रदेश मे इसका नाम नागदमन भी इसलिए सार्थक है तथा आम जनता इसके चिकित्सीय गुणो से विज्ञन होते हुये भी सर्प से सुरक्षार्थ इसको वगीचो मे गमलो मे सजा वट के लिए भी सजाकर रखती है।

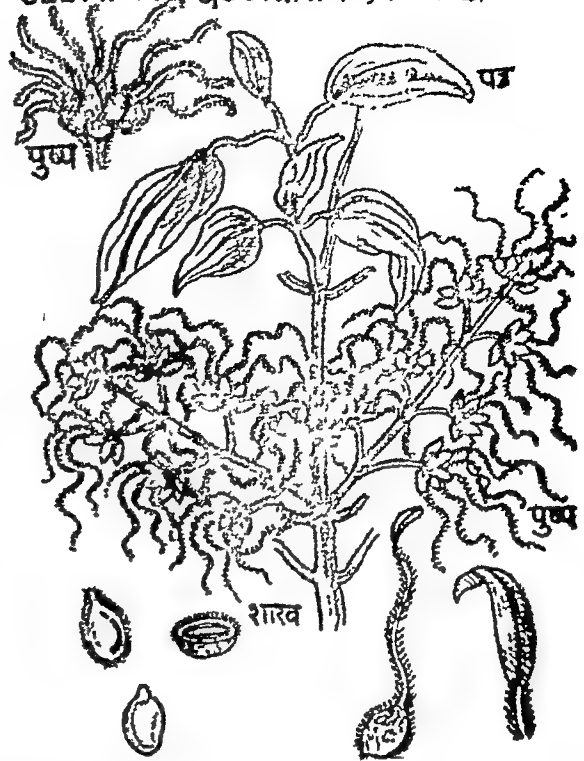
श्योनाक वए अरलु—पृष्ठ ३७६ का शेषाश

(५) पुनः चि० ६/६५ में कट्वग का प्रयोग क्रिया साधन के लिये लिखा है। यहाँ पर अतिसार चिकित्सा मे ही इसका पाठ है। अत कट्वग शब्द से अरलु ग्रहण करने का ही विधान वताया है। इस प्रकार वृहद्त्रयी का प्रयोग अरलु, श्योनाक के लिए ही हुआ, यहा सन्देह करने की आवश्यकता नही। ऐसी दशा में ग्राही कर्मनाशन, अतिसारनाशन, दीपन, पाचन के लिए ही प्रयोग किया गया है और निघण्टूक्त अरलुक के गुणों के अनुसार वर्णन मिलता है। ऐसी दशा मे अरलु से पर्वत निम्ब का ग्रहण करने का कोई समाधान नही दिखाई पडता। अत यह विचारणीय है कि अरलुक अकवा से मिलता-जुलता होने के कारण और अरलुक का अर्डुसो और अर्डुसी के शब्द साम्य होने मात्र से ही और एक स्थान पर डल्हण के लिखने से अरलुक को पर्वतनिम्ब मान लेना क्या उचित है, जव अरुणदत्त ने स्वयं कट्वग, अरलुक. लिखा है तो अरलुक को श्योनाक का छोटा भेद मानने मे कोई कठिनाई नही है। अत मेरी सम्मति मे श्योनाक और अरलु एक जातीय ही द्रव्य हैं। इस पर विद्वान चिकित्सक विचार करें। जिसको पर्वत निम्ब कहकर आइलेन्थस एक्सेलसा (Ailenthus Excelsa Roxb)को अरलुक मानना कितना अनुचित है।

ऊपर के प्रयोगो से कट्वग का प्रयोग अरलु के लिए मान कर श्योनाक से पृथक प्रयोग करना और इसको यदि अरलु पर्वत निम्ब के रूप मे मान ले तो सर्वत्र पक्वातिसार के लिए प्रयोग हुआ है। पर्वत निम्ब कैसे मान लिया जाय। इसलिए ऐसा ज्ञात होता है कि अमरसिंह और भाव मिश्र ने श्योनाक के साथ अरलुक का पाठ किया है वह अनुचित है।

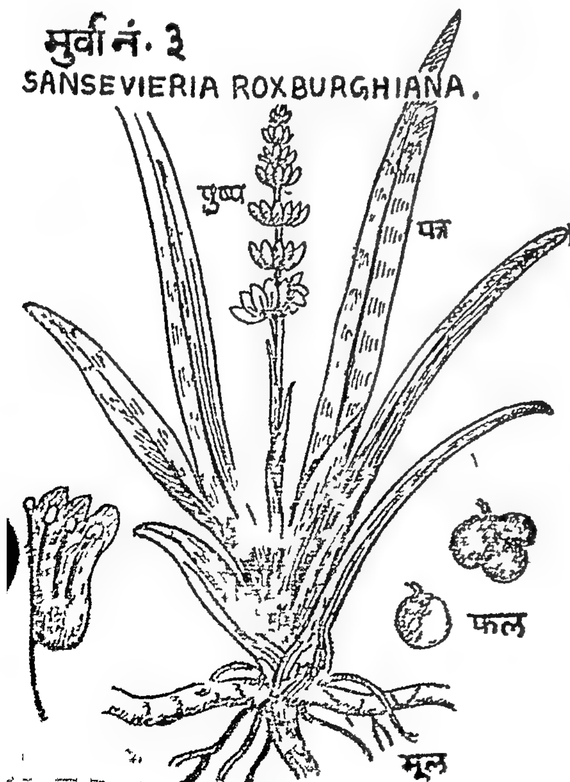
निष्कर्ष—ऊपर के विवेचनों से जितने पर्याय वृक्ष द्रुम के रूप मे अथवा काड, पुष्प, फल के पर्याय श्योनाक और अरलुक के पर्यायों से मेल खाते हैं। विवरण भी तदनुकूल ही है। तब अनुमान के आधार पर अथवा शब्द साम्य के आधार पर स्वय निर्णय ले लेना उचित प्रतीत नही होता। पूरा विवरण अरलुक का श्योनाक की तरह ही है अत. दोनो मे अभेद मालूम होता है।

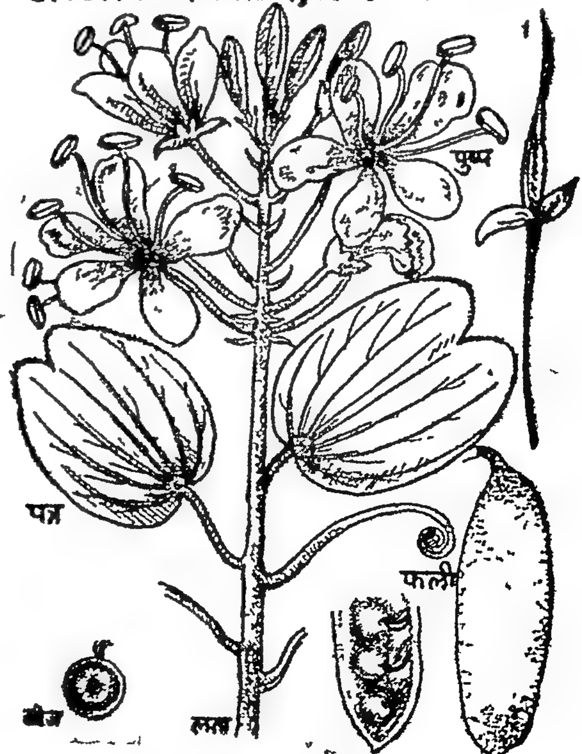




मूर्वा के नाम से ग्रहण किये जाने वाले विभिन्न द्रव्य–विशेष वर्णन

पृष्ठ ३७७ से पृष्ठ ३८६ तक देखे।





मूर्वा ?

यह एक अति संदिग्ध द्रव्य है। भिन्न-भिन्न प्रान्तों के चिकित्सक मूर्वा के नाम से भिन्न-भिन्न द्रव्य ग्रहण करते हैं। इसमें संदिग्धता का आधार मूर्वा के रेशे से मूर्वा के तन्तु से बनने वाली धनुष की डोरी (मौर्वी) का ग्रहण किया जाता है। प्राचीन काल मे मूर्वा के सूत्रो से धनुष की डोरी बनाई जाती थी। अतः जितनी भी लतायें जिनके रेशो से कोई डोरी बनाई जाती है इसके लिए ग्रहण की जाती हैं। मूर्वा के नाम पर ग्रहण की जाने वाली निम्नलिखित लतायें व क्षुप का ग्रहण होता है—

(१) मूर्वा या मरुआवेल मार्सडेनिया टेनासिसमा (Marsdenia Tena Cissima)

(२) मूर्वा या मार्सिडेनिया राइलियाई (Marsdenia Roylei wight) देहरादून की मरुआ वेल।

(३) मूर्वा या मोरमढा (Marsdenia Bamiltonie wight)

(४) मूर्वा या लाखन—ड्रेजिया वोलुवेलिसवेन्थ (Dregea Volubilis wenth)

(५) मूर्वा मेरुआ, आरनेरिया हुक (Merua Arenaria Hook)

(६) मूर्वा, मोरवेल-क्लेमेटिस गौरिआना (Clematis gouriana Roxb)

(७) मूर्वा मोरवेल क्लेमेटिस ट्रैलोबा हाइने (C Triloba Heyne)

(८) मूर्वा—नागदमन सेन्जीवेरिया राक्सवर्गियाना (Sansevieria Roxvuvriana)

(९) मूर्वा कोनेमार्फा मेक्रोफाइला (Conemorpha macrophylla) इतनी लताओं का ग्रहण मूर्वा के लिए होता है। इसके अतिरिक्त—

(१०) मूर्वा मरोडफली हेलिक्टेरिस आइसोरालिन (Helicteres Isoralinn)

(११) मूर्वा-मालभन-वहुहिनिया वाहिली (Bauhinia Vahili)

इनमे प्रत्येक की परीक्षा शास्त्रीय मूर्वा के साथ की जाय तो असली मूर्वा कौन सी है इसका अन्तिम निर्णय किया जा सकता है।

प्रसिद्ध संदिग्ध द्रव्य—

मूर्वा—यह अत्यन्त संदिग्ध द्रव्य है। इसके लिये प्रथम शास्त्रीय आधार उपस्थित करके उसके उदाहरण सामने रखते हैं। मूर्वा के पर्याय ही इसके स्वरूप, जाति, रस, गुण आदि के परिचायक हैं। अत वे विवरण जो पूरे कर सके उसे ही मूर्वा मानना होगा।

पर्याय—

मूर्वा दिव्यलतामिरा मधुरसा देवी त्रिपर्णी लघु।
श्रेणी भिन्नदला मरी मधुमती तिक्ता पृथक् पर्णिका॥
गोकर्णी लघु पर्णिका च दहनी तेजस्विनी मोरटा।
देवश्रेणि मधूलिका मधुदला स्यु पीलुनी रक्तला॥
सुखोसिता स्निग्धपर्णी पीलुपर्णी मधुश्रवा।
ज्वलनी गोपवल्ली चेत्यष्टविंशति संज्ञका॥

ऊपर के २८ पर्यायो से इसका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है जिनका वर्गीकरण निम्न रुप मे करने पर सम्भव है—

(१) जाति—दिव्यलता, गोपवल्ली। इन दोनो के विवरण से सुन्दर स्वरूप वाली लता जाति की वनौषधि है। लता नमनशील क्षुप से लेकर जमीन पर फैलने वाली लता के अर्थ मे होता है। गोपवल्ली—इससे भी वल्ली या लता जाति की यह है। इससे लता जाति की छोटी क्षुद्र लता से अर्थ बनता है।

(२) पत्र—इसके पत्र गोकर्णी अर्थात् पत्र का आकार गोकर्ण की तरह छोटे-छोटे (कर्णी) होना चाहिये—(लघु पर्णिका)। पीलू के पत्रो से मिलते-जुलते होने चाहिये। चिकने पत्र (स्निग्धपर्णी) होना चाहिये। पर्ण क्रम, पृथक पर्णी (सामने-सामने एकान्तरित) होना चाहिये। मधुदला से पत्र मीठे होने चाहिये। तीन पत्र होना (त्रिपर्णी) और पत्र फटे होना चाहिये। पत्र प्रारम्भ मे अग्नि की तरह (ज्वलनी) लाल और परिपक्व होने पर लाल दाग युक्त (रक्तला), दहनी (पूर्ण परिपक्व अग्नि से जले हुए वर्ण की तरह होना चाहिये)।

(३) पुष्प—इसके पुष्पवाचक शब्दो मे देवश्रेणि अर्थात् सुगन्धित पुष्प गुच्छ के रूप मे अधिक मधुयुक्त (मधुलीका) होना चाहिये। पुष्पो से मधु का भाग अधिक निकलना (मधुश्रवा) आवश्यक है।

(४) फल—फल इसके अन्दर चमकदार कच्चे रहने पर हरे, परिपक्व होने जाने पर लाल रंग (ज्वलनी) और पक जाने पर काले वर्ण के (दहनी) और मधुर और तिक्त रस

(५) मूल—इसके मूल मोटे मोरट के तरह होना चाहिये (मोरटा) क्योकि मोरट के वर्णन मे मूल का स्वरूप घन-मूल, दीर्घमूल राजनिघण्टुकार ने लिखा है। अत मोरटा से मोटे मूल वाला होना अभियुक्त है। पूरे आकार के सदर्भ मे देवी तेजस्विनी ये दो पर्याय आते हैं जिनसे स्पष्ट है कि मूर्वा की लता देखने मे सुन्दर देवी की तरह तेजस्वी दिव्य लता की तरह मे होती हैं।

(६) रस—मूर्वा के फल और पत्र, पुष्प मधुर रस वाले तथा मूल तिक्त कषाय होना चाहिए।

ऊपर के पर्यायो से स्पष्ट है कि मूर्वा सुन्दर लता जातीय द्रव्य है जिसके पत्र एकातरित और गोकर्ण की तरह से छोटे तथा पीलू के पत्र के समान पत्र वाले सुन्दर पुष्पो से युक्त, मधुरफलयुक्त लता जाति औषधि है और मूर्वा के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले निम्न द्रव्य हैं। यदि उनमे ये गुण पाये जाँय तो उन्हे मूर्वा मानना होगा। मूर्वा के स्थान पर निम्नलिखित द्रव्य ग्रहण किये जाते हैं—

(१) मोरवेल।

(२) कोविदार सदृश्य (कचनार) युग्म पत्र वाली लता।

(३) धनुष की डोरी बनाने योग "दुधळ" तथा कन्दली सदृश्य छोटे पेड की तरह अघोड़ नाम का।

(४) मूर्वा शब्द से कन्दली सदृश्य स्वल्प विटप अघोड

(५) चोर स्नायु जिससे धनुष की डोरी बनाई जाती है उनका ग्रहण किया जाता है।

इन पांचो के विषय मे थोडा विचार करें तो वस्तु स्थिति का ज्ञान हो जायेगा और भ्रम किस आधार पर फैला यह भी विचार स्पष्ट हो जायगा। मूर्वा की व्युत्पत्ति (मूर्व+अच+टाप)=मूर्वा। अर्थात् मूर्वति इति मूर्वा स्ना नियोग धनुर्गुणोपयुक्ता मुर्वा इति ख्याता अर्थात् ऐसी लता जिसके रेशे मे या तन्तु से धनुष की डोरी प्रत्यञ्चा बनती हो उसे मूर्वा कहते है। सामान्य अर्थ मे बाँधने वाली डोरी से अर्थ औषधि के अर्थ मे ऐसी लता जिसके त्वचा के तन्तुओ से डोरी बनती हो। यहाँ से ही भ्रम आरम्भ हुआ और ऐसी लता या औषधि खोजी जाने लगी जिसकी छाल से डोरी बनती हो।

टीकाकारो ने इस अर्थ पर ही ध्यान दिया और मूर्वा के आकार-प्रकार जातीयतादि को भुलाकर कल्पना करना प्रारम्भ कर दिया।

टीकाकारो की कल्पना के उडान नीचे दर्शाते है—

डल्हण को देखिये चार स्थानो पर चार तरह का वर्णन किया, चार द्रव्यो के लिए किया है।

(१) मूर्वा चोर स्नायु यथा पूर्व देशे गुणान् कुर्वन्ति धनुषः। सुश्रुत सू. स्थान २५-२१ श्लोक डल्हण ने लिखा है। इससे स्पष्ट मे चोर स्नायु के विषय मे पूर्व देश मे रस्सी बनाई जाने वाली कोई चोर स्नायु नाम की लता है ज्ञात होता है।

(२) अन्ये कोविदार सदृशी युग्मपत्राम् लता विशेषा मूर्वामाचक्षते। सु० सू० स्थान २५-२१ अर्थात् कुछ लोग मूर्वा से कचनार की तरह दो पत्र वाली लता को मूर्वा मानते हैं।

(३) मूर्वा धनुर्गुणोपयोग्य दुधळ इतिलोके सु सु.स्थान ३८/६ अर्थात् धनुष की डोरी बनाने योग्य रेसे वाली दुधळ नाम की औषधि।

(४) मूर्वा कन्दली सदृश. स्वल्प विटप हवोडइतिलोके सु. सु स्थान ३९-८

डल्हण मूर्वा के विषय में स्वय कुछ नही जानते। सुनी हुई बात को अपनी टीकाओ मे कर लेते हैं। इन पर आगे विवेचन करेंगे—

१—चोर स्नायु क्या है—

पूर्व देश की प्रसिद्ध बगाली पण्डितो द्वारा घन सपाताति वर्ग की औषधि नागदमन (सजिवीरा जीरेनिका विल्ड तथा सजीवीरा राक्सवर्गनिआना) है जो एक मासल क्षुप है। जिसकी ऊचाई १२ से १८ इन्च, चौडाई एक से सवा इन्च, नये पत्र ५ से ८ इन्च लम्बे, पक्व पत्र ऊपर कोमल नीचे खुरदरे एक से दो फीट लम्बे होते हैं। पत्र का आकार तलवार की तरह होता है और पत्राग्र नोकदार होते हैं। बीच से एक पुष्प दण्ड १२ से १८ इच लम्बा होता है। इसके पुष्प गुच्छो मे लगते हैं जिनका वर्ण विव पीत वर्ण होता है। फल गोलाकार नीम फल की तरह पीतवर्ण होते हैं।

फल—डिम्बाकृति श्वेत वर्ण होते हैं।

प्राप्तिस्थान—सर्वत्र गीले आर्द्र स्थान मे होते हैं और एक मूल लगा देने पर उसमे बहुत से पत्ते निकल आते हैं। इसके पत्तो को कूटकर रेशे निकाल कर रस्सी बनाई जाती है। यही चोर स्नायु है। इससे रस्सी-धनुष की डोरी बन जाती है।

निर्णय—इसके पत्र मधुर रस वाले नही होते, यह पृथक्पर्णी मधुरसा न होने से मान्य नही है। केवल डोरी बनाने के स्थान पर इसका ग्रहण संभव नहीं है। यह लता भी नही है। इसके मूल मोरट के तरह दृढ मूल नही होते। पुष्प पर भ्रमर अधिक नहीं आते। अतः उस चोरस्नायु-नागदमन को मूर्वा मानना ठीक नही होता।

पत्र—पीलुपर्णी, त्रिपर्णी, पृथक्पर्णी (Alternate leaves) नही है अत केवल डोरी बन जाने से इसे मूर्वा मानना संभव नही है।

मालकन (Bauhinia Vahlii)—यह एक विशाल लता है। देहरादून, विंध्य, नैनीताल के पर्वतो पर मिलती है यह लता बहुत मोटी हो जाती है और पेड को आवेष्ठित करके उसके शिखर पर चढ़ जाती है। इसे भी मूर्वा कहा जाय तो शास्त्रीय मूर्वा के लक्षण इसमें होना चाहिए—विवरण देखिए—

मालकन	शास्त्रीय
१. पत्र-युग्मपत्रक (कचनार सदृश)	१. गोकर्णी, पीलुपर्णी, पृथक पर्णी।
२. पुष्प-वृक्षो के शिखर पर पुष्प लगते है। मनोरम होते हैं।	२. मधुलिका, मधुश्रवा
३. फल—१० से १२ इन्च लबे, २॥ इन्च चौड़े, बीज बड़े सेम की तरह।	३. लाल, काले मधुरतिक्त
४. मूल—बहुत दूर तक फैलने वाले वायव्य मूल (Airy Root) व भूमिगत।	४. घनमूल—मोरट की तरह
५. रस—पत्र-कषाय, बीज-मधुर, मूलत्वक-कषाय, ईषतिक्त।	५. मधुर—बीज, मूलत्वक—तिक्त ईषत कषाय।

इसके त्वक के रेशे से डोरी बनती है। इसलिये इसे माना जाय समझ में नही आता। जब पत्र, पुष्प, बीज, मूल, फल मे समता नही है। पत्र—पीलुपर्णी, पृथक पर्णी, त्रिपर्णी नही है कैसे इसे माना जाय।

मरोड़फली (Isora) (Helecteris Isora linn)

बहुत से लोग इसे मूर्वा के स्थान पर प्रयोग करते है। अतः इसका विवरण देकर विचार करें।

नाम—स. आवर्तनी, आवर्तफला। हि० मरोडफली, मुर्रा, मुरेर मुरेरुआ। ब. आतमोडा। अ—ईस्ट इण्डियन स्क्रू ट्री, लै.-हेलेक्टेरिज आईसोरा लिन (Helecteris Isora)

मरोडफली—यह गुल्म जातीय छोटे वृक्ष होते हैं। शाखायें पतली व फैली हुई है। त्वचा मटमैली रेशेदार होती है। पत्र इसके एकान्तर होते है और गोकर्ण की आकृति से मिलती-जुलती होती है। पृष्ठ-खुरदरा, रोमश, अधः पृष्ठ सूक्ष्म मृदु रोमावृत मध्य सिरा से दोनो ओर सम्पूर्ण ६॥ सेमी० से १५ सेमी० लम्बी, २-४ इन्च चौडी, गोलाकार कभी-कभी खण्डयुक्त, आधार की तरफ गोल और अग्र भाग नोकीला होता है। पत्रधार—दतुर अनियमित पत्रवृन्त १ इन्च लम्बे होते हैं।

पुष्प १-२ इन्च लम्बे त्रिपत्रक युक्त होते हैं। पत्र कोण मे २-२, ४-४ एक साथ होते हैं। पत्रदल पुष्प मे ५ होते है इनका वर्ण लाल होता है। पुंकेशर संख्या १० तथा छोटे ५ पुंकेशर होते हैं। डिम्ब पत्रकोण पर स्थित होते हैं। फलियां ११-२ इन्च लम्बी ऐठी हुई पत्रदार होती है। इनके गुच्छे लगते हैं। फल मूल व त्वक का व्यवहार औषधार्थ होता है। त्वचा जालीदार बला की तरह होती है। मृदु रेशे होते है जो बहुत मुलायम होते है। चरवाहे इसकी रस्सी बनाते हैं। इसकी तुलना करें—

मूर्वा असली	मरोडफली
पत्र—गोकर्णी, त्रिपर्णी, पीलुपर्णी, पृथक पर्णी	गोकर्णी, मधुपर्णी, पृथक पर्णी
पुष्प—मधुश्रवा, मधूलिका	मधुश्रवा, मधूलिका गुच्छो में लगते हैं।
फल—हरित पक्वाभ, लाल। पक्व कृष्ण।	हरिताभ कच्चे, प्रौढ लाल, परिपक्वा कृष्ण मधुर होते है।
मूल—मोरटाकार, मोटे गहरे।	मोरट की तरह मोटे घनमूल
रस—मधुर, मूलत्वक-तिक्त कषाय।	मूलत्वक मधुर कषाय तिक्त।

(शेष पृष्ठ ३८९ पर)

पृश्निपर्णी

श्री सीताराम त्रिपाठी
बी ए एम एस
वाराणसी

इतिहास- -पृश्निपर्णी का इतिहास वैदिक काल से ही मिलता है ।वेदो मे इसके सम्बन्ध के कई मन्त्र दृष्टिगोचर होते है। अथर्व वेद, ऋग्वेद मे इसके अनेको मन्त्र हैं। विशेपकर अथर्ववेद के ८/७/१ पर कई मन्त्र इस विषय के हैं और इसके विशेष गुणो मे कण्व जम्भनी तथा दुर्नाम नाशनी सहस्वती और सहमाना नाम दिया है। शतपथ ब्राह्मण मे भी पृश्निपर्णी का वर्णन १३/८/१/१६ पर मिलता है। अथर्ववेद के काण्ड २/२५ सूत्र मन्त्र १-५ मे इसका वर्णन है। यथा—

शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः।
उग्रा हि कण्व जम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम् ॥
सहमानेय प्रथमा पृश्निपर्ण्यजायत।
तयाहं दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव ॥
अरायमसृक् पावानं यश्च स्फातिं जिहीर्षति।
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ॥
गिरिमेना आ वेशय कण्वाञ्जीवित योपनान्।
तांस्त्वं देवि पृश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि ॥
पराच एनान् प्रणुद कण्वाञ्जीवितयोपनान्।
तमांसि यत्र गच्छन्ति तत् क्रव्यादो अजीगमम् ॥

—मन्त्र अथर्व २/२५

तात्पर्य यह है कि यह औषधि उग्रवीर्य है, कृमिजन्य रोगो को नाश करती है। विशेपकर दुर्नाम, गर्भाद और क्रव्याद कृमियो पर अपना प्रभाव डालती है।

संहिता ग्रन्थो मे पृश्निपर्णी का स्थान बहुत उच्चतम है। दशमूल के घटक द्रव्यो मे इसका उच्च स्थान है।

चरक ने इसे पृश्नि नाम से चि १७/११ पर पृश्नि-पर्णिका नाम से—

पृश्निपर्णी नाम से क ८/१०२ पर, शा १०/६१, चि ५/१०, उ ४०/६१ मे, ४०/११४, ४२/११२ मे पाठ किया है।

सुश्रुत ने पृश्निपर्णी का वर्णन निम्न उद्धरणों पर किया है यथा—

शा. २/५६, चि. १/२८, २/१६, २/१८, ६/१३, ६/८६, उत्तर तन्त्र २/४६, ३/२०, ३/१०२, और पृथक्-पर्णी—सू. १५/३५, चि. १/३२, पर कलशी नाम से वर्णन किया है। सू. २६/३१ गुहा नाम से, सू. २०/३७ धावनी नाम से पाठ किया है।

इसी प्रकार वाग्भट्ट ने स २६/३१ अतिगुहा (कारके), सू १५/३५, चि १/३२ कलशी और इ. २६/२७ छत्रा, चि. ५१३/, पर्धिनी चतस्र, ३/२०, ३/१०२ पृथक पर्णी, शा २/५६, चि १/२८, २/१६, २/१८, ६/१३, ६/८६, इ. २/३६ पृश्निपर्णी, इतने पर पृश्नपर्णी का वर्णन मिलता है।

निघण्टु, धन्वन्तरि नि, राज नि, भावप्रकाश नि., कैयदेव नि., मदनपाल नि इत्यादि सभी निघण्टुओ में बहुत ही स्पष्ट वर्णन मिलता है। इस प्रकार संहिता ग्रन्थ, संग्रह ग्रन्थ इत्यादि मे मिलता है।

दो प्रकार के पृश्निपर्णी का वर्णन किया गया है। और धन्वन्तरि निघण्टुकार ने पृश्निपर्णी विशेष दीर्घ पत्र वाली का वर्णन किया है। इस प्रकार यह आयुर्वेद चिकित्सा की बहुत प्रसिद्ध द्रव्य है।

भिन्न-भिन्न भाषाओ मे पृश्निपर्णी के नाम —

सं नाम —

पृश्णि पर्णी पृथक पर्णी कलशी धावनी गुहा।
श्रृगाल भिन्नाऽम्रिबला पर्णी क्रोष्टुक पुच्छिका ॥

पृश्णि पर्णी विशेष —

सर्वानुकारिणी तन्वी दीर्घपर्णी च पर्णिका।
कुमुदाऽतिगुहाचैव विघ्नघ्नी सैव किर्तिता ॥

(धन्वन्तरि निघण्टु ६०-६१)

"स्यात् पृश्नि पर्णी कलशी महागुहा ॥
श्रृगाल विन्ना धमनी च मेखला।

लागुलिका क्रोष्टुक पुच्छिका गुहा ।
शृगालिका सैव च सिंह पुच्छिका ॥
पृथक पर्णी दीर्घ पर्णी दीर्घा क्रोष्टुक मेखला ।
चित्र पर्ण्यूंय चित्रा च श्वपुच्छाऽष्टौ दशाह्वया ॥
(राजनिघण्टु गुडूच्यादि वर्ग ११७)

पृश्नि-पर्णी पृथक पर्णी चित्रपर्ण्यूंङघ्रिपर्णिका ।
क्रोष्टु विन्ना सिंहपुच्छी कलशी धावनी गुहा ॥
भावप्रकाश नि० गुडूच्यादि वर्ग

भाषा भेद से नाम—

हि०—पिठवन, पिठौनी, पृश्नि पर्णी, पिथिवन । बं०—चाकुले, चाकुलिया । म० पिठवण । गु० नाटानोल । क० तोरेमोड । ते० कोला कुपन्ना । लै०- डेसमोडियम ग्रेजिटिकम् (Desmodium gangetecum)

ऊपर के पर्यायो से पृश्निपर्णी के स्वरूप को स्पष्ट किया जा सकता है ।

जाति—यह क्षुप जाति की है । और १२ फीट तक ऊची झाडीदार होती है । इसलिये 'गुहा' कलशी नाम लिया है -

मूल - यह अपने मूल के आधार पर खडी होती है । इसलिये इसे अङघ्रिबला कहते हैं ।

पत्र—पृथक् पर्णी अर्थात् पत्र आतरिक होते हैं । दीर्घ पर्णी, दीर्घा–पत्र बडे होते है और पत्रो के ऊपर चमकदार धारिया होती हैं और चित्र विचित्र होते हैं इसलिये चित्रपर्णी उपचित्रा नाम दिया है । पत्र काफी चौडे होते है (पृश्निपर्णी)

पुष्प – क्रोष्टुक पुच्छिका, कलशी, शृगाल विन्ना लागुलिका सिंहपुच्छिका अर्थात इसके पुष्प और फल शाखाग्र पर पुष्प दण्ड पर गुच्छ लगते हे और पुष्पित हो जाने पर उनका आकार शृगाल के पुच्छ या सिंह पुच्छ को तरह दो प्रकार के लगते हैं ।

राजनिघण्टुकार ने एक विशेष प्रकार की पृश्निपर्णी का वर्णन किया है । उसके अनुसार एक पतली मूल से एक पतला दण्ड निकलता है जिस पर छोटे-छोटे पत्र लम्बे आकृति के दिखाई पडते है । पत्ते बडे किन्तु कमल के पत्तो की तरह गोल होते हैं । शेष विवरण समान ही होते हैं ।

कैयदेव निघटु ने इनका परिचय निम्न रूप मे किया है—

क्षुपा सुसिम्बा शतपत्रा वर्धान्ते च भवेतुसा ।
कटुस्वाद्वणु बीजा स्याल्लोके पीठवनी मता ॥

इनक पर्यायो की शाब्दिक निरुक्ति निम्न रूप मे हो सकती है—

पृश्निका—पृश्नौजलकायति शोभते इति पृश्निका-जलीय आद्र प्रदेश मे उगने वाली वनस्पति अथवा पृश्नि अल्प काय बिभ्रति इति पृश्निका अर्थात् छोटे आकार वाली ।

पृश्निपर्णी—पृश्नि स्वल्प पर्ण यस्या जिसके पत्र थोडे होते हैं । पृश्नि चित्र गतानीव अस्या । अर्थात् इसके पत्र चित्र विचित्र होते हैं ।

सिंह पुच्छी—सिंह पुच्छाकार पुष्पत्वात् । सिंह पुच्छाकृति पुष्पमजरी अस्या इति । इसकी पुष्पमजरी सिंह पुच्छ सदृश होती है ।

कलशि—कल अजीर्ण श्यति इति । शोतनुकरणे । यह अजीर्ण का नाश करती है ।

धावनी धावति बाहुलकत्वात् । धावनि प्रसरति इति धावनी । यह खूब प्रसरित होती हैं ।

गुहा—गूहति "गुहू सवरणे' गूहति रस इति गुहा । यह अपने रस को गुप्त रखती है ।

क्रोष्टुविन्ना—क्रोष्टुमि बिना विचारिता एव । क्रोष्टुक पुच्छत्वात् । इसकी पुष्पमजरी शृगाल पुच्छ सदृश होती है ।

ऊपर की व्युत्पत्ति से पता चलता है कि पृश्निपर्णी एक क्षुप जातीय पौधा है । इसकी शाखायें और पत्तिया भी कम होती हैं । पुष्प एक पुष्प दण्ड पर होता है जिसमे बहुत से छोटे-छोटे पुष्प होते है । इसीको स्पष्ट रूप मे आधुनिक विचारो को लेते हुए निम्न रूप से विवरण हो सकता है ।

विवरण—

पृश्निपर्णी वर्षा ऋतु मे होने वाली वनौषधि है । इसकी ऊचाई अधिक से अधिक ५ फीट तक होती है । इसकी शाखायें भूमि पर फैली हुई उन्नताग होती है । पत्र एकान्तर पृथकपर्णी ६ इन्च से १० इन्च तक लम्बी और २ । से ४ इन्च तक चौडी होती है । इसका पत्र वृन्त पतला उर्ध्व रेखायुक्त सूक्ष्म और रोमश होना है । पत्र के बीच मे पीताभ श्वेत अथवा हल्के श्वेत वर्ण के चमकदार पट्टिया होती हैं । पत्र वृन्त पर अभिमुख २ पत्र होते हैं । परिपुष्ट क्षुपो मे कभी एकत्रित वर्ण भी पाया जाता है ।

ये युगल पत्र प्रत्येक ३ से ६ इन्च लम्बे और १ इन्च चौड़े होते हैं। इनका उर्ध्व पृष्ठ रक्ताभ हरित और अध. पृष्ठ हल्के हरे रंग का होता है।

शाखाओ के अग्र भाग में १ से १॥ फीट लम्बी और आधी से एक इन्च व्यास की मजरी लगती है। जिस पर गहरे जामुनी रग के पुष्प लगते हैं। शिम्बि श्वेताग ३ से ६ सधियुक्त होती है। यह विशेषकर आर्द्र स्थानों मे नदी के किनारे पर्वतो या उनकी अधित्यका मे होते है।

गुण—

पृश्निपर्णी रसे स्वादु लघूष्णाऽस्त्रत्रिदोषजित।
कासश्वास प्रशमनो ज्वर तृड्दाह नाशिनी॥

यह रसमे मधुर तथा वीर्य उष्ण गुण लघु तथा विपाक मधुर होते है। (ध० नि०) रक्त तथा त्रिदोष का शमन करता है। कास, श्वास को दूर करता है, तथा ज्वर प्यास जलन को शान्त करता है।

पृश्निपर्णीकटूष्णाऽम्ला तिक्तातिसार कासजित्।
वात रोग ज्वरोन्माद व्रण दाह विनाशिनी॥ (रा.नि)

राजनिघण्टुकार ने इसे रस मे तिक्त, कटु बताया है। उष्ण, अम्ल, तिक्त होता है और अतिसार, कास,वातरोग, ज्वर, उन्माद, व्रण तथा दाह को शान्त करता है।

पृश्निपर्णी त्रिदोषघ्नी वृष्योष्णा मधुरा सरा।
हन्ति दाह ज्वर श्वास रक्तातिसार तृड्वमि॥

भाव प्रकाश ने रस मे मधुर, वृष्य (भा प्र. नि) उष्ण तथा सर बताया है। यह वात, पित्त, कफज्वर, दाह, श्वास रोग, रक्तातिसार, प्यास तथा वमन रोग को दूर करता है।

पृश्निपर्णी सग्राहक वातहर दीपनीय वृष्याणाम्।

चरकाचार्य ने इसे सग्राहक (चरक) वात को दूर करने वाला दीपन तथा वृष्य मे श्रेष्ठ बताया है।

इसके मूल पचाग का प्रयोग औषधार्थ किया जाता है। पचाग मात्रा १/२-१ तोला।

सदिग्धता निवारण—

पृश्निपर्णी के नाम पर जिन-जिन द्रव्यों का ग्रहण होता है, वह निम्न हैं यथा—चौटे पत्र वाली ६ इन्च से १० इन्च लम्बी और २ से ४ इन्च चौड़ी होती है, और इसके अन्त मे जो पुष्प दण्ड होता है उसमें से मञ्जरी निकल कर लटक जाती है और गुच्छे मे लटक करके पुष्प देती है।

(१) शालिपर्णी–लम्बे पत्ते वाली शालिपर्णी का प्रयोग होता है। लैं० नाम—यूरेरिया पिक्टा (Ureria Picta).

(२) यूरेरिया लेगोपोडिस (Uraria Lagopoides)

(३) यूरेरिया हेमासा (Urarla Hamasa)

(४) गुजराती-समेरवो व नान्हो समेरवो।

(५) ट्रावनकोर कोचीन की "फार्माकोग्नोसि ऑफ आयुर्वेदिक ड्रग्स" मे पृश्निपर्णी को "डिस्मोडियम गन्गेटिकम डिसी" कहा गया है। ऐसी दशा मे यह निर्णय करना उचित प्रतीत होता है कि असली पृश्निपर्णी क्या है। इसके लिए शास्त्रीय आधार के निघण्टु पर इनके विवरण को तुलनात्मक विचार रखकर अध्ययन किया गया।

पृश्नि पर्णी	शालिपर्णी
मूलम्—	मूल—
अङ्घ्रि पर्णी	दीर्घाऽङ्घ्रि-दीर्घ मूल वाली
अङ्घ्रि वला*—	
पत्र—	पत्र—
दीर्घ पत्री	शालि पर्णी
चित्र पर्णी[x]	त्रिपर्णी❀
पृश्नि पर्णी●	अ शुमती
उपचित्रा	शालि★
पर्णी	व्रीहिपर्णिका } —उपर्युक्त
पर्णिका	शालिदला } —उपर्युक्त

* अपने मूल पर टिकने वाली तथा मूल के पास से पत्र निकलने वाली

x चित्र की तरह होने से चित्र पर्णी

● बड़े पत्ते वाली, पृष्ठ की तरह चौड़े पत्तो वाली

❀ एक पत्रदण्ड पर तीन पत्रो वाली

★ (अर्थात धान के पत्तो की तरह लम्बे पतली पत्रो वाली)

पुष्प—
क्रोष्टुक पुच्छिका
लाङ्गलिका
सिंह पुच्छी
शृंगाल विन्ना

पुष्प—
पुष्प का कोई वर्णन स्पष्ट नही है।

इन ऊपर के पर्यायो में दो पर्याय ऐसे हैं जो इसके आकार प्रकार को स्पष्ट करते हैं व सिंह पुच्छी,क्रोष्टुक पुच्छिका, लाङ्गलिका-पश्वपुच्छी, कलशी पुष्प का आकार इमसे स्पष्ट हो जाता है जिसमे पुष्प दल मे से बहुत से पुष्प गुच्छो का समूह मिल करके सिंह पुच्छ-या सियार पुच्छ अथवा पुष्प की आकृति को बनाता है। दीर्घ पर्णी, पृथक पर्णी,दीर्घा, चित्रपर्णी-उपचित्रा यह पत्र का आकार बतलाता है जिसमें पत्र बडा चौडा और विचित्र होना चाहिये। वह शालिदला बृहीदला शालिपर्णी-दीर्घ पत्रिका ही होना चाहिये।

गुणो मे भी थोडा सा अन्तर है। यथा—

शालिपर्णी	पृश्निपर्णी
रसे—तिक्ता	रसे—स्वादु
गुण—गुरु उष्णा	गुण—लघु—उष्णा। (कटु—अम्ला) (रा० नि०)
दोप—वात दोषनुत्	दोप—त्रिदोपजित्

इन शास्त्रीय विचारो के अतिरिक्त यदि हम प्रचलित विचारो को सग्रह करें तो स्पष्ट पता चलेगा कि यह विचार व्यक्तिगत हैं- शास्त्रीय नहीं।

नै० नाम—जो Urarıa pıcta पृश्निपर्णी के लिए प्रसिद्ध है वह चित्रपर्णी से मिलता-जुलता है। गोल पत्ते वाली जिस पर चमकदार चित्र होते है उसको ही इसके लिए ग्रहण करना चाहिए।

निराकरण १—शालिपर्णी जो धान के पत्तो की तरह लम्बी और पतली होती है। उपर्युक्त शास्त्रो से मेल नही खाती अस्तु उसके स्थान पर शालिपर्णी का ग्रहण करना उचित नहीं है।

२—Urarıa Lagopoıdıs—यह भी इससे मेल नही खाती किन्तु गुण मे सामान्य होने के कारण प्रतिनिधि स्वरूप आ सकती है।

३—गुजराती समेरवो—यह घोडो को खाने की घास है, जिसे घोडा समेरवो भी कहते है। इसमे केवल हलका कषाय रस रहता है। और यह भी शालिदला का अनुकरण कर सकती है। यह दीर्घपत्रा नहीं है। अत इसका भी ग्रहण नही हो सकता।

अत: आधुनिक वनस्पति नाम Desmodıan Gangetıcum, (डिस्मोडियम गन्जेटिकम) को पृश्निपर्णी मानना उचित होगा और Urarıa Pıcta को शालिपर्णी मानना चाहिये। भ्रम का कारण यह है कि लम्बे पत्र वाली भी चित्रित होती है, और गोल पत्र वाली भी चित्रित होती है। इसलिए इसमे सदेह उत्पन्न हो जाता है।

[शेषांश पृष्ठ ३८१ का]

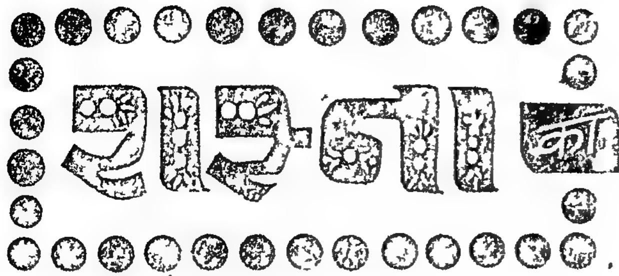
नोट—लता न होकर, लता वत् नम्र, मनोहर पुष्प काल मे सिन्दूरवत्, केवल यह पीलुपर्णी नही है शेष सब लक्षण समान है। रेशे इसके मृदु व रज्जू के काम आते हैं।

मूर्वा (Marsıdenıa Tenacıssıma w-s A)

यह दृढ लता है जो अर्ककुल की है। यह मोटी दृढ काण्ड वाली, क्षीरी, क्षुप स्वभावी, चक्रारोही लता है। इनकी शाखायें या नई डाली मृदु रोमश होते हैं। काण्ड त्वक धूसर, जालीदार, फटी हुई होती है। पत्र ४-६ इन्च लम्बे ३-४ चौडे प्रारम्भ में वृत्ताकार धीरे-धीरे पतली लम्बा तीक्ष्णाक होता है। स्पर्श में चिक्कण, पत्रवृन्त २-४ इन्च लम्बे होते हैं।

पुष्प—छोटे-छोटे पीताभ हरित वर्ण के अरुचिकरगन्धयुक्त होते हैं जो गुच्छो मे (Corymbosely branched cymes) निकलते है। पुष्पागम गर्मी मे, फलागम जाडो मे होता हैं।

फलियाँ—४—६ इन्च लम्बी व्यास मे १-२ इन्च, रोमश १/२—१ इन्च लम्बे होते हैं। बीज—आयताकार लट्वाकार (Ovate oblong) होते है। नवीन शाखाओ की त्वचा मे रेशम की तरह दृढ सूत्र होते है। मछली मारने के जाल व धनुष की डोरी बनती हैं।



शास्त्रीय परिचय

प्रकृतिवाचक—रम्या,- श्रेयसी, =जो देखने मे रम्य सुन्दर हो और एक साथ एक स्थान पर खूब उगती हो गुण में श्रेयसी हो ।

अतिरसन—जिसके पत्र मे रस हो, अतिरसा =अधिक रस जिसके पत्र, रसना के आकार के हो । (रसना) एला पर्णी-सुरसा, सुरसा—तुलसी की तरह सुगन्धित व रस सहित हो । रसाढ्या, रसवाली । रस्या रसेसाधु-इति रस्या,-अच्छे रस वाली हो ।

मूल—सुगन्धि मूला, मूल सुगन्धित हो

रास्ना—रस्यते आस्वाद्यते रोगान्-इति रास्ना । सुगन्धा स्थान वाचक, सुरहा, सुष्ठुयहति प्राजोति सरलता से मिलने वाली अर्थात् सब भूमि मे होने वाली ।

इतने पर्याय—रास्ना के मिलते हैं जिनके आधार पर एक स्वरूप बनाया जा सकता है वह यह है कि रास्ना क्षुप जातीय वनौषधि देखने मे रम्य, सरल, सुन्दर, पत्र रसयुक्त, रसना के आकार के या स्वाद मे उत्तम होने से रसास्वादन योग्य होते हैं और मूल सुगन्धित होती हैं । जहा होती है वहाँ एक साथ बहुत होती है । सुरसा-तुलसी की तरह सम्भवत इसीकी जाति की होनी हो । पत्र के लिये एला पर्णी शब्द भावमिश्र ने दिया है अत एला की पत्र की तरह पत्र हो या पर्ण में एला की गंध आती हो वह रास्ना है । गुण मे तिक्तोष्णा होनी चाहिये । शोथ, कम्प, उदर-शोथ मे लाभप्रद, वातहर होना चाहिये ।

राजनिघण्टु—रास्नायुक्तारसा रम्या श्रेयसी रसना रसा ।
सुगन्धि मूला सुरसा रसाढ्यातिरसा दश ॥
—राज० नि०

भाव- रास्ना युक्तरसा रस्या सुवहा रसना रसा ।
एला पर्णी च सुरसा सुगंधा श्रेयसी तथा ॥
अमर--नाकुलो सुरसा सुगंधागंधनाकुली नकुलेष्ठा
भुजंगाक्षि-छत्राकी, सुवहा— अमरः ।

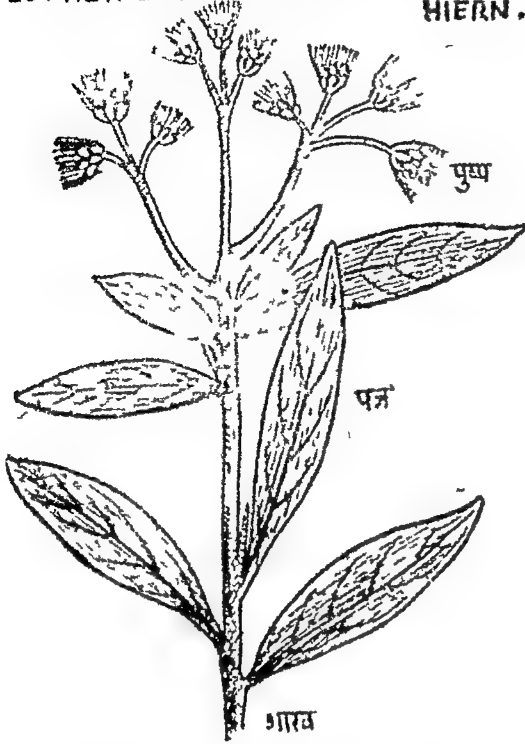
रास्ना के स्थान मे प्रयुक्त होने वाले द्रव्य

१ रायसन—(Pluchea Lanceolata)
२. वादा—(Vauda Roxburghiana)
३ इरानी रास्ना—(Inula Racemosa)
४ कुलिंजन—(Alpinia Galango)
५ मासञ्जक—(Enecolema littorale)
६ ईश्वर मूल—(Aristlolochia Indica)
७. सिन्धी रास्ना—(withania cogulans)
(वन्य अश्वगन्ध)
८ कीटमारी—(Aristoochia Bactola)
९ रासन—भृङ्गराज कुल की सुगन्धित औषधि मूलरास्ना

इनको क्रमश विचारे तो—पता चलेगा कि रास्ना से मिलता जुलता कौन सा द्रव्य हो सकता है ।

१. रायसन—Pluchea Lanceolata

पत्र—ग्रीष्म मे सदा हरित रहने वाला एक मात्र पौधा है । पत्र मे रस होता है । पत्र सुरस युक्त किन्तु अतिरसा नही है । पत्र मैला साथ गन्ध होती । पत्राकार-एलाफलाकार होने से एलापर्णी कह सकते है । मूल-ताजे मूल मे एक सामान्य गन्ध होती है । उखाडकर मूल सुखने पर विशेष सुगन्धित होते है और हवा मे भी गन्ध फैलाते हैं । गन्ध मूल भी कह सकते ह । इस प्रकार सब गुण कुछ-कुछ है । नाम भी रायसन है और वात व्याधि मे ही प्रयोग होता है अत वायसुरई कहते हैं । उत्तर प्रदेश मे खेतो मे फसल कट जाने के बाद अनेको खेतो मे हराभरा स स रूप मे दिखाई पडता हे और इसकी हरियाली देखने मे आती है अत सुरहा और श्रेयसी नाम साथक है । मीलो रेल की लाइन के किनारे खेतो मे फैजाबाद से बनारस तक दिखाई पडते है । पुष्प मे एक भीनी गन्ध होती है ।





२. वांदा (Vanda Roxburghiana)

पेडो पर आश्रित होने वाली एक वनौषधि है जिसके एयरी रूट निकल कर हवा मे लटकते हैं। पत्र लम्बे शालिके पत्राकार ६–१० इन्च लम्बे होते है। इनमे रस होता है किन्तु कुचलने पर भी पत्र से रस नही निकलता, एला पर्णी भी नही है। कविराज लोग इसके तृणवत लम्बे पत्रो को एलापर्णी मानते हैं जो उचित नही। पुष्पित होने पर वहुत सुन्दर पुष्प, दृढ पुष्प पत्र वाले होते हैं गन्ध नाम को होता है। मूल हरित रहने पर ठोस, कठिन, हवा में लटकने वाली होती है परन्तु गन्ध नही होता शुष्क मे गन्ध नाम मात्र भी नही होता। यो तो हरेक मे गन्ध कुछ होती है परन्तु सुगन्धमूला नही है। सुरसा—अतिरसा रस्या नही है। इसके पत्रो मे इतना स्वाद नही होता कि कोई रस ग्रहण करे अत यह अमान्य है। शास्त्रीय रास्ना से नही मिलता है।

३ इरानी रास्ना (Inula Racemosa)

डाइमक-डा० वामन गणेश देशाई ने इसे रास्ना मानने की सम्मति दी है। इसके पत्र एला पर्णी सुरसा-रसा रसना नही है। मूल सुगन्धित होती है और इसका प्रयोग वहा वेदना स्थापना के लिये होता है। इसके इस मात्र गुण से रास्ना के गुण नही आते।

४ कुलिजन (Alpenia Galana)—यह कुलिजन की जाति का पौधा है। पत्ते जयन्ती पर छोटे केले के पत्र की तरह होते हैं। एला के जैसे पत्र होने से एला पर्णी दक्षिण के वैद्य मानते हे। यह सुगधमूला है, मूल मे कुलिजन की तरह तीक्ष्ण गन्ध आती है। स्वाद मे कटु तिक्त है। यह पर्यायो के साथ कुछ ठहरती है किन्तु कुलिजन द्रव्य ही पृथक है। पृथक द्रव्य के अस्तित्व के रहते इसे रास्ना के स्थान पर घसीटना अन्याय है। अत पृथक द्रव्यास्तित्व के कारण इसे सन्दिग्ध रास्ना के वदले लेना ठीक नही है।

५ मामज्जक—यह क्षुप जातीय पौधा है। कटुनाई के नाम से वहुत मिलता है। इसके पत्र, मूल, आकार, प्रकृति, रस सब रास्ना से पृथक हैं अत इसको लेना उचित ही

नही अप्रासंगिक है।

६. ईश्वरमूल–Aristolochea Indica Baclale।

७ कीटनारी–Aristolocha Bactata।

यह रास्ना के कोई गुण नही रखते। वातहर नही है। मूल कदाकार होता है। पत्र लम्बे और स्वाद गंध मे तिक्त होते हैं।

सुगन्ध मूला, रस्या, रसना नही हैं अतः इन्हें ग्रहण करना उचित नही है।

८ गंधनाकुली–नाकुली, भावमिश्र, राजनिघण्टु, धन्वन्तरि निघण्टु मे तीन-तीन स्थान पर पठित है अत. तीनों पृथक-पृथक द्रव्य है। रास्ना के बदले नाकुली गन्ध नाकुली देना नितान्त अनुचित है।

९. सिन्धीरास्ना(Wthania Cogulemce)–यह अश्वगंधा की जाति का वन्य पौधा है इसमें मूल में कोई गंध नहीं होती। अत यह ग्रहण करना मनमानापन है।

१० रासन-मूलरास्ना-गुजरात महाराष्ट्र कीमूलरास्ना सुगन्धा है। मूल तोडने पर गंध आता है। यह भृंगराज कुल की रायसन के आकार से मिलने वाली पत्र रास्ना के पत्र से बडे आकार की रस्या, रसना, रासना अर्थ सार्थक करने वाली सुगन्धमूला रास्ना है। वस्तर मे रासन रायसन के नाम से ही पुकारी जाती है। असली रास्ना है रास्ना के खोज मे लेखक ने कई स्थानो मे जाकर ३२ नमूने सग्रह किया था और श्री रुमोनिया ने लेखक के देख-रेख मे रासना पर निबन्ध लिखा है। पत्रो मे प्रकाशित हुई है—यह प्लुचिया लैंसोलटा की परिवर्तित स्वरूप है। इसमे सब गुण हैं। पत्र वायसुरई के पत्रो से दूने बडे सुगन्धित सदाहरित रहने वाले होते हैं। जामनगर के रिसर्च इन्स्टीट्यूट में कई वर्षो तक लगाकर उत्पादन किया है। यह मूल रास्ना ही गुजरात की मूल रास्ना है। सुगन्वित, सुगन्ध मूला है। सूखने पर भी तोडने पर सुगन्ध आती है।

अत यही वस्तर की भी रासन है। यह गीली भूमि तालाब नालो के पास बहुत होती है इसे मानना मेरी सम्मति है।

टीकाकारो निघण्टुकार व कोषकार—यह रस्सा, सुगन्धा, नाकुली, गंध नाकुली का पाठ अमर सिंह ने एक साथ करके एक झमेला पैदा किया है। राजनिघण्टुकार ने पर्याय लिखने के बाद तीन प्रकार की रास्ना लिखी। १ मूल रास्ना २. तृण रास्ना ३ पत्र रास्ना। तीनो के पर्याय एक से गुण लिखे।

यह क्या सम्भव है। तीनों वे तीन वर्णन देते है। वास्तव में यह प्रसिद्ध है राजनिघण्टु के नाम पर यह कोश भ्रम है। रास्ना एक है। एक थी एक रहेगी, इसी के पत्र मूल व पुष्प सुगन्धित होते हैं।

अत रायसन (Pluchea Lanceolata) वास्तर व गुजरात की मूल-रास्ना एक है और एक ही में सब गुण है यही मान्य होना चाहिए।

विशेष विवरण—रास्ना महा निबन्ध श्री कनोबिया लिखित स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र जामनगर को पूरे विवरण सहित पढ़िये।

पर्पटक

पर्पटक—पर्पटक आयुर्वेदीय जगत का बहुचर्चित द्रव्य है। यद्यपि यह सदिग्ध द्रव्य नहीं है किन्तु विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं के चिकित्सकों ने अपनी-२ इच्छानुकूल द्रव्यों का संग्रह कर एक संदिग्धता उत्पन्न कर दी है। इसके नाम पर कई द्रव्य लिए जाते हैं। यथा—

(१) पर्पट या पित्तपापड़ा (Fumeria Parviflora Lam) ।

(२) सौन पर्पटक (Oldenlandia Harbacea) या पर्पटादि वर्ग का (Oldenlandia Carymbosa linn) ।

नोट—महाराष्ट्र और बंगाल में इसे—

(३) बंगाली पित्तपापड़ा (Rumgia Repens) या (Rangia Parviflora)

अपामार्गादि कुल।

मालावार और केरल में—

(४) पर्पट (Mollugomudicaulis lank)

(५) पर्पट (Polycarpaea Carymbosa)

ऊपर लिखे ये सब द्रव्य पर्पट के स्थान पर व्यवहार किये जाते हैं। अतः विचार करना है कि कौन सा द्रव्य पर्पट के शास्त्रीय गुण-धर्म के अनुसार हो सकता है। इस निमित्त सार्वभौम विधि शास्त्रीय विधि है। जिसके निष्कर्ष पर लक्षण प्रस्तुत करके शुद्धाशुद्ध का निर्णय किया जा सकता है। एतदर्थ चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट व निघण्टुओं में वर्णित भेद, मूल, पुष्प, पत्र, शाखा इत्यादि का वर्णन किया जायेगा।

पर्याय—यथा-धन्वन्तरि निघण्टुकार ने निम्न पर्याय दिया है—

पर्पट स्यात् पर्पटको वरतिक्तः सुतिक्तक।
रजोरेणुश्च पांशुश्च कवचो वर्म कण्टक ॥

राजनिघंटु—

पर्पटश्चरको रेणुः तृष्णारि खरको रज।
शीत शीतप्रियः पांशु कल्पांगी वर्मकंटक ॥
कृश शाख पर्पटक सुतिक्तोरक्त पुष्पकः।
पित्तारि कटु पत्रश्च कवचोऽष्टादशाविध ॥

भावप्रकाश निघंटु

पर्पटोवर तिक्तश्च स्मृतः पर्पटकश्च स।
कथितः पांशु पर्यायः तथा कवच नामक ॥

ऊपर के पर्यायों में पर्पट का कुछ स्वरूप निकल आता है। यथा—

यह क्षुप जातीय पौधा है इसलिए वर्गीकरण करते समय राजनिघटुकार ने पर्पटादि वर्ग में ग्रहण किया है। और उन्होंने लिखा है कि—

नववाण मिता क्षुद्रक्षुपाः प्रोक्ता यथा क्रमात्।

अतः पर्पट छुद्र क्षुप के वर्ग का द्रव्य होना चाहिये।

(१) कल्पाङ्गी—अर्थात् छोटे अङ्ग वाला।

(२) कृश शाख—छोटी-छोटी शाखाओं वाला।

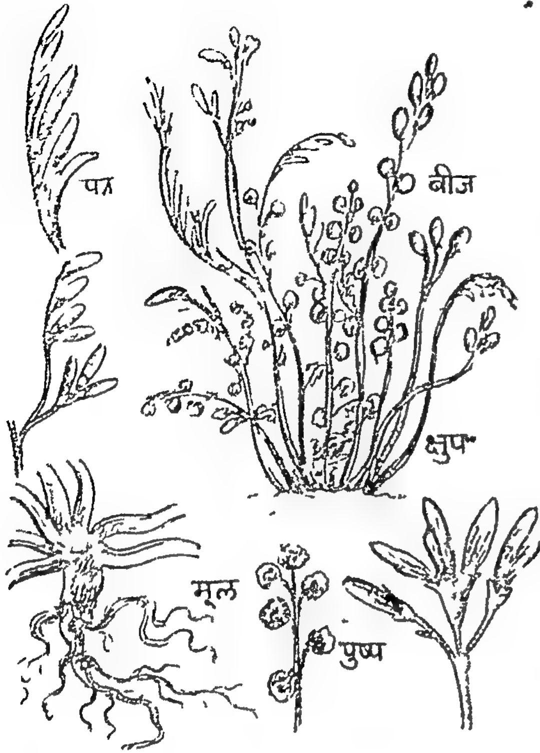
(३) चरक—जमीन पर फैलने वाला।

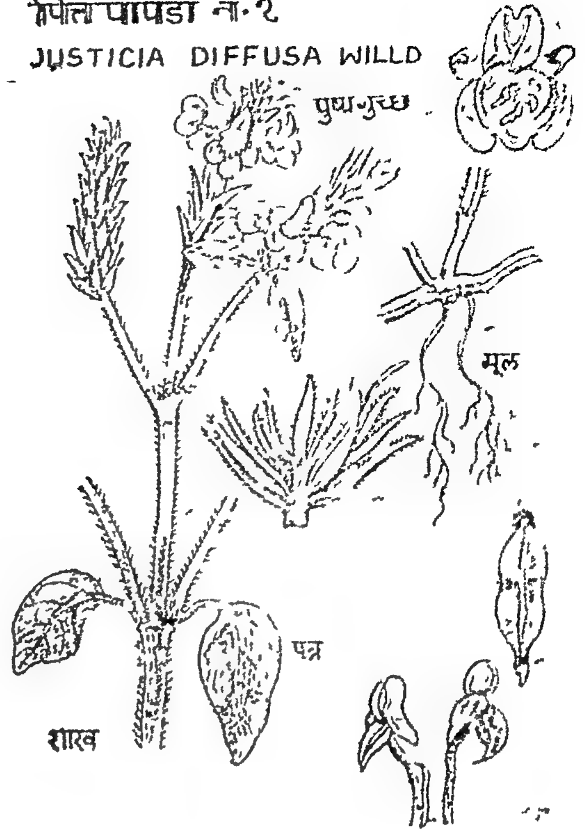
ऋतु—यह शीत ऋतु में होने वाला द्रव्य है। शीत शीतप्रियः।

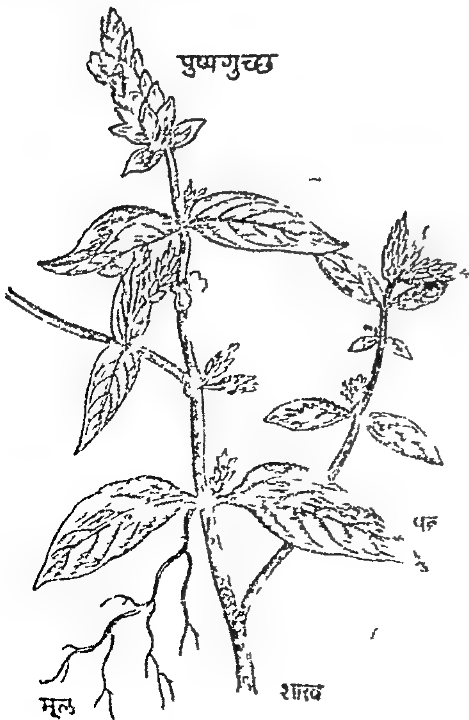
पत्र—कटुपत्रः वरतिक्त सुतिक्त। अर्थात् इसके पत्र बहुत तिक्त रस वाले होते हैं।

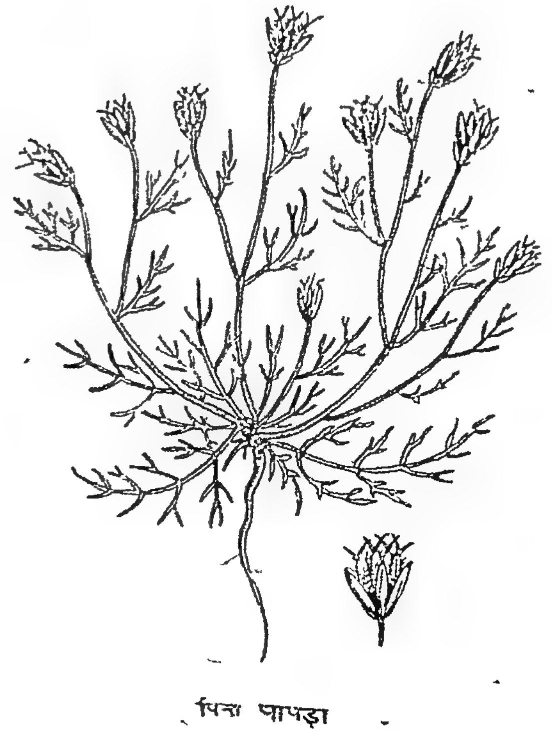
पुष्प—रक्त पुष्पक रज रेणु पांशु कवच। अर्थात् इसके पुष्प लाल वर्ण के होते हैं। इसका बाह्य कोष एक कवच में आवृत्त होता है और इसके पराग कोष में सूक्ष्म रज धूलि की तरह पराग होते हैं। अथवा यह कह सकते हैं कि इसकी उत्पत्ति अच्छी तरह जोते हुए खेतों में जहां कि भूमि मुलायम होती है अथवा रेतीली होती है वहां पर उत्पन्न होता है।

गुण—पित्तारि, तृष्णारि। यह पित्तहर है और तृष्णा शामक है।


पित्त पापडा नं. १
FUMARIA PARVIFLORA LAM
पत्र
बीज
क्षुप
मूल
पुष्प


पित्त पापडा नं. २
JUSTICIA DIFFUSA WILLD
पुष्प-गुच्छ
मूल
पत्र
शाख


पित्त पापडा
RUNGIA REPENS NEES LINN
पुष्पगुच्छ
मूल
शाख


पित्त पापड़ा

चरक संहिता मे पर्पट शब्द से दो स्थानो पर और पर्पटक शब्द से २० स्थानो पर तथा पर्पटकी फल इस पर्याय से एक स्थान पर उल्लेख है।

सुश्रुत मे पर्पट नाम से पांच स्थानो पर और पर्पटक नाम से १० स्थानो पर उल्लेख है। रेणु नाम से ४ स्थानो पर और रेणुक नाम से कल्प स्थान ४/२ पर वर्णन किया है।

इसी प्रकार वाग्भट्ट ने पर्पट नाम से नौ स्थानो पर और पर्पटक नाम से चार स्थानो पर वर्णन किया है।

वृहत्त्रयी मे इन पर्यायो से वर्णन मिलता है और ये सब प्रायः पित्तशमन और ग्राही कर्म के लिए प्रयोग किया गया है।

इनके गुणो का वर्णन निघण्टुओ मे किया गया है। यथा—

पर्पट शीतलास्तिक्त' पित्तश्लेष्म ज्वरापह. ।
रक्त दाहारुचिर्ग्लानिमदभ्रम विनाशन' ।।

ऐसा ही राजनिघटुकार ने भी लिखा है।

भावमिश्र ने —

पर्पटोहन्ति पित्तास्र भ्रमतृष्णाकफज्वरान् ।
सग्राही शीतलास्तिक्तो दाहनुद्वाततोलघुः ।।

अर्थात् पर्पट का रस तिक्त होता है। यह विपाक मे कटु और वीर्य में शीत होता है। यह पित्तदोष, रक्तदोष, भ्रम, तृष्णा, कफज्वर इनको दूर करता है।

यह दाहहर, अरुचि, ग्लानि, मद और विभ्रम का नाशक है।

इस आधार पर पर्पट के नाम पर व्यवहार होने वाले द्रव्यो का विवेचन किया जाय तो सम्भव है किसी निर्णय पर पहुचा जासके है। इनका तुलनात्मक गुणदोष नीचे दिया जा रहा है—

पर्पट

नाम	जाति	रस	गुण	वीर्य	विपाक	पत्र	पुष्प	फल	विशेष कर्म
पर्पट पित्तपापडा शाहतरा फ्यूमेरिया इन्डिका Fumaria Indica (३-६ इच तक, ऊचा हरा नीला)	क्षद्र-क्षुप १ वर्षायु कोमल १ फीट तक ऊचा।	वर तिक्त	शीत- लघु रूक्ष	शीत	कटु	गाजर या धनिया की तरह को-मल और मोटे।	लाल	छोटे अग्र-भाग मे दबे हुए।	पित्त प्रशमन तृष्णानिग्रहण मेदहर तापहर ज्वरहर विषहर कुष्ठहर
प्रतिनिधि द्रव्य क्षेत्र पर्पट-दमनपापडा बं॰ खेत पापडी म॰ परिपाट लै॰ Olden Landia-Carymbosa कुल—मजिष्ठा (३-१५ इन्च ऊंचा)	क्षुप जाति १५ इच तक ऊचा स्थान विशेषकर	तिक्त लघु	लघु- रूक्ष	उष्ण	कटु	रेखाकार या अण्डाकार धनिया की तरह।	छोटे एकल	छोटे गोलाकार	पित्तशमन
पित्तपापडा (जौनपुरी)	क्षुप जातीय पौधा ६ इच १२ इच तक ऊचा बहुशाखीय होता है।	हल्का तिक्त	रूक्ष लघु	शीत	मधुर	छोटे और चक्रमर्द की तरह	नीले बैगनी	छोटे पतले जीरकवत्	पित्तशामक

पर्पट

नाम	जाति	रस	गुण	वीर्य	विपाक	पत्र	पुष्प	फल	विशेष कर्म
पित्तपापडा (गुजराती) लै Justicia Procum Bens Linn या Rangia Repens. वासक कुल ९-१० इन्च लम्बा मूल कोमल	क्षुप-फूल कोमल, काड चतुष्कोण	मधुर कषायित ऊपद तिक्त	शीत-रूक्ष-	शीत	मधुर	लम्बे अपामार्ग की तरह	गुलाबी रंग के मंजरी में।	अपामार्ग या चावल की तरह छोटे-छोटे पुष्प मंजरी में।	शान्त होता है
पित्तपापडा (म० राष्ट्र) लै० ग्लैसोकार्डिया सेनियरिफोलिया (Glassocardia Sennreyfolia) अथवा ग्लासोकार्डियम वोसवेलिया (Glassocardia Bosvelea)	ऊचे-क्षुप	हल्का तिक्त	लघु-शीत	उष्ण	कटु	गोभा की तरह	श्वेत पीत	गोभा की तरह	पित्तशमन
पर्पट (मालाबारी और केरल का) लै० मुलुगो न्यूडिकालिस Mallugo Nadicaulis	क्षुप	हल्का तिक्त	रूक्ष लघु	शीत	कटु		श्वेत पीत	छोटे गोभे की तरह	ज्वर-पित्तहर
पर्पट (बिहार) Polycarpaea Carymbosa.	क्षुप ३-१० इन्च ऊचे।	लघु तिक्त	लघु शीत	शीत	मधुर	शाक की तरह	हल्का नीला	छोटे-छोटे	पित्तशामक

ऊपर के तुलनात्मक विवरण से स्पष्ट है कि सब क्षुप जाति के हैं और कुछ न कुछ गुण ज्वरहर पित्तहर होते हैं। न० १ को छोडकर कोई अधिक तिक्त नही है। गुण मे भी जितना शाहतरा मे है किसी मे नही है। शास्त्रीय विवरण मे फल पुष्प रस आदि जैसा शाहतरा का है वैसा किसी का नही है। अत: पित्त प्रशमन, तृष्णाहर, ज्वरहर, विषहर और मदहर कर्म जो शाहतरा मे है और किसी मे नही है। शेष बहुत हल्के तिक्त रस वाले साधारणतः पित्तशामक हैं। किन्तु शास्त्रीय पर्याय से इनका कोई लक्षण नही मिलता। अतः शाहतरा ही अधिक गुण शालि होने के कारण इसीको पित्तपापडा मानना चाहिए।



अगर

अगुरु—सं०-अगरु, प्रवर, लोह, राजार्ह, क्रिमिज, क्रिमीजाध, वंशिक योगज। हिन्दी-अगर, काली अगर। मराठी-कृष्ण अगर। बं० गुजरात-अगरु। अरबी-ऊदगरकी अ० इमस ऊद। लै० एक्वीलोरिया एगोलोच्चा।

कुल—अगुरु आदि।

विवरण—यह कोई संदिग्ध द्रव्य नही है बल्कि पसारियों और प्रयोग करने वालों ने इसे संदेहास्पद बना दिया है। इसका संस्कृत नाम अगुरु है किन्तु यह भार मे गुरु होता है और पानी में डालने पर डूब जाता है। इसके तीन भेद निघण्टुओं में मिलते हैं—

१. कृष्णागरु, २. काष्ठागरु, ३. दाहागरु

इसके अतिरिक्त अगरु भेद करके मंगल्या से एक भेद और उल्लेख किया है। अगरु के विषय मे जो शास्त्रीय नाम दिये हैं। वह इसके स्पष्ट पोषक है। जैसे-१ कृष्ण काष्ठरम्-यह काले रंग का काष्ठ होता है। यह अगरु के वृक्ष मे कृमियो के द्वारा काटने पर वहाँ वृक्ष की सुरक्षा के लिए जो सार एकत्र होता है। उससे काष्ठ का भाग काला होता है और वहाँ पर अगर का सार रस अधिक प्रवाहित होता है। अत इसकी संज्ञा किमिजाधम् लिखा है। विशेषकर वृक्ष की शाखाओं और संधियो पर जहाँ से कि शाखायें निकलती हैं। वहाँ पर के काष्ठ मे अधिक रस प्रवाह होकर भारीपन आ जाता है। और इस रस में गंध भी होता है।

२. अगरु काष्ठागरु—दूसरे प्रकार के भेदो मे काष्ठ में जो सार भाग होता है वह पीले वर्ण का होता है। इसलिये इसको क्रिमीजीघ व पीतकम् लिखा है। यह भारवान नहीं होता काले अगुरु की तरह बल्कि कम गुरु होता है। इसलिये इसे लिखा है असारम्। इसमे भी अगर की तरह ही सुगन्ध आती है।

३. कालेयक—पीले वर्ण का काष्ठ जो सारवान होता है। और जिसकी सुगन्धि चन्दन की तरह होती है। इसको कालेयक नाम दिया है। और ससारम् पीतवर्ण और लघु चन्दनम् संज्ञा दी है। अगुरु की जाति मे दाहागरु और मंगल्या दो भेद और दिये हैं। यह भी अगरु की तरह से सुगन्धित होता है। इसके काष्ठ मे गुग्गुलु की तरह गन्ध आती है। पीतवर्ण का एक और भी काष्ठ अगरु की जाति मे होता है। जिसके काष्ठ मे मल्लिका पुष्प की तरह गंध आती है। इसको अगरु स्वीकार नही किया है बल्कि इसको अगरु वाचक मंगल्या मल्लिका गधा नाम दिया है। किंतु अगरु ही जो ऊपर कृष्णागुरु के नाम से कहा गया है वह ही अगर के नाम से प्रसिद्ध है और आर्द्रा नक्षत्र के नाम पर इस वृक्ष का ग्रहण होता है। इसका निघण्टुओं में वर्णित साहित्य निम्न है—

अगरु प्रवरं लोह कृमिजाधमनार्यकम्।
कृष्णागरु स्यादगरु योगजं विश्व धूपकम्॥

राजनिघण्टौ चन्दनादिर्द्वादशो वर्ग —

स्वादुस्त्वगरुसार स्यात्सुधूम्यो गधधूमजः॥

कालेयक (अगरु विशेष)—

कालेयक ससार च पीत वर्ण च शब्दतः।

राजनिघण्टौ मे चन्दनादिर्द्वादशो वर्ग —

कृष्णागरु स्यादगुरु शृंगार विश्वरूपकम्।
शीर्षं कालगुरु केश्य वसुक कृष्ण काष्ठकम्।
धूपार्हं वल्लर गधराजक द्वादशाह्वयम्॥

काष्ठागरु (अगरु विशेष)—

अन्यागरु पीतकं च लोह वर्ण प्रसाधनम्।
अनार्यकमसार च क्रिमिजाघं च काष्ठकम्॥

दाहागरु (अगरु विशेष)—

दाहागरु दहनागरु दाहक काष्ठ च वह्निकाष्ठ च।
धूपागरु तैलागरु पुरं च पुरवंधनवल्लभ चैव॥

मंगल्या (अगरु विशेष)—

मङ्गल्या मल्लिकागंधमङ्गलागरुवाचका।

प्रयोग—वहां के लोग लकड़ी जलाने के लिये व्यवहृत करते हैं। और 'कालेयक' का प्रयोग अगरु में मिलावट के लिये और 'दाहागरु' का प्रयोग जलाने और धूपन दोनों कामों के लिये किया जाता है।

सिलहट के आदिवासी इसकी लकड़ी को घर गरम करने के लिये जाड़ों में अधिक प्रयोग करते हैं। सर्वोत्तम अगर का लै० नाम-एक्वीलेरिया ऐगालोचा है। और यह अगुरु आदि कुल का वृक्ष है।

प्राप्तिस्थान—आसाम, बंगाल पूर्वी हिमालय पर्वत विशेषकर खसिया, टिपेरा, सिलहट व मर्तबान की पहाड़ियों पर अधिक पाया जाता है। इसके अतिरिक्त मालाबार मलयद्वीप में भी पाया जाता है। इनमें सिलहट का अगर सबसे उत्तम होता है।

इतिहास—अगुरु भारतवर्ष का सर्वप्राचीन द्रव्य है। वैदिककाल से ही अगर का प्रचार चला आ रहा है। वैदिककाल में भी अगरु का प्रयोग सुगन्धि के लिये किया जाता था। और संहिताकाल में तो यह बहुत ही प्रसिद्ध द्रव्य की तरह प्रयोग होने लगा था। चरक संहिता में इसका वर्णन ४८ स्थानों पर हुआ। ज्वर में अगुरु आदि तैल का प्रयोग उष्णता के लिये अगर का प्रयोग प्रसिद्ध है। इसे सुगन्धित द्रव्यों में पाठ किया गया है। सुश्रुत ने भी १८ स्थानों पर औषधियों में प्रयोग किया है। और अष्टांग हृदय में २७ स्थानों पर प्रयोग किया गया है। इसका प्रयोग तैल, धूप, नस्य, प्रलेप-प्रदेह, उत्सादन, अंगराग में किया गया है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में इसके व्यापार का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। प्राचीन काल में अगर का व्यापार भारत से होता था। यह भी अगर को अल्होट तथा ग्रीक और रोमनकाल में अगर का नाम 'अगेलोकन' और अरब निवासी इसे अवलुखी कहते थे। बाद में यूनानी मेटेरिया मेडिका में इसका नाम ऊदेगर्की हिन्दी, नाम रख दिये हैं।

कृष्णागरु की मांग विदेशों में बहुत थी हिन्दुस्तानी अगर के अतिरिक्त यूनानी हकीम और स्थान के अगर का भी प्रयोग करते थे। उस समय में चार जातियां अगर की प्रसिद्ध थीं—

(१) हिन्दी अगर अर्थात् हिन्दुस्तानी अगर।
(२) समुन्दरी अगर।
(३) कमरी अगर।
(४) समन्दली अगर।

आयुर्वेद में अगर की चार जातियों का वर्णन किया है। जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यथा—कृष्णागरु या कालेयक। काष्ठागरु, दाहागरु, मंगलागरु। इसके अतिरिक्त एक स्वादु अगर का भी वर्णन मिलता है। इंजियात, ईबादि आई नामक ग्रन्थ में एक और अगर के प्रकार का वर्णन किया है। यह अधिक कीमती होता था। इसे हाथ में रखने से ही सुगन्ध निकलने लगती थी जबकि अन्य जातियां आग पर रखने पर सुगन्ध देती हैं। हिन्दुस्तान का कृष्णागरु इनमें सर्वोत्तम था। और इसकी पहचान यह थी कि हकीम लोग पानी में डालकर परीक्षा करते थे। जो डूब जाता था उसका नाम ऊदेगर्की था, जो कम डूबता था उसे नीमगर्की कहते थे। जो तैरता रहता था उसे मगानह या तैरने वाला अग कहते थे। पानी में डूब जाने वाला अगर सर्वोत्तम होता था। इसकी लकड़ी मुलायम, स्वाद में कटु और जलाने से सुगन्ध देती है। आज भी अगर का प्रभाव प्राप्त है और जितनी धूप बत्तियां हैं सब अगर के नाम पर अगरबत्ती कहलाती हैं। किन्तु इधर कुछ दिनों से सिन्थेटिक सुगन्धों के उत्पादन ने इसके व्यापार को मंदा कर दिया है।

परिचय—इसके सदा हरित ऊंचे ऊंचे वृक्ष लगभग १८.२८ मीटर से ३०.४८ मीटर (६० से १०० फुट) तक होते हैं। इनके काण्ड स्कन्द का घेरा १.५२४ मीटर से २.४३ मी या ५-८ फुट तक, काण्ड त्वक या तने की छाल पतली



तथा भोजपत्र के समान, पत्तियां ६.२५ सेमी से ७.५ सेमी. या २॥-३ इंच लम्बी नुकीली एवं चमकीली होती हैं। ग्रीष्म में पुष्प आते हैं जो सफेद रंग के तथा गुच्छों में लगते हैं। फलागम वर्षा में होता है। फल २.५ सेमी या १-२ इंच लम्बे एवं मखमल के समान कोमल होते हैं। पुराने वृक्ष का सारकाष्ठ भाग अगर के नाम से व्यवहृत होता है। प्रायः कम से कम २० वर्ष से पुरानी ही लकड़ी अगर के लिए काटी जाती है। लकड़ी का बुरादा, धूप, दशांग आदि में पड़ता है। बम्बई में जलाने के लिए इसकी अगरबत्ती बहुत बनती है। सिलहट में अगर का इत्र बहुत बनता है। चोवा नामक सुगन्ध इसी से बनती है।

इसके काष्ठ, इत्र और तैल का प्रयोग औषधियों में किया जाता है।

रस—कटु, तिक्त। गुण—लघु, रूक्ष, उष्ण।

विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण।

कर्म—कफवात शामक, दीपन, पाचन, शोथहर, वेदनास्थापन, अनुलोमन, हृदयोत्तेजक आदि।

वीर्यकालावधि—५ वर्ष तक।

चरकोक्त (सू० अ० ४) श्वासहर एवं शीतप्रशमन महाकषायों में (विमान ८) तिक्तस्कन्द शिरोविरेचन के द्रव्यों में एवं (सु. सू ३८) एलादिगण, सालसारादिगण, श्लेष्म संशमन (सू० ३९) की औषधियों में भी अगरु का उल्लेख है।

निघण्टुओं के अनुसार गुण-दोष निरूपण—

धन्वन्तरि निघण्टु—

कटु तिक्तोष्णमगरु स्निग्धं वातकफापहम्।
श्रुति-नेत्ररुजं हन्ति मगल्यं कुष्ठनुत्परम्॥

राजनिघण्टु—

कृष्णागरु कटूष्णं च तिक्तं लेपे च शीतलम्।
पाने पित्तहरं किंचित् त्रिदोषमुदाहृतम्॥

भावमिश्र—

अगुरूष्णं कटुत्वच्यं तिक्तं तीक्ष्णं च पित्तलम्।
लघु कर्णाक्षिरोगघ्नं शीत, वात, कफ प्रणुत्।
कृष्णं गुणाधिकं तत्तु लौहवद्वारिमज्जति॥
अगरु प्रभवः स्नेह कृष्णागरुसमः स्मृतः॥

निघण्टु रत्नाकर—

अगरुस्तु सुगन्धि स्यात्-उष्णस्तिक्त: कटुस्मृत:।
स्निग्धो मंगलदोऽत्यर्थो धूपयोग्यश्च पित्तलः॥
तीक्ष्णो वातं कफोहन्ति कर्णनेत्र रुजापहः।
कुष्ठनाशकरः प्रोक्तो लेपे चोद्वर्तनेशुभः॥

ऊपर के विचारों से स्पष्ट है कि अगरु स्वाद में कटु तिक्त, कषाय होता है। गुण में उष्ण, स्निग्ध और तीक्ष्ण तथा वीर्य में उष्ण होता है।

आभ्यन्तर सेवन में उष्ण तथा बाह्य लेप में शीतल होता है। इसके तैल को लगाने से कर्ण और नेत्र की रुजा शान्त होती है। यह वात कफ का नाशक और कुष्ठ रोग का नाशक है। यह अगर प्रलेप और सुगन्धि के लिये प्रयोग होता है। यह उत्तेजक और पित्त निःसारक है। नाड़ियों को बलप्रद और पाचक है। वातश्लेष्महर द्रव्यों के साथ इसका प्रयोग कई रोगों पर होता है। आमवात में लाभप्रद है तथा वमन निवारण के लिए भी इसका प्रयोग होता है। यह लेप में प्रयोग करने से वक्ष की पीड़ा और शिरोरोग को नाश करता है।

कृष्णागरु—केश्य है। स्वाद में कटु और तिक्त। विपाक कटु और वीर्य में उष्ण होता है। यह त्रिदोषघ्न और पित्तहर है।

कृष्णागरु—स्वाद-कटु, वीर्य-उष्ण, और लेप में रूक्ष तथा कफहर है।

दाहागर या तैलागरु—यह स्वाद में कटु, गुण-उष्ण, विपाक-कटु तथा वीर्य में उष्ण है। ये त्वचा के वर्ण को उत्तम बनाता है और केशों के लिए उत्तम है। यह केश के सब रोगों को दूर करता है और उनमें सुगन्धि रखता है।

मंगल्यागरु—गुरु, शीतल, गंधाढ्य और योगवाहक है।

कालेयकम्—

गुणाः—वर्ण प्रसादनं चैव लघुचंदनमेव च।

काष्ठागरु—

गुणाः—काष्ठागरु कटूष्णं च लेपेरूक्षं कफापहम्।

दाहागरु—

गुणाः—दाहागरु कटूकोष्णं केशानां वर्धनं च वर्ण्यं च।
अपनयति केशदोषानातनुते सततं च सौगन्ध्यम्।

मंगल्या—

गुणाः—मंगल्यागुरुशिशिरा गंधाढ्या योगवाहिका।

विशेष—अगरु शब्द की व्युत्पत्ति की जाय तो 'न गुरु दुर्भर अस्मात् इति अगरु।' अर्थात् जो भारी न हो किन्तु गुण में गुरु है। अर्थात् अगुरु के काष्ठ को काटकर लकड़ी पानी में डाली जाय तो वह पानी में तैरने लगता है किन्तु यदि लकड़ी के सार भाग को निकाल लिया जाय तो वह पानी में डूब जाता है। इस अर्थ में यद्यपि इसकी लकड़ी लघु अगरु है। किन्तु उसका सार भाग गुरु होता है।

नागबला

परिचय—गांगेरुकी-बला चतुष्टय में का एक द्रव्य है। यद्यपि यह संदिग्ध नहीं है फिर भी इसे संदिग्धता की छाप लगा दी गयी है। धन्वन्तरि निघण्टुराज, निघण्टु मदन विनोद—इनमें इसका नाम आता है। इसमें भावमिश्र ने बला के चार भेद लिखे हैं—

(१) बला, (२) महाबला, (३) नागबला, (४) अतिबला। और चारों के परिचय तथा पर्याय भी दिये हैं। यह क्षुप जातीय और अधिक प्रसिद्ध है। बला पंचक के नाम से भी प्रयोग आये हैं और इसमें राजबला जोड़ देने से बलापंचक बन जाता है। चरक के दशेमानि में चक्रपाणि ने अतिबला पीतबला लिखा है। धन्वन्तरि निघण्टुकार ने भद्रौदनी शब्द से बला को, और राजनिघण्टुकार ने उसे बला नागबला नाम से पाठ किया है। धन्वन्तरि निघण्टु में वाट्यायनी शब्द महाबला के पर्याय में पठित है किन्तु चक्रपाणि ने बल्य वर्ग की टीका में (वाट्यायनी श्वेत बला, भद्रौदनी पीतबला) चक्र संग्रह के वात व्याधि की टीका में बला तिल की व्याख्या के प्रसंग में एक और झगड़ा शिवदास ने पैदा किया। उसने लिखा है कि 'बलापीत पुष्पा अतिबला गोरक्ष तण्डुलैव, पुन।' टीका च सू० १५ में चक्रपाणि ने नागबला को नागबला गोरक्ष तण्डुला लिखा है। उपर्युक्त आचार्यों ने यह व्याख्यायें करके एक संदेह स्थल बना दिया है फिर पुष्प भेद से बला का भेद देना ठीक नहीं जचता। एक ही बला प्रत्यक्ष रूप में देखने पर बला श्वेत पुष्प और पीत पुष्प दोनों ही मिलती है। यही नहीं नवीन वनस्पति शास्त्रियों ने भी इनके जो नाम दिये हैं उनके लैटिन नाम में भ्रम पैदा कर दिया है। जैसे—

(१) राक्स बर्ग ने—अतिबला के लिये सिडा राम्बिफोलिया (S Rhombifolia) व सिडा एसिएटिका (S. Asiatica) लिखा है।

(२) आर० एन० खोरी ने इसीको सिडा एब्यूलिटन (S. Abulliton) और सिडा इन्डिकन (S Indicum) लिखा है।

(३) डा० दत्तने नाग बला को सिडा अल्बा (S. Alba) लिखा है।

(४) डा० वाट ने सिडा स्पाईनोसा (S Spinosa) लिखा है।

भावमिश्र ने, सम्भवत. इसे मिटाने के लिये इसके चार भेद लिखे हैं।

धन्वन्तरि निघण्टुकार ने पांच भेद लिखा है।

बला चातिबला चैव महाबला बला-बला।
ज्ञेया राजबला चेति बलायाः पंचकं मतम् ॥

(धन्वन्तरि नि०)

राज निघण्टु ने पंचबला पाठ करके बला महाबला गांगेरुकी बलिका और बला। बलिका शब्द से अतिबला इसका ग्रहण किया है। महाबला पांच नामों में महाबला सहदेवी पीतपुष्पा को अतिबला नाम से कंघी को, महोदनी नाम से नागबला को, और बला से बला को, इसलिये संदेह निवारण के लिये भावमिश्र ने बला, महाबला, अतिबला और गांगेरुकी यह चार भेद किये हैं।

SIDA RHOMBIFOLIA





इसमें से गागेरुकी नागबला प्रसङ्ग पर विचार उपस्थित किया जा रहा है। और इसके पर्याय भी नीचे दिये हैं। हम भावमिश्र से ही आरम्भ करते हैं।

नाम और पर्याय —

गांगेरुकी नागबला झषा ह्रस्व गवेधुका।
गागेरुकी नागबला खरगन्धिनिका च सा॥
विश्वदेवा तथारिष्टा झषा ह्रस्वगवेधुका।
(धन्वन्तरि निघण्टु)

गांगेरुकी नागबला खरगन्धा चतुष्फला।
महोदया महाशाखा महापत्रा महाफला॥
विश्वदेवा तथारिष्टा झषा ह्रस्व गवेधुका।
देव दण्डा महादण्डा षट्त्रिंशाह्वा तु षोडश॥
(राज निघण्टु)

गरुड़ पुराण के १९६वें अध्याय में नागबला का उल्लेख है। और राजवल्लभ में भी नागबला का यही पर्याय अर्थात् राज निघण्टुकार का ही दिया है।

उपर्युक्त पर्याय के अर्थों को ध्यान में रखकर उसके आकार प्रकार का विचार करें तो निम्न विचार मिलते हैं—

गांगेरुकी—गाग जल विशेष ईरयति इति गांगेरुकी। अर्थात् जिसका मूल नीचे जल की सतह तक जाता हो। यह अर्थ गांगेरुकी के शाब्दिक अर्थ में परुषक कुल के ग्रेविया हीर्सुटा के अर्थ में हो सकता है जिसकी मूल नीचे तक जाती है। यदि हम इसका ऐसा अर्थ करें कि गाङ्ग जल विशेषम्-गाङ्ग जलम्-इति नाम्ना प्रसिद्ध। वर्षतो गाङ्ग जल-पतन काले यासां गतिर्भवति सा गांगेरुकी अर्थात् वर्षा ऋतु में गाग जल गिरने पर जो अंकुरित होती है उसे गांगेरुकी कहते हैं।

नागबला—नाग सर्प तद्वद् वलति सा नागबला। अर्थात् जमीन पर जो नाग की तरह फैलती है, उसे नागबला कहते हैं, अथवा नागस्य इव बलं यस्याः सा नागबला। अर्थात् हाथी की तरह जो बल दे उसे नागबला कहते हैं।

झषा—झष मत्स्य विशेष तद्वद् जल भूमौ या सा तिष्ठति सा झषा अर्थात मछली या मगर की तरह जलीय प्रदेशों में जो होती है उसे झखा कहते हैं।

ह्रस्वगवेधुका—गवेधुक अन्न विशेष तद्वद् ह्रस्वा लघवः बीजानि यस्याः सा ह्रस्व गवेधुका।

खर गन्धिनिका—खरस्य गंध इव गंधि वाहिका वा सा खर गन्धिनिका। अर्थात् गर्धव की गंध की तरह गंध जिसका हो।

चतुष्फला—जिसके फल में चार फल एक में मिले हो।

महोदया महाफला—जिसके गुण महान हो उसे महोदया और महाफला कहते हैं। शेष पर्यायों के अर्थ स्पष्ट हैं।

उपर्युक्त पर्यायों से यह ज्ञात होता है कि जो वर्णन इन पर्यायों में दिया गया है वह ग्रेविया पोपुलिफोलिया (Grevia Populifolia) से मिलता-जुलता है। शास्त्रीय अर्थों में संक्षेप में इसका वर्णन इस प्रकार होगा—

स्थान—यह जलीय प्रदेशों में होती है और ४–६ फीट तक ऊंची होती है और एक मूल से बहुत सी शाखाएं निकलती है। और शाखा प्रशाखा देकर बड़े गुल्म के रूप में बन जाती है इसलिये इसको महाशाखा अधिक शाखाओं वाली लिखा है।

पत्र—इसके पत्र प्रारम्भ में बड़े होते हैं और आगे छोटे होते जाते हैं। इसकी ऊंचाई अधिक नहीं होती और शाखाएं दण्ड बनाने के काम में आ सकती है। इसलिये इसको महादण्डा देवदण्डा लिखा है।

पुष्प - इसके पुष्प पीले रग के चार फलक वाले होते है, और उनसे जो फल बनता है उसमे चार फल जुडे रहते हैं। जो कच्चे रहने पर हरे और पकने पर लाल जामुनी रग के होते ह।

स्वाद—मे मीठे होते हैं। इसके पत्रो से एक प्रकार का गध निकलता है जिसको खर गध कह सकते हैं। और इसमे जो बीज होते हैं वे छोटे गवेधुक (जोह्लरी के दाने के समान) छोटे होते हैं, इसलिये ह्रस्व गवेधुका कहते हैं।

महाफला—का मतलब यह है कि उसके गुणो मे सद्य क्षत—रोपक और रक्तस्तम्भक गुण है। अत महाफला लिखा ह।

मिलावट व प्रतिनिधि—

१ नागवला के नाम पर गगेरम् या छोटी नागवला "सिडा स्पाईनोसा लिन" का ग्रहण किया जाता है।

२. नागवला (फरीदबूटी) के नाम से श्री यादव जी आचार्य ने भूमिवला, भुई वरियार या नारवरियार "सिडा ह्यूमानिस" का ग्रहण किया है।

३ गगेरम वडी–'ग्रेविया पपोलिफोलिया या ग्रेविया हिसुटा।

इन तीनो मे से नागवला के स्वरूप निर्वारण के लिये थोडा विचार करना होगा।

१ महर्षि चरक ने नागवला रसायन मे नागवला का स्थान, भूमि इत्यादि का वर्णन किया है यथा स्थान के विषय मे—नागवला का स्थान–धन्वप्रदेश–जहाँ पर कुश लगे हो, जहाँ की मृत्तिका चिकनी-काली और मधुर रस वाली हो अथवा पीले वर्ण की मिट्टी हो। इससे जागल प्रदेश (धान्वनि) मे होने वाली नागवला का विवरण किया है। तथा माघ-फाल्गुन मास मे (तपसि तपस्ये) जव नागवला का पत्र झड गया हो उस समय वला मूल लाने को लिखा है।

२. सुश्रुत ने भी नागवला के फल को धन्वन सदृश फल वाला लिखा है। यथा—

सकषाय हिम स्वादु धान्वन कफवातजित्।
तद्वद्गागेरुक विद्यात् – (सु. सू. ४६)

धन्वम् और नागवला एक ही वर्ग की वनस्पति है।

भूमिवला को यदि नागवला माने-नाग इव वलति, व्युत्पत्ति करे तो यह जमीन पर फैलने वाली फरीद बूटी वला का एक भेद होगी। और चरक के बतलाये हुए नागबला से इसका कोई मेल नही होगा। क्योकि यह धन्व प्रदेश● की मान ली जाय तो इसके पत्र पतझड के दिनो मे नही गिरते। माघ फाल्गुन मास मे यह हरी-भरी रहती है। इसके फल चतुष्फल नही होते और फल का आकार रस गवेधुका जैसा नही होता तथा गुण मे भी यह सद्य वेदनाहर नही है, जैसा कि नागवला के परिचय मे दिया हुआ है। यथा—

खड्गादि छिन्नगात्रस्य तत्त् काल पूरिते व्रण.।
गांगेरुकी मूलरसैर्जायते गतवेदन ॥
—शार्ङ्गधर सं.

पुनश्च—

गागेरुकी मधुराम्ला कषायोष्णा गुरुस्तथा।
कटु तिक्ता च वातघ्नि व्रणपित्त विकारजित्॥
—धन्वन्तरि नि०

मधुराम्ला नागवला कषायोष्णा गुरुस्तथा।
कण्डूतिकुष्ठ वातघ्नि व्रण पित्त विकारजित्॥
—राज नि०

गागेरुकी फलं रूक्ष कषाय स्वादुवातलम्।
लेखन स्तम्भनं शीत विबन्धाध्मानकृत् गुरु॥
—गदनिग्रह

(१) इससे स्पष्ट है कि नागवला का फल मधुराम्ल

● धन्वनि कुशास्तीर्णे स्निग्ध कृष्ण मधुर मृत्तिके सुवर्ण वर्ण मृत्तिके वा व्यपगत विषश्वाय पवन सलिलाग्नि दोषे कर्षण वल्मीक श्मशान चैत्योषरावसथ वर्जिते देशे यथर्तु सुखपवन सलिलादित्य सेविते जातान्युपहतान्यनध्यारुणान्यबालान्य जीर्णान्यधिगतवीर्याणि शीर्ण पुराण पर्णान्य सजातान्य पर्णानि तपसि तपस्ये वा मासे शुचि, प्रणत' कृत देवतार्चन स्वस्तिवाचयित्वा द्विजातीन् चलेसुमुहूर्ते नागबलामूल्यूद्धरेत्, तेषा सुप्रक्षालिताना त्वक् पिण्डमात्र मात्रभक्ष मात्र वा श्लक्ष्ण पिष्टमालोड्य पयसा प्रातः प्रयोजयेत् चूर्णीकृतानि वा पिबेत् पयसा, मधुसर्पिभ्या वा सयोज्य भक्षयेत्, जीर्णे च क्षीर सर्पिभ्या शालिषष्टिकमश्नीयात्। सवत्सर प्रयोगादस्य वर्षशतमजर वयस्तिष्ठति इति समान पूर्वेण।
(च०चि०अ० १, रसायन पाद द्वितीय, श्लो० ११)

होता है। मूलत्वक् का रस कटु तिक्त कषाय होता है, जो कि भूमि वला के भीतर नही पाये जाते।

(२) गगेरन को सिडा स्पाईनोसा कहे, यद्यपि ग्रेविया पपोलिफोलिया से मिलते-जुलते होते है। किन्तु इनके कोई गुण इसमे नही मिलते और गागेरुकी के कोई लक्षण इसमे नही मिलते।

अत लेखक के विचार मे नागवला ग्रेविया पपोलिफोलिया और ग्रेविया ह्निमुटा है।

गुण-कर्म व उपयोग

चरक —

१. रसायनार्थम् —

" नागबला मूलानि' 'पयसा मधुसर्पिभ्या वा सयोज्य भक्षयेत्। जीर्णे च क्षीरसर्पिभ्या शालिषष्टिकमश्नीयात्। सवत्सर प्रयोगात् अस्य वर्षशतमजरमायुस्तिष्ठति इति समान पूर्वेण ॥ (च० चि० अ० १)

२. क्षतक्षयो नागबलाम्लम् —

पिबेन्नागबलामूलस्यार्द्ध कर्ष विवर्धनम्।
पल क्षीर युत मास क्षीर वृत्तिरनन्नभुक् ॥
एष. प्रयोग. पुष्ट्यायुर्बलारोग्यकर परः ॥
(च०चि०अ० ११)

चक्रदत्त —

३. हृद्रोगे—मूल नागबलायास्तु चूर्ण दुग्धेन पाययेत्।
हृद्रोगश्वासकासघ्नम्..... ... . ॥

शार्ङ्गधर—

४. सद्योव्रणे—

खड्गादिच्छिन्न गात्रस्य तत्काल पूरतो व्रण.।
गागेरुकी मूल रसै जायते गतवेदन ॥

शोढल —

५. क्षये—चूर्ण नागबलायास्तु घृतमाक्षिकमिश्रितम्।
प्रतिह्यात् प्रातरुत्थाय क्षय व्याधि निवारणम् ॥

उपयोग —

चरक—

(१) रसायन के लिए—नागबला मूल चूर्ण (यदि मूल स्थूल हो तो मूलत्वचा का चूर्ण लें) मधु और घृत से चाटकर ऊपर से दूध पियें, इसका पाचन हो जाने पर दूध घी और शालितण्डुल का भोजन करें। इस प्रयोग को एक वर्ष तक करने से बिना वृद्धावस्था के १०० वर्ष का आयुष्य प्राप्त होता है। (च० चि० १)

(२) क्षय मे—नागबला मूल चूर्ण, प्रतिदिन १/२ तो बढाते हुए ४ तोले की मात्रा मे ले जायें। इसे दूध के साथ पिलाना चाहिए। (यदि नये ताजे मूल मिलें तो उपर्युक्त मात्रा मे मूल का रस पिलाये) भोजन मे दूध के अतिरिक्त कुछ न दें। एक महीने के प्रयोग से पुष्टि, आयुष्य, बल और आरोग्य प्राप्त होता है।

(च०चि० ११)

चक्रदत्त —

(३) हृद्रोग मे—हृद्रोग मे नागबला मूल चूर्ण १/४ तो० दूध के साथ पीने से हृद्रोग, श्वासकास आदि रोग नष्ट हो जाते है।

शार्ङ्गधर—

(४) सद्योव्रण मे—तलवारादि तीक्ष्ण शस्त्र से शरीर पर व्रण होने पर शीघ्र ही नागबलामूल स्वरस व्रण पर लगा देने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है और वेदना शान्त हो जाती है। व्रण शीघ्र ही ठीक हो जाता है।

शोढल —

(५) क्षय मे—नागबला मूल चूर्ण मधु और घृत के साथ प्रतिदिन प्रातः सेवन करने से अवश्य ही क्षय रोग से मुक्ति मिलती है।

पुनर्नवा

नाम—पुनर्नवा वर्षाभू—वृश्चीर, कठिल्लक, मुवाटिका। लै०—(इसके दो भेद है) (१) श्वेत पुनर्नवा (Boerhavia Verticilatta, (२) रक्त पुनर्नवा (Boerhavia Diffusa)।

कुल—पुनर्नवादि।

इतिहास—वैदिक साहित्य मे पुनर्नवा का नाम इसी नाम से मिलता है। जैसे—

अग्नेर्घासो अपा गर्भ जारोहन्ति पुनर्नवा।
ध्रुवा सहस्रनाम्नो भेषजी. संत्वामृते॥
—अथर्व वेद ८/७/८

इस प्रकार पुनर्नवा का वर्णन अथर्व वेद मे मिलता है जिसका भावार्थ यह है कि पुनर्नवा जल, वायु और अग्नि का सयोग पाकर प्रतिवर्ष एक निश्चित समय पर फिर से नई हो जाती है। यह अमृतवत् लाभकारी होती है। और इसके कई भेद हैं।

सहिता काल मे पुनर्नवा का बहुत अधिक प्रयोग मिलता है। चरक सहिता मे इसका भूरि-भूरि प्रयोग कई नामो से मिलता है। यथा—वृश्चीर, वर्षाभू, कठिल्लक और पुनर्नवा। पुनर्नवा की १६ कल्पनायें मिलती हैं जिनको ८७ योगों मे चौबीस व्याधियो पर प्रयोग किया गया है। यथा—स्वरस, कल्क, क्वाथ, चूर्ण, गुटिका, क्षीर, घृत, तैल, रसायन, अवलेह, अरिष्ट, गुण, लेप, प्रदेह, वस्ति, व मण्डूर की कल्पनायें मिलती हैं। इनका प्रयोग शोथ, ज्वर, अर्श, विद्रधि, प्लीहा, पित्ताश्मरी, प्रमेह, कुष्ठ, रक्तष्ठीवन, पार्श्वशूल, शिरःशूल, ग्रहणी, कृमि, आनाह, आध्मान, मूत्रकृच्छ्र, शूल, अश्मरी, हृद्रोग वातरक्त, योनिरोग और मनोविकार मे प्रयोग किया जाता है।

सुश्रुत संहिता—चरक से अधिक प्रयोग सुश्रुत और अष्टाग हृदय मे मिलते हैं। इसके सात पर्याय सुश्रुत में मिलते है। जो—वृश्चीर, वर्षाभू, शिवाह्वि, कठिल्ल, वृश्चीव और वर्षाभ्मा। इसका प्रयोग शोफ, उदर और अर्श मे विशेष प्रकार से होता है। इसके अतिरिक्त प्लीहा, विद्रधि, प्रमेह पिडिका, सूतिकारोग, गलगण्ड मे मिलते हैं। इसको कल्क, कषाय, घृत, तैल, क्षीर, लेप, प्रदेह, वस्ति आदि रोगो ने अधिक प्रयोग किया गया है।

काश्यप सहिता—इसमे केवल तीन नामो से प्रयोग मिलते है। वर्षाभू, वृश्चीर और पुनर्नवा। २१ व्याधियो की ६ कल्पनाओ मे इसका प्रयोग किया गया है। वातरोग, सूतिका रोग, बालग्रह, फक्क, ज्वर, शिर शूल और विसर्प आदि व्याधियो मे पुनर्नवा का प्रयोग क्वाथ, घृत, क्षीर, तैल और यूष आदि कल्पनाओ मे हुआ है।

हारीत सहिता—इसमे पुनर्नवा के नाम से ही उल्लेख है। क्षय, कामला, श्वास, मधुमेह, शोथ, निद्रा, अपस्मार, कास, कुष्ठेत्यादि २६ व्याधियो में कल्क, क्वाथ, चूर्ण, घृत, तैल इन कल्पनाओ मे प्रयोग किया गया है। आमवात में इनका विशिष्ट प्रयोग है।

अष्टाग हृदय—इसमे कठिल्ल, वर्षाभू, वृश्चीर, शिवाटिका और पृथिका इन नामो से उल्लेख है। स्वरस, कल्क, क्वाथ, अवलेह, क्षीर, तैल व घृत आदि कल्पनायें मिलती हैं।

निघण्टु—जितने भी उपलब्ध निघण्टु हैं उनमे पुनर्नवा का भेद सहित प्रयोग मिलता है। इसके दो भेदो का प्रयोग दिखाई पडता है। इसके तीन भेद मिलते हैं—श्वेत रक्त और नीला। मदनपाल निघण्टु मे पुनर्नवा के दो ही भेद लिखे हैं। कैयदेव निघण्टु मे भी दो ही भेद है। आधुनिक वनस्पतिशास्त्रकारो ने पुनर्नवा के चार भेद लिखे हैं—

(१) बोरहेविया डिफ्यूजा (Boerhavia Diffusa)।
(२) बोरहेविया एरेक्टा (B. Erecta)।
(३) बोरहेविया प्रोकम्बस (B Procombus)।
(४) बोरहेविया रिपेन्स (B. Repens)।

इनका विवरण आगे विस्तारपूर्वक देंगे। निष्कर्ष यह है कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से पुनर्नवा व उसके भेदो का ज्ञान वैदिक काल से लेकर अबतक बराबर बना है। यह भारतवर्ष की सर्व प्राचीन औषधि है और वृहस्पति नामक आचार्य ने इस वर्ग की औषधियो का ज्ञान प्रथम किया था।



प्रादेशिक भाषाओ मे पुनर्नवा की संज्ञाये

संस्कृत- पुनर्नवा। हिन्दी—गदहपुरना, बिसखपरा, साठ, ठिकी। बगाली—गदापुण्या, गन्धपुर्ना, श्वेत गन्धावले। पजाबी—इटसिट। सट्टम, मराठी—घेपुली, वसु, गुज०—घेपु, साटोडी, राती सातोदी। तामील—सुकरट्टि, मुक्करट्टे। तैलगू—अटकामामिडि, गालजेस। मल्याली—तमिलाम, माशुगमा। कर्नाट—विलीय, द्रवेल्लडकिलु, कडियगणजिरे। पार्थीयन—देवलपट, अरबी—हय कुकी रतँवा। फारसी—हृदय अहयान, हस्पित सहराई। फ्रेंच—पेटगोन, पोर्तीगीज—वेजूकोड पर्गेसिन्। इंगलिस—स्प्रेडिंग होडचि वीड। उर्दू—बसखिरा। सिंनी—नरवेल। लैटिन—१. रक्त पुनर्नवा (बोहेविया डिफयूजा) अथवा (बोहेविया रिपेन्स) अथवा (बोहेविया प्रोकमवेन्स) २ श्वेत पुननवा। (बोहेविया व्हर्टिसिलेटा, डा० मुखर्जी द्वारा दिये श्वेत पुननवा के नाम—ट्रायन्थिया, पोरट्यूलेवपस्ट्रम।

संहिता ग्रन्थो में पुनर्नवा के पर्याय—

चरक सं०—पुनर्नवा, वृश्चीर, वर्षाभू, कठिल्लक

सु० स०—पुनुनर्वा वृश्चीर वर्षाभू कठिल्ल शिवाटी वृश्चीव वर्षाभ्व

अष्टा० स०—पुनर्नवा वर्षाभू कठिल्ल शिवाटिका वृश्चीव वर्षाभो पुनर्नव पृथ्वीका

काश्य० सं०—पुनर्नवा वर्षाभू वृश्चीव

हारीत स०—पुनर्नवा

शार्ङ्ग० स०—पुनर्नवा वर्षाभू।

निघण्टु ग्रन्थो में दिए पुनर्नवा के पर्याय

निघण्टुकारो ने दो प्रधान भेद श्वेत पुनर्नवा व रक्त पुनर्नवा यह भेद किए हैं—

श्वेत पुनर्नवा

१—धन्वन्तरि निघण्टु—

पुनर्नवा विशाखश्च कठिल्ल शशिवाटिका।
वृश्चीरः क्षुद्र वर्षाभू दीर्घपत्रः कठिल्लकः॥ २७४।

२—राजनिघण्टु—

पुनर्नवा विशाखश्च कठिल्ल. शशिवाटिका।
वृहश्चीव सित वर्षाभू दीर्घपत्रः कठिल्लकः॥ ४०४।

३—भाव प्रकाश नि०—

पुनर्नवा श्वेतमूला शोथघ्नी दीर्घ पत्रिका॥२३९॥

४—मदन विनोद नि०—

पुनर्नवा विशाखश्च रक्त पुष्पा शिवाटिका।
करक क्षुद्र वर्षाभूर्दीर्घ पत्रश्च क्षुद्रकः॥

५—कैयदेव नि०—

पुनर्नवा पुनर्नभू स्यात् सदामण्डलपत्रकः।
श्वेत मूलश्च वृहश्चीको वर्षाभू क्षुद्र पत्रकः॥
शोफघ्नी जटिलासघो विशेषो दीर्घ पत्रक॥ ६८९

६—शालिग्राम नि० —

पुनर्नवा श्वेतमूला कठिल्लश्च चिराटिका ।

नोट— श्वेत पुनर्नवा की सज्ञा ज्ञापक पर्यायो में निम्न लिखित नाम पाते हैं । इन पर विचार करने पर श्वेत पुनर्नवा क्या है ज्ञात होगा । पुनर्नवा, विशाल, कठिल्ल, शशिवाटिका, वृश्चीर, क्षुद्र, वर्षाभू, दीर्घपत्र, कठिल्लक, पृथ्वी, शीत वर्षाभू श्वेतमूला, शोथघ्नी, दीर्घपत्रिका, क्षुद्रक, पुनर्भू, आमण्डल पत्रक, श्वेत मूल, क्षुद्र पत्रकः, जटिला, हृद्य, चिराटिका । श्वेत पुनर्नवा के दो भेद हैं । एक दीर्घ पत्र दूसरा क्षुद्र पत्र ।

अगभेद एव आकृति विशेष से पर्यायो का वर्गीकरण—

क्षुप — शिवाटिका, वृश्चीर, क्षुद्र वर्षाभू, कठिल्लक, सितवर्षाभू, क्षुद्रक पुनर्भू, वृश्चिक, कठिल्ल,

मूल —श्वेत मूला-जटिला । =मूल श्वेत होती है ।

शाखा—विशाख —पृथ्वीका

पत्र—दीर्घपत्रक, दीर्घपत्रिका, मण्डल पत्रक, क्षुद्र पत्रक । इस प्रकार श्वेत पुनर्नवा मे भी क्षुद्रपत्रक वृद्ध पत्रक के भेद मे दो भेद हैं ।

पुष्प — रक्त पुष्पा,

फल—शिवाटिका, करक

व्रण—शोथघ्नी, शोफघ्नी ।

शेष पर्यायो का वर्गीकरण—

१—पुनर्नवा—पुन पुनर्नवा भवति-इति । जो प्रतिवर्ष नवीन हो जाय ।

२—वर्षाभू—वर्षाऋतु मे होने वाली ।

रक्त पुनर्नवा—

१—धन्वन्तरि निघण्टु—कर पुनर्नवा विशेषा ।

पुनर्नवो पर । करः सघोमण्डलः पत्रक ॥

श्वेत मूलो वि यर्ण ऋतुर्महा वर्षामुरुच्यते ॥ २७६ ।

२—राज नि० पर्पटादि वर्गः—

पुनर्नवाऽन्या रक्ताख्या क्रूरामण्डल पत्रिका ।

रक्त काण्डा वर्ष ऋतुर्लोहिता रक्त पत्रिका ॥ ४०६

वैशाखी रक्तवर्षाभू. शोफघ्नी रक्त पुष्पिका ।

विषघ्न दा विषघ्नी च प्रावृषण्याच सारिणी । ४०७

वर्षाभव शोणपत्रो भौमः सम्मिलित द्रुम ।

पुनर्नवो नवोनव्य स्याच्च विंशति सज्ञया । ४०८

३—भाव प्रकाश नि०—

पुनर्नवाऽपरा रक्ता रक्त पुष्पा शिलाटिका ।

शोथघ्नी क्षुद्र वर्षाभूर्वर्ष केतु कठिल्लकः ॥

४—मदन विनोद—

पुनर्नवारुणा तिक्ता रक्त पुष्पा कठिल्लकः ॥

करक। क्षुद्र वर्षाभूवर्ष केतुः शिवाटिका ॥

५—कैयदेव निघ०—

अपरा क्षुद्र वर्षाभू रक्त पुष्पा शिवाटिका ।

कठिल्लको वर्षकेतु करको रक्त वृन्तक. ॥ १६१

इन ऊपर के पर्यायो के अध्ययन के बाद यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि रक्त पुनर्नवा का स्वरूप क्या है । यथा—

रक्त पुनर्नवा—यह वर्षा ऋतु मे होने वाली क्षुद्र-क्षुप है । यह पृथ्वी पर फैलती है । इसके दो भेद हैं—

(१) महावर्षाभू । (२) क्षुद्र वर्षाभू ।

आकृति-महावर्षाभू—रक्तवर्ण की वर्षाऋतु मे होती है । यह एक दूसरे मे फैलती हुई चलती है । इस निमित्त 'सम्मिलित द्रुम' सज्ञादी है । यह वर्षाऋतु मे होवे से 'वर्षाभू' है । वर्ण बोधक—लोहिता, रक्ताख्या, रक्ता, अरुण से लाल वर्ण की होती है । इसके पुष्प की मजरी इसमें से उठी हुई लालवर्ण की होती है अत वर्षकेतु है । इसकी एक जाति लघु पत्र वाली है ।

मूल—मूल श्वेत वर्ण की होती है ।' श्वेतमूला'

शाखा—शाखाकाड, व पत्रवृन्त रक्तवर्ण के होते हैं अत रक्तकाड रक्त वृन्तक कहते है । इसकी पत्र—मण्डल पत्रकः मण्डल पत्रिका, शोण पत्र रक्तपत्रिका अर्थात् पत्र गोल लाल रग के होते है ।

पुष्प — रक्तपुष्पिका-पुष्प लाल रङ्ग के होते हैं ।

फल — कर खरक –फल रूक्ष खुरदरे होते हैं ।

गुण—इसका प्रभाव मूत्रल क्रिया द्वारा शोथ नाशन (शोथघ्नी) यह विषनाशक है (विषघ्नी) । यह दस्तावर है इसके पत्र खाने से दस्त आते हैं ।

ऊपर के पर्यायो से स्पष्ट है कि यह पृथ्वी पर प्रसरणशील लघु क्षुप है । मूल से यह चारो तरफ फैलता है और शाखायें बहुत लबी दूरी तक फैली होती हैं अतः विशाख "विशिष्ट प्रकारक. शाख" इसी अर्थ मे वायेर हेव मे बोयर हैविया डिफ्यूजा की सज्ञा दी है । यही तक

नहीं एक नील पुष्प की भी पुनर्नवा होती है। इसे राज-निघण्टुकार ने निम्न रूप मे लिखा है—

नीला पुनर्नवा नीला, श्यामनील पुनर्नवा ॥
कृष्णाख्या नीलवर्षाभू नीलादि स्वाविधान्विता ॥

यह बहुत कम मिलती है। प्रधान स्थान चित्रकूट की पहाडियां हैं। इसकी मूल कोमल मासल होती है अत असगंध मे मिलावट की जाती है।

विशाखः का अर्थ विशाखानक्षत्र के नाम का द्रव्य है। पत्र के आधार पर क्षुद्र वर्षाभू-दीर्घपत्रा वर्षायू इस प्रकार दो प्रधान भेद है। उन प्रत्येक अङ्ग के आकार सूचक पर्याय प्राप्त हैं।

वर्गीकरण—

चरक संहिता—स्वेदोपवर्ग, अनुवासनोपग. कासहर, श्वासहर, वयः स्थापनवर्ग व शाक वर्ग मे पाठ किया है।

सुश्रुत संहिता—१ विदारिगन्धादि गण, २ अम्ब-सम्बादि गण, ३. गुडूच्यादि गण, ४. वातसशमनीय वर्ग।

अष्टाङ्ग हृदय—विदार्यादि गण, शाक वर्ग।

भावप्रकाश—गुडूच्यादि वर्ग।

धन्वन्तरि निघण्टु—गुडूच्यादि वर्ग।

राजनिघण्टु—पर्पटादि गण।

मदनपाल—अभयादि गण।

आधुनिक वर्ग—पुनर्नवादि वर्ग (Nictaginaceae)

भेद—

१. रक्त पुनर्नवा—संहिता व निघण्टु।
२ श्वेत पुनर्नवा—संहिता व निघण्टु।
३ नील पुनर्नवा—राजनिघण्टु।

स्थान—समग्र भारत, सीलोन, पाकिस्तान, बलूचिस्तान, एशिया, अमेरिका आदि देशो मे उपलब्ध है।

आधुनिक—१ रक्त पुनर्नवा (Boerhavia Diffusa), २. श्वेत पुनर्नवा (B. Verticilate)

पुनर्नवा का रासायनिक विश्लेषण—

पुनर्नवा मे निम्नलिखित घटको का ज्ञान वनस्पति शास्त्रियो ने किया है। पुनर्नवा मे एक प्रकार का उपक्षारीय सल्फेट मिलता है जिसके दाने सूची के समान होते हैं। यह स्वाद मे तिक्त होता है। इसके अतिरिक्त इसमें पोटेशियम नाइट्रेट ६.४१%, हाइड्रोक्लोराइड ०१%। इसमे अन्य उपक्षार अल्पमात्रा मे मिलते हैं। इसमे क्लोरेट और नाइट्रेट पुनर्नवा के भस्म मे पाये जाते है। इसके अतिरिक्त और भी उपक्षार कुछ टेनिन और वसा का भी भाग मिलता है।

भेद आकृति

१ श्वेत पुनर्नवा—

(१) जड—कन्दवत् अगुलि से भी बडी होती है। स्थूल और भूरे रग की होती हैं।

(२) पत्र—प्राय: गोल समवर्ति १-१॥ इच के घेरे मे किंचित् नोकिले एव कोमल, मासल और रसमय होते है।

(३) शाखा—कोमल, क्षुद्र, सूक्ष्म रोमाकीर्ण होती है।

(४) पुष्प—शाखाओ के अन्त मे पत्र कोण से एक छोटी मजरी निकलकर उस पर पाच पखुडी वाले सफेद रङ्ग के छोटे-छोटे फूल होते है।

२. रक्त पुनर्नवा—

(१) क्षुप—श्वेत की अपेक्षा छोटा होता है।

(२) पत्र—क्षुद्र गोल और ईषद, दीर्घ, पतले एव किंचित् रक्ताभ छोटे होते हैं।

(३) शाखा—मृदु ललाई लिए हरे रङ्ग की क्षुद्र होती है।

(४) पुष्प—रक्ताभवर्ण।

मिलावट व प्रतिनिधि—यद्यपि पुनर्नवा पर्याप्त मात्रा में मिलता है और भारतवर्ष के कोने-कोने मे किन्तु श्वेत और रक्त पुनर्नवा की जड, नील पुनर्नवा की जड आपस मे मिली हुई बाजार मे आती है और इनका मेल बराबर होता रहता है। ताजे मूल के बदले सड़े गले व पुराने मूल भी मिला लिए जाते हैं। पुनर्नवा के तीन भेद श्वेत, रक्त और नील बताये है। इनके अतिरिक्त भी कई जातिया पाई जाती है जो बिलकुल छोटे-छोटे मोटे पत्र की श्वेत रक्त पत्र वाली पर्वतीय क्षेत्र मे अधिक होती हैं। बागो, खेतो और उद्यानो मे लगाया जाता है। इसमे पुष्प नही होते है। सदा हरित रहती है। इसके मूल और काडो की मिलावट पसारी लोग कर देते है। इनकी पहचान के लिए इनका आभ्यन्तर छेद लेकर उसकी रचना को ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से इनका ज्ञान हो जाता है।

पुनर्नवा के गुण-कर्म का विवरण—

१ चरक संहिता —

वृषपुष्पाणि शार्ङ्गेष्टा केम्बुक कठिल्लकम् ॥ २६ ॥
कफ-पित्तहर तिक्तं शीत कटु विपच्यते ॥
—च० सू० २७।९७

रस – तिक्त । विपाक—कटु । गुण—शीत । दोष—कफ-पित्तहर ।

२. सुश्रुत संहिता —

सुश्रुत संहिता मे रसादि विवरण स्पष्ट है जिसके निम्न दो उदाहरण मिलते हैं। इसमे शाक के गुण कर्म का विशेष उल्लेख पुनर्नवा के परिचय एवं प्रयोग का द्योतक है।

१. पुनर्नवा का शाक सुश्रुत मे शोफ और वातप्रशमन —सु सू ४६।२५४

२ वर्षाभू कफ वातघ्नी हिताशोफोदरार्शसाम् ।
—सु. सू ४६।२३६

३. अष्टांगहृदय—

इसमे कठिल्ल शब्द से पुनर्नवा का वर्णन किया है।

कठिल्ल कम्बूक शीत स कोशतक कर्कशम् ।
तिक्त पाके कटु ग्राही वातल-कफ-पित्तजित् ॥
वर्षाभू कालशाकञ्च सक्षार कटु तिक्तकम् ।
दीपन भेदन हन्तिगर शोफ-कफानिलाम् ॥"

अर्थात् रक्त और श्वेत पुनर्नवा रस मे कटु और तिक्त है। विपाक-कटु। कर्म-भेदन-और दीपन—विषघ्न और शोफहर।

अष्टाग सग्रह—में यही गुण बताये गये हैं।

निघण्टुओ मे—श्वेत और रक्त पुनर्नवा के अलग-अलग गुण बताये गये हैं।

धन्वन्तरि निघण्टु—

पुनर्नवा भवेदुष्णा तिक्तारुक्षा कफापहा ।
स शोफ पाण्डुहृद्रोग कासोरक्षत शूलनुत ॥

राजनिघण्टु—

श्वेता पुनर्नवा शोष्णा तिक्ता कफ विषापहा ।
कासहृद्रोग शूलास्र पाण्डुशोफानिलातिनुत् ॥

भावप्रकाश—

कटुः कषायानुरसा पाण्डुघ्नी दीपनी परा ।
शोफानिल गरश्लेष्मा हरिव्रघ्नोदरी प्रणुत ॥

मदन विनोद —

पुनर्नवासरा तिक्ता रुक्षोष्णामधुराकटु ।
शोफानिल व्रणश्लेष्महरारुच्या रसायनी ॥

कैयदेव निघ०—

वर्षाभू मधुरा तिक्ता कषायाकटुकासरा ।
क्षारोष्णा दीपनी रुक्षा शोफानिल कफापहा ॥
हृद्यारुच्याजपदर्शो व्रण पाण्डुगरोदरम् ॥

निघ० रत्नाकर—

रुच्याग्नि दीपनी रुक्षा मधुरा कटु सारका ।
हृद्याशोफ कफ वात कास अर्शोव्रण जयेत् ॥"
पाण्डु विशोदरं शूलं हृद्यरोगोरः क्षतापह ॥"

ऊपर के निघण्टुओं के विवरण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्वेत पुनर्नवा रस मे तिक्त व कटु है। गुण मे रुक्ष उष्ण और विपाक में कटु। वीर्य मे उष्ण और कर्म मे कफघ्न-वातहर, शोथ, पाण्डु, हृद्रोग-कासहर, क्षत-शूल नाशक है। इसका शाक विशेष कर दीपन और शारक है। यह रुचिकर अग्निदीपक रक्त प्रदर और उरः क्षत नाशक है।

रक्त पुनर्नवा के गुण कर्म-

धन्वन्तरि तथा राज निघण्टु —

रक्ता पुनर्नवा तिक्ता सारिणी शोफनाशिनी ।
रक्त प्रदर दोषघ्नी पाण्डुपित्त प्रमर्दिनी ॥

मदन विनोद—

पुनर्नवारुणा तिक्ता कटु पाकाहिमा लघु ।
वातला ग्राहिणी श्लेष्म रक्त विद्रधि नाशिनी ॥

भाव प्रकाश –

पुनर्नवारुणा तिक्ता कटुपाका हिमा लघु ।
वातला ग्राहिणी श्लेष्म पित्त रक्त विनाशिनी ।

कैयदेव निघण्टु—

कठिल्लक हिम तिक्तं विपाके कटुकं लघु ।
संग्राही वात-पित्त च कफशोणित नाशनम् ॥

साराँश यह है कि रक्त पुनर्नवा रस मे तिक्त और कटु। विपाक मे कटु। वीर्य मे शीत। पित्तकफ और त्रिदोष नाशक—वात कर, रक्त नाशक, ग्राही, विद्रधि नाशक। गुण—मे शीत और लघु है।

नीला पुनर्नवा

केवल राज निघण्टुकार ने इसका वर्णन किया है। यथा—

नीला पुनर्नवा तिक्ता कटूष्णा च रसायनी।
हृद्रोग पाण्डुश्वयथु श्वास वात कफापहा॥

रस—तिक्त एव कटु। गुण—उष्ण। दोष-वात एव कफ नाशक। व्याधि में—हृद्रोग-पाण्डू, शोथ और श्वास नाशक।

आधुनिक वाड्मय मे पुनर्नवा के गुण-कर्म का विवरण

आधुनिक विचारकों के मत से पुनर्नवा तिक्त दीपन, मूत्रल, मृदु विरेचक, कफ नि सारक, शामक, स्वेदोत्पादक इसका मूल विरेचक-कृमिघ्न और ज्वरघ्न है। पुनर्नवा को अल्प मात्रा मे प्रयोग किया जाय तो यह कफ नि-सारक और अधिक मात्रा मे वामक होता है।

संहिता ग्रन्थों मे पुनर्नवा की कल्पनायें—

च० स०, सु० स०, वाग्भट इत्यादि सहिताओं मे निम्नलिखित कल्पनायें हुई हैं। यथा—

स्वरस, कल्क, क्वाथ, चूर्ण, गुटिका क्षीर घृत तैल रसायन अवरोह अरिष्ट सर्पिगुड लेप प्रदेह वस्ति मण्डूर की १६ कल्पनायें चरक ने की हैं।

सुश्रुत ने १२ अष्टाग हृदय मे ११ कल्पनाये, काश्यप स० ६, हारित मे ५ और शार्ङ्गधर मे ८ कल्पनायें मिलती हैं। इस प्रकार चरक में कुल योग जिनमे पुनर्नवा है ४७ है। सुश्रुत मे ४१। अष्टाग हृदय मे ३६। काश्यप स० मे २८। हारीत मे २५। और शार्ङ्गधर मे २० हैं। इन सबो का दिग्दर्शन आगे स्थान निर्देश के अनुसार वर्गीकृत स्वरस मे अति सक्षेप मे दिया गया है।

चिकित्सा में पुनर्नवा का प्रयोग

उपर्युक्त २०० योगो का वर्णन पाया है। उनका विवरण देना यहा सम्भव नही है। एक दो प्रधान रोगो का उदाहरण यहाँ पर प्रस्तुत करते हैं। ४८ रोगों मे पुनर्नवा का प्रयोग हुआ है जिनमे प्रधान रोग शोथ उदर ज्वर राजयक्ष्मा कास श्वास, उर क्षत अर्श, विद्रधि, कुष्ठ, प्रमेहाश्मरी वाल रोग मूत्र विकार विष विकार वातरक्त गुल्म गर्भाशय के रोग मुख्य है।

इनमे से शोथ, मूत्ररोग, वातविकार उदाहरण उपस्थित करते है। ऐसा ही प्रत्येक रोगो मे विभिन्न कल्पनाओं मे वर्णन मिलता है। स्थानाभाव से सब प्रयोग नही दिये जा सकते।

	कल्पना
शोथ	
च० चि० १२/२५	क्षीर
,, ,, १२/२२	चूर्ण
,, ,, १२/२३	चूर्ण
,, ,, १२/७३	कल्क
,, ,, १२/३४	पुनर्नवारिष्ट
सुश्रुत सू० ४७/२३६	शाक
,, चि० ३८/११२	मुस्तादिवस्ति
अष्टाग हृदय चि० १/११५	क्षीर
,, चि० १७/२	चूर्ण
,, चि० १७/२५-२७	कल्क
काश्यप स च० २	क्वाथ
अन्तनी चि० १०/१२६	क्वाथ
खि० शोथ चि १७/२३	क्वाथ
,, ,, ,, ,, १७/३६	घृत
,, ,, ,, १७/५०	क्वाथ
,, ,, १७/८०	क्वाथ
,, ,, १७/	तैल
हारीत स तृ० अ० ६/११४	क्वाथ
,, ,, ,, २५/१३	पुनर्नवादिक्वाथ
,, ,, ,, ,, २५/१४	कल्क
शार्ङ्गधर सं.ख २ अ २/१२०	पुनर्नवादि क्वाथ
२/१२२	,, ,,
,, ,, ३ अ० ७७/८३	लेप
,, ७७/३	,,
,, अ० २/७६	पुनर्नवादि क्वाथ
उदररोग—	
च० चि० १३/११६	क्वाथ
सु० चि १४/२०	कल्क
,, चि० २३/१२	क्वाथ
अष्टांग ह० चि० १५/४६	क्वाथ
हारीत स० १५/१४	कल्क
शा० सं० २ अं० २/७६	क्वाथ
,, ,, २/१२०	क्वाथ
,, ,, ७/६६	योगराजगुग्गुलु
राजयक्ष्मा—	
च० चि० ८/७६	प्रदेह
,, ,, ८/१७०	रास्नादिघृत

च० चि० ८/१७५	चूर्ण उत्सादन योग	शा० सं० २ अ० २/६९	महारास्नादि क्वाथ
अष्टाग चि० ३/५८	घृत	,, ,, २ अ ६/६९	योगराज गुग्गुल
,, ,, ५/२४	घृत	,, ,, ,, ९/११०	नारायण तैल
,, ,, ५/६८	तैल नस्य, अभ्यङ्गार्थ	,, ,, ,, ९/११८	बला तैल
,, ,, ५/७८	चूर्ण	,, ,, ,, ९/१३४	मापादि तैल
हारीत स० तृ० अ० ६/४६	बलादि चूर्ण	मूत्र-विकार—	
,, ,, ,, ६/७७	शिलाजतु चूर्ण	चरक चि० २६/७७	क्षीर
,, ,, ,, ६/११४	क्वाथ	च० सि० ९/५०	उत्तरवस्ति
,, ,, ,, २५/१४	कल्क	,, ,, १०/२६	वस्ति
शाङ्ग० स० २ अ० १०/२७	कुमार्यासव	,, चि० २८/६४	तैल
,, ,, ,, १०/६२	दशमूलारिष्ट	सुश्रुत चि० ३८/६७	वर्णादि आस्थापन
,, ,, ,, १२/१६०	अग्निरस	,, ,, ३८/१०५	मुस्तादि आस्थापन
वातविकार—		,, ,, ३८/४३	शम्याकादि स्थापन
च० सि० ३/११	क्वाथ	,, उ० ५९/३५७	फलादि घृत
,, ,, ४/४	बिल्व तैल	अष्टा० चि० ११/२	मूत्राघात घृत
,, ,, ११/३२	क्वाथ	,, ,, ११/२३	घृत
सु० चि० ३७/१९	भूतिकादि तैल	,, ,, ९१/३३	क्षीर
,, ,, ३७/१६	चित्रकादि तैल	हारीत स० तृ० ४८/२५	पुनर्नवा क्वाथ
,, ,, ३८/४५	सर्पादि क्वाथ		
अष्टाग हृ० ४/७	क्वाथ		
काश्यप पुष्पजाता चि० २३	क्वाथ		
क्वाक्षी चि०	बला तैल		
हारीत स० ३ अ. २०/९१	तैल		
हारीत तृ० २०/६२	क्वाथ		

प्रस्तुत निबंध को अतिसंक्षिप्त कर विषय पर प्रकाश डालने का कार्य यथाशक्ति प्रयास के साथ पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। यदि इसे वाचक वर्ग ने अपनाया तथा आयुर्वेद के विकास में थोड़ा भी सिद्ध हो सका तो मैं अपना सौभाग्य समझूंगा। ●

अश्वगन्धा

अश्वगन्धा एक निर्विवाद द्रव्य है किन्तु इसके विषय में भी सदिग्धता उत्पन्न हो जाती है। इसका कारण यह है कि अश्वगन्धा के साथ विशेषण नागौरी लगा है। नागौर राजस्थान का एक विशेष स्थान है जहाँ से प्राचीन काल में अश्वगन्धा का व्यापार होता था किन्तु अब नागौर में वहाँ के निवासी इस कार्य को नही करते। यद्यपि अभी भी वहाँ के जगलो के आदिवासी अश्वगन्धा के जड को उखाडकर लाते हैं, और बहुत सस्ते मूल्य में बेचते हैं। वहाँ के व्यापारियों की रुचि इस तरफ न होने के कारण यह कार्य वहाँ से अब नही होता, साथ ही अश्वगन्धा के नाम से जो क्षुप मिलता है, उसकी जडे समय से सग्रह न करने के कारण बहुत कठिन और रेशेदार हो जाती हैं और उसका मेल बाजार में अश्वगन्ध से न होने के कारण चिकित्सक उसको अन्दर पाते हैं। अस्तु सदेह हो जाता है कि पढे लिखे चिकित्सक भी इसकी वास्तविकता को नहीं जानते और यह सन्दिग्धता की वृद्धि में सहायक होते हैं। अस्तु इसके विषय मे प्रकाश डालने की आवश्यकता है।

शास्त्रीय अश्वगन्धा—आयुर्वेद के निघण्टुओ मे जिस अश्वगन्धा का वर्णन किया है, उसका स्वरूप निम्नलिखित है—अश्वगन्धा के पर्याय धन्वन्तरि निघण्टु मे निम्न लिखित दिया है।

अश्वगन्धा मूल के पर्याय—अश्वगन्धा, वाजिगन्धा, कम्बुककुष्ठा

पत्र वाचक पर्याय —वाराहकरणी-पलाशपर्णी गन्धपत्री-वाराह पत्री-गोकर्णी

क्षुप का स्वरूप बोधक पर्याय—श्यामला, पीवरा, कामरूपिणी, अश्वगन्धा। अश्वारोहक, वनजा

फल वाचक पर्याय—कञ्चुकेन, पर्पटिवत् फला

गन्ध वाचक पर्याय—मदगन्धिका, वाजीगन्धा, अश्वगन्धा, हयगन्धा, कुष्ठगन्धिनी (भावमिश्र)

गुण वाचक ,, —वश्या, वाजिकरी, वलदा, पुष्टिदा, वातघ्नि, कामरूपणी हयप्रिया, कालप्रियकरी।

भेद सूचक ,, —वनजा, कालप्रियकरी।

स्वरूप वर्णन—ऊपर के पर्यायों से यह स्पष्टत मालूम होता है कि अश्वगन्धा की दो जातिया हैं। (१) वनजा (वन मे उत्पन्न होने वाली) (२) खेती से प्राप्त होने वाली। (कालप्रियकरी)

अर्थात् खेती करके एक निश्चित समय पर उखाडकर सग्रह करने पर यह कार्य करने योग्य होती है। इसका क्षुप बहुत ही सुन्दर (श्यामला) होता है और देखने में सुन्दर होने के कारण कामरूपिणी कहा है। इसका मूल ६ इन्च से लेकर १॥ फीट तक लम्बी होती है। ताजे मूल मे घोडे की तरह गन्ध आती है। सूख जाने पर यह गन्ध कम हो जाती है। कुछ लोग उसका अर्थ हयामूत्र गन्धा कहते है। घोडे के मूत्र के समान जिसमें गन्ध हो। यह कथन ठीक नही हैं। वास्तव में गन्ध घोड़े के शरीर के गन्ध की तरह और विशेषकर पसीना होने पर घोडे के शरीर मे जो गन्ध निकलता है उसके समान गन्ध हयमूल मे मिलता है। इसका क्षुप लगभग २–६ फीट तक ऊचा और मूल से कई शाखा प्रशाखा निकलकर एक गुल्म का शरीर धारण करता है।

पत्र के जोडे साथ निकलते हैं और ये २–४ इन्च लम्बे १-२ इन्च चौडे प्रारम्भ के लट्वाकार आगे को क्रमश. चौडे और धीरे २ पतले होते जाते हैं। सारा क्षुप श्वेत रोमावृत होता हैं। इनके पत्र का आकार हयाकार अथवा शूकर के कान की तरह होते हैं। खेती किये हुये अश्वगन्धा के पत्र देखने मे बडे सुहावने ऊपर की ओर हरित वर्ण के होते है। और देखने में खेत बहुत ही सुन्दर शस्य श्यामला होता है। वन मे होने वाली अश्वगन्धा के पत्र छोटे २ होते हैं, इसलिये इनको 'वनजा' 'वाजिनी' 'हयी' 'तुरजी' लिखा है। पूरा क्षुप देखने मे बडा सुन्दर

होता है और पुष्प आ जाने के बाद इनके पत्र या आकृति तथा लम्वाई चौडाई मे अन्तर आने लगता है। उसके पत्ते मोटे कडे खुरदरे हो जाते हैं। इसलिये उसको "पीवरा" कहते है। फल आ जाने पर ये पत्र पीले और रूक्ष हो जाते हे। और उनका आकार थोडा बदल जाता है। अर्थात् पूर्वापेक्षा छोटा होता जाता है।

मूल—मोटे मूली की तरह मासल ऊपर अधिक मोटे और नीचे पतले होते जाते हैं (कन्दिनी)। इसमे से सुखाने पर इनका गध एक प्रकार का अप्रिय गध होता है। भावमिश्र ने कुष्ठ गन्धिनी लिखा हे। यह कुष्ठ रोग के व्रणो के गन्ध की तरह अप्रिय गन्ध वाला होता है। इसके मूल के चूर्ण को आग मे डालने पर नये मद्य के गध की तरह गध निकलता है। पत्तो से सूर्य की किरणो के पडने पर एक प्रकार का गध निकलता है। जो पेट के पास खडे रहने पर या खेतो मे खडे होने पर ज्ञात होता है। इससे इसका नाम गन्ध पत्री है। पत्तो के मसलने से कोई विशेष गध नही ज्ञात होता किन्तु एक सामान्य सा गध निकलता है।

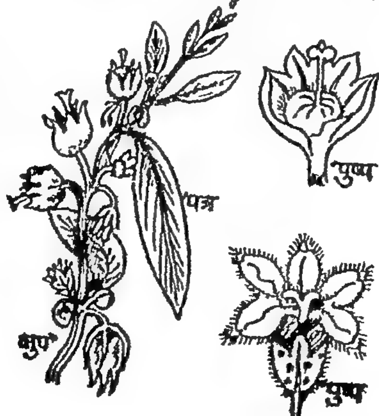
पुष्प—नील पीताभ वृन्त रहित गुच्छो मे पाये जाते हैं। इसका वाह्यदल पुंज घण्टी के आकार का रोमवृन्त होता है जो फलो को चारो तरफ से घेरे हुए रहता है। पॉच-छ खण्डो मे विभक्त होकर आपस मे मिला रहता है इसलिए इसे कञ्चुआ कहते है। जो कञ्चुकी की तरह चारो ओर से घेरे रहता है। अथवा पर्पोटिवत्फला— कहते हे।

फल—कच्चे रहने पर हरित और पक जाने पर लाल हो जाते हैं जिनका आकार छोटी मकोय के समान होता है। पके हुए फलो का गंध मद्य गन्धी होता है। इसके मूल के भीतरी भाग तथा काण्ड का काष्ठ भाग ऊपर से पीत श्वेत और नीचे श्वेत होते हैं अत. इसे कम्बू काष्ठा कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि अश्वगन्धा का क्षुप नवीन रहने पर बहुत ही सुन्दर, श्यामल, निर्लोमयुक्त होता है। मूल कई दिन तक जल मे भीगा रहने पर हयमूत्र गन्धी हो जाता है।

पत्र—वाराह के कान की तरह प्रारम्भ मे वडे और वाद मे छोटे हैं। प्रारम्भ मे जब तक इसका पुष्पागम होता है, इसके मूल उखाड कर सग्रह करने पर मृदु और मासल होते है। वाद मे फल आने पर पक जाने पर रेशेदार और कठिन हो जाते हैं। इसके मूल के प्रयोग करने पर यह पुष्टिकर और वल्य होते हैं। इसके पत्र, पुष्प और फलो मे अश्वगन्ध, कुष्ठगन्ध और मदगन्ध निकलता है। ऐसा विवरण जिस क्षुप मे हो उसे अश्वगन्धा मानना चाहिये।

विशेष विवरण—अश्वगन्धा की जातियो मे एक बडी जाति होती हे जिसका नाम विदानिया कुवलेस है यह अश्वगन्धा से मिलती जुलती निकटतम जाति है। जिसको काकनज या पनीर कहते हैं। इसके मूल मिला दिये जाते हैं।





दूसरी इसी प्रकार का एक निशोथ वर्गकी (कन्वाल्वुलस अश्वगन्धा) कहते है। यह क्षुद्रलता जाति की होती है। इसके मूल भी असगन्ध मे मिला दिये जाते है। इसमे असगन्ध जैसी गन्ध भी आती है। इनका मिलान कर दिया जाता है। यह विपाक्त होती है।

निर्णय—वाजार मे जो अश्वग मिलता है यह खेती करके उपजाय जाता है। और इसके मूल पुष्प आ से पहले उखाड लिए जाते हैं। इ समय यह मोटे मॉसल होते हैं

इसकी मोटाई कभी-कभी २ इंच व्यास तक की और मांसल होती है। इसके लेखक ने स्वय इन्हे उगाकर अंकुरोद्गम से लेकर फल पाकान्त तक स्वय अध्ययन किया है और नागौर तथा अन्य स्थानो मे जाकर पता लगाया है। अनुमान से इसमें एक अक्षर भी नही लिखा है। अत अश्वगन्ध लैटिन नाम वाले-विदानिया सोम्नीफेरा या विदानियाँ अश्वगन्धा है। (Withania Somnifera Duntal) ही है। बाजार का असगन्ध खेती किया हुआ इसीका मूल है।

नाम—म०—आसन्द आसकन्द। स०—अश्वगन्धा, हयगन्धा, बाराहकरणी, बलदा इत्यादि। हि०—असगन्ध, नागौरी असगन्ध। गु०—आसन्ध, घोडाआहन, घोडाआकुन। अं०—विंटर चेरी, ता०—आमकुलाङ्ग।

चरक—गण, बल्य, बृंहणीय, मधुर स्कन्ध।

स्थान—सम्पूर्ण भारतवर्ष, विशेषकर बम्बई, सिंध, राजपूताना, बंगाल, आसाम, उत्तर-प्रदेश, विहार, कृषि मालवा, बर्मा, सिंध का मोवापीर आदि जगहो मे खेती की जाती है।

ऐतिहासिक विवरण

वैदिक काल—प्राचीन साहित्य के अध्ययन करने से अश्वगन्धा के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पडता है। वैदिक काल मे वैदिक साहित्य के अवगाहन के बाद अथर्ववेद मे इसका विवरण १०/४/३ पर अश्वस्य वारह शब्द का प्रयोग मिलता है। यहा पर 'सर्पविष' चिकित्सा के लिए यह प्रयोग आया है। इसके साथ पुरुषस्य वारहू का भी पाठ है। इससे स्पष्ट है कि पुरुष के लिए बलप्रद और विषहारक यह औषधि अश्वगन्धा ही हो। यथा—

वर्मः सोचिस्त रुणकमश्वस्य बारह पुरुषय बारह रथस्य बन्धुरम्। —अथर्व वेद १०/४/२

अवश्वेत पदाजहि पूर्वेण चापरेण च उदप्लुतामिव दार्वहीना मसंम्बिव वा रुप्रम। —अथर्ववेद १०/४/३

धन्वन्तरि निघण्टु, कैय्यट देव निघण्टु और निघण्टु रत्नाकर ने अश्वगन्धा का गुण विषघ्न बताया है। इसी प्रकार वृष्य औषधियो मे वृषा नाम की औषधि का उल्लेख है। इसकी व्याख्या टीकाकारो ने आसक दिया है जो उचित नही हैं। वास्तव मे वृषा शब्द का प्रयोग अश्वगन्धा के लिए कैय्यट देव निघण्टु और मदनपाल निघण्टु ने अश्वगन्धा के पर्याय मे वृषा लिखा है। अत अश्वगन्धा के अर्थ मे वृषा का ग्रहण करना उचित है।

वैदिक कालीन दिव्य भिषको के योगो मे अश्वगन्ध का प्रयोग आता है। यथा—

१. विष्णु द्वारा निर्मित-महानारायण तैल।
२. ब्रह्मा प्रणित—महारास्नादि योग।
३ अश्विनी कुमारोक्त— फल घृत।
४ धन्वन्तरि प्रणीत-बला तैल।

इस आधार पर यदि अश्वगन्धा का समय निर्धारित करें तो वैदिक काल का द्रव्य होने के कारण इसका समय ईश्वीय सन् से ५००० से १०००० वर्ष पूर्व का होता है।

सहिता काल—चरक सहिता के काल मे अश्वगन्धा का प्रचुर प्रयोग हुआ। सबसे प्राचीन चरक सहिता मे इसका प्रयोग २८ स्थानो पर हुआ है। इससे स्पष्ट है कि अग्निवेश सहिता जिसका प्रति सस्कार चरक सहिता के रूप मे हुआ। बहुत प्राचीन काल बतलाता है।

सुश्रुत सहिता—सुश्रुत सहिता मे भी अश्वगन्धा का प्रचुर प्रयोग बताया है। सुश्रुत मे इसका प्रयोग २६ स्थानो पर मिलता है। इसको तैल-घृत-वर्ति-अगद-कल्क नस्य-अनुवासन-स्थापन-वस्ति मे आया है। व्रणो मे उत्सादन-पाटन-रोपण-कर्णपाली वर्धन--रक्तपित्त--कर्णशूल-नाडी श्वेत-तिमिर परिपोट और विसर्प के लिए हुआ है आभ्यन्तर प्रयोग के लिए कषाय-अवलेह-रसक्रिया-मोदक यवागू आसव-अरिष्ट-घृत-तैल इत्यादि मे प्रयोग किया है।

हारीत सहिता—उपलब्ध हारीत सहिता मे ५ स्थानों पर प्रयोग पाते है। इनमे अवलेह-क्वाथ-तैल की कल्पनाओं द्वारा उन्माद अपस्मार-यक्ष्मा-पाण्डु-श्वास-कास-प्रमेह-अर्श वातविकार भग्न और विष आदि मे प्रयोग है।

भेल सहिता—भेल सहिता मे इसके ४ प्रयोग मिलते हैं। इसका प्रयोग-कल्क-घृत तैल और निरूह वस्ति द्वारा क्षय गुल्म-उरस्तम्भ हृद्रोग-ग्रहणी-अपस्मार-उन्माद-ग्रन्थि श्लीपद व आमवात मे प्रयोग किया गया है।

काश्यप संहिता—उपलब्ध काश्यप सहिता मे ८ स्थानों पर कल्क, कषाय, तैल, फकर श्वेत, लेप वस्ति के लिए कल्प नाये रेवती ग्रह मे सेचन क्षय मे उद्वर्तन तथा सूतिक

ज्वर, वात ज्वर, शिर सन्ताप व वातव्याधि में मिलता है। यह सब संहिताओं से पूर्व की तथा ईसवीय सन से सैकड़ों वर्ष पूर्व की है। अत अश्वगन्धा का काल निर्धारण करें तो चरक संहिता के काल से भी पूर्व ईशवीय सन से कई शताब्दी पूर्व होगा।

संग्रह काल और निघण्टु काल—संग्रह ग्रन्थों मे अष्टाग संग्रह, योग रत्नाकर, भैषज्य रत्नावली, शार्ङ्गधर संहिता, भाव प्रकाश संहिता, रस रत्नसमुच्चय, रसार्णव मे पाते हैं। इनमें अश्वगन्धा के भूरि-भूरि प्रयोग मिलते हैं। जिनको चूर्ण, क्वाथ, कल्क, गुग्गुल, वटी, तैल, घृत, मोदक, वर्ति, आसव, अवलेह, लेप, व प्रदेह के रूप मे पाते हैं।

निघण्टुओं मे इसका वर्णन बहुत स्पष्ट रूप में मिलता है। जिसमे इनके नाम पर्याय व गुण का वर्णन है—यथा।

१—धन्वन्तरि निघण्टु ११ वीं १२ वी शताब्दी
२—मदन पाल निघण्टु १४ वी „
३—राज निघण्टु १४ वी „
४—कैय्यट देव निघण्टु १५ वी „
५—भाव प्रकाश निघण्टु १६ वी „

इसके बाद के संग्रहीत सब निघण्टुओं में अश्वगन्धा का वर्णन मिलता है। इस प्रकार अश्वगन्धा का विवरण बहुत प्राचीन काल से मिलता है।

आधुनिक काल—आधुनिक काल-इसमें बहुत से वनस्पति शास्त्रियों ने अश्वगन्धा का वर्णन दिया है। भारतीय, मिश्र और यूरोप के विद्वानों ने इनके क्रियात्मक विवरणों का भी अध्ययन किया है। यथा—

१— १८-८६ ईशवीय मे ट्रीवोर्ट ने निद्रा जनन और और अवसादन गुण।

२— १९-११ में मिस्टर पावर सेलुवे ने इसमें कुछ एसेंसियल आयल सुगन्धित तैल, शर्करा, राल, वसाम्ल, मोनो हाईड्रिक, अल्कोहल, और वियानिमोल क्षार तत्व का पता लगाया। इसके पत्र और काण्ड मे पोटेशियम नाइट्रेट की प्रचुर मात्रा प्राप्त की।

३—१९-२७ मे पिटोनी ने इसके उपक्षार को श्रम कारक बताया।

४—१९-३३ मे मजुमदार और गुहा ने इसमे कई ...न प्राप्त किए जिनमें प्रधान पोटेशियम नाइट्रेट, टैनिन, ग्लुकोज, फिटोस्टेरोल, स्टियरिक एसिड, पामिटिक ओलिक, लिनोलिक एसिड और बिहानिक एसिड प्राप्त किया।

५-१९-५६ में—डा० कुप्पा ने लखनऊ के केन्द्रीय प्रयोग में पेन्सिलिन जैसा जीवाणुनाशक द्रव्य व गठिया वातिकम के गुणों में ... ज्वर का आविष्कार किया। जिसकी परीक्षा दिल्ली व लखनऊ के केन्द्रीय प्रयोगशालाओं ने परीक्षण द्वारा सिद्ध किया।

शास्त्रीय आधार पर परिचय—शास्त्रीय आधार पर इसका सांगोपांग वर्णन एक स्थान पर प्राप्त नहीं होता। संहिता ग्रन्थों मे वनस्पति परिचायक २ ही नाम आते हैं- अश्वगंधा और अश्वावरोहिका, उनसे इसकी गन्ध तथा अश्वरोह का आभास मिलता है। किन्तु निघण्टु ग्रन्थों मे विशेष रूप से मिल जाता है। निघण्टुओं में इसकी आकृति, गुण, आदि बोधक नाम दिये हैं जिससे पर्याप्त प्रकाश मिलता है। वनस्पति परिचय के दृष्टिकोण से अश्वगन्धा की संज्ञाओं की व्युत्पत्ति देखें तो, उसे इस रूप में पाते हैं।

१—मूल बोधक संज्ञायें	२—उपमूल बोधक संज्ञायें
३—आकृति बोधक संज्ञायें	४—जाती बोधक संज्ञायें
५—उद्‌भव स्थान बोधक संज्ञायें	६—पत्र बोधक संज्ञायें
७—पुष्प बोधक संज्ञायें	८—फल बोधक संज्ञायें
९—रस बोधक संज्ञायें	१०—गुण बोधक संज्ञायें
११—गन्ध बोधक संज्ञायें	

मूल बोधक—

(१) कम्बूका—कम्बू-शंख-इव मूल यस्या सा। अर्थात् इसका मूल शंख की तरह उज्वल प्रारम्भ मे पतला मोटा और फिर पतला उतार चढाव वाला होता है।

(२) अश्व कन्दिका—अश्वस्य पुच्छ-इव मूल कन्दस्य आकारो यस्या सा। अर्थात् अश्वपुच्छ की तरह से, उतार चढाव वाला मोटा कन्द जिसमे हो।

(३) कुन्दिनी—कन्द-इव मूल यस्या सा कन्दिनी। अर्थात् इसके मूल में कन्द के समान कन्द हो।

उपमूल सूचक—

(१) अश्वारोहा—अश्वस्य पुच्छ इव आरोहो यस्या सा।

(२) अश्वारोह—अश्वस्य पुच्छ इव आरोह यस्य स।

(३) अश्वावरोहिका— अश्वस्य पुच्छ इव अवरोहो यस्याः सा।

(४) अश्वरोहक —अश्वस्य पुच्छ इव अवरोह यस्य स।

(५) अवरोहिका —अवरुहन्ति मूलानि पुनः पुन इति अवरोहिका।

(६) अवरोहक —अवरुहन्ति मूलानि पुनः पुन इति अवरोह।

अर्थात् अश्वगन्धा के मूल से बहुत से छोटे-छोटे उपमूल निकलकर अश्व पुच्छ की तरह से बन जाते है। यह अश्वगन्धा के पौधे जब १ वर्ष से पुराने हो जाते हैं तब इनमे बहुत से उपमूलो के निकलने पर यह आकृति बनती है। तथा अश्वगन्धा की शाखायें ग्रीष्म ऋतु मे सूखकर झड़ जाती हैं। और वर्षा ऋतु मे पुन, इसके मूल से शाखायें निकलती हैं। इन शब्दो से यही अर्थ निकलता है।

आकृति बोधक—

श्यामला-श्याम रूप लाति-इति श्यामला।

जाती बोधक—

क्षुपा—क्षुप इव आकृति यस्या सा।

उद्भव स्थान बोधक—

वनजा—वने जायते-इति वनजा।

कामरूपिणी—कामरूप देशे जायते इति कामरूपिणी।
अथवा—काम सुन्दर रूप विपते यस्या।
अर्थात्—कामरुप मे तथा देखने मे सुन्दर होने वाली औषधि।

पत्र बोधक सज्ञायें—

१. वाराहकर्णी—वाराहस्य कर्ण इव पत्र यस्या सा।

२. वाराहपत्री—वाराहस्य कर्ण इव पत्र यस्या सा।

३. पलाशपर्णी—पलाश वृक्षस्य पर्णमिव पर्ण यस्या सा। इसके बड़े पत्रो की आकृति मे भेद दिखाई पड़ता है।

४. गोकर्णी—गोकर्ण इव पत्र यस्या सा।

५. गन्ध पत्री—गन्ध युक्त पत्र यस्या सा।

६ वाराहिका—वाराहस्य कर्ण इव पत्र यस्या सा। अथवा वाराह इव पुष्टि दार्ढ्य च करोतीति वाराहिका।

७ वृत्तपर्णी —वृत्त पर्ण यस्या सा।

पुष्प बोधक—

कञ्चुका—
कञ्चुकमावरणमस्ति अस्या पुष्पे इति कञ्चुका

फल बोधक—

पर्पोटिवत्फला-पर्पोटिवत् फल यस्या सा पर्पोटिवत्फला।

रस बोधक—

कटुका—कटु रस करोति-इति कटुका।

गुण बोधक—

१ बल्या—बल वरल संवरण च, बलति संवृणोति शरीरस्य धातूमिति बल अथवा बलति सचरति-इति बलः, बलित् रोगेभ्यः करोति या सा बल्या।

२ बलदा—बलति, बलयति वा बल ददाति इति बलदा 'बल प्राणने' भ्वा पर चुरा,

३ पुष्टिदा—पुष पुष्टौ पुष्प धारणे—इति धातो. पोषति, पुष्यति, पुष्णाति, शरीर धातु वर्द्धनेन-इति, पुष्टि. पुष्टि ददाति या सा पुष्टिदा-अथवा पोषयति धातु वृद्धया जीवनमिति पुष्टि त ददाति इति पुष्टिदा।

४. वाजीकरी—अवाजी वाजी वात्यर्थं मैथुने शक्तः जियते यया सा वाजीकरी।

५. बलजा—बल प्राण जनयतीति बलजा।

६. पुण्या—पुण्य दर्शनीय, स्वर्गादि साधन सामर्थ्यं वा जनयतीति पुण्या।

७. पीवरी—पीवरत्व, स्थूलता आपादयति इति पीवरी। अथवा पीवरत्व अधिक दुग्ध शालिन करोति इति पीवरी।

८ वातघ्नी—दुष्ट वात हन्तीति वातघ्नी।

९. वरदा—वर जीवन बल वा ददातीति वरदा।

१०. वृषा—वृष इव, पुष्टी करोतीति वृषा।

११. कालप्रियकरी—काले रमणकाले वा प्रिय करोतीति कालप्रियकरी।

१२ प्रियकरी—प्रिय करोतीति प्रियकरी।

१३. हयप्रिया—हयाना प्रिया हयप्रिया।

१४. वरगात्रकरी—वर श्रेष्ठ गात्र करोतीति वरगात्रकरी।

गध बोधक—

१. अश्वगन्धा—अश्वस्य गन्ध इव गन्धो यस्या सा।

२ वाजिगन्धा—वाजिन गन्ध इव गन्धो यस्या सा।

३. अश्वगन्धिका—अश्वस्य गन्ध इव गन्धो यस्या सा।

४ तुरग गन्धा—तुरगस्य गन्ध इव गन्धो यस्या सा। अथवा-त्वरित गच्छति क्षायते इति तुरग, तुरग गन्धो यस्या सा तुरग गन्धा।

५ तुरग गन्धा—तुरगस्य घोटकस्य गन्ध. तुरग गध स-अस्ति-अस्यामिति तुरग-गन्धा।

६. कुष्ठगन्धिनी—कुष्ठस्य गन्ध इव गन्धो यस्या सा

७. हया—हय-इव गन्धवती।

८. हयी—हय-इव गन्धवती।

९ तुरगी—तर त्वरित गच्छति ज्ञायते गन्धेन या सा तुरगी।

१०. गन्धपत्री—गन्धेन युक्त पत्र गन्धपत्र सा गन्ध पत्री।

११. हयगन्धा— हय गध इव गधो यस्या सा।

१२. हरिगधा—हरः अश्वस्य गध-इव गन्धो यस्या सा।

इसके अतिरिक्त जितने अश्व या अश्वा के पर्याय हैं वे सभी गन्ध के साथ सयुक्त करने से इसके पर्याय होते हैं। अथवा गन्ध पद के लोपकर केवल अश्व या अश्वा के पर्याय इसके नाम बोधक है। यथा—

अश्व', घोर, घोटक, तुरग, तुरग, तुरगम, वाह, वाजी, मुद्गभोजी, वीतिः, सप्ति, सैन्धव, हरि हय', धाराट., अवनः, जीवन, जवी, गन्धर्व, वाहनश्रेष्ठ, श्रीभ्राता, अमृतसोद्भर, हस, शालिहोत्रा ययु, वाधी अर्वन्, वडवा, वृपा प्रभृति।

इन नामो के साथ गन्ध, गन्धा या गन्धी सयुक्त करके इसके पर्याय मिलते है। यथा—

धन्वन्तरि निघण्टु—
अश्वगंधा वाजीगन्धा कञ्चुकाश्वावरोहकः।
वाराहकर्णी तुर्गी वल्या वाजीकरीस्मृत॥

मदनपाल निघण्टु—
अश्वगन्धा तुरंगाह्वा गोकर्णाश्वावरोहक'।
वाराह कर्णी वरदा वल्यावाजोकरीवृषा॥

राज नि०—
अश्वगन्धावाजीगन्धा कम्बुकाष्ठा वराहिका।
वाराह कर्णी तुर्गी वनजा वाजिनी हयी॥

कालप्रियकरी वल्या गन्धपत्री हय प्रिया।
वाराह पत्री विज्ञेया त्रयोविंशति नामिका॥

कैय्यदेव नि०—
अश्वगन्धा कुष्ठगन्धा हयाश्वाश्वरोहकः।
वाराहकर्णी गोकर्णी तुरगी वरदा वृषा॥

भावप्रकाश नि०—
गन्धान्ता वाजीनामादिरश्वग धा हयाह्वया।
वाराहकर्णी वरदा वलदा कुष्ठ गन्धिनी॥

पर्याय मुक्तावली—
हय ग धाश्वगन्धाख्या वाजीग धाश्व गधकः।
वल्यातुरग गन्धा च कम्बुकाश्वावरोहक॥

शिवदत्त नि०—
कन्दिनी वाजी ग धा स्यात् क्षुपापर्णोद्भवत् फला।
वनजा वृंतपर्णी च कवी वाजीकर स्मृत॥

शालिग्राम नि० भूषण—
अश्वग धा वाजी ग धा कटुकाश्वावरोहक'।
वाराहकर्णी तुरगी वल्यावाजीकरी हया॥

अश्वगन्धा के गुण-कर्म विवेचन

सहिता ग्रन्थो मे गुण कर्मों का वर्णन एक स्थान पर निघण्टुओ की तरह नही मिलता किन्तु उनके गुण-कर्म का विवेचन भिन्न भिन्न रोगो की चिकित्सा मे विभिन्न भागो के प्रयोग के रूप मे मिलता है। अतः इसी क्रम को अश्वगन्धा के लिये भी अपनाया गया है। चरक सहिता मे अश्वगन्धा का वर्णन वल्य और वृहण कषाय मे मधुर-स्कन्द और विरेचन द्रव्यो के सग्रह मे पाठ है। प्रयोगो के आधार पर अश्वगन्धा के निम्नलिखित गुण—बाह्य और आभ्यन्तर प्रयोग के रूप मे उपलब्ध हैं।

आभ्यन्तर प्रयोग मे—

वृहणीय-वल्य वाजीकरण और विरेचनोपग योगो द्वारा हिक्का-श्वास- कास नाशक- विपनाशक-उरुस्तम्भ नाशक वात विकार नाशक व स्तन्य शोधक गुण मिलते हैं। बाह्य प्रयोग मे क्रिमी नाशक कण्डू नाशक-पिडिका नाशक कुष्ठ-शीत ज्वर -उदर रोग नाशक अर्शोघ्न-काश नाशक और ग्रन्थि नाशक-वस्ति के द्वारा इन रोगो की चिकित्सा मे कई प्रकार से इसका उल्लेख है। यह दीपन-लेखन-वातहर-अपत्यकर-जराहर-क्षतक्षीण हर-शुक्रसग और मूत्र ... आघक-हृदरोग हर-आध्मान

हर वध्न नाशक-पार्श्वशूल-कटिमूल-पृष्ठिशूल नाशक है। यह वृष्य-बल्य-बृंहण-आयुष्यप्रद-वलिपलितहर और योनि रोग नाशक है। चरक ने इसे मधुरस्कन्ध मे पाठ किया है अत: मधुर रस के गुण इसमे प्राप्त हैं।

सुश्रुत संहिता—इसमे आभ्यन्तर प्रयोग से रसक्षय जन्य कार्श्य नाशक-उर्ध्वभागहर—वात विकार शामक-और विशेषकर शोषहर कहा है।

बाह्य प्रयोग मे—व्रणरोपण-उत्सादन-कर्ण व्रण नाशक, कर्ण पालि वर्धन-श्लेष्म शोफ नाशक-वातरक्त नाशक-वातविकार नाशक उन्मादहर विवन्धघ्न तिमिरनाशक कर्णशूल नाशक, रेवतीग्रह मुखमण्डिका ग्रह नाशक और वस्ति प्रयोग से रक्त पित्तनाशक कहा है।

अष्टाङ्ग हृदय—वाग्भट ने आभ्यन्तर प्रयोग मे वात विकारहर, रक्तपित्त क्षतक्षय नाशक, गुल्म वन्धता नाशक कार्श्य नाशक वालपोषक और वाजीकरण कहा है।

वाह्य प्रयोग में वात नाशक; अर्शोघ्न, कुष्ठघ्न, लेखन दीपन, अञ्जन से उन्मादहर, कर्ण वर्धन कारक, उत्सादन, और रोपण कर्म मे प्रयोग किया है।

काश्यप संहिता—इसके वातविकारनाशन के लिये अश्वगन्धा निर्मित तैलपान की विधि दी है। बाह्य प्रयोग मे रेवती ग्रह-क्षयनाशक वातहर लेखन वस्तिद्वारा दीपन-सूतिका ज्वरहर और सूतिका के शिर: शूल दूर करने के लिये प्रयोग किया है।

हारीत संहिता—इसमे अपस्मार वातव्याधि और विषनाशन के लिये आभ्यन्तर प्रयोग किया है।

बाह्य प्रयोग मे भग्न-व्रण नाशक और सधानकारक बताया है।

भेल संहिता—भेल संहिता मे गुल्म-उन्माद और अपस्मार नाशन के लिये घृत का प्रयोग किया है। उरुस्तम्भ-श्लीपद-आढयवात मे लेप और उत्सादन के रूप में बाह्य प्रयोग किया है।

निघण्टुओ मे अश्वगन्धा के गुण

धन्वन्तरि निघण्टु मे—

अश्वगन्धा कषायोष्णा तिक्ता वातकफापहा।
विष व्रणक्षया हन्ति कान्ति वीर्यं बल प्रदा॥

अर्थात् अश्वगन्धा रस मे कषाय और तिक्त रस वाला है। यह उष्ण वात कफनाशक विष व्रण और क्षय का नाशक है। कान्ति, वीर्य और बलप्रद है।

मदनपाल—

अश्वगन्धानिलश्लेष्म शोफश्वित्रक्षयापहा।
बल्यारसायनी तिक्ता कषायोष्णातिशुक्रला॥

राज निघण्टु—

अश्वगन्धाकटूष्णास्यात् तिक्ता च मदगन्धिका।
बल्या वातहरा हन्ति कास-श्वासक्षय व्रणान्॥

कैय्यदेव निघण्टु—

अश्वगन्धा कषायोष्णा तिक्ता वृष्या रसायनी।
बल,पुष्टि प्रदा हन्ति कफ श्वासानिल व्रणान्॥
शोफकण्डू विषश्वित्र कृमिश्वास क्षतक्षयान्॥

भाव प्रकाश—

अश्वगन्धानिल श्लेष्म शोफ श्वित्र क्षयापहा।
बल्यारसायनी तिक्ता कषायोष्णाति शुक्रला॥

शालिग्राम निघण्टु—

अश्वगन्धानिलश्लेष्म शोफ श्वित्र क्षयापहा।
बल्या रसायनी तिक्ता कषायोष्णाति शुक्रला॥

राजवल्लभ निघण्टु—

अश्वगन्धा तु वातघ्नि बल्या-वृष्या रसायनी।

अर्थात् ऊपर के विचारो से स्पष्ट है कि अश्वगन्धा स्वाद मे कषाय-तिक्त है। विपाक-मधुर, वीर्य मे उष्ण है। राज निघण्टुकार स्वाद में कटु भी मानते हैं। यह बलदायक रसायन अत्यन्त शुक्र वर्धक शोफ श्वित्र और क्षय नाशक है। यह बल और पुष्टि देने वाली कफ-कास और वात शामक शोफ-कण्डू विष-श्वित्र-कृमि-क्षत क्षय हर है। इनके अतिरिक्त इन्हीं गुणो को निघण्टु रत्नाकर और निघण्टु शिरोमणि ने कुछ विस्तारपूर्वक विवरण दिये हैं। यथा—

अश्वगन्धा जराव्याधि नाशकस्तुवर स्मृत।
धातु वृद्धिकर किंचित् कटुका बलद स्मृत॥
कान्तिप्रदश्च सप्रोक्तस्तथाच मधुगन्धिक.।
शरीरपुष्टिकारी च वृष्यश्चोष्णो लघुस्मृत॥
वातक्षय श्वासकास व्रण श्वेतच कुष्ठकम्।
कफ विष कृमीन शोफ तथा चैव क्षतक्षयम्॥
कण्डू नाशयतीत्येव पूर्वाचार्यै निरूपितम्॥

—निघण्टु रत्नाकर

अश्वगधा कटूष्णा च तिक्ता बल प्रदायिनी।
वातश्वास कासघ्नी क्षय व्रणहरा नृपे॥

वातोद्‌भव कफघ्नी च विपव्रणहरातथा।
कान्तिदा निपजा श्रेष्ठ प्रोक्ता धन्वन्तरे ध्रुवम्॥
शोफ कण्डू स्वित्र कुष्ठ क्रमिक्षय-क्षयापहा।
कैये प्रोक्ता भिपक् श्रेष्ठा मर्दने शुक्रदा स्मृता॥
—निघण्टु शिरोमणि।

अर्थात् निघण्टु रत्नाकर मे कपाय रस तथा स्वल्प कटु रस वाला, उष्ण और लघु गुण वाला, वात नाशक, जराव्याधि विनाशक, धातु वृद्धि करने वाला, वृष्य-श्वास कास-व्रण-श्वेत कुष्ठ, विप, कृमि-शोफ क्षतक्षय, और कण्डू नाशक कहा है।

निघण्टु शिरोमणी मे निम्न गुणो का संग्रह प्राप्त होता है। कटु-तिक्त रस उष्ण वीर्य, वात नाशक, कफ नाशक, श्वास-कास शोफ नाशक, क्षयनाशक, व्रणहर, विप व्रण नाशक, कण्डू, श्वित्रकुष्ठ, कृमि, क्षत, क्षयनाशक वलप्रद कान्तिप्रद और मर्दन से शुक्रकारक है। शोढल इसके लेप मे ग्रन्थि, गलगण्ड तथा अपची नाश होता है, मानते हैं। ?

उपरोक्त विवरणो के द्वारा पता लगता है कि अश्वगन्धा के रस के सम्बन्ध मे अलग-अलग मन्तव्य शास्त्रकारो ने प्रकट किया है। धन्वन्तरि निघण्टु, मदन पाल निघण्टु, कैय्यट देव निघण्टु, शालिगाम निघण्टु, भूषण और भाव प्रकाश निघण्टु मे इसका रस कपाय और तिक्त, राज निघण्टु मे तिक्त और कटु तथा निघण्टु रत्नाकर में कपाय और कटु का उल्लेख है। प्रत्यक्षत स्वाद लेकर देखने पर बाजार से प्राप्त नागौरी अश्वगधा का मूल ईपद्‌तिक्त तथा पश्चात मे मधुर मालूम होता है। सौराष्ट्र जामनगर का अश्वगधा मूल ताजा स्वाद मे तिक्त व कटु ज्ञात होता है। शुष्क मूल मे सिर्फ तिक्त रस ही मिलता है। इसके पत्रो का रस तिक्त-कपाय तथा काण्ड के त्वक् का तिक्त और भीतरी मज्जा भाग का तिक्त और मधुर होता है। कच्चा फल कटु व तिक्त, सुपक्व तिक्त और मधुर होता है। यदि इसके प्रयोग करने से पूर्व दुग्ध या जल मे शुद्ध कर लिया जाय जैसा कि रसायन विधि मे उल्लेख है तो उसके मूल मे मधुर रस पाते हैं। अत इस आधार पर इन विभिन्न मतो का समाधान हो सकता है। अन्यथा इसका प्रधान रस तिक्त ही है।

आधुनिक द्रव्य गुण विज्ञान (फार्माकागनासी) मे अश्वगन्धा के निम्न गुण मिलते हैं—

ड्रूवोर्ट ने इसमे निद्राजनन और अवसाद गुण कहा है। कीर्तिकार और वसु ने कई स्थान के लोगो के प्रयोग की दृष्टि से वल्य, रसायन, वाजीकरण, वालपोषक, जरा शोष मे हितकारी, आमवात मे लाभप्रद तथा मादक, मूत्रल और मोटापा करने वाला कहा है।

आर. एन. चोरी ने इसे पुष्टिप्रद, मूल का सान्द्रघन भाग वालको को दूध या मक्खन से देने पर पोषण मे सहायक, वार्ध्यक्य, दौर्बल्य, क्षय एव आमवातिक है। मधुर विपाक होने से भी वातशामक है।

वात की वृद्धि शीत गुण से होती है। अत इसका वीर्य एव गुण उष्ण है जो कि शीत के विपरीत है। अतएव गुण एव वीर्य के द्वारा यह वातशमन करता है ऐसा भी कह सकते हैं।

भौतिक सघटन की दृष्टि से देखे तो वायु का उत्पादक महाभूत आकाश है। इस आकाश और वायु से वात दोष की उत्पत्ति होती है। कटु और कपाय रसो मे वर्तमान अग्निभूत और पृथ्वी का आग्नेय गुण और पार्थिव गुण वायुदोष के गुणो से विशेष है। अतः इस आधार पर कह सकते हैं कि वायु का यह शमन करता है। क्योकि—"सामान्यस्य च वृद्धि कारणत्व ह्रसति विरोध कारणे बोधकम्" ऐसा चक्रपाणि दत्त का मत है।

कफहर—

(१) इसमे तिक्त, कटु, कपाय रस होता है जो कफ शामक एव शोषक होता है।

(२) इसका गुण उष्ण एव लघु है। जो कि कफ के गुरु और शीत के गुण के विपरीत है।

(३) कफ शीत होता है जिसके विपरीत अश्वगन्धा की उष्ण वीर्य उसके शैत्य को नष्ट करता है। अतः कफ का शमन होता है।

(४) श्लेष्मा का भौतिक सगठन पृथ्वी और जल है। तिक्त, कटु, कपाय रसो के भौतिक सघटन मे अग्नि, वायु और आकाश की प्रधानता रहती है। अत. यह भौतिक सघटनो की भिन्नता श्लेष्मा के भौतिक सघटन के प्रति विरोध भाव रहता है। अतः ह्रास विशेषश्च के अनुसार यह कफ का नाशक होता है।

धातुओ पर क्रिया—

रस धातु—रस धातु आप्य है। इसकी वृद्धि से सभी

धातुओ का वर्द्धन एव पोषण होता है। अश्वगन्धा को बृंहण एव वृष्य कहा गया है। बृंहण एव वृष्य कर्म के लिए रस की आवश्यकता होती है। अतः ऐसा कह सकते हैं कि अश्वगन्धा से रस धातु का आप्यायन होता है।

रक्तधातु—तिक्त कषाय रस होने के कारण रक्त का शोधक है। अतएव इसका प्रयोग व्रणनाशन एव व्रणरोपण के लिए किया गया है। इसके अतिरिक्त कुष्ठ, वातरक्त, विसर्प, अपचि, दुष्टव्रण आदि मे भी प्रयोग देखने में आता है।

मांस धातु-यह बृंहण कार्य प्रमुख रूप से करता है। बृंहण मे अन्य धातुओ की अपेक्षा मास का वर्द्धन अभिप्रेत होता है। मधुर विपाक होने से मांस का वर्द्धन करता है, ऐसा कह सकते हैं।

मेद धातु-यह मेद का वर्द्धन नही करता अपितु तिक्त, कटु, कषाय रस के कारण लेखन करता है।

अस्थि-वह अस्थि धातु का पोषण करता है। बालशोष में अस्थि धातु का दौर्बल्य उत्पन्न हो जाता है। इसका प्रयोग धातु वर्द्धन के लिए होता है। अतः यह अस्थि का भी पोषण करता है। ऐसा कह सकते हैं।

मज्जा शुक्रधातु—

इसका विशेष प्रयोग वाजीकरण के लिए किया गया है। शुक्रधातु पर कार्य करने वाले द्रव्य चार प्रकार के होते हैं—

(१) शुक्र सुतिकर
(२) शुक्र वर्द्धक
(३) शुक्र स्रुतिवृद्धिकर
(४) स्तम्भक

अश्वगन्धा को शुक्र वर्द्धक कह सकते हैं। क्योंकि इसका प्रयोग क्षीण शुक्र तथा अपत्यार्थी वन्ध्या एवं काक वन्ध्या के लिए देखते हैं। इसका विपाक एव अनुरस मधुर है। अतएव यह शुक्र का वर्द्धन करता है।

मूत्र-यह मूत्र का प्रवर्तक है। मूत्रकृच्छ्र और मूत्रदाह मे इसका प्रयोग मिलता है। आधुनिक वैज्ञानिक भी इसे मूत्रल मानते हैं।

पुरीष-यह अधोभागहर है। तथा वात शमन करता एव विबन्ध नाश करता है। अतः इसे मलसारक कह सकते हैं।

सन्देह निवारण

कुछ लोगो का विचार है कि अश्वगन्धा सदिग्ध द्रव्य है। परन्तु इसके पर्यायो के देखने से तथा क्षुप के मेल होने के कारण कोई सदेह नही मिलता। सदेह के आधार पर कुछ शब्द कहे जाते हैं, जो केवल शिवदत्त नाम के लेखक के विवरण के आधार पर हैं। इन्होने निम्न श्लोक लिखा है—

कन्दिनी वाजीगंधा स्यात् क्षुपा पर्पोटीवत्फला।
वनजा वृत्तपर्णी च कन्दा वाजीकर. स्मृत ॥

इस विवरण मे कन्दिनी यह शब्द और कन्द. मे दो शब्द इस प्रकार के है जो अश्वगन्धा के मूल में कन्द जैसा होता है इसके पोषक हैं। कन्द का आकार इस प्रकार का होना चाहिये कि कन्द ग्रीवा के पास कुछ पतला हो, नीचे की तरफ मोटा और फिर क्रमशः पतला हो गया हो। क्योकि इसके पर्याय कम्बूकाष्ठा और कम्बूका हैं। यह विशेषण बाजार मे मिलने वाली अश्वगधा के कन्दो से अधिक मेल खाता है। चरक-सुश्रुत-वाग्भट इत्यादि के काल से लेकर १६ वी शताब्दी तक के निघण्टु लेखक भावमिश्र के समय तक किसी ने इसे कद वाचक पर्याय नही दिया है। कम्बु और कम्बुकाष्ठा ऐसा लिखा है। केवल शिवदत्त ने जो करीव १६७७ ई० मे पैदा हुये थे। यह भावमिश्र के बाद का समय होता है। इन्होंने मूल गध अश्व दो तरह के या अश्वमूल की तरह से गधवाला बताया है जो इसके मूल के स्वाभाविक गध से मिलता जुलता है। गुजरात के अश्वगन्ध, घोड़ा, आरहन या विधानि या सोम्नीफेरा के मूल मे भी अश्वगन्धवत् तीक्ष्ण गन्ध मिला रहता है। बाजारू अश्वगन्धा को भी मिलाकर रखा जाय तो दूसरे दिन इसमें भी मूत्र जैसा गन्ध आता है। अत गन्ध-तो इसमे निर्विवाद ही है। जहाँ तक कद का प्रश्न है इसका कद नये क्षुप से निकालने पर शुष्क कन्दवत् भगुर होता है। बाजारू अश्वगन्ध भी शुष्क कन्दवत् ही टूटता है।

शिवदत्त ने किस आधार पर लिखा है यह कहा नही जा सकता। वास्तव मे मूल प्रारम्भ मे काफी मोटे होते है। और सूखने पर उनका बहुत सा भाग शुष्क होकर सिकुड़ जाता है। इसलिये सामान्यत देखकर यह कहा जा सकता है।

शिवदत्त ने परिचय मे जिन शब्दो का प्रयोग किया है वह निर्विवाद गुजरात का घोडा आहन ही है क्योकि पर्पोटिवत् फला जो लिखा है वह ठीक इस गुजराती शब्द से साम्य रखता है। पर्पोटी काची या मकोय को कहते हैं और उसके फल की तरह यह फल होता भी है किन्तु इसका मूल कन्द की तरह तो नही होता किन्तु कद की तरह पिष्टमय भाग अधिक होता है।

इसके अन्य पर्यायो को देखने पर इसकी आकृति स्पष्ट हो जाती है। जैसे जाति बोधक शब्द क्षुपा लिखा है। श्यामला, कामरूपिणी ये सब शब्द विथानिया सोम्नीफेरा मे ही अधिकतर उपयुक्त लगते हैं। पत्रो की जो सज्ञाये की गयी है जो ठीक इसके आकार के बोधक हैं। पलाशपर्णी एक विशेषण राजनिघण्टुकार ने दिया है। यहाँ पलाश का अर्थ पलाशं पर्णवत् पर्णानि ऐसा नही है बल्कि पलाश वर्णवत् हरित वर्ण वाली पत्रावली का बोधक है। पलाश के पत्ते अश्वगन्धा के पत्र की तरह नहीं होते। यह कुछ त्रिकोणाकार त्रिकोणायत होते है। पर्ण शब्द हमेशा हरित पत्रो के लिये कोषकारो ने प्रयोग किया है। राजनिघण्टु मे भी इसी अर्थ मे प्रयोग हुआ है। अत. पलाशपर्णी हरित बोधक विशेषकर जान पडता है।

रस बोधक शब्द कटुका–यह संज्ञा शालिग्राम निघण्टु भूषण ने दिया है जो तिक्त और कटु दोनो रसो का बोधक है।

गन्ध-बाजार मे मिलने वाले तथा जगली दोनो प्रकार के अश्वगधा मे मिलता है। कुष्ठ गधिनी जो दूसरा शब्द दिया हुआ है वह शब्द कुष्ठ औषधि की तरह गध नही अपितु कुष्ठ व्रणवत् विरतगधी अर्थ मे ठीक लगता है।

गुण वाचक जो नाम हैं, उनमे पुण्या, पीवरी, वल्या, वृषा काल, पियकरी, वरगात्र काल, ये शब्द स्पष्ट अर्थ को बतलाते हैं।

चरक ने दशेमानि मे अश्वगधा का पाठ किया है तथा मूलासवो मे भी पाठ किया है। यहाँ पर यह कहना है कि वल्या होने के कारण दशेमानि मे पाठ किया है तो क्षतक्षीण मे चरक और सुश्रुत दोनोंने पाठ नही किया है। अत इसका वल्य गुण इन व्याधियो में प्रयुक्त न होने से सदेहास्पद है इस तर्क मे कोई सार नही है। क्योकि क्षत-क्षीण व्याधि मे केवल बलदायक औषधि ही प्रयुक्त करना उपयुक्त नही अपितु व्रणरोपण, व्रण शुद्धिकर, रक्तावरोधक इनका भी उपयोग होता है। इस रोग के प्रधान लक्षण उरोरुक् शोणित दर्प, कास, सरक्त मूत्रत्वं पार्श्व पृष्टकटिग्रह इत्यादि होते हैं। अत वहाँ पर अग्निदीपन, वेदनाहर, कास श्वासहर, रक्तावरोधक, पार्श्वपृष्ठकटि शूलहर औषधियो का प्रयोग किया है। अत अश्वगन्धा का उसमें न होना किसी विशेष बात का द्योतक नही होता।

चरक और सुश्रुत ने विरेचनोपग और उर्ध्वभागहर औषधि के पाठ में दिया है वह तो इसके गुणो को देखते हुए उचित ही हैं। जयकृष्ण श्री इन्द्र जी भाई ने जो लिखा है कि इसके प्रयोग से वमन विरेचन होता है वह तो ठीक ही है। निघण्टुओं मे लिखे गुणो के अनुसार इसमे उष्ण कटु जो गुण है, कषाय, कटु, तिक्त ये रस तथा विष व्रण के लिए प्रयोग करनें को लिखा है। शोटल ने अश्वगन्धा का लेप ग्रन्थि, गलगण्ड, अपच मे लेप करने के लिए लिखा हैं। यह सब तो इसी के पोषक हैं। चरक, सुश्रुत ने भी अकेले इसका प्रयोग नही किया है। कई द्रव्यो के साथ प्रयोग किया है। रस मे तिक्त होने के कारण ऊर्ध्वभागहर क्रिया मे सहायक होता है। अत अपने रस, गुण, वीर्य, विपाक के आधार पर जितने कार्य और गुण लिखे हैं वह धातुक्षत, मांसक्षय या किसी कारणवश शरीरक्षय में बलप्रदायक होने के कारण लिखा है कोई क्षत क्षीण मे प्रयोजन नही है। क्षयरोग मे भी अश्वगन्धा का प्रयोग मिलता है। अत क्षत क्षीण के अधिकार मे न पाठ करने से इसके बल्य गुण का विरोधाभास उचित नही पडता है।

विशेषता—हमने यह जानने के लिए कि अश्वगन्धा कहाँ-कहाँ होता है कोशिश की। बाजारू अश्वगन्धा को नागौरी असगन्ध भी कहा करते हैं। अत राजस्थान के नागौर प्रदेश मे जाकर देखने की भी चेष्टा की। वहाँ के व्यापारियों से भी पूछा ? इस समय नागौर से अश्वगन्धा का व्यापार नही चल रहा है ऐसा ज्ञात हुआ। नागौर के आस-पास की भूमि रेतीली उर्वरा है। बरसात के दिनो मे नागौर और उसके आस-पास के स्थानो मे यह अत्यधिक रूप में उपजता है। भूमि भेद से सौराष्ट्र की अपेक्षा नागौर का असगन्ध अच्छा और पिष्टमाग युक्त

होता है। बाजारों में जो असगन्ध आता है वह बम्बई, अमृतसर की मंडियों से संग्रहीत होकर चारों तरफ बिकता है। अमृतसर के छोटे-छोटे कई स्थानों से इसकी सप्लाई की जाती है। बहुत चेष्टा करने पर भी यह पता न लग सका कि किसी जगह खेती करके यह उत्पादित होती है।

इसमें एक प्रकार के पुनर्नवा के मूल का मिश्रण भी किया जाता है जो विशेषकर चित्रकूट या आस-पास तराई में उत्पन्न होते हैं। ये ठीक इससे मिलते-जुलते होते हैं। किन्तु ऊपर से वर्ण कुछ अश्वगन्धा की अपेक्षा गहरे भूरे रङ्ग का होता है।

लेप—

सन्निपातिक शोफ पर लेप	सु० सु० ३७/७
लिंग वृद्धयर्थ लेप	शा० उ० ११/११२-११४
,, ,, अन्य	,, ,, ११/११५
वातरक्ते लेप	मा० प्र० वा० चि०
श्लेष्म शोफ लेप	मा० प्र० शो० चि० २३
अश्वगन्धादि लेप	वंगसेन सं०
अश्वगन्धादि लेप समान पाठ	भै० र० व्रण शोथ चि० श्लो० ४६
स्नायु रोग पर लेप	योग रत्नाकर स्नायुक चि० श्लो० ४
कुष्ठादि लेप	यो० र०

प्रलेप—

उरुस्तम्भ में उत्साहनार्थ	च० चि० २७-श्लो०५०-५१
श्लेष्म शोफ पर प्रलेप	सु० सू० अ० ३७ श्लो० ६
अजगन्धादि ,,	यो० र० व्रणशोफ चि०
लाक्षा गुग्गुलु	भग्न चि०

प्रदेह—

उदर रोग पर प्रदेह	च० चि० अ० ३०/१०७-१०८
ग्रन्थि पर प्रदेह	,, १/१२३
श्लेष्म वातरक्त पर प्रदेह	सु० चि० अ० ५/१०
कफज विसर्प ,,	,, १७/१४
उदर रोग प्रदेह	च० द० उदर रोग चि०

आसव अरिष्ट—आसव अरिष्ट कल्पनायें समान ही हैं। आसव और अरिष्ट की विधि संहिताओं में समान ही मिलती है। किन्तु शार्ङ्गधर ने आसव को शीतजल में संधान कर और अरिष्ट को क्वाथ में संधान कर बनाने के लिए कहा है।

आसव कल्पनायें—

मूलासव (गणपा०)	च० सू० २४/४६
अश्वगन्धारिष्ट	भै० र० (मूर्छा रोग) १५/२१
बलारिष्ट	भै० र० वा० व्या० चि० ६०७/६१०
सारस्वतारिष्ट ,,	रसायन चि० १८२/१९६

अगद—

गन्ध हस्तीनामागद	च० चि० २३/७०-७६
महागन्धहस्तीनामागद	,, २३/७७-८९
विश्वम्भर कीट विषगद	सु० क० ८/५१

धूपन—

अर्शसि धूपन	च० चि० १४/५०-५१
,, ,,	अ० हृ० चि० ५/१९

धूम्र—

कासे धूप प्रयोग	च० चि० १८/७४-७५

क्षार—

हिक्का श्वासकासयोश्च क्षार प्रयोगः	च० चि० १७/११७

तैल—

अयुविध तैल	च० चि० ३/२६७
उरुस्तम्भे पामार्थ तैल	च० चि० २७/४३-४४
रास्ना तैल	,, २८/१६५-१६६
वृषमूलादि तैल	,, २८/१७०-१७१
वात व्याधि में तैल	,, २८/१७२-१७५
नारायण तैल	हारीत सं० वा० व्या० २०/१०८-११८
बलादि तैल ,, ,,	वृ० स्था० २०/७०-८५
कर्ण पालिवर्द्धनार्थ	सु० सं० सू० १६/१९
द्विपञ्चमूलादि तैल	भै० सं० उरु० चि० १६
कर्णपालि वर्द्धनार्थ तैल अन्य	सु० सं० सू० १६/२१
बला तैल	सु० सं० चि० १५/२९-३९
उरुस्थहर तैल	,, ,, १५/१८-१९
अभ्यगार्थ तैल	,, उ० ३५/४
बला तैल (सु० सपा० भेद)	अ० हृ० शा० २/४७-५२
महाबला तैल (अ० हृ० सं०)	च० द० वा० व्या०
नारायण तैल (हा० पा० मे०)	,, ,,
महानारायण तैल	,, ,,
नारायण तैल (महत्)	भै० र० वात व्याधि चिकित्सा
त्रिशती प्रसारणी तैल	,, ,, ,, ,,

सप्तशती प्रसारणी तैल भै. र वा. व्या चि. ३८३-३९३
अष्टादशशतक प्रसा तै. ,, ,, ,, ४०८-४१८
महाराज ,, ,, ,, ,, ४१९-४३८
सिद्धार्थक तैल ,, ,, ,, ,, ५२८-५३५
महाकुक्कुटमास तैल ,, ,, ,, ५४५-५५४
महामाष तैल (सामिष) ,, ,, ,, ५७०-५७७
महामाष तैल(निरामिष) ,, ,, ,, ५७८-५८४
माष बलादि तैल ,, ,, ,, ५८५ ५८१
शतावरी तैल (वृ.यो. र) ,, ,, ,, ५९२-५९३
महाविषगर्भ तैल (वृ. यो र) भै. र वा. व्या. चि श्लो ५९६-६०६

गुडूची तैल (वृ०) भै०र०वा०र०चि० १४०-१४७
महारुद्र गुडूची तैल ,, ,, ,, ,, १५४-१५९
महापिंड तैल ,, ,, ,, ,, १६०-१६६
विष तिन्दुक तैल ,, ,, ,, ,, १६६-१६९
प्रमेह मिहिर तैल ,, प्रमेह चिकित्सा २२८-२३६
श्री बिल्व तैल ,, अम्लपित्त चि०
शतावरी तैल ,, कर्णरोग चि०
कुमारी तैल (भा० प्र०) ,, शिरोरोग चि० १६२
काशीशाद्म तैल ,, पानरोग चि०
अश्वगन्धा तैल(भा.प्र मे) ,, वाजीकरण चि० ३५५-३५६
सुरवल्लभ तैल ,, स्नायु रोग चि०
आदित्य पक्व तैल ,, खालित्य चि०
लक्ष्मी विलास तैल ,, मस्तिष्क रोग चि०
ज्वरापहर तैल ,, चि० क० ज्वर चि० १२०
वातहर तैल ,, वा० व्या० चि० २८७
वातहर तैल अन्य ,, ,, २९०-२९५
अश्वगन्धा तैल च० द० वा० व्या०
त्रिशति प्रसारिणी तैल ,, ,,
सप्तशति प्रसारणी तैल ,, ,,
त्रिशतीय प्रसारणी तैल ,, ,,
एकादशशतिक प्रसारणी तैल ,, ,,
अष्टदश शदिक प्रसारणी तैल ,, ,,
महाराज प्रसारणी तैल ,, ,,
कुष्ठ्य तैल ,, ,,
नारायण तैल (पाठ भेद) शा० स० म० ख० ९/१०१-११०
क्वाथ तैल

घृत—
वाजीकरण घृत च० चि० अ० २/३३-३८
अमृत घृत ,, ,, २३
वात परिपोटहर घृत सु० चि० २५/१४
नागबला घृत अ० हृ० चि० ३/११९
दाधिक घृत अ० हृ० चि० १४/१३
बालग्रहहर घृत अ० हृ० उ० ३/५४
वाजीकरण घृत अ० हृ० उ० ४०/२१
नागबला घृत अ० हृ० यक्ष्म चि० २४
अश्वगंध घृत च० द० वा० व्या०

कल्क—
कुष्ठादि कल्क च० सू० ३/८
उत्साहनार्थ कल्क च० चि० २७/५०
उत्मादन कल्क सु० सू० ३७/३०

चूर्ण—
अवगंधादि चूर्ण यो० र० यक्ष्माधिकार १६४
बलादि चूर्ण भै० रत्नावली ज्वर
अश्वगंधादि चूर्ण शा० म० खण्ड अ० ६/१५६
अजमोदादि चूर्ण र० र० स० २२/९०

वस्ति—
दीपन-लेखन वस्ति च० सि० स्था० ३/३८
अनुवासन वस्ति अ० सि० अ० ४/४
यापना वस्ति च० चि० १२/१६
हलमात्रा सिद्धि वस्ति भै० सं० ७/१७

वर्ति—
व्रण रोपण वर्ति सु० सू० ३७/३०
विरेचन वर्ति च० सि० ८/१४०

संग्रह और संरक्षण—

वर्षा ऋतु मे अश्वगंधा के मूल से नये आरोह निकलते है तथा बीज बोने पर भी नये अंकुर उगते हैं।

मूल—पुष्पित होने से पूर्व मूल का संग्रह उचित होता है। इस समय मूल मुलायम होती है और स्टार्च का भाव अधिक सग्रहीत होता है और सौत्रिक अंश बहुत ही कम होते हैं।

कांड—काण्ड की आवश्यकता केवल क्वाथ मे होती है। अतः फल परिपक्व होने के बाद इनमे रस और गुण

(शेषांश पृष्ठ ४२४ पर)

अधोगुडा

अधोगुडा कोई सन्दिग्ध द्रव्य नही है, इसका प्रयोग चरक ने एक ही स्थान पर किया है। यह चरक सूत्र स्थान अ० १/७७ पर आया है, और मूलिनी वर्ग मे इसका नाम दिया गया है। और इसमे भ्रम चक्रपाणि ने उपस्थित किया है। उन्होंने अधोगुडा शब्द से (अधोगुडा वृद्धदारुक) लिखा है। गुडा यह शब्द निघण्टुओ मे स्नुही के लिये आया है। और यह विरेचक है चरक ने भी विरेचक औषधियो में इसका पाठ किया है। यथा—

स्नुक् स्नुही च महावृक्षो गुडा निस्त्रिंशपत्रक ।
समन्त दुग्धा गण्डीरः सिहुण्डो वज्र कण्टकः ॥
(धन्वन्तरि नि०)

स्नुही सुधा महावृक्षः क्षीरी निस्त्रिंश पत्रिका।
शाखाकण्टः गुडास्यच्च सेहुण्डो वज्रकण्टक ॥
(राजनि०)

(१) गुडा शब्द का कोश के अनुसार अर्थ करें तो 'गुडयतिसकोचयति जडी करोति देहेन्द्रियादीनि य स गुड, अधोभाग यत् गुडयति स अधोगुडा स्नुही' (२) पुन शब्द कल्पद्रुम मे गुडा शब्द का अर्थ स्नुही वृक्ष लिखा है। पुनश्च इसका अर्थ इस प्रकार कर सकते है "गुडयति रेचन क्रियया अधोभागे विशेषेण प्रकाशयति कार्य या सा अधोगुडा" इन अर्थो से स्पष्ट है कि रेचन वर्ग मे पाठ करके चरक का अभिप्राय अधोगुडा शब्द से स्नुही का ही वर्णन दिया है। (३) पुन यदि हम स्नुही वृक्ष की स्थिति के अनुसार अर्थ करें तो ऐसा अर्थ करते है—

"अध अधोभागे स्व इन्द्रियाणि गुणयति सकोचयति मूलभागे स्थिरी करोति या सा अधोगुडा।" अर्थात् जो वनौषधि अपने अङ्गो को शाखा इत्यादि को अपने मूल में ही सकुचित करती है, उसे अधोगुडा कहते हैं। इस व्युत्पत्ति से जिसने स्नुही को देखा हो उसे यह व्युत्पत्ति बिल्कुल ठीक बैठेगी। क्योकि स्नुही मे मूल भाग से ही डण्डे की आकृति के काण्ड निकलते हैं। और ऊपर ५–६ फीट तक जाते है। अत. चरक सहिता का अधोगुडा नि सन्देह स्नुही है।

चक्रपाणि ने जो वृद्धदारुक लिखा है वह युक्तिसंगत नही जान पडता। यदि हम कोश और निघण्टुओ के पर्यायो का अध्ययन करें और देखें तो गुडा या अधोगुडा ये शब्द विधारा के पर्यायो मे नही मिलता। यथा—

वृद्धदारुक आवेगी जुङ्गको दीर्घवालुकः ।
वृद्ध. कोटर पुष्पी स्यादजान्त्री छागलान्त्र्यपि ॥

इस पर्याय मे गुडा या अधोगुडा शब्द नही है, और इसके गुण मे भी रेचक गुण नही लिखा। यथा—

वृद्धदारु. कटुस्तिक्तरतथोष्ण कफवातजित् ।
श्वयथुक्रिमिमेहास्र वातोदरहरः परः ॥–ध नि.

चक्रपाणि का अधोगुडा शब्द से वृद्धदारुक लिखना युक्तिसगत नही जान पडता।

किन्तु एक सदेह यहाँ पर उपस्थित होता है कि फलिनी और मूलिनी से अतिरिक्त तीन वृक्षो का जो वर्णन किया है उसमे स्नुही अर्क और अश्मन्तक ये तीन वृक्ष लिखे है। यदि स्नुही अर्थ अधोगुडा का किया जाय तो पुन स्नुही लिखने की आवश्यकता चरक को क्यो पडी? ऐसा ज्ञात होता है कि इस शका के निराकरण के लिये ही गुडा शब्द के साथ जो स्नुही की विशेष जाति के लिये ही अधो शब्द का विशेषण लगाया गया है। इससे स्नुही के कई भेदो मे से अधोगुडा नाम के स्नुही का ही बोध हो एतदर्थ गुडा के साथ अधो शब्द जोडा गया है।



लैटिन नाम में यह सेहुण्ड है, जिसमें क्षीर होता है और मूल से ही उण्डे की आकृति की शाखायें निकलती हैं और पत्र पुष्प फल मूल काण्ड शाखा समस्त क्षीर रहता है।

उसका लै०-नाम यूफॉर्बिया निरूलिया (Euphorbia Nirulia) है। इसका सामान्य वर्णन निम्नलिखित है—

(२) E. Nivulia—इसके वृक्ष ३-९ मी० या १०-३० फुट तक ऊँचे होते हैं। जिसकी शाखायें सीधी, रूपरेखा में गोल खण्डमय तथा चक्राकार क्रम से निकली होती है। जो दो-दो एक-साथ कुण्टकी मूल उपपत्रों से युक्त होती हैं। पत्तियां अस्थाई मांसल २२.५ सेमी० या ९ इंच तक लम्बी ६-२५ सेमी० या २॥ इन्च तक चौड़ी रूपरेखा में रेखाकार प्रतिमालाकार या स्रुवाकार, कुण्ठिताग्र तथा अग्र पर लोम युक्त एवं अवृन्त होती है। एकामव्यूह में में अधः पत्रावली पीत पीताभ होती है।

फल—त्रिखण्डीय तथा खण्ड किंचित् चपटे होते हैं।

उपयोग—इसके मूल, पत्र और क्षीर का चिकित्सार्थ प्रयोग किया जाता है। यह समस्त क्षीरा है। मूल, काण्ड, शाखा, पत्र, फल सबमें क्षीर होता है। काण्ड व शाखाओं में ऊपर ही त्वचा वाले कटकमय दो-दो छोटे-छोटे एक साथ होते हैं और त्वचा के नीचे का काष्ठमय भाग होता है उसके भीतर मज्जा भरी होती है जो श्वेत हरित वर्ण की होती है और मृदु होती हैं।

अत अधोगुटा निःसंदेह स्नुही है-वृद्धादारुक नहीं।

रस—कटु। गुण—लघु तीक्ष्ण, स्निग्ध। विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण।

कर्म—तीव्ररेचन, शोथहर, कफनिःसारक, वेदना-स्थापन।

अश्वगन्धा—पृष्ठ ४२२ का शेषांश

की वृद्धि पूर्ण होती है। इस समय इसका संग्रह करके सुखाकर रख लेना चाहिए।

फल-ग्रीष्म ऋतु में फल पककर लाल हो जाते हैं। तब इनका संग्रह करके सुखाकर संग्रहीत करना चाहिए।

अश्वगन्धा के रासायनिक संगठन—

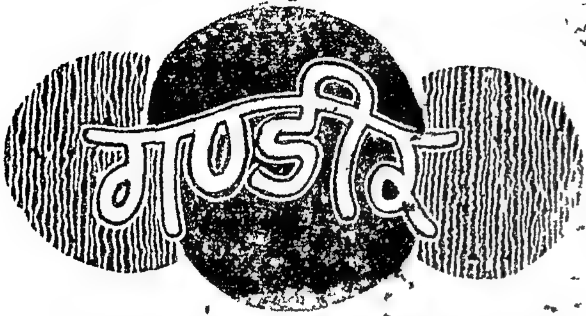
...गन्धा में सबसे अधिक पौष्टिक भाग होना है ...लिए इसे मेदा के बदले में तथा काकोली, क्षीर काकोली ...के प्रतिनिधि रूप में ग्रहण किये जाने का आदेश है। ... रस, वीर्य और विपाक अश्वगन्धा के समान ... विचार शास्त्रों में मिलते हैं—

मेदा... वाराहकन्दा महामेदे सारिवा। —परिभाषा प्रदीप
... काकोली ... प्रकृतेऽपि चाश्नति।
... ॥—भा.प्र.

क्योंकि इसका कारण यह है कि इसमें कई प्रकार के शरीर पोषक तत्व प्राप्त होते हैं।

आधुनिक परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि इसके मूल के जल विलेय भाग में शर्करा का अंश मिलता है तथा इसमें एक गल जातीय वस्तु पोटेशियम नाइट्रेट, टैनीन ग्लूकोज, फिटास्टेरोल, इप्ट्रिगकोस्टेन प्राप्त होते हैं। इसमें पामेटिक एसिड, स्टेयरिक एसिड, सेरोटिक एसिड ओलिक एसिड और लिनोलिक अम्लों का संग्रह होता है तथा विदानिओल क्षार तत्व पाया जाता है। इसी को मजुमदार और गुहा ने स्वीकार किया है, इसमें एक प्रकार की उत्तम एण्टी बायोटिक पेनिसिलीन भी पाता जाता है।

इसके पत्र और काण्ड में क्षार तत्व अधिक होते हैं। जिनमें प्रधान पोटेशियम नाइट्रेट की मात्रा होती है।



इतिहास—गण्डीर चिरकाल से आयुर्वेदीय इतिहास मे वर्णित है। चरक ने इसका वर्णन शाक वर्ग व हरित वर्ग च. सू. अ. २७–१०७ व १६६ मे किया है।

सुश्रुत ने भी सूत्र स्थान ४६।२३८ पर इसका वर्णन किया है। इसके पश्चात् शाक वर्ग के अतिरिक्त औषध गण्डीर का वर्णन अष्टाङ्गहृदय के वत्सकादि गण मे उल्लेख मिलता है।

अमर कोष में गण्डीर को समष्ठिला करके उल्लेख किया है।

राजनिघण्टुकार ने शताह्वादिगण में इसका वर्णन किया है।

हेमचन्द्राचार्य ने गण्डीर का वर्णन शाकवर्ग मे ही किया है। अत गण्डीर का वर्णन आयुर्वेदिक साहित्य मे शाक और औषध दोनों तरह के वर्णन से एक भ्रम उत्पन्न हो गया। ऐसा ज्ञात होता है कि गण्डीर की टीका मे कही पर शाक और कहीं पर औषध लिखकर ऐसी खिचडी पकायी है कि साधारण मनुष्य के लिये सदिग्ध होना स्वाभाविक हो जाता है।

चरक के अनुसार विचार किया जाय तो इसकी सदिग्धता समाप्त हो जायेगी। इस प्रकार गण्डीर चिरकाल से शाक और औषधि दोनो के लिये प्रयुक्त होता आया है।

सदिग्धता के कारण—टीकाकारो मे डल्हण, चक्रदत्त, चक्रपाणि ने इस विषय में टीका क्या किया है उससे एक सदिग्ध स्वरूप खडा कर दिया है। जो प्रसङ्गानुसार आगे दे रहे हैं—

चरक, सुश्रुत ने गण्डीर को शाकवर्ग मे पाठ किया है। चरक सू अ २७।१०६ पर गण्डीर शाक का वर्णन हरितक वर्ग में आया है।

"वायुं वत्सादनी हन्यात् कफ गण्डीर चित्रकौ ।"

यहा पर चक्रदत्त ने "गण्डीर शमठ" ऐसा टीका किया है। पुन. चरक सू. २७।१६६ पर गण्डीर का वर्णन आया है। यहा पर उन द्रव्यों का वर्णन होता है जो हरितक वर्ग मे है। हरितक वर्ग मे वे ही द्रव्य है जो आहारोपयोगी द्रव्यो के साथ हरे प्रयुक्त होते हैं, अथवा आहारोपयोगी बनाने मे इनका वर्णन है। यहाँ पर पुन शाक वर्ग मे वर्णन करने के बाद, पुन क्यो वर्णन किया गया यह भी विचार करना होगा। और जिस गण्डीर को शमठ शाक कर चक्रपाणि ने लिखा उसको पुन हरितक वर्ग मे क्यो इसके गुण के साथ वर्णन किया। यहाँ पर हरितक वर्ग मे पाठ करके उसके गुण चरक में लिखे है। वहाँ पर नि. सन्देह चक्रपाणि को गण्डीर का अच्छा परिचय था ऐसा लगता है।

टीका मे चक्रपाणि ने यो लिखा है। "गण्डीरो द्विविधो रक्त. शुक्लश्च तत्र यो रक्तः स कटुत्वेन हरित वर्गे पठ्यते। यस्तु शुक्लो जलजः स शाक वर्गे पठित इति नैकस्य वर्गद्वये पाठ ॥"

अर्थात् गण्डीर के दो भेद होते हैं १- श्वेत गण्डीर २- रक्त गण्डीर। यहाँ पर दो बार पाठ करने का टीका-



कार स्वय उत्तर देते है कि गण्डीर दो प्रकार का होता है—रक्त और श्वेत ।

१. इसमे रक्त कटु रस वाला होता है इसलिये इसको हरित वर्ग मे कहा, और

२ श्वेत को कटु रस न होने के कारण शाक वर्ग मे पाठ किया है । इसलिये एक ही के दो भेद होकर श्वेत और रक्त दो बार प्रयोग किया है । ऐसा चक्रपाणि दत्त मानते है ।

पुनश्च जलज और स्थलज भेद से भी इस शाक के दो भेद किये है । यहा पर शाक जातीय गण्डीर का वर्णन समाप्त हो जाता है । पुन चरक ने चिकित्सा स्थान ४-३८ पर गण्डीर का वर्णन किया है और रक्त-पित्त वालो का गण्डीर का शाक देख तथा रक्तपित्त हर शाको के साथ पाठ किया है । वहाँ पर चक्रपाणि ने स्वय ही बताया है कि गण्डीर के श्वेत भेद को लेने से अभिप्राय है । यहाँ रक्तपित्त की चिकित्सा तक गण्डीर शाक का वर्णन मिलता है । पुन. चरक ने ही अम्लस्कन्ध और कटुक स्कन्ध मे पाठ किया है । इससे स्पष्ट है कि चरक गण्डीर मे अम्ल व कटु रस पाते है । अर्थात् गण्डीर मे कटुरस है ।

यहा पर मालूम होता है कि गण्डीर कोई और वस्तु है । पुनः शिरो विरेचन मे चरक ने गण्डीर पुष्पी का उल्लेख किया है ।

पुन चरक ने दशेमानि क्रिमिघ्न वर्ग मे गण्डीर का पाठ किया है । यथा—

"अक्षीव-मरिच गण्डीर, केवुक, विडङ्ग, निर्गुण्डी, किणिही, सदष्ट्रा, वेषपर्णिका, आखुपर्णिका, दशेमानि, क्रमिघ्नानि भवन्ति" । यहाँ पर गण्डीर का पाठ औषधि की तरह से है । किन्तु चक्रपाणि ने "गण्डीर समठ शाकम्" यहाँ भी लिखा है और शिरो विरेचन के द्रव्यो मे पुन गण्डीर पुष्पी का उल्लेख है, और यहा भी समठ शाक ही लिखा है अर्थात् गण्डीर पुष्पी और गण्डीर दोनो एक ही मानता है अर्थात् समठ शाक ही मानता है । यह समठ शाक क्या है ? इसका अन्वेषण करना है ।

उपर्युक्त विचारो से स्पष्ट है कि चाहे जो भी हो गण्डीर शाक है वह चाहे समठ शाक हो या कोई और शाक । इस पर विशेष विचार करने के लिये निघण्टु शेष के लेखक हेमचन्द्राचार्य के विचार निम्न रूप मे

गण्डीरको रक्त काण्डो विषघ्नार्यल्पमारिष. ।
समष्ठी तु तोयवृत्तिर्गण्डीरस्तोय मञ्जरी ॥
समष्ठिला शोफहरी जलापामार्ग तुल्यक ॥

अर्थात् गण्डीर रक्त काण्ड वाला चौलाई अथवा छोटी मारिष (मरसा चौलाई) के समान पानी वाले स्थानो पर समूह मे होने वाला मजरी युक्त एक शाक है । इसके पर्याय तोय वृत्ति, गण्डीर और तोय मजरी है और समष्ठिला गण्डीर की तरह ही एक दूसरा शाक है जो जल मे होने वाले अपामार्ग के समान है । यहाँ पर जिन शाको का काण्ड उत्तमांश होता है, उन शाको के वर्ग मे जिसे शाक काड कहते हैं उसे हेम चन्द्राचार्य ने लिखा है । वास्तव मे यह शाक बगालियो का डण्डा शाक, काड, चौराई, श्वेत और रक्तभेद से होने वाला शाक है । इसको लोक भाषा मे ठढियो कहते हैं । पत्रादि सब चौलाई की की तरह होते हैं और काड अंगुष्ठ इतना मोटा, ३-४ फीट ऊंचा होता है । गण्डीर शाक का अपभ्रंश ही दण्डा शाक बन गया है जिसे बगाली डण्डा शाक कहते हैं ।

उत्तर-प्रदेश और बिहार मे एक डण्डे की तरह खडे होने के कारण इसे ठढिया अर्थात् खडा रहने वाला शाक कहते हैं । इसके काण्ड के ऊपर का छिलका हटा देने पर भीतर चिकना मुलायम काण्ड भाग मे होता है ।

शाकवर्ग का गण्डीर यही डडीर डण्डा शाक है । इसका मारिष या मर्षा अथवा चौलाई की तरह ही होता है और इसका काड ही शाक मे प्रयोग होता है । इसलिए हेमचन्द्राचार्य ने इसे शाक काण्ड अर्थात काण्ड प्रयुक्त होने वाले शाको मे वर्णन किया है । स्वर्गीय डा० वामन गणेश देशाई ने अपनी औषधि विज्ञान पुस्तक मे चौलाई का ही एक प्रकार माना है ।

सदेह का कारण यह है कि गण्डीर के साथ समष्ठिला का पर्याय अमरसिंह ने मूल से कर दिया है और टीका-कार चक्रपाणि ने "गण्डीर. समष्ठिल" ऐसी टीका की है यही भ्रम का कारण हो गया ।

दूसरा कारण गण्डीर से मिलते-जुलते नाम है जैसे-हरि प्रपन्न शास्त्री ने गण्डीर को गर्मर जो गुजरात मे अचार बनाने के लिये हरे मूल का प्रयोग किया जाता हे उसे मानने की सलाह दी हे । यह गर्मर "कोलियस बार्बेटस है जो तुलस्यादि वर्ग का द्रव्य है । यह स्वाद मे कटु-तिक्त होने से कटु-तिक्त स्वाद का होता है और

इसका शाक कोई नही खाता और गुजरात मे भी इसका शाक कोई नही खाता। यह जलीय प्रदेश मे न होकर स्थलीय प्रदेश मे होता है तथा जमीन पर फैलने वाला पौधा है।

यदि गर्मर ही गुण्डीर होता तो गुजरात प्रान्त के द्रव्य गुण विशेषज्ञ निघण्टु शेष के रचयिता हेमचन्द्राचार्य ने अवश्य ही लिखा होता जो गुजरात प्रान्त में ही जन्म लिये थे। भानु जी दीक्षित ने एक और नई उड़ान की और गण्डीर की जगह पर गाण्डर दूब या देव काण्डर जल पिप्पली को गण्डीर लिख दिया है। पहली त्रुटि तो यह हुई कि अमरसिंह ने "गण्डीरस्तु समष्ठिला" यह पर्याय लिखा और भानु जी दीक्षित ने टीका करते हुए टीका मे निम्न रूप से लिखा—

"द्वे गाण्डर द्वी इति ख्यातस्य-आनुपज शाक भेदस्य गडिनी इति भाषा" ऐसा लिख करके गाण्डर के बदले गण्ड दूर्वा जिसका कोई शाक नही खाता, गण्डीर बना दिया। गाण्डर दूब पृथक चीज है और गण्डीर पृथक हैं। कुछ लोगो ने "समष्ठिला" इस पर्याय को पकडकर गण्डीर को भण्डीर का पर्याय मानकर गण्डीर भण्डीर दोनो एक कर दिया। यथा—

समष्ठिलस्तु भण्डीरो नद्याम्रश्चाम्रगन्धकृत्।
काकाम्रकण्टकिफलावुपदेशो मुनिद्रुम. ॥

अर्थात् समष्ठिला का एक पर्याय भण्डीर है और भण्डीर पर्याय कई द्रव्यो का जैसे—मंजिष्ठा, तण्डुलीयक समष्ठिला।

अत टीकाकार लोगो ने इस आधार पर सदेह उत्पन्न कर दिये है। इसी प्रकार गण्डीर समष्ठिला, स्नुही और तैल वृक्ष के लिये भी प्रयोग हुआ है। यही कारण है कि कई टीकाकारो ने धोखा खाया है। गण्डीरी गण्ड दूर्वा का भी पर्याय आया है। अत चतुर्विद्वान चिकित्सक प्रसग देखकर उसका अर्थ लगा लेते हैं और किसी भ्रम मे नहीं पडते। कुछ लोग औषधि भेद से भी औषधि गण्डीर और शाक गण्डीर तथा स्नुही यह अर्थ बनाना चाहते है।

उदाहरणार्थ वे सुश्रुत के सूत्रस्थान अ० ४५/१२३ को उदाहरण स्वरूप रखते हैं। यथा—

"सरल देवदारु-शिशपा गुरु गण्डीर सार स्नेहा स्त कटुकषाया दुष्ट व्रण शोधना क्रिमी कफ कुष्ठानि लहराश्च।"

अर्थात् सार स्नेहो मे गण्डार का पाठ किया गया है, ऐसा ज्ञात होता है। इसलिये यहा पर शाक् गण्डीर का ग्रहण सम्भव नही है। यहाँ टीकाकार ने "गण्डीर सार प्रधानस्तरु विशेष'। सारस्त्वन्तर्गत प्रधान भूनोऽवयव." लिखा है। यहाँ स्पष्ट है कि गण्डीर शब्द से ग्राह्य स्नुही शाक् मञ्जिष्ठा समष्ठिला या तण्डुलीयक किसी मे स्नेह सार नही है। अतः निश्चय ही यहाँ पर गण्डीर शब्द असगत है। यहाँ पर मुद्रण दोष ज्ञात होता है, और गण्डीर के बजाय भण्डीर अर्थ करें जोकि सम्भव है क्यों कि लेख मे "ग" और "भ" मे बहुत सा अन्तर है। भण्डीर, भण्डी, भण्डिक ये पर्याय शिरीष के हैं और ये यथा प्रसग पामा कुष्ठ-कण्डू-त्वग्-दोष नाश के लिये इसका सार स्नेह राज निघण्टुकार व धन्वन्तरि निघण्टुकार ने उचित माना है तो सुश्रुत का यह सार स्नेह प्रसग एक दम उचित मालूम होता है।

सुश्रुत ने भी "दुष्ट व्रण शोधना तिक्त-कटु-कषाया क्रिमीकफ कुष्ठानिलहरा" माना हैं और यहाँ पर शिरीष का गुण भी निम्न है—

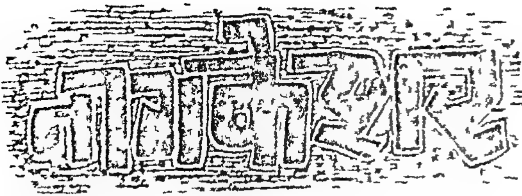
"पामासृक्कुष्ठकण्डूति त्वग्दोषस्य विनाशन।"

अत शिरीष का पर्याय भण्डी को छपाई की अशुद्धि मान ली जाय तो प्रसंगानुसार यहाँ भण्डीर ही उपयुक्त जमता है।

श्री बलवन्त सिह जी का कथन है कि गढवाल मे शिरीष को भण्डीर नाम से ही पुकारते हैं। इसलिये स्थानीय नाम और निघण्टुओ मे दिये नाम तथा प्रसग जो अष्टाग हृदय सू० अ० १५/१० तथा सु० सू० अ० ४५/१२३ एक ही प्रसग के द्योतक और शिरीष के अर्थ के पोषक है।

अन्त मे स्नुही और मञ्जिष्ठा के पर्याय मे आये हैं, उनसे चक्रदत्त ने भ्रम पैदा कर दिया है। चक्रदत्त स्वयं गण्डीर को शमठ शाक लिखता है और गण्डीरिका को स्नुही तथा अन्ये तु मञ्जिष्ठा ऐसा लिखकर भ्रम के अतिरिक्त कोई और इसका अर्थ नही होता है। अत. गण्डीर कण्डीर शब्द से शाक् गण्डीर का अर्थ होता है। गाण्डीर शब्द से गाण्ड दूर्वा का, तथा भण्डीर-भण्डी से शिरीष-मञ्जिष्ठा का अर्थ उचित होगा।

चक्रपाणि का शमठ शाक् समष्ठिला का अपभ्रंश शमठ है।



ऐतिहासिक विवरण—

वैदिक साहित्य मे नागकेशर का स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता । सहिता काल मे जो ई० सन् से हजारो वर्ष पूर्व का है इसका सुन्दर वर्णन मिलता है । चरक सहिता मे नागकेशर को विभिन्न नाम से प्रयोग किया है जिनमे—

(१) केशर (Crocus Salivus Linn)

(२) नागकेशर (Mesua Ferrea Linn)

(३) नाग पुष्प (Ochrocarpus Longifoleus).

(४) हेम पुष्प और कृष्ण नागकेशर (Cinemomum Tamala).

(५) तुङ्ग (Chelofulum)

इन नामो से उल्लेख किया गया है । इसका प्रयोग स्वेदहर, त्वग् हर, शरीर दौर्गन्धहर, वर्ण्यकर योगो मे दशेमानि मे पाठ किया है । पुनश्च वेदनास्थापन वर्ग में प्रायोगिक धूमवर्ति का प्रयोग मिलता है विसर्ग चिकित्सा मे पानक कल्पना के रूप मे । द्विव्रणीय चिकित्सा में प्रदेहार्थ नागपुष्प का व्यवहार मिलता है । वातव्याधि मे, बला तैल मे, वात शोणित-अमृतादि तैल मे, तथा अभया-मलकी रसायन व च्यवनप्राश में इसका उल्लेख है । अर्श चिकित्सा, कनसारिष्ट शोणितस्थापन के लिए अर्श मे नागपुष्प शब्द से व्यवहार किया है । दाह प्रशमन व पित्त प्रशमन के रूप मे तुङ्ग शब्द से प्रयोग किया है । ज्वर चिकित्सा चन्दनादि तैल तथा रक्तपित्त चिकित्सा पानक की कल्पना मे नागपुष्प शब्द से व्यवहार किया है । इस प्रकार चरक सहिता में १६ स्थानो पर इसका प्रयोग मिलता है ।

सुश्रुत सहिता—

इसमे वात, कफ, विष, कण्डू इनका कोष्ठ नाशन और वर्ण प्रसादन के लिए नाग पुष्प और पुन्नाग केशर मिलता है । स्तन्य शोधनार्थ और विषदोष शमनार्थ नागकेशर का प्रयोग मिलता है । रक्तपित्त, विष और दाहादि प्रशमन के लिए अञ्जनादिगण मे नाग पुष्प का प्रयोग है । इसी प्रकार प्रियग्वादि गण मे पुन्नाग पुष्प, नाग चम्पक पुष्प के नाम से प्रयोग मिलता है । प्रमेह चिकित्सा मे तुङ्गकेशर, विसर्प नाडी स्तन्य रोग मे अहिपुष्प, विषनाशन मे पुन्नाग, नाग पुष्प और सर्प विष मे भी पुन्नाग पुष्प का प्रयोग मिलता है । कीट कल्प मे तुग शब्द, मूर्छा प्रतिषेध मे भुजग पुष्प, पानात्यय मेनागपुष्प, पानविभ्रम मे नागपुष्प का प्रयोग किया हुआ पाते हैं । इस प्रकार १८ स्थानो में प्रयोग सुश्रुत मे मिलता है ।

काश्यप सहिता—बालग्रह व अपस्मारादि रोग मे नाग-पुष्प के नाम से धूम प्रयोग-वमन विरेचन मे सिद्धि में केशर शब्द के नाम से कल्पस्थान मे धूम कल्पना मे केशर शब्द से धूम्र का प्रयोग है । खिलस्थान के १० वें अध्याय मे आमातिसार शमन के लिए चूर्ण में नाग शब्द का प्रयोग है । इसी अध्याय मे तैल कल्पना मे पुन्नाग और कल्याणक अवलेह में केशर शब्द से प्रयोग मिलता है । ११ वें अध्याय के खिलस्थान मे वातज्वर चिकित्सा में केशर और पित्तज्वर में नागपुष्प शब्द से प्रयोग मिलता है । इस प्रकार काश्यप सहिता में १३ स्थानो पर प्रयोग मिलता है ।

हारीत संहिता—हारीत सहिता मे तीन स्थानो मे पर प्रयोग है । ज्वरातिसार में केशर शब्द सेऔर अतिसार मे नाग शब्द से व मुखरोग मे कनकाह्व शब्द से प्रयोग दृष्टिगोचर होता है ।

सग्रह काल—अष्टाग हृदय मे-सू० के १५ वें अध्याय एलादिगण मे पुन्नागाह्व शब्द, चिकित्सा के चौथे अध्याय मे जीवन्त्यादि चूर्ण मे नागकेशर शब्द से और राजयक्ष्मा के एलादि चूर्ण मे नागकुसुम के नाम से, वातव्याधि के बलातैल में नागकेशर, मदात्यय के पानक मे नागपुष्प का और उन्माद प्रतिषेध के कल्याणक घृत मे नागकेशर, तिमिर प्रतिषेध मे नागपुष्प, विष प्रतिषेध और सर्प विष में नागपुष्प शब्द से । इस प्रकार नागकेशर का प्रयोग अष्टागहृदय मे ६ स्थानो पर मिलते हैं ।

शार्ङ्गधर सहिता—इसमे २१ स्थानो पर प्रयोग चूर्ण के रूप मे दाडिमाष्टक, लवगादि चूर्ण, जातीफलादि, महा-षाडव चूर्ण, लवण भास्कर, एलादिचूर्ण आदि मे प्रयोग नागकेशर शब्द से मिलता है ।

चक्रदत्त—इसमे २२ स्थानो पर नागकेशर का ...

है। कपित्थाष्टक चूर्ण, दाडिमाष्टक, प्राणदा गुटिका, लवणभास्कर, कुष्ठादि तैल, नारिकेल खण्ड, दन्ती हरीतकी, महा तृणक तैल, वासाखण्ड, व्याघ्रि हरीतकी, एलादि तैल, महापद्मक घृत, कनक तैल इत्यादि योगो मे केशर, नागकेशर, नागाह्व, नागपुष्प मे नाग के रूप मे मिलते हैं।

भैषज्य रत्नावली—ज्वर चिकित्सा में ५ स्थान पर, अतिसार मे केशर नाम से दो स्थानो पर। गृहणी मे १६ स्थानो पर, अर्श रोग मे ८ स्थानो पर, अग्निमाद्य मे ५ स्थानो पर, पाण्डु मे २, रक्तपित्त ६, राजयक्ष्मा मे १०, कास मे ८, हिक्काश्वास मे ५, अरोचक मे २ स्थानो पर विभिन्न नामो से नागकेशर का वर्णन मिलता है। इस प्रकार ७२ स्थानो पर इसका प्रयोग सुलभ है। इसी प्रकार भावप्रकाश या अन्य संग्रह ग्रन्थो मे प्रयोग है।

निघण्टु काल—निघण्टु और कोप इन दोनो के साहित्य मे भिन्न-भिन्न निघण्टुओ मे कर्पूरादि वर्ग, फलवर्ग, शतपुष्पादि वर्ग में पाठ मिलता है। इसका प्रयोग वात, पित, कफ के शमन के लिये आमदोप पाचन के लिये, विष प्रशमन, व्रण नाशन, रक्तदोप नाशन प्रभृति योगो मे इसका प्रयोग मिलता है।

सहिता काल की अपेक्षा निघण्टु साहित्य मे भेद—प्रभेद के साथ इसका वर्णन मिलता है।

आधुनिक निघण्टुओ-मे भी इसका वर्णन मिलता है। आधुनिक द्रव्य गुण के विशेषज्ञो ने श्री भगीरथ शर्मा, वैद्य बापालाल, आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी, प्रियव्रत शर्मा, हरि प्रपन्न जी शास्त्री ने सदिग्धता निवारण मे पूर्ण चेष्टा की है। इनके प्रयत्नो का परिणाम है कि-नागकेशर अब कोई सदिग्ध द्रव्य नही रहा।

इसके निर्णय के लिये शास्त्रीय विवरण द्वारा नागकेशर के शुद्ध विवरण को सबके साथ मिश्रण करने पर कठिनाई हल हो जाती है।

नागकेशर के पर्याय बोधक शब्द:—

नागकेशर के विवरण के सम्बन्ध मे अधोलिखित सामग्री प्राप्त है जिसके आधार पर उसका सामान्य विवरण निर्धारण हो जाता है। यथा—

(१) स्थान वाचक पर्याय—नागः।

(२) आकार प्रकार वाचक पर्याय—देववल्लीभ, नागचाम्पेय, चाम्पेय, नागीय, दुरारोह, पुन्नाग, इत्यादि।

(३) पत्र वाचक पर्याय—पाटलाच्छ, सुरपर्णी।

(४) पुष्पवाचक पर्याय—नाग पुष्प, पाटिल पुष्प, हेम पुष्प, राज पुष्प।

(५) पुष्प पत्र वाचन पर्याय—फलक, फणि।

(६) पुष्पवर्णवाचक पर्याय—सुवर्ण, रुक्म, हेम, अहिपुष्प

(७) केशर वाचक पर्याय—नागकेशर, केशर, केशरी नागकिजल्क, पिंजर, रक्तकेशर, हेमकिंजलक, हेमाभ काचन।

(८) गुण वाचक पर्याया—केशरञ्जन महौषधम् स्वर्णाभ।

(९) आस्थावाचक पर्याया—नाग महानाग नागाह्व नागीयम, भुजङ्गाख्यम्।

(१०) उच्चता वाचक पर्याया—तुङ्ग।

(११) गन्ध वाचक पर्याय—सुगन्धा।

उपर्युक्त पर्यायो से यह ज्ञात होता है कि नागकेशर बहुत बडा वृक्ष होता है और उसकी शाखायें दूर तक फैली हुई होती हैं। इसकी शाखायें चारो तरफ से घेरे रहती है। इसलिए इसको देव वल्लीभ कहते है। देव वल्ली की तरह होती हैं। इस पर सरलता से चढा नहीं जाता। अत दुरारोहम्।

इसके दूसरे प्रकार को बताते हुए पुनाग बतलाया है और वृक्ष सदा हरित और सुन्दर होता है। इसकी छाल धूसर वर्ण की होती है। यह पुनाग जातीय नाग चम्पा का वृक्ष है। इसके पत्र पाटला के पत्र की तरह होते हैं। देखने में पीले सुन्दर ३-६ इञ्च लम्बी और १-१॥ इञ्च चौडी आयताकार आगे को नोकदार होती है। पत्र का ऊर्ध्व पृष्ठ चमकीला और अधः पृष्ठ श्वेताभ और देखने में सुन्दर होता है। इसलिए इसे सुरपर्णी कहा है।

पुष्प—पत्र कोण से पुष्प निकलते हैं जो सफेद, सुगन्धित, व्यास मे ३-४ इञ्च तक होते हैं। पुष्प मे कुछ पीलापन होता है। इसलिए इसे हेम पुष्प और राज पुष्प कहते हैं। पुष्प के बाह्यदल कडे और नागफण की तरह अर्द्धवृन्त होते हैं। इसलिये पुष्पच्छद बाचक पर्याय फणि और फलक दिया है। पुष्प के वर्ण के विषय मे इसका वर्ण कुछ पीलापन लिए सफेद होता है। सुवर्ण, रुक्कम् और हेमम् ये नाम दिया है। इसके बाह्यदल गोलाकार, मोटे और किनारो पर पतले होते हैं। आभ्यन्तर दल पत्र चार श्वेत, पीत वर्ण के फैले हुए लम्बाकार होते हैं। पुष्प

के केशर बहुसख्यक होते हैं। यह पीत वर्ण के गुच्छो मे होते है। जो केशर के वर्ण के पीतरक्त वर्ण के हैं। अतः इसके पर्याय केशरी पजर, रक्तकेशर, हेमकिंजल्कः, काचन, नागकेशर हैं। इसका पराग कोष अपेक्षाकृत बडा और लम्बगोल सुनहरे रङ्ग का होता है, इसलिए इसको नागकेशर कहा जाता है।

नागकेशर अर्थात् नागपुष्प का केशर नागकेशर अथवा नाग के फण की तरह केशर के पराग कोष सहित केशर सूत्र दिखाई पडते है। यह पहाडो पर ५००० फुट की ऊचाई तक पाये जाते हैं। वृक्ष भी ऊचा होता है। अत इसे नागीयम्, तुङ्ग, पुरुष, तुङ्गः कहा है। पुष्पों मे सुगन्धि होती है इसलिए इसे सुगन्धा कहते हैं।

जाति वाचक शब्द इसमे पुंनाग है। अर्थात् यह पुन्नाग वर्ग का वृक्ष है। यह बहुत ही सुन्दर और सुगन्धित होता है इसलिए इसको राजार्ह, षट्पदप्रिय, देववल्लभ यह सज्ञायें दी हैं।

सन्दर्भ -

कोष—चाम्पेयश्चम्पको हेमपुष्पकः। चाम्पेयकेशरो नागकेशर कांचनाह्वय ॥ पुंनागेपुरुषस्तुङ्गकेशरो देववल्लभ. ॥ —इति अमरकोषः

चाम्पेयश्चम्पको स्वर्णम् किंजल्के नागकेशरे।

—इति मेदिनीकोष.

स्वर्णभ सर्पारयो नागकेशरः षट्पद प्रिय इति रसम.

निघटु ग्रन्थाः—

नागपुष्पं मत नाग केशर नागकेशरम्।
चाम्पेय नाग किंजल्कं नागीयं कांचन तथा॥

—धन्वन्तरि निघंटु

किंजल्क कनकाह्वं च केसर नागकेसरम्।
चाम्पेय नागकिंजल्क नागीयं काचन तथा॥
सुवर्णं हेम किंजल्क रु मं हेम च पिञ्जरम्।
फनि पन्नग योगादि केशर पंचमूह्वयम्॥

—राजनिघंटु

नागकेसरकन्नागश्चाम्पेयकेरगजम्।

—मदन विनोद

नागपुष्प स्मृतो नाग केशरो नागकेसर. ।
चाम्पेयो नागकिंजल्क क्वचित कनकाह्वय ॥

—भाव प्रकाश निघण्टु

नागाह्वं नाग किंजल्क किसरं नागकेसरम्।
अहिपुष्प हेम पुष्प चाम्पेय नागपुष्पकम्॥
हेमाभं कनकं चैव दुरोह नागरेणुकम्॥
पुन्नाग, पुरुषस्तुंगो विवुद्धो देववल्लभ।
पुन्नाग पाटलीपुष्प केसरो रक्त केसर. ॥
पाशुन्नागो महानाग केशव पाटलाच्छदं।
काञ्चनः सुपर्णो स्यात् सुगन्धा षट्पदालयः॥

—कैयदेव निघण्टु

चाम्पेय. केशरो नागकेशर, कनकाह्वय।
महौषध राजपुष्प फलकं स्वर घातन. ॥

—शालिग्राम निघण्टु भूषण

नागपुष्प स्मृतो नाग: केसरो नागकेसर.।
चाम्पेयो नागकिंजल्कः क्वचित काचनाह्वय. ॥

—द्रव्यगुण देवेन्द्रनाथ सेन

वर्ग—चरक सहिता मे वर्ण्य वर्ग मे नागकेसर का पाठ है। पुन. दाह प्रशमन एलादि गण मे पाठ है।

—च० सू० अ० २६

सु०स०— एलादिगण—सु० सू० अ० ३८
वचादिगण " " "
अञ्जनादिगण " " "
प्रियग्वादि गण—मे पाठ किया है। तथा पुष्प वर्ग सु० सू० ४६ मे।

अष्टाङ्गहृदय—सू० १५/३१—एलादिगण मे पाठ किया है।

धन्वन्तरि निघण्टु—शतपुष्पादि गण।
मदन विनोद—कर्पूरादि वर्ग।
राज निघण्टु—चन्दनादि गण।
भाव० नि० —कर्पूरादि गण।
शा० नि० —कर्पूरादि वर्ग मे पाठ किया है।

गुण व कर्म—

रस—कषाय-तिक्त व कटु। विशेषकर त्वक् पत्र पुष्प व केशर कषाय रसवाले होते हैं। अपक्व फल का बीजाचर्ण भी कषाय और तिक्त होता है।

बीज-तैल और निर्यास—तिक्त रस प्रधान। मूल और पत्र सिरा मे कटु रस होता है।

गुण—नागकेशर मे रूक्ष-उष्ण-लघु-शीत गुण मिलते हैं। केशर मे उष्ण गुण होता है। अत यह कफ दोष नाशक है। पुष्प पत्र मे शीत गुण और केशर मे उष्ण गुण कषाय और तिक्त रस के कारण सग्राहक होता है।

विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण।

नागकेशर के गुण, कर्म

धन्वन्तरीय निघण्टौ—

नागकेसरमल्पोष्णं लघुतिक्तं कफापहम् ।
वस्तिरुग्विष वातास्र कण्डूघ्नं शोफनाशनम् ॥
—द्वितीय वर्ग ।

मदन विनोद निघण्टौ— कर्पूरादि वर्ग

नाग केशरकं रुक्षमुष्ण लघ्वामपाचनम् ।
दौर्गन्ध्य कुष्ठ वीसर्प कफ पित्त विषापहम् ॥

राजनिघण्टौ— पिप्पल्यादि वर्ग

नाग केशरमल्पोष्ण लघुतिक्तं कफापहम् ।
वस्ति वातामयघ्नं च कण्ठ शीर्षरुजापहम् ॥
फल वर्ग

द्रव्यगुणे—

केशरं तु लघु ग्राही गुल्मार्शोघ्नं हि दीपनम् ।
मेध्य शूलानिलच्छर्दि कफारोचक नाशनम् ॥

गण निघण्टौ—

केशर विष विसर्प रक्तार्शो वमि-कुष्ठ हृत् ।
हृल्लास खुड दौर्गन्ध्य तृष्णापित्त बलासजित् ॥

भावप्रकाशे— कर्पूरादि वर्ग

नाग पुष्प कषायोष्ण रूक्षं लघ्वाम पाचनम् ।
ज्वर कण्डू तृषा स्वेदच्छर्दि हृल्लास नाशनम् ।
दौर्गन्ध्य कुष्ठ विसर्प कफ-पित्त विषापहम् ॥

निघण्टु रत्नाकरे—

नाग नामा चम्पकस्तु वर्ण्यश्चोष्ण कटुस्मृतः ।
व्रण रोपणकारी च चक्षुष्य कफ वातहृ ॥
धस्वन्तरस्य संयोगादग्नि स्तम्भं करोमत ॥

शालिग्राम निघण्टु भूषणे— कर्पूरादि वर्ग

नाग केशर तिक्त-कषाय चाम पाचकम् ।
किंचिदुष्ण लघुरूक्षं पित्तच्छर्दि कफापहम् ॥
रक्त पात रक्तरुज वात कण्डू च हृल्लसम् ।
स्वेद दौर्गन्ध्य विषतृट् कुष्ठ विसर्प नाशनम् ।
वस्ति पीडा वात रक्त कण्ठ मस्तक शूलनुत् ॥

कैयदेव निघण्टौ—

नाग पुष्प कषायोष्ण तीक्ष्ण लघ्वाम पाचनम् ।
रक्त पित्त कफच्छर्दि खुड कण्डू विसर्पनुत् ॥
हृल्लास स्वेद दौर्गन्ध्य कुष्ठ तृष्णा विषापहम् ॥

नागकेशर का प्रयोग संहिताओ मे कई प्रकार के कल्पो के लिये किया गया है। जैसे—चरक संहिता मे प्रदेह, कषाय, धूमवर्ति, अवलेह, तैल, पानक, लेह, अरिष्ट, प्रलेप मे प्रयोग किया गया है। विशेष योग च्यवनप्राश, चन्दनादि तैल, बला तैल इत्यादि हैं।

सुश्रुत संहिता – एलादिगण, वचादिगण, अंजनादि, प्रियग्वादि के अतिरिक्त लेह, आसव, कल्क, चूर्ण, अंजन का प्रयोग भिन्न-भिन्न स्थानो मे आया है।

काश्यप संहिता—धूप, धूम, चूर्ण, तैल कल्पना, अवलेह, क्वाथ, पानक, प्रलेप और तेल के रूप मे कल्पनाये प्राप्त है।

हारीत संहिता—उत्पलादि पाचन, जम्ब्वादि स्वरस और क्षार के कल्पो मे वर्णन मिलता है।

अष्टांगहृदय—चूर्ण, तैल, पानक, अंजन, घृत, वर्ति आदि के योगो मे नागकेसर का प्रयोग है।

शार्ङ्गधर

दाडिमाष्टक, वृ. दाडिमाष्ट, लवंगादि चूर्ण, महाखांडव चूर्ण, लवणभास्कर चूर्ण, एलादि चूर्ण का प्रयोग म० खण्ड मे है। इसके अतिरिक्त च्यवन प्राश, कामदेव घृत, कल्याणक घृत, इरिमेदादि तैल, धत्तूरादि तैल, कुमार्यासव, पिप्पल्यासव, मृद्वीकारिष्ट, देवदारुअरिष्ट, खदिरारिष्ट, बब्बूलारिष्ट, द्राक्षारिष्ट, और दशमूलारिष्ट— मे पाठ किया है।

भैष० रत्नावली मे— इसका भूरि-भूरि प्रयोग बहुत से योगो मे प्राप्त है। नागकेशर के योग (भै० र० मे) कई कल्पनाओ मे है। जैसे—

ज्वर मे—कट्फलादि क्वाथ, अमृतारिष्ट, चन्दन बला लाक्षादितैल, पिप्पलिपाक

अतिसार में—नागकेशर चूर्ण, पूर्ण चन्द्रोदय रस।

ग्रहणी—दाडिमाष्टक चूर्ण, कपित्थाष्टक, लवगादि, जातीफलादि और तालीसादि, कामेश्वर मोदक, मदन मोदक, मेथी मोदक, मुस्तकादि मोदक—जीरकादि मोदक—अग्निकुमार मोदक—ग्रहणी मिहिर तैल—दाडिमाद्य तैल और पिप्पल्यादि आसव मे।

अर्शरोग मे—समशर्कर चूर्ण,-प्राणदा गुटिका, गुडभल्लातक, बृ० द्राक्षासव।

अग्निमांद्य मे - भास्कर लवण चूर्ण, और लवगादि मोदक।

पाण्डुरोग—पुनर्नवादि तैल।

रक्तपित्त—उशीरादि चूर्ण, शतमूली लोह, पद्मपावलोह, वासाखण्ड, कामदेव घृत, ह्रीवेरादि तैल।

राजयक्ष्मा—लवगादि चूर्ण, एलादि चूर्ण,वासावलेह, च्यवनप्राश, द्राक्षारिष्ट, शृगाराभ्र, अमृत प्राश, कुंकुमादि घृत, महाचन्दनादि तैल।

कास—समशर्कर लोह, व्याघ्रि हरीतकी, छागलाद्य घृत, महाकालेश्वर रस, विजय भैरवरस, महोदधि रस शृगाराभ्र।

हिक्काश्वास मे—विजयवटी, महाश्वासारि लोह, महच्चन्दनादि तेल और कनकासव मे प्राप्त होता है।

अरोचक में—तिन्तिडितक पानक और रसाला। इस प्रकार नाग केशर का प्रयोग भिन्न-भिन्न कल्पो में हुआ है।

सदिग्धता निवारण—

संज्ञया नाग पुष्पस्य पचद्रव्याणि गृह्यन्ते ।
तेषा विचारणा चात्र सक्षेपेण समुध्दृतम् ॥
देशग्रामन्तरस्थानां वैद्याना च मत पृथक् ।
विचार भेदेन च तत्पचाभिद्यते हि सत् ॥
एक तु केशर नामम् द्वितीयं नागकेशरम्।
तृतीयं कृष्ण नागाम पुन्नगा तु चतुर्थकम् ॥
पचमं मुर पुनागमेव सनिध्यते हि तत् ।
पचाना युक्तियुक्त च मतं निर्धायते मया ॥

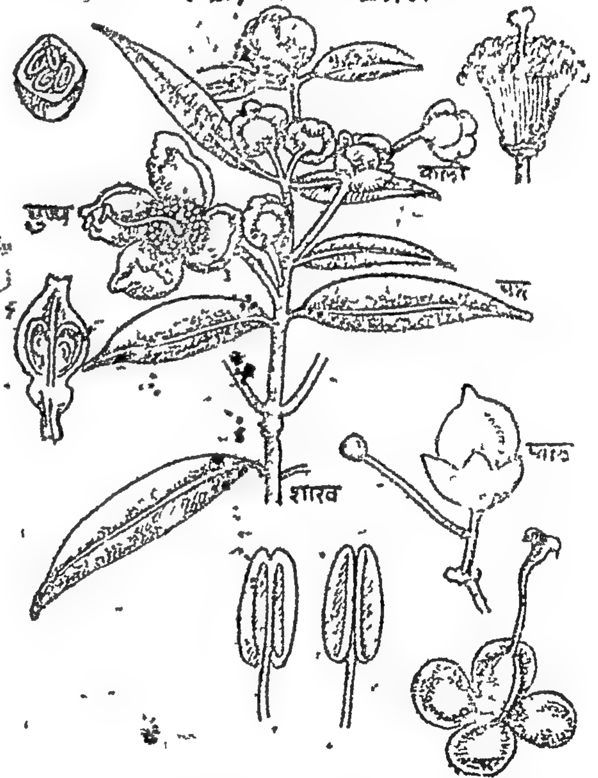
नागकेशर के नाम से पाँच द्रव्यो का ग्रहण होता है। (१) केशर (२) नागकेशर (३) काला नागकेशर (४) पुनाग केशर (५) मुरपुनाग।

(१) केसर या कुंकुम—लं० काकस सेटिवा अ.—नाम-सेफ्रान् (Cocus Sativa)

पुष्प विवरण—केशर का पुष्प श्वेत पीत वर्ण का होता है। इसके बाहर बाह्य कोप मे ३ या ४ पत्र दल होते हैं। ३ पुंकेशर होते हैं और इनके बीच मे एक स्त्री केशर होता है। स्त्री केशर आगे चलकर तीन भाग मे विभक्त हो जाता है। पुकेशर पीले वर्ण का और स्त्री केशर रक्त वर्ण का होता है। इनके सिर पर पराग कोष बने रक्त वर्ण का होता है। केशर के नाम से इनका ही ग्रहण होता है। इन केशरो से नागकेशर की कोई तुलना नहीं है। नागकेशर के लिये कुकुम लेना उचित नही है।

(२)नागकेशर - लै मेसुवा फेरिया(Mesua Ferrea Linn)। कुल-पुन्नाग (गट्टीफेरी)। इस नागकेशर का पूर्ण विवरण पूर्व वर्णित नागकेशर से मिलता जुलता है। इसके पुकेशर उठते हुये नाग के समान व बीच का स्त्री केशर भी नागफणानुकारी है। नीचे चित्र मे देखिये। इसके पुष्प बाल कोप और आभ्यन्तर पत्र दल सर्प फण की तरह होते हैं। यही असली नागकेशर है।

नागकेसर असली (नागेश्वर)
MESUA FERREA LINN.

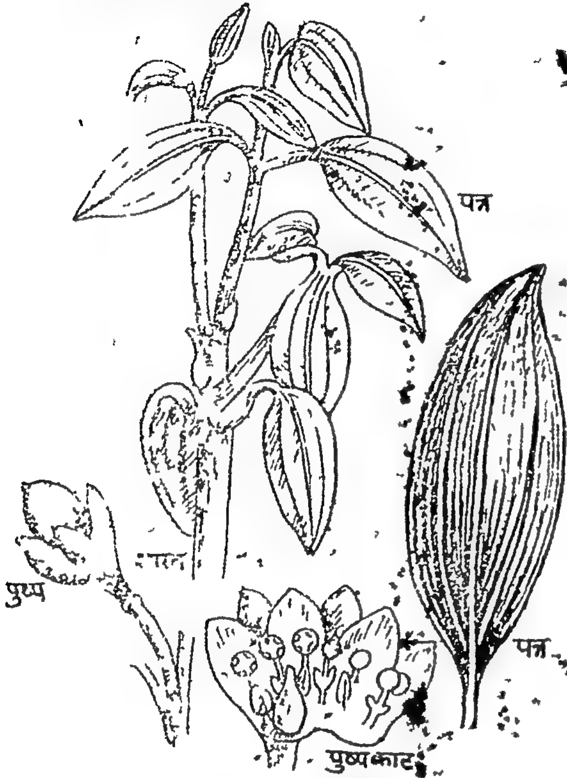


(३) कृष्ण नागकेशर—लै०—सिनेमोमम तुमाला (Cinemomum Tamala)। कुल—कर्पुर कुल।

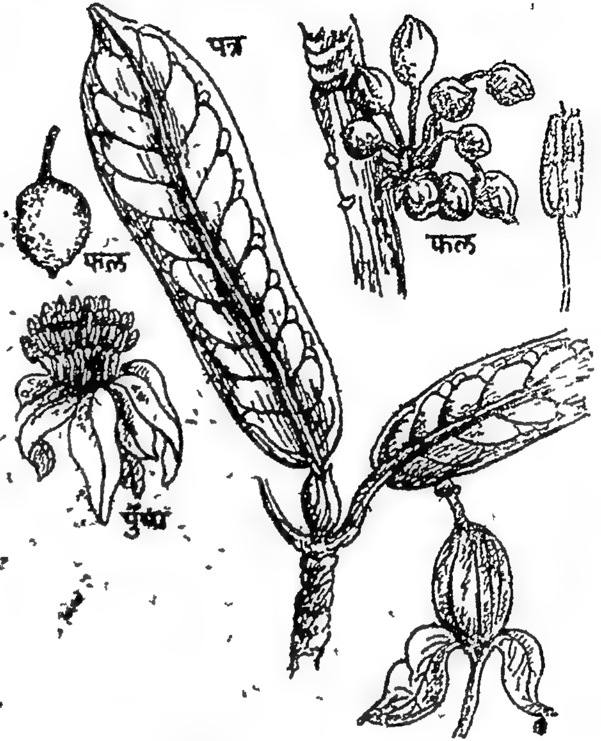
तमाल का पुष्प व फल कृष्ण नागकेशर है।

विवरण—यह तमाल वृक्ष दालचीनी के प्रकार का है। हिमालय मे ५०००–६००० फीट तक होता है। इसके पत्र को तेज पत्र या तमाल पत्र कहते है। इसके पुष्प छोटे-छोटे सफेद रंग के और एक लिंगी होते हैं। इसके पुष्प केशर भी छोटे होते हैं और ३–६ इन्च लम्बी मजरियो मे होते हैं। पुष्प श्वेत होने से इनका ग्रहण केशर के पुष्प की तरह नही हो सकता। अतः व्या-

तेजपात (तमालपत्र)
CINNAMOMUM TAMALA NEES



नागकेशर नकली
OCHROCARPUS LONGIFOLIUS BENTH.



पारी इसके फल जो छोटे नाग केशर के समान काले वर्ण का होता हे मिलावट करते हैं। और इसकी सज्ञा काला नाग केशर रखते है । इसका ग्रहण नागकेशर के लिये करना एकदम अनुचित है। .

शुष्क फल नागकेशर नही हो सकता।

(४) नागकेशर—पुन्नाग, सुरपुन्नाग। कुल–तमाल-कुल (गट्टी फेरी) (Ochrocarpus Longifolius)

विवरण—यह ६००० फीट कीऊचाई पर होता है। इसके पुष्प मजरी मे लगते हैं। और बहुत छोटे-छोटे लाल रग के कालीमिर्च के वरावर होते है। इसको सस्कृत मे सुरपुनाग और हिन्दी मे लाल नागकेशर। लै० ओक्रो कार्पस लाङ्गीफोलियस कहते है। इसके वृक्ष, कनारा, मालावार,कोयबटुर मे समुद्र तट के किनारे स्वयं पैदा होते हैं। लाल नागकेशर इनकी सुखाई हुई कलिकायें हैं, जो कि पुष्प के परिस्फुट होने से पूर्व तोड़ कर सुखा- लियां जाता है। इसके गुण-कर्म असली नागकेशर से मिलता जुलता है किन्तु उसकी अपेक्षा निम्न कोटि का है। इसे नागकेशर के प्रतिनिधि के रूप मे लिया जा सकता है। इसके पुष्प छोटे, बाह्य कोष छोटे परन्तु फणाकार होते हैं। केशर पीले लाल वर्ण के बहु सख्यक किन्तु बहुत छोटे होते हैं। बीच मे स्त्री केशर एक होता है, किन्तु छोटा और उसका अग्रभाग फणाकार होता है। अत समता कुछ पायी जाती है।

(५) नागकेशर—पुनाग (तुङ्ग) लै० (केलो फाइलम् इनोफाइलम्) (Chelofillum Enofilum) कुल—गट्टीफेरी)।

इसको चम्पक नागकेशर कहते हैं। इसके पुष्प पीत वर्ण के उग्र गधी होते हैं। इसके पुष्प का सादृश्य नागकेशर पुष्प से बिल्कुल भिन्न है अत. इसका ग्रहण नागकेशर के लिए करना अनुचित है। इस प्रकार पाच प्रकार के नागकेशरो मे से केवल नागकेशर (मेसुवा फेरिया) ही असली नागकेशर है। और उसका प्रतिनिधि सुरपुनाग या लाल नागकेशर हो सकता है।

(६) भव्य (Dillenia Pentagyna Roxb)—

श्री अम्वालाल जोशी वैद्य जोधपुर राजस्थान ने उस्मान अल्ली का नाम नोट करके अपने लेख मे नाम यह लिखा है कि वे 'भव्य' या चालता को भी नागकेशर मानते हैं,जो नितान्त अग्राह्य विषय है। चालता का पुष्प अवश्य वडा सुगन्धित और सुन्दर तथा वडा होता है। किन्तु केशर बहुत छोटे छोटे होते है और फल ताड के फल के समान होते हैं। इसकी समता नागकेशर के किसी भेद से नही हो सकती। न तो इसका पुष्प केशर नाग की तरह होता है और न फल ही। अत इसे नागकेशर मानना उचित नही ज्ञात होता।

नागकेशर

लेखक—श्री वैद्य अम्वालाल जोशी, जोधपुर

आयुर्वेद शास्त्र की कतिपय वनौषधियो की तरह नागकेशर भी एक विवादास्पद औषधि है। भारतवर्ष के विभिन्न भागो मे नागकेशर नाम से जितने भी द्रव्य उपलब्ध हैं वे सव भिन्न भिन्न हैं। यहा तक कि एक ही स्थान पर प्राप्त होने वाली नागकेशर दो या तीन प्रकार की होती है। ऐसी स्थिति मे रग भेद से लाल, पीली तथा काली कह कर उसकी पहचान की जाती है। यहा तककि उनके नाम भी इतने घुल मिल गये है कि विभिन्न नागकेशर के नामो को पृथक पृथक करना भी कठिन हो गया है तथा गुणो को भी घुला मिला दिया है और उन्हे भी अलग करना कठिन कार्य है। यहा हम इसी दृष्टि से नागकेशर पर विचार करेंगे।

भारतीय वाजार में नागकेशर के नाम से जो द्रव्य उपलब्ध है उनको हम मोटे तौर पर तीन भागो मे विभक्त करते हैं। इनके लेटिन भाषा मे नाम यहा दिये जा रहे हैं—

(i) Mesua Ferrea—बगाल का नागकेशर
(ii) Ochrocarpus Longifolius—दक्षिण का नागकेशर
(iii) Calophyllum Inophyllum—सीलोन, ब्रह्मा का नागकेशर।

उपरोक्त तीनो ही वृक्ष वनस्पति शास्त्र की दृष्टि से गट्टीफेरी (Guttiferea.) वर्ग के अन्तर्गत आते है। वैद्य गगा प्रसाद जी ने इसे Mesua Specion भी वताया है। दक्षिणी ग्रन्थ औषधि निघण्टु ने इसे Mesua Roxburghi E वताया है। आयुर्वेदीय निघण्टुओ के अनुसार नागकेशर कर्पूरादि वर्ग मे रक्खी गई है। अभी अभी श्री उस्मान अली ने जिस नागकेशर की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया हे वे भी विचारणीय हैं। श्री उस्मान ने दक्षिण भारत मे मिलने वाली दो प्रकार की नागकेशरो को वाजार से प्राप्त कर उनका स्थावर विज्ञान शास्त्र की दृष्टि से अध्ययन कर उन्हे डिलेनिया पेन्टागैना राक्स्व (Dillenia Pentagyna Roxb) तथा नाट्ट नागकेशर को सिन्नमोम वैटिएमेन्सन् (Cinnamomum Wightii Neisn) पाया।

अव हम उपरोक्त सव ही प्रकार की नागकेशरो का अलग अलग परिचय पर्याय पाठको को करावेंगे।

(1 Mesua ferrea—(नागकेशर)

आयुर्वेद मतानुसार यह शास्त्रीय व असली नागकेशर वताई गई है। जो नाग चम्पे के वृक्ष के पीले गुच्छो से वनती है। रग केशरिया तथा तन्तु छोटे छोटे होते हैं।

आकार—नाग चम्पे का वृक्ष मध्यमाकार सुन्दर,सदा हरा भरा घेर घुमाला तथा सुशोभित रहता है। यह शोभा के तौर पर वाटिकाओ मे लगाया जाता है। इसका स्तम्भ सीधा होता है तथा छाल राख के रग की चिकनी होती है। यह वृक्ष ४-५ वर्ष वाद फल देते हैं।

उत्पति स्थान—सम्पूर्ण भारत विशेषत पूर्वीभारत, नेपाल, आसाम, कुमायूँ, पूर्वी हिमालय, कनारा, दक्षिण कोकण, पश्चिमीघाट के वनो मे। ५००० फुट के नीचे वाले पर्वतीय भागो मे।

पत्ते—लम्वे शल्याकृति (भाले के आकार के) ३ इन्च से ५-इन्च तक लम्वे, १ से १॥ इन्च तक चौडे, आयताकार, ऊपर का पृष्ठ चमकीला हरा, नीचे का पृष्ठ श्वेताभ हरा तथा रज से आवृत शिराये सघन तथा अस्पष्ट।

पुष्प—पीलापन लिये श्वेत, अति सुगन्धयुक्त, आषाढ, सावन मे फूलने वाले। ये फूल २-४ इन्च के घेरे मे गोलाकार श्वेताभ पीत गोलाकार पाच पखुडियो वाले (अन्तर्दल पाच) इन्ही फूलो के भीतर केशरिया रग के नरकेशर के गुच्छा निकलते हैं। इसी को नागकेशर कहते है। आयुर्वेद के मतानुसार यही असली नागकेशर है।

इसके नाम—यदि ये नाम पुरुषवाची है तो ये नाग केशर के लिये प्रयुक्त है तथा यदि ये नाम स्त्रीलिंगवाची हैं तो ये नागपुष्प के लिए सम्बोधित किये गये हैं—

संस्कृत—भुजगाख्य, चाम्पेय, हेम, किंजल्क, केशर, नागकेशर, सुरपुन्नाग, सुरपर्णिका, नागपुष्प, पुन्नाग केशर, नाग किंजल्क, काञ्चनाह्वय (इस प्रकार काचनवाची शब्द इसके पर्याय है) आदि।

हिन्दी—नागकेशर, सुर पुन्नाग, पुन्नाग।
राजस्थानी—नागकेसर, केसर
विहार—नागकेसर
गुजराती—पीलू नागकेसर, सोरंगी का
बंगाल—नागेसर, नागकेसर, नागेश्वर
बंबई—नागचम्पा थोरला चम्पा
मराठी—नाग चम्पा, नाग चाफा वृक्ष, नागकेसर
कोनकन—रानउण्डी।
तामिल—इसल, करून नग, अम्माई ननग्, नागन, चम्पामम, चेरूनगपू।
तेलगू—गज पुष्पयू, केसरायू, नाग पञ्चकमु, नाग चम्पकमू, नागकेसर मू।
कर्नाटक—नाग सम्पिगे।
मलायन—नागप्पु, नाग चम्पकम्।
फारसी—नर मिश्का (नारेमुष्क)
अरबी—मिस्कुरुम्मान।
अंग्रेजी—Cobra's Saffron, Cylon Iron wood
लेटिन—Mesua ferreae (N O. Guttiferea)
श्रीलंका—नाका।
इसके वृक्ष को बोलचाल मे नाग चम्पा भी कहते हैं।

(यादव जी)

(II) Ochrocarpus Longifolius—

इसे यादव जी ने सुरपुन्नाग बताया है। इस वृक्ष की पुष्प कलिकाओं को सुखाकर नागकेशर के नाम से बेचा जाता है। यह दक्षिण-पश्चिम भारत, कोयम्बतूर, मलावार, कनारा से कोंकण तक पाया जाता है। सुरगी नाम से यह वृक्ष पहचाना जाता है।

आकार—यह वृक्ष मध्यम कद का होता है तथा सदा हरा-भरा रहता है। इसकी शाखाये गोलाकार होती है। वृक्ष की छाल १/४ इंच मोटी होती है। ये रक्ताभ, धूसर वर्ण की, इसकी लकडी लोह के समान वजनदार, काली या लाल वर्ण की अधिक कठोर होती है जो नाव बनाने के काम मे आती है। इसका १ घन फुट का वजन ६० से ८० पौंड तक होता है। इसको Cylon Iron wood कहा गया है। इसके नर मादा फूल के अलग-अलग झाड होते है।

पत्र—इसके पत्ते ५-६ इंच लम्बे तथा २-२॥ इन्च चौडे, मोटे तथा गहरे हरे होते है। ये वृन्त की ओर गोल तथा सिरे की ओर नुकीले होते हैं।

पुष्प—यह वृक्ष वसन्त ऋतु मे (माघ फाल्गुन मास में) फूलता है। इसके पुष्प सुन्दर, सुगन्धित, अनेक पुष्पो युक्त (गुच्छो मे) चार अन्तरदल वाले होते हैं। इनका रंग पीताभ श्वेत होता है तथा इसमे लाल रेखायें होती है। ये प्रायः उभयलिंगी होते हैं। ये २,२॥ इंच तथा पौन इंच व्यास के होते हैं। वृक्ष ५-६ वर्षो का होने पर फूल लगते है। इसकी कलिकाये गोल नुकीली होती हैं। स्वाद मे कुछ अम्ल, तिक्त एवं मधुर होती हैं। इसका रंग नारंगी लाल होता है। इस वृक्ष की कलियो का उपयोग प्राचीन काल में रेशमी अथवा पतले कपडो को रंगने के लिए होता था।

फल—पुष्प के पश्चात् ही वृक्ष मे मौलश्री (वकुल) के समान १ इंच के लम्बे अण्डाकार नुकीले फल आते हैं। ये एक बीज वाले होते हैं। इन बीजो के पकने पर लोग इसके गूदे को खाया करते हैं।

नाम—

संस्कृत—सुरपुन्नाग, नमेरु, सुरपर्णिका।
हिन्दी—नागकेशर लाल।
राजस्थानी—दाणा नागकेसर।
मराठी—सुरंगी, ताम्रद्रा, नागकेशर, गोदी डण्डी।
गुजराती—रातुनागकेशर।
बंगाली—सुरिंगी, नागकेशर, पुन्नागचम्पक।
अंग्रेजी—Alexandrian Laurel
लैटिन—Ochrocarpus Longifolius (आक्राकार्पस लोंगीफोलियस)

बापालाई ग. वैद्य सुरंगी को ही सुल्तान चम्पा मानते हैं जो सम्मत नही है।

(III) Calophyllum Inophyllum—

इस वृक्ष को यादव जी महाराज ने पुन्नाग कहा है। यह वृक्ष सर्व लोक प्रसिद्ध है। इसे डा० सन्त पाळ ने सुल्तान चम्पा कहा है।

प्राप्ति स्थान—दक्षिण भारत, बगाल तथा समुद्र के पास का भाग, लङ्का, महना, आस्ट्रेलिया तथा पूर्वी द्वीपो मे यह सर्वत्र प्राप्त होता है।

आकार—वृक्ष मध्यम कद का होता है। सुन्दर वृक्ष है। बहुत टेढा-मेढा होता है।

इसका नाम Calophyllum–का अर्थ है सुन्दर तथा सघन। तथा Inophyllum का अर्थ है अधिक नाडियो वाले पत्ते-सार्थक है। इसकी छाल भूरी चिकनी होती है।

पत्र—इसके पत्र बडे बट वृक्ष के समान लम्बे, गोल, तथा नुकीले होते हैं। ये एक दूसरे के सामने लगे होते हैं। इनकी लम्बाई १० से १८ सेमी तक लम्बे तथा ७ ५ सेमी से १० सेमी चौड़े होते हैं।

पुष्प—इसके पुष्प श्वेत, चार दल वाले, सुगन्धित मीठी सुगध वाले होते हैं। डाईमीटर २५ सेमी होता है।

फल—१ से सवा इ च लम्बे २ सेमी. या पौन इ च चौडे, पहले हरा फिर नीला तथा चिकना होता है। इसके बीजो में से ६० प्रतिशत हरे रंग का तेल निकलता है जिसे सर्पन का तेल (मराठी मे कहू) कहते हैं। यह तेल यह तेल साबुन बनाने में तथा व्रण रोपण के लिए व गठिये मे मालिश करने के लिए काम मे आता है। इसकी छाल मे हीरा बेल के समान एक प्रकार का गोद निकलता है।

नाम —

संस्कृत नाम—पुन्नाग, तुङ्गकेशर, पुरसकेशर।
हिन्दी—सुलतान चम्पा, सुरपन, सुरतूनिका, पुण्डी।
महाराष्ट्र—उ डी, उ डल।
बगाल—पुन्नाग, सुलतान चम्पक।
ब्रह्मा—पंगनवट, पैनिवट।
दक्षिण—सुरपडा, मुण्डी, सुरफन।
सिन्ध—डुगरफूल, पुरैया, सुरगी।
तेलगू—नमेरु, पुन्नाक।
तामील—नागय।

लेटिन–Calophyllum Inophyllum (केनोफिलम इनोफिलम)

उपरोक्त तीनो ही वृक्षों का प्रयोग नागकेशर के नाम से किया जाता है यह हम पूर्व मे बता आये हैं। इसके सिवाय एक और द्रव्य है जो नागकेशर के स्थान पर प्रयुक्त होता है। उसे काला नागकेशर कहते हैं। श्री बापालाल भाई ग. वैद्य के अनुसार यह द्रव्य नागकेशर में मिश्रित किया जाता रहा है। श्री उस्मानअली के अनुसार यह नाट्ट नागकेशर है।

(IV) Cinnamomum. Tamala Fr. nees.
(N.O Lauraceae).

यह सदैव हरा भरा रहने वाला एक छोटा वृक्ष है। जिसकी ऊचाई २५ फीट है। इसकी छाल गहरी भूरी या कृष्णाभ खुरदरी, पतली झिकनदार होती है। पत्तिया एक दूसरे के सामने या एकान्तर मे होती है। इसका घेर ४॥ फीट होता है।

पत्ते—प्राय ४-६ इन्च लम्बे तथा २-३ इन्च चौडे लट्वाकार, आयताकार या नोकदार, चिकने, चर्मवत होते हैं। ये आगे तक तीन शिराओ से युक्त होते हैं। ये ७.५–१३ मिली मीटर तक लम्बे पर्ण वृन्त से युक्त होते है। नवीन पत्तियाँ कुछ गुलाबी रग की होती हैं।

पुष्प—७ ५ मिलीमीटर लम्बे हल्के पीताभ रग के ५-१५ सेन्टी मीटर लम्बे सवृन्त काण्ड व पुष्प व्यूहो में रहते हैं। यदि पुष्प खण्ड ६ आयताकार सिल्क की तरह मृदु रोमश जो पुष्पित होने पर मध्य के नीचे से टूट जाते हैं। पूर्ण पुंकेसर ६ रहते है।

फल—आधा इन्च लम्बे अण्डाकार मासल काले रग के रहते है। ये फल कुछ बढे हुए परिपुष्प नाल पर लगे रहते हैं। परिपुष्प खण्ड अग्र पर कटे हुए मालूम पडते हैं।

इसके सूखे हुए अपक्व फल काला नागकेशर के नाम से दक्षिण भारत मे व्यवहार मे आते हैं। इसकी छाल को हिन्दी मे तज, बगाल मे लालुका कहते है। यह असली दालचीनी मे मिलाये जाते हैं। इसके पत्ते तमाल पत्र के नाम से बेचे जाते हैं। इस प्रकार इस वृक्ष के सभी अग प्रत्यग अन्य असली औषधियो मे मिलावट के काम में लिए जाते हैं। इसके नाम हैं--

संस्कृत—तेजपत्र, तमाल पत्र पत्रक। हिन्दी—तमाल पत्र, पत्रज, तेजपत्र, गुरदा। बंगाल—तेजपत्र। महाराष्ट्र—तमाल पत्र। राजस्थानी—पतरज। तेलगू—आकुपत्रो, गुजरात—तमाल पत्र। आसामी—दो पत्ती। तामील—कुट्ट, फरूद पत्ते। अरबी—साज जे हिन्दी। लेटिन—सिन मोमम् तमाला। N.O. लारेसिई

इन फलो को औषधि के रूप में अधिकतर मलाबार तथा मद्रास के चिकित्सक नाट्ट नागकेशर या सिरंगप्पु के नाम से प्रयोग मे लाते हैं तथा सिद्ध चिकित्सक तथा तामीलनाड के चिकित्सक भी इसे नागकेशर के रूप मे स्वीकार कर औषधि प्रयोग करते हैं।

श्री उस्मान के अन्वेषण मे एक और औषधि ज्ञात हुई जो दक्षिण के केरल प्रदेश मे नागकेशर के नाम से प्रयोग मे आती है और वह मलाबारी नागकेशर कहलाती है।

(V) Dillenia Pentagyna Roxb

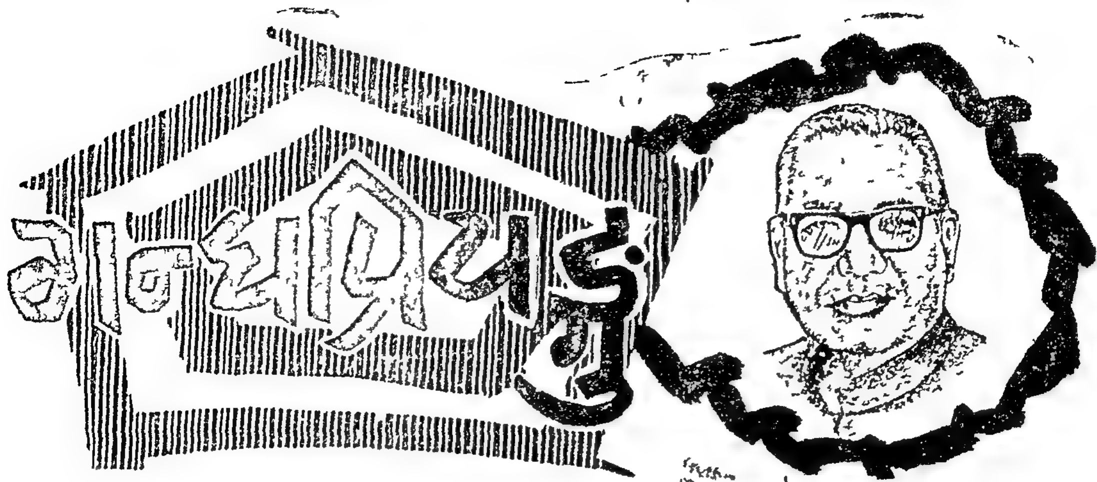
यह वृक्ष २० फुट लम्बा होता है। इसके पत्ते अलग अलग बिखरे हुए रहते हैं। यह पुष्पित वृक्ष है। द्विबीज पर्णक है। इसके बीजकोप नीचे रहते हैं। इसके पत्ते सादे होते है तथा कडे होते हैं। पराग कोप अन्तर्मुख होता है। पुंकेशर अनियमित संख्या में होती है। पुष्प पीले स्वर्ण के समान बाह्य कोप से आवृत फल मोटे, बाहर से कठोर तथा अन्दर से गिरीदार होते है। ये ही कच्चे फल नागकेशर के नाम से स्वीकार किये गए हैं।

यह वृक्ष नेपाल, आसाम, दक्षिणी सीलोन, मलाया, मलाबार मे प्राप्त होता है। इसके नाम—

संस्कृत—भव्य है। गुजराती—ओटफल, करमवल (करवल)। बंगाली—चालता। बम्बई—करबल, मोटा, करताल, करमल।

उपरोक्त तथ्यो पर विचार करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि आयुर्वेदीय औषधियो का निर्माण करते समय हम जिन-जिन घटको को शुद्ध समझ कर प्रयोग करते हैं उनमे से अनेक संदिग्ध हैं। इसलिए विभिन्न स्थानो पर विभिन्न व्यक्तियो के द्वारा निर्मित की गई औषधियां अपने गुण धर्मों मे भी समानता नही रखती और मानव देह पर पडने वाला उनका प्रभाव भी संदिग्ध ही हो सकता है। इसलिए वनस्पति विशारद वैद्यो का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे इन वनौषधियो की संदिग्धता को समाप्त करें तथा सर्वदेशीय समानता स्थापित करें। आज की यह परमावश्यकता है। अस्तु।

—श्री वैद्य अम्बालाल जोशी आयु.
मकराना मोहल्ला, जोधपुर (राज०)



आचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी, आयुशास्त्राचार्य बी ए,
— आचार्य - संस्कृत विश्व विद्यालय वाराणसी

संदिग्धता के कारण

(१) कुछ पर्यायो के समान शब्द वाचक होना, जिससे टीकाकारो को विभिन्न अर्थ करने का अवसर मिला।

(२) आधुनिक लेखको का विचार जो कि स्वत. संस्कृत और आयुर्वेदीय संज्ञावाचक शब्दो के ज्ञाता न होने के कारण अन्यो से पूछ कर जो ज्ञात किया लिख दिया।

(३) हिन्दी, गुजराती, बंगला भाषा-भाषियो द्वारा निघण्टु के लेखन मे आधुनिको का अन्धानुकरण।

(४) देश-विशेष के वैद्यो द्वारा अपनी परम्परानुसार अनुकूल वस्तुओ का प्रयोग करना तथा उसे ही मानना।

अब इसके पर्याय वाचक शब्दो पर भी कुछ विचार करना आवश्यक है।

(१) श्यामा तु महिलाह्वया।

(२) लता गोवन्दिनी गुन्द्रा प्रियंगु फलिनीफली।
विष्वक्सेना गन्धफली कारम्भा प्रियकश्च सा ॥
—अमरकोष

(३) प्रियंगु फलिनी श्यामा। —अभिधान चिन्तामणि

(४) प्रियंगु प्रियवल्ली च फलिनी कंगुनी प्रिया।
वृत्ता गोवन्दिनी श्यामा करम्भा वर्णभेदिनी ॥—ध. नि

(५) प्रियंगु फलिनी श्यामा प्रियवल्ली फलप्रिया।
गौरी गोवन्दिनी वृत्ता करम्भा कंगु कंगुनी ॥
भंगुरा गौरवल्ली च सुभगा पर्णभेदिनी।
शुभपीता च मंगल्या श्रेयसी चारुभूमिता ॥—रा. नि

(६) प्रियंगु फलिनी श्यामा कान्ताह्वा नन्दिनी लता।
—म पा. नि

(७) प्रियंगु- फलिनी कान्ता लता च महिलाह्वया।
गुन्द्रा गन्धफली श्यामा विष्वक् सेनागनाप्रिया ॥
—भा प्र. नि

(८) प्रियंगुः फलिनी कान्ता प्रियाह्वा वनिता लता।
श्यामा गोवन्दिनी वृत्ता कंगुनी प्रियवल्लिका ॥
गन्धप्रियंगुर्महिला करम्भा वर्णभेदिनी।
विष्वक् सेनांकोलगिर भंगुरा पर्णभेदिनी ॥
—कै दे. नि.

उपरोक्त पर्यायिक शब्दो को यदि ध्यान से पढें तो कंगुनी लता, कंगुन-फलिनी यह नाम सन्देहप्रद हैं। क्योकि लता शब्द स्त्री, दूर्वा आदि के पर्याय है। कंगु, कंगुनीये ज्योतिष्मती तथा धान्यकंगु के पर्याय है। श्यामा-यह श्र् वृत तथा सारिवा के पर्याय है। परन्तु परिचय ज्ञापक संज्ञाओ पर ध्यान देने से यह भ्रम दूर हो जाता है।

चरक के पर्याय—प्रियंगु, गन्धप्रियंगु, गन्धफला, गन्धफली लता, विष्वक्सेना, कान्ता, फली, श्यामा।

सुश्रुत के पर्याय—प्रियंगु, प्रियंगु लता।

वाग्भट के पर्याय—प्रियंगुक, प्रियंगु, कंगु, फलनी, लता

ये पर्याय हमे चरक, सुश्रुत और वाग्भट मे मिलते हैं।

परिचय ज्ञापक शब्द—

जातिसूचक—लता, वल्ली आदि यथा—गोरवल्ली, प्रियवल्ली, प्रियवल्लिका लता।

सौन्दर्यसूचक—प्रियंगु, वनितानन्दिनी, प्रियक, श्यामा, सुभगा, श्रेयसी, महिलाह्वया।

मांगल्य—मांगल्या, मंगल्या, श्रेयसी, शुभा, सुभगा।

उपरोक्त पर्याय यह बताते हैं कि यह लताजाति की औषधि है। देखने मे सुन्दर, औषधियो मे सुलभ, महिलावत् नम्रा, मृद्वी, लता या लतावन्नम्रा, सबको प्रिय विशेषकर स्त्रियो को होती है, अत. इसे महिलाप्रिया, वनिता नन्दिनी, महिलाह्वया, श्यामा आदि नाम दिए गये हैं।

स्थान—गोवन्दिनी, अंकोलगिरि, यह पृथ्वी पर

झुकनेवाली, गिरि के समीप की भूमि मे होने वाली—अंकोल गिरि अर्थात् गिरि के अंक मे लग्न होनेवाली।

गोदन्तिनी—गवि पृथिव्यां दन्ता अद्रि कटका: नितम्वा इति गोदन्ता तत्र जाता। अर्थात् पर्वत पर या समीप की भूमि मे होने वाली।

पुष्प—श्यामा, कृष्णपुष्पी, अर्थात् कृष्णवर्ण के फूलवाली

विष्वक्सेना कान्ता—विष्णुवत् सुन्दर होनेसे भ्रमरप्रिय,

फलज्ञापक—फलिनी, गन्धफली, फलप्रिया, वृत्ता गौरी, पीता, कंगुनी कगु। अर्थात्—जिसका फल वृत्ताकार-गोल, गंधयुक्त,पीतवर्ण का, अधिक फल वाला, कगु के फल की तरह गन्धयुक्त होने से सभी कामना करते हैं, अत कान्ता इत्यादि नाम हैं।

शाखाज्ञापक—भगुरा, कृशागी। जिसकी शाखायें कम हो, भगुर हो और देखने मे सुन्दर हो।

गुण-कर्मवाचक—अंगना प्रिया, मेदिनी, वर्णभेदिनी, गुन्द्रा, प्रियगु, नारिवल्लभा, प्रियाह्वा।

सुभगा—इनकी परिभाषायें की जायें तो सब फल के गुण की बोधिका है।

साराश यह है कि यह रोग नाशक, महिला-प्रिय, वर्ण को निखारने वाली, कान्तिप्रद औषधि है। यह ध्यान देने की बात है कि पर्याया के ये अर्थ हैं। गुण की अभी बात ही नहीं है। गुण पर विचार करें तो सब बातें स्पष्ट हो जायेंगी।

सन्दिग्ध सज्ञाओ मे से निम्न सज्ञाएं टीकाकारो ने दी है। यथा—

चक्रपाणि—प्रियगु—(१) कायनीति प्रसिद्धा —च० सू० २७।१६

चक्रपाणि—प्रियगु—(२) कागनीति—च०सू० ४।१५

चक्रपाणि—प्रियगु—(३) पुन्नाग इति—च०चि० ४।७३

अरुणदत्त—प्रियगु—(१)प्रियगु-श्यामा—वा०सू०१५।१६

अरुणदत्त—प्रियगु—(२) प्रियंगु-प्रियाह्वा, कगुनिका —वा० उ० ५।१६

इस प्रकार कगू और पुन्नाग तथा श्यामा ये तीन ही टीकाकार इस शब्द से मानते है। मालकागनी, धउला या महालेव और अन्य कोई विचार द्रव्य के नाम से नही है। अब आधुनिको का विचार देखिए कि उन्होने कैसा घोटाला किया है।

प्रियगु के पर्यायों के अर्थ पर विचार

अंकोलगिरि—गिरे अंके पार्श्वे लम्मा या भवति सा।

गोरवल्ली—गौरवर्णा या वल्ली लता जातीया सा।

प्रियवल्ली—प्रिया चासौ वल्ली, लता, प्रियवल्ली सा एव प्रियवल्ली।

मिथवल्ली—मेथति सगता भवति इति मिथा तादृशी वल्ली मिथवल्ली सयुक्त पत्रा।

वनिता—वनन सविजन प्राप्ता लतिका (वनिता)।

वनितावल्लभा—वनिताना वल्लभा या भवति सा वनितावल्लभा। अथवा वल्लते सवृणोति स्वाश्रयभूतवृक्षादिकं इति वनिता वल्लभा।

लता—लनति एति लता। लति सौत्रो धातु। पचाद्यच्।

पत्रवाचक शब्दो की व्युत्पत्ति

पर्णभेदिनी—पर्णेपु पत्रेपु भेद परस्पर पृथक्ता यस्य सा पर्णभेदिनी। चित्रितपत्रा पृथक्पत्रा वा।

पुष्पवाचक शब्दो के-पर्याय

कृष्णपुष्पी—कृष्णानि श्यामवर्णानि पुष्पाणि यस्य सा।

श्यामा—श्यामवर्णानि पुष्पाणि यस्य सा।

फलवाचक शब्द

गन्धफला—गंधयुक्तानि फलानि यस्या सा गन्धफला।

गंधप्रियगु—गंधयुक्ता प्रियगु फलवद् फला गंधफला।

फली—फलमस्त्यस्या इति फली।

कान्ता—काम्यते अति लस्यते इति कांता।

वृत्ता—वृत्ताकारावर्तते सुन्दरतया वृत्तरूपा या सा।

महिला—मोह्यते पूज्यते मान्यते वा इति महिला।

कगु-कगुनी—कगु फलवद् वृत्ता फला सूक्ष्मफला वा या सा। कं मुख वा गमयति।

पीता—पीतवर्णा गौरवर्णा।

प्रियवर्णा प्रिय आह्लादकवर्णा यस्या सा प्रियवर्णा

करम्भा—ईषद् रम्भा। ईषदर्थे क्षुद्रफला।

गोवर्णा—गोवर्णवद् अथवा पृथिव्या इव वर्णा यस्या सा

सुभगा—सुखेन भगा यस्या. सा सुभगा-भगुरा इत्यर्थ

फलप्रिया—फलानि प्रियाणि यस्य सा फलप्रिया।

फलिनी—फलमस्त्यस्या फलिनी।

रूपवाचक शब्द

श्रेयसी अतिशयेन श्रेष्ठा।

मगल्या—मगलाय हिता मगल्या।

शुभा—शुभस्य मगलस्य जनकत्वात्। अथवा शु पूजिता भाति इति शुभा।

गोवन्दिनी—गवि भूमौ वन्द्यते इति गोवन्दिनी। वदि अभिवादनस्तुत्यो।

कृशागी—कृशानि तनूनि अगनि-काण्डाद्यवयवादयः यस्या।

भगुरा—भग्नशीला शाखादय यस्या सा भंगुरा।

प्रियगु-प्रिय ज्ञायते काम्यते वा प्राप्यते इति प्रियगु। यद्वा प्रिय गच्छति नारीणाम् इति।

विष्वक्सेना—विष्वक् आसमन्तात् सिनोति आच्छादयति आवृणोति वा इति विष्वक्सेना।

वृत्ता—वर्तुलनालत्वाद्यद्वा वृत्ताकारा, यौमेना गुल्मादीना रूपादय यस्या।

प्रियवर्णा—प्रियानि आह्लादकानि वर्णानि यस्या।

प्रेयसी—अतिशयेन प्रिया इति।

आधुनिक वनस्पति वर्णन करने वाले व्यक्तियो के विचार

(१) कीर्तिकर तथा वसु ने अगलाइया रॉक्स बर्घियाना को प्रियगु माना है जो कि एक पेड़ है। यह २० से २५ फीट ऊँचा होता हे।

(२) विलियम डाइमक ने प्रूनस महालेब को प्रियगु माना है जिसको वम्बई या गुजरात मे 'घउला' कहते हैं, प्रियगु इस पेड की मींगी है। यह कुछ सुगन्धित होती है, वर्ण घउ या गेहू का सा होने से घउला कहते है।

(३) पुन यही महाशय अलइया को भी प्रियगु मानते हैं। (फा० ग्रा० इ० पृष्ठ ३४२ व ५६९)

(४) इमेनुअल रावर्ट ने "वैजीटेबिल मैटेरिया ऑफ इण्डिया एण्ड सीलोन" मे मिरिस्टिया हार्स फिल्डिया (जायफल की जाति) को प्रियंगु माना है।

(५) श्री कालीपद विश्वास ने "भारतीय वनोपधि दर्पण" मे अलाइया को ही प्रियगु माना है।

(६) चन्द्रराज भण्डारी अलाइया को ही मानते हैं।

(७) डॉ० वामन गणेश देशाई भी इसीको मानते हैं।

(८) इनकी देखा-देखी हिन्दी के लेखक भी अपनी सम्मति इनमे से किसी एक को देते हैं। यथा—

श्री बापालाल भाई प्रियगु से दो वस्तु (१) कांग और (२) घउला मानते है।

आचार्य श्री यादव जी घउला को ही प्रियगु मानते हैं। श्री बलवन्त सिंह जी "कैलीकर्पा मैक्रोफाइला" को प्रियंगु मानते है।

श्री प्रियव्रत शर्मा ने प्रियगु को कैलीकार्पा तथा महाप्रियगु को प्रूनस महालेब लिखा है।

इनके सम्वन्ध के विचार केवल इस आधार पर ही बने हैं कि भिन्न २ स्थानो मे यही द्रव्य लिए जाते हैं।

श्री रूपलाल जी वैश्य तथा भीमसेन चटर्जी ने विचार पूर्वक "दी इकोनामिक बोटानिक्स ऑफ इण्डिया" मे कैलीकार्पा मैक्रोफाइला को ही प्रियंगु माना है और बहुत युक्तिपूर्ण विचार भी दिए हैं।

प्रस्तुत लेख के लेखक ने श्री राजप्रकाश निघण्टु की टीका करते समय नाम तो प्रूनस का दिया था, परन्तु कैलीकार्पा मैक्रोफाइला का विवरण विचारार्थ रखा था जो कि श्री रूपलाल जी वैश्य ने तत्काल ही प्रकट किया था। इस लेखक को श्री भीमसेन चटर्जी का भी दर्शन करने का अवसर मिला था और विचार परिवर्तित भी हो गये थे। क्योंकि चटर्जी महोदय के मतानुसार महालेब ठहरता था।

यदि हम उपरोक्त सभी लेखको के विचारो पर विचार करें तो स्पष्ट हो जायगा कि कौन एसे विवरण है जो उन्हे बाध्य करते थे कि वे उसी को माने? परन्तु इस पर विचार करने से पूर्व अच्छा होगा कि प्रियगु के गुण-दोष भी लिख दिये जायें जिससे विचार करने और कहने मे सरलता जान पड़े। किन्तु यह स्पष्ट है कि आधुनिक लेखको का विचार अलगाइया रक्स, प्रूनस महालेब, मिरिस्टिका हॉर्स फिल्डिया और कैलीकार्पा मैक्रोफाइला के विषय मे था और वह विशेष विचारणीय होगे। अस्तु, प्रथम इसके गुणो पर विचार कर ले।

प्रियंगु के गुण-कर्म

प्रियगुः शीतला तिक्ता मोह दाह विनाशिनी।
ज्वरवान्तिहरा रक्तमुद्रिक्त च प्रसादयेत्॥
—ध० नि० चन्दनादिवर्ग

प्रियगु. शीतला तिक्ता दाहपित्तास्रदोषजित्।
वान्तिभ्रान्तिज्वरहरा वक्त्रजाड्यविनाशिनी॥
—रा० नि० चन्दनादिवर्ग

प्रियंगु शीतला तिक्ता तुवरानिलपित्तहृत्।
रक्तातिसारदौर्गन्ध्यस्वेददाहज्वरापहा॥
गुल्मतृड्विषमेहघ्नी तद्वद्गन्धप्रियगुका॥

तत्फल मधुरं रूक्षं कषायं शीतलं गुरु ॥
विबन्धाध्मानबलकृत् संग्राही कफपित्तजित् ॥
—भाव प्रकाश निघण्टु

प्रियङ्गु: शीतलो वान्तिदाहपित्तज्वरास्रजित् ।
मुखकान्तिप्रजननो दौर्गन्ध्य नाशक: ॥ —मदनविनोद

सुगन्धफलिनी शीता सुगन्धि: कष्टदाहनुत् ।
ज्वररक्तविकारं च नाशयेदिति कीर्तितः ॥
गन्धप्रियङ्गुस्तुवरस्तिक्तो वृष्यश्च शीतलः ।
केश्यो वान्ति[illegible]ग्रस्तकः ॥
ज्वर मोह स्वेद कुष्ठ मुख[illegible] तृषां हरेत् ।
वातगुल्मं तृड्विषं च मोहं [illegible] विनाशयेत् ॥
रक्तपित्त [illegible] कषायकम् ।
मधुरं शीतलं [illegible]ग्राहकं गुरु ॥
मलस्तम्भकरं बल्यं पित्तघ्नं [illegible]नाशनम् ।
आध्मानकारकं चैव मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥
—नि० रत्नाकर

उपरोक्त गुण-धर्म देखने से निश्चय होता है कि प्रियंगु मे निम्नलिखित गुण हैं—

(१) यह रस मे तिक्त और कषाय है। इसका फल भी मधुर और तुवर (अम्ल) है।

(२) गुण मे यह शीत, रूक्ष, [illegible], केश्य, दाहहर, स्वेदहर, ज्वरहर, संग्राही, रक्त प्रसादक, कान्तिजनन, तथा दौर्गन्ध्य नाशक है।

(३) दोषहर मे यह पित्तहृत्, कफजित् है। इसका बीज अनिलकृत तथा आध्मानकर है।

(४) रोगनाशन मे यह मोहनाशक, ज्वरहर, वान्तिहर, रक्तदोषहर, वक्त्रजाड्यहर, रक्तातिसारनाशक, गुल्म, विष और तृषाहर, विबन्धकृत, भ्रान्तिहर, रक्तपित्तहर, रक्तप्रसादक तथा विशेष रूप मे पित्त के रोग, ज्वर, तृषा, स्वेद, दौर्गन्ध्यनाशक है। कुछ श्लेष्महर भी है।

चरक सुश्रुत ने भी उपरोक्त रोगो मे ही इसका प्रयोग किया है। यथा—

चरक ने—दाह, वमन, रक्तपित्त, ज्वर, पित्तजप्रमेह, कुष्ठ, श्वित्र, क्षतक्षीण, अर्श, रक्तार्श, ग्रहणी, विष-वातरक्त, योनिव्यापद, पाण्डु, स्तन्यदोष, सांग्राहिककर्म उन्माद में प्रियंगु नाम से तथा प्रियंगुक नाम से रक्तपित्त, व्रण और प्रियंगुआ के नाम से रक्तपित्त, रक्तातिसार एवं गन्धप्रियंगु के नाम से विसर्प मे उल्लेख किया है।

सुश्रुत ने—रक्तपित्त, व्रण, व्रणरोपण, भगन्दर, प्रमेह, विद्रधि, दुष्टव्रण, पित्तार्बुद, ओष्ठपाक, ग्राही, वस्ति, अगद, सजीवन, महासुगन्धि, रक्ताभिष्यन्द, पित्तारक्त, प्रतिश्याय, ज्वरनाशकघृत, पक्वातिसार और रक्तपित्त मे प्रियगु नाम से और प्रियगु तथा फलिनी नाम से वस्ति मे योग लिखे हैं।

प्रियगु के पर्याय में एक पर्याय लतावाची भी है। लता शब्द का प्रयोग बडी लता, छोटी लता, छोटे गुल्म, और एक मूल से निकलने वाले कई प्रतान वाले उद्भिजों के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस रूप मे क्या प्रियगु लता है? उत्तर निम्न है—

(१) प्रियगु का पर्याय लता है, परन्तु लतावाचक प्रसरणशील लता नहीं। यही शब्द स्पृक्का, ज्योतिष्मती, दूर्वा आदि के पर्याय रूप में है जो लता के रूप मे कदापि नहीं हैं।

(२) लता शब्द सामान्य वल्ली के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है जो शरीर संवरण करके छोटे रूप मे फैलती है। यथा पुनर्नवा, दूर्वा आदि।

(३) लता—मूलाचाग्रलता के अर्थ मे प्रयुक्त होती है, अतः स्पष्ट है कि यह शाखा के अर्थ मे नहीं अपितु लघु काया वल्ली के अर्थ मे तथा प्रियगु के लिए पर्याय के रूप मे व्यवहृत हुई है। यह बडी प्रताननी लता नहीं है गुल्मिनी के रूप की हो सकती है। यदि इसी अर्थ को मानें तो वल्ली के रूप मे भी पर्याय आते है। यथा—प्रियवल्ली, मिथवल्ली आदि। अतः शरीरसम्वरण करके गुल्मवत् चलने वाली गुल्मिनी के अर्थ मे इसका ग्रहण करने से ठीक अर्थ हो जायेगा। असली प्रियगु गुल्मिनी तथा ह्रस्वकाया-प्रसारणशील उद्भिद है। विवरण आगे देखें।

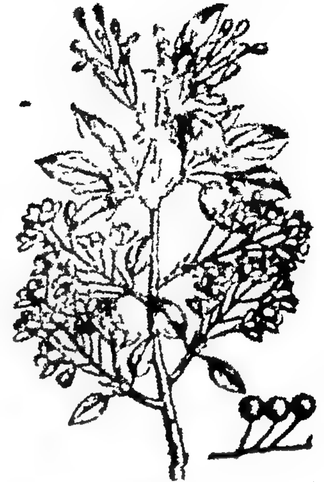
कैलीकार्पा मैक्रोफाइला—दयालो-दइया या दयिता— इस क्षुप की शाखायें अनियमित रूप से फैली रहती हैं और इनके नवीन भाग सघन तूल-रोमश होते है।

पत्ती—६–१० इन्च लम्बी अण्डाकार या किंचित् भस्त्रा ऊपर चिकनी और नीचे तूल-रोमश होती हैं, नोक लम्बा और किनारे के दाँत गोल होते हैं।

पुष्प—गुच्छ सघन, गोल तथा पत्रकोणो मे निकले हुए रहते है। डालियाँ पुष्पगुच्छो से लद जाती हैं और उनके भार से झुकी रहती हैं। पुष्प छोटे तथा हल्के गुलाबी रंग के होते है।







फल—मांसल-श्वेत तथा चार खण्डो या बीजो से युक्त होता है और पकने पर ऊपरी पृष्ठ पर स्पञ्ज की तरह मालूम होता है। छोटे दानो की बाजारू प्रियगु इसी क्षुप के फलमात्र का नाम है। इसका वर्ण पीत तथा दाने छोटे होते हैं। —वनौषधि दर्शिका—ठा० बलवन्त सिंह

श्रीप्रियव्रत शर्मा ने अपने द्रव्य-गुण-विज्ञान भाग २, पृ० ५५० पर प्रियगु का परिचय देते हुए—'केलीकार्पा मैक्रोफाइला" को ही असली प्रियगु माना है। इसका वर्णन निम्न प्रकार से किया है यह गुल्माकार थोडा ऊँचा क्षुप होता है, शाखाओ पर सघन तूल रोम होते है जो नवीन भागो पर विशेष रूप से स्पष्ट होते हैं।

पत्र—६–१० इन्च लम्बे, आयताकार, तीक्ष्ण भाग, दन्तुर धार होते हैं।

पुष्प—छोटे गुलाबी रग के सघन गोलगुच्छो मे पत्रकोण से निकलते है।

फल—मासल-श्वेत तथा चार खण्डो का होता है तथा प्रत्येक खण्ड मे एक-एक बीज होता है। फल पकने पर उसका ऊपरी पृष्ठ स्पज के सदृश प्रतीत होता है।

CALLICARPA MACROPHYLLA

An evergreen shrub, 3 to 4 ft. high, all parts densely greyish to mentose from short stellate hairs

Leaves—Lanceolate to oblong lanceolate, more or less acute or rounded at the base, long, acuminate, 4-6 in. long, serrata or crenate serrate, firmly membranous, while young on both sides stellate tomentose, glabrescent above and wrinkled

Flowers—small lilac, on slender pedicles, forming a rather dense dichotomous floccose tomentose cyme on a short 4-6" long peduncle arising from the axile of the leaves, calyx shortly tomentose 4 toothed, hardly 1/2 inch long corolla, glabrous, the limb 4 cleft, drupes globular, about a line in diameter, smooth white.

Forest flora of British Burma Vol II P 274.

By S. Kurx.

An erect shrub, 1.2-2 4 meter high, branches virgate usually shaggy as well as the tomentose tips

Leaves—12 5 to 23 cm long ovate or ovote lanceolate acuminate, base cuneate or rounded, upper surface wrinkled, glabrate when mature, white tamentose beneath with compound stellate hairs, main latered nerves 12-16 pairs Petiole 6 13 mm long

Flowers–hardly 5 mm long crowded in axillary peduncled globose cymes 2 5–7,5 cm.

petioles, calyx less than 1.2 mm long stellate hairy, lobes minute triangular, carolla-rose coloured, lobes subegual. spreading drupes white

(Kirteker & Basu)

PRUNUS MAHALEB

(इसका चित्र पृष्ठ ४४२ पर देखें)

Shrubby very much branched, branches erect, spreading

Leaves–Some what long-ovate, subround-ovate shortly acuminate, often subcordate, oblusely serrate

Flowers—Forming, simple convex corymbs, white,

Fruit–Small, ovate, often mucronate

(Kirteker & Basu)

It consists of small almonds of a pale buff colour, the skin is thin and marked with longitudinal veins, amongst them a few entire stones may be found, this have very fragile shells of a pointed oval shape, about 4/10 of an inch long 2/10 broad. The almonds when chewed have a strong flavour of Hydrocyanic Acid They are the Mahaleb of the Arabian physicians.

Pharmacographia Indica Vol II P 342 & 567

By William Dymock

AGLAIA ROXBURGHIANA

Tree 6-12 meter tall, Branchlets, petioles, rhachis and infloresence brown scaly.

Leaves–12 5 to 23 c.m long, leaflets 5 7, oblong lanceolate or opposite, thinly coriacious bluntly acuminate, base cuneat, globrous above, scaly beneath; nerves 6-9. pairs, slender 5 15 cm long, 2 5-6.3 cm wide, petiobler 5 mm long. Ponicles 7.5-20 m.m. long

Branches–Spreading dense-flowered.

Flowers–depressed, globular, 1 mm long, on pedicels as long. Calyx small, lobes 5, orbicular, scaly petals 5, elliptic orobovate, glabrous, much longer. Staminal tube truncate, componulate

Fruit—Ovoid or subglobose, brown scaly

(Kirteker & Basu)



AGLIA ROXBURGHIANA

नव मीपिसुगु

A large tree all young parts more, or less covered with ferrugenous tomentum

Leaves—Pinnate, 3 8 in long or more, petiole 3" long Leaflets 5, rarely 7 or 3, 2"-5" loy 1"-1/2", opposite or alternate, obovate lanceolate or elliptic oblong acute, obtuse at the tip, acuminate or slightly cuneate at the base, entire glab rescent, pale beneath on small pentioleeles.

Flower—Yellow, shortly pedicelote, in rather supra oxillary panicles longer then the leaves, Calyx 5-cleit Petals-5 embricate, elliptic oblong.

Fruit—Globose or pyriform 3/4" diameter, buff coloured, 1 seeded Fl March April ometimes at other seasons Fruits in the rainy season Wood is strong and usefull for building purposes.

Useful Plants of the Bombay Presidency

By J C Lisbon

डा. वामन गणेश देसाई ने Aglaia Priyangu नामक क्षुप को प्रियगु मानकर उसका वर्णन निम्न किया है—

यह एक बडा वृक्ष या क्षुप होता है, इसके पत्र संयुक्त होते हैं। पुष्प—पीत रङ्ग के होते हैं। फल—३/४ इञ्च मोटे, गोल तथा लोमयुक्त होते हैं। आर्द्रावस्था में हरित वर्ण के होते हैं तथा शुष्कावस्था में भूरे रङ्ग का तथा झुरियो से युक्त होता है। फल मे १ या दो विभाग होते हैं। उनमे १ या २ बीज रहते हैं। बीज—समतल या सपाट रहता है तथा एक ओर उन्नतोदर (Convex) रहता है तथा १/२ इञ्च लम्बा होता है। बीज का रस अम्ल तथा कषाय होता है। ताजे बीज मे सुगन्ध रहती है। लेकिन शुष्क मे नही रहती। —औषधि-संग्रह

MYRISTICA HORSFIELDIA

A large tree with a tall, straight trunk and numerous long, drooping branches, alternate, large, oblong lanceolate

Leaves—7"-12" long, glabrous, bright green, and shining above, glaucous and with an orange coloured, stellate tomentum beneath, panicles of lens globose sessile heads of numerous small, sessile orange yellow-fragrant

Flower—and nearly globose fruits about 2" long with an oblong avoid seed covered by an orange-chrome aril

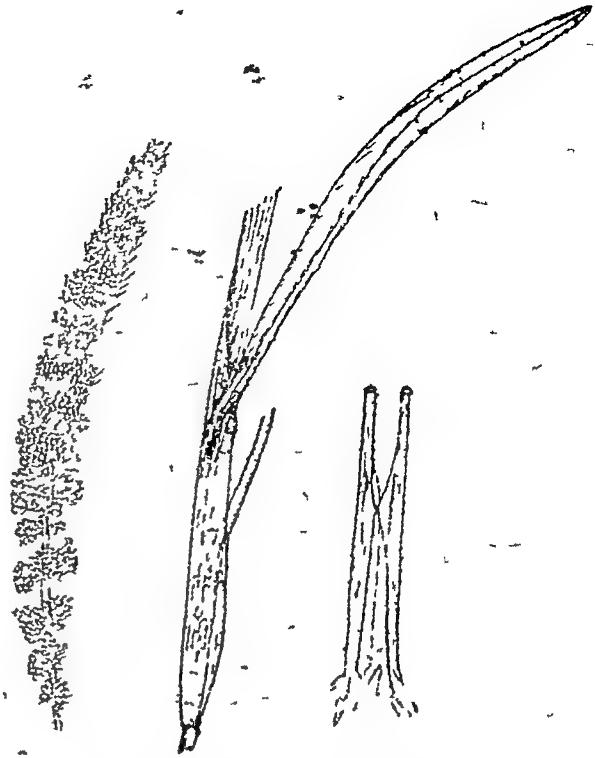
The flowers and roots are used The flowers yeild volatile oil The roots and flowers contain tannin

Vegetable Meteria-Medica of India & Ceylon
By Emmanuel Robus

विचार विमर्श

उपरोक्त समस्त पर्यायिक द्रव्यो पर एक साथ दृष्टि-निक्षेप करना पडेगा और प्रत्येक द्रव्य को तुलना की तुला पर रखते हुए अन्त मे क्रियात्मक तुला पर जो निष्कर्ष निकलेगा, हम उसे ही अपनायेंगे। इन द्रव्यो मे सर्वप्रथम कगु पर विचार करेंगे।

कगु—यह धान्य वर्ग का है और जहा कही भी इसका विवरण आया है वह आहार के लिए ही है। चरक मे कुधान्य वर्ग मे इसका पाठ देकर ठीक स्थान दिया है।



कंगु—(काग-कागनी) धान्य वर्ग

हस्तीश्यामकनीवार तोयपर्णीगवेधुकाः।
प्रशातिकाम्भः श्यामाकलोहिताणु प्रियंगवः॥

—च० सू० अ० २७।१७

धान्य वर्ग मे पाठ होने के कारण यह धान्य प्रियगु के अतिरिक्त कुछ नही है यह सुनिश्चित् है। राजनिघण्टु तथा धन्वन्तरि निघण्टु सबने धान्य वर्ग मे ही इसका उल्लेख किया है। इसके छः भेद भी गिनाये गये है। यथा—

प्रियंगु कगुकश्चैव चीनकः पीततण्डुल।
अस्थिसम्बन्धनश्चैव कंगुनी षट् च कथ्यते॥

—ध० नि०

राजनिघण्टुकार ने इसे कई प्रकार का लिखा है। यथा—

कंगुनी, कंगुनी प्रोक्ता चीनकः पीततण्डुल।
वातल सुकुमारश्च स च नानाविध, स्मृत॥

— राज० नि०

भाव मिश्र ने भी—

स्त्रिया कगु प्रियगु द्वे कृष्णा रक्ता सिता तथा।
पीता चतुर्विधा कंगु-स्तासां पीता वरा स्मृता॥

—भा० प्र० नि०

इसके गुणो पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि गध प्रियगु के स्थान पर इसका प्रयोग सम्भव नही है यथा—

वरकः स्थूल कगुश्च स्थूलवरकः स्थूल. प्रियंगु क ।
वरको मधुरो रूक्षो कषायो वातपित्तकृत् ॥

—राज० नि०

इस श्लोक के आधार पर इसका गुण पित्तकृत है। दाहनाशक नहीं है और न रक्तपित्तहर ही है। वात-पित्त-कृत होने से यह प्रियंगु के स्थान पर लेना उचित नहीं है। अमरकोषकार ने कगु शब्द से प्रियंगु और कगु दोनो को पर्याय रूप में लेने को कहा है। अतः रोगानुसार जहां पर आहार अर्थ मे लेना हो वहा धान्यकगु और जहां औषध निमित्त लेना हो वहां प्रियगु से गन्ध प्रियगु अभिप्रेत है।

क्या प्रियगु मालकांगनी है ? नही, क्योकि ज्योतिष्मती के गुण इसके विपरीत हैं। पर्याय मे ही द्रव्य ग्रहण सम्भव नही है। यथा—

ज्योतिष्मती कटुस्तिक्ता सरा कफ समीरजित् ।
अत्युष्णा वामनी तीक्ष्णा वह्निबुद्धिस्मृतिप्रदा ॥

—भा० प्र० नि०

यह सर, उष्ण, स्निग्ध, तीक्ष्ण होने से वामक है और यह शीत गुण वाली है अत. इसका प्रयोग सम्भव नहीं है।

आधुनिक विचारकों के द्रव्य पर भी विचार करें

डायमक, कीर्तिकर बसु व अन्य कई निघण्टुकारो ने अगलाइया राक्सबर्घियाना को प्रियगु माना है। अत विचार करें

(१) **आगलाइया राक्सबर्घियाना**-यह वृक्ष ६ फीट से ४० फीट तक ऊंचा होता है। इसकी लकडी दृढ़ व इमारत बनाने के काम मे आती है। यह न लता है न गुल्म है न गुल्मिनी है।

पुष्प—पीत वर्ण के होते हैं। प्रियगु कृष्ण पुष्पा व नील पुष्पा है।

बीज व फल—लम्ब गोल भूरे वर्ण की सफेली और तीन-चौथाई इच के बराबर होता है अत. वृत्ता, क्षुद्रफला, गौरी, गधफला नही है। कंगु के फल की तरह सूक्ष्मफला भी नहीं है। अत इसके फल के लेप मे मुखकान्तिकर, वर्ण का बनाने वाला न होने से इसका उपयोग प्रियगु की तरह सम्भव नही है, अत यह मान्य नही हो सकता।

यह अगना प्रिय न कभी रहा है और न है ही। अत. मानना सम्भव नहीं है।

गुण के विषय मे विचार करे तो किसी भी आधुनिक वनस्पति शास्त्री ने गुण द्रव्य अपना न लिखकर आयुर्वेद के प्रियगु के गुण की ही नकल कर दिया है। प्रायोगिक विवरण नही दिया है, अत कोई आधार ऐसा नही है कि इसे प्रियंगु माना जाय।

स्थान—प्रियगु घर घर मे व्याप्त होने वाली, अधिक मिलने वाली व अगना-प्रिय द्रव्य होने से सुलभ है। बाजार मे यह सुलभ नहीं है और न कुछ आधुनिक विचारको के अतिरिक्त अन्य पहचानते हैं। यह दक्षिण कनारा सिलोन, टिनेवेली, बर्मा, सिंगापुर, मलक्का, मलाया व भारत के पश्चिमीय घाट मे मिलती है। प्रियगु उद्यान मे लगाने योग्य है जैसा अग्निपुराण व बृहत् सहिता मे लिखा है।

(२) **मिरिस्टिका हार्सफिल्डिया**—यह बहुत बडा फल वाला जायफल का भेद है। यह न तो सूक्ष्मफला है और न इसमें विशेषतायें मिलती हैं। यथा—लता, गौर-वल्ली, ककुन्दिनी, कगुनी की तरह फल वाली यह बड़े वृक्ष के रूप मे होता है। फल दो इच लम्बा होता है। उष्ण-तीक्ष्ण होता है, यह पित्तज व्याधिहर नही है। पुष्प पीत वर्ण के होते हैं अत. इसे मानना अभिप्रेत नही है। यदि यही प्रियगु है तो जायफल का क्या होगा ?

(३) **प्रूनस महालेब**—यह बाहर से आने वाला अरब-परसिया आदि का द्रव्य है, भारतीय न होने से व सर्वसुलभ न होने से यह बम्बई के बाजार के अतिरिक्त अन्य स्थान पर सुलभ नही है। गुजरात व महाराष्ट्र को छोडकर कोई "घउला" को जानता ही नहीं। न यह अगनाप्रिय द्रव्य है। यह अगरबत्ती मे व सुगन्ध मे मिलाने वाला द्रव्य है। इसको भी अधिक लोगो ने मानने का विचार उपस्थित किया है। अत इस पर सूक्ष्म विचार करके निर्णय देना होगा। सबसे बडी बात तो यह कि यह खाया नहीं जाता। न आभ्यतर प्रयोग मे इसका उपयोग कोई वैद्य करता। अत देश-विशेष मे प्रयोग किये जाने मात्र से यदि मानना हो तो ठीक है अन्यथा नही। घउला फल नही है बल्कि प्रूनस की मीगी है। अत विचार करेंगे।

श्री बापालाल भाई ने इसका उपयोग करने को लिखा है। परन्तु स्वय ही यह भी लिखा है कि घउला खाया नहीं जाता। तब रक्तपित्त और ज्वर मे जहां पर इसका आभ्यन्तर प्रयोग लिखा है क्या होगा ? ज्ञात है कि जिस

समय उन्होंने इस विवरण को लिखा था उनके विचार मे "कैलीकारपा मैक्रोफाइला" का विचार था ही नही। केवल फाग व घउला जो उनके प्रदेश मे प्रयोग होता है वही वे जानते थे। अन्य लेखको मे श्री यादव जी ने लिखा है। प्रियव्रत शर्मा जो लिखा है वह विशेष विचार करके नही अपितु यादवजी का अनुकरण करके घउला को महाप्रियगु और बलवन्त सिंह जी के यहाँ अध्ययन करने और विचारो से साम्य रखने के कारण कैलीकारपा को प्रियगु माना है। महाराष्ट्र और गुजरात मे इसका प्रयोग अगरबत्ती में डालने के लिए पहले होता था। अब वह भी कम हो गया। स्त्रिया आज भी इसका प्रयोग अगर की तरह अनुलेपनार्थ नही करती। यह गुल्म अवश्य है किन्तु बहुत ऊंचा होता है। कुछ इसे पेड मानते हैं। इसका विवरण पृथक दिया जा चुका है। इसका आकार—इसकी फली का चने की तरह होना है। बीज व फल सूक्ष्म नही होते कगु के आकार के नही होते, खाये नही जाते। अत प्रियगु की तरह मानने मे बहुत ही कमी है।

असली प्रियंगु व कैलीकारपा मैक्रोफाइला—यह लता जातीय गुल्मिनी है। इसके पुष्पगुच्छ सघनपत्र कोणो से निकले हुए होते हैं। इसलिये पर्णभेदिनी भी कही जा सकती है। यह क्षुद्र काया, शाखा-प्रशाखाओ से युक्त होने व फल भार से नम्र होने के कारण फलिनी व बहुपुष्पाश्रयी होने से सुभगा व श्वेत-सिल्की रोमों से परिव्याप्त होने से व श्वेत-पीताभ होने से गौरी व क्षुद्रफला व वृत्ताकार फल होने से व गधयुक्त फल व बीज होने से गधफली,वृत्ता कगु,कगुनी कही जा सकती है। इसको स्त्रिया सुगधित होने से शरीर मे लगाती है व अगरागादिमे इनका प्रयोग आज भी पर्वतीय देशो मे होता है। यह जब पुष्पित होती है तब तो श्याम-नीले वर्ण के पुष्प इसकी शोभा विशेष बढाते हैं। फलयुक्त होने पर तो बीज के ऊपर का फल मत्स्य मोती की तरह श्वेत-चमकीला—मनमोहक और गन्ध बहुत होता है। कई- कई फूलो के गुच्छे देखने में आनददायक होते हैं। गोपबालिकायें इसको एकत्र करके कानो मे लगाती है और सुगन्धित होने से शरीर में लेप करती हैं। देहरादून से अल्मोड़ा की नैनीताल की तराई के पुष्प बडे-बडे और विशेष सुगन्धित होते हैं। इसको वहा के लोग "दइया" या "दाया" कहते हैं। तराई भांवर के इलाको मे यह खूब पैदा होता हैं। माला जगल व सुरई मे खूब होता है। यह दो प्रकार का होता है। एक तो वह जो कि घरो मे लगाया जाता है। इसे वहां के लोग "मोतिया" कहते हैं। क्योकि इसके फूल फलयुक्त होने पर मोती की तरह हो जाते है। दइया या दाया अपभ्रंश है। पीलीभीत व उसके आस-पास के लोग इसे गोन्दनी भी कहते हैं। यह शब्द गुन्द्रा का बिगडा हुआ है। तथा गोवन्दिनी का निकटतम शब्द है।

सुन्दर कान्तियुक्त होने से यह कान्ता, महिला प्रिया, प्रियाह्वा, व फल भार से नम्र होने के कारण यह लता वत् नम्रा व वनिता, फलिनी, फली आदि पर्यायो के ठीक अर्थ मे मानी जा सकती है। देखने मे सुन्दर होने से श्रेयसी भी कही जा सकती है।

श्री भीमचन्द्र चटर्जी ने बहुत ही विस्तृत रूप में इसका विवरण दिया है। जिसका उल्लेख पूर्व मे किया है उनके शब्दो मे पुन उल्लेख कर रहे हैं।

Now the first and most important name प्रियगु, कगु, कगुणी would be quite sufficient to rebut the above by the very resemblance of the seeds to the well-known Panicum Miliacium or कगु, लता, वनिता, कान्ता, महिलाप्रिया would undoubtedly show that it is a creeper or a slender shrub most possibly taken from the fact that since the wife depends upon the husband for her maintenance or otherwise this sender plant being very soft and weak and specially charged with thick clusters of fruits thence (फलिनी), generally bends down unless supported by a stronger tree in its neighbourhood Its tender nature is further described by the word सुगुरा, वृन्ता, ककणी, कगु would further show that the seeds are spherical and to these the terms शुभापीता, गौरवल्ली are applied, and perhaps the poet's imagination was drawn to the fact that a wife becomes dearer and more charming if she produces a few lovely sons, so this plant producing such small charming yellow seeds in clusters and in such abundance has got all the terminology of such a successful wifeप्रियवल्लिका,

प्रिया, मंगल्या, श्रेयसी, सुभगा, श्यामा The very colour of the leaves and stems also however, is yellowish, green and this must have also struck the author in describing the plants The primary umbles carrying the clusters of flower and seeds shoot up from the axil and hence the term पणभेदिनी The flowers are quite small and are of a violet colour and they indeed look very charming when they are full blown, hence प्रियगुकलिका श्याम रूपणाप्रतिमयुधम्।

Now the entire description so far given of this important plant agrees absolutely with the plant that is actually used in Nepal प्रियगु, गंधप्रियगु which are called दयालो, श्वेतोदयालो in the Nepali language I have the picture of one, as the other is exactly alike it excepting small. The leaves of both are whitish green but they are whiter in the case of श्वेतोदयालो। The leaves are larger than those of ordinary trees and are rough to the touch

In Chittagong and some parts of East Bengal this is known to be प्रियगु। In Banaras I met a Brahmin Pansari who had the real प्रियगु and he knows it to be such, but it is to be regretted that he could not find a purchaser for the genuine article while the imitation sold indeed for a very high price Thus we find in many cases गोरस गलिगलि ढूंढत (पूछत बात न कोई) सुरा बैठल विकाय। But here it applies more than elsewhere and this is surely to be highly deplored

The Economic Botany of India.

श्री रूपलाल जी वैश्य ने भी चटर्जी साहब का अनुकरण करके इसके रूप का वर्णन अच्छा किया है। उनका विचार भी ठीक ऊपर जैसा ही है। फल सूख कर छोटे-छोटे कगुनी के आकार के होते है। रग पीला होता है। आकार वृत्ताकार होता है, अत गौरी, पीता, कगु, कगुनी आदि नाम सार्थक है।

प्रूनस महालेव मे यह सब बाते नही मिलती। इस केलीकार्पा मे सबसे अधिक मिलता हैं। अत बाध्य हो कर इसकी तरफ मन आकर्षित हो जाता है। जितने भी इसके स्थान पर द्रव्य लिये जा रहे है सबके सब इतने करीब नही आते जितना कि यह द्रव्य आता है। अस्तु, हमने तो इसे ही असली मान कर प्रयोग भी किया है और इससे लाभ मिला है। प्रयोगात्मक विवरण आगे दे रहे हैं। दयालो व श्वेतो दयालो। एक जिसके बीज सामान्य व छोटे होते हैं और दूसरा जिसके फल पकने पर सुगन्धित व अधिक श्वेत होता है। अत श्वेतो दयालो कहते हैं।

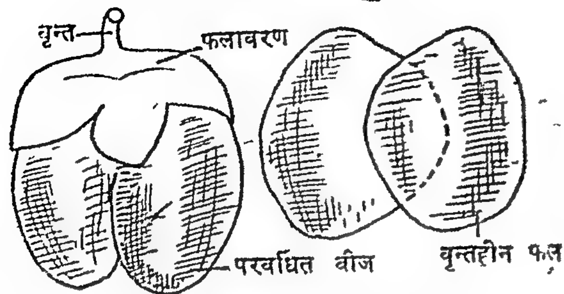
अत. कैलीकारपा मैक्रोफाइला को प्रियगु मानने मे कोई कठिनाई नही होती। अग्निपुराण व वृहद् सहिता की भी बाते इसमे मान्य होती है। यह गृह-रोप्य द्रव्य है। नैनीताल, अलमोडा, देहरादून, काश्मीर, नैपाल, मसूरी मे इसके क्षुप उद्यान में लगाते हैं। वहाँ पर यह दयालो के नाम से प्रसिद्ध है। इसके क्षुप की ऊंचाई अधिक से अधिक तीन फीट तक हमने देखा है। जब यह पुष्पित व फलित होती है तब देखने वाले मुग्ध हो जाते हैं, अत यही असली प्रियगु है।

गन्धप्रियगु (Calicarpa Macrophylla) फल की क्रियात्मक परीक्षा

नाम—गन्ध प्रियगु, प्रा० वर्ग–निर्गुण्डी कुल (Verbinaceae), गण—चरक मूत्रविरजनीय—मूत्रसग्रहणीय, सुश्रुत—प्रियग्वादि, अञ्जनादि।

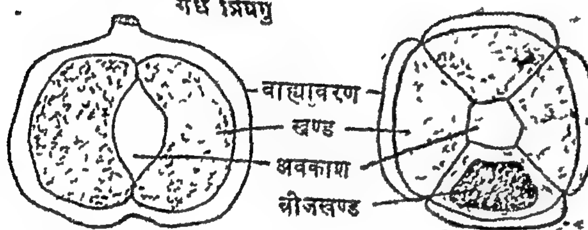
आकृति-विज्ञान—यह एक वृत्ताकार क्षुद्र फल है, इसका आकार प्राय गौर सर्षप के बराबर होता है। वृन्त का भाग छोटा परन्तु स्पष्ट दिखलाई पडता है। वृन्त के आगे पुष्प बाह्यावरण का भाग फलावरण के रूप मे दिखलाई पडता है, यह फल के १/३ भाग तक रहता है। इसमे चार नोकदार पत्र होते हैं। वृन्त के पास से दो रेखायें फल के अग्रभाग तक जाती है, अतएव इसके दो भाग हो जाते हैं। प्रत्येक भाग के पुन दो भाग होते हैं। इस प्रकार इसका भीतरी भाग चार खण्डो मे, विभाजित हो जाता है। फल के बाहर की तरफ एक पीतवर्ण का आवरण रहता है—यह इसके गूदे का भाग होता है जो पकने पर सूख कर पीत-श्याम वर्ण का हो जाता है। इसके दो प्रधान खण्ड बनते हैं। प्रत्येक खण्ड मे दो बीज रहते हैं। बीजो

गंध प्रियंगु



परिवर्धित गध प्रियगु बीज आवरणरहित

गध प्रियगु



प्रियगु का अनुलम्बच्छेद व्यत्यस्तच्छेद

का आकार त्रिकोणाकार होता है। वाहर की तरफ का भाग उन्नतोदर और भीतरी पृष्ठ चपटे समतल होते हैं। यह श्यावारुणवर्ण के होते हैं। बीज का ऊपरी भाग नारगी की तरह गोल बीच मे दबा हुआ होता है।

अनुप्रस्थच्छेद—व्यत्यस्तच्छेद लेने पर ऊपर गूदे का आवरण का शुष्क भाग प्रथम मिलता है। पश्चात् बीजावरण, उसके नीचे बीज मिलता है।

भार—५० बीज का भार २ गुना होता है।

वर्ण—प्राकृतिक वर्ण श्यावारुण, तैल—पीत, घृत ईषद् पीत, ज्वाला—पीताभ, विलेयता—वारि, तैल व घृत मे ईषद् होती है। रस—प्रायश कषाय, ईषद् तिक्त। स्पर्श—कठिन और लघु। शब्द—ज्वलनकालीन चटचट, भगुर। वर्ग—प्रायश कषाय होने से प्रायश वर्ग का है।

गन्धप्रियगु का सक्षिप्त प्रायोगिक विवरण—(गन्ध प्रियगु शोणितपित्तातियोग प्रशमनानाम्)। इस ओषधि के प्रयोग के लिए १० रोगी अन्तरग आतुरालय मे लिए जा चुके है और प्रयोग भी हुआ है तथा प्रयोग चल भी रहे हैं विशेष सख्यात्मक विवरण बाद मे प्रकाशित किये जायेंगे। बहिरग के रोगियो में ५ रोगियो पर प्रयोग नही हुआ है।

ज्वर के ५ रोगी—पित्त प्रधान ज्वर, इनमें ४ का उपशम हुआ है। एक शोप राजयक्ष्मा के रोगी का तापमान १०१.६ फा० बरावर रहता था वह कम होकर ९९.८ रह गया था। रक्तपित्त के २, असृग्दर के २ और प्रवाह के १ रोगी को सम्यक् लाभ हुआ है।

बहिरग के ५, त्वक् प्रदाह के ४, कण्डू प्रदाह के १ इस प्रकार ५ रोगियो को लाभ हुआ है। इन पाँचो रोगियो पर गध प्रियगु के तैल का प्रयोग किया गया था। आगे भी प्रयोग चालू है और उत्साहजनक परिणाम निकल रहे हैं।

बलाविमर्श

श्री डा॰ राम अवध गुप्त
श्री डा॰ भृगुनाथ सिह
राजकीय आयु कालेज लखनऊ

इसके लेखक डा॰ रामअवध गुप्त डिमास्ट्रेटर द्रव्य गुण एवं रस शास्त्र तथा भृगुनाथ सिंह लेक्चरर द्रव्य गुण विभाग राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय लखनऊ के हैं।

विद्वान् लेखकों ने बला की विभिन्न जातियो का अध्ययन करके विचार प्रस्तुत किया है। निघण्टुओ में चतुर्विध बला का वर्णन मिलता है। इन चारो भेदो मे एक-एक बला के भेदों के आकार प्रकार भेद से कई रूप बन जाते हैं। उनमें से कुछ का वर्णन लेखको ने दिया है किन्तु फिर भी कुछ भेद इसके रह गये हैं।

लेखको ने बला के नाम से ग्रहण होने वाले दो और पौधों का वर्णन किया है जो दक्षिण भारत में बला के नाम से ग्रहण किया जाता है। आशा है आगे इस पर विचार करेंगे। —विश्वनाथ द्विवेदी

औषध द्रव्यो मे बला का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अनेक भेदो का प्रयोग चिरकाल से चला रहा है। वैदिक वाङ्मय मे विशेषत अथर्ववेद मे अन्य औषधियों के साथ सहमाना, सहस्वती आदि नामो से एक द्रव्य का वर्णन आया है। टीकाकारो ने इसका अर्थ सहदेवी किया है, किन्तु वस्तुत यह बला है, जिसका रूप आगे चलकर 'सहदेवा' हो गया है। अथर्ववेदीय पैप्लाद सहिता (Atharva Veda of the Paippladas) मे बला का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त अतिबला का ककतदन्तिका नाम से निर्देश हुआ है, जो सम्भवत बाद मे ककतिका हो गया।

निरुक्ति—

बला शब्द की निरुक्ति अनेक विद्वानो ने "बल सवरण सचरणे च" धातु से निष्पन्न की है। "बलिते सवृणोति सचरति च इति बला" इसके अनुसार समूहबद्ध होकर जो फैसे और भूमि को आच्छादित करले उसे बला कहते है। वस्तुतः इसकी निष्पत्ति "बल प्राणेन" धातु से होती है। "बलनि बलयति वा बला" जिससे स्वास्थ्य एव गुण कर्म पर प्रकाश पडता है। इसका पौधा बहुत ही मजबूत होता है। आसानी से उखाडा नही जा सकता। इस प्रकार बलिष्ठ होने के कारण भी बला कहलाने का अधिकार इसे प्राप्त है। इसके अतिरिक्त यह एक उत्तम रसायन एवं बल्य है, इसलिए भी इसकी बला सज्ञा सार्थक है।

पर्याय—

निघण्टुओ मे वाट्यायनी, भद्रौदनी, खरयष्टिका, शीतपाकी आदि पर्यायो का उल्लेख हुआ है। वाट्यायनी शब्द "वट वेष्टने" धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है बाँधना। बला के काण्ड मे मजबूत रेशे होते है जो बाँधने के काम मे आते हैं। इसके बीज तण्डुलवत् होने के कारण इसे भद्रौदनी कहा गया है। इसका काण्ड खर एव रोमश होने के कारण इसका नाम खरयष्टिका है। शीत काल में पकने के कारण इसे शीतपाकी कहा गया है। बला शब्द का अपभ्रंश बरियार तथा खरयष्टिका का अपभ्रंश खिरैटी लोक में प्रचलित है।

बलाभेद—

आयुर्वेद के विभिन्न ग्रन्थो मे बलाद्वय, बलात्रय, बलाचतुष्टय एव पंच बला का उल्लेख मिलता है। जिसका विवरण निम्न प्रकार है—

बलाद्वय—चरक एव सुश्रुत सहिता मे इसका उल्लेख

किया गया है। चरक संहिता विमान स्थान आठवें अध्याय मे मधुर स्कन्द के अन्तर्गत बला, अतिबला, सहदेवा, विश्वदेवा, शीतपाकी, ओदनपाकी इन छः द्रव्यो का उल्लेख आया है। बलाद्वय से निम्न दो द्रव्यो का ग्रहण करते हैं। (१) बला। (२) अतिबला।

बलात्रय—इसका उल्लेख शोढल निघण्टु मे किया गया है। इसके अन्तर्गत निम्न तीन द्रव्यो का ग्रहण किया गया है—(१) बला। (२) अतिबला। (३) नागबला।

बलाचतुष्टय—इसका उल्लेख भावप्रकाश मे किया गया है। बला के इन चार भेदो मे निम्न द्रव्यो का ग्रहण करते है—(१) बला। (२) अतिबला। (३) महाबला। (४) नागबला।

पञ्च बला—इसका उल्लेख धन्वन्तरि निघण्टु मे किया गया है। इसमे निम्न द्रव्य ग्रहण किये जाते है। १. बला २. अतिबला ३ महाबला ४. नागबला ५. राजबला।

परन्तु आजकल भावप्रकाश द्वारा उल्लिखित बला चतुष्टय का अधिक प्रचलन है। यही सर्वमान्य है। अत बला के इन्ही चार भेदो के बारे मे हम अपने विचार प्रकट कर रहे हैं।

बला

इस नाम से जो द्रव्य सामान्यतः लिया जाता है वह कार्पास (Malvaceae) का Sida Cordifolia Linn नामक द्रव्य है। इसके छोटे-छोटे २ से ४ फुट ऊँचे क्षुप होते हैं। पत्र हृदयाकार, आयताकार एव गोल दन्तुर होते हैं। मूल एव काण्ड दृढ होते हैं। पुष्प पीतवर्ण तथा फल छोटे-छोटे होते हैं जिन पर दो छोटे काँटे (शूक) लगे होते हैं। इसके अतिरिक्त Sida की निम्नांकित Species भी मिलती हैं जिनका बला के स्थान पर व्यवहार कर लेते हैं—

1 Sida Acuta Burm (Sida Carpinifolia)
2. Sida Spinosa Linn

किन्तु Sida Spinosa Linn को कण्टकिनी बला या श्वेत बला कहना अधिक उपयुक्त है। इन Species मे गुणकर्म का सादृश्य सम्भावित है इसलिए Sida Cordi-

SIDA CORDIFOLIA



SIDA CARPINIFOLIA



SIDA SPINOSA



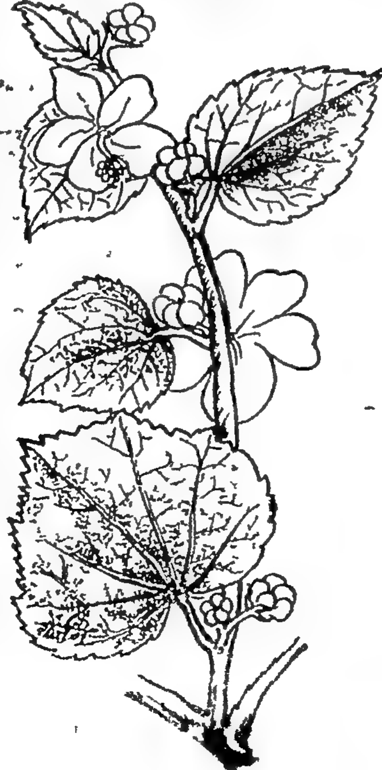
folia Linn के अभाव मे इसको ग्रहण किया जाय तो कोई विशेष आपत्ति नहीं है।





अतिबला

इस नाम से जो द्रव्य सामान्यतः लिया जाता है वह भी कार्पास कुल (Malvaceae) का Abutilon Indicum Linn है। इसे साधारणत :'कघी' कहते हैं। इसका नाम साधारणतया पत्र की विशिष्ट रचना के कारण है। इसके फल गोलाकार तथा उसमे ऊपर की ओर कघी की तरह दात होते हैं सुश्रुत सहिता के कल्प स्थानमे आचार्य डल्हण ने टीका करते हुए अतिबला ककतिका लिखा है। निघण्टुओ मे भी इसका पर्याय ककतिका दिया है। इससे स्पष्ट है कि अतिबला Abutilon Indicum Linn ही है। इसकी एक दूसरी प्रजाति भी मिलती है जिसे बडी कघी या Abutilon Hirtum G. Don. (Abutilon Graveolens W. & A.) कहते हैं। इसके क्षुप कुछ बडे होते हैं एव पत्र भी बड़े होते हैं। शाखाओ एव पुष्प दण्डो पर लम्बे रोम होते हैं।





दक्षिण भारत मे अतिबला के नाम पर इसी कार्पास कुल (Malvaceae) के दो अन्य पौधो का ग्रहण करते हैं—

1. Urena Lobata Linn
2 Urena Sinuata Linn

किन्तु इनका स्वरूप भिन्न होने के कारण वस्तुत·

अतिवला नही है। अत अतिबला से कघी (Abutilon Indicum Linn) का ही ग्रहण होना चाहिये।

महाबला

महाबला शब्द चरक एव सुश्रुत मे नही मिलता। बाद के निघण्टुओ मे महाबला नाम से बला का एक भेद लिखा है और उसका पर्याय सहदेवा लिखा है। चरक विमान स्थान अध्याय ८ मधुरस्कध मे सहदेवा का उल्लेख मिलता है। सुश्रुत सूत्र अध्याय ४२ मे मधुर वर्ग मे बला, अतिबला तथा काकोल्यादि गणोक्त सहदेवा और विश्वदेवा मे बला भेद वाचक शब्द पाये जाते हैं। सम्भव है कि महाबला चरक सुश्रुतोक्त सहदेवा हो। महाबला के पर्यायो मे मुद्रित पुस्तको में कही-कही सहदेवी छपा है वह ठीक नही जान पडता। सहदेवी इससे भिन्न भृङ्गराजादि कुल (Compositae) की वनस्पति है जिसका लैटिन नाम Vernonia cineria Less है।

महाबला से जिस द्रव्य का ग्रहण होता है वह कार्पास कुल Malvaceae) का ही Sida Rhombifolia Linn नामक द्रव्य है। इसे गुजराती मे खेतराऊबला या क्षेत्रबला कहते हैं। क्योकि यह प्रायः खेतो के घेरे पर होती है।

नागबला

'नागबला' बला भेदो मे सर्वदा सन्देहग्रस्त रहा है। 'नागबला' शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं। एक यह कि जो भूमि पर नाग या सर्प की भाँति फैले, 'नागवत् व्रजते प्रसरति इति नागबला' और दूसरा वह कि जिसके सेवन से हाथी के समान बल प्राप्त हो, "नागवत् बलं यस्याः सा नागबला।" प्रथम निरुक्ति के आधार पर प० नगीदास स्वामी तथा आचार्य यादव जी ने Sida Humilis Cav या भूमिबला नामक द्रव्य को नागबला माना है। नागबला का उल्लेख चरक सहिता, सुश्रुत सहिता एव अष्टागहृदय इन तीनो सहिता ग्रन्थो मे रसायन वाजीकरण अध्याय मे मिलता है। बाद के निघण्टुकारो ने नागबला का एक पर्याय गागेरुकी दिया है जबकि वस्तुत गागेरुकी एव नागबला भिन्न द्रव्य हैं। गांगेरुकी परूपक कुल (Tiliaceae) का Grewia Populifolia Vahl नामक द्रव्य है। इसे लोक मे गगेरन कहते हैं। इसका पौधा झाडीदार होता है। पत्र छोटे १/२ इन्च से १ इन्च लम्बे तथा दन्तुर होते हैं। फल गोल ४ खण्डयुक्त होता है। गांगेरुकी का फल वर्ग में उल्लेख है। परवर्ती निघण्टुकारो ने नागबला के लिये एक पर्याय 'चतुष्पला' भी दिया है। यही शब्द सम्भवत दोनो मे भ्रम उत्पन्न करने का मुख्य कारण है। गागेरुकी मे चार फल एक साथ होते है। अतएव उसे नागबला मान लिया गया। वस्तुत गागेरुकी नाम से Grevia Populifolia Vahl नामक द्रव्य लेना चाहिए।

एक तीसरा द्रव्य भी नागबला के नाम पर लिया जा रहा है जो गुलसरी नाम से प्रसिद्ध है और परूषक कुल (Tiliaceae) का ही Grevia hirsuta vahle नामक पौधा है। इसका पौधा झाडीदार होता है। पत्र लम्बे दन्तुर होते हैं। काण्ड रोमश होते हैं। इस



मे भी पल गोल ४ खण्डयुक्त होते हैं। वस्तुत गुलशकरी नागवला न होकर वह द्रव्य है जिसका उल्लेख सुश्रुत तथा उसके टीकाकार डल्हण ने गुडशर्करा नाम से किया है। अत इसका प्रयोग गुडशर्करा के स्थान पर होना चाहिए न कि नागवला के स्थान पर। नागवला शब्द से भूमि बला या Sida Humilis Cav. का ग्रहण होना चाहिए। जो बला जाति का ही द्रव्य है।

गुणकर्म एवं प्रयोग

बला चतुष्टय के गुण कर्म का भाव प्रकाश निघण्टु मे समान रूप से उल्लेख मिलता है।

बला चतुष्टयं शीत मधुरं बलकान्तिकृत्।
स्निग्ध ग्राहि समीरास्त्रपित्तास्त्रक्षतनाशनम्॥

रस–मधुर, गुण–स्निग्ध, वीर्य–शीत, विपाक–मधुर, कर्म—बल्य, वर्ण्य, ग्राही, वातरक्त, रक्तपित्त, क्षतरोग नाशक होता है।

बला

आचार्य चरक ने विमान स्थान के अध्याय ८ के अन्तर्गत मधुर स्कन्ध मे बला और बल्य एवं बृहणीय गणो मे बला का वर्णन किया है। इसी तरह सूत्र स्थान तृतीय अध्याय में कुष्ठ चिकित्सान्तर्गत तथा चिकित्सा स्थान मे राजयक्ष्मा, कास, श्वास एव वात व्याधि और हृदय रोग मे बला के विभिन्न योगो का वर्णन किया है।

आचार्य सुश्रुत ने वातव्याधि चिकित्सा, हृदय रोग चिकित्सा आदि में बला का अन्य द्रव्यो के साथ प्रयोगो का उल्लेख किया है।

आचार्य वाग्भट्ट ने आम से युक्त वातोदिदोष एव रस रक्त आदि धातु दूषित होने पर बला का वर्णन दोषोपक्रमणीय अध्याय मे किया है। ज्वर चिकित्सा में बला मूल को शिखा में बाधने का प्रयोग बताया है। बला के विविध योगो का वर्णन राजयक्ष्मा, हृदय रोग और वातव्याधि मे किया है।

वृन्द माधव ने हृदय रोग, शूल चिकित्सा मे बला के उपयोग का उल्लेख किया है। चक्रदत्त ने बलादि क्वाथ, दशमूल बलादि क्वाथ तथा राजयक्ष्मा चिकित्सा मे बला-घृत का उपयोग बतलाया है। ज्वर चिकित्सा मे इन्होने बला मूल धारण के लिये कहा है। शूल, हृदय रोग चिकित्सा के लिये बलाद्यघृत के प्रयोग का उल्लेख किया है। शारगधर मध्यम खण्ड द्वितीय अध्याय मे शालपर्णादि क्वाथ, ज्वर चिकित्सा के लिये एव बलाघृत का हृदय रोग चिकित्सा के लिये उल्लेख किया है। योगरत्नाकरकार ने बला तेल का प्रयोग वातव्याधि चिकित्सा के लिये किया है।

भैषज्य रत्नावली में बलाघृत का प्रयोग राजयक्ष्मा क्षयजकास के लिये निर्दिष्ट है—

अतिबला

बला की भांति ही सहिता ग्रन्थ, निघण्टु और चिकित्सा ग्रन्थ मे अतिबला का वर्णन मिलता है। आचार्य सुश्रुत ने अतिबला का चिकित्सार्थ प्रयोग दृष्टिगत दोष प्रतिषेध मूत्राघात प्रतिषेध और शोष प्रतिषेध मे किया है।

महाबला

महाबला के गुण धर्म और प्रयोग बला एव अति बला के समान ही वर्णित हैं।

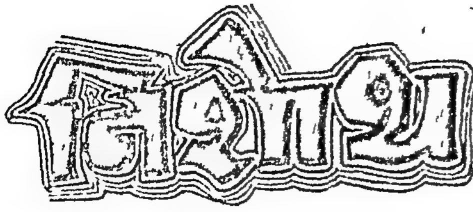
नागबला

नागबला का प्रयोग हृदय रोग, राजयक्ष्मा तथा रसायन एवं बाजीकरण मे किया गया है। नागबला के संग्रह एव प्रयोग का विशेष विधान चरक सहिता के रसायन प्रकरण में इस प्रकार से मिलता है—

नागबला मूल को अच्छी प्रकार जल से धोकर पीस लेवे। इसका १ पल या ४ तोले लेकर दूध मे घोलकर प्रात काल सेवन करे अथवा चूर्ण को मधु व घी में मिलाकर खाये। जब यह रसायन पच जाये तो घृत-मिश्रित दूध से शाली या साठी के चावलो का भात खाये। १ वर्ष तक लगातार इसके प्रयोग से व्यक्ति वृद्धावस्थारहित हो १०० वर्ष तक आयु का उपयोग करता है। इस रसायन मे अन्य गुण अन्य रसायनो के समान होते हैं।

वाग्भट्ट ने अष्टाग हृदय मे इसका विधान निम्नांकित रूप मे किया है—

नागबला को शरद के आरम्भ मे पुष्य नक्षत्र मे उखाडना चाहिए। इसके मूल चूर्ण को एक कर्ष की मात्रा मे दूध के साथ सेवन करना चाहिए। अथवा चूर्ण को मधु घृत के साथ चटाना चाहिए तथा पथ्य मे दुग्ध के साथ अन्न का सेवन करना चाहिए। इस व्यवस्था क्रम का एक वर्ष तक पालन करने से वह व्यक्ति बलिष्ठ होकर शतजीवी (शतायु) होता है।



श्री वेणी माधव अश्विनी कुमार शास्त्री
श्री ओम प्रकाश गुप्ता
श्री धर्मपाल वर्मा

त्रिवृत् की संदिग्धता के कारण

१. ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वाधिक प्राचीन सदिग्धता का प्रारम्भ महर्षि चरक के काल से आरम्भ हुआ है। क्योकि चरक ने त्रिवृत् को उत्तम विरेच्य द्रव्य मानकर उसके नाम से अपने कल्प स्थान मे एक स्वतन्त्र अध्याय की स्थापना की है। चरक ने वर्णन मे जो पर्याय प्रकट किये हैं उनमे त्रिमण्डी, त्रिवृता, श्यामा, कूटरणा, सर्वानुभूति, सुवहा प्रमुख हैं। यहा विवरण प्रकट करते समय चरक ने अरुणमूल, श्याममूल दो भेद लिखे हैं। अत अरुण एव श्याम मूल भेदो के आधार पर सदिग्धता बनी।

२. वानस्पतिक जाति सग्रह के आधार पर त्रिवृत् कुल के अनेक भेद पाये जाते हैं। विशेषकर पुष्प भेद के आधार पर अरुणपुष्प—श्याव या नीलपुष्प तथा श्वेत पुष्प तीन भेदो का वर्णन आयुर्वेदीय निघण्टुओ मे प्राप्त है। तथा इस आधार पर भी सदिग्धता बनी है। यहाँ पर त्रिवृत (ओपरकूलीना) की विश्वव्यापी स्पेसीज लगभग १० ही पाई जाती हैं।

—आयुर्वेदीय औषधि निघण्टु गुण दीपिका पृष्ठ १९१
सी० सी० ए० आर० प्रकाशन १९६६

३. कालादाना नामक वनस्पति भी गुण एव आकृति की दृष्टि से समान होने से सदिग्धता का कारण बन गया है। वानस्पतिक दृष्टि से इस वनस्पति को आइपोमिया हेदेरेसा जिसका नया नाम आइपोमियानिल (रोथ) है।

४ भारतीय जैलाप के नाम से प्रचलित वनस्पति भी आकृति गुणधर्म सामान्यत सदिग्धता उत्पन्न करता है। इसे वानस्पतिक जगत मे आईपोमिया पर्गा कहते हैं।

५ एक अन्य त्रिवृत् कुल की औषधि जिसे रक्तपुष्प निशोथ कहते हैं इसका नाम आईपोमिया मूरीकेटा है। यह भी समान होने से सदिग्धता उत्पन्न करती है।

(६) अन्य पीतपुष्प निशोथ जिसे आईपोमिया कोकसीनिया लिन कहते हैं। सदिग्धता उत्पादक वर्ग मे से होता है।

(७) वास्तव मे निशोथ कहलाने वाली तथा आयुर्वेदीय संहिता ग्रन्थो मे त्रिवृत् के नाम से ग्रहीत औषधि आईपोमिया टरपेथम लिन है। इनका पुष्प सफेद होता है।

सदिग्धता की समीक्षा

संहिता ग्रन्थो मे वर्णित त्रिवृत के सन्दर्भ मे सदिग्धता प्राचीन महर्षियो के तथा आधुनिक वानस्पतिक शास्त्रियों के दृष्टिकोण के भेद के कारण उत्पन्न हुई है। आयुर्वेदज्ञों ने त्रिवृत के भेदो का परिचायक वर्गीकरण मूल भेद तथा मूल वर्ण के आधार पर स्थापित किया। व्यावहारिक दृष्टि से यह स्थापना नितान्त वैज्ञानिक कही जाने योग्य है जबकि आधुनिक वनस्पति शास्त्रियो ने वर्गीकरण का आधार पुष्प वर्ण को रखा है। पुष्पवर्ण के आधार पर वर्गीकरण दुष्कर ही नही अपितु त्रिवृत् उत्पन्न न होने वाले प्रान्तो या क्षेत्रो मे असम्भव सा है। वनस्पति शास्त्रियो ने जिनमें प्रमुख जे० डी० हूकर, टी० कुक, जे० एफ० दथी, चोपरा, दत्ता एण्ड मुखर्जी, जी० वाट आदि ने कुल मिलाकर त्रिवृत कुल आईपोमिया जीनस की करीब ३०० उपजातिया वर्णित की है। इन सभी मे अत्यधिक रचना साम्य एव पुष्पवर्ण साम्य देखनें को मिलता है। अत सदिग्धता निवारण के लिये यथार्थता मूल वर्ण भेद ही उचित माध्यम प्रतीत होता है।

श्वेत मूल त्रिवृत् का वानस्पतिक वर्णन

नाम—त्रिवृत या निशोथ के वानस्पतिक पर्यायवाची नाम निम्नलिखित हैं—

(१) आइपोमिया टरपेथम आर० बी आर
(२) आइपोमिया एनकार आर० एण्ड एस०
(३) आईपोमिया ट्राइक्वेटरा आर० एण्ड एस०
(४) कोनवोल्वूलस टरपेथम लिन
(५) कोनवोल्वूलस एनसेप्स लिन
(६) कोनवोल्वूलस ट्राइक्वेटर व्हेल
(७) स्पाईरेन्थरा टरपेथम बौजर
(८) ओपरकुलीना टरपेथम (लिन) सिलवा मान्सू

पर्यायवाची नाम—

हिन्दी—निशोथ, पिनोहरी। बंगाली—तेउडी, दूरियाकलमी। गुजराती—निसोत्तर। मराठी—निशोत्तर। पंजाबी—निसोट। तामिल—शिवदै। तैलगू—तेगड। सताली—बानांडश्का। अरबी—तुर्बुद। सस्कृत—त्रिवृत। अंग्रेजी—टर्पेथ।

कुल—त्रिवृत्कुल (कोनवोलवूलेसी)

वानस्पतिक परिचय—

निशोथ का पौधा कोमल, रोमयुक्त, आरोही, बहुवर्षीय शाक है। काण्ड सरल, कोणाकार, पक्षयुक्त, एव रोमश होता है। काण्ड मे दुग्ध समान पदार्थ पाया जाता है। पत्र अण्डाकार या लम्बगोल (ओवलोंग) ५ से १५ सेमी० लम्बे होते हैं। पत्राधार हृदयाकार होता है। नवीन पत्र दोनो ओर रोमश होते हैं। पत्रवृन्त ३।४ से ३ इन्च लम्बा रोमश होता है। पुष्पवृन्त ०.५ से० मी० से २.५ से० मी० लम्बा होता है। नि.पत्र २.५ से० मी० लम्बी, लम्बगोल, रोमश, अधिकतर हल्की गुलाबी एव शीघ्र पतनशील होती है। बाह्यडिया (पुष्प मे) १२ से० मी० लम्बी एव अण्डाकार होती हैं। जबकि फल मे इनकी लम्बाई २.५ से० मी० लम्बी हो जाती है तथा आकार ओबीक्यूलर, जवतल हो जाता है। अन्दर की तीन अंखडिया छोटी शल्कीय एवं चमकीली होती हैं। दलपुंज श्वेत ३७ से० मी० लम्बा, नलिकाकार, घण्टाकार होता है। फल कैप्स्यूल प्रकार का, जिसका व्यास १२ से० मी० से १.८ से० मी०, गोल तथा बाह्यदल पुज से घिरा रहता है। प्रत्येक फल में ४ बीज प्राप्त होते हैं, बीज गोल श्याम वर्ण के होते हैं।

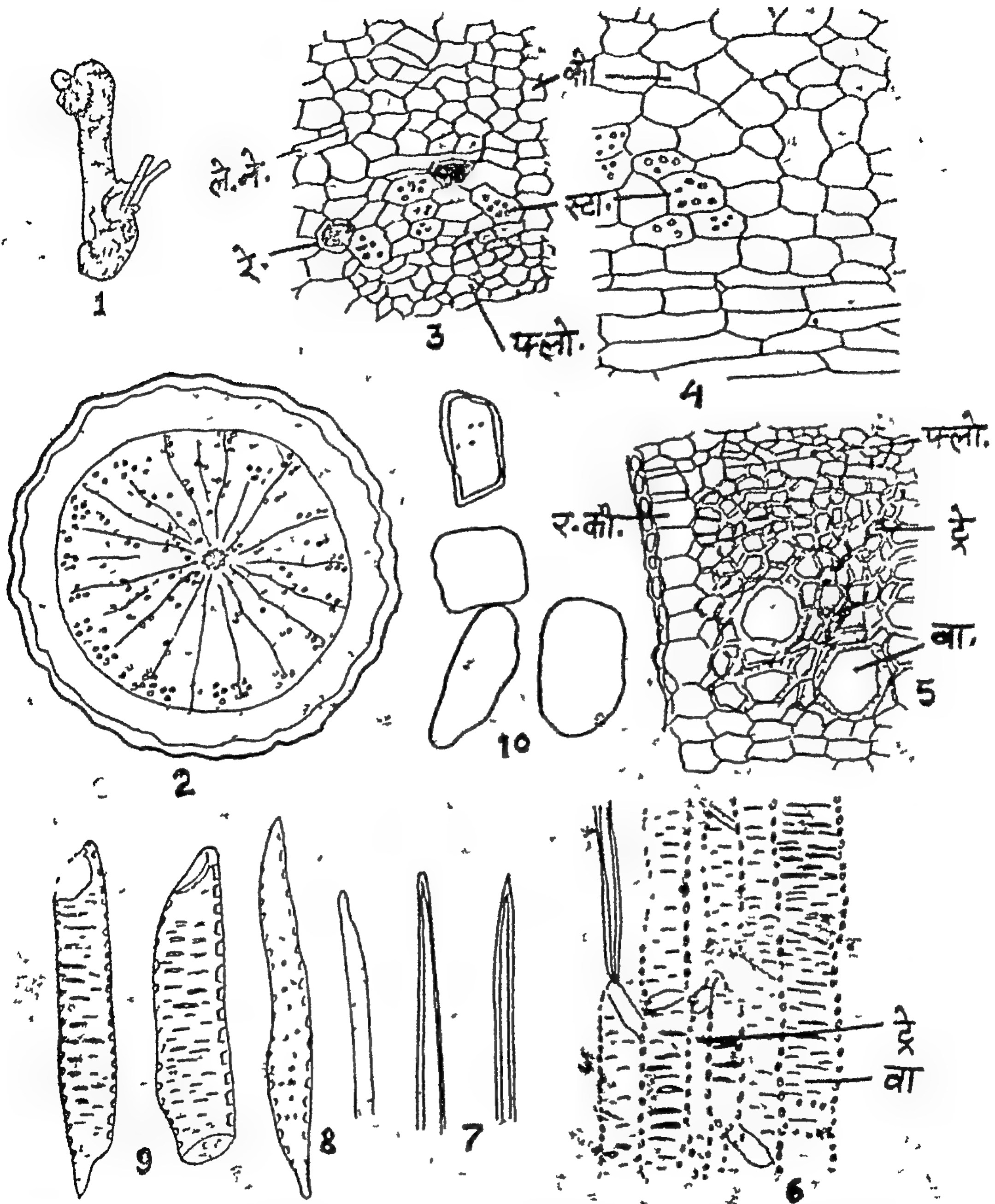
जड़का चाक्षुष परीक्षा वर्णनः (देखिये चित्र)

त्रिवृत मूल धूसर या अरुण धूसर वर्ण की बेलनाकार खण्डो मे प्राप्त होती है। इन खण्डो का व्यास १.५ से ५ से०मी० तक प्राप्त होता है। मोटे टुकडे प्राय भगुर होते हैं। बाह्य दर्शन मे मूलत्र का आवरण लम्बाई मे गहरी रेखायो से आवृत रहता है जो कि रस्सी जैसी रचना प्रकट कराता है। मूल स्पर्श मे कठिन एव रूक्ष होती है। आर्द्र अवस्था मे मूल से पिच्छिल दुग्ध स्रवित होता है, जो कि घन होता है, सूखने पर यह दुग्ध राल की तरह जम जाता है। गात्रपर उपमूल चिह्न देखे जा सकते हैं। त्वचा पतली तथा आर्द्रावस्था मे आसानी से पृथक करने योग्य होती है। त्वचा के नीचे का भाग मोटा होता है, इसके बीच मे कठोर ईपिका का भाग रहता है। मूल का रस किंचित् कटु तथा पियगध युक्त होता है।

जड़का सूक्ष्मदर्शी परीक्षा वर्णनः (देखिये चित्र)

जडके अनुप्रस्थ काट मे उभरी हुई वल्कूट (कोर्टेक्स) जिसमें द्वितीय जाईलम तथा केन्द्रीय काष्ठीय भाग होता है, जो स्पष्ट दिखाई देता है। जड मे काग (पेरीडर्म) जो कि काग केम्बियम (फेलोजन) तथा फैलम कोशाओ द्वारा बनी होती है जड की पहिचान करने के लिये अत्यन्त ही महत्वपूर्ण रचना है। अनुप्रस्थ काट मे फैलोजन कोशायें बहुकोणीय एव लगभग समव्यासी होती है जबकि लम्बवत काट मे आयताकार व चपटी दिखाई देती हैं, काग कोशाये (फैलम) आकार में एक समान होती है तथा इनमे भूरे रग का कणिकामय पदार्थ भरा रहता है। काग के नीचे द्वितीयक कार्टेक्स पतली भित्त वाली पैरेन्काइमा कोशाओ से निर्मित होती है। इन कोशाओ मे स्टार्च कण एव कैल्शिम ओक्जलेट कण भरे रहते हैं। कार्टेक्स की कोशाये विभिन्न आकार कीहोती हैं। कोर्टेक्स कोशाओ का आकार ३५ से ८०×२५ से ६० म्यू होता है। कार्टेक्स में विभिन्न आकार एव शक्ल की लेटीसीफेरस नलिकायें एव कोशाये पायी जाती हैं जिनमे राल सदृश पदार्थ भरा रहता है। द्वितीयक जाईलम मे वाहिनिया (वेसल्स) होती हैं जिनके किनारे खुले रहते हैं। विभिन्न आकार प्रकार के ट्रेकीड पाये जाते हैं जिनकी भित्तिया गर्ती (पिटेड) होती हैं। काष्ठतन्तु दोनो सिरो पर नुकीले होते हैं। इनका आकार २५० से ५०० म्यू ×१० से २०म्यू होता है। ट्रेकीर्डस का आकार १००-२००×४०--८० म्यू होता है। रश्मि कोशायें पतली भित्ति वाली होती है तथा जाईलम पेरेनकाईमा की भित्तिया गर्ती (पिटेड) होती हैं।

पावडर—जड के पावडर का सूक्ष्मदर्शक द्वारा अध्ययन करने पर इसमे बहुत अधिक गर्ती (पिटेड) भित्ति वाली वाहिनिया एव फ्लोइम दोनो सिरो पर नुकीले काष्ठ तन्तु, गर्ती जाईलम परेन्काइमा तथा पतली भित्ति वाले रश्मिकोशायें (रेसैल्स) पाये जाते हैं। स्टार्च कण, रश्मि कोशायें तथा आक्षीरी वाहिनियाँ (लेटिसिफेरस वेसल्स) भी बहुतायत से पाये जाते है।



१–जड का वाह्य आकार × २
२–जड का अनुप्रस्थ काट (रेखाचित्र) × ७

३–कोर्टेक्स एवं फलोइम का अनुप्रस्थ काट × १७४

४–कोर्टेक्स एवं फलोइम का लम्बवत् काट × १७५

५–जाईलम का अनुप्रस्थ काट × १७५,
६–जाईलम का लम्बवत् काठ × १७५

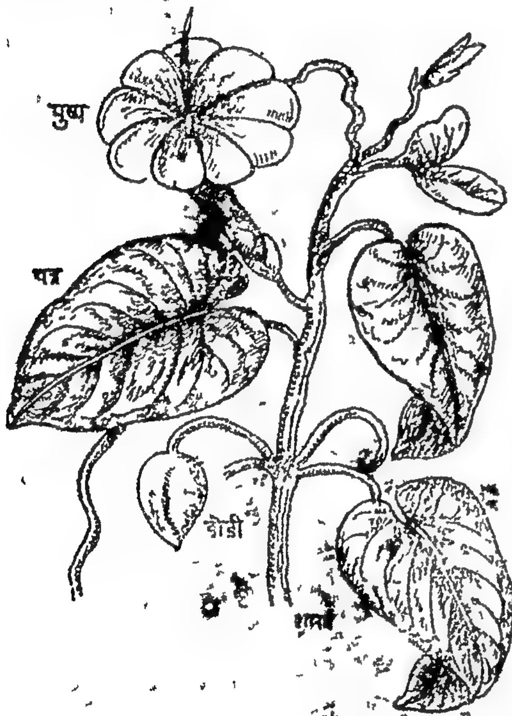
७–काष्ठ तन्तु × १७५,
८–ट्रेकीड्स् × १७५,

९–वाहिनियां × १७५,
१०–जीवितक कोशाये × १७५

को, कोर्टेस, फलो०, फलोइम, : र०को०, रश्मि कोशाये; वा० वाहिनियां; ट्रे० ट्रेकीड्स, स्टा०, स्टार्च कण; ले० न०, लेटीसीफरेस् नलिकाऐं; रे, रेजिन.

घटक—टर्पेथ में ५ से १० प्रतिशत राल (रेजिन) होती है। राल का कुछ भाग ईथर मे घुलनशील होता है। ईथर मे घुलनशील राल अल्फा और बीटा टरपेथीन का मिश्रण होता है। ईथर मे अघुलनशील राल को टर्पेथिन के नाम से जाना जाता है। यह राल प्रकृति मे ग्लाइकोसाइड के समान होता है। यह श्वेत भुरभुरा कोलाइड प्रकृति का यौगिक होता है, जोकि पानी मे अघुलनशील होता है। परन्तु क्षार के साथ स्थाई सम्पर्क मे आने पर कोलाईडीय घोल वनाता है।

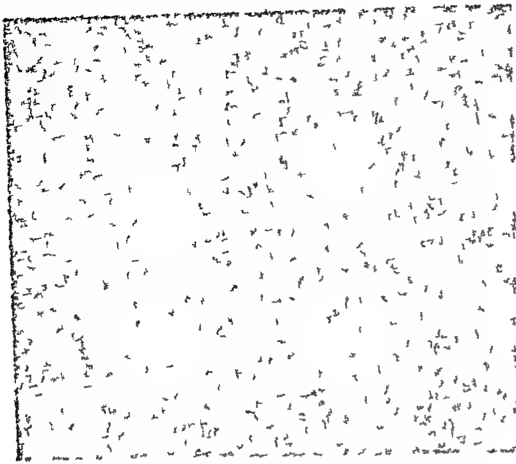
निसोत
OPERCULINA TURPETHUM MANSO.



राल के अलावा टर्पेथिन में उडनशील द्रव्य, पीतरजक पदार्थ (यलो कलरिंग मेटर) एल्ब्यूमिन स्टार्च, लिगनिन एव फेरिक आक्साइड आदि पदार्थ भी वहुत थोडी मात्रा मे पाये जाते हैं।

औषधि की विशेषता (स्पेसिफिकेशन आफ दी ड्रग)—ओपरकुलीना टर्पेथम की छालयुक्त शुष्क जडो को ही टर्पेथ कहते हैं। परीक्षा एव मानकीकरण (स्टेन्डर्ड एण्ड टेस्ट)—०.५ ग्राम राल मे जो कि पावडर्ड औषधि को ६० प्रतिशत अल्कोहल मे घोलकर प्राप्त होता है, मे ५ सी० सी० अमोनिया का तनु घोल डालकर १५ मिनट तक हिलाने के पश्चात् अल्ट्रावायलेट प्रकाश मे हल्के नीले रग का घोल दिखाई देता है। इसमे रेजिन (राल) की मात्रा ५ प्रतिशत से अधिक नही होनी चाहिये तथा यह राल ईथर में अशतः घुलनशील होती है।

मिलावट—(अडलट्रेन्टस)—जलापा ट्यूवर जो आईपोमिया वरगा का ट्यूवर है, बहुत समय टर्पेथ के रूप मे उपयोग होता रहा क्योकि इसके गुण भी टर्पेथ से मिलते हैं। इसी प्रकार काला दाना (आइपोमिया हेड्रेशिया) के वीजो का उपयोग भी टर्पेथ के स्थान पर लिया जाता रहा क्योकि इसकी रासायनिक सरचना टर्पेथ के समान है। वाजार मे मिलने वाली टर्पेथ मे 'आईपोमिया टर्पेथ' के काण्ड के टुकडे अथवा काष्ठ तथा जड दोनो के टुकड़े पाये जाते हैं। जबकि औषधि के रूप में केवल जड का ही उपयोग होता है।



मारुति सजीवन पोस्ट नुनहड (ग्वालियर, मध्य प्रदेश वर्ष १४, अङ्क २, पृष्ठ १५, फरवरी १९६३ से साभार उद्धृत।

के पास काशमीरी गेट दिल्ली मे स्थित आयुर्वेदिक रिसर्च काउंसिल [इस समय यह वहा नही है, बहुत पता लगाने पर भी इनका वर्तमान पता नही मिल सका] के प्रयास से उपलब्ध की गई। कविराज सेतल, प्रधान उक्त आयुर्वेदिक रिसर्च काउंसिल, दिल्ली ने इस पर १९६०-६१ मे अनुसधान किया था जैसाकि "मारुति सजीवन" पत्रिका के फरवरी १९६३ मे दिए गये सक्षिप्त विवरण से ज्ञात होता है। उन्होने इसके भ्रूण-लिंग परिवर्तन गुण पर अनुसधान किया था ऐसा आभास उक्त विवरण से मिलता है। यह वर्षा और शरद ऋतु मे मिलती है।

लाला रूपलाल जी वैश्य ने यह बूटी सवत् १९७३ (ईसवी सन १९१६-१७) मे लक्ष्मण झूला के पास के झरने के किनारे कुछ साधुओ की सहायता से पाई थी। उनके कथनानुसार इसका क्षुप लगभग १० इन्च लम्बा होता है। इसकी कुछ पत्तियो पर लाल चिन्ह और किन्ही पर सफेद चिन्ह होते है। लाल चिन्ह वाले पत्तो से पुत्र पैदा होता है और श्वेत पत्तो से कन्या। इस औषधि का सेवन कराने से पूर्व गणेशादि देवताओ की पूजा अवश्य करा देनी चाहिए अन्यथा प्रसूता की मृत्यु हो जाने की सभावना रहती है।

ऋतु स्नाता को केवल एक बार ही इसकी जड का चूर्ण ३-४ माशे (४ ग्राम) की मात्रा में उष्ण गौ दुग्ध जिसमे गौ घृत भी मिला हो, के साथ देने से पुत्र प्राप्ति होती है।

पुत्रदा लक्ष्मणा कंद की पहिचान—

पहिले भूमि से निकाल कर इसके कन्द को गौ दुग्ध मे डालें, यदि डूब जाय तो पुरुष कन्द और यदि न डूबे तो स्त्री कन्द। पुरुष कन्द के प्रयोग से पुरुष सन्तान और स्त्री कन्द के प्रयोग से स्त्री सन्तान होती है।

सेवनार्थ यह स्त्री, पुरुष दोनो को ही दिया जाता है। इसकी मात्रा १ माशे से ४ माशे तक है। कन्द को पीस कर औटाये हुए गर्म दुग्ध मे घृत मिलाकर उसके साथ पान करना चाहिये। साधारणत यह स्त्रियो को ऋतु स्नान के बाद से शुरू किया जाता है और कुछ काल ब्रह्मचर्य से रहने से अत्यन्त सुन्दर फल होता है। गर्भावस्था मे इसके सेवन करने से गर्भ पुष्ट होता है तथा गर्भ स्राव व गर्भकाल मे स्त्री को होने वाले रोगो से बचाता है और गर्भस्थ शिशु हृष्ट-पुष्ट और मेधावी व विलक्षण बुद्धि वाला होता है। पुरुष को बिना किसी रोग के खाने से वीर्य अत्यन्त शुद्ध और पुष्ट बन जाता है तथा उसमे गर्भोत्पादक शक्ति की मात्रा बढ जाती है। यह हरा वा चूर्ण कर मोदक बना तथा अवलेह बनाकर भी प्रयोग किया जाता है। इसको सुखाकर चूर्णकर दे और बराबर की चीनी मिलाकर उपयुक्त घी व शहद मिलाकर खाने से उपरोक्त फल प्राप्त होते हैं।

मिथिला मे इसके चूर्ण में बराबर का वानरी बीज का चूर्ण (कौच की गिरी का चूर्ण) मिलाकर तथा सबके बराबर चीनी मिलाकर उपयुक्त शहद व घी मिलाकर धातु पुष्टि के लिए खिलाते है।

इसके चूर्ण मे बराबर का गाय के दूध का खोया मिलाकर, फिर सबसे दूनी चीनी की चाशनी बना उपयुक्त घी व शहद डालकर मोदक बनाकर सेवन करने से उपयुक्त फल प्राप्त होते हैं।

असगन्ध और इसका चूर्ण समान मात्रा मे लेकर, चीनी की चाशनी मे पकाकर, शहद और घी मिलाकर अवलेह तैयार कर उसे भी प्रयोग मे लाया जा सकता है।

लक्ष्मणा लोह के प्रयोग से पुरुष सन्तान ही होती है। जिनके लडकियाँ ही होती हैं उनको इसके सेवन से अतीव लाभ होता है। लक्ष्मणारिष्ट, जयसुन्दर रस इत्यादि के योगो मे भी लक्ष्मणा का समावेश किया जाता है। यह योग अत्यन्त गुणकारी प्रमाणित हो चुके हैं। लक्ष्मणा पचांग का कल्क भी प्रयोग किया जाता है।

हकीम प० चुन्नीलाल जी के अनुसार नर झाड को जिसके पत्ते सफेद और जड में केशर जैसी गन्ध आती है लक्ष्मणा कहते हैं और मादा झाड को जिसका रग काला, खुशबूदार और अन्दर से सफेद निकलती है 'लक्ष्मणी' कहते है। यह तासीर में सर्द, खुश्क है। इसकी ताकत आठ वर्ष तक रहती है। यह एक तरह का जहर कातिल है, खूब सोच समझकर और सलाह लेकर सेवन करें।

इसका पिलाना नीद लाता है और शराब मे मिलाने नशा बढता है। इसका सुघाना क्लोरोफार्म का काम करता है। यह सफेद पत्ती वाली लक्ष्मणा के गुण हैं। इसको १॥-२ माशे तक किसी दस्तावर औषधि के साथ लेना चाहिए वरना हानिकारक है। इसे निशास्ता, बादाम रोगन, रोगन बनफशा, रुब्बेखूस (शत मुलहठी), एलुआ, निशोथ, हरड, अफसन्तीन, गाफस, केशर इनके साथ सेवन करना चाहिए। नर का झाड औरतो को ताकत देता है और मादा का झाड पुरुषो को ताकत देता है।

इसका नशा सर्द पानी मे बिठाने से उतरता है।

उपरोक्त हकीम चुन्नीलाल जी द्वारा वर्णित लक्ष्मणा शास्त्रीय लक्ष्मणा से भिन्न है।

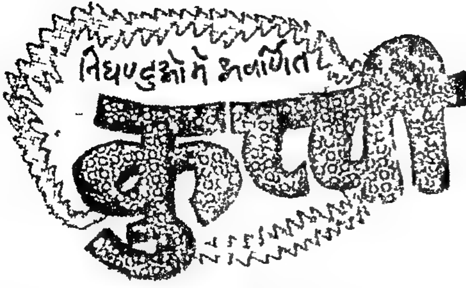
विशेष वक्तव्य

इस बूटी के बारे में मैंने डा० वी० एन० पाण्डेय, अध्यक्ष आयुर्वेदिक रिसर्च भारतीय चिकित्सा पद्धति एव होम्योपैथी के केन्द्रीय अनुसन्धान परिषद, सपना सिनेमा के पास, ईस्ट आफ कैलाश कालोनी, नई दिल्ली से भी विचार विमर्श किया। उन्होंने कृपा करके सहृदयता से मुझे अपना अमूल्य समय दिया और कुछ सम्बन्धित पुस्तकें भी पुस्तकालय से निकलवाई। लेकिन लक्ष्मणा बूटी की सही पहचान तथा वह कहा उपलब्ध हो सकती है इस विषय पर कुछ निर्णय हम लोग नही कर पाये। उन्होंने ही एक दिन काउन्सिल की किसी मीटिंग मे आये डा० रामसुशील सिह, प्रोफेसर द्रव्य गुण (चिकित्सा विज्ञान सस्थान), बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी, वाराणसी–५ से मेरा परिचय कराया। उन्होंने भी यही कहा कि लाल चिह्न वाला पौधा जिनका वर्णन ऊपर किया गया है कही-कही देखने को मिला है लेकिन यह पूर्ण विश्वास के साथ नही कहा जा सकता कि वही शास्त्रीय लक्ष्मणा है। दक्षिण भारत में लोग इसे लक्ष्मणा के नाम से ही जानते हैं। इसका निर्णय करने के लिए यह पर्याप्त मात्रा में चाहिये और उसको प्रयोग मे लाकर शास्त्रीय गुणो से मिलान करने के बाद ही कुछ कहा जा सकता है। उनके मतानुसार शास्त्रीय लक्ष्मणा बहुत कम देखने मे आयी है। अधिकतर लोग श्वेत कण्टकारी का प्रयोग लक्ष्मणा के प्रतिनिधि रूप मे करते हैं जो स्वय एक सदिग्ध बूटी है।

डा० वी० एन० पाण्डेय के सुझाव पर मैंने वयोवृद्ध कविराज त्रिगुणायत प्राणाचार्य, महादेव मन्दिर के पास शिववाडी, सराय काला खा, निजामुद्दीन रेलवे स्टेशन, नई दिल्ली के सामने (फोन न० ६११२२१) से भी बात चीत की। उन्होने कहा लक्ष्मणा बूटी तो कभी देखी नही। कविराज खेतल का विवरण भी उन्हे वास्तविकता से परे लगा। उन्होने कहा सब फार्मेसिया व वैद्यजन श्वेत कण्टकारी को ही प्रयोग मे लाते हैं और उनसे बने योगो को यथा लक्ष्मणा लौह, लक्ष्मणारिष्ट आदि को लक्ष्मणा से निर्मित कहते हैं। उन्होने कहा वह स्वय श्वेत कण्टकारी का प्रयोग पुत्र प्राप्त कराने के लिए प्रचुरता से करवाते हैं और इसमें उन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की है। इसके सेवन से उन्होने अनेको को पुत्र की प्राप्ति कराई है। बात को वह दृढता से कहते है कि श्वेत कण्टकारी पुत्र-दायक है। इसमें सशय के लिए कोई स्थान नही है। उन्होने यह भी बताया कि तिब्बिया कालेज करौल बाग नई दिल्ली के जडी बूटियो के सग्रहालय (Harbarium) मे श्वेत कण्टकारी प्रदर्शित है और दिल्ली मे आसानी से मिल जाती है। बरहाल वो इसका प्रयोग पुत्र प्राप्त कराने के हेतु बेधडक होकर करते हैं, लक्ष्मणा बूटी उनके देखन मे भी नहीं आई।

कुछ वर्ष हुए केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय नई दिल्ली ने Controversial Drug Committee सदिग्ध जड़ी बूटी समिति की नियुक्ति की थी लेकिन वो भी लक्ष्मणा के बारे में कोई निर्णय नही ले पाई।

इस विषय मे सैट्रल काउन्सिल के अध्यक्ष डा० पी० एन० वी० कुरूप से मेरा यह अनुरोध है कि वो 'लक्ष्मणा बूटी' के अनुसधान का प्रोजेक्ट किसी भी प्रादेशिक यूनिट को देकर इसके बारे मे पूर्ण जानकारी प्राप्त कराने की कृपा करें।



श्री रामनिवास शर्मा
उपनिदेशक आयुर्वेद आन्ध्र प्रदेश
अध्यक्ष-काय चिकित्सा विभाग
राज० आयु० कालेज हैदराबाद

लेखक आंध्र प्रदेश के डिप्टी डाइरेक्टर व आयुर्वेदिक कालिज हैदराबाद के काय चिकित्सा के प्रोफेसर हैं। इन्होंने एक ऐसी औषधि का विवरण दिया है जो सर्वत्र होती है परन्तु निघण्टु में कहीं उल्लेख नहीं है। इनसे पूर्व हरित मंजरी के नाम से श्री हीरामणि जगले ने वर्णन किया है। प्रायोगिक विवरण अच्छे है। यह उत्तर प्रदेश, बिहार, बगाल मे सर्वत्र होती है। विचार उत्तम व पठनीय है। एक अज्ञात द्रव्य का विवेचन है।

—विश्वनाथ द्विवेदी

आंध्र प्रदेश के तिलगाना क्षेत्र मे यह वनस्पति तेलगू में "कुप्पी" के नाम से जानी जाती है। आंध्र के रायलसीमा और सरकार जिलो के तेलुगु भाषी लोग इसे मूरकोण्डा तथा कुप्पेण्टा कहते हैं। कुप्पा प्येण्टा का अर्थ तेलुगु मे है ढेर+गोबर या कूड़ा करकट होता है। यह कुप्पी का एक बहुत ही सार्थक नाम है। असल मे यह वनस्पति सदा गांवो और छोटे-छोटे नगरो के केवल उन्ही स्थानों पर वर्षा आते ही हर वर्ष अपने आप निकल आती है, जहाँ कूड़ा करकट या गोबर आदि का ढेर पड़ा रहता है। गावों से दूर जगलों में यह प्राय पैदा होती है। मानव तथा मानव से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओ के आस पास ही इसकी उत्पत्ति होती है।

उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण मे इसके विभिन्न प्रयोग प्रचलित हैं। आंध्र में इसका शायद सबसे अधिक प्रयोग किया जाता है। वैसे कर्नाटक, तमिलनाडु तथा केरल के लोग भी इसके उपयोगी पक्ष से परिचित हैं।

चरक, सुश्रुत, वाग्भट, भावप्रकाश तथा शार्ङ्गधर आदि प्राचीन ग्रन्थो मे ऐसी या इससे मिलती-जुलती किसी वनस्पति का वर्णन मेरे देखने में नही आया। विभिन्न निघण्टुकारो ने भी इसका समावेश अपने ग्रन्थो में नही किया। आदरणीय विद्वान श्री प्रियव्रत शर्मा ने अपने द्रव्य गुण विज्ञान में प्रचलित यूनानी द्रव्यों को तो स्थान दिया पर शायद कुप्पी पर उनकी नजर नही पडी। केरल के तयियल आशान् (गुरु) श्री कुमारम् कृष्णम् ने एक लम्बी साधना के बाद वडे परिश्रम से आयुर्वेदीय औषधि निघण्टु की रचना की जिसमें दक्षिण की अधिक से अधिक औषधियो को सम्मिलित करने का प्रयत्न किया गया है पर कुप्पी यहा भी उपेक्षित रही। हाँ, अथर्ववेद मे कामला मे उपयोगी एक वनस्पति हरित् भेषजम् का जिकर आया है, जिसका उल्लेख श्री मोनियेर विलियम्स् ने अपने कोष मे भी किया है। सदेह होता है कि अथर्ववेद की हरित्-भेषजम् कही कुप्पी (हरित मजरी) ही तो नही है? कारण कुप्पी का उपयोग आंध्र में कामला की चिकित्सा के लिए एक विशिष्ट ढग से किया जाता है। उन्नीसवी सदी के अन्त मे तथा बीसवी सदी के आरम्भ मे आंध्र के कुछ विद्वानो ने तेलुगु मे निम्नलिखित उपयोगी ग्रन्थो की रचना की है—

१—वस्तु गुण दीपिका (तेलुगु) लेखक—यर्रा वेंकट स्वामी, पेन्शन प्राप्त सूबेदार, ४६ रेजीमेण्ट (एम.एन.आइ) यह ग्रन्थ पहली बार जून १८८३ मे राजमन्द्री से प्रकाशित हुआ।

२—वस्तु गुण प्रकाशिका (तेलुगु) लेखक—वीटूरि वासुदेव शास्त्री। यह ग्रन्थ १६३८ मे राजमन्द्री से प्रकाशित हुआ।

३—वस्तु गुण महोदधि (तेलुगु) लेखक—प० आदि नारायण शास्त्री यह ग्रन्थ वाविरला वेंकटेश्वर शास्त्री ने वोविल्ला प्रेस, चिन्नापटनम् (मद्रास) से १६२८ मे प्रकाशित किया।

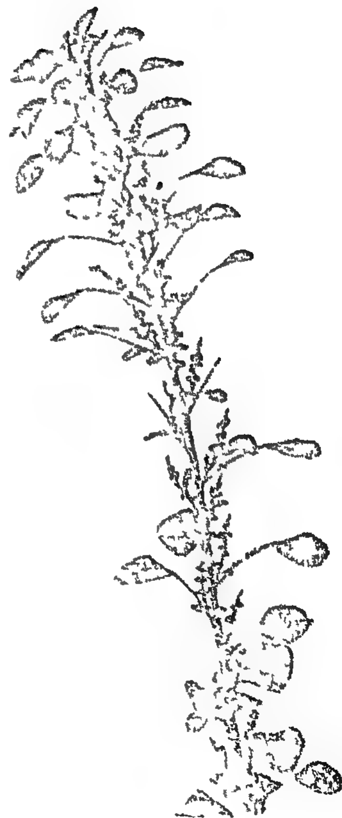
तेलुगु के उक्त ग्रन्थो में कुप्पी तथा इसके उपयोग के सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त डा० के० एस० नाडकर्णी के "इण्डियन मेटीरिया मेडिका, मे तथा श्री आर० एन० चोपड़ा के "ग्लासरी आफ

कुप्पी

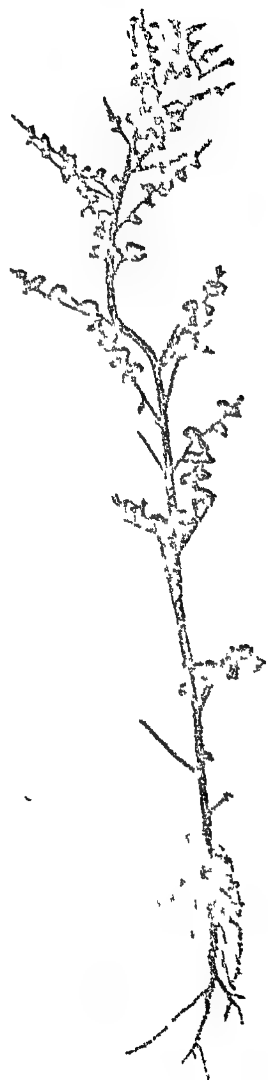
Acalypha indica Linn.



कुप्पी (हरित मजरी)
पत्ते और मजरी युक्त



कुप्पी
(पत्ते और मजरी)



कुप्पी
(पत्ते तोडने के बाद) केवल मजरी

इण्डियन मेडिसनल प्लाण्टस्" मे भी इसका वर्णन है।

तेलुगु ग्रन्थकारो, नाडकर्णी तथा चोपडा ने इसके निम्नलिखित नामो का उल्लेख किया है—

संस्कृत - हरित-मंजरी, रूप गन्धा, विश्वरूपी, माप-गन्धा, विश्वरूपका।

लैटिन—Acalypha Indica, हिन्दी-कुप्पु, खोक्ली तेलुगु—कुप्पी, मूरकोण्डा, कुप्पेण्टा, कुप्पीचेट्टु, मूर-पिण्डी। मलयालम्—कुप्पनेनी। तमिल—कुप्पईमेनि, कुप्परसि। कन्नड—कुप्प गिडा। बगाली—मुक्तझुरी। गुजराती—वाची-काँटो। मराठी—खोखाली। उरिया—इन्द्रमरिस।

आकृति—इसके पत्ते ३ से ८ सेमी० लम्बे, गोलाकार, पतले तथा सामान्यतया ३ शिराओ वाले होते हैं। पुष्प छोटे-छोटे शिखराकार मजरी की तरह और फल छोटे, रोमयुक्त, कोषो मे छिपे हुए होते है। पत्तो के किनारे दन्तुरधार (Toothed) होते हैं। पत्ते एक नियम से फर्श पर बिछे हुए पत्थरो की तरह इस प्रकार फैले होते हैं कि हर पत्ता अलग-अलग दिखाई देता है। इस तरह सभी पत्तो को सूर्य के प्रकाश से प्राप्त होने वाली ऊर्जा समान रूप से प्राप्त होती रहती है। जब कभी स्थान भेद के कारण सूर्य का प्रकाश ठीक तरह से नही पहुँचता तो इसके पत्ते पीले और छीटेदार होकर तेजरहित दीखने लगते हैं। क्षुप को उखाडने के २ मिनट के भीतर ही इस वृन्त एक ओर को लटक कर पत्ते मुरझा जाते हैं। नवम्बर तक इसका पौधा ७५ सेमी० तक का होकर लहलहाने लगता है और नीचे से ऊपर तक पत्तो के नीचे हरी-हरी मजरियो से लदकर यह अपने हरित मजरी नाम को सार्थक करने लगता है।

रासायनिक तत्व—विश्लेषणो के फलस्वरूप यह ज्ञात हुआ है कि Acalyhus और Acalyhine इसके Alka loid हैं। इसमे Triacitonamine व Cyanogenetic glocoside और Quebrachitol तथा Hydrocyanic Acid जैसे तीक्ष्ण विषैले तत्वो का अस्तित्व भी है। इसमे एक ऐसा अनजाना तत्व भी है जो खरगोशो के लिये बडा खतरनाक है। इससे खरगोशो के रक्त मे एक प्रकार की विवर्णता पैदा हो जाती है और उनके पचन सस्थान मे भी विकृति उत्पन्न हो जाती है। कुप्पी के ये गुण (रासायनिक तत्व) जहाँ इसके आभ्यन्तर प्रयोगो पर अकुश लगाते हैं वहाँ ये इसके तीक्ष्ण और आशुकारी प्रभावो को भी सिद्ध करते है। आन्ध्र मे आभ्यन्तर की अपेक्षा इसके बाह्य प्रयोग ही अधिक प्रचलित है।

प्रयोग—

(१) यूका, लिक्षा तथा जमजू मे कुप्पी पत्र स्वरस लगाया जाता है।

(२) बालको के वमन, अतिसार तथा अपस्मार मे इसके पत्र स्वरस का अञ्जन करे।

(३) कर्णशूल मे इसके पत्र स्वरस या कषाय की कुछ बूँदे गरम करके डालते हैं।

(४) इसका पत्र स्वरस भैंस के मक्खन के साथ मूर्च्छा मे देते हैं।

(५) मूल का स्वरस वात रोगो मे दिया जाता है।

(६) काण्ड से दन्त-धावन करने पर दन्त रोग नष्ट होते है।

(७) पक्षाघात मे इसके मूल के कल्क की १/४ ग्राम की गोली दिन मे दो बार प्रयोग की जाती हैं। अर्दित मे यही प्रयोग मधु के साथ दिया जाता है।

(८) इसकी मूल का कषाय विरेचनकारी है।

(९) इसके पत्रो का कल्क चूने या नमक के साथ मिलाकर कण्डू और विसर्प मे लगाया जाता है।

(१०) आमवात मे इसके कषाय में एरण्ड तैल मिला कर प्रयोग करते हैं।

(११) इसके पत्र या मूल का स्वरस अधिक मात्रा मे देने से वमन होते हैं।

(१२) श्वास तथा कास मे इसका पत्र स्वरस अल्प मात्रा मे दिया जाता है।

(१३) इसके पत्र का कल्क मधुमक्खी के दश मे तथा शतपदी के दश मे लगाया जाता है।

(१४) इसके पत्तो का कल्क दन्तशूल मे दाँतो के बीच मे दबाये रखने को कहा जाता है।

(१५) उन्माद मे इसके पचाग स्वरस (२०-३० मिलीलीटर) मे १/२ ग्राम सामान्य लवण डालकर बनाया गया नस्य ६-६ घण्टे की अवधि से प्रयोग किया जाता है और ३ दिन तक नित्य धारा स्नान कराया जाता है।

(१६) इसके पचाग का स्वरस लवण के साथ उदर कृमि मे देते हैं। इस प्रकार यह विरेचक भी है।

(१७) दद्रु मे इसके पत्तो का कल्क चूने के साथ लगाते हैं।

(१८) पुराने शिरःशूल, सूर्यावर्त और अर्धावभेदक,

मे इसके पत्र स्वरस मे रुई या वस्त्र को भिगोकर बनाई गई वर्ति नाक मे कुछ देर तक रखी जाती है। इस क्रिया से कभी-कभी नासिका से थोडा रक्तस्राव भी होता है।

(१६) इसके पचाग के वस्त्रपूत चूर्ण को व्रणो पर तथा शय्या पर छिडका जाता है।

(२०) विसर्प मे इसका पत्र स्वरस कृष्ण-जीरक के साथ लगाया जाता है।

(२१) अर्दित, वातरोग तथा अपस्मार मे इसके स्वरस का नस्य प्रयोग करते हैं।

(२२) दन्तशूल मे इसके पत्रो का कल्क हींग के साथ शूल के स्थान पर रखा जाता है।

(२३) नखो की विकृति मे इसका पत्र स्वरस चूने और हरिद्रा के साथ लगाते है।

(२४) उदर कृमि मे इसका पत्र स्वरस पलाश बीज और विडग चूर्ण के साथ देते हैं।

(२५) इसके पत्र स्वरस में वस्त्र भिगोकर बाँधने से व्रण शुद्धि होती है।

(२६) इसके स्वरस मे मधु तथा शर्करा मिलाकर कुछ गरम करके पीने से श्वास, कास मे लाभ होता है।

(२७) तमक श्वास में इसका स्वरस तथा इसका धूम्रपान कराया जाता है।

(२८) यवानिका को इसके पत्र स्वरस में २० भावना देकर १ ग्राम की मात्रा मे प्रयोग करने से ऋतुशूल तथा ऋतुवद्ध मे लाभ होता है।

(२६) कर्णशूल मे इसका स्वरस गरम कर कान के चारो ओर लेप कर दिया जाता है।

(३०) पच लवण को इसके पत्र स्वरस की भावना देकर लघुपुट देते हैं। इस प्रकार प्राप्त भस्म को उदरशूल और परिणामशूल मे प्रयोग करते हैं।

(३१) इसका स्वरस तैल मे मिलाकर गरम करके आमवात मे लगाया जाता है।

(३२) इसके पत्ते, मरिच तथा आरती कर्पूर सम भाग मे मिलाकर चने के बराबर गोली बनाकर कामला में केवल दूध के साथ ३ दिन तक देते है। इस अवधि मे पथ्य के रूप में केवल दूध ही देते हैं। तिलगाना मे ३ दिन की इस प्रकार की लघु अवधि वाली चिकित्सा को "चप्पिडी" कहते हैं। "चप्पिडी" चिकित्सा की अवधि मे निश्चित पथ्य का पालन अनिवार्य होता है। यह चिकित्सा अनुभव के आधार पर तिलगाना के बहुत से गाँवो मे कई अनुभवी लोगो द्वारा की जाती है। तीन ही दिन की चिकित्सा से कई रोगो मे अद्भुत सफलता प्राप्त की जाती है।

(३३) लशुन, पान तथा कुप्पी पत्र का कल्क अंगुलियो के नखमूल मे होने वाली विद्रधि मे लगाते हैं।

(३४) इसके पत्र का कषाय वामक है।

(३५) दारुण मलबद्ध मे तथा वात रोगों मे इसके कषाय की वस्ति दी जाती है।

(३६) अपस्मार में इसके स्वरस की षड्बिन्दु नस्य दी जाती है।

(३७) शिर मे तालु प्रदेश के शूल और तोद मे इसके पंचांग के कल्क की एक मोटी-सी टिकिया बनाकर तालु पर रख दी जाती है। फिर इस टिकिया पर एक धातु पात्र रखकर थोडी सी अग्नि डालकर सह्य ऊष्मा ४-५ मिनट तक पहुँचाई जाती है।

(३८) विद्रधि मे (विशेष रूप से नख मूल विद्रधि मे) सफेद प्याज के साथ इसका कल्क बांध दिया जाता है।

(३९) दन्तशूल और दन्तमूल शोथ मे इसके पत्ते थोडी देर तक दान्तो से चबाकर थूकने को कहा जाता है।

(४०) गाय, बैल तथा अन्य जानवरो के खुरो मे व्रण तथा कृमियो की चिकित्सा के लिये इसे धनिया और हरिद्रा के साथ कल्क बनाकर लगाया जाता है।

यहाँ जितने भी प्रयोग बताये गये हैं, उन्हे देखने से ऐसा लगता है कि लोग सामान्यतया इसे बाह्य रूप मे ही प्रयोग करते हैं। नस्य, कर्णबिन्दु, अंजन, धूम्रपान तथा व्रण और विद्रधि में इसके बाह्य प्रयोग हानिरहित हैं। नस्य से भी कभी-कभी वमन हो जाते हैं और किसी २ को नासा से रक्तस्राव हो जाता है। इसका एक बार नस्य रूप में प्रयोग करने से दो-तीन घण्टे तक नासा और मुख से श्लेष्मा का स्राव होता रहता है। इस तरह यह ऊर्ध्वगत क्षेत्र के शोधन की एक उपयोगी औषधि है।

मात्रा—स्वरस—४-१० मि लि

कषाय—२०-३० मि. लि.

बालको को आवश्यकतानुसार कम मात्रा, मधु के साथ।

श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन

मामू भांजा रोड, अलीगढ़

एवं

दाऊ मैडीकल स्टोर्स

★ प्रभावशाली आयुर्वेदिक कैपसूल

★ सुपरीक्षित आयुर्वेदिक पेटेन्ट औषधियां

★ प्रमाणिक आयुर्वेदिक औषधियाँ

★ चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विषयक पुस्तकें

चिकित्सकोपयोगी यंत्र-शस्त्र-उपकरण, मशीनें खरल आदि-आदि

का

संक्षिप्त विवरण एवं मूल्य तालिका

कृपालु ग्राहकों से निवेदन

इस विवरण एव तालिका को देख समझकर अपनी आवश्यकतानुरूप वस्तुये मंगावे तथा हमको अपना सहयोग दे। विश्वास रखे कि हमारा व्यवहार एवं हमारी सभी वस्तुये आपको सन्तोष देगी।

निवेदन:—

[illegible] कार्यालय द्वारा वैद्य समाज की सेवा करता रहा हूं। नवम्बर १९७२ में अलीगढ़ आकर श्री ज्वाला आयुर्वेद [illegible] की स्थापना की तथा इसी नवोदित संस्था से आयुर्वेद के सर्वाधिक [illegible] सुप्रसिद्ध मासिक पत्र "[illegible]" का प्रकाशन किया जा रहा है। इस भवन द्वारा अपने चिरकालीन अनुभव के आधार पर विशुद्ध [illegible] कैपसूल तथा कतिपय पेटेंट औषधियों का निर्माण प्रारम्भ कर दिया है। ये आयुर्वेदिक कैपसूल पूर्ण प्रभावशाली हैं तथा चिकित्सक इनको पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास के साथ व्यवहार करने लगे हैं। एलोपैथिक कैपसूलों के मुकाबले में आप इनको व्यवहार करें आपको निराश नहीं होना पड़ेगा।

[illegible] में भवन की औषधि निर्माणशाला का निर्माण लगभग पूरा हो गया। औषधि निर्माण के लिए [illegible] आधुनिक मशीनों को मंगाया जा रहा है। इस सूची पत्र में कुछ नवीन औषधियां सम्मिलित की हैं [illegible] सभी औषधियां निर्माण की जायेंगी। इसमें कुछ समय और लग जायगा।

यह निवेदन करना भी अप्रासंगिक न होगा कि मेरा विचार है—आयुर्वेदिक औषधियां उत्तम से उत्तम निर्माण [illegible] आयुर्वेदिक चिकित्सक निर्भयता से अपने रोगियों पर व्यवहार करते हुए सफलता प्राप्त करें और आयुर्वेद की मान प्रतिष्ठा बढ़े। कम्पटीशन के चक्कर में पड़कर निम्न कोटि की औषधियां बनाना मानवता के प्रति [illegible] अपराध है। आयुर्वेद की मान प्रतिष्ठा को आज कल की अर्थलोलुप व्यवसायी संस्थाओं ने ही नष्ट किया है। मैं इस भवन की औषधियां सर्वोत्तम हों और आयुर्वेद समाज से प्रतिष्ठा प्राप्त करें यही प्रयास करूंगा।

मुझे विश्वास है कि चिकित्सक समुदाय मुझे सहयोग देगा। आप भी सेवा का अवसर अवश्य दीजियेगा।

ज्वाला प्रसाद अग्रवाल

नियम:—

कमीशन १—एक बार में ५०) से कम की दवा मंगाने पर कोई कमीशन नहीं दिया जाता है।

२—५०) से १००) तक की दवा मंगाने पर १५ प्रतिशत कमीशन।

३—१००) से ऊपर की दवा मंगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन।

पोस्टव्यय —[illegible] कैपसूल तथा मूल्यवान दवा ७५) नैट से अधिक मंगाने पर आधा तथा १५०) से अधिक की मंगाने पर पूरा पोस्ट व्यय हम देंगे। ७५) नैट से कम की एक बार में मंगाने पर पूरा पोस्ट व्यय ग्राहक को देना पड़ेगा।

सेलटैक्स—[illegible] प्रदेश के ग्राहकों से ६ प्रतिशत तथा अन्य प्रान्तों के ग्राहकों से ११ प्रतिशत सेलटैक्स लिया जाता है। सी-फार्म आर्डर के साथ आने पर ४ प्रतिशत लिया जायेगा।

अन्य नियम—

१—उधार (Credit पर) माल हम सप्लाई नहीं करते हैं।

२—[illegible] रेल से मंगायें। ७५) नैट से ऊपर की दवा मंगाने पर आधा रेल भाड़ा बिल में कम कर दिया जाता है।

३—[illegible] मार्ग में हुई टूट-फूट तथा कमी की जिम्मेदारी हमारे ऊपर नहीं होगी।

एजेंसी-लीजिए

१—[illegible] से कम १००) नैट का आर्डर प्रथम बार भेजना आवश्यक है।

२—[illegible] ३० प्रतिशत कमीशन दिया जायगा। बाद में छोटे आर्डरों पर भी यही कमीशन मिलेगा।

३—[illegible] ५००) से अधिक की दवा मंगाने पर ५%

[illegible] " ७५०) " " ७%

" " १०००) " " १०%

[illegible] दवा [illegible]।

४—[illegible]।

५—[illegible]।

श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, [illegible] रोड, अलीगढ़

रक्तशोधक कैपसूल

इसके व्यवहार से सभी प्रकार के कुष्ठ, खाज, खुजली आदि सम्पूर्ण रक्तविकारों में लाभ होता है। रक्तविकार नाशक अन्य औषधियां तथा हरताल-भस्म, तालसिंदूर आदि पित्त की वृद्धि करती हैं तथा पित्तज प्रकृति वाले रोगियों को अनुकूल नहीं पड़ती। किन्तु इस कैपसूल के प्रयोग से पित्तज प्रकृति के रोगियों को कोई विकार नहीं होता तथा रक्तविकार भी दूर हो जाता है। महामंजिष्ठादि अर्क, खदिरारिष्ट या रक्तशोधिकारिष्ट के साथ इन कैपसूलों का प्रयोग करने से अधिक लाभ होता है। यदि कब्ज रहता हो या आम संचित हो तो ३-३ या ४-४ दिन बाद विरेचन लेना चाहिये। इसके लिए शुद्ध एरण्ड तेल (Castor Oil) लेना सर्वोत्तम है। विबन्धहारी कैपसूल भी ले सकते हैं। मूल्य ५० कैपसूल १३.५०, १०० कैपसूल २६.००।

[illegible]

स्वर्ण औषधियों से निर्मित यह कैपसूल समस्त वात रोगों की उत्तम औषधि है। इसके व्यवहार से वात रोगों में अवश्य लाभ होता है, जैसे कि गठिया, हाथ पैरों की सूजन, कमर का दर्द, गृध्रसि आदि। इस कैपसूल के प्रयोग से पक्षाघात (Facial Paralysis) अपतन्त्रक, आक्षेपक, सिर में चक्कर आना आदि वात रोगों में अवश्य लाभ होता है। सुपरीक्षित एवं सफल महौषधि है। विश्वास के साथ व्यवहार करें। ५० कैपसूल २५.५०, १०० कैपसूल ५०.००।

श्वासहारी कैपसूल

इसके व्यवहार से तीव्र श्वास वेग का शमन होता है तथा इसका लगातार प्रयोग करने से श्वास का आगामी वेग नहीं होता। यदि श्वास शुष्क हो तो एक कैपसूल थोड़े गुनगुने जल से निगलवा कर थोड़ी सी मलाई चटा दें। प्रातःकाल या रात को सोते समय जब श्वास का वेग प्रारम्भ होता मालूम पड़े उसी समय या उससे आधा घण्टा पूर्व एक कैपसूल लेने से श्वास वेग नहीं आयेगा तथा श्वास कष्ट दूर हो जायेगा। बच्चों की काली खांसी में भी इसे अवस्थानुसार मात्रा बनाकर शहद में दें। मूल्य ५० कैपसूल ९.०० १०० कैपसूल १७.०० रु०।

विबन्धहारी कैपसूल

इसके व्यवहार से मलावरोध, अपचन, ज्वर कालीन विबन्धता में शीघ्र लाभ होता है। जिनको भोजन नहीं पचता, तबियत गिरी-गिरी रहती है, पेट में हल्का २ दर्द रहता है, दस्त कड़ा या कठिनता से होता है, भोजन के बाद पेट में अफरा होता या गैस की शिकायत रहती है, उनको रात्रि में एक कैपसूल लेने से प्रातःकाल दस्त साफ हो जाता है और सभी परेशानियां दूर हो जाती हैं। कठिन कोष्ठ वालों को कभी-कभी २ कैपसूल भी लेने पड़ सकते हैं। मू० ५० कैपसूल ११.५० १०० कैप २२.००।

अतिसारान्तक कैपसूल

यह उत्तम ग्राही क्षोभहर, शामक, आम पाचक है। संग्रहणी के मूलभूत कारणों के ऊपर विशेष असर होता है। बच्चों की हरी पीली टट्टियों में लाभ करता है। बच्चों के दांत निकलने के समय होने वाले विकार दूर होते हैं। अपचन के कारण जो पित्तजनित अतिसार होता है। तीव्रातिसार में १ दिन में ही लाभ करता है। पेट की मरोड़ दूर करता है। मूल्य ५० कैपसूल ११.५०, १०० कैप० २२.००

रजावरोधान्तक कैपसूल

मासिक धर्म में कष्ट होना, अल्प रजता या असमय में मासिक धर्म होना, मासिक धर्म की विकृति के कारण सिर दर्द, नेत्रों की निर्बलता और कमर में पीड़ा रहना आदि विकार दूर होते हैं। अपचन, मलावरोधजन्य उदरशूल, गुल्म, आध्मान भी इसके सेवन से नष्ट होते हैं। मू०—५० कैपसूल ९.००, १०० कैप० १७.००।

गोनारि कैपसूल

आजकल सुजाक का रोग बहुत अधिक पाया जाता है क्योंकि आजकल चटपटी मसालेदार चीजें, चाट आदि का प्रयोग बहुत अधिक हो गया है। संक्रमण से भी इसका प्रसार होता है। इस रोग से ग्रसित रोगी को भयंकर तकलीफ होती है पेशाब करने मे तो उसे भयंकर वेदना होती है। लेकिन इन कैपसूलों के प्रयोग से अल्प समय मे ही रोगी की समस्त वेदनायें दूर हो जाती हैं तथा पेशाब ठीक तरह से बिना तकलीफ के उतरने लगता है। अनेक रोगियो पर परीक्षित हैं। मू०---५० कैपसूल १४.००, १०० कैप० २७.००

मेधा शक्ति कैपसूल

ब्राह्मी एव शंखपुष्पी मस्तिष्क की दुर्बलता को दूर करने वाली एवं स्मरण शक्ति को बढाने वाली आयुर्वेद की प्रसिद्ध वनौषधियो के घन सत्व एव अन्य बहुमूल्य आयुर्वेदिक औषधियो के मिश्रण से तैयार किए गये हैं। इनके सेवन से स्मरण शक्ति बढती है, मस्तिष्क मे हर समय रहने वाली थकावट दूर होती है। जो छात्र काफी परिश्रम करते हुए भी अपना पाठ भूल जाया करते हैं। उनके लिए अत्युपयोगी है। पित्त की अधिकता से होने वाले विकार जैसे हाथ पैरो की जलन, सिर दर्द आदि विकार भी इससे नष्ट होते हैं। मू०---५० कैपसूल १३.५० रु०, १०० कैपसूल २६.०० रु०।

कैल्सी कैपसूल

इनके प्रयोग से कैल्शियम की कमी दूर होती हैं। बुखार (ज्वर) के बाद की कमजोरी, क्षय रोग, नजला, जुकाम, पुरानी खांसी को दूर करके वजन बढाने में गुणकारक हैं। कैल्शियम ग्लुकोनेट या कैल्शियम से बनी एलोपैथिक औषधियो से कही अधिक लाभ करते हैं तथा किसी प्रकार का नुकसान नही करते हैं। ५० कैपसूल ८.००, १०० कैपसूल १५.००।

कैल्सीलौह कैपसूल

यह लौह युक्त कैल्सी कैपसूल है कैल्शियम तथा लौह की कमी को पूरा करते हैं तथा रक्त बढ़ाते हैं।

पैकिंग—५० कैपसूल ९.५०, १०० कैपसूल १८.००।

पुंसवनो कैपसूल

आजकल परिवार नियोजन पर बहुत जोर दिया जा रहा है। तथा व्यवहारिक जीवन में इसका उपयोग भी है लेकिन किन्हीं किन्हीं स्त्रियो के साथ ऐसी समस्या है कि उन्हें बार-बार लडकियां ही होती हैं तथा वह चाहती हैं कि कम से कम एक लडका हो जावे तब वह परिवार नियोजन करायें ऐसी स्त्रियों से हमारा निवेदन है कि जैसे ही गर्भावस्था का पता चले यह हमारा कैपसूल का एक सैट प्रयोग करें। उनकी मनोकामना अवश्य पूरी होगी, ये सुपरीक्षित हैं। पूर्ण विश्वास के साथ प्रयोग करावें पैकिंग—७ तथा ४० कैपसूलो को मिलाकर इसका एक सैट होता है। मू० २६.५०।

अर्शान्तक कैपसूल

खूनी तथा बादी दोनो प्रकार के अर्श में रोगी को महान कष्ट होता है। मल शुष्क हो जाता है तथा जब वह अर्श के मस्सो से रगडता हुआ बलपूर्वक बाहर आता है तो रक्त बह निकलता है गुदा मे घाव हो जाते हैं, हर समय घाव रहता है - गुदा के बल रोगी बैठ नही सकता। हमारे इन कैपसूलो को प्रयोग करने से थोडे ही दिनों मे, रोगी की स्थिति सुधर जाती है। उसके मस्से बैठ जाते हैं, मल ढीला पड जाता है जिससे कि मस्से छिलकर रक्तस्राव नही होता। गुदा की वेदना कम हो जाती है। मू० ५० कैपसूल ९.००, १०० कैपसूल १७.००।

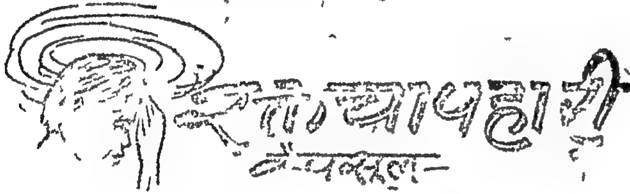
श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भांजा रोड, अलीगढ़---२२।

शूलारि कैपसूल

दर्द किसी तरह का क्यों न हो इस कैपसूल के सेवन से ही वह दूर हो जायेगा। सर्दी, जुकाम, इन्फ्लुएन्ज़ा, अधकपारी, मलेरिया ज्वर की बेचैनी, पसली का दर्द, वायु का दर्द, चोट, फोडे का दर्द मे यह तुरन्त आराम देता है। वायु के कारण होने वाले जोडो के दर्द, दन्तशूल में भी इससे लाभ होता है। शरीर के किसी भी अङ्ग के दर्द में तत्काल लाभकारी है। निरापद है हृदय को हानि नहीं पहुचाता मौसम बदलने, पानी मे भीगने से होने वाले शरीर या सिर दर्द मे लाभकारी है। मू० ५० कैपसूल १० ००, १०० कैपसूल १९ ००।

पाण्डुनोल कैपसूल

दीर्घकालीन व्याधि के पश्चात् हुई रक्ताल्पता या अवरोधज कामला के लिए यह कैपसूल अचूक लाभ करने वाले हैं। इसके सेवन से यकृति वृद्धि के कारण होने वाले सभी रोग, कमजोरी, जीर्ण ज्वर, वृक्क विकार, प्लीहा-वृद्धि, रक्ताल्पता, कब्जियत, मन्दाग्नि, आदि विकार दूर होगे। बच्चो के लिये यकृत दोष को अक्सीर है। मूल्य– ५० कैपसूल १२.०० १०० कैपसूल २३ ००।



जब किसी रोग में बेचैनी या पीडाओ के कारण नीद नही आती तब इसके प्रयोग से बेचैनी दूर हो जाती है और अच्छी नीद आ जाती है। अधिक शराब पीने से और अधिक ब्रोमाइड के प्रयोग से पैदा हुई बेचैनी और अनिद्रा पर भी लाभकारी है। हिस्टीरिया, उन्माद मस्तिष्क, की उत्तेजना मे इसका प्रयोग लाभदायक है। रक्तचाप वृद्धि (हाईब्लड प्रेसर) मे यह कैपसूल बहुत श्रेष्ठ है। इनसे मस्तिष्क का दबाव कम होता है और शान्त निद्रा आ जाती है। ये शामक कैपसूल है। मूल्य–५० कैपसूल ११ ५०, १०० कैपसूल २२.००

त्रिशक्ति कैपसूल

यह लोहयुक्त कैपसूल है जो किसी भी उग्र बीमारी के पश्चात की कमजोरी को दूर करने मे बहुत ही प्रभावशाली हैं। शरीर मे आई हुई लोह की कमी को पूरा करते है। ढीले अङ्गो को मजबूत करके शरीर मे कडापन लाते हैं। पाचक, पित्त के विकार को दूर करके अग्नि प्रदीप्त करते हैं जिनसे भूख बढ जाती है और खाना-पीना हजम हो जाता है। यह उत्तम रक्त वर्धक है और कान्ति तथा उत्साह मे वृद्धि करते है।

किसी प्रकार की रक्ताल्पता व रक्तचाप की कमी (LoW Blood Pressure) मे बडे विश्वसनीय हैं। मूल्य—५० कैपसूल ११.५०, १०० कैपसूल २२.००



अस्थि मार्दव एव बाल शोष (सूखा) पर अच्छा लाभ करता है। गर्भावस्था में माता निर्बल होने पर या बाल्यावस्था मे माता के रुग्ण हो जाने से या अन्य किसी कारण से बालक का योग्य पोषण नही होता। माता की अस्थियां निर्बल होने पर दुग्ध (स्तन्य) मे अस्थि पोषक तत्व कम होता है। उस हेतु से बालक को अस्थि मार्दव रोग हो जाता है, नितम्ब पर सिकुडन पड जाती है, बच्चे को ज्वर रहा आता है। इस स्थिति मे इनके सेवन से तुरन्त लाभ दृष्टिगोचर होता है। कैल्सीयम की कमी बच्चे मे तुरन्त पूरी होती है। बच्चे की पाचन क्रिया सुधर जाती है और शरीर बलवान और नीरोग बन जाता है। मूल्य—५० कैपसूल १२, १०० कैपसूल २३ ००

श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भाजा रोड, अलीगढ—३२।



हृदय के सभी रोगों यथा हृच्छूल, चक्कर आना, जलन होना आदि इसके प्रयोग से दूर होते हैं। इसके प्रयोग से दिल की धड़कन तुरन्त ठीक होकर हृदय की क्रिया नियमित होती है। मूल्य ५० कैप १४), १०० कैपसूल २७)



नपुंसकता, शीघ्रपतन, इन्द्रिय की निर्बलता, वीर्यअभाव, पतलापन, स्तम्भन शक्ति की कमी के लिये अत्युत्तम है। नियमित व्यवहार करने से बल, वीर्य, कान्ति ओज तथा शक्ति बढती है। मूल्य—५० कैपसूल २०.०० १०० कैपसूल ३९.००

चेचकावरोध कैपसूल

चेचक एक भयंकर एवं संक्रामक व्याधि है। जिस समय किसी गाव या शहर मे फैलता है। तो प्रत्येक बच्चे को इसके होने का भय रहता है। किसी घर मे एक बच्चे को यदि चेचक निकल आये तो अन्य बच्चो को भी अवश्य ही निकलती है। ऐसे अवसर पर आप यह कैपसूल प्रयोग करायें तो चेचक होने का भय नही रहेगा या यदि चेचक का संक्रामक इन कैपसुलो के प्रयोग से पूर्व ही हो चुका होगा तो चेचक भयकर रूप धारण नही करेगी, कोई विकृति नही होगी। ५० कैपसूल ९ ०० १०० कैप० १७.००

गैसोना कैपसूल

ये कैपसूल गैस के लिये उत्तम है। अजीर्ण, भूख का कम लगना, अफरा, पेट का भारीपन। पेट मे गैस बनना बन्द होता है। उदर शूल मे भी लाभदायक हैं। खाया पीया हजम होता है। गैस से होने वाले विकारे, सुस्ती सी छायी रहना, शरीर का भारीपन थकावट आदि ठीक होती है। उदर विकार मे ये बहुत ही प्रभावशाली है। मूल्य—५० कैपसूल १२ ०० १०० कैप० २३ ००

कृमिघातिनी कैपसूल

पेट के हर प्रकार के कीडो पर प्रभावशाली है। कृमियो तथा कृमियो से होने वाले विकार, जी मिचलाना, उबकाई या उल्टी होना, कृमिज आमाशय शूल, नजला, जुकाम, अरुचि, ज्वर, कमजोरी, मलावरोध प्रमेह आदि ठीक होते है।

मूल्य—५० कैप० १२.००, १००कैप० २३.००

हिस्टीरियाहरकैपसूल

यह कैपसूल स्त्रियो को होने वाले दौरो के लिए उत्तम हैं। यह दौरे मस्तिष्क में कुविचार होने के कारण होते उसे कैपसूल मगज को शांत करता हैं। कुविचारो का शमन होता है। पाचन क्रिया को सुधारता है। जो शक्तिदायक है।

मूल्य—५० कैपसूल १३ ५०, १०० कैप० २६.००

मलेरिया हर कैपसूल—यह पारी देकर आने वाले ज्वर के लिये उत्तम है। इसके १ कैपसूल को ज्वर आने से १ घण्टा देना चाहिये। इस तरह २–३ दिन के प्रयोग मे ही मलेरिया ज्वर समाप्त हो जाता है। बच्चे को मात्रा आयु के अनुसार कैपसूल तोड़कर दें। गर्भावस्था मे कैपसूल नही देने चाहिये। मूल्य-५० कैप० १५), १०० कैप. २८)

पूर्व गुनगुने जल से देना चाहिये अगर ज्वर न आये तो १ कैपसूल और देना चाहिये ज्वर चढते समय कैपसूल नही

श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भांजा रोड, अलीगढ़—२

शास्त्रीय प्रमाणिक औषधियां

कूपीपक्व रसायन

	१० ग्राम	३ ग्राम
सिद्ध मकरध्वज नं० १	५५.००	१६.५०
" " " २	४०.००	१२.५०
अनुपान मकरध्वज	१०.००	३.२५
सिद्ध चन्द्रोदय (स्वर्ण भस्म युक्त)	९०.००	२७.००
मल्ल चन्द्रोदय	५५.००	१६.५०
रस सिन्दूर	१८.००	५.५०
मल्ल सिन्दूर	१५.००	४.७०
स्वर्ण वंग	६.००	२.००
रस माणिक्य	४.००	१.२५

भस्म

	५० ग्राम	१० ग्राम	३ ग्राम
अभ्रक भस्म (शतपुटी)	३४.००	७.००	२.२५
कपर्द भस्म	४.२५	१.००	×
गोदन्ती हरताल भस्म (श्वेत)	४.५०	१.००	×
तबकी हरताल भस्म (श्वेत)	४७.००	१०.००	३.१०
ताम्र भस्म	३२.५०	७.००	२.१५
नाग भस्म	१६.००	३.५०	१.२०
प्रवाल भस्म नं० १	३०.००	६.५०	२.००
" " २	१७.५०	३.५०	१.२५
प्रवाल भस्म चन्द्रपुटी	१४.००	३.००	१.००
वंग भस्म (श्वेत)	२०.००	४.००	१.२५
मृगशृङ्ग भस्म	४.५०	१.००	×
मल्ल भस्म (श्वेत)	४०.००	८.२०	२.५०
माण्डूर भस्म	३.७५	०.९०	×
मुक्ता भस्म	×	१६०.००	४८.००
यशद भस्म	८.५०	१.७५	×
लोह भस्म नं० १	६०.००	१२.५०	४.००
" " २	१२.००	२.५०	०.८५
स्वर्ण माक्षिक भस्म	१०.००	२.३०	०.७५
शंख भस्म	४.५०	१.००	×
शुक्ति (मुक्ताशुक्ति) भस्म	५.७५	१.३०	×
त्रिवंग भस्म	३०.००	६.२५	२.००

पिष्टी

	५० ग्राम	१० ग्राम	३ ग्राम
अकीक पिष्टी	१६.५०	३.५०	१.१०
प्रवाल पिष्टी	१४.००	३.००	१.००
मुक्तापिष्टी नं० १	×	१५०.००	४६.००
मुक्ता शुक्ति पिष्टी	४.५०	१.००	×
जहरमोहरा पिष्टी	१२.००	२.५०	०.८५
वैक्रान्त पिष्टी	३४.००	७.००	२.६०
विड-पिष्टी	४५.००	९.००	३.५०

पर्पटी

	५० ग्राम	१० ग्राम	३ ग्राम
रस पर्पटी	४३.००	९.००	२.८०
श्वेत पर्पटी	३.००	०.७५	×
पंचामृत पर्पटी	४३.००	९.००	२.८०
लोह पर्पटी	४३.००	९.००	२.८०

रस-रसायन-गुटिका-चूर्ण

	१० ग्राम	१ ग्राम
कुमार कल्याण रस	८५.००	८.६०
प्रवाल पंचामृत रस	१५.००	१.६०
वसन्त कुसुमाकर रस	६०.००	६.१०
वृ. वात चिन्तामणि रस	७५.००	७.६०
योगेन्द्र रस	८५.००	८.६०
रसराज रस	५०.००	५.१०
स्वर्ण वसन्त मालती	५२.००	५.३०
	५० ग्राम	**१० ग्राम**
अग्नितुण्डी वटी	५.००	१.१०
आरोग्य वर्द्धिनी वटी	७.००	१.५०
आनन्द भैरव रस	८.५०	१.७५
इच्छा भेदी रस	८.५०	१.७५
कामदुधा रस	१३.००	२.७०
गंधक रसायन	९.५०	२.००
गन्धक वटी	५.५०	१.२०
गर्भपाल रस	१४.००	२.९०
घोडा चोली (अश्वकचुकी) रस	७.००	१.५०

श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू-भांजा रोड, अलीगढ़।

	५० ग्राम	१० ग्राम
चन्द्रप्रभावटी	६ ००	१.३०
ज्वरांकुश रस (महा)	७.००	१.५०
नवायस लोह	८.००	१.७०
प्रताप लंकेश्वर रस	१०.००	२ १०
प्रदरांतक लोह	१० ००	२ १०
पुनर्नवादि मण्डूर	५.५०	१ २०
वृ० वात गजांकुश रस	१० ५०	२ २०
विषमुष्टिका वटी	५.००	१.२०
महामृत्युंजय रस	१४.००	३.००
मालती वसन्त (लघु)	१५ ००	३ १०
योगराज गूगल	३ ००	० ८०
वृ० योगराज गूगल	१२.००	२.५०
रामबाण रस	८.००	१ ७०
लशुनादि वटी	५ ५०	१.२०
लक्ष्मी विलास रस (नारदीय)	१७.५०	३.८०
शंख वटी	७.००	१.५०
श्वास कुठार रस	८.००	१.७०
संजीवनी वटी	४.५०	१.००
त्रिभुवनकीर्ति रस	७.००	१.५०

शोधित द्रव्य

	५० ग्राम	१० ग्राम
शुद्ध गन्धक (आमलासार)	३ ००	० ७०
कज्जली न० १ (सम गन्धक पारद)	२५.००	५.१०
ताल (हरताल) शुद्ध	८.००	१ ७०

	५० ग्राम	१० ग्राम
शिला (मंसिल) शुद्ध	८.००	१.७०
वच्छनाग शुद्ध १ किलो ४०.००	२.५०	×
विषबीज (कुचला) शुद्ध	५.००	१.१०
हिंगुल (हंसपदी) शुद्ध	२५.००	५.२५
पारद (हिंगुलोत्थ) शुद्ध (डमरू यन्त्र से निकाला)	३०.००	६.२५

	१ किलो	१०० ग्राम
शिलाजीत सूर्यतापी	१४०.००	१४ ५०
गिलोय सत्व असली	४०.००	५ ००
यवक्षार असली	३५.००	४ ००
रुदन्ती फल	२०.००	२.५०
रुदन्ती फल चूर्ण	२५.००	३.००
रुदन्ती टेबलेट	३०.००	३.५०

चूर्ण

	१ किलो	५० ग्राम
हिंग्वाष्टक चूर्ण	३५.००	१.९०
लवण भास्कर चूर्ण	२२.००	१.३०
सितोपलादि चूर्ण	५०.००	२ ७०
त्रिफला चूर्ण	१४.००	१.००

तैल

	४००मिली.	१००मिली	५०मिली.
महानारायण तैल	२० ००	५.२०	२.७०
लाक्षादि तैल	२०,००	५.२०	२.७०
विषगर्भ तैल	२०.००	५ २०	२.७०
महामरिच्यादि तैल	२० ००	५ २०	२ ७०

पता——श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भाँजा रोड, अलीगढ़——३२

चर्मरोगारि मलहम

अत्यन्त आकर्षक ट्यूब पैकिंग मे भरी हुई सुपरीक्षित चर्मरोग नाशक आयुर्वेदिक मलहम। यह मलहम खाज खुजली, फोडा, फुन्सी घाव आदि चर्म रोगो मे अत्युपयोगी है। खाज गीली हो या सूखी शीघ्र नष्ट होती है। शरीर पर दाग धब्बे पड जाते है वह भी इसकी मालिश से नष्ट होते हैं। मूल्य २८ ग्राम का ट्यूब २ ५०,

पता—श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भाँजा रोड, अलीगढ़—३२

श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, अलीगढ़

द्वारा निर्मित

आयुर्वेदिक पेटेण्ट औषधियां

सिद्ध चन्द्रोदय वटी

अनेक मूल्यवान एवं प्रभावी द्रव्यों को इसमें डाला जाता है। यह गोलियां भोजन को पचाकर रस रक्त आदि सप्त धातुओं को क्रमशः पुष्ट करती हुई दृढ़ वीर्य का निर्माण करती और शरीर में नवजीवन व नवस्फूर्ति भर देती हैं। वीर्यविकार के साथ होने वाली खांसी, जुकाम, सर्दी, कमर का दर्द, मंदाग्नि, स्मरणशक्ति का ह्रास आदि व्याधियां दूर होकर क्षुधा बढ़ती है तथा शरीर हृष्ट-पुष्ट व नीरोग बनता है। इसके गुणों के कारण ही इसके दूसरे नाम 'पौरुषदाता वटी' तथा अनेक निराश रोगियों को आरोग्य लाभ प्राप्त कराने से 'निराश बन्धु' भी है। ४० वर्ष की आयु के बाद मनुष्य को अपने में एक प्रकार की शक्ति की कमी और शिथिलता का अनुभव होता है। सिद्ध चन्द्रोदय वटी इस शक्ति को पुनः उत्तेजित करती और मनुष्य को सबल, स्वस्थ, स्फूर्तियुक्त बनाये रखती है। मूल्य—४१ गोली १ शीशी ५.००, ४१ गोली की १२ शीशी ५७.००, २१ गोली एक शीशी २.६०, ५०० गोली ५७.०० ।

सेंक करने की पोटली

स्थानीय सिकाई करने की दवा १ शीशी ४.०० ।

नव यौवन मलहम

जिन व्यक्तियों की हस्तमैथुन से इन्द्रिय में टेढ़ापन या पतलापन आदि विकृति आ गई है वे इस तिला का स्थानीय प्रयोग करें। मूल्य १ ट्यूब का ४.०० ।

कासनाशी

(खांसी का शर्बत)

वासापत्र, मधुयष्ठी, कटेकारी, पीपल, तुलसी आदि से निर्मित यह सभी प्रकार की खांसी की सर्वोत्तम दवा है। जब खांसते-खांसते मरीज परेशान हो जाता है, कफ नहीं निकलता हो इसकी पहली खुराक तुरन्त काम करती है। तर व सूखी दोनों खांसी में लाभ करती है।

पैकिंग—१ औंस (२५ मि. ली.) की शीशी १.१०

४ औंस (१०० मि. ली.) की शीशी २.५०

१६ औंस (४०० मि. ली. या १ पौंड) ६.५०

ज्वाला बाल घुट्टी

[illegible] बच्चों की [illegible] सर्दी, जुकाम, [illegible] दस्त, [illegible] दूध की [illegible] होना, [illegible] होना, [illegible] आदि बाल रोगों में अति लाभकारी है। इसके पिलाने से बच्चों की पाचन शक्ति बढ़ती है, भूख लगती है, दूध ठीक से हजम होता है, पेट साफ रहता है, दुर्बल बच्चों को मजबूत और तन्दुरुस्त बनाती है तथा इससे दांत बिना कष्ट के निकलते हैं। १५ मि. लि. की शीशी ०.६०, ५० मि. लि. की शीशी १.७०, ४०० मि लि. ११.०० ।

शोषान्तक तेल

बच्चा सूखता जाता है उसके जिस्म पर झुर्रियां पड़ जाती हैं, बच्चे को ज्वर हो जाता है, कभी दस्त, कभी कब्ज रहता है, खाने में रुचि नाम शेष रह जाती है। इस प्रकार के बच्चे को सम्पूर्ण शरीर पर धीरे-धीरे प्रतिदिन मालिश करें, आधा घण्टे बाद स्नान करायें। बच्चे में स्फूर्ति बढ़ेगी, मांसपेशियां पुष्ट हो जायेंगी तथा हड्डियों में ताकत पहुँचेगी। यह तैल इसी अभिप्राय से निर्माण किया गया है। सूखा रोग से ग्रसित बच्चों को वरदान है।

मूल्य—५० मि लि. की एक शीशी २.०० ।

नोट—सूखा रोग से ग्रसित बच्चों को 'शोषान्तक कैपसूल' तथा 'ज्वाला बाल घुट्टी' भी इसके साथ-साथ विधि अनुसार सेवन करायें।

अर्शान्तक मलहम

खूनी तथा बादी दोनों प्रकार के अर्श में रोगी को

श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भांजा रोड़, अलीगढ़—३२ ।

बड़ा कष्ट होता है। गुदा में जलन महसूस होती है। मलहम के साथ ही साथ हमने 'अर्शान्तिक कैपसूलों' का भी निर्माण किया है। १-१ कैपसूल प्रात. दोपहर सायं शीतल जल के साथ निगलवाने तथा इस मलहम के प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है। २५ ग्राम की शीशी ३.५० रु।

उदरामृत पेय

थोड़ा सा खाना या कुछ भी चीज खाने पर पेट फूल जाता है, डकारें आती हैं, अधो वायु का सरण नहीं होता। ऐसे रोगी को इसका प्रयोग करावें। इसके सेवन से गैस का रोग शीघ्र ही दूर होता, अजीर्ण, मन्दाग्नि, आध्मान उदरशूल आदि रोग तुरन्त दूर हो जाते हैं। मू० १०० मि. लि. की शीशी २.५०, ४०० मि. लि. ९.५०।

नेत्रामृत अञ्जन

नित्य लगाने से धुन्ध और जाला कट जाता है, नेत्रों की ज्योति बढ़ जाती है, प्रारम्भिक मोतियाबिन्दु ठीक हो जाता है, पुराने से पुराने रोहे ठीक हो जाते हैं, आंखें साफ रहती हैं, नेत्रों में खुजली आना दूर होकर ज्योति बढती है। अगर स्वस्थ व्यक्ति प्रयोग करें तो उनकी दृष्टि शक्ति क्षीण न होगी तथा उपरोक्त विकारों से बचे रहेंगे। मूल्य—५ ग्राम की शीशी १.७५, एक दर्जन २०.००।

नपुंसकत्वारि

यह प्रयोग 'धन्वन्तरि' के सेक्स रोगांक में प्रकाशित हुआ है। इसके विषय में लिखा था कि इसके सेवन से इन्द्रिय की कमजोरी, सुस्ती, क्लीबता, ढीलापन, पतलापन, टेढापन, रगों का फूलना, नस फूलना, स्तम्भन शक्ति की कमी, शीघ्रपतन आदि विकार दूर होकर काम शक्ति बढ़ जाती है। २-२ रत्ती की ६० गोलियों का मू० २२.५० है।

यदि इसके साथ ही वसन्त कुसुमाकर रस का प्रयोग किया जाय तो अधिक शक्ति देता है और शीघ्र लाभ होता है। वसन्तकुसुमाकर रस की १ माह के लिए १-१ रत्ती की ६० मात्रा का मूल्य ३६.०० है।

काम शक्ति केशरी

यह प्रयोग भी "सैक्स रोगांक" में उक्त प्रयोग के साथ ही प्रकाशित हुआ था तथा इसमें हीरा भस्म एवं स्वर्ण भस्म का मिश्रण है जिससे यह अपूर्व गुणकारी है। १ माह के लिए ६० गोली ८२.५०।

मनोहर चूर्ण

स्वादिष्ट, शीतल, पाचक चूर्ण है। एक बार चख लेने पर शीशी समाप्त होने तक आप खाते ही रहेंगे। गुण और स्वाद दोनों में लाजवाब है। ४० ग्राम १.२०

पायरो मंजन

इस मंजन के नित्य व्यवहार करने से दांतों से खून तथा मवाद जाना, टीस मारना, पानी लगना दूर होते हैं। पायरिया दूर होता है। मू० ४० ग्राम १.००।

खाजारि

गीली या सूखी कैसी भी खाज हो अक्सीर है। रात को लगाकर सो जायें तथा सुबह नहाने के बाद लगायें। साथ में रक्तशोधन कैपसूल प्रात: सायं पानी से लें। अवश्य लाभ होगा। मू० ५० मि. लि. २.५०।

दाद की दवा

यह दाद की अक्सीर दवा है। दाद को साफ करके किसी स्वच्छ एवं मोटे वस्त्र से खुजाकर उस पर दवा लगावें। स्नान करने के बाद वस्त्र से अच्छी प्रकार से पोंछ लिया करें। साथ में रक्तशोधन कैपसूल दिन में ३ बार जल से निगलें। अवश्य ही दाद का नाश होगा। १५ ग्राम की शीशी १.००।

श्वेत कुष्ठ नाशक सैट

हजारों रोगियों पर परीक्षण के पश्चात् सफेद दागों को नष्ट करने वाली तीन दवाओं का १ सैट हमने प्रस्तुत किया है। इस रोग के दूर होने में समय अधिक लगेगा लेकिन सफेद दाग अवश्य ही नष्ट हो जायेंगे। आन्तरिक विकृति को दूर करती हुई स्थाई लाभ करने वाली बहुमूल्य दवायें हैं। नि:शङ्क होकर अवश्य सेवन करें।

श्वेत कुष्ठ नाशक वटी—३२ गोली की एक शीशी ३.५०
श्वेत कुष्ठ नाशक घृत—२५ मि. लि. की १ शीशी ३.००
श्वेत कुष्ठ नाशक अवलेह—२५० ग्राम का डिब्बा ५.००

उपरोक्त तीनों औषधियां १५-१६ दिन को पर्याप्त होंगी। इस १ सैट का मूल्य १०), पोस्टादि व्यय पृथक।

आयुर्वेद के ग्रन्थ रत्न

इन्फ्लुएन्जा—कृष्ण प्रसाद त्रिवेदी बी.ए । रोग का विवेचन, चिकित्सा विधि तथा सभी उपद्रवों सहित रोग की आयुर्वेद चिकित्सा दी है। मू. ५० पैसा ।

षड्गुणबलि मकरध्वज—इसमें पारद शुद्धि, गन्धक शुद्धि, पारद के संस्कार, मकरध्वज बनाने की विधि तथा उसका अनेक रोगों मे उपयोग विस्तार से दिया है। मू. २५ पैसा

अनुभूत योग प्रकाश—चतुर्थ सस्करण । गणपतिसिंह वर्मा। इसमें बड़े गणमान्य वैद्यों, हकीमो, डाक्टरो, सन्यासियो, भीलो एव राजा महाराजाओ के ६५० के लगभग गुप्त अनुभूत एव चमत्कारिक योगो का अनुपम सग्रह है। प्रयोगो की प्रसिद्ध पुस्तक है। मूल्य १०) मात्र

एलोपैथिक ग्रन्थ रत्न

एलोपैथिक चिकित्सा—डा० सुरेश प्रसाद। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत। बारहवा सस्करण। इसमे सभी रोगो के कारण, निदान,लक्षण आदि देकर चिकित्सा विस्तार से दी गई है। सजिल्द। मू० १७)

स्त्रियों के रोग एव उनकी आधुनिक चिकित्सा—स्त्री रोगो के ऊपर आधुनिक औषधियो की हिन्दी में सर्वश्रेष्ठ पुस्तक लेखक श्री रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी। मू० २२)

सचित्र नेत्र रोग विज्ञान—डा० शिवदयालु गुप्त। इसमे नेत्र रचना, उनकी कार्य क्षमता आदि का विवेचन किया गया हैं। विद्यार्थियों को उपयोगी है। मू० ८)

मार्डन डायग्नोसिस—केशवानन्द नौटियाल। इस पुस्तक मे सरल भाषा में सभी रोगो का निदान, समान दिखाई देने वाले रोगो को भेद करने की आसान विधि बताई गई है। मूल्य १६)

मार्डन सलैक्टेड मैडीसिन—इस पुस्तक मे उन एलोपैथिक बहुप्रचलित दवाओ का वर्णन किया गया है जिनको कि चिकित्सक प्राय: उपयोग मे लेते है। मूल्य ५)५०

क्लीनीकल मैडीसिन—अत्रिदेव गुप्त। इसमे रोगो के निदान उनकी आधुनिक तथा आयुर्वेदिक पद्धति से चिकित्सा दी है। हर रोग पर सफल डाक्टरी एव देशी प्रयोग दिये हैं। दो भाग मे। मूल्य २५)

पाश्चात्य द्रव्य गुण विज्ञान (मैटेरिया मैडिका)—यह पुस्तक दो भाग मे है। इन पुस्तको में अधिक से अधिक एलोपैथिक आयुर्वेदिक तथा यूनानी द्रव्यो का विस्तृत सचित्र वर्णन दिया गया है। पक्की कपड़े की जिल्द प्रथम भाग में ८७२ पृष्ठ तथा द्वितीय भाग में १०२८ पृष्ठ। मूल्य प्रत्येक भाग का ३०)

एलोपैथिक पेटेन्ट मैडीसिन—प्रचलित कम्पनियों द्वारा निकाली गई प्राय: सभी पेटेण्ट औषधियों का वर्णन है। मूल्य ६)

बाल रोग चिकित्सा—डा० रमानाथ द्विवेदी द्वारा लिखित इस पुस्तक मे बच्चों के रोगों की आधुनिक चिकित्सा दी है। मूल्य ७)

यंत्र शस्त्र परिचय—डा० दाऊ दयाल गर्ग ए., एम. बी. एस सम्पादक 'धन्वन्तरि' द्वारा लिखित पुस्तक छात्रो तथा चिकित्सको को अत्यन्त उपयोगी है यन्त्रो के व्यवहार की विधि सचित्र तथा सरल भाषा मे दी है। द्वितीय सस्करण मूल्य १०) मात्र

एलो० सफल औषधियां—सभी नई सफल एलोपैथिक दवाओ का विस्तृत वर्णन। मूल्य ४)५०

मल मूत्र रक्तादि परीक्षा—मल, मूत्र, रक्त-स्राव, प्रलेप, थूक, वीर्य आदि की परीक्षा विधि दी है। मू० ४)

एलो० पाकेट गाइड—सर्व प्रचलित चमत्कारिक औषधियों के नुस्खे प्रमुख रोगो का सक्षिप्त परिचय-निदान तथा चिकित्सा दी है। मूल्य ४)५०

वर्मा एलो० गाइड—वैद्य-डाक्टर-हकीमो को डाक्टरी चिकित्सा का रहस्य बताने वाला उपयोगी ग्रन्थ। पांचवा संस्करण। १४)

वर्मा एलो० चिकित्सा—डा० रमानाथ वर्मा की इस सुप्रसिद्ध पुस्तक में हर रोग का कारण, लक्षण, चिकित्सा आदि उपयोगी ढङ्ग से दी है। मूल्य १८)

वर्मा एलो० निघण्टु—इसमें डा० रमानाथ वर्मा ने अपने दीर्घकालीन अनुभवो के आधार पर आधुनिक औषधियो को तैयार करने की विधि तथा उसके गुण आदि दिए हैं। उत्तम सग्रहणीय पुस्तक है। मूल्य १५)

सफल आधुनिक औषधियां—डा० पी. एन. सिंह केवल नवीन आविष्कृत आधुनिकतम चमत्कारिक औषधियों का वर्णन पृष्ठ ३७५ के लगभग। मूल्य ५)५०

एलो० संग्रह (छठा भाग)—डा० भाटिया लिखित दवानसाजी की हिन्दी मे एक मात्र पुस्तक है। मूल्य १५)

कम्पाउण्डरी शिक्षा तथा चिकित्सा प्रवेश—कम्पाउण्डरी शिक्षा सम्बन्धी उत्तम पुस्तक। मूल्य ६)

मार्डन ट्रीटमेंट—केशवानन्द नौटियाल २ भाग में प्रकाशित है। प्रत्येक भाग का मूल्य १५)

एलो। पेटेण्ट चिकित्सा—डा०, बी. बी. अन्सारी। प्रत्येक रोग की आठ दस सर्वश्रेष्ठ औषधियां जिनकी पहली मात्रा से पुराने तथा जटिल रोग कम होने लगते हैं। मूल्य ३)

एलो० पेटेण्ट चिकित्सा—अकारादि क्रम से प्रत्येक रोग पर प्रयोग की जा सकने वाली पेटेण्ट औषधि दी है। मूल्य ४)

बीसवीं शताब्दी की औषधियां—इसमें नवीन आविष्कृत औषधियों के गुण धर्म आदि विस्तार से दिए हैं, उत्तम जिल्द। मूल्य ८)

इन्जैक्शन सम्बन्धी ग्रन्थ

इन्जैक्शन—डा० सुरेश प्रसाद। इसमे लेखक ने सूचीवेध के भेद, उपभेद, इन्जैक्शन की औषधि तथा सभी महत्वपूर्ण रोगो की इन्जैक्शन चिकित्सा दी है। अपने विषय की उत्तम एव सुप्रसिद्ध पुस्तक १४)

इन्जैक्शन तत्व प्रदीप—डा० गणपति सिंह वर्मा। इसमे लेखक ने इन्जैक्शन लगाने तथा बनाने की सरल विधि दी है तथा इन्जैक्शनो का वर्णन है। ६)५०

सूची वेध विज्ञान—डा० रमेशचन्द्र वर्मा कृत पुस्तक मे इन्जैक्शन लगाने की सम्पूर्ण विधि, इन्जैक्शन लगाने से होने वाले उपद्रवो की चिकित्सा तथा १००० इन्जैक्शनो का विस्तृत वर्णन दिया है। ७)५०

मार्डन इन्जैक्शन गाइड—इस पुस्तक में मार्डन इन्जैक्शनो का विस्तृत वर्णन किया गया है। ६)५०

आधुनिक आयु० इंजैक्शन चिकित्सा नवनीत—हरनारायण कोकचा द्वारा लिखित इस पुस्तक में आयुर्वेद के समस्त इन्जैक्शनों के गुण तथा किस रोग में किस तरह प्रयोग करना चाहिए, समझाया गया है। १०)७५

आयु. सफल सूची वेध—वैद्य प्रकाशचन्द्र जैन। इसमें आयुर्वेद के इन्जैक्शनों का वर्णन स्वानुभव के आधार पर लिखा है। स्वय इन्जैक्शन निर्माण कर प्रयोग करने की विधि दी है। ५)

होम्यो इन्जैक्शन चिकित्सा—डा० सुरेशप्रसाद लिखित पुस्तक में लेखक ने इन्जैक्शन लगाने की विधि तथा होम्योपैथिक दवाओं के गुण दिये हैं। ३)

सचित्र इन्जैक्शन विज्ञान—वैद्य चुन्नीलाल जी भारद्वाज। यह आयुर्वेद तथा एलोपैथी मे इन्जैक्शन सम्बन्धी उत्तम पुस्तक है। दो भाग मे। प्रथम भाग मू. ५), तथा द्वितीय भाग ३)

होम्यो-बायोकैमिक ग्रन्थ रत्न

मैटेरिया मैडिका होम्यो—डा० विलियम बोरिक द्वारा लिखित एक विस्तृत मैटेरिया मैडिका है। इसके अन्त में रिपर्टरी भी दी है। २०)

होम्यो पारिवारिक चिकित्सा—डा० सुरेश प्रसाद ने इस पुस्तक को खासतौर से नवीन चिकित्सको के लिए लिखी है। रोग परिचय, उनके लक्षण, निदान औषधियो का चुनाव आसानी से समझा जा सकता है। १५)

स्त्री रोग चिकित्सा—डा० सुरेश प्रसाद ने होम्योपैथिक रीति से स्त्रियो की चिकित्सा दी है। आवश्यक विषयो को चित्र देकर समझाया गया है। ६)५०

होम्यो मैटेरिया मैडिका—डा० सुरेश प्रसाद ने इसमे मुख्य लक्षण देकर उनका तुलनात्मक वर्णन भी दिया है। इससे उनका निर्वाचन सरल हो गया है। मू० ६)

होम्यो संग्रह प्रथम भाग—इसमे समस्त आरगैनन, मैटेरिया मैडिका रिपर्टरी तथा नुस्खे दिये हैं। १०)

होम्यो संग्रह द्वितीय भाग—इसमे होम्यो मैटेरिया मैडिका का विस्तार से वर्णन। मदर टिंचर तथा डायलूशन बनाने की विधि दी है। १५)

बायोकैमिक चिकित्सा—बायोकैमिक चिकित्सा के सिद्धात। औषधियो के मुख्य-मुख्य लक्षण तथा रोगो पर व्यवहार सरल भाषा मे समझाया है। ६)

शुसलर की बारहतत्त्व औषध—पुस्तक मे बारह औषधियो का इतिहास सिद्धात मात्रा मैटेरिया मैडिका लक्षण तथा उनसे चिकित्सा दी है। ८)

होम्योपैथिक लेडी डाक्टर—इस पुस्तक मे स्त्री रोगो की होम्योपैथिक की चिकित्सा सरल ढङ्ग से समझाकर लिखी है। १)७५

होम्यो मदर टिंचर्स—इसमे डा० भगवती प्रसाद श्रीवास्तव ने सभी होम्यो मदर टिंचर्स के मूल द्रव्य उनके गुण धर्म रोगो मे उनकी क्रिया का वर्णन दिया है। ४)

आर्गेनन—इस पुस्तक मे होम्यो पैथिक सिद्धांतो का हिन्दी रूपान्तर दिया है। होम्योपैथिक के ज्ञान के लिए प्रस्तुत पुस्तक का अध्ययन आवश्यक है। ६)

एलेन्स के नोट्स—पुस्तक चिकित्सकों को बहुत ही उपयोगी। साधारणजन छोटे-मोटे रोगो की चिकित्सा कर सकता है। ५)५०

बायोकैमिक रहस्य—बायोकैमिक की सभी दवाओ का विस्तृत वर्णन, कैलाश भूषण द्वारा लिखित । ४)५०

सफल सिद्ध प्रयोगों की पुस्तक

अनुभूत योग प्रकाश—श्री वैद्य गणपति सिंह वर्मा द्वारा लिखित इस पुस्तक के चार सस्करण होना ही इसकी उपयोगिता का प्रतीक है। ८.५० के लगभग गुप्त एव चमत्कारिक प्रयोगो का अनुपम सग्रह । मू. १०)

पैसे-पैसे के चुटकले—वैद्य अमोल चन्द द्वारा सग्रहीत पुस्तक मूल्य ६) वैद्य गणपति सिंह वर्मा द्वारा सग्रहीत ४)

सिद्ध प्रयोग—प. विश्वेश्वर दयाल । इस पुस्तक में अनेक अनुभूत योगो का रोगानुक्रम से सग्रह किया है। दो भाग मे । प्रथम भाग १) द्वितीय भाग ७५ पैसे ।

नित्योपयोगी चूर्ण सग्रह—चिकित्सा मे प्रायः प्रयोग मे आने वाले चूर्णों का अनुपम सग्रह । मू. १)२५

नित्योपयोगी क्वाथ सग्रह—आयुर्वेद मे क्वाथ चिकित्सा का भी अधिक महत्व है। पुस्तक में १७० के लगभग क्वाथो का सग्रह है। मू. १)२५

नित्योपयोगी गुटिका संग्रह—इसमें लगभग ३२५ वटिकाओ का सग्रह किया गया है मू० २) मात्र

सुलभ देहाती नुस्से—ग्रामो मे मिलने वाली औषधियो से सभी रोगो का इलाज दिया है। १)५०

रस तंत्र सार व सिद्ध प्रयोग संग्रह—सिद्ध प्रयोगो का अनुपम सग्रह सहस्रो शास्त्रीय प्रयोगो का सग्रह । प्रथम खण्ड १४) द्वितीय खण्ड १०)

अनुभूत योग चिन्तामणि—गणपति सिंह वर्मा । वर्गानुसार रोगों का वर्णन तथा उनके लिए उपयोगी नुस्खे जो कि सस्ते तथा आशुफलप्रद हैं। पाचवा सस्करण प्रथम खण्ड ६ ५० द्वितीय ८ ५० ।

यूनानी के कुछ ग्रन्थ रत्न

यूनानी चिकित्सांक—हकीम दलजीत सिंह द्वारा सम्पादित इस विशेषाक में यूनानी चिकित्सा के सिद्धान्त तथा चिकित्सा विस्तृत रूप मे दी गई है। मूल्य ८)५०

यूनानी चिकित्सा सागर—हकीम मन्साराम द्वारा लिखित इस ग्रन्थ मे सभी नवीन तथा पुराने हकीमो के नुस्खे रस तत्र सार के ढग पर दिये हैं। अन्त मे यूनानी औषधियो के नाम हिन्दी मे दिये है। मू मात्र १०)

यूनानी चिकित्सा विधि—हकीम मन्साराम । इसमे दिल्ली के प्रसिद्ध खानदानी यूनानी हकीमो के अनुभूत योग, जिनके कारण उनकी चारो ओर धूम थी और आज तक नाम है, दिये है। मू० ५) मात्र है।

यूनानी सिद्धयोग सग्रह—सग्रहकार श्री दलजीत सिंह इसमे यूनानी प्रयोग जो सहज तथा परीक्षित हे दिये हैं। हर हकीम वैद्य के लिये पठनीय एव सग्रहणीय है। मूल्य ४)२०

करावादीन कादरी—प० जगन्नाथ प्रसाद । चार भाग । प्रत्येक भाग का मू २)

कराबादीन सिफाई—प० जगन्नाथ प्रसाद । इसमे यूनानी के विश्वस्त प्रयोगों का उत्तम सग्रह है। मू. २)

मखजन उल मुफरदात यूनानी निघण्टु—प० जगन्नाथ प्रसाद ने इसमे यूनानी औषधियो के गुण धर्म आदि दिये हैं। मू० २)

जर्राही प्रकाश—इसमें घाव और व्रण सम्बन्धित जर्राही के लिये रोग किस कारण होते हैं। तथा उनकी आसानी से किस प्रकार चिकित्सा की जा सकती है। बच्चो के नीरोग रखने के उपाय व विभिन्न स्नान दिए हैं। ग्रहस्थो के लिए पठनीय पुस्तक । मू० २)

आरोग्य विज्ञान—डा० लक्ष्मी नारायण सरोज' । शरीर और स्वास्थ्य-अमूल्य भगवद्‌देन है । स्वास्थ्य में गडबडी होने पर प्राकृतिक साधनो से निरामयता प्राप्त करना । प्रत्येक ऋतु को दैनिक दिनचर्या दी है जिससे की रोगो का आक्रमण ही न हो। मू० २)

आयुर्वेद परीक्षा गाइड

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की आयुर्वेद की परीक्षाओ को सुगमता से उत्तीर्ण करना चाहते हैं तो इन परीक्षा गाइडों को अवश्य पढ़िए। इनसे आपको बहुत मदद मिलेगी। अशोक उप वैद्य गाइड—शिव कुमार व्यास १०)

अशोक वैद्य विशारद गाइड—ज्ञानेन्द्र पाण्डेय द्वारा लिखित । प्रथम खण्ड मूल्य १०), द्वितीय खण्ड मू १०)

वैद्य विशारद दिग्दर्शन गाइड—शिव कुमार व्यास द्वारा लिखित । प्रथम खण्ड मू ८)

अशोक आयु० रत्न गाइड—शिव कुमार व्यास द्वारा लिखित । प्रथम खण्ड १५), द्वितीय खण्ड १५)

आयुर्वेद रत्न दिग्दर्शन गाइड—भूदेव शर्मा द्वारा लिखित । प्रथम खण्ड मू २०), द्वितीय खण्ड २०)

इसमें दी है। प्रत्यक्ष अनुभव एवं प्रेरणा देने वाली उपयोगी पुस्तक। ४० चित्र पृष्ठ संख्या २१६। मू. ३)

जल चिकित्सा—फादर कनाइप। इस पुस्तक मे सैकड़ो तरह के जल स्नानो का सचित्र वर्णन दिया है। मू २)

सर्दी जुकाम खांसी—इन रोगो की चिकित्सा के साथ रोगो का कारण और उनसे बचने और मुक्ती का रास्ता बताने वाली पुस्तक। मू. १)५०।

जीने की कला—विट्ठल दास मोदी। यह पुस्तक आपका मानसिक बल बढायेगी चिन्ताओ से मुक्त करेगी। मूल्य ३)

प्राकृतिक शिशु चिकित्सा—डा० सुरेश प्रसाद। शिशुओ के विभिन्न यूनानी, आयुर्वेदिक व डाक्टरी आदि अनेक ग्रन्थो का सार सग्रह किया गया है। अपने विषय की सुप्रसिद्ध पुस्तक है। मू० ३)५०

प्राकृतिक चिकित्सा की प्रमुख पुस्तके

रोगों की सरल चिकित्सा—विट्ठल दास मोदी। रोगो की सरल चिकित्सा बताने वाली अनुभव के आधार पर लिखी प्रामाणिक पुस्तक। ६)

प्राकृतिक जीवन की ओर—एडोल्फ जस्ट। अनुवादक—विट्ठलदास मोदी। धूप हवा पानी और भोजन की सहायता से सभी रोगों को दूर करने की विधि को बताने वाली सरल पुस्तक। ५)

सुगठित शरीर—डा० चतुर्भुज दास मोदी। अगर आप सुगठित, सशक्त सुडौल और कान्तिमान बनना चाहते है। तो इसे पढिये। इसमे प्रत्येक के लिये व्यायाम चित्रो द्वारा समझाकर दिये हैं। मू० ८)

आहार चिकित्सा—आहार को किस प्रकार किस रोग मे लें जिससे कि हम स्वस्थ्य हो जायें यह विधि इसमे दी है। मू. ३)

योगासन—आत्मानन्द। योगासन भारत के ऋषियो द्वारा प्रदर्शित प्राचीन प्रणाली है। योगासन की विधि इस सचित्र 'योगासन' से सीखिये तथा रोग निवारण की जानकारी भी प्राप्त करें। मू. ७)

स्वास्थ्य कैसे पाया—रोगियो मे प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा किस प्रकार स्वास्थ्य पाया उनकी आत्म-कथायें

प्राणाचार्य के उपयोगी विशेषाक

धन्वन्तरि के आदि सम्पादक वैद्य बांकेलाल ने धन्वन्तरि से पृथक होकर 'प्राणाचार्य' मासिक प्रकाशित किया था। उसके ये महत्वपूर्ण विशेषाक हैं। थोड़ी प्रतियाँ शेष हैं। शीघ्र मगा लें।

स्त्री रोगांक—स्त्री रोगो पर अनुपम ग्रन्थ एव प्रयोगो। सग्रह।

शिशु रोगाङ्क—शिशु रोगों पर देश विदेश के सारगर्भित लेखो का सग्रह।

प्रयोग मणिमालाङ्क—वैद्यो के परिचय एव उनके अनुभूत योगो से युक्त लगभग ५०० योगो का सग्रह।

ऊर्ध्वजत्रु रोगाङ्क—हसली से ऊपर के मुख, नाक, कान, सिर, मस्तिष्क आदि अवयवो की रचना, इनके रोग और चिकित्सा पर लेखों का सग्रह।

प्रमेह रोगाङ्क—प्रमेह रोगो पर सारगर्भित विवेचना एव चिकित्सायुक्त लेखो का सग्रह।

उदररोगाङ्क—उदर के सम्पूर्ण अवयवो की सचित्र रचना एव उदर रोगो की सफल चिकित्सा तथा उपयोगी प्रयोगो का अपूर्व ग्रन्थ।

मूल्य—प्रत्येक का ६.०० पोस्ट व्यय पृथक।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की पुस्तके मगाइये

शल्य विज्ञान की पाठ्य पुस्तकें प्र खण्ड	१२.००
शल्य विज्ञान की पाठ्य पुस्तकें द्वि. खण्ड	११.७५
आयुर्विज्ञान शब्दावली प्र. खण्ड	४.२५
" " " द्वि. खण्ड	१.७०
मानव शरीर दीपिका	५.००
माताओ और शिशुओं के रोग	४.००
नेफ्रोसिस परिचय	५.००

ग्रहस्थो के लिए पठनीय
काम विज्ञान की प्रामाणिक पुस्तकें

वात्स्यायन कामसूत्र अत्रिदेव विद्यालंकार	६.००
यौवन के गुप्त रहस्य	६.००
आधुनिक यौन विज्ञान	२.५०
कामकला (पुरुषो के लिए)	२.००
कामकला (स्त्रियो के लिए)	३.००
अथ कोकसार	१.००
विवाह अङ्क	७.००
यौन प्रेम	२.००
यौन व्यायाम और आसन	७.००
कुचिमार तन्त्र	०.५०
युवतियों के यौन रोग	२.००
काम शक्ति कैसे बढे	३.००
रति रहस्य	४.००
गुप्त रोगो का इलाज	३.००
यौन रोगो का प्राकृतिक इलाज	३.००
गर्भपात अङ्क	७.००
जच्चा-बच्चा अङ्क	२.००

श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भाजा रोड, अलीगढ़—२

चिकित्सोपयोगी नवीन उपकरण

एक सफल चिकित्सक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह रोगी का सही निदान करे तथा उसकी चिकित्सा मे औषधि प्रयोग के साथ-साथ आधुनिकतम यन्त्र शस्त्रो का प्रयोग आवश्यकतानुसार करे। इन आधुनिक यन्त्र शस्त्रों के प्रयोग से आपको अपनी चिकित्सा मे तो सफलता मिलती ही है साथ ही रोगी पर भी आपके प्रति बहुत अनुकूल प्रभाव पडता है। हमने अपने स्टोर्स मे नवीन-नवीन यन्त्र शस्त्रो का विक्रियार्थ विशाल सग्रह किया है। चिकित्सको को चाहिए कि वे आवश्यकतानुसार इन वस्तुओ को मगाकर सफलता एवं यश प्राप्त करे।

डाइग्नोस्टिक सेट—इस सेट द्वारा नाक, कान, तथा गले को अन्दर से देखते हैं। इसमें एक टार्च होती है। उस टार्च के ऊपर कान देखने का थाला, नासिका प्रेक्षण यन्त्र तथा गले व जबान देखने की जीवी तीनो में से कोई सा एक फिट हो जाता है। इसमे प्रकाश की व्यवस्था है। बिना सैल पूरे सेट का मूल्य केवल ६८.००

चिपकने वाली पट्टी (Adhesive plaster)—पीठ, पेट, छाती या किसी अन्य ऐसे स्थान पर घाव हो जहा पर पट्टी बाधने मे असुविधा हो तो आप इसका प्रयोग करें। मूल्य १ इन्च × ५ गज ५.००, २इन्च × ५ गज ८.२५।

आमाशय प्रक्षालिनी नलिका (Stomach wash tube)—विष के खा लेने पर तुरन्त ही आमाशय प्रक्षालन की आवश्यकता होती है जोकि इसी नलिका की सहायता से किया जाता है। मूल्य १४.००।

नमक का पानी चढाने का यंत्र (Saline Apparatus)—हैजा मे नमक का पानी चढाना चिकित्सक के लिए अत्यन्त आवश्यक है जो कि इसी यन्त्र की सहायता से चढाया जाता है। मूल्य १४.५०।

आख धोने का गिलास—किसी वस्तु का कण या उडता हुआ कोई छोटा कीड़ा आख मे पड़ जाने पर इस ग्लास मे जल भरकर आंख मे लगा देने पर आसानी से निकल जाता है। मूल्य १.५०।

शर्करा मापक यन्त्र—इससे मूत्र मे जाने वाली शर्करा की प्रतिशत मात्रा ज्ञात होगी। मूल्य १०.००।

रक्तचापमापक यन्त्र—अनेक रोगो मे रोगी का रक्तचाप जानना आवश्यक है। मूल्य डायल टाइप १७०.००।

आई शेड (Eye Shade)—एक आख पर बाँधने वाले का मूल्य १.००, दोनो बाधने वाले का १.२५।

मोतीझला देखने का शीशा—मोतीझला (Typhoid) के दाने बहुत सूक्ष्म होने के कारण देखने मे नही आते इसलिए निदान करने मे बड़ी भूल हो जाती है। इस शीशे के द्वारा वे दाने बड़े बडे दीख पडते हैं तथा आसानी से पहचाने जा सकते हैं। मूल्य प्लास्टिक का हैंडिल छोटा शीशा ३.५०, बढिया बड़ा५.५०, धातु का हैंडिल सर्वोत्तम ७.५०, बडा साइज ९.५०।

स्टेथिस्कोप

भारतीय सर्वोत्तम १७.५०, साधारण १२.५०, एक चैस्ट पीस वाला जापानी बढिया सर्वोत्तम ६२.५०।

स्टेथिस्कोप रखने का थैला—सम्पूर्ण चमडे का दो जेब वाला मू. १२.५०। जिप (जजीर) या बटन लगा एक जेब का साधारण मूल्य ७.५०।

मलहम मिलाने की छुरी—स्पेचला (Spetula)—लकडी का हैडिल मूल्य २.५०, धातु का हैडिल ४.००।

मलहम मिलाने की प्लेट—(चीनी की) ६ × ६" ४.५०, ८ × ८" ७.५०।

सन्तति निरोध—निरोध (सरकार द्वारा बना) १ दर्जन ६० पैसे, १ ग्रोस ७ रुपया।

डायफ्राम (डच) पैसरी बढिया—४.५०।

किडनी ट्रे (Kidney tray)—कान धोने के समय कान के नीचे लगाने के लिए ८ इन्ची ६.०० १० इन्ची ७.५०, ८ इन्ची नाइलोन (न टूटने वाली सुन्दर) ७.५०।

सस्पेन्सरी बेन्डेज—यह बढे हुए अण्डकोषो को सभालने के काम आती है। मूल्य केवल ४.००।

हीमोग्लोबिन स्केल बुक (Haemoglobin Scalebook)—बिना किसी यन्त्र की सहायता के हीमोग्लोबिन की प्रतिशत मात्रा ज्ञात करें। मू ५.५०।

पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स, मामू भाजा रोड, अलीगढ

पैन टार्च—यह जेब मे पैन की तरह लगाई जाती है। इसमे बहुत पतले दो सैल पडते हैं। चिकित्सको के लिये गले, नाक आदि की परीक्षा करने के लिये अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य दो सैल सहित केवल १५.००

थर्मामीटर (तापमापक यंत्र)—४ ५०, फार्नहाइट वाला भारतीय ५.०० ।

थर्मामीटर केश—धातु के निकल किये क्लिप सहित ३ ०० । थर्मामीटर केस—प्लास्टिक का २.०० ।

आटोमाइजर—गले में या नाक कान में अन्दर तक कोई दवा पहुँचानी है तो वह दवा इस यन्त्र मे भरकर पहुँचायी जाती है। मूल्य ११ ०० ।

धमनी सदश (Artery Forceps)—शल्यकर्म करते समय रक्तस्राव करती हुई धमनी को इससे पकडकर रक्तस्राव रोका जाता है। मूल्य ५ इन्ची ६.५०, ६ इन्ची ८.००, स्टेनलैसस्टील की ५ इन्ची ६.५०, ६ इन्ची ११.०० ।

सूचिका सदश (Needle Holder)—शल्यकर्म मे मास तन्तु आदि एव त्वचा को सींते समय सुई को इसीसे पकडा जाता है। इसके बिना सीवन कर्म सम्भव नही। स्टेनलैसस्टील का मू० १५.५० ।

धागा सीवन कर्म को—नाइलोन का १ पैकिट २.५०, रेशमी या १ गुच्छा २ ५० सफेद या काली रौल १०.५०

कैटगट मासपेशियो के सीवन कर्म को ७.०० ।

सूचिका (Needles)—सीवन कर्म के लिये ६ सुई का पैकिट ११.५० ।

शीशे पर लिखने की पेंसिल—मू० केवल १.२५ ।

मसूढे चीरने का चाकू—सीधा २ ५०, फोल्डिंग ५ ७५, स्टेनलैसस्टील सीधा ४ २५, स्टेनलैसस्टील का फोल्डिंग ६ ०० ।

इन्जेक्शन सिरिंज (कम्पलीट)—सम्पूर्ण कांच की २ c. c की ४.००, ५ c. c. की ६.००, १० c. c की ६.००, २० c c. की १४.५०, ३० c c २०.००, ५० c. c. की ३२ ०० ।

रेकार्ड सिरिंज—२ c c की ११. ००, ५ c c १५.००, १० c c. की १८.५० ।

रयूर लाक भारतीय—२ c. c ६ ००, ५ c. c. ८ ५०, १० c c. १०.५०, २० c c. २२ ५०, ३० c c ३० ००, ५० c. c ४० ०० ।

नाईलोन की सिरिंज—२ c c. ४ ००, ५ c c ६ ००, १० c. c. ८.५० ।

इन्जेक्शन की सुई (नीडिल)—१ दर्जन १० ५०, बढिया १८.०० ।

सिरिंज केस धातु के—सिरिंज सुरक्षित रखने के लिए—१ केश २ c. c की सिरिंज के लिए ४ ००, ५ c. c की सिरिंज के लिये ५.५०, १० c c की सिरिंज के लिये ८ ००, २० c c की सिरिंज के लिये १७ ५०, ३० या ५० c. c की सिरिंज के लिये २८.०० ।

सिरिंज केश प्लास्टिक का—२ c c., ५ c. c तथा १० c c. की सिरिंज तथा नीडिल एक साथ रखी जा सकती हैं। मू० ७.५० ।

परवाल उखाड़ने की चीमटी (Cilia Forceps)—मू० ३.००, स्टेनलैस स्टील की ७.४० ।

एनीमा सिरिंज (बस्ति यत्र)—इस यन्त्र से जल या औषधि द्रव्य गुदा में आसानी से चढाया जा सकता है। मू० रबड का भारतीय उत्तम ६ ५० ।

दवा नापने का गिलास (Measuring Glass)—मूल्य २ ड्राम का १ ७५, १ औंस का २ ००, २ औंस का २ २५, ४ औंस का ३ ०० ।

घाव मे डालने की सलाई (Probe)—घाव मे गहराई, उसकी दिशा जानने तथा किसी नाडी व्रण मे अन्दर गौज भरने के लिये। मू० १.०० ।

गला व जबान देखने की जीभी (Tongue Depressure)—मूल्य साधारण सीधी २ ००, फोल्डिंग ५.७५, स्टेनलैसस्टील की ५.५० ।

गरम पानी की थैली—उदरशूल, फोडा, शोथ या अन्य आवश्यक स्थानो पर इस थैली मे गरम पानी भरकर सुगमता से सिकाई की जा सकती है। मूल्य ११ ५० ।

बरफ की थैली—तेज बुखार, प्रलापवस्था, शिर की पीडा, अन्य रोगो मे चिकित्सक सिर पर बरफ रखवाते हैं। इस थैली मे बरफ भरकर रखने से सुविधा रहती है, रोगी को इससे ठण्डक पहुँचती है किन्तु उससे वह भीगता नही है। मू० ७ ५० ।

कान धोने की पिचकारी—धातु की एक औंस १४.५०, २ औंस की १७.५०, ४ औंस की २०.०० ।

आपरेशन करने का चाकू—इसमे हैंडिल प्रथक होता है तथा काटने वाला ब्लेड प्रथक होता है जो कि खराब

होने पर बदला जा सकता है। मू. ६ ब्लेड सहित १०.००, स्टेनलैसस्टील का ६ ब्लेड सहित १२ ७५।

बिछूरी—इसका फलक पतला तथा तिरछा होता है। इसके द्वारा भेदन किया जाता है। सीधी का मूल्य २ ५०, फोल्डिंग ४ ७५, स्टेनलैसस्टील की सीधी ४.२५, स्टेनलैसस्टील की फोल्डिंग ६.०० ।

चीमटी—४ इन्ची १ ००, ५ इंची १.२५, स्टेनलैस-स्टील की ४ इंची ४.२५, ५ इन्ची ५ ०० । दांतो मे दवा लगाने की चीमटी ४.०० । स्टील की ७ ५० ।

चाकू—सीधा २ ५०, फोल्डिंग ४.७५, स्टेनलैसस्टील का सीधा ४ २५, स्टेनलैसस्टील का फोल्डिंग ६ ०० ।

दांत उखाड़ने का जमूड़ा—इससे दांत मजबूती से पकडकर उखाड़ा जा सकता है। मू. ११ ५०, स्टेनलैस-स्टील का २८.०० ।

दांत उखाड़ने के जमूडो का सैट—इसमे ७ प्रकार के जमूडे, दन्त उन्नामक यन्त्र, मसडे चीरने का चाकू आदि आवश्यक उपकरण एक बहुत सुन्दर कपडे से मढे डिब्बे मे हैं। मूल्य १३५ ०० ।

आंख मे दवा डालने की पिचकारी–१ दर्जन १.०० ।

कान मे से दाना निकालने का यन्त्र—यह यन्त्र दाने आदि को सुगमता से खींचकर लाता है। मूल्य ३ ५० ।

ग्लेसरीन की पिचकारी (प्लास्टिक)—गुदा मे ग्लेसरीन चढ़ाने के लिए प्लास्टिक की उत्तम क्वालिटी की पिचकारी का मूल्य १ औंस ३ ००, २ औंस ४.५०, ४ औंस की ६ ७५ ।

तीन मार्ग वाला यन्त्र (Three way Canula)—किसी रोगी के द्रव पदार्थ अधिक मात्रा मे चढाना है तथा आपके पास सिरिंज छोटी है तो आप प्रयोग इसका करें अथवा जो चिकित्सक बडी सिरिंज द्वारा ठीक प्रकार इन्जेक्शन नही लगा पाते वे प्रयोग करें। मूल्य १२.५० ।

कान देखने का आला— इस यन्त्र (आले) से कान के अन्दर का स्पष्ट दृश्य दीख पडता है। कपडे से मढे एक सुन्दर मजबूत लकडी के डिब्बे मे रखे दो अतिरिक्त ईअर पीस सहित का मूल्य २७ ५० ।

आमाशय मे दूध चढ़ाने की नली—जब रोगी मुंह से आहार ग्रहण न कर सके यथा बेहोशी पक्षाघात मे, किसी दौरे आदि मे तो आप इस नली द्वारा दूध या अन्य कोई पोष्य द्रव पदार्थ आमाशय मे पहुँचा सकते है। मूल्य ४.५० ।

गुदा परीक्षण यन्त्र (Proctoscope)–गुदा की अन्दर से परीक्षा करने के लिए एक आवश्यक यन्त्र है। मू.२०.००

स्तनो से दूध निकालने का यन्त्र—स्त्री के स्तन से इस यन्त्र द्वारा दूध आसानी से निकाला जाता है। मूल्य ३.७५, बढिया ६ ५० ।

मूत्र कराने की नली (कैथीटर)—रबड का १ २५, स्त्रियो के लिए धातु का ३ २५, पुरुषो केलिए धातु का ५ ०० ।

जलोदर मे उदर से पानी निकालने का यन्त्र—जलोदर रोग मे उदर गह्वर से पानी निकाल देने से रोगी जल्दी स्वास्थ्य लाभ करता है तथा उस पर प्रभाव भी अच्छा पडता है। मू० ६.००, स्टेनलैसस्टील का १२.५० ।

आंख टैस्ट करने का चार्ट—साधारण तौर से आप इन चार्टों को रोगी से पढवाकर दृष्टि परीक्षा कर सकते हैं। मू० ३ ०० प्रति चार्ट ।

मलहम लगाने का यन्त्र (Ointment introducer)-गुदा मे मलहम लगाने के लिये उपयोगी मू० ४ ०० ।

खरल चीनी का गोल—ये खरल दवा मिलाने घोटने के लिये उपयोगी हैं। मू. ४ इन्ची ६.००, ५ इन्ची ७.५०, ६ इन्ची ६.०० ।

आपेक्षिक घनत्वमापक यन्त्र (Urinometer)—मूत्र अथवा किसी अन्य द्रव का आपेक्षिक घनत्व इस यन्त्र द्वारा मालूम किया जाता है। मू० ३.००, बडा (१००० से २०००, तक चिह्न वाला) ४ ०० ।

मवाद साफ करने की पिचकारी—मूत्र नली में मवाद अन्दर चिपक कर व्रण पैदा कर देता है। जब तक वह अन्दर से साफ नही होता रोग का नष्ट होना कठिन हो जाता है। इस पिचकारी से दवा पहुचा कर सफाई कर सकते हैं। मू० मनुष्य के लिए १.७५ जनानी २.०० ।

कैंची—४ इन्ची २.५०, ५ इंची ३.००, ६ इन्ची ४.५०, ७ इन्च ५ ००, कैंची मुडी हुई ४ इन्ची ७ ७५, ५ इन्ची ३.२५, कैंची एक ओर को मुडी हुई ४ इन्ची ३.००, ५ इन्ची ३.५०, कैंची सीधी स्टेनलैस स्टील की ४ इन्ची ५ ७५, ५ इन्ची ६ ७५, ६ इन्ची ८.००, ७ इन्ची ६.०० ।

रबड़ के दस्ताने—चीडफाड करते समय संक्रमण से रोगी को और अपने को बचाने के लिए चिकित्सक इन दस्तानो को हाथ मे पहनते हैं। मू० १ जोडी ३.५० ।

थूकने का पात्र—तामचीनी (इनामिल) का पात्र ५.७५, प्लास्टिक का सुन्दर ६.७५, धातु का ८ ५० ।

बिजली की मशीन

आधुनिक विज्ञान ने यह प्रमाणित कर दिया है कि बिजली मे असीम शक्ति है तथा उसका प्रत्येक क्षेत्र मे उपयोग किया जा सकता है। हमने अनेक प्रयत्नों के पश्चात् चिकित्सकों के काम में आने वाली ऐसी सस्ती तथा बहु–रोगोपयोगो मशीन का निर्माण किया है जो अनेक रोगों में इतना शीघ्र लाभ करती है कि वह एक चमत्कार ही प्रतीत होता है जिससे यह अन्य रोगियो को भी, जोकि आपके चिकित्सालय में बैठे है, अपनी ओर आकर्षित करती है।

इसे सैलो द्वारा चलाया जाता है जो कि सर्वत्र मिल जाते है। तथा इसे दुर्गम ग्रामों तथा बड़े-बड़े शहरों में समान रूप से प्रयोग किया जा सकता है। इसमें खर्चा भी बहुत कम होता है लेकिन आप प्रति रोगी से १-२ रुपया आसानी से प्रतिदिन ले सकते है। मशीन टिकाऊ है, सुन्दर है तथा बहुत दिनो तक निर्बाध कार्य करने वाली है।

इस मशीन के प्रयोग से तीव्र पार्श्वशूल, गृध्रसी, सन्धिशूल, कटिशूल, उदरशूल, अकड़न, लङ्गडापन, लकवा (पक्षाघात), दात का दर्द, तीव्र वातज शिर:शूल, किसी अङ्ग में ठंड लग जाने के कारण होने वाला दर्द, पुरानी चोट का दर्द, मोच जाना आदि अनेक रोग तुरन्त ही दूर होते है। प्रत्येक चिकित्सक के पास इस मशीन का होना आवश्यक है। इसके निम्न प्रकार हमारे पास उपलब्ध है। आप किसी भी प्रकार की बिजली की एक मशीन मंगाकर रोगियों में यश एवं धन प्राप्त करे।

१.	बिजली की मशीन ३ या ६ बड़े गोल सैलो से चलने वाली (रेडियोनुमा रेगूलेटर सहित)	६०.००
२.	,, ,, ,, ३ या ६ बड़े गोल सैलो से चलने वाली	७५.००
३	,, ,, ,, डाइनुमायुक्त तथा रेगूलेटर सहित	११०.००
४.	,, ,, ,, केवल बिजली से चलने वाली	८०.००
५.	,, ,, ,, बिजली तथा सैल किसी से भी चलने वाली तथा रेगूलेटर सहित	११५.००

दाऊ मैडीकल स्टोर्स, मामू भांजा रोड, अलीगढ़—३२

सर्जरी बक्स

यह सर्जरी बक्स इस उद्देश्य से बनाया गया है कि चिकित्सक बाहर जाते समय अपने साथ ले जा सकें। निम्न उपकरण उसके साथ भेजे जाते हैं—

चीमटी ४ इन्ची, चीमटी ५ इन्ची, चाकू सीधा ५ इन्ची, चाकू टेढे ब्लेड वाला (बिश्चूरी) ५ इन्ची, गला व जबान देखने की जीभी, कैथीटर रबड का, कैंची ४ इन्ची, कैंची ५ इन्ची, घाव मे डालने की सलाई (प्रोब) प्रत्येक १-१।

इस प्रकार उपरोक्त नौ यन्त्र-शस्त्र इस बक्स मे हैं। बक्स पर ऊपर सुन्दर मजबूत आइल क्लाथ चढाया गया है। प्रत्येक चिकित्सक के लिए उपयोगी है।

मूल्य उपरोक्त यन्त्र शस्त्र सहित १७.५०, पोस्ट-पैकिंग व्यय लगभग ४ ७५ पृथक, सेल टैक्स पृथक।

सर्जरी बक्स स्टेनलैस स्टील का

नोट—चीमटी, चाकू, बिश्चूरी तथा कैंची स्टेनलैस स्टील की मगाने पर मू. ३६ ००, पोस्ट पैकिंग व्यय ५ ५०

पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स
मांमू भांजा रोड, अलीगढ़।

सेक करने हेतु बिजली का हीटर

इस मशीन (हीटर) से आप बिजली द्वारा किसी भी स्थान की सिकाई कर सकते हैं। जिस प्रकार से चोट लगने पर पोटली से या रुई से सिकाई करते हैं उसी प्रकार इसकी भी गर्मी पहुचती है। अगीठी जलाने आदि किसी प्रकार का झझट नही। बिजली मे लगाकर तुरन्त सिकाई कर सकते हैं। इसको इस प्रकार से बनाया गया है कि चारो ओर से बन्द रहता है जिससे किसी भी प्रकार का झटका लगने का डर नही रहता। प्रत्येक चिकित्सक एवं गृहस्थ के लिए प्रतिदिन के उपयोग की वस्तु है। ए सी. एव डी सी. दोनो प्रकार की बिजली से चल सकता है। मूल्य १७.५०, पोस्ट पैकिंग व्यय ५.५० एव सैलटैक्स प्रथक।

दाऊ मैडीकल स्टोर्स,
मामू भांजा रोड, अलीगढ



पत्थर के खरल

मूल्य तथा साइज का विवरण

	हसराज	तामड़ा	मोतिया	कसौटी
३ इन्ची	×	×	५.४०	३.६०
४ ,,	२६.५०	१६.५०	८.००	५ २०
५ ,,	३५.००	२२.५०	१० ५०	८ ००
६ ,,	४७.००	३१.५०	१३.५०	१२.६०
७ ,,	५६.२५	३६.७५	१६.००	१७.००
८ ,,	७२.५०	४४.५०	२४.२५	२१.६०
९ ,,	८३ ००	५५.००	३०.६०	२७.००
१० ,,	९८ ५०	६५.००	३७ ००	३५.००
११ ,,	११४ ००	७६.५०	४५ ००	×

	हसराज	तामड़ा	मोतिया
१२ इन्ची	१३० ००	८७ ००	५२.००
१३ ,,	१४५ ७५	९७.७५	६०.५०
१४ ,,	१७० ५०	११४.००	७०.८०
१५ ,,	२००.००	१३०.००	८५.५०
१६ ,,	२४४.००	१५५.५०	९९.००
१७ ,,	२८८.००	१७५.००	११९.००
१८ ,,	३३७ ००	२०२.००	१४३.००
१९ ,,	×	×	१७३ ००
२० ,,	×	×	२०५.००

नोट—खरलो का आर्डर देते समय अपने पास के रेलवे स्टेशन का नाम अवश्य लिखे तथा चौथाई रकम पेशगी भेजें।

दाऊ मैडीकल स्टोर्स, मामू भांजा रोड, अलीगढ।